सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

१८

(जुलाई – नवम्बर १९२०)

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

१८

(जुलाई–नवम्बर १९२०)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमे १ जुलाईसे १७ नवम्बर, १९२० तक अर्थात् साढे चार महीनेकी सामग्री समाहित है। इस अवधिका सर्वाधिक दिलचस्प अश गाधीजीका वह सार्वदेशिक दौरा है जिसमे उन्होने लोगोके वीच घूम-घूमकर अंग्रेजी साम्राज्य और भारत सरकारके खिलाफ प्रचार किया। इस दौरेमे उन्होने तात्कालिक सत्ताको जगह-जगह रावणराज्य कहकर वर्णित किया है। उनके समकालीन नेतागण साम्राज्य और सरकारपर किये गये इस आक्रमणकी तीव्रतासे चकित हुए होगे; कहा तो यहाँतक गया कि उनका यह आक्रमण अहिंसाके उनके अपने सिद्धान्तके साथ मेल नही खाता। वास्तवमें गाधीजी इतने दीर्घ-कालसे ब्रिटिश सरकारके प्रति मनमे निष्ठाका भाव पालते चले आ रहे थे और जब उनकी वह निष्ठा चकनाचूर हुई तो निस्सन्देह उन्होने उसे बड़ी कठोर भाषामे व्यक्त किया। भारत सरकार जिस आसुरी पद्धतिका प्रतिनिधित्व करती थी, उन्होने उसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी और देशकी जनताको उस दैत्याकार बुराईका ठीक-ठीक साक्षात्कार कराना आवश्यक माना। किन्तु उन्होने यह बात हर बार स्पष्ट की कि वे ब्रिटिश राष्ट्रसे नही बल्कि उसमे निहित आसुरी तत्त्वसे सघर्ष कर रहे है। उन्होने यह भी कहा कि इस तत्त्वको परास्त करनेका एकमात्र उपाय राष्ट्रीय जीवनमे शताब्दियोसे रूढ़ सारी बुराइयोको हटाकर उसका पुनर्गठन करना है। सरकारको सहयोग देनेसे हाथ खीच लेना इस कार्यक्रमका पहला ही कदम था, इसलिए वे श्रोताओ और समालोचकोसे बार-बार यह कहते रहे कि उन्होने जिस असहयोग आन्दोलनकी कल्पना की है वह वास्तवमे आत्मशुद्धिका आन्दोलन है।

यह एक बहुत ही कठिन काम था कि देशकी जनता एक ओर ब्रिटिश सरकारके दोषों और दूसरी ओर अपने बीच फैली हुई बुराइयोंको एक साथ ठीक-ठीक अनुभव कर पाती। लोगोके स्वभाव, स्वार्थ और दृष्टिकोण भी अलग-अलग थे। गाधीजीने सविनय अवज्ञा और असहयोगकी जो सैद्धान्तिक संगति थोरोके विचारोके आधारपर अपने मनमे स्पष्ट कर ली थी, उसे एकाएक तो देशकी पढी-लिखी जनता भी समझनेमे असमर्थ थी; किन्तु गाधीजीकी यह बडी खूबी थी कि वे अपने श्रोताओसे एकरस हो जाते थे और ऐसी भाषामे उनसे बातचीत करते थे जो उनकी पहुँचके बाहर न हो। अग्रेजी पढ़े-लिखे दक्षिण भारतीय, उत्तरके मुसलमान, गुजरातकी धार्मिक वैष्णव स्त्रियाँ, विश्वविद्यालयोके विद्यार्थी और शिक्षक, कोई भी क्यों न हो वे उनके दृष्टिकोणके अनुकूल सभीको अपनी बात समझानेमें समर्थ हो जाते थे। फलस्वरूप देखते-ही-देखते गाधीजी देशके शिक्षित-वर्ग और सामान्य जनताके मार्गदर्शक बन गये। गाधीजीने अपनी इस स्थितिका लाभ उठाकर काग्रेसको शक्तिशाली और क्रान्तिकारी परिवर्तन करनेका साधन बना डाला। नरसिंह चिन्तामण केलकरको २ जुलाई, १९२० के अपने पत्रमे उन्होने लिखा "मैंने काग्रेसको ऐसा प्रातिनिधिक स्वरूप देनेका प्रयास किया है

जिससे उसके द्वारा पास की गई माँगे माननी ही पडे।" भले ही कांग्रेसके सशोधित विधानसे यह उद्देश्य पूरी तरह सफल न हुआ हो, किन्तु विधानके संशोधन और अपने प्रति जनताकी जबरदस्त श्रद्धाके कारण गांधीजीने कांग्रेसका रूप ही बदल दिया।

गांधीजीका ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी दौरा उत्तर भारतसे शुरू हुआ। अमृतसर, लाहौर, रावलपिंडी, कराची और हैदराबाद (सिन्ध); एकके बाद दूसरी जगह उन्होंने लोगोंसे असहयोग आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेनेकी अपील की। असहयोगके उनके कार्यक्रममें युवराजके आगमनका बहिष्कार, स्कूल, अदालतें, कौंसिलें, पदवियाँ और तमगे आदि छुडाना तो था ही; इसमें विदेशी कपडे, सरकारको कर्जके रूपमें पैसे देने और फौजमें भरती होने तकका बहिष्कार शामिल था। खादी और स्वदेशीको अपनाना इसका विधायक पहलू था। मुस्लिम जनताको अहिंसाके सिद्धान्तपर राजी करना आसान नही था, इसलिए उन्होंने हिंसाके क्या-कुछ अशुभ परिणाम हो सकते हैं, यह बतलानेके साथ-साथ यह भी बतलाया कि निहत्थे रहकर मृत्युका सामना करना कितनी बड़ी वीरता है। उदाहरणके लिए उन्होंने रावलपिंडीमे कहा: "मुझे तो लगता है कि अगर आप तलवारका उपयोग करेंगे तो आपको पराजय ही मिलेगी। इतना ही नही, वह तलवार उलटकर आपके ही भाइयों और बहनोंकी गर्दनपर पड़ेगी . . .[इसलिए हम] सरकारसे बुलन्द आवाजमें कहेंगे कि चाहे हमें फाँसी दो या जेल, आपको हमारा सहयोग नही मिल सकता।"

मद्रासके अपने एक भाषणमें उन्होंने इससे कुछ अलग स्वरमें, लगभग एक द्रष्टाकी-सी वाणीमें कहा: "जिस क्षण भारत तलवारके सिद्धान्तको स्वीकार कर लेगा, उसी क्षण भारतीयके रूपमे मेरे जीवनका अन्त हो जायेगा। ऐसा इसलिए कि मै मानता हूँ, भारतको दुनियाको एक सन्देश देना है, और इसलिए कि मेरे विचारसे हमारे प्राचीन पुरुषोने सदियोंके अनुभवके बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि इस धरतीके किसी भी मनुष्यके लिए हिंसापर आधारित न्याय सच्ची चीज नही है, बल्कि सच्ची चीज आत्म-बलिदानपर आधारित यज्ञ और कुर्बानीसे प्राप्त किया गया न्याय है। इस सिद्धान्तमे मेरी अटूट आस्था है और अन्ततक रहेगी . . . मै अंग्रेजोंका विरोधी नही हूँ, ब्रिटेनका विरोधी नही हूँ, और न अन्य किसी सरकारका विरोधी हूँ। मै विरोधी हूँ असत्यका, विरोधी हूँ पाखण्डका, विरोधी हूँ अन्यायका। जबतक सरकार अन्याय करने-पर तुली हुई है, तबतक वह मुझे अपना शत्रु माने — प्रचण्ड शत्रु माने। . . . अगर मै इस प्रयासमे मर भी जाऊँ तो जीवित रहकर अपने सिद्धान्तसे डिग जानेकी अपेक्षा यह मृत्यु अधिक श्रेयस्कर है। . . . ईश्वर भारतकी जनताको सच्चा रास्ता दिखाये, सच्ची दृष्टि दे और उसे बलिदानके इस कठिन तथापि सुगम मार्गका अनुसरण करनेकी योग्यता और साहस दे।"

अपने इस विश्वासको 'खड्ग-बलका सिद्धान्त' नामक लेख लिखते हुए उन्होंने 'यंग इंडिया'में सशक्त और तुली हुई भाषामें पेश किया है: "जैसे पशु-जगत्का नियम हिंसा है वैसे ही मनुष्य जातिका नियम अहिंसा है . . इसलिए मैंने भारतके सामने आत्म-बलिदानका प्राचीन नियम रखनेका साहस किया है। सत्याग्रह और उसकी

शाखाएँ, अर्थात् असहयोग और सविनय अवज्ञा, ये सब-कुछ कष्ट-सहनके नियमके ही नये-नये नाम हैं। . . . हमारे अस्तित्वको सार्थक बनानेवाले इस नियमका अनुसरण करके कोई अकेला व्यक्ति भी अपने सम्मान, अपने धर्म और अपनी आत्माकी रक्षा करनेके लिए एक समूचे अन्यायी साम्राज्यकी समस्त शक्तिको चुनौती दे सकता है और उस साम्राज्यके पतन या पुनरुद्धारका कारण बन सकता है। . . . मैं चाहता हूँ कि भारतको इसकी प्रतीति हो जाये कि उसके पास एक आत्मा भी है जिसका कभी नाश नही हो सकता, और जो समस्त शारीरिक दुर्बलताओसे ऊपर उठकर समस्त संसारके सयुक्त भौतिक बलको चुनौती दे सकती है। . . . जिस समय भारत खड्ग-बलके सिद्धान्तको स्वीकार कर लेगा, वह मेरी परीक्षाकी घड़ी होगी। और इस कसौटीपर मैं खरा ही सिद्ध होऊँगा। मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओसे बँधा हुआ नही है। अगर उसमे मेरा विश्वास सच्चा और सजीव है, तो वह भारतके प्रति मेरे प्रेमकी सीमाओंको लाँघ जायेगा।" 'असहयोग एक धार्मिक आन्दोलन' नामक लेखमे उन्होने पाश्चात्य सभ्यताको 'तामसी शक्तियोंका प्रतिनिधि' और असहयोगको 'प्रकाशकी शक्ति' कहा है।

इसी विषयपर गाधीजी जब 'नवजीवन'में लिखते थे तो वे अपनी बात दूसरे प्रकारसे कहते थे। इसी प्रकार जब वे ऐसे श्रोताओके सामने बोलते थे जिनका धार्मिक दृष्टिकोण उनके जैसा था, तब भी वे अपनी बात इससे भिन्न स्वरमे कहते थे। रामायणमें वर्णित युद्धको वे सत्त्व और तमसके बीचका युद्ध कहते थे। वे कहते थे कि आत्मत्याग और आत्मानुशासनके द्वारा पवित्रीकृत राम सत्त्वके प्रतीक हैं तथा विलास और स्वेच्छाचारिताके पथपर चलनेवाला रावण तमसका प्रतीक है। ब्रिटिश सरकारको वे रावणराज्य कहते थे और अपने आदर्शके अनुरूप स्वराज्यको 'रामराज्य'। कुसंग व्यक्तिको गिरा देता है, इस देशकी यह परम्परागत भावना है। गांधीजी इस भावनाका ध्यान दिलाते और लोगोसे कहते कि भारतमें ब्रिटिश सरकारका बहिष्कार और उसके जरिये मिलनेवाले अनुग्रह और लाभको अस्वीकृत कर दिया जाना चाहिए। स्त्रियोको वे सीताका उदाहरण देकर समझाते कि सीताने अत्याचारी रावणके हाथो बड़ीसे-बडी भेटको भी तुच्छ समझकर ठुकरा दिया था। परम्पराका सहारा लेकर अपनी बातोंको इस प्रकार समझानेके कारण गाधीजीका वास्तविक प्रगतिशील दृष्टिकोण कभी-कभी धुंधला पड़ जाता था और कई लोग उन्हें जिस रूपमें देखना चाहिए, उस रूपमें नही देख पाते थे।

असहयोग आन्दोलनका सबसे अधिक बहस-तलब भाग रहा गाधीजीका विद्यार्थियोसे स्कूल और कालेज छोड़नकी बात कहना। गाधीजीका कहना था कि यदि उनकी बात मान ली जाये तो सरकारको हमारे ऊपर राज्य चलानेवाले कर्मचारी मिलना बन्द हो जायेगा और साथ ही गुलामीकी शिक्षाके अन्य भयंकर फलोसे भी हमे मुक्ति मिल जायेगी। उनका कथन था अंग्रेजो द्वारा रूढ़ शिक्षा-पद्धतिका जोर मस्तिष्कके प्रशिक्षणपर है और उसमें नैतिक प्रशिक्षणकी पूरी अवहेलना की गई है। इसके सिवाय शैक्षणिक संस्थाओमे व्याप्त वातावरण स्वतन्त्रता और ऋजुताके विकासमे

बाधक बनता है और सभी विषयोके अध्ययनसे, विशेषत. इतिहासके अध्ययनसे, विद्यार्थियोंका दृष्टिकोण अग्रेज और अंग्रजियतके पक्षमें बनता रहता है। अभिभावकोकी उपेक्षा करके भी गाधीजी विद्यार्थियोसे अपील किया करते थे कि १६ वर्षसे अधिक आयुके प्रत्येक विद्यार्थीको अपना जीवन-पथ चुननेकी स्वतन्त्रता है। अलबत्ता वे यह भी कहते थे कि जो विद्यार्थी सस्थाएँ छोडना चाहें, वे स्वय-अनुशासन और विनयशीलताको कदापि न छोडें। तथापि कुल मिलाकर इनका असर जवानोपर यही पडा कि वे अच्छी-बुरी हर तरहकी सत्ताके प्रति अपेक्षाकृत कम विनयशील हो गये। सरकारी शैक्षणिक संस्थाओके वहिष्कारके साथ-साथ गाधीजीने शिक्षाके क्षेत्रमें रचनात्मक प्रयत्न भी किया। अक्तूबर १९२० में अहमदाबादमें गुजरात विद्यापीठके नामसे एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालयकी स्थापना की गई। विद्यार्थियोकी सभामे विद्यापीठके कुलपतिकी हैसियतसे १५ नवम्बर, १९२० को दिया गया उनका उद्घाटन-भाषण शिक्षाके सम्बन्धमे उनके विचारोका एक सक्षिप्त किन्तु सम्यक् निरूपण है।

असहयोग आन्दोलन १ अगस्तको प्रारम्भ किया जाना था। स्वय गाधीजीने इसका श्रीगणेश "पत्र : वाइसरायको" (११४-१५) लिखते हुए उसके साथ ही जुलू तथा बोअर युद्धोंमे अपनी सेवाओके लिए दिये गये "कैसरे हिन्द" तथा अन्य पदक वापस करते हुए किया। दुर्भाग्यकी बात कहिए कि इसी दिन लोकमान्य तिलक हमारे बीचसे उठ गये। गाधीजीने तिलककी देशभक्ति और देश-सेवाका बखान करते हुए जो प्रेरणापूर्ण शब्द लिखे, वे १२०-२२ पृष्ठोपर देखे जा सकते है। तिलकके निधनके बाद गाधीजीके सिवा देशके सामने कोई और बडा पथप्रदर्शक नही बचा। उस वर्षके कलकत्ताके एक विशिष्ट कांग्रेस अधिवेशनमें असहयोगका कार्यक्रम स्वीकृत किया गया। हमारे इस खण्डका अन्त गांधीजीकी उस दृढ घोषणाके साथ होता है जो उन्होने असहयोग आन्दोलनसे सम्बन्धित सरकारके वक्तव्यके जवाबमें की थी: "परन्तु जहाँतक मै राष्ट्रके मनको जानता हूँ . . जबतक पश्चात्तापकी यह भावना उत्पन्न नही होगी . . . अहिंसात्मक असहयोग इस देशका धर्म बना रहेगा और अवश्य रहना चाहिए।"

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और सग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गाधी स्मारक निधि व सग्रहालय, भारतका राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इडिया), नई दिल्ली; महाराष्ट्र सरकार, बम्बई तथा भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इडिया सोसाइटी), पूना, श्री-छगनलाल गाधी, अहमदाबाद; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्रीमती राधाबेन चौधरी, कलकत्ता; 'ऑल अबाउट द खिलाफत', 'पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'फ्रीडम्स बैटल', 'बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाई पटेलने', 'बापुना पत्रो – ४. मणिबेन पटेलने', 'महादेवभाईनी डायरी', 'माई डियर चाइल्ड', 'स्पीचेज ऐंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी' पुस्तकोके प्रकाशको तथा निम्नलिखित समाचारपत्रो और पत्रिकाओके आभारी है : 'अमृतबाजार पत्रिका', 'गुजराती', 'ट्रिब्यून', 'नवजीवन', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'मधपुडो', 'यग इंडिया', 'लीडर', 'सर्चलाइट' और 'हिन्दू'।

अनुसंधान और संदर्भ सम्बन्धी सुविधाओके लिए अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय (मिनिस्ट्री ऑफ इन्फॉरमेशन ऐंड ब्रॉडकास्टिंग) के अनुसधान और सदर्भ विभाग (रिसर्च ऐंड रेफेरेंस डिवीजन), नई दिल्ली तथा श्री प्यारेलाल नय्यर हमारे धन्यवाद-के पात्र है। प्रलेखोकी फोटो-नकल तैयार करनेमे मदद देनेके लिए हम सूचना और प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी है।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोमें मिली है उसे अविकल रूपमें दिया गया है किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जों-की स्पष्ट भूलोंको सुधारकर दिया गया है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करनेमें अनुवादको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही अनुवादकी भाषा सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद अनुवाद किया गया है और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नामोंको सामान्यतः जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाये। जिन नामोंके उच्चारण सन्दिग्ध हैं उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधी-जीने किसी लेख, भाषण, वक्तव्य आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है, वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; परन्तु जहाँ वह उपलब्ध नहीं वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और जहाँ आवश्यक हुआ उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। शीर्षकके अन्तमें सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ सामग्री परिशिष्टोंमें दे दी गई है। साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ अन्तमें दी गई हैं।

चित्र-सूची

विषय-सूची

१. सत्यका मार्ग शूरोंके लिए ही है[1]

जुलाई १९२०

"सत्यका मार्ग शूरोके लिए ही है; इसमें कायरोका कोई काम नही है।"[2] इस कविताका मर्म मैं दिन-दिन अधिकाधिक समझ रहा हूँ। मै यह भी देखता हूँ कि इस बातमे जो विचार निहित है उसका आचरण केवल बड़े लोग ही करे, बालक या विद्यार्थी न करे, ऐसी बात नही है। सत्यके मार्गकी खोज और उसका अनुसरण बचपनसे ही किया जाये तभी बड़े होनेपर हम असत्यसे बच सकते है। जिस प्रकार हम किसी बीमारीकी उपेक्षा करे तो वह हमारे शरीरमे घर कर लेती है और असाध्य हो जाती है, उसी प्रकार यदि हम बचपनसे अपने भीतर असत्यको घर कर लेने दे तो आगे चलकर वह एक महाव्याधिका रूप ले लेता है। वह असाध्य-जैसा हो जाता है और हमे लगातार क्षीण करता रहता है। यही कारण है कि हम देखते है कि हमारे भीतर असत्य बढ रहा है।

इसलिए विद्यार्थी जीवनमे हमे जो ऊँचेसे-ऊँचा पाठ पढ़ना है, वह है — सत्यकी खोज और उसके अनुसार आचरण।

यह मार्ग शूरोका है क्योकि हिमालयपर चढनेवालोके लिए जिस पराक्रमकी जरूरत है सत्यकी खड़ी सीढ़ीपर चढ़नेमे उससे भी ज्यादा पराक्रमकी आवश्यकता है। इसलिए यदि हमे इस जन्ममे कुछ भी पुरुषार्थ करना है और अपना कल्याण करना है तो हमे सत्यको पहला स्थान देना चाहिए और उसमे अविचल श्रद्धा रखकर आगे बढ़ते जाना चाहिए। सत्य ही परमेश्वर है।

मोहनदास

[गुजरातीसे]

मधपुडो, १/२

१. यह लेख आश्रमकी हस्तलिखित पत्रिका मधपुडोके लिए लिखा गया था।

२. अठारहवीं शताब्दीके गुजराती कवि प्रीतमदासकी एक प्रसिद्ध कविताकी पहली पंक्ति।

२. पत्र : अखबारोंको

१ जुलाई, १९२०[1]

अभी-अभी 'इंडियन ओपिनियन' का अंक मिला और उसमे प्रकाशित दक्षिण आफ्रिकी आयोग[2] (साउथ आफ्रिकन कमीशन) की अन्तरिम रिपोर्ट[3] मैंने पढी। पढनेमें तो यह विवरण निर्दोष जान पडता है। यहाँतक कि प्रत्यावर्तन (रिपैट्रिएशन) शब्दका भी उसमे उपयोग नही किया गया है। यह आलेख बडे नपे-तुले शब्दोमें तैयार किया गया है। चूंकि वहाँ रहनेवाले भारतीयोने अभीतक विवरणमे सुझाई गई बातोका विरोध नही किया है, इसलिए मै भी आयोगके प्रस्तावका विरोध नही करना चाहता, तथापि इसका इरादा बिलकुल साफ है। आयोगने अपने इरादेको छिपानेकी कोशिश भी नही की है; उसने दक्षिण आफ्रिकाके गवर्नर महोदयसे एक ऐसे कर्मचारीकी नियुक्तिकी प्रार्थना की है जो भारतीयोके मन और उनके कामकी पद्धतिसे भली-भाँति परिचित हो और जो भारतीयोके सामने तत्काल भारत लौट जानेसे उत्पन्न लाभोको खूबीके साथ रख सकता हो। योजनाके पक्षमे यह कहा गया है कि भारतीय लौटनेके लिए उत्सुक है इसलिए यह योजना उन्हे सुविधा देनेकी दृष्टिसे तैयार की गई है। हमे तो ऐसा लगता है कि उत्सुकता केवल आयोगको ही है और वह हमारे परेशान देशवासियोके सामने लौटनेके लाभोंको रखकर उन्हे इस दिशामें प्रेरित करना चाहता है। तथापि हम सावधान रहकर देखेंगे कि योजनापर अमल किस तरह किया जाता है। इसमें किसी भी प्रकारकी जबरदस्ती नही होनी चाहिए और निवासके अधिकारको भी समाप्त नही किया जाना चाहिए। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि इस अन्तरिम रिपोर्टमें निवासके अधिकारको छीननेकी कोई बात नही है। किन्तु कहा नही जा सकता कि नि:शुल्क वापसीके लालचमे लौटनेवाले गरीब भारतीयोसे कौन-कौनसी शर्तें मंजूर नही करा ली जाती। यदि योजनाका मशा वर्तमान परेशानीसे राहत देने-दिलाने-का ही है, तो [आशा है] सघ-सरकार केवल उन्हीकी वापसीकी सुविधा करेगी जो दक्षिण आफ्रिकामें अपने पाँवपर खडे होनेमें असमर्थ है; और इस सुविधाको देते हुए वह उनके निवासके अधिकार भी नही छीनेगी। यदि इस मूल्यवान अधिकारको

१. यह पत्र एसोसिएटेड प्रेस ऑफ़ इंडिया द्वारा इस तारीखको प्रचारित किया गया था। देखिए बॉम्बे क्रॉनिकल, २-७-१९२० ।

२. दक्षिण आफ्रिकी सरकारने इस आयोगकी नियुक्ति दक्षिण आफ्रिकामें एशियाइयोंके व्यापार और जमीनसे सम्बन्धित प्रश्नकी जाँचके लिए की थी। भारत सरकारकी ओरसे सर बेंजामिन रॉबर्ट्सनने आयोगकी कार्यवाहीमें हाथ बँटाया था ।

३. रिपोर्टमें दक्षिण आफ्रिकासे भारतीयोंके स्वयस्फूर्त प्रत्यावर्तनकी योजना प्रस्तुत की गई थी और उसपर भारतीय राहत विधेयक, १९१४की धारा ६ के अन्तर्गत अमल किया जाना था। देखिए "रहस्य-पूर्ण", १४-७-१९२० ।

छोड़ देनेका आग्रह किया गया तो उसका यही अर्थ होगा कि दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले हमारे कुछ देशवासियोकी अवस्थाका अनुचित लाभ उठाया जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७–७–१९२०

३. पत्र : न० चि० केलकरको[1]

कांग्रेस[2]

बम्बई–७
२ जुलाई, [१९२०][3]

प्रिय श्री केलकर,[4]

आपने उत्तर देनेमे बडी तत्परता दिखाई; उसके लिए धन्यवाद।

मैं . . .वापस भेज रहा हूँ . . आप उसे [अपने पास] रख सकते हैं।

मैं आपके सुझावको ध्यानमे रखते हुए [कांग्रेसके] मान्य सिद्धान्तका कोई दूसरा पर्याय सोच निकालूंगा। निस्सन्देह, हम लोगोको उसे अधिकसे-अधिक व्यापक बनाना चाहिए।

मैं इस बातसे सहमत हूँ कि कांग्रेस समितियोकी सदस्यताके लिए हमे कोई शुल्क निर्धारित करनेकी जरूरत नही। शायद आप एक न्यूनतम शुल्क रखनेकी बातसे सहमत होंगे।

तालुका और जिला समितियाँ बनानेकी विधि निर्धारित कर देना वांछनीय है —आपके इस सुझावको मैं स्वीकार करता हूँ।

अगर आप अति व्याप्तिका दोष बचाना चाहते हैं और साथ ही कांग्रेस संविधानको काफी सुसंगठित और वैज्ञानिक रूप भी देना चाहते हैं तो आप देखेंगे कि विभिन्न संस्थाओंको इससे सम्बद्ध करनेकी गुंजाइश नही है। अगर कोई संस्था इसमे अपना प्रतिनिधित्व चाहे तो उसे विभिन्न जमातोंमे से किसी-न-किसीमे अवश्य शामिल होना पड़ेगा।

आप चाहे १,००० की सीमाको स्वीकार करें या उससे आगे जायें, मेरे खयालसे ध्यान यह रखना है कि सदस्योकी संख्या इतनी ही रखी जाये जिससे काम करनेमे

१. इस पत्रकी दफ्तरी नकलको कई जगहसे दीमकने खा डाला है। इस तरह जो शब्द टूट गये हैं, उन्हें अंग्रेजीमें अनुमानसे पूरा कर दिया गया है।

२. गांधीजीकी लिखावटमें "कांग्रेस" शब्द इस बातका संकेत करता है कि यह पत्र किस फाइलमें रखा जाना था।

३. पत्रमें जिस संविधानकी चर्चा है, वह १९२० में स्वीकृत किया गया था। देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ५३०।

४. नरसिंह चिंतामण केलकर, (१८७२–१९४७); महाराष्ट्रके राष्ट्रवादी नेता; तिलकके अनुयायी और उनके जीवन-चरित्र लेखक, मराठाके सम्पादक।

बाधा न पड़े। इसके बिना कांग्रेस आजकी ही तरह एक इतनी बडी सस्था बनी रहेगी कि उसे सँभालना मुश्किल होगा और हमारा उतना प्रभाव न होगा जितना कि अन्यथा हो सकता है। सविधानका मसविदा तैयार करते समय मैंने कांग्रेसको ऐसा प्रातिनिधिक स्वरूप देनेका प्रयास किया है जिससे उसके द्वारा पेश की गयी माँगे माननी ही पड़े। इसलिए मैं आपसे निवेदन करूँगा कि सदस्य-सख्या सीमित करनेके बारेमें आप अपनी रायपर पुन. विचार करे।

प्रतिनिधियो (डेलीगेटों) द्वारा देय शुल्कके सम्बन्धमें आपने जो रकम सुझाई है वह मुझे स्वीकार है।

मै इस बातसे भी सहमत हूँ कि अन्य शुल्क कांग्रेस निर्धारित न करे।

अध्यक्ष चुननेके नियम पूर्ववत् रखे जायें। मै आपको यही बात लिखना चाहता था परन्तु तबतक मेरा पत्र जा चुका था। लेकिन सभापतिके चुनावके अवसरपर जो भारी-भरकम लच्छेदार भाषण दिये जाते है, उनकी परम्पराको मै समाप्त कर देना चाहूँगा। स्वागत समितिके अध्यक्षके अतिरिक्त केवल एक-दो सबसे अच्छे वक्ता यथा-सम्भव कमसे-कम शब्दोमे अध्यक्षका परिचय दे दे।

आपने कोषाध्यक्षके बारेमे तथा ब्रिटिश कांग्रेस कमेटीको पैसा देनेके बारेमे जो सुझाव दिये है, उन्हे भी मै मूल्यवान मानता हूँ।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्योंके चुनावोंके सम्बन्धमे आपने जो सुझाव दिया है, उसका औचित्य मेरी समझमे नही आया है।

प्रस्तावका मसविदा और सुझाव बिलकुल दुरुस्त है।

आपका समय . . . बिलकुल आपके ही योग्य है और उचित है।

प्रदर्शनवाला पहलू मुझे पसन्द नही। कांग्रेसका पूरा अधिवेशन ऐसा होना चाहिए कि वह अच्छी तरह विचार-विमर्श भी कर सके और उसका प्रदर्शनात्मक मूल्य भी हो। अगर आप इन दोनोंको अलग कर देंगे तो प्रदर्शनका महत्त्व समाप्त हो जायेगा। अधिवेशनमे जो विचार-विमर्श होता है दर्शकगण उसीको सुननेके लिए टिकट खरीद-कर अन्दर आते है। यहाँ हम इग्लैडकी कॉमन्स सभाका अनुकरण कर सकते है। वहाँकी दर्शक दीर्घाकी याद कीजिए। जब हम प्रतिनिधियोकी सख्याको सीमित कर देंगे तब उन्हे सावधानीपूर्वक रस्सियोके घेरेके अन्दर रखकर दर्शकोके समुदायसे पृथक कर सकेंगे। आज तो हमारा पंडाल भी कामकी दृष्टिसे उतना ही अव्यवस्थित होता है जितनी कि हमारी कार्यवाही। आप अपने कार्यक्रममे कामपर जोर दें, उसे इसी दृष्टिसे योजित करे तो आप धीरे-धीरे एक ऐसा पंडाल बना सकेंगे जो अधिवेशनकी नई आवश्यकताओको देखते बिलकुल उपयुक्त और काफी प्रभावकारी हो तथा जिसे बनानेमे आजकी अपेक्षा खर्च भी कम हो।

मेरा खयाल है कि मैंने आपके द्वारा उठाये गये प्रत्येक मुद्देपर अपने विचार प्रकट कर दिये है। आशा है कि अन्य दोनो सज्जन[1] भी आपकी-जैसी तत्परतासे ही काम लेंगे।

१. आयंगर और सेन; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ५३०-३१।

मेरी भद्दी लिखावटके लिए क्षमा करें। महादेव देसाई[1] बिजौलिया गया हुआ है; और मेरे दूसरे सहायकके घरमे मातम हो गया है।[2]

मो० क० गांधी

पेन्सिलसे लिखे गये अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७४२० आर०) से।

४. असहयोग

यह आशा करनेका कोई कारण नही है कि पहली अगस्तसे पहले खिलाफतके प्रश्नका सन्तोषजनक हल निकल आयेगा अथवा समझौतेकी शर्तोकी फिरसे जाँच करनेका वचन दिया जायेगा; इसलिए हमें असहकार करनेकी तैयारी करनी चाहिए। समिति उसकी तैयारी कर रही है। इस बीच निम्नलिखित बातें की जा सकती हैं:

१. सरकार कर्ज लेनेकी जो नई योजना घोषित करनेवाली है उसके अन्तर्गत उसे कर्ज न दें।

२ सैनिक अथवा असैनिक नौकरीमे भरतीके लिए नाम दर्ज न करवायें।

मेसोपोटामियाको कब्जेमे रखनेका सरकारको कोई अधिकार नही है। मेन्डेटका अर्थ सच कहो तो कब्जा करनेके अतिरिक्त और कुछ नही है। और फिर इस आशयकी खबरे समाचारपत्रोंमे प्रकाशित होती रहती हैं कि अरब-जनता वहाँ भारतीय सिपाहियोंको देखना भी नही चाहती। ऐसा हो या न हो, लेकिन प्रत्येक भारतीयका कर्त्तव्य है कि वह ऐसी नौकरीमे भरती न हो। मेसोपोटामियामे जो लोग जाते हैं वे तो पैसेके लिए ही जाते हैं। यदि हम और कुछ नही कर सकते तब भी हमे वहाँ जाना तो बन्द ही कर देना चाहिए।

अरबोपर जोर-जबरदस्तीसे राज्य चलानेका हमारा काम नही है; इसके अतिरिक्त जो लोग स्वयं परतन्त्र नही रहना चाहते उन्हे दूसरोंको गुलाम बना रखनेकी इच्छा तो नही ही करनी चाहिए।

इसलिए सरकार द्वारा जारी की जानेवाली नई कर्ज-योजनामे पैसा देना तथा सब सरकारी नौकरियोंमे भरती होना—जिसमे मेसोपोटामिया आदि स्थानोपर जाना भी शामिल है—हमें आजसे बन्द कर देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त हमे उम्मीद है कि पहली अगस्तसे निम्नलिखित बातोंपर अमल किया जायेगा:

१. पदवियाँ और सम्मानके पदोंका त्याग।

२. विधान परिषदोंका बहिष्कार।

३. माँ-बापका अपने बच्चोंको सरकारी पाठशालाओसे उठा लेना।

१. महादेव देसाई (१८९२-१९४२); २५ वर्षतक गांधीजीके निजी सचिव।

२. पत्रका यह अनुच्छेद गाधीजीकी लिखावटमें है।

४. वकीलों द्वारा अपनी वकालत बन्द करके जनताको अपने झगड़े आपसमें निबटा लेनेकी सलाह देना।

५. सरकारी समारोह, भोज आदिका निमन्त्रण मिलनेपर विनयपूर्वक सिर्फ असहकारका कारण बताकर उसे अस्वीकृत कर देना।

यदि खिलाफतके प्रश्नका कोई समाधान न निकला तो सम्भवतया पहली अगस्तसे इन बातोंपर अमल किया जाना है।

पंजाबके सम्बन्धमें यदि न्याय न मिला तो लाला लाजपतरायने[1] विधान परिषदोंके बहिष्कारके रूपमें असहकारकी घोषणा की है। इसलिए अब हम यह मान लेते हैं कि खिलाफतके मामलेमें पंजाब भी शामिल हो गया है। जिस तरह खिलाफतके सम्बन्धमें मुसलमानोंको अग्रणी होना चाहिए उसी तरह पंजाबके मामलेमें पंजाबियोंको आगे आना चाहिए। यदि पंजाबी असहकार न करें तो कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानके अन्य भागोंके लोगोंका असहकार करना उचित नहीं है।

हम यह आशा करेंगे कि लालाजी विधान परिषदोंका परित्याग करके ही चुप नहीं बैठ रहेंगे। जबतक हमें विजय प्राप्त नहीं होती तबतक हमें असहकारके दायरेको बढ़ाते जाना होगा तथा हमने जो चार कदम उठाये जानेकी बात की थी, उन्हें उठानेके लिए हमें तैयार रहना चाहिए; वैसे मेरा विश्वास यह है कि विधान परिषदोंके बहिष्कारमें समस्त राष्ट्रके भाग लेनेपर ही हमें विजय प्राप्त होगी।

विधान परिषदोंके [बहिष्कारके] सम्बन्धमें तीन मत व्यक्त किये गये हैं —

१. असहकार [आन्दोलन] किया ही न जाये।

२. विधान परिषदोंमें चुने जानेपर असहकार शुरू किया जाये।

३. विधान परिषदोंका त्याग ही न किया जाये।

पहला मत तो असहकारके एकदम विरुद्ध ही है। दूसरे मतकी जाँच करना बाकी है। मेरी तो यह मान्यता है कि विधान परिषद्में दाखिल होनेके लिए अथक परिश्रम करके फिर उसमें भाग न लेना बेकारकी मेहनत है। यह धन और समयकी बरबादी है। मेरी समझमें नहीं आता कि इसका क्या अर्थ हो सकता है। प्रश्न है कि यदि हम नहीं जाते तो अयोग्य व्यक्ति जायेंगे तब क्या होगा? यदि अयोग्य व्यक्ति विधान परिषदोंमें गये तो सरकार जाग्रत जनतापर शासन चलानेमें सफल नहीं हो सकेगी तथा उसकी हँसी होगी। इसके अलावा चुनावोंके झमेलेमें पड़नेसे बहिष्कारके शुद्ध स्वरूपको अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। हमारा कर्त्तव्य तो यह है कि जनमतको इस ढंगसे प्रशिक्षित करना चाहिए जिससे किसी भी व्यक्तिका जनताकी ओरसे विधान परिषदोंमें जाना असम्भव हो जाये। जबतक राजा और प्रजाके बीच सद्भावनाका वातावरण न हो तबतक उसकी सभामें उपस्थित होनेका अर्थ उसकी सत्ताको और अधिक दृढ़ करना है। यदि शासन जनताके किसी भी भागको अपने साथ लेनेमें सफल नहीं हो पाता तो वह राज्य नहीं चला सकता। इससे यह सिद्ध

१. १८६५–१९२८; समाज-सुधारक तथा पत्रकार; १९२० के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके कलकत्ता अधिवेशनके अध्यक्ष; लोक सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ पीपुल्स सोसायटी) के संस्थापक।

होता है कि जनतामें से जितने कम लोग राजाके साथ सहयोग करते हैं उसकी सत्ता उतनी ही कम होती है। इसलिए जो असहकारको स्वीकार करते हैं उनके लिए विधान परिषदोंका त्याग करना ही सच्चा और सीधा रास्ता है और मुझे उम्मीद है कि जो विधान परिषदोंमें दाखिल होनेकी भाग-दौड़में पड़ गये हैं, वे फिलहाल इस कार्यको छोड़कर, इससे अधिक उपयोगी कार्य, खिलाफत और पंजाबके सम्बन्धमें लोकमतको शिक्षित करनेमें लग जायेंगे और योग्य लोकसेवा करके विधान परिषदोंमें जानेका जब समय आयेगा तब वे उसके अधिक योग्य बन चुकेंगे।

अब रहे दो अन्य सुझाव, जिनके सम्बन्धमें कड़ी टीका होनेकी सम्भावना है। मेरा सुझाव है कि वकीलोंको फिलहाल अपनी वकालत बन्द कर देनी चाहिए तथा मुकदमा करनेवालों अथवा जो मुकदमेमें फँस गये हैं उन लोगोंको अदालतका त्याग करके पंच द्वारा अपने झगड़ोंका निपटारा कर लेना चाहिए। मेरी दृढ़ मान्यता है कि प्रत्येक सरकार अपने पशुबल अर्थात् सैनिक बलपर आवरण डाल दीवानी तथा फौजदारी अदालतोंके द्वारा जनतापर अपना अधिकार स्थापित करती है। क्योंकि पशुबलसे डरा-धमकाकर जनताको वशमें करनेकी अपेक्षा अदालतों आदिके मीठे प्रलोभनोंसे जनताको प्रलोभित कर उनकी मार्फत उसे पराधीन करनेसे जनता अपने आप वशमें हो जाती है — यह सस्ता और सहल साधन है तथा राज्यकर्त्ताको कीर्ति प्रदान करनेवाला है। यदि लोग अपने दीवानी झगड़ोंको घर बैठे ही निबटा लें तथा वकील अपने निजी स्वार्थको भूलकर प्रजाके हितार्थ अदालतोंका त्याग कर दें तो जनता एकदम उन्नति कर सकती है। इसलिए हालाँकि मैं जानता हूँ इस सुझावके लिए मेरी आलोचना होगी तथापि इसको [आपके] सम्मुख रखते हुए मुझे तनिक भी हिचकिचाहट नहीं हो रही है।

जो बात वकीलोंके सम्बन्धमें लागू होती है वही बात पाठशालाओंके सम्बन्धमें भी चरितार्थ होती है। खिलाफत तथा पंजाबके समान महत्त्वपूर्ण मामले न भी हों, तब भी जहाँतक बने वहाँतक मैं अवश्यमेव आजकी पाठशालाओंको विद्यार्थियोंसे रहित कर दूँ तथा जिन बच्चोंपर भारतका भविष्य निर्भर करता है उन बच्चोंको उनके योग्य शिक्षा दूँ। लेकिन इस समय पाठशालाएँ खाली करनेके लिए कहनेके पीछे मेरा उद्देश्य दूसरा है। मैं पाठशालाएँ खाली कराके सरकारसे कहना चाहता हूँ कि जबतक पंजाब और खिलाफतके सम्बन्धमें न्याय नहीं किया जाता तबतक तुम्हारे साथ सहयोग करनेकी बातको मैं गलत मानता हूँ। मैं जानता हूँ कि इस सुझावकी बहुत हँसी उड़ेगी लेकिन जैसे-जैसे समय बीतेगा वैसे-वैसे जनताको पता चलेगा कि यदि हम लोग सरकारकी पाठशालाओंमें अपने बच्चे न भेजें तो उसके लिए शासन-प्रबन्ध चलाना असम्भव हो जाये। हम संसार-भरमें जिस ओर दृष्टिपात करेंगे हमें पता चलेगा कि वहाँ बालकोंको इस तरहकी शिक्षा दी जाती है जिससे शासन-प्रबन्धको सहलसे-सहल तरीकेसे चलानेमें मदद मिल सके। जहाँ सरकारका उद्देश्य केवल जनताका हित साधन होता है वहाँ शिक्षा-पद्धति भी वैसी ही होती है। जहाँ सरकार मिश्रित होती है — जैसे हिन्दुस्तानमें — वहाँ शिक्षा भी बुद्धिभेद उत्पन्न करनेवाली तथा हानिकारक

होती है। मेरे उपर्युक्त सुझावका उद्देश्य युवकोंको शिक्षासे वंचित करना नही है। एक पलके लिए भी मैं लोगोको शिक्षासे वंचित नही करना चाहता लेकिन मेरी मान्यता है कि पाठशालाओंको खाली करनेके बावजूद हम लोगोकी शिक्षाकी अच्छी तरह देख-भाल कर सकते हैं। मेरे उपर्युक्त दोनो सुझाव गम्भीर है, यह मैं जानता हूँ। पाठकोसे उसे एकदम समझ लेनेकी उम्मीद भी करता हूँ। इन विषयोपर मैं समय-समयपर चर्चा करूँगा तथा अपनी दलीलोंको जनताके सन्मुख प्रस्तुत करूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४–७–१९२०

५. खिलाफत और स्वदेशी

पठान आलमखाँ जीवखाँ दामनगरसे[1] लिखते है :[2]

उक्त पत्रको पढकर सचमुच हर्ष होता है। खिलाफत आन्दोलनका असर स्वदेशीकी उन्नतिमे सहायक होगा यह तो स्पष्ट दिखाई पड़ता है। खिलाफतका निर्णय होने तक यूरोपीय मालका उपयोग न करनेकी जो प्रतिज्ञा ली गई है, उसे मैं ठीक नही मानता। खिलाफतके बारेमे न्यायोचित निर्णय लिया जाये तो भी मुसलमानोको यूरोपीय मालका उपयोग नही करना चाहिए। यूरोपीय मालका इस्तेमाल न करना ही पर्याप्त नही है; अपितु विदेशी अर्थात् जापानी मालका भी बिलकुल इस्तेमाल नही किया जाना चाहिए। स्वदेशीकी प्रवृत्ति हमेशाके लिए है। यूरोप हमारे साथ चाहे कितना भी न्याय क्यो न करे, हिन्दुस्तानको पूर्ण न्याय दिलवानेकी खातिर हमारा धर्म है कि हम हिन्दुस्तानमें तैयार होनेवाली वस्तुओंका ही इस्तेमाल करे। अतएव चरखे और करघेकी प्रवृत्तिमें ही स्वदेशीकी उन्नति निहित है। लाखों मुसलमान भाइयोने कातना छोड दिया, लाखों मुसलमान बुनकर बुनना छोड बैठे। हिन्दू तथा मुसलमान स्त्रियाँ, हिन्दू और मुसलमान बुनकर यदि कातने और बुननेका काम हाथमें ले ले तो थोड़े अर्सेमे ही देशकी जरूरतका कपडा देशमे ही तैयार होने लगे। इसलिए मैं विशेष रूपसे स्त्रियोका ध्यान दामनगरके उदाहरणकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। किन्तु जबतक पुरुप उनके लिए चरखेका प्रबन्ध नही कर देते तथा धुनियेसे रुई धुनवाकर पूनियाँ नही बनवा देते तबतक स्त्रियाँ क्या कर सकेगी? अतएव मैं आशा रखता हूँ कि प्रत्येक गाँवमे कुछ ऐसे परिश्रमी और अध्यवसायी पुरुष सामने आयेंगे जो रुई प्राप्त करके उसे पिंजवाकर और उसकी पूनियाँ बनवाकर कातनेके लिए तत्पर स्त्रियोको मुहैया कर देगे। इस कार्यमें कुछ दोष नही है। हमने अभी गत सप्ताह ही यह बताया

१. सौराष्ट्रमें।

२. उक्त पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। उसमें कहा गया था कि ईदके दिन लगभग तीन सौ मुसलमानोंने प्रतिज्ञा ली है कि वे विदेशी मालका तबतक उपयोग नहीं करेंगे जबतक खिलाफतके प्रश्नका कोई सन्तोषजनक हल नहीं निकल आता।

था कि ढसा[1] गाँवके स्त्री-पुरुष कातते है, बुनते हैं, इतना ही नही बल्कि मुख्यतया वही तैयार होनेवाले कपड़ेका उपयोग करते है और बचे हुए कपडेका निर्यात भी पास के दूसरे गाँवोमे करते हैं। ढसा गाँवमे भुखमरी नही है; हो भी नही सकती। प्रत्येक गाँवमे अल्प प्रयाससे ऐसी ही व्यवस्था कायम हो सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४–७–१९२०

६. 'नवजीवन' को कैसे चलाना चाहिए?

'नवजीवनको अपना माननेवाले' [एक पत्र-लेखक] अपना नाम-पता दिये बिना लिखते हैं:[2]

मैंने अनेक बार लिखा है कि उत्तरदायित्वपूर्ण पत्र लिखनेवाले किसी भी व्यक्तिको गुमनाम रहकर नही लिखना चाहिए। मुझे लगता है कि पत्र लिखनेकी ऐसी आदत हम लोगोंमें अन्य देशोंके लोगोंकी अपेक्षा अधिक है। हम अपने [नामसे अपने] विचारोंको अभिव्यक्त करनेमें डरते हैं, संकोच करते हैं। सच्चे विचारोको प्रगट करनेमें संकोच किस बातका? काहेका भय? मेरी सलाह है कि अपनेको अज्ञात रखकर पत्र लिखनेकी आदतको त्याग देना चाहिए। जिन विचारों अथवा जिस भाषाका उत्तरदायित्व उठानेके लिए हम तैयार न हों उन विचारोको अभिव्यक्त करने अथवा वैसी भाषाका प्रयोग करनेका हमे अधिकार नही है।

उपर्युक्त पत्र हमे जिस रूपमें प्राप्त हुआ है हमने उसे लगभग उसी रूपमे प्रकाशित किया है। यदि पत्र-लेखकने अपने हस्ताक्षर दिये होते तो भाषामे जो कटुता है उसमे कुछ फर्क पड़ जाता। तब फिर 'नवजीवन' को अपना माननेका दावा करनेवाला व्यक्ति उपर्युक्त विचारोंको दूसरे ढंगसे ही भाषाका जामा पहनाता। इसी विचारको एक मित्रने मेरे सम्मुख प्रस्तुत किया था लेकिन उसकी शिकायतमे विवेक और माधुर्य था। 'नवजीवनको अपना माननेवाला' पत्र-लेखक चाहता तो अधिक विनयशील भाषाका प्रयोग कर सकता था। जो विचार हमें सत्य जान पड़ें वे यदि लोककल्याणार्थ हों तो उन्हे व्यक्त करना हमारा कर्त्तव्य है। लेकिन विवेकका त्याग करनेका अधिकार हमे कदापि नही है।

अविवेक क्रोधका सूचक है। जनता इस समय क्रोधमें है। वह क्रोधाग्निमे जल रही है, और इसलिए उसे कुछ भी रुचिकर नही लगता। यह मिथ्या धारणा उसके मनमे

१. सौराष्ट्रमें; २७–६–१९२० के नवजीवनमें द० बा० कालेलकर तथा नरहरि परीख द्वारा की गई इस गाँवकी यात्राका विवरण प्रकाशित किया गया था।

२. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है। पत्रमें शिकायत की गई थी कि नवजीवन अपने उन उद्देश्योंकी कसौटीपर पूरा नहीं उतरा जिनका उसने वचन दिया था। बल्कि सच तो यह है कि उसका स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है।

घर कर गई है कि अपने दुःखका निवारण कर सकने योग्य कोई भी बात करनेकी उसमे शक्ति नही है। इससे यदि कोई उनका गम गलत कर दे अर्थात् क्रोधके नशेके स्थानपर दूसरा कोई नशा प्रस्तुत कर दे तो वह उसे लपककर लेती है। यही कारण है कि आजकल समाचारपत्रोमे ज्यादातर मसालेदार लेख देखनेमे आते है। इसके अतिरिक्त पढनेका मर्ज भी बढ गया है। और लोगोंको लम्बे, लच्छेदार लेख पढनेकी आदत पड़ गई है+ ये सब नशेके चिह्न हैं। यूरोपमें अनेक लोगोको ऐसी आदत हो जाती है, वे पल-भरके लिए भी पुस्तक नही छोड सकते। दिन रात ज्ञानवार्ता नही पढी जा सकती, इसीसे 'शिलिंग शॉकर' का उपद्रव बढ गया है। 'शिलिंग शॉकर' अर्थात् रोमाचित कर देनेवाला अठन्नीका उपन्यास। मर्यादापूर्ण भाषामे लिखे गये उपन्यास हमे रोमाचित नही करते। फलत· कानोमे कीडे पैदा कर देनेवाली भाषामे असम्भव कहानियाँ लिखकर सिर्फ धन कमानेकी खातिर लेखक और प्रकाशक व्यक्तियोको भरमाते हैं तथा लाखो स्त्री-पुरुषोंको ऐसे 'शिलिंग शॉकर' पढनेकी व्याधि ही हो गई है। इस समय ऐसी व्याधिसे घिर जानेका भय हमारे सम्मुख भी आ खडा हुआ है।

'नवजीवन' का एक प्रयत्न तो इस जोखमसे बचाना भी है। 'नवजीवन' अपने इस उद्देश्यसे विचलित नही होगा, इसलिए उपर्युक्त पत्र-लेखकको धीरज रखना होगा।

तथापि यह बात मुझे स्वीकार करनी पड़ेगी कि उसकी शिकायतमे कुछ सार अवश्य है। अधिक सुन्दर लेख देनेकी, अधिक सुचारु ढंगसे प्रकाशित करनेकी हमारी जो आशा थी वह पूर्णत. फलीभूत नही हुई है। पैसा होनेपर भी हमे ऐसी बड़ी मशीन नही मिल सकी है जिसपर बडी संख्यामें प्रतियाँ निकाली जा सके। धनसे प्रामाणिकता भी नही जुटाई जा सकती। अर्थात् प्रामाणिक कार्यकर्त्ताओको पाना कठिन है। कागजके भाव बहुत तेज हो गये हैं जबकि 'नवजीवन' आरम्भ करते समय इस बातकी आशा थी कि कागजके भाव गिर जायेंगे। ये सब अनिवार्य कठिनाइयाँ हैं।

तथापि 'नवजीवन' को लोगोके सम्मुख रखते हुए हमे तनिक भी सकोच नही होता। इसमे एक भी वाक्य बिना सोचे-समझे नही लिखा जाता। 'नवजीवन' के उद्देश्यको जो लोग अपने मनमें याद रखेंगे वे लोग तबतक 'नवजीवन' का परित्याग नही करेंगे जबतक 'नवजीवन' अपने उद्देश्यपर दृढ रहेगा। उद्देश्य है, दैनन्दिन घटनाओपर नया प्रकाश डालना; लोगोके सम्मुख अनुभूत और नवीन विचारोको प्रस्तुत करना और जो सत्य जान पडे उसे सरकार अथवा जनताका भय माने बिना व्यक्त करना। इस प्रतिज्ञासे 'नवजीवन' तनिक भी विचलित नही हुआ है। इसी कारण वह धूलिसात नही हुआ है और इसीलिए वह किसीका मोहताज भी नही है। उसके मार्गमें अनेक कठिनाइयाँ है, जिन्हे पार करनेका वह प्रयत्न करता रहता है और करता रहेगा।

प्रकाशन सम्बन्धी त्रुटियाँ होते रहना शोचनीय है। अनेक बार हम जो लिखना चाहते हैं उसे लिखनेका समय नही मिलता और फिर उससे कुछ घटिया सामग्री देनी पडती है। लेकिन इस कारण कोई यह नही कह सकता कि जिस उद्देश्यसे प्रेरित हो 'नवजीवन' आरम्भ किया गया था उस उद्देश्यकी पूर्ति नही होती। 'नवजीवन' के

पृष्ठ कम हो गये हैं,[1] यह बात भी खेदजनक हो सकती है; लेकिन कागजकी तगीके दिनोमे यदि अधिक पृष्ठ न दिये जा सकें तो 'नवजीवनको अपना माननेवाले' पत्र-लेखक-जैसे व्यक्तियोके निकट यह बात क्षम्य होनी चाहिए। किन्तु पृष्ठ-सख्या कम होनेसे विषय-सामग्रीके कम हो जानेकी कल्पना करना जरूरी नही हैं। पृष्ठोको कम करनेके बाद लेखोंको अधिक संक्षिप्त रूपमें लिखनेका प्रयत्न किया गया है, किन्तु विषय-वस्तुमे तनिक भी कमी नही की गई है।

इस सबके बावजूद यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि उक्त पत्र 'नवजीवन'का बचाव करनेकी खातिर ही प्रकाशित नही किया गया है; बल्कि इसका उद्देश्य यह है कि अन्य दूसरे लोग 'नवजीवन'में जो दोष देखते हों, तथा जो उसकी आलोचना करना चाहते हो वे विवेकका आँचल छोड़े बिना साहसपूर्वक अपना नाम प्रकट करते हुए दोषदर्शन और आलोचना करे। 'नवजीवन'की प्रतिष्ठा स्पष्टत उसका बचाव करनेसे नही टिकेगी, वह तो तभी टिकेगी जब वह हर तरह योग्यता प्राप्त करेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-७-१९२०

७. तार: मुहम्मद अलीको

[७ जुलाई, १९२० के पूर्व]

श्री गांधीने निम्नलिखित तार श्री मुहम्मद अलीको[2] लन्दन भेजा है:

प्रभावशाली व्यक्तियोके हस्ताक्षरोसे[3] युक्त मुसलमानोका प्रार्थनापत्र[4] वाइसरायके पास पहुँच गया है जिसमे पूरी नम्रता प्रदर्शित करते हुए भी अपनी बातपर दृढ आग्रह। प्रार्थनापत्रमें घोषणा की गई है अगर शान्ति-सधिकी शर्तोंमें परिवर्तन नही किया जाता या यदि वाइसराय महोदय खिलाफत आन्दोलनका नेतृत्व नही करते तो १ अगस्तसे असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ होगा। मैंने अपनी ओरसे एक अलग प्रार्थनापत्र[5] दिया है जिसमे इस आन्दोलनसे अपने सम्बन्धोपर प्रकाश डाला है और अपने-आपको इसमें पूरी तरहसे शामिल बताया है।

१. पृष्ठोंकी सख्या पहले १६ से घटाकर १२ कर दी गई और फिर सिर्फ ८ ही रह गई थी। देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ७६-७८ तथा ३८०-८१।

२. १८७१-१९३१; वक्ता, पत्रकार और राजनीतिज्ञ; १९२० में इंग्लैंड जानेवाले शिष्टमण्डलका नेतृत्व किया; १९२३ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

३. हस्ताक्षरकर्त्ताओंमें याकूब हसन, मजहरुल हक, मौलाना अब्दुल बारी, हसरत माहानी, शौकत अली और डा० किचलू आदि शामिल थे।

४. देखिए खण्ड १७, परिशिष्ट ६।

५. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ५४५-४९।

मेरे विचारसे मुसलमानों और हिंदुओंका विशाल बहुमत मुसलमानोकी धार्मिक भावनाके सम्मानके निमित्त तथा मन्त्रियोके वचनोको पूरा करानेके उद्देश्यसे छेड़े जानेवाले इस महान् और न्यायसम्मत आन्दोलनके साथ है। आप भरोसा रखें कि यहाँ जो-कुछ भी सम्भव है सब किया जा रहा है। मुझे तनिक भी सन्देह नही कि अगर हम अपनी सहायता आप करेंगे तो इस महान् अनुष्ठानमें ईश्वर हमारी सहायता अवश्य करेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-७-१९२०

८. पत्र : अखबारोंको

[७ जुलाई, १९२० के पूर्व]

श्री गांधी लिखते है :

कहनेकी जरूरत नही कि नई कौंसिलोके बहिष्कारके बारेमें मैं लाला लाजपतरायकी रायसे पूरी तरह सहमत हूँ। मेरे लिए तो वह असहयोगके ही कार्यक्रमका एक अंग है और चूँकि मुझे पंजाबका सवाल भी उतना ही चुभता है जितना कि खिलाफतका, इसलिए मैं लाला लाजपतरायकी सलाहका दुहरा स्वागत करता हूँ। कई जगहोसे ऐसा सुझाव आया है कि सुधारोसे हमारा असहयोग चुनावकी क्रिया पूरी हो चुकनेके बाद शुरू हो। लेकिन मैं यह कहे बिना नही रह सकता कि जब हम निश्चय ही इन कौंसिलोंकी कार्रवाईमें भाग लेनेवाले नही है तब इस चुनावके नाटकमें भाग लेना और उसपर पैसा खर्च करना गलत होगा। इसके सिवा हमे जनताको शिक्षित करनेकी दिशामे भी काफी कार्य करना है। इसलिए यदि मेरी चले तो मैं तो देशको अपना ध्यान व्यर्थ ही चुनावोंमे न लगाने दूँ। अगर हम पहले चुनाव लड़ते है और फिर पदत्याग करते है तो सामान्य जनता असहयोगकी खूबी नही समझ सकेगी। दूसरी ओर मतदाताओके लिए यह बहुत बडी शिक्षा होगी कि वे किसीको भी न चुनें और जो भी उनसे मत माँगने आये उससे एक स्वरसे यह कह दें कि जबतक पंजाब और खिलाफतके सवालोंका सन्तोषप्रद निपटारा नही हो जाता तबतक अगर वह चुनावके लिए खड़ा होता है तो वह उनका प्रतिनिधि नही होगा। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि लाला लाजपतराय [नये सुधारोके अनुसार बननेवाली] नई कौंसिलोके बहिष्कारसे ही सन्तुष्ट नही हो जायेंगे। अगर हम एक स्वाभिमानी राष्ट्रके रूपमे पहचाने जानेके इच्छुक हो तो हमें जरूरत होनेपर असहयोग-कार्यक्रमके चारो चरणोपर अमल करना चाहिए। सवाल साफ है। खिलाफत और पंजाब, दोनों ही मामलोमें सरकारने जो किया है, उससे स्पष्ट है कि साम्राज्यका सूत्र-संचालन करनेवाली परिषदोमें भारतीयोंके मतको कोई महत्त्व नही दिया जाता। यह बहुत ही अपमानजनक स्थिति

है, और यदि हम इस अपमानको चुपचाप सहन कर लेगे तो ये सुधार हमारे लिए व्यर्थ सिद्ध होगे। इसलिए मेरी नम्र सम्मतिमे, सच्ची प्रगतिकी पहली शर्त यह है कि हमारे रास्तेसे ये कठिनाइयाँ हटा दी जाये। और जबतक हम किसी और अच्छे उपाय-का नियोजन नही कर लेते तबतक हमे बाध्य होकर असहयोगका मार्ग ही अपनाना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-७-१९२०

९. वक्तव्य: असहयोग समितिका

[७ जुलाई, १९२० के पूर्व]

असहयोग समितिने लोगोंकी जानकारी और मार्ग-दर्शनके लिए एक वक्तव्य जारी किया है, जो हम नीचे दे रहे है:

असहयोग समिति लोगोसे क्या अपेक्षा रखती है और असहयोग प्रारम्भ करनेके लिए कौन-से तरीके अपनाये जाये, इस सम्बन्धमे समितिसे बहुत सारे सवाल पूछे गये है।

समिति चाहती है, लोग इस बातको समझे कि वैसे तो वह अपेक्षा यही करती है कि उसकी सिफारिशोपर लोग पूरा-पूरा अमल करे, लेकिन साथ ही उसकी इच्छा कमजोरसे-कमजोर लोगोंको भी साथ लेकर चलनेकी है। समिति चाहती है कि उसके असहयोगके कार्यक्रममे सारा देश सक्रिय सहयोग दे, लेकिन अगर यह सम्भव न हो तो उसके साथ पूरी सहानुभूति तो रखे ही।

इसलिए जो लोग शारीरिक कष्ट नही उठा सकते, वे आन्दोलनके लिए चन्दा देकर या और तरहके काम करके सहायता दे सकते है।

अगर असहयोग करना आवश्यक हो जाये तो उस हालतमे समितिने तय किया है कि इस आन्दोलनके प्रथम चरणके रूपमे लोग निम्नलिखित काम करे:

(१) सभी सम्मान-सूचक सरकारी उपाधियो और अवैतनिक पदोको छोड दे।

(२) सरकारी ऋण-योजनाओंमे सहयोग न दे।

(३) वकील लोग वकालत छोड दे और दीवानी झगडोंका निवटारा आपसी पच-फैसले द्वारा किया जाये।

(४) बच्चोंके माता-पिता सरकारी स्कूलोका बहिष्कार करे।

(५) सुधार-योजनाके अनुसार गठित कौसिलोका बहिष्कार करे।

(६) सरकारी भोजो तथा ऐसे ही अन्य समारोहोंमे शामिल न हो।

(७) मेसोपोटामियामे कोई भी असैनिक अथवा सैनिक पद स्वीकार न करे, और जो सेना विशेष रूपसे टर्की साम्राज्यके उन प्रदेशोमे रखी जानेवाली हो, जिन्हे ब्रिटिश सरकारने वचन तोड़कर अपने प्रशासनमे ले लिया है, उस सेनामे भरती न हो।

स्वदेशीका प्रचार

(८) स्वदेशीके कार्यक्रमको जोर-शोरसे कार्यान्वित करे और लोगोंको राष्ट्रीय तथा धार्मिक जागृतिकी इस घड़ीमें अपने ही देशमे उत्पादित और निर्मित चीजोके उपयोगसे सन्तुष्ट रहकर देशके प्रति अपना बुनियादी कर्त्तव्य निभानेकी प्रेरणा दे।

स्वदेशी आन्दोलनको आगे बढ़ाना चाहिए और उसके लिए पहली अगस्ततक प्रतीक्षा नही करनी चाहिए, क्योकि स्वदेशी तो आचरणका एक ऐसा शाश्वत नियम है जिसके पालनमे खिलाफतके सवालका निबटारा हो जानेके बाद भी कोई व्यवधान नही आना चाहिए।

लोग किसी प्रकारसे बँध न जाये, इस खयालसे वे असैनिक अथवा सैनिक नौक-रियोमे न जाये। वे नया पुराना, कोई भी सरकारी ऋण न ले।

शेष बातोके सम्बन्धमे यह ध्यान रखना चाहिए कि असहयोग अगले अगस्त माहकी पहली तारीखसे पूर्व प्रारम्भ नही होनेवाला है।

महामहिम सम्राट्के मन्त्रियोसे इस सर्वनिन्दित सन्धिकी शर्तोंमें आवश्यक परिवर्तन करानेका अनुरोध करके हम इस बातकी हर सम्भव कोशिश कर रहे है, और आगे भी करते रहेगे, कि हमारे और सरकारके बीच यह गहरी दरार न पड़ने पाये।

जो लोग अपनी जिम्मेदारी और इस उद्देश्यकी गुरुताको समझते है, वे स्वतन्त्र रूपसे काम न करके समितिकी सलाहके अनुसार काम करे। पूर्ण रूपसे अनुशासित और सगठित असहयोगपर ही सफलता निर्भर है और अनुशासित तथा संगठित असह-योग तभी सम्भव है जब दिये गये निर्देशोका ठीकसे पालन किया जाये, शान्तिसे काम लिया जाये और हिंसासे बिलकुल दूर रहा जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-७-१९२०

१०. टिप्पणियाँ

विशुद्ध सविनय अवज्ञा[१]

'यग इंडिया' के सभी पाठकोको शायद मालूम न हो कि गत वर्ष अप्रैल माहके उपद्रवोके कारण अहमदाबादपर बहुत भारी जुर्माना ठोका गया था। जुर्मानेकी रकम अहमदाबादके नागरिकोसे वसूल की गई लेकिन कलक्टरकी मर्जीसे कुछ लोगोंको उससे बरी भी कर दिया गया। जिन लोगोसे जुर्माने देनेको कहा गया, उनमें आयकर देने-वाले लोग भी थे। उन्हे अपने आयकरका तीसरा हिस्सा जुर्मानेमें देना पड़ा। श्री वी०

१. इस टिप्पणीपर गांधीजीके हस्ताक्षर नहीं थे परन्तु यह सत्याग्रह नामक उनकी पुस्तक (पृष्ठ १३८-९) में दी गई है।

जे० पटेल[1] और डा० कानुगा उन लोगोमे से थे जिन्होने जुर्माना देनेमे असमर्थता प्रकट की। श्री पटेल वहाँके एक प्रमुख वकील है और डा० कानुगा प्रसिद्ध चिकित्सक। सभी स्वीकार करते है कि इन दोनोने उपद्रव शान्त करनेमे अधिकारियोंकी मदद की थी। इसमे सन्देह नही कि दोनो सत्याग्रही थे, किन्तु दोनोने अपनी जानकी जोखिम उठाकर भी भीड़के क्रोधको शान्त करनेकी कोशिश की थी। लेकिन अधिकारीगण उनको जुर्मानेसे बरी क्यो करने लगे! इक्के-दुक्के मामलोमे अपने विवेकका उपयोग करके उन्हे छूट देना शायद उनको बहुत कठिन गुजर रहा था, लेकिन उधर उन दोनों सज्जनोके लिए भी जुर्माना देना उतना ही कठिन था, क्योंकि उनका कोई दोष नही था। वे अधिकारियोंको परेशानीमे नही डालना चाहते थे, लेकिन अपने आत्म-सम्मानकी रक्षाकी चिन्ता तो उन्हे थी ही। उन्होने इस बातको लेकर कोई शोरगुल नही किया, सिर्फ यह सूचित कर दिया कि उपर्युक्त परिस्थितियोको देखते हुए वे जुर्माना देनेमे असमर्थ थे। परिणामत. कुर्कीका आदेश दिया गया। डा० कानुगाका धन्धा बहुत जोरोसे चला हुआ है और उनका कैश-बक्स बराबर भरा ही रहता है। चौकस कुर्क अधिकारीने उसे अपने कब्जेमे कर लिया और फिर वसूलीके आदेशमे जितनी रकम बताई गयी थी, उसके बराबर पैसे बक्ससे निकाल लिये। किसी वकीलका धन्धा इस तरह नही चलता। श्री पटेलके पास पैसे रखनेका ऐसा कोई बक्स नही था। इसलिए उनकी बैठकका एक सोफा कुर्क कर लिया गया और फिर उसकी बिक्रीका इश्तिहार देकर बाकायदा बेच दिया गया। इस प्रकार दोनो सत्याग्रहियोने अपनी अन्तरात्माकी पूरी रक्षा की।

चतुर लोग शायद इस बातपर हँसेगे कि उन्होने अपने खिलाफ कुर्कीके हुक्मनामे जारी होने दिये और सीधे-सीधे जुर्माना न देकर जुर्मानेके साथ-साथ वसूलीकी कार्रवाईका खर्च भी दिया। अगर ऐसे एक-दो नही, बहुत सारे मामले होने लगे तो कल्पना कीजिए कि इन मामलोंमे जारी किये गये हजारों हुक्मनामोपर अमल करनेका मतलब अधिकारियोके लिए क्या होगा। इस तरहके हुक्मनामे तो तभी सम्भव है, जब वे इक्के-दुक्के हठधर्मी और दुराग्रही लोगोंतक सीमित हों, लेकिन जब इन हुक्मनामोपर ऐसे बहुत सारे मनस्वी लोगोके खिलाफ अमल करना हो जिन्होने कोई गलती नही की है और जो सिद्धान्तकी प्रतिष्ठाकी खातिर जुर्माना देनेसे इनकार करते है तो उस हालतमे ये अधिकारियोके लिए बहुत परेशानीका कारण बन जाते है। जब विरोध-प्रदर्शनके इस तरीकेको इक्के-दुक्के व्यक्ति अपनाये तो, सम्भव है, इनकी ओर अधिक लोगोंका ध्यान न जाये। लेकिन ऐसे शुद्ध दृष्टान्तोकी एक विचित्र खूबी यह है कि लोग बडी तेजीसे इनका अनुकरण करने लगते है। इनका प्रचार होता चला जाता है और जो लोग इस तरह एक सिद्धान्तकी खातिर जुर्माना न देकर कष्ट उठाते है उनकी बदनामी

१. सरदार वल्लभभाई पटेल, (१८७५–१९५०); गुजरातके कांग्रेसी नेता; स्वतन्त्र भारतके प्रथम उप-प्रधान मन्त्री।

होनेके बजाय नेकनामी ही होती है। थोरो[1]-जैसे लोगोने अपने व्यक्तिगत उदाहरणोके बलपर ही दास-प्रथाको समाप्त किया। थोरोने कहा था:

> अगर इस मैसाच्युसेट्स राज्यके एक हजार व्यक्ति, या सिर्फ सौ व्यक्ति ही, और सौकी भी बात जाने दीजिए सिर्फ दस और दस ईमानदार व्यक्ति, बल्कि मैं तो कहूँगा कि सिर्फ एक ईमानदार व्यक्ति भी दास रखना बन्द करके सचमुच इस साझेदारीसे अलग हो जाये और अपने इस आचरणके लिए किसी मुफस्सिल जेलमें ठूंस दिये जानेकी सजा खुशी-खुशी स्वीकार कर ले तो इसका मतलब होगा — अमरीकामें दास-प्रथाकी समाप्ति। कारण, प्रारम्भ कितने छोटे पैमानेपर किया जाता है, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। अगर एक बार कोई शुभ कार्य ठीकसे प्रारम्भ कर दिया जाये तो वह स्थायी बन जाता है।

एक और स्थानपर उन्होंने कहा है:

> किसी अन्यायी सरकारका विरोध करनेवाले व्यक्तिको जेल भेज देने और उससे उसकी सम्पत्ति छीन लेने, दोनोंसे एक ही उद्देश्यकी सिद्धि होगी; लेकिन मुझे अधिक सम्भावना तो पहली बातकी ही दिखाई दी है, क्योंकि जो लोग अपने उच्चतम अधिकारपर आग्रह रखते हैं और इस तरह किसी भ्रष्ट सरकारके लिए सबसे अधिक खतरनाक हैं, वे आम तौरपर ऐसे लोग हुआ करते हैं जिन्होंने सम्पत्ति अर्जित करनेमें अपना ज्यादा समय नहीं लगाया है।

अतएव श्री पटेल और डा० कानुगाको, उन्होंने जिस सुन्दर उद्देश्यके लिए इतने सुन्दर ढंगसे यह सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है, हम बधाई देते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-७-१९२०

११. मुसलमानोंके घोषणापत्रकी आलोचना

वाइसराय महोदयको भेजे गये खिलाफत-सम्बन्धी प्रार्थनापत्र[2] और उसी विषयपर लिखे गये मेरे पत्रकी[3] आंग्ल-भारतीय अखबारोंने बड़ी तीव्र आलोचना की है। यों 'टाइम्स ऑफ इंडिया' का दृष्टिकोण सामान्यतः निष्पक्ष हुआ करता है; लेकिन उसने भी इस घोषणापत्रमें कही गई कुछ बातोंपर बड़ी आपत्ति की[4] है, और मैंने जो अपने पत्रमें कहा था कि यदि शान्ति-सन्धिकी शर्तोंमें परिवर्तन नहीं किये जाते तो

१. हेनरी डेविड थोरो (१८१७-६२); प्रसिद्ध अमरीकी लेखक, प्रकृतिवादी और दार्शनिक।

२. २२ जून, १९२० का; देखिए खण्ड १७, परिशिष्ट ६।

३. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ५४५-४९।

४. टाइम्स ऑफ इंडियाके १९-६-१९२० के अंकमें प्रकाशित "प्लेन फैक्ट्स ऐंड ए लिटिल हिस्ट्री" शीर्षक लेख।

वाइसराय महोदयको त्यागपत्र दे देना चाहिए, उसकी आलोचनामे उसने अपने लेखमे पूरा एक पैरा ही लिख दिया है।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' इस कथनपर आपत्ति करता है कि ब्रिटिश साम्राज्य टर्कीको ऐसा दुश्मन मानकर व्यवहार न करे जो पूरी तरह मर चुका है। मेरा खयाल है, इस प्रार्थनापत्रके हस्ताक्षरकर्त्ताओने अपने इस कथनके समर्थनमे सबसे महत्त्वपूर्ण कारण तो बता ही दिया है। वे कहते हैं :

> **हम सादर निवेदन करते हैं कि टर्कीके साथ अपने व्यवहारमें ब्रिटिश सरकार भारतीय मुसलमानोंकी उचित और न्यायसंगत भावनाका खयाल रखनेको बँधी हुई है।**

अगर भारतके सात करोड़ मुसलमान साम्राज्यमे साझीदार हैं तो मैं कहूँगा उनकी इच्छाको ही इस बातके लिए पर्याप्त कारण माना जाना चाहिए कि टर्कीको सजा न दी जाये। टर्कीने युद्धके दौरान क्या-कुछ किया, यह सब कहनेकी जरूरत नही। उसका दण्ड भी उसने भोगा है। 'टाइम्स' पूछता है कि किस मामलेमे टर्कीके साथ अन्य शत्रु-देशोंकी अपेक्षा बुरा बरताव किया गया है। मैंने तो समझा था कि यह तथ्य अपने-आपमे काफी स्पष्ट है। न तो जर्मनीके साथ वैसा बरताव किया गया है और न आस्ट्रिया तथा हंगरीके साथ, जैसा कि टर्कीके साथ किया गया है। इतने बड़े साम्राज्यको छिन्न-भिन्न करके सिर्फ राजधानीके ही एक हिस्सेतक सीमित कर दिया गया है, मानो वे सुलतानका मजाक उड़ाना चाहते हों। और यह सब भी इतनी अपमानजनक शर्तोके अधीन किया गया है कि सुलतानकी बात तो जाने दीजिए, कोई सामान्य आत्मसम्मानी व्यक्ति भी कदाचित् उन्हें स्वीकार न करे।

'टाइम्स'ने अपनी बातको सही सिद्ध करनेके लिए इस तथ्यको बहुत अधिक तूल देनेकी कोशिश की है कि प्रार्थनापत्रमे इस बातपर विचार नही किया गया है कि टर्कीने मित्र-राष्ट्रोंका साथ क्यो नही दिया; लेकिन इसमे कोई रहस्यकी बात तो नही थी। रूस मित्र-राष्ट्रोमे शामिल था, और यह तथ्य ही इस बातके लिए काफी था कि टर्की मित्र-राष्ट्रोके गुटमे शामिल न हो। युद्धके समय रूसका खतरा टर्कीकी ड्योढ़ीतक आ पहुँचा था। इस हालतमें टर्कीके लिए मित्र-राष्ट्रोका साथ देना कोई आसान बात नही थी। इससे भी बड़ी बात यह थी कि स्वयं ग्रेट ब्रिटेनके मतव्यमे सन्देह करनेके लिए टर्कीके सामने पर्याप्त कारण था। उसे मालूम था कि बल्गेरियाई युद्धके समय उसके प्रति इंग्लैंडने कोई मित्रतापूर्ण कार्य नही किया था। इटलीके साथ युद्धके समय भी उसकी कोई सहायता नही की गई थी। फिर भी इसमे सन्देह नही कि टर्कीने जो पक्ष चुना वह बुरा ही था। भारतके मुसलमान सजग हो गये थे और वे टर्कीको मदद देनेके लिए तैयार थे। टर्कीके राजनयिक भरोसा कर सकते थे कि अगर वह मित्र-राष्ट्रोके साथ रह जायेगा तो भारतीय मुसलमान ब्रिटेनको टर्कीका कोई अहित नही करने देगे। लेकिन ये बुद्धिमानीकी बाते तो तब सूझ रही हैं जब सब-कुछ हो गया। टर्कीने चुनाव करनेमें भूल की और उसे इसकी सजा भी मिल गई। उसको अब अपमानित करनेका मतलब भारतीय मुसलमानोकी भावनाकी उपेक्षा करना

होगा। ईश्वर करे, ब्रिटेन ऐसी कोई भूल न करे और इस तरह भारतके जाग्रत मुसलमानोकी वफादारीका हकदार बना रहे।

'टाइम्स' का यह कहना कि शान्ति-सन्धिकी शर्तोंमें आत्म-निर्णयके सिद्धान्तका बहुत सावधानीसे पालन किया गया है, अपने पाठकोकी आँखोंमे धूल झोकना है। अड्रियानोपल और थ्रेसको टर्की साम्राज्यसे अलग करके ग्रीसके साथ मिला देना क्या आत्म-निर्णयका नमूना है? वह कौन-सा आत्म-निर्णयका सिद्धान्त है जिसके अनुसार स्मर्ना ग्रीसको दे दिया गया है? क्या थ्रेस और स्मर्नाके निवासियोंने कभी ग्रीक सरक्षणकी माँग की थी?

मै नही मानता कि अरबोकी जो व्यवस्था की गई है, वह उन्हें पसन्द है। ये हेजाजके बादशाह और अमीर फैजल कौन है? क्या इन बादशाहो और अमीरोको अरबोने चुना है? ब्रिटेनने अरबोका संरक्षण और शासन करनेका जो अधिकार प्राप्त कर लिया है, वह क्या उन्हे पसन्द है? जब सारा खेल खत्म हो जायेगा, उस समय यह आत्म-निर्णय शब्द ही लोगोके लिए एक तीखा दश बन जायेगा। सच तो यह है कि बहुत-से ऐसे लक्षण अब दिखाई भी देने लगे है, जिनसे प्रकट होता है कि अरब लोग तथा थ्रेस और स्मर्नाके निवासी अपने सम्बन्धमे की गई व्यवस्थाको पसन्द नही करते। टर्कीका शासन उन्हे भले ही पसन्द न हो, लेकिन वर्तमान व्यवस्था तो उन्हे और भी कम पसन्द है। टर्कीसे वे जो चाहे मंजूर करवा लेते, लेकिन अब इन आत्म-निर्णय करनेवाले लोगोंको मित्र-राष्ट्रोकी "अप्रतिम शक्ति" अर्थात् ब्रिटिश सेना, बिलकुल विवश करके रखेगी। ब्रिटेनके सामने यह सीधा-सादा रास्ता खुला हुआ था कि वह टर्की साम्राज्यको अक्षुण्ण बनाये रखता और उससे सुशासनके लिए पूरी गारंटी ले लेता। लेकिन उसके प्रधान मन्त्रीने गुप्त सन्धियो, दोरुखी बातो और भ्रमोत्पादक कुचक्रोका टेढा-मेढा रास्ता ही चुना।

अब भी एक उपाय है। वह भारतको वास्तविक साझीदार माने, मुसलमानोके सच्चे प्रतिनिधियोको बुलाये, इन प्रतिनिधियोको अरब और टर्की साम्राज्यके अन्य हिस्सोमे भेजे और फिर उन सबसे सलाह-मशविरा करके कोई रास्ता सोच निकाले — ऐसा रास्ता, जिससे टर्कीका अपमान न हो और मुसलमानोकी न्यायपूर्ण भावना तुष्ट हो जाये तथा साथ ही उस साम्राज्यमे जो जातियाँ शामिल है, उन्हे सच्चे अर्थोमे आत्म-निर्णयका अधिकार मिल जाये। अगर इसी तरह कैनाडा, आस्ट्रेलिया या दक्षिण आफ्रिकाको सन्तुष्ट करनेकी जरूरत होती तो श्री लॉयड जॉर्ज[1] उनकी उपेक्षा न कर पाते, क्योकि इन देशोको तो राष्ट्रमंडलसे अलग होनेका अधिकार है लेकिन भारतको नही है। अगर भारतकी भावनाओंका ब्रिटेनके लिए कोई महत्त्व ही न हो तो श्री जॉर्ज इसे साम्राज्यमें साझीदार कहकर इसका और अधिक अपमान न करे। मै 'टाइम्स ऑफ इडिया' को अपने दृष्टिकोणपर पुनर्विचार करनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ और अनुरोध करता हूँ कि भारतके ये उच्चात्मा लोग जो

१. १८६३–१९४५; ब्रिटिश राजनीतिज्ञ; प्रधान मंत्री १९१६-२२।

इस सौम्य आन्दोलनके जरिये और कुछ नही, सिर्फ न्याय प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे है, उसमे वह भी हाथ बँटाये।

और पूरे आदरके साथ यह बात मै अब भी कहूँगा कि लॉर्ड चैम्सफोर्ड जो कमसे-कम कर सकते है, वह यह कि अगर मन्त्रिगण भारतके लोगोंकी पवित्र भावनाका कोई लिहाज-खयाल नही करते तो वे वाइसरायके पदसे इस्तीफा दे दे। 'टाइम्स'का कहना है कि वाइसरायकी नियुक्ति सविधानकी व्यवस्थाओके अनुसार की जाती है, इसलिए लॉर्ड चैम्सफोर्डको महामहिमके मन्त्रियोकी इच्छाके विरुद्ध कुछ करनेकी छूट नही है। मेरे खयालसे ऐसा कहना सविधानके आशयके साथ बहुत खीचतान करना है। इसमे सन्देह नही कि किसी वाइसरायको अपने पदपर बने रहकर मन्त्रियोके निर्णय-का विरोध करनेकी छूट नही है। लेकिन उसे उस हालतमे पदत्याग कर देनेकी छूट तो है ही जब उसे ऐसे निर्णयोको कार्यान्वित करनेको कहा जाये जो शान्ति-सन्धिकी शर्तोकी तरह अनैतिक हो या इन शर्तोकी तरह ही जिनका उद्देश्य सिर्फ उन लोगोका मर्म दुखाना हो जिनके मामलोके सूत्र-सचालनका भार कुछ समयके लिए उसे सौपा गया हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७–७–१९२०

१२. युवराज

श्री बैप्टिस्टाने[1] युवराजकी आगामी भारत-यात्राके सम्बन्धमे 'बॉम्बे क्रॉनिकल'को एक पत्र लिखा है। जिसमे उन्होने अमुक विचारोकी आलोचना की है जिन्हे वे मेरे विचार मानते है। वैसे तो मै इस नाजुक सवालपर फिलहाल चुप रहना ही पसन्द करता, लेकिन मै नही चाहूँगा कि कोई मेरे बारेमे ऐसी बात कहे कि मै "मन्त्रियोके अपराधोका दण्ड युवराजको दूँगा"। मै श्री बैप्टिस्टाके इस विचारसे पूरी तरह सहमत हूँ कि राजकाजमे युवराजकी कुछ नही चलती और सम्राट्के मन्त्रियोकी कार्रवाइयोसे उनका कोई सम्बन्ध नही है — उनकी भयंकर गलतियोसे तो और भी नही। वैसे तो युवराजका शानदार स्वागत करनेको मै भी उतना ही इच्छुक हूँ जितना कि और कोई, किन्तु चूँकि मै सविधान और उसकी कार्य-प्रणालीको समझता हूँ इसीलिए वर्तमान परिस्थितियोमे युवराजकी यात्राका मै बहिष्कार करूँगा। चूँकि मै जानता हूँ कि राज-परिवार राजनीतिसे परे है, इसीलिए अगर मेरी चली तो मै मन्त्रियोको या भारत सरकारको अपने राजनीतिक उद्देश्य साधनेके लिए युवराजके प्रभावका उपयोग नही करने दूँगा। अगर मै और कुछ नही कर सकता तो इतना तो कर ही सकता हूँ कि मन्त्रियो और भारत सरकारके हाथोमे उनका उल्लू सीधा करनेका साधन न बन जाऊँ और न उन्हें यह मौका दूँ कि वे युवराजकी यात्राके बहाने भारतपर अपनी पकड़ और

1. जोसेफ बैप्टिस्टा, बम्बईके कांग्रेसी नेता।

भी मजबूत कर ले और दुनियाको दिखाये कि उनके उदात्त तथा उदार शासनमे सारा भारत सुखी और सन्तुष्ट है। और यह निश्चित है कि अगर हम चुप रहे और सविधानके प्रति गलत ढगकी वफादारीसे प्रेरित होकर हमने युवराजका स्वागत किया तो इसका एकमात्र परिणाम यही होगा। इसके विपरीत मेरे खयालसे हमारी वफादारीका तकाजा यह है कि हम महामहिम सम्राट्के मन्त्रियोके सामने स्पष्ट कर दें कि अगर उन लोगोने युवराजको भारत भेजा तो हम उनके स्वागतमें सरकार द्वारा आयोजित किसी भी कार्यक्रममे शामिल नही होगे। मै उन्हे स्पष्ट बता दूंगा कि खिलाफत और पजाबके सवालोको लेकर हमारा हृदय बहुत व्यथित है, और ऐसे समय जब कि हम मन्त्रियोके विरुद्ध अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिए लड रहे है मन्त्रियोंको हमसे यह अपेक्षा नही करनी चाहिए कि हम युवराजका स्वागत करनेके किसी कार्यक्रममे उनके साथ सहयोग करेगे। जनताको इस शाही यात्राका सच्चा मतलब समझाना हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य है। यदि हम वैसा नही करते तो हम उसके प्रति अन्याय करेगे। लोग यह जान ले कि युवराज यहाँ मन्त्रियोकी सलाह और भारत सरकारकी स्वीकृति और सहमतिसे ही आ रहे है। इसलिए यह यात्रा युवराज अपनी इच्छासे नही बल्कि मन्त्रियोकी इच्छासे करेंगे और इस अवसरपर अगर हम उनके भारत आगमनका बहिष्कार करते है तो उसका मतलब मन्त्रियोके पापके लिए युवराजको दण्डित करना नही, बल्कि स्वय मन्त्रियोंको ही दण्डित करना होगा। दूसरे शब्दोमें, हम उनका उल्लू सीधा करनेका साधन नही बनेगे। मान लीजिए मन्त्रिगण लॉर्ड चैम्सफोर्डके स्थानपर सर माइकेल ओ'डायरको[1] वाइसराय बना दे और युवराजके स्वागतका प्रबन्ध करे तो क्या श्री बैप्टिस्टा हमे सर माइकेलके जालमें फँसने देगे? फिर मान लीजिए कि वे ठीक युवराजकी आँखोके सामने पजाबके नेताओकी उपेक्षा करके पजाबका अपमान करते है, तो क्या पजाबको अपमानका यह घूंट पीकर महज इसलिए स्वागतमें शामिल हो जाना चाहिए कि राज-परिवार राजनीतिसे ऊपर है! अगर इसका उत्तर कोई "हाँ" मे दे तो वह वफादारी और राजनीतिके अर्थसे अपनी शोचनीय अनभिज्ञता ही प्रकट करेगा।

मै तो कहूँगा कि मन्त्रियोकी कार्रवाइयो या गलतियोसे जितने अधिक असन्तुष्ट हम है, उतने असन्तुष्ट अगर आस्ट्रेलियावाले होते तो वे बिना किसी हिचकिचाहटके ऐसी यात्राका बहिष्कार करते। मन्त्रिगण इस यात्रासे अपना राजनीतिक उद्देश्य साधना चाहते है, और हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम उन्हे वैसा न करने दें।

मै श्री बैप्टिस्टाकी इस बातसे सहमत हूँ कि हम इस समय शोक-सन्तप्त है। इसलिए वे आशा करते है कि युवराजको इस यात्रापर नही भेजा जायेगा, लेकिन अगर वे भेज ही दिये जाते है तो श्री बैप्टिस्टाका कहना है कि हमे इस शोककी स्थितिके बावजूद उनका स्वागत करना चाहिए। मै चाहता हूँ कि युवराज यहाँ आयें, और इसीलिए मैं कोशिश करूँगा कि शोकके कारणोको दूर किया जाये, मै उन्हे अटल तथ्य मानकर नही बैठूंगा। मै मन्त्रियोसे कहना चाहूँगा कि चूंकि हम युवराजका स्वागत

१. पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर, १९१३-१९; इनके कार्यकालमें जलियाँवाला बागका हत्याकाण्ड हुआ था।

पूरे उत्साह-उमंगके साथ करना चाहते हैं, इसलिए खिलाफत और पंजाब सम्बन्धी हमारी शिकायतें दूर कर दे। मैं उनसे यह भी कह देना चाहूँगा कि अगर वे ऐसा नहीं करते, और दुराग्रहपूर्वक युवराजको भारत भेज ही देते हैं तो जनताके सामने इस यात्रा या स्वागत-समारोहोंका बहिष्कार करनेके अलावा और कोई चारा नहीं होगा, और उसे इस अटपटी स्थितिमें डालनेकी जिम्मेदारी स्वयं मन्त्रियोंपर होगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-७-१९२०

१३. पंजाबमें स्वदेशी

भारत स्त्री महामण्डलकी संयुक्त मन्त्रिणियोंने श्रीमती सरलादेवी चौधरानीके[1] बम्बईसे लाहौर लौटनेके बादसे उनकी स्वदेशी-सम्बन्धी गति-विधिका हाल बताते हुए एक रिपोर्ट भेजी है। संयुक्त मन्त्रिणियाँ कुमारी राय और श्रीमती रोशनलाल बताती हैं कि २३, २४ और २५ जूनको लाहौरमें अलग-अलग स्थानोंपर महिलाओंकी तीन सभाएँ हुईं। तीनों सभाओंमें श्रीमती सरलादेवीकी बातें सुननेको उत्सुक सैकड़ों महिलाएँ एकत्र हुई थीं। उनके भाषणोंका मुख्य विषय भारतकी घोर गरीबी था। उन्होंने उसके मूल कारणोंपर प्रकाश डालते हुए यह दिखाया कि हमारी गरीबी मुख्यतः लोगोंके स्वदेशी छोड़ देनेका दुष्परिणाम है। इसलिए उन्होंने इसके उपचारके तौरपर स्वदेशीको फिरसे अपनानेकी सलाह दी।

स्वयं सरलादेवी मुझे लिखती हैं कि श्रोताओंपर उनके भाषणोंसे अधिक असर उनकी खद्दरकी साड़ीने डाला; उसके बाद उनके गायनने। इस दृष्टिसे भाषणोंका स्थान अन्तिम रहा। लाहौरकी नेक महिलाएँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गईं और उनकी खुरदरी लेकिन स्वच्छ, सुन्दर साड़ीपर हाथ फेर-फेरकर उसकी सराहना करने लगीं। कुछने इस बातपर हमदर्दी जाहिर की कि जो महिला कलतक कीमती और महीन रेशमी साड़ी पहनती थी उसीने आज हाथसे बनी खुरदरी खद्दरकी साड़ी पहन रखी है। लेकिन सरलादेवी हमदर्दीकी भूखी नहीं थीं। उन्होंने छूटते ही कहा कि आप लोगोंने जो अपने शरीरपर ये महीन विदेशी दुपट्टे डाल रखे हैं, वे विदेशी उत्पादकोंपर निर्भर रहनेकी आपकी असहाय अवस्थाके कारण आपके कन्धोंपर भारी बोझके समान हैं, जबकि मेरी खद्दरकी खुरदरी साड़ी मुझे उस आनन्दके कारण पंखके समान हलकी लगती है, जो आनन्द इस बातका स्मरण करके प्राप्त होता है कि मैं बिलकुल आत्म-निर्भर और स्वतन्त्र हूँ। क्योंकि मैंने अपने भाई-बहनोंकी मेहनतसे तैयार किया गया वस्त्र धारण कर रखा है। उनकी इस बातसे श्रोतृ समूह इतना

१. १८७२-१९४५; रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी भान्जी, लाहौरके पंडित रामभजदत्त चौधरीकी पत्नी। १९१९ में पति-पत्नी, दोनों गांधीजीके अनुयायी हो गये; अपने लड़के दीपकको उन्होंने शिक्षा प्राप्त करनेके लिए साबरमती आश्रम भेजा था।

प्रसन्न हुआ कि अधिकांश महिलाओने तो उसी समय विदेशी वस्त्र छोड देनेका निश्चय कर लिया। अब इन महिलाओने सरलादेवीपर एक ऐसी दुकान खोलनेका भार डाल दिया है जहाँसे वे स्वदेशी चीजे खरीद सके। उसके बादसे वे और भी बहुत-सी सभाओमे बोल चुकी है। वे सियालकोटमे जिला कान्फ्रेसमें बोली और विशेष रूपसे महिलाओंके लिए ही आयोजित एक सभामे बोली, जिसमे हजारसे ऊपर स्त्रियाँ उपस्थित थी। आशा है, पंजाबके पुरुष भी सरलादेवी द्वारा स्वेच्छासे लिये गये इस व्रतको पूरा करनेमे सहायता देगे। उनकी प्रतिभा और उनकी इस तत्परताका उपयोग वे स्वदेशी सभा स्थापित करने और एक ठोस आधारपर स्वदेशीका प्रचार करनेके लिए कर सकते है। इस कामको सफल बनानेके लिए आदमियोकी भी जरूरत है और पैसेकी भी।

स्वदेशी सुधारोंसे बढकर है। सुधारोमे बहुत अधिक समय और शक्तिका अपव्यय होता है। लेकिन स्वदेशीमें ऐसी बात नही है। एक-एक गज सूत कातनेका मतलब है उस हदतक श्रमका सदुपयोग और राष्ट्रीय सम्पत्तिकी उतनी वृद्धि। यहाँ एक-एक बूंदका महत्त्व है। स्वदेशीका मतलब है पहले उत्पादन और फिर वितरण। उत्पादनसे पूर्व वितरणका मतलब है बिना किसी आनुपातिक लाभके मूल्यमें वृद्धि क्योकि आज पूर्तिके मुकाबले माँग अधिक है। अगर हम कपडेका अधिक उत्पादन नही करते तो विदेशी वस्त्रोंके आयातका सिलसिला एक दुःखदायी और पापपूर्ण आवश्यकता बनकर जारी ही रहेगा।

पंजाबको एक महान् अवसर प्राप्त हुआ है। वह बहुत अच्छी रुई उपजाता है। कताईकी कला अभी वहाँ बिलकुल मर नही गई है। लगभग हर पंजाबी स्त्री यह कला जानती है। प्राचीन समृद्धिके इस आगारमे अब भी हजारो बुनकर निवास करते है। आवश्यकता सिर्फ इस बातकी है कि नेताओको यहाँकी महिलाओकी क्षमतामें और अपने-आप में विश्वास हो। जब सरलादेवीने मुझे यह लिखा कि हो सकता है, उन्हे बम्बईसे माल मँगानेकी जरूरत पडे तो मुझे बडा दुःख हुआ। पजाबके पास अपना कपडा स्वय तैयार करनेके लिए काफी समय, श्रम तथा आवश्यक सामग्री मौजूद है। वहाँ बहुत ही साहसी व्यापारी रहते है। उसके पास जरूरतसे ज्यादा पूंजी है। उसके पास बुद्धिकी भी कमी नही है। लेकिन क्या इसमे यह सब करनेकी इच्छा है? वह एक वर्षसे भी कम समयमे अपने यहाँ स्वदेशीका संगठन कर सकता है, बशर्ते कि उसके नेता इस महान् उद्देश्यके लिए कार्य करे। अगर पंजाब अपने लिए बम्बईसे कपड़े मँगाता है तो यह स्वदेशीके साथ खिलवाड करना होगा।

पंजाबका यह कर्त्तव्य है कि वह स्वदेशीको एक समुचित आधारपर स्थापित करके और बॉसवर्थ स्मिथ[1] ऐंड कम्पनीसे[2] मुक्ति पाकर अपनी गलतीको सुधारे। तभी वह आर्थिक और राजनीतिक, दोनो दृष्टियोसे मजबूत बन सकता है। भौगोलिक दृष्टिसे उसका स्थान सभी प्रान्तोसे ऊँचा है। पुराने जमानेमे उसने देशका पथ-प्रदर्शन किया है।

१. संयुक्त जिला-अधिकारी, अम्बाला; अत्याचारोंके लिए प्रसिद्ध मार्शल लॉ अधिकारियोंमें से एक।
२. अन्य मार्शल लॉ अधिकारी।

क्या वह फिर ऐसा नही करेगा? वहाँके लोग देखनेमें बड़े शक्तिशाली है। क्या उनमे अब क्षण-भरकी भी देर किये बिना सरकारको अपना प्रशासन स्वच्छ बनानेपर मजबूर कर देनेकी शक्ति है? ऐसा न समझा जाये कि मै लिख रहा था स्वदेशीपर और बहककर राजनीतिक विषयपर आ गया हूँ। मेरी स्वदेशीकी भावना इतनी तीव्र है कि भारतसे धन छीननेवाले विदेशी वस्त्रो और उसी तरह उससे उसका आत्मसम्मान छीननेवाले स्मिथ, ओ'ब्रायन, श्रीराम और मलिक-जैसे अधिकारियोंको[1] देखकर मै अधीर हो उठता हूँ, जिन्होंने उद्धततापूर्वक अपनी छड़ियोसे औरतोके बुरके हटाये, निरीह लोगोंको पशुओकी तरह जंजीरोसे बाँधा, उनपर बख्तरबन्द गाड़ियोंपर से गोलियाँ बरसाईं और अन्य प्रकारसे भी उन्हे आतंकित किया।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-७-१९२०

१४. जूनागढ़में पागलपन

जूनागढ़ काठियावाड़की एक मुसलमान रियासत है, काठियावाडका यह नाम इसलिए पड़ा कि किसी जमानेमे वह वीर काठियोकी[2] भूमि था। उसमे एक सुसंचालित कॉलेज है, जिसका नाम उसके संस्थापक स्वर्गीय वजीर बहाउद्दीनके नामपर पड़ा है। इस कॉलेजमे सिन्धी विद्यार्थी बहुत बड़ी संख्यामे भरती हुआ करते थे — जिनमे अधिकाश मुसलमान विद्यार्थी थे। उस कॉलेजकी खास विशेषता यह है कि उसमे विद्यार्थियोको नि.शुल्क शिक्षा दी जाती है। कुछ दिन हुए, नये नवावने एकाएक यह आदेश जारी किया कि सभी गैर-काठियावाड़ी विद्यार्थी चौबीस घंटेके अन्दर कॉलेज छोड़ दे। विद्यार्थीगण इस आदेशसे किंकर्त्तव्यविमूढ रह गये, लेकिन फिर भी इन बेचारोको उसी दिन जबरदस्ती रेलगाड़ियोमे बैठाकर सिन्ध भेज दिया गया। इन विद्यार्थियोंका अपराध क्या था, यह कोई नही जानता। सुना जाता है कि इस पागलपन भरे हुक्मका कारण खिलाफत आन्दोलन है। इस लज्जाजनक कामपर परदा डालनेके लिए [उक्त विद्यार्थियोमे] हिन्दू विद्यार्थियोंको भी जोड़ दिया गया है।

व्यक्तिशः मै तो इस निष्कासनकी कार्रवाईका स्वागत ही करता हूँ। इस कृत्यसे जिस नग्न अन्यायका परिचय मिलता है उससे लोगोंको पता लग जायेगा कि खिलाफत आन्दोलनके चारो ओर जो प्रच्छन्न विरोधी शक्तियाँ खडी की जा रही है, उनका असली स्वरूप क्या है। ये रियासतें स्वयं ही सम्राट्के राज्यकी प्रजा है। इसलिए जब सम्राट्के राज्यकी सरकार कोई भयकर गलती कर बैठती है तब वास्तवमें इन रियासतोंकी दशा उस प्रजासे भी खराब हो जाती है जिसे कोई प्रभुसत्ता प्राप्त नही है।

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १२८-३२२।
२. सौराष्ट्रमें रहनेवाली एक जाति।

चूँकि उन्हें सत्ता और धन-संपत्तिके रूपमें बहुत-कुछ खोनेका भय होता है, इसलिए उसकी रक्षाके लिए वे खुशी-खुशी अन्यायके साधन बन जाते हैं, और इस तरह सम्राट्के राज्यकी सरकारके अन्यायोंकी नग्नता स्वयं उसके प्रत्यक्ष कार्योंमें उतनी स्पष्ट परिलक्षित नहीं होती जितनी कि देशी रियासतोंके कृत्योंमें। इसलिए देशी रियासतोंकी प्रजाको और उनके अस्थायी संरक्षणमें रहनेवाले लोगोंको दोहरी क्षति उठानी पड़ती है। परन्तु यहाँ मैं ब्रिटिश अधिसत्ताकी अधीनतामें देशी रियासतोंकी जो दशा है उसका निदान नहीं करना चाहता।

मेरा उद्देश्य इस कठिन परिस्थितिसे निकलनेका एक आसान रास्ता बताना है। कहा जाता है कि उस कॉलेजके प्रधानाचार्यने इस असाधारण आदेशके विरोधमें अपना त्यागपत्र दे दिया है। वे उन लोगोंकी बधाईके पात्र हैं जो ब्रिटिश साम्राज्यमें शुद्धता और न्याय देखनेको इच्छुक हैं। परन्तु क्या काठियावाड़ी विद्यार्थियोंका रियासतके प्रति तथा अपने साथियोंके प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं है? मेरी रायमें उन विद्यार्थियोंको चाहिए कि विनयपूर्वक अपना विरोध प्रकट करनेके बाद वे सामूहिक रूपसे कॉलेज छोड़ दें। यदि ये विद्यार्थी कॉलेजका परित्याग करके अपने साथी विद्यार्थियोंके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेकी मर्दानगी नहीं दिखाते तो इसका मतलब अपनी निःशुल्क शिक्षाके लिए जरूरतसे ज्यादा बड़ी कीमत चुकाना होगा। सम्भव है कि नवाब साहब तब भी न चेतें। लेकिन इससे विद्यार्थियोंको कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। कॉलेज छोड़नेके साथ ही उनका कर्त्तव्य पूरा हो जायेगा।

निष्कासित विद्यार्थियोंसे मैं यह कहूँगा: साहस मत छोड़िए। जिस कॉलेजके स्वामीने आप लोगोंका ऐसा अपमान किया है उस कॉलेजमें पुनः प्रवेश पानेके लिए अनुनय-विनय न करें। जो थोड़ी-सी मुआवजेकी रकम तथा यात्रा-व्यय नवाब साहबने आप लोगोंको दिया है, वह भी आप वापस कर दे सकते हैं। ऐसा कोई भी मुआवजा स्वीकार करनेका अर्थ होगा अन्यायके साथ समझौता करना। आप लोगोंके लिए जो शिक्षा पाना जरूरी है, वह शिक्षा आप बिना कॉलेज गये सिन्धमें ही प्राप्त कर सकते हैं। हमारे स्कूलों व कॉलेजोंमें जो शिक्षा दी जा रही है, उसके प्रति हममें अतिशय अन्धभक्ति है। पढ़ना-लिखना सीखनेके पहले हमें मनुष्य बनना सीखना चाहिए। प्रकृतिने मनुष्यको अपनी प्रगतिके मार्गमें आनेवाली समस्त बाधाओंपर — चाहे वे उसकी पढाई-लिखाईकी प्रगतिके मार्गमें आयें या किसी और तरहकी प्रगतिके मार्गमें — विजय प्राप्त करनेकी क्षमतासे युक्त कर रखा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-७-१९२०

१५. भाषण: महिलाओंकी सभा, बम्बईमें[1]

७ जुलाई, १९२०

श्री मो० क० गांधीने सभामें उपस्थित लोगोंसे अनुरोध किया कि वे पंजाबके अत्याचारोंके सम्बन्धमें कांग्रेस समितिकी रिपोर्ट[2] ध्यानसे पढ़ें। इसी रिपोर्टमें, जो पहली बार प्रकाशमें आई है, ऐसी कुछ घटनाओंकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि बम्बईकी महिलाएँ शायद सोचें कि वह क्या चीज है जो मैं समझानेकी कोशिश कर रहा हूँ, क्योंकि वे कह सकती हैं कि यहाँ बम्बईमें तो वे पूरी आजादीके साथ जहाँ चाहें आ-जा सकती हैं; जो चाहें कर सकती हैं। लेकिन जो ऐसा कहती हैं वे भूल जाती हैं कि जो-कुछ पंजाबमें हुआ है, समान परिस्थितियोंमें बम्बईमें भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त आप सबका कर्त्तव्य केवल अपनी स्थिति सुरक्षित बनाये रखना ही तो नहीं है। आपको इस सम्बन्धमें व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और अन्य प्रान्तोंके लोगोंकी सुरक्षाका भी प्रबन्ध करना चाहिए। अपने पंजाबी भाइयों और बहनोंके प्रति किये गये अन्यायोंको आप अपने प्रति किये गये अन्याय मानिए और आपका यह कर्त्तव्य है कि आप अपनी समस्त शक्तिसे इन अन्यायोंका विरोध करें, ताकि पंजाबकी बर्बरताको न तो पंजाबमें दुहराया जा सके और न भारतके किसी अन्य प्रान्तमें। आपको भारतकी श्रेष्ठ सभ्यतापर जो गर्व है, उसे अगर आप कायम रखना चाहती हों तो आपको दुनियाको यह दिखा देना है कि भारतकी स्त्री-जातिका आत्मबल पंजाबमें बर्बरता करनेवाले अधिकारियोंकी ताकतसे बढ़कर है। आप सबको अपने पतियों, भाइयों और लड़कोंके कंधेसे-कंधा मिलाकर खड़े होना चाहिए और उनसे पंजाबके इन अन्यायोंका निराकरण करानेका आग्रह करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ८-७-१९२०

१. बम्बईके एक धनपति, श्री जहाँगीर बोमनजी पेटिटकी पत्नी श्रीमती जाईजी जहाँगीर पेटिटकी अध्यक्षतामें; देखिए "स्त्रियोंका कर्त्तव्य", १८-७-१९२०।

२. यह रिपोर्ट २५ मार्च, १९२० को प्रकाशित हुई थी; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १२८-३२२।

१६. पत्र : नरहरि परीखको

बम्बई

बृहस्पतिवार [८ जुलाई, १९२०][1]

भाईश्री नरहरि,[2]

मुझे अनुभवसे यह विश्वास हो गया है कि विद्यार्थियोंकी लिखावटके सम्बन्धमें जितनी सावधानी बरती जाये उतनी कम है। सिर्फ आजीविकाका ही विचार किया जाये तो भी लिखावटकी कीमत बहुत ज्यादा है। विद्यार्थीका तो यह भूषण है।

हम बीमार क्यों पड़ते हैं? हर एकको इस बातकी खोज अपने लिए स्वयं कर लेनी चाहिए। इस सम्बन्धमें मैं सदा विचार करता रहता हूँ। सिर्फ शारीरिक स्वास्थ्य-की दृष्टिसे विचार करते हुए मेरी वृत्ति फिलहाल हठयोगकी कुछ क्रियाओंकी ओर मुड़ी है। मुझे लगता है कि ये क्रियाएँ इस दृष्टिसे बहुत महत्त्वकी हैं। इन विचारोंकी प्रेरणा तो मुझे बड़ौदाके एक वैद्यसे मिली। इसपर विनोबाके[3] साथ चर्चा करता। हम रोगी कायाने भारतकी पर्याप्त सेवा नहीं कर सकते। प्राणायाम और नेती-धौतिकी क्रियाएँ शरीरको स्वस्थ रखनेमें बहुत मदद करती होंगी, ऐसा मुझे मालूम देता है। इतना सब कहनेका मुख्य उद्देश्य तो यह है कि आप अपनी कायाको वज्रके समान बनाओ।

सवेरे उठनेके लिए अगर जरूरी जान पड़े तो आप शामको आठ बजते ही बिस्तरपर चले जाये। जल्दी उठनेकी कीमत मैं खूब पहचानता हूँ, इसीसे कहता हूँ।

दीपकके शरीरपर बहुत कम चरबी है। उसकी पसलियाँ दिखाई देती हैं। यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती। एक भी लड़केकी पसलियाँ दिखाई दे, यह मैं सह ही नहीं सकता।

भास्करके पैसेके सम्बन्धमे अगर कुछ और जाँच-पड़ताल कर सको तो करना। इसमे तो शक नहीं कि हमें वह रकम उसके खातेमे जमा करनी चाहिए। कहीं ऐसा तो नहीं कि भास्करने स्वयं ही वह रकम ले ली हो?

विद्यार्थियोंके बारेमे काकाने[4] जो उत्तर दिया है, वह तो वही दे सकते थे। जिसे शालासे सच्चा प्यार हो, ऐसा उत्तर वही दे सकता है। मैं जवाबको परिपूर्ण मानता

१. बृहस्पतिवार, ८ जुलाई, १९२० को गांधीजी बम्बईमें थे और वे एक दिनके लिए, जैसा कि अन्तिम अनुच्छेदमें कहा गया है, सोमवार, १२ जुलाईको अहमदाबाद गये थे।

२. (१८९१–१९५७); १९१७ से साबरमती आश्रमके सदस्य; गांधीजीके रचनात्मक कार्यकर्ताओंमें से एक।

३. आचार्य विनोबा भावे (१८९५–); गांधीजीके अनुयायी, ग्रामदान और भूदान आन्दोलनोंके प्रणेता।

४. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर (१८८५–); काका साहबके नामसे प्रसिद्ध; शिक्षाविद्, लेखक और रचनात्मक कार्यकर्ता; पद्म विभूषण। १९१५ से गांधीजीके सहयोगी।

हूँ लेकिन उससे आगे जाये तो मुझे विश्वास है कि मेरी शालासे निकला हुआ विद्यार्थी — अगर चाहे तो — अन्तमें अधिक कमा सकता है। उसकी बुद्धि परिपक्व और तीव्र होगी। उसका दिमाग विदेशी भाषा और परीक्षाके बोझ तले कुचला हुआ नहीं होगा। परीक्षा पास किये हुए व्यक्ति आज भी बहुत कमाते हैं, ऐसा मानना गलत है। आज भी हिन्दुस्तानके धनाढ्य पुरुष वे लोग हैं जिन्होंने कोई अंग्रेजी शिक्षा नहीं पाई है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग उनके आश्रयमें उनके अधीन काम करते हैं। इसमें से बैरिस्टरों और डाक्टरोंकी बात मैं छोड़ देता हूँ, और उसमें भी बैरिस्टरोंकी, क्योंकि उन्हींको खिताबकी जरूरत रहती है। अगर चिकित्सा करना आ जाये तो हमारे बच्चे भी कर सकते हैं। सरकारी नौकरीके अलावा और सब नौकरियाँ (अगर नौकरी करना ही उनका ध्येय हो तो) बी० ए० पास लोगोंके समान हमारे बालक भी कर सकते हैं। और उतना अध्ययन करनेके बाद अगर वे विलायत जाना चाहते हों तो वहाँ जाकर मैट्रिक्यूलेशन पास करके वे बैरिस्टर भी बन सकते हैं। मतलब यह कि हम उनके लिए पश्चात्तापका अवकाश भी रखते हैं। हमारी आशाके अनुरूप अगर हमें शिक्षा दी जाये तो हम सारे जगत्के विरुद्ध उसका बचाव कर सकते हैं।

मोक्षकी बातको छोड़ दें लेकिन 'अच्छे बनने' की महत्त्वाकांक्षा तो प्रत्येक बालकको समझाई जा सकती है। "अच्छा बनने"का तात्पर्य समझाते हुए अनेक बातें सिखाई जा सकती हैं।

लेकिन ये सब बातें तो जब हम मिलेंगे तब होंगी। मैं सोमवारको वहाँ आऊँगा, उसी दिन वापस चला जाऊँगा। अपनी इस चर्चाके लिए अगर आप एक बजेसे एक घंटेका समय रखें तो ठीक होगा। उस समय वहाँ कोई नहीं आयेगा और अगर आया भी तो हम उससे माफी माँग लेंगे।

बापूके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ६४१५)की फोटो-नकलसे।

१७. सन्देश : राजकीय मंडलकी बैठकको[1]

[९ जुलाई, १९२० के पूर्व][2]

श्री [इंदुलाल] याज्ञिकने[3] एक गुजराती पत्र पढ़ा जिसे बैठकमें पढ़नेके लिए श्री मो० क० गांधीने उन्हें लिखा था। पत्र इस प्रकार है:

राजकीय मण्डलकी बैठक नडियादमें हो रही है। 'नवजीवन' [के पिछले अंक] में मैंने जिस प्रस्तावका[4] सुझाव रखा है, कृपया उसे देखिये। मैं चाहता हूँ कि मंडल निडरतापूर्वक पंजाब और खिलाफत दोनों सवालोंके सिलसिलेमें असहयोगकी सलाह देते हुए एक प्रस्ताव पास करे। कौंसिलोंके बहिष्कारको मैं उस दिशामें पहला कदम मानता हूँ। मेरी समझमें कौंसिलोंमें प्रवेश करनेके बाद बहिष्कार अपनाना मात्र कायरता है। जो लोग पंजाबके प्रति न्याय नहीं करते और जो खिलाफतके सवालपर हमें धोखा देते हैं, उनसे हम सहयोग कैसे कर सकते हैं? मुझे याद है कि बचपनमें मैंने जुआ खेलनेवालों को बेईमानीसे अपने पासे डालनेवालों के साथ खेलने से इनकार करते देखा है। हमारे सामने जो राजनैतिक खेल है, उसमें भारतकी प्रतिष्ठा दाँवपर लगी है। एक ओर खिलाड़ी दुर्योधन-जैसे जान पड रहे हैं। उनके साथ कैसे खेला जाये? एक सही और साहसपूर्ण निर्णय लेनेमें ईश्वर आपकी मदद करे।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १६-७-१९२०

१. यह संदेश मण्डलकी कार्यकारिणी कमेटीके नाम भेजा गया था जिसकी बैठक ११ जुलाई, १९२० को नडियादमें हुई थी। मण्डलकी कान्फ्रेंस २७, २८ और २९ अगस्तको हुई; देखिए "भाषण: गुजरात राजनीतिक परिषद्, अहमदाबादमें"।

२. देखिए अगला शीर्षक।

३. इंदुलाल याज्ञिक, एक सक्रिय राजनैतिक कार्यकर्ता। गांधीजीने इन्हींसे नवजीवन लेकर उसे साप्ताहिकका रूप दिया था।

४. देखिए "गुजरातका कर्तव्य", ११-७-१९२०।

१८. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

बम्बई
शुक्रवार [९ जुलाई, १९२०][१]

भाईश्री वल्लभभाई,

मैं वहाँ सोमवारको जाऊँगा और उसी दिन लौट आऊँगा। राजकीय मण्डलको क्या करना चाहिए, इसके विषयमें मैंने भाई इन्दुलालको पत्र[२] लिखा है; उसे देख लेना। मुझे आशा है कि वह असहयोगका निर्णय करेगी। हमें कौंसिलोंके सम्पूर्ण बहिष्कारका ही सहारा है।

भाई मावलंकर[३] आदिको ख़बर देना।

मोहनदासके वन्देमातरम्

भाईश्री वल्लभभाई पटेल
बैरिस्टर
भद्र, अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो: सरदार वल्लभभाई पटेलने

१९. गुजरातका कर्त्तव्य

सारे देशमें इस समय कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। मुख्यतया उनके समाधानपर ही भारतका भविष्य निर्भर करेगा। इस अवसरपर यदि हम दुर्बलता दिखायेंगे तो शापग्रस्त होकर रह जायेंगे।

इस लेखको 'गुजरातका कर्त्तव्य' शीर्षक मैंने जान-बूझकर दिया है। 'नवजीवन' का प्रकाशन गुजराती भाषा बोलनेवालोंके लिए ही होता है, इतना ही नहीं वरन् अपने जिन विचारोंके प्रति मेरे मनमें बहुत मोह है उन विचारोंको मैं गुजरातियोंके समक्ष अधिक विकसित रूपमें रखते हुए यथासम्भव अथक परिश्रमके साथ अपने जीवनमें उतार रहा हूँ।

१. देखिए "पत्र: नरहरि परीखको", ८-७-१९२० का अन्तिम अनुच्छेद तथा पिछला शीर्षक।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. गणेश वासुदेव मावलंकर (१८७७-१९५६); गुजरातके राजनीतिक कार्यकर्त्ता; स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके बाद लोक सभाके पहले अध्यक्ष

अतएव गुजरातियोंका इस दिशामें विशेष कर्त्तव्य हो जाता है। मैं अनेक गुजरातियोंके निकट सम्पर्कमें आया हूँ, उनके साथ मैंने मुक्तभावसे अपने विचारोंकी चर्चा की है। वे बहुत बारीकीसे मेरे जीवनका अध्ययन कर सकते हैं। मैं अपनी कमजोरियोंको उनसे छिपा नहीं सकता — छिपानेका प्रयत्न भी नहीं करता।

मेरा दावा है कि मैं आज जिन विचारोंको जनताके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ वे अपरिपक्व बुद्धिकी उपज नहीं हैं, अपितु तीस वर्षके जाग्रत अनुभवोंकी निहाईपर गढ़े गये हैं, इसलिए वे अत्यन्त प्रौढ़ विचार हैं। तथापि उनमें दोष हो सकते हैं, वे गलत भी हो सकते हैं। बहुत-सी भूलें परम्परासे चली आती हैं। [ऐसा] अनुभव होनेके बावजूद हम उन्हें भूलके रूपमें पहचाननेमें असमर्थ रहते हैं। यह सम्भव है कि अपनी जड़ताके कारण मैं अपने विचारोंके दोषोंको न देख पाता होऊँ।

इसलिये मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि आप मेरे विचारोंको बिना आजमाए ही फेंक न दें। उनकी जाँच करना गुजरातियोंका विशेष कर्त्तव्य है, क्योंकि मेरे सामीप्यके कारण गुजरातको उनको परखनेकी अधिक सुविधा है।

"आपने तो संसार छोड़ दिया है, साधु हो गये हैं, विचार अच्छे तो हैं लेकिन सांसारिक मनुष्य उनपर अमल नहीं कर सकते"; ऐसा कहकर उन्हें निकाल बाहर करना कायरताका सूचक है। अपने ऊपर साधुता अथवा असांसारिकताके आरोपको मैं स्वीकार नहीं करता। अपने साथियोंकी ओर दृष्टिपात करनेसे मैं अपनी अपूर्णताको देख सकता हूँ। मैं अपनेको सांसारिक व्यक्ति मानता हूँ। मुझे तो लगता है कि मैं व्यवहार-कुशल व्यक्ति हूँ, अपने पड़ोसियोंकी अपेक्षा अधिक सुखी, सन्तोषी तथा निर्भय हूँ। तथापि मैं दूसरोंकी बनिस्बत कम चिन्ताओंसे घिरा हुआ मनुष्य नहीं हूँ। मेरी कठिनाइयोंको देखकर मेरे पड़ोसी तो काँप जाते हैं। तथापि मैं भी काम चलाने योग्य स्वस्थ अवश्य रहता हूँ। अन्य लोगोंकी भाँति मेरे भी स्त्री-पुत्रादि हैं। उनके प्रति अपने उत्तरदायित्वोंको मैंने उतार नहीं फेंका है, वरन् उनका सूक्ष्मतासे अध्ययन किया है। और उनमें से किसीके भी उत्तरदायित्वसे विमुख नहीं हुआ हूँ। मैं जंगलमें नहीं रहता बल्कि अपने सम्बन्धोंके घेरेको बढ़ाता जाता हूँ। अन्य लोग मेरी अपेक्षा संसारमें अधिक लिप्त हो सकते हैं, ऐसी तो मुझे कोई बात दिखाई नहीं पड़ती। आप मुझे साधु कहकर एक ओर कर दें तो यह मेरे प्रति अन्याय करने तथा गुजरातको मेरी सेवाओंसे वंचित करनेके समान है।

वर्तमान सरकारकी अनीति, अन्याय तथा उद्धतता अवर्णनीय है। वह एक झूठको दूसरे झूठके बलपर खींचती चली जाती है। अनेक कार्योंको डरा-धमकाकर अन्जाम देती रहती है। यदि लोग इस सबको चुपचाप सहन करते रहेंगे तो हम कभी आगे नहीं बढ़ सकेंगे।

यदि कोई भूखा व्यक्ति अपनी भूखके बारेमें नारे लगाता रहे, लेकिन अन्न प्राप्त करनेके लिए कोई बड़ा प्रयत्न न करे, प्रयत्न करते हुए ही मरनेके लिए तैयार न हो तो हमें इसी बातकी शंका होने लगेगी कि वह सचमुच भूखा भी है या नहीं।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने टीका करते हुए कुछ दिन पहले लिखा था कि हमारे वक्तागण पंजाब आदिके सम्बन्धमें जितने विशेषणोंका प्रयोग कर रहे हैं, वे सब यदि

वस्तुत सही हो तो भावनाओके इतने उद्वेलित हो जानेके बाद लोग उपाय खोजे बिना नही रह सकते। एक अंग्रेजी कहावत है कि 'आवश्यकता आविष्कारकी जननी है'। मेमनोंमे कहावत है 'मामलामा माटी' अर्थात् आपत्तिमे वीर पुरुष पैदा होते हैं। मामला अर्थात् सकट मनुष्यको उससे मुक्ति पानेकी राह दिखाते है, सकटमे पडकर ही मनुष्य माटी (मर्द) बनता है। हमारे ऊपर यदि सचमुच सकट है, हमारे विशेषण यदि हमारी स्थितिका सही चित्रण करते है तो हमे उसका उपाय क्यो नही सूझता?

पंजाबका दु ख 'असह्य' है, ऐसा हमने अनेक बार कहा है। असह्य वेदनासे पीडित मनुष्य क्या करता है? बिच्छूसे काटा गया व्यक्ति विष उतरवानके लिए अनेक उपचार करता है और उससे भी अगर आराम नही होता तो मृत्युको प्राप्त होता है। हमे असह्य कष्ट तो है पर हम मरनेकी शक्ति भी खो बैठे है। ऐसी हालतमे 'टाइम्स' हमारी हँसी क्यो न उडाये?

शास्त्रोने असन्तोका त्याग करनेका सुझाव दिया है। हममे असन्त श्री ओ'ब्रायन, श्री स्मिथ तथा श्रीरामका त्याग करने-जितनी हिम्मत भी नही है।

जो सरकार वचन देकर उसे तोड़ देती है, उसका त्याग करना अनादि कालसे चला आ रहा एक उपचार है। हमे अपने इतिहासमे ऐसे अनेक उदाहरण सहज ही मिल जाते है, जब राजाके अत्याचारसे पीड़ित हो जनताने राजाका त्याग कर दिया हो। जनताको रूठ जानेका अधिकार है।

यूरोपमे दुष्ट राजाका जनता हनन कर देती है। हिन्दुस्तानमे जब जनता अकुला जाती है तब वह उसका राज्य छोडकर चल देती है। मेरे द्वारा सुझाया गया असह-कार इसकी अपेक्षा हलका त्याग है। सर्वथा त्याग करना यह असहकारकी पराकाष्ठा है। हम रूठना भी भूल गये है।

यदि ऐसा हो तो यह हमारी अधम स्थितिका परिचायक है। जब गुलाम अपनी गुलामीको भूल जाये तब उसे बन्धनमुक्त करनेका उपाय नही बच रहता।

जिन दो अन्यायोंका सरकार आज हठपूर्वक समर्थन कर रही है उनसे अधिक घोर अन्य कोई अन्याय हो ही नही सकता। उनके होते हुए भी यदि हम व्याकुल नही होते तो इसमे सरकारका दोष नही है, अपितु बोलचालमे यही कहा जायेगा कि 'हम इसी लायक है।'

ऐसे कठिन समयमे मैं असहकारके जिस स्वरूपको गुजराती जनताके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ उसपर गंभीरतापूर्वक विचार करना जनताका कर्त्तव्य है। गुजरात इस कार्यमे अनुकरण नही करेगा बल्कि मुझे उम्मीद है कि वह अग्रस्थान ग्रहण करके अनुकरणीय बनेगा।

सहज ही विचार करे तो मालूम होगा कि पदवियो, विधान परिषदो, सरकारी पाठशालाओ और वकालतके धन्धेका त्याग करना कठिन कार्य नही है। लेकिन फिलहाल तो हमे विधान परिषदोका बहिष्कार करनेका निश्चय कर लेना आवश्यक है। गुजरातसे एक भी उम्मीदवार विधान परिषद्मे जानेके लिए तैयार न हो तो इसका राजा-प्रजा दोनोपर जबरदस्त प्रभाव पड़ेगा।

आइये, अब हम इस बातपर विचार करे कि विधान परिषदोका परित्याग किस तरह किया जाना चाहिए। विधान परिषदोका त्याग अर्थात् चुपचाप बैठे रहना नही है बल्कि मतदाताओको उस दिशामे शिक्षित करना और सरकारपर अपने मन्तव्यको स्पष्ट रूपसे प्रकट करना है।

अत. प्रत्येक मुख्य शहरमे हमे विधान परिषदोंका बहिष्कार करनेके प्रस्ताव पास करने चाहिए।

> खिलाफतके प्रश्नपर मुसलमानोके साथ अन्याय करने, ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल द्वारा प्रधान मन्त्रीके वचन-भंगपर अपनी मोहर लगाने तथा पंजाबमे भयकर और असह्य अन्याय किये जानेसे प्रजाके मनको इतनी ज्यादा ठेस पहुँची है कि जबतक इनके सम्बन्धमें न्याय नही मिल जाता तबतक विधान परिषदोंमें दाखिल होकर सरकारको शासन चलानेमे मदद करना जनताका अपमान करना है। इसलिए इस सभाकी राय है कि किसी भी व्यक्तिको विधान परिषदोके उम्मीदवार-पदके लिए खडा नही होना चाहिए और यदि कोई खडा हो भी जाये तो मतदाताओको चाहिए कि वे उसे अपने मत न दे। इतना ही नही, सरकारको यह भी लिख भेजे कि वे किसी भी व्यक्तिको विधान परिषदोंका सदस्य बनाकर नही भेजना चाहते।

प्रत्येक स्थानपर जल्दीसे-जल्दी इस आशयके प्रस्ताव तत्क्षण पास करवाये जाने चाहिए।

हमे काग्रेसकी बैठककी राह देखनेकी आवश्यकता नही। काग्रेस जनमतको अभि-व्यक्त करनेका माध्यम ही अधिक है, जनमतको प्रशिक्षित करनेका साधन अपेक्षाकृत कम ही है। जिन्हे सही मार्गकी प्रतीति हो गई है उन्हे काग्रेसके लिए रुके रहनेकी तनिक भी जरूरत नही है, बल्कि उन्हें तो अपने निश्चयपर अमल करते हुए काग्रेसको जनमतकी दिशा और उसके वेगसे परिचित करवाना चाहिए।

इस महत्कार्यमे सब एकाएक एकमत हो जायें, ऐसा कठिन है। हमे धैर्यपूर्वक विरोधी मत रखनेवाले व्यक्तियोको शिक्षित करना पडेगा। उनके प्रति अरुचि प्रकट करके, उनका बहिष्कार करके हम उनका मत परिवर्तन तो नही कर सकते, उन्हे दलीलोसे विनयपूर्वक समझा-बुझाकर ही अपनी ओर करना होगा। ऐसा करके ही हम सही अर्थोमें जनमतको प्रशिक्षित कर सकेगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११–७–१९२०

२०. युवराजका आगमन

श्री बैप्टिस्टाने इस प्रश्नको [बॉम्बे] 'क्रॉनिकल' में उठाया है कि यदि सम्राट् जॉर्ज पचमके सबसे बडे राजकुमार भारत आये तो आज हम जिस दु:खजनक स्थितिमे है उस स्थितिमे हम उनका हार्दिक स्वागत कर सकते हैं अथवा नही। उसमें मेरे विचारोके सम्बन्धमे भी उन्होने बहुत-कुछ लिखा हैं। इसलिए मेरा यह कर्त्तव्य हो गया है कि इस सम्बन्धमे मैं भी कुछ कहूँ।

मेरी मान्यता है कि युवराज अथवा शाही परिवारको राजनैतिक क्षेत्रमे नही घसीटा जा सकता। सरकारके साथ सामान्य मतभेद हो तो युवराजके आनेपर उनका स्वागत किया जाना चाहिए। लेकिन जब प्रजा शोकग्रस्त हो, जब जनता अत्यन्त पीड़ित हो तब युवराजका आना शोभा नही देता। यदि अधिकारीगण जनताकी मनोस्थितिको जाने बिना युवराजको यहाँ भेजते है तो प्रजा इस कदमके प्रति अपनी नापसन्दगी जाहिर करनेका अधिकार रखती है। उससे युवराजका कोई अपमान नही होता, इस बारेमें अपनी असहमति प्रकट करना ब्रिटिश संविधानके प्रति अपने अज्ञानको व्यक्त करना हैं।

स्मरण रखना चाहिए कि युवराज अपनी इच्छासे नही आते-जाते। वह तो संविधानके विरुद्ध माना जायेगा। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल यहाँकी सरकारसे परामर्श करनेके बाद उन्हे भेजे तभी वे आ सकते हैं। युवराज स्वेच्छासे किसी भी भारतीयसे भेंट नही कर सकते और न वे अपनी इच्छानुसार कोई भाषण ही दे सकते हैं। इसलिए युवराजका आगमन, उनका नही सरकारका कार्य माना जायेगा।

इसके अतिरिक्त सरकार युवराजको हिन्दुस्तानमे स्वार्थवश ही बुला रही है। यदि सरकार और जनताके बीच कोई भारी मतभेद न हो तो दोनोंका एक ही स्वार्थ समझा जायेगा। लेकिन जहाँ भारी मतभेद हो वहाँ सरकारका स्वार्थ-साधन और जनताका नुकसान कहलायेगा। ऐसी परिस्थितियोमे युवराज आये और उनका हम स्वागत करे तो सरकार यह समझेगी कि वह तो ऐसे ही काम करती है जिससे जनताके मनको चोट न पहुँचे, जनताके दु:खी होनेकी बात कुछ असन्तोषशील व्यक्ति ही कर रहे है। उसका ऐसा अर्थ करना आश्चर्यकी बात नही होगी।

इसलिए सरकार यदि ऐसे समय युवराजको यहाँ बुलाती है तो मैं उसे एक जाल ही मानूँगा।

जनताकी आज क्या हालत है? खिलाफतके प्रश्नपर मन्त्रिमण्डलने जनताके एक भागको जो वचन दिया था, उसे उसने तोड़ दिया है और इस वचन-भगपर भारत सरकारने मोहर लगा दी है। मुसलमानोकी धार्मिक भावनाओकी कोई परवाह नही की गई। पंजाबमे जनतापर अधिकारियोने जबरदस्त अत्याचार किया। उसका उसे कोई पश्चात्ताप नही है, इतना ही नही, उनकी कार्रवाइयोंको उसने अत्यन्त उद्धततापूर्वक

ठीक बताया है। अत्याचारियोमे अनेक लोग अपने-अपने पदोंपर बने हुए हैं और उनका अत्याचार आज भी बदस्तूर चल रहा है। ऐसी स्थितिमे यदि हम युवराजका स्वागत करके सरकारकी सत्ताको और भी दृढ करे तो वह अपने हाथो अपने पैर कुल्हाडी मारनेके समान होगा।

युवराजका स्वागत न करनेका अर्थ सरकारके दुष्कृत्योके प्रति कडा विरोध प्रकट करना है। हमे इसका अधिकार है। दुष्कृत्योंका विरोध न करना अपनेको कायरोकी स्थितिमें डालने जैसा है। तब हमारे आवेदन-पत्र तथा शिकायतें सभी कुछ झूठे माने जायेंगे।

यदि सरकार युवराजके आगमनके समय जनतामें उत्साह, उमग तथा मानकी भावनाओको उमडते देखना चाहती हो तो सरकारका कर्त्तव्य है कि वह जनताको सन्तुष्ट करे। जनताको सन्तुष्ट करनेका एक ही मार्ग है — खिलाफतका न्यायपूर्ण निर्णय तथा पजाबके सम्बन्धमें पूर्ण न्याय। इन दोनोके कारण जनता और सरकारके बीच दरार पड़ गई है, और इनके कारण जनता शोकसागरमे निमग्न है। इससे जबतक जनता-का समाधान नही होता तबतक जनताको खुले शब्दोमे जता देना चाहिए कि वह युवराजके स्वागत सम्बन्धी समारोहोमे भाग लेनेमे असमर्थ है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११–७–१९२०

२१. शुद्ध स्वदेशी

इस समय पजाबमें जो हलचल हो रही है उसके सम्बन्धमे गत सप्ताहके 'नवजीवन'मे श्रीमती सरलादेवीने कुछ खबर दी थी। इसके उपरान्त उन्होने तार द्वारा सूचित किया है कि झेलममे जो खिलाफत सम्मेलन हुआ वहाँ उन्होने स्वदेशीपर भाषण दिया था। मुसलमान स्वदेशी-व्रत ग्रहण करने लगे है, इसलिए अब सहज ही खिलाफतके मंचसे स्वदेशीकी बात की जा सकती है।

इस प्रसगमें स्वदेशीके कुछ-एक मूल तत्त्वोको समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। लाखो मुसलमान स्वदेशी-व्रत ले ले तो क्या इससे स्वदेशी आन्दोलनकी वृद्धि हो सकती है? मुझे लगता है कि या तो उनकी आवश्यकताका पर्याप्त नया माल तैयार हो, अथवा व्रत लेनेवाले मुसलमान तथा अन्य लोग अपने कपड़ेकी आवश्यकताओको कम करे तभी यह सम्भव हो सकता है।

हमारी मिलोमें जो माल तैयार होता है वह हिन्दुस्तानके लिए पर्याप्त नही है। मिले तुरन्त अधिक कपडा तैयार कर सकनेकी स्थितिमें भी नही है। फिर उनके बुननेकी क्षमता कातनेकी क्षमतासे कही अधिक है। इसलिए यदि हम मिलके सूतसे हाथ-करघोपर बुने तो उस हदतक मिलोमे बुना जानेवाला कपडा कम हो जायेगा और कपड़ेका परिमाण नही बढ़ेगा, बहुत हुआ तो बाहरसे कपडा अधिक आनेकी

बनिस्बत सूत अधिक आयेगा और हम जहाँके-तहाँ बने रहेंगे। इससे सूतके दाम भी बढ़ जायेंगे और हम बुनाईकी लागतमें कुछ बचत कर लेंगे, यह मानना भी ठीक सिद्ध नहीं होगा। यह दृष्टि स्वदेशीकी दृष्टि नहीं है।

स्वदेशीकी हमारी कल्पनामें धर्म और अर्थकी रक्षा सन्निहित है। अपने ही पड़ोसियोंको अपने भाई-बहनोंकी सेवा न करके उनके मुँहका कौर छीनकर दूसरोंके मुँहमें डालना परमार्थ नहीं है, दया नहीं है, यह तो हमारे द्वारा अपना धर्म-क्षेत्र त्याग देनेके समान है। इसलिए हम अपनी कातनेवाली बहनोंको तथा अपने बुनकरोंको प्रोत्साहन देनेके लिए बँधे हुए हैं। इससे हम देशमें भूखसे मरते हुए लोगोंके घरोंमें साठ करोड़ रुपया भेज सकेंगे। इससे अर्थकी रक्षा होगी। एक साथ धर्म और अर्थका रक्षक स्वदेशीका यह व्रत कठिन बिलकुल नहीं है।

इस धर्मका पालन हाथसे सूत कातने और बुननेके द्वारा ही हो सकता है। अतएव स्वदेशीकी सच्ची और पवित्र प्रवृत्ति वही मानी जायेगी जिसके द्वारा अधिक सूत पैदा करके कपड़ा बुना जा सके तथा बेचा जा सके। अतः स्वदेशीके प्रत्येक प्रेमी तथा स्वदेशीकी दुकानें चलानेवालोंको मेरी सलाह है कि वे कातनेवाले लोगोंको जुटाये तथा उनके द्वारा बनाये गये सूतको बुनवाकर उसका प्रचार करें। मैं जानता हूँ कि यह काम मुश्किल है, इसमें [प्रारम्भमें] निराशाकी सम्भावना है। लेकिन मुश्किलोंको मार्गसे दूर किये बिना उन्नतिकी सम्भावना भी नहीं होगी। धवलगिरिका रास्ता असंख्य यात्रियोंकी हड्डियोंसे पटा हुआ है। ढीले-ढाले लोग तो चढ़नेके पहले ही थक जाते हैं; तथापि वहाँ जानेका रास्ता तो वादियों और पहाड़ियोंके बीचसे होकर ही गुजरता है। यदि स्वदेशीका उपक्रम करनेवाले लोग स्वदेशीके तत्त्वको समझकर कार्यको आगे बढ़ायेंगे तो पछताना नहीं पड़ेगा। यदि आप स्वयं ही कातते रहे तो कोई हर्ज नहीं, यदि आपके कातनेसे थोड़े ही लोगोंको कातनेकी प्रेरणा मिली तो भी कोई हर्ज नहीं — हर्ज तो तब है जब स्वदेशीका प्रचार न हो और हम स्वदेशीके नामसे पुकारे जानेवाले उपक्रमसे सन्तोष मान लें। चमचमाता हुआ पीतल स्वर्णका काम नहीं दे सकता; और न ही काँच हीरेका। और जिस तरह काँचको हीरा मान लेनेमें हीरेको प्राप्त करनेकी व्याकुलता नहीं रह सकती उसी तरह झूठे स्वदेशी-तत्त्वको सच्चा स्वदेशी-तत्त्व माननेसे स्वदेशीके प्रचारमें ढील पड़ जायेगी। कुछ लोग सोचेंगे कि यदि सूत पैदा करनेकी ही बात हो तो करोड़ों स्त्रियोंको सूत कातनेकी बात समझानेके स्थानपर दस-बीस मिलें ही क्यों न स्थापित कर दी जायें। इसका समाधान मैं 'नवजीवन'[1] में कर चुका हूँ। मिलें आसानीसे खड़ी नहीं की जा सकतीं। मिलोंकी स्थापनाका किसीको अलगसे प्रयत्न करना पड़े सो तो बात ही नहीं है। धनाढ्य-वर्ग मिलोंकी स्थापना करके उनकी संख्यामें वृद्धि करता रहता है। मगर मिलोंकी स्थापना करनेका अर्थ उनके लिये आवश्यक यन्त्रोंको विदेशोंसे मँगवानेके लालचमें पड़ना है। इस तरह मिलें बढ़ाते जानेसे करोड़ोंकी भुखमरीका उपचार नहीं मिलता और न प्रत्येक वर्ष करोड़ों व्यक्तियोंमें हम साठ करोड़ रुपया वितरित कर सकते हैं। १,९०० मील लम्बे क्षेत्रमें फैली हुई हिन्दु-

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ३७२-७६।

स्तानकी करोड़ोंकी आबादीकी भुखमरी तबतक दूर नहीं हो सकती जबतक हम उनके लिए खेतीके अतिरिक्त कोई सहायक धन्धा नहीं खोज निकालते, और ऐसा धन्धा [चरखेपर] सूत कातने और उसको कुछ हदतक [हाथ करघेपर] बुननेका ही है। डेढ़ सौ वर्ष पहले यह धन्धा हिन्दुस्तानमें प्रचलित था और उस समय हम आजके समान कंगाल नहीं थे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११–७–१९२०

२२. शान्तिनिकेतन

श्री एन्ड्र्यूज[1] लिखते हैं कि शान्तिनिकेतनमें भवन-निर्माणका कार्य हो रहा है और पैसेकी बहुत तंगी रहती है। कविश्री[2] आजकल वहाँ नहीं हैं तथा उसका मुख्य भार श्री एन्ड्र्यूजपर है।

मुझे लगता है कि कविश्रीके आगमनपर[3] गुजरातने अपना कर्त्तव्य पूरी तरहसे नहीं निभाया। नारों और फूलोंके हारोंसे स्वागत करना शिष्टाचार है, यह कर्त्तव्य पूरा करनेकी शुरुआत है, उसकी चरम परिणति नहीं। यदि हम कविश्रीको अलौकिक पुरुषके रूपमें मानते हों, यदि हम उनकी विद्वत्ताका सम्मान करना चाहते हों तो उनके कार्यमें उनकी सहायता करना हमारा धर्म है।

मदद करनेसे पहले सभी मनुष्योंके सभी कामोंकी जानकारी प्राप्त करनेकी हमें आवश्यकता नहीं होती। सम्भव है कि महान् पुरुषोंके कार्यमें हमें अपूर्णता दिखाई दे तथापि उनके कार्यमें मदद करना हमारा कर्त्तव्य है।

पंडिता रमाबाईकी[4] प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें शायद ही हम लोग कुछ जानते हैं। उक्त महिला अकेली ही अमेरिकासे प्राप्त पैसेकी सहायतासे अपना काम चला रही हैं। वे ईसाई हैं इसलिए हम उनके कार्योंमें दिलचस्पी नहीं लेते। वे हमारे पास मदद माँगनेके लिए भी नहीं आतीं। और नहीं आतीं सो ठीक ही करती हैं। उनके कार्योंके पीछे ईसाई धर्मका प्रचार करनेका उद्देश्य निहित है और यह बात अमरीकियोंको पसन्द है। पण्डिताके सब कार्योंको वे लोग देखने नहीं जाते, कदाचित् वे पसन्द भी न करें। तथापि पण्डिताका उद्देश्य ही उनके लिए पर्याप्त है और इसीलिये उनमें से कुछ लोग उनके द्वारा स्थापित बड़ी संस्थाका ज्यादातर खर्चा उठा रहे हैं।

१. चार्ल्स फ्रीयर एन्ड्र्यूज (१८७१–१९४०); ब्रिटिश मिशनरी, गांधीजी और रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सहयोगी; 'दीनबन्धु' के नामसे विख्यात।

२. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (१८६१–१९४१); कवि और कलाकार, इन्हें १९१३ में अपनी काव्य-पुस्तक गीतांजलिपर नोबेल पुरस्कार मिला था; विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतनके संस्थापक।

३. अप्रैल १९२० के प्रथम सप्ताहके दौरान रवीन्द्रनाथ ठाकुर गुजरात आये थे; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ३३९।

४. १८५८–१९२२; ईसाई मिशनरी, संस्कृतकी प्रकाण्ड पण्डिता, समाज-सुधारक और शिक्षा-शास्त्री।

इसी तरह यदि हम कविश्रीके उद्देश्यको समादृत करते हो, राष्ट्रीय शिक्षाको राष्ट्रके ही हाथोंमे रखनेके प्रयोगको पसन्द करते हो, कविश्रीकी कलाका कुछ अंश हमारे बालकोंको भी मिले यदि ऐसा चाहते हो तो हमें उस संस्थाको चलानेमें मदद करनी चाहिए। कविश्रीने स्वय ही कहा है कि शान्तिनिकेतन उनका विनोद है। वे अपने विनोदकी खातिर ही बालकोंको इकट्ठा करते हैं। उस वातावरणमें उनका अधिकसे-अधिक विकास होता है। शान्तिनिकेतन उनके पिताश्री महर्षि देवेन्द्रनाथकी कृति है। हम कविश्रीकी पूजा करें और उनकी सस्थाकी मदद न करें, ये तो परस्पर विरोधी बातें हैं।

गुजरातियोंको मैं इस संस्थाका थोडा-बहुत भार उठा लेनेकी सलाह देता हूँ, क्योंकि कविश्रीको हमने अपने सम्मानित अतिथिके रूपमे निमन्त्रित किया था। हमारे निमन्त्रणको स्वीकार करनेमे उनका उद्देश्य यह भी था कि हम उनकी सस्थाको मान्यता प्रदान करेगे और उसकी मदद करेगे। जहाँ-जहाँ भावसहित उन्हें भेंटे समर्पित की गईं वहाँ-वहाँ उन्होने उन्हें सहर्ष स्वीकार किया। उनका काठियावाड़का प्रवास निरर्थक ही गया, ऐसा कहा जा सकता है। भावनगरमे किसीने कुछ नही किया, बड़ौदामे भी ऐसा ही हुआ। अहमदाबादने जो-कुछ किया वह उसकी क्षमताके प्रमाणमे थोडा ही माना जायेगा। मुझे उम्मीद है कि हम आज भी इस दोषको सुधारकर अपनी सत्कार-भावनाको पूर्णता प्रदान करेगे।

माँगरोलके[1] श्री तुलसीदास कराणीके यहाँ विवाहोत्सव था, उन्होंने उस अवसरका लाभ उठाकर थोडे ही दिन पहले १,००१ रुपये भेजे थे। उनकी प्राप्ति स्वीकार करते समय ही श्री एन्ड्रयूजने बताया कि अभी बहुत अधिक मददकी जरूरत है। हम जैसे-जैसे आगे बढ़ेगे वैसे-वैसे हमपर इस प्रकारके ऐच्छिक कर भी निश्चय ही बढ़ते जायेंगे। हमे अपनी सामर्थ्यके अनुसार इन ऐच्छिक करोको चुकाकर उनसे मुक्ति पानी चाहिए। जिनका विचार सहायता करनेका हो उन्हे आश्रम अथवा श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज, शान्तिनिकेतन, बोलपुर, ईस्ट इंडिया रेलवेके पतेपर अपने चन्देकी रकम भेजनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११–७–१९२०

१. सौराष्ट्रमें।

२३. जूनागढ़का पागलपन

जूनागढ़के बहाउद्दीन कालेजके सिंधी विद्यार्थियोंको वहांके नवाब साहबने कालेज-से निकलवा दिया — यह खबर अब पुरानी हो चुकी है। साठ विद्यार्थियोंको अकारण ही चौबीस घंटेके भीतर कालेजसे निकाल देना और गाड़ीमें बैठाकर रवाना कर देना पागलपनकी ही निशानी माना जायेगा। यह पागलपन हमें पंजाबके सैनिक शासनकी याद दिलाता है।

तुरन्त ही यह सवाल सामने आ जाता है कि क्या इस कदमके पीछे ब्रिटिश सरकारका कोई असर है। नवाब साहब कोई कारण बताते नहीं जान पड़ते, इसलिए निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है।

अगर नवाब साहबने अपनी ही इच्छासे यह कदम उठाया हो तो इसका मतलब है, देशी रजवाड़ोंके अधीन रहनेवाले लोग ब्रिटिश सरकारकी अधीनस्थ प्रजासे भी अधिक दुःखी हैं।

देशी राजाओंकी स्थिति मात्र दयनीय ही कही जा सकती है। वे तो स्वयं ही ब्रिटिश सरकारकी प्रजा हैं। उनकी सत्ता और सम्पत्तिका आधार तो केवल ब्रिटिश साम्राज्य है और उसीकी बदौलत वह सुरक्षित भी रह सकती है। ऐसे पराधीन राजाओंके अधीन रहनेवाली प्रजा दोहरी दासतामें रहती है और इसलिए अक्सर उसे दोहरा नुकसान भी उठाना पड़ता है।

लेकिन यह अवसर इन सवालोंपर विचार करनेका नहीं है कि नवाब साहबकी इस कार्रवाईके लिए कौन जिम्मेदार है, देशी रजवाड़ोंकी प्रजाको क्या अधिकार प्राप्त हैं और उनकी दशा कैसे सुधारी जाये। हमारे सामने इस सबपर विचार करनेके लिए पर्याप्त तथ्य भी नहीं हैं।

लेकिन अब एक बड़ा सवाल यह उठता है कि अपने साथियोंके प्रति काठियावाड़-के विद्यार्थियोंका क्या फर्ज है। काठियावाड़के लोग शारीरिक दृष्टिसे काफी मजबूत हैं, बहादुर भी माने जाते हैं। उनकी सहन-शक्तिकी प्रशंसा की जाती है। फिर क्या काठियावाड़के विद्यार्थी अपने सिन्धी साथियोंका अपमान चुपचाप पी लेंगे? मुझे तो लगता है कि अगर सिंधी विद्यार्थियोंको फिरसे कालेजमें बुला नहीं लिया जाता तो काठियावाड़ी विद्यार्थियोंका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे भी कालेज छोड़ दें।

अब इसपर शायद यह कहा जाये कि ऐसा करनेपर इन बेचारे विद्यार्थियोंकी पढ़ाईका हर्ज होगा। मैं तो कहूंगा कि ऐसे अवसरपर तो कालेज छोड़ देनेमें ही उनकी सच्ची पढ़ाई — सच्ची शिक्षा है। जो शिक्षा हमें स्वाभिमानका पाठ नहीं पढ़ाती वह शिक्षा किस कामकी? प्रसंग आनेपर स्वयं कष्ट सहकर भी अपने साथियोंके सम्मानकी रक्षा करनी चाहिए। अन्यायके विरुद्ध उनकी रक्षा करनेमें ही पुरुषार्थ है।

हमें सबसे पहले मनुष्य बनना सीखना है। अक्षरज्ञानका पात्र भी मनुष्य ही होता है। जिसने मनुष्यता खो दी उसे किताबी शिक्षा देनेसे क्या फायदा? अक्षरज्ञानसे

मनुष्यता नही आती। फिर कालेजके विद्यार्थियोको बच्चा नही कहा जा सकता। ऐसा नही कहा जा सकता कि वे उचित-अनुचितके सम्बन्धमे खुद ही नही सोच सकते। इसलिए मुझे आशा है कि अगर सिंधी विद्यार्थियोके साथ न्याय नही किया गया तो बहाउद्दीन कालेजका हरएक काठियावाडी विद्यार्थी कालेज छोड़ देगा।

फिर, लोग यह पूछ सकते है कि उसके बाद क्या होगा। सम्भव है कि इन विद्यार्थियोंको दूसरे कालेज भी प्रवेश न दे। अगर प्रवेश देनेको तैयार भी हो तो उनके पास शायद फीस देनेके लिए पैसे न हो। लेकिन कालेज छोड़नेका महत्त्व तो इन कठिनाइयोको झेलनेमे ही है। अगर कालेज भी घास-पातकी तरह उगते होते तो उनका कोई महत्त्व नही रहता और फलतः सिन्धी विद्यार्थियोंको निकाला भी नही जाता।

जो विद्यार्थी कालेज छोड़ दे, वे मेहनत करके घरपर ही पढाई कर सकते हैं। उनकी मुफ्त शिक्षाका भी प्रबन्ध हो सकता है। आजकल ऐसे परमार्थी शिक्षक मिल जाना बहुत कठिन नही है जो इस तरहके विद्यार्थियोंको मदद देनेके लिए बेहिचक तैयार हों। अगर विद्यार्थी सिर्फ अपना प्राथमिक कर्त्तव्य निभाये तो उन्हे इस अन्यायके प्रतिकारका मार्ग सूझ जायेगा। जो कर्त्तव्य सामने आ जाये उसे निभाते हुए भविष्यकी चिन्ता न करना — यही निष्काम कर्म है, यही धर्म है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-७-१९२०

२४. पत्र : अखबारोंको[1]

[११ जुलाई, १९२०][2]

श्री मो० क० गांधी अखबारोंको लिखते हैं:

मुझे जोहानिसबर्गसे निम्नलिखित तार मिला है:

> **दादू बनाम क्रूगर्सडॉर्प नगरपालिकाके मामलेमें अपील अदालतने एशियाई कम्पनियों द्वारा अचल सम्पत्ति रखनेकी वैधता स्वीकार कर ली है। न्यायपीठके सदस्य न्यायमूर्ति रोज इन्स, सॉलोमन, मासंडॉर्प, जूटा और डी'विलियर्स थे। सिर्फ न्यायमूर्ति डी'विलियर्सने ही विपक्षमें निर्णय दिया।**

इस तारका मतलब यह है कि हमारे दक्षिण आफ्रिकावासी त्रस्त देशभाइयोको बहुत राहत मिली है। स्मरण होगा कि ट्रान्सवालके उच्च न्यायालयने भारतीय कम्पनियो द्वारा अचल सम्पत्ति रखना कानूनी जालसाजी बताते हुए उनके विरुद्ध निर्णय दिया था। अपील अदालतका विचार स्पष्टत. इससे भिन्न है और उसने इस भारतीय

१. दक्षिण आफ्रिकी न्यायालयके निर्णयपर।

२. १८ जुलाई, १९२० के गुजरातीके अनुसार गांधीजीने यह सन्देश इसी तारीखको जारी किया था।

दावेको सही माना है कि भारतीय कम्पनियोंने अचल सम्पत्तिकी जो खरीदारियाँ की हैं वे सर्वथा वैध हैं।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १२–७–१९२०

२५. तार : ख्वाजाको

बम्बई

[१२ जुलाई, १९२० के पूर्व][1]

स्थानीय पथ-प्रदर्शनके बिना देशी राज्योंमें असहयोग असम्भव।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ १०६४

२६. पत्र : मगनलाल गांधीको

सोमवार [१२ जुलाई, १९२० के पूर्व][2]

चि० मगनलाल,

मैंने आज आनन्दानन्दको तुम्हें यह सूचित करनेके लिये कहा है कि धारवाड़के श्री काले मेलसे अहमदाबादके लिये रवाना होंगे। तुम उन्हें स्टेशनपर लेने जाना। वे तुम्हें यही बात विस्तारसे लिखेंगे।

मैं तो बाके विचारसे यह पत्र लिख रहा हूँ। देखता हूँ कि बाका मन प्रसन्न नहीं रहता। वह बीमार रहती है और अपनी शक्तिसे बाहर काम करती है। चूँकि निर्मला मेरे साथ आई है, इसलिए मैं देवदासको साथ नहीं लाया। देवदासकी उपस्थितिमें गोकी बहन तथा बाके साथ सलाह कर जो उचित जान पड़े सो उपचार करना। कपड़े धोने और बर्तन माँजनेका बोझ कम हो जानेसे कदाचित् तुम्हारा काम चल जायेगा। रोटियोंकी कमी क्यों होती है, यह बात मेरी समझमें नहीं आती।

१. दिल्ली भेजे गये तारको पुलिसने बीचमें ही रोककर १२ जुलाई, १९२० को जाँचा था।

२. लगता है कि यह पत्र बम्बईसे लिखा गया था, स्पष्टतः यह १८–७–१९२० के *नवजीवन*में की गई इस घोषणाके पहले लिखा गया था कि गणेश भास्कर काले द्वारा श्री रेवाशंकर मेहता पुरस्कारके अनुरूप एक चरखा बनाया गया है। देखिए खण्ड १६, पृष्ठ २२३-२४। गांधीजी १२–७–१९२० को सोमवारके दिन ही अहमदाबाद पहुँचे थे।

रसोईमे कामका अधिक बोझ हो और कुछ फेरफार किया जा सकता हो तो करना। क्या फिलहाल वहाँ १५ व्यक्ति भोजन करते है ? मै बहुत करके सोमवारको वापस आ जाऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७८७) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

२७. भाषण : फीजीके सम्बन्धमें

बम्बई
१३ जुलाई, १९२०

कल साम्राज्यीय भारतीय नागरिकता संघ (इम्पीरियल इंडियन सिटिजनशिप एसोसिएशन), बॉम्बे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन, भारतीय व्यापार संघ व कार्यालय (इंडियन मर्चेंट्स चैम्बर ऐंड ब्यूरो), भारतीय होमरूल लीग, अखिल भारतीय होमरूल लीग, बॉम्बे नेशनल यूनियन और बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस समितिके सम्मिलित तत्त्वावधानमें बम्बईके नागरिकोंकी एक सार्वजनिक सभा दक्षिण आफ्रिका और फीजीमें भारतीयोंकी स्थितिपर विचार करनेके लिए एक्सेल्सियर थियेटर, बम्बईमें हुई। सभाकी अध्यक्षता सर नारायण चन्दावरकरने की[1]। उपस्थिति बहुत अच्छी थी।

श्री गांधीने सभाके समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव रखा :

(क) पूर्वी आफ्रिकाके रक्षित राज्य (ईस्ट आफ्रिकन प्रोटेक्टोरेट) में बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध बढ़ते हुए आन्दोलनको यह सभा भय और गहरी आशंकाकी दृष्टिसे देखती है और आशा करती है कि भारत सरकार विशेषतः इस तथ्यका ख्याल करते हुए कि इस रक्षित राज्यपर सम्राट्की सरकारका सीधा नियन्त्रण है और इस बातको भी मद्देनजर रखते हुए कि भारतीय दक्षिण आफ्रिकामें यूरोपीयोंसे पहले आये थे, वैधानिक अथवा प्रशासनिक कानूनों द्वारा अपहरणसे भारतीयोंके अधिकारोंकी रक्षा करेगी, और यह भी आशा करती है कि भारत सरकार संरक्षक शासनसे यह कहेगी कि आजकल जो कानूनी या प्रशासनिक असमानता मौजूद है वह उसे दूर करे और इस प्रकार श्रेणी सम्बन्धी पूर्ण समानता स्थापित करे।

(ख) जर्मन पूर्वी आफ्रिकाका जो हिस्सा [मित्र राष्ट्रोंके] अधिकारमें है और जिसे आजकल टांगानिकाके नामसे पुकारा जाता है, उसके प्रशासकके हाथमें

१. १८५५-१९२३; समाज-सुधारक तथा बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश; १९०० में कांग्रेसके लाहौर अधिवेशनके अध्यक्ष।

अवांछित सत्ता सौंप दी गई है। उसे यह अधिकार दे दिया गया है कि वह किसी भी व्यक्तिको उसपर मुकदमा चलाये बिना ही निर्वासित कर सकता है। उस अधिकारका अमल केवल भारतीयोंके विरुद्ध ही किया जाता है। यह सभा उसका जोरदार विरोध करती है और उक्त राज्यमें बसे हुए भारतीयोंके दूसरे कष्टोंको जैसे पुलिसकी रक्षाका अभाव, कृत्रिम आर्थिक निर्योग्यताएँ जो अब लड़ाईके पहले प्रचलित अन्तःकालीन जर्मन करंसी नोटोंको अवैध करार दे दिये जानेसे उत्पन्न हुई हैं, विनियम सम्बन्धी जटिलता और यात्रा सम्बन्धी प्रतिबन्ध इत्यादि बातोंपर बहुत चिन्ता प्रकट करती है। इस सभाकी रायमें इन निर्योग्यताओंके परिणाम-स्वरूप ब्रिटिश भारतीय प्रवासियोंकी दशा जर्मन शासनके दिनोंकी अपेक्षा बदतर हो गई है। यह सभा विश्वास करती है कि भारत सरकार भारतीयोंके उन कष्टोंको जिनके बारेमें शिकायत की जा चुकी है दूर करानेकी अविलम्ब व्यवस्था करेगी।

श्री गांधीने कहा कि प्रस्ताव श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज द्वारा पेश किया जानेवाला था परन्तु वे ऑपरेशनके कारण हाजिर नहीं हो सके हैं। मैं उन्हींकी ओरसे यह प्रस्ताव रख रहा हूँ। उन्होंने मुझसे यह भी कहा था कि इस अवसरके लिए उनके द्वारा लिखे भाषणको मैं पढ़ सुनाऊँ:

श्री गांधीने तब श्री एन्ड्रयूजका भाषण पढ़ सुनाया . . .।[1]

श्री मो० क० गांधीने निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया:

यह सभा भारत सरकारसे प्रार्थना करती है कि भारतीयोंकी अभी हालमें की गई हड़ताल तथा उस सिलसिलेमें जो गोलियाँ चलाई गई थीं उसके बारेमें उसके तथा फीजी सरकारके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ है उस पूरे पत्र-व्यवहारको प्रकाशित कर दे। सभा भारत सरकारसे यह भी माँग करती है कि फीजीमें बसे हुए उन भारतीयोंको जो भारत लौटना चाहते हैं स्वदेशयात्रा सम्बन्धी सुविधाएँ शीघ्र देनेकी कृपा करे। यह सभा फीजी सरकारके उस हुक्मका विरोध करती है जिसके द्वारा फीजीके पुराने वकील श्री मणिलाल डाक्टरको[2], उनपर मुकदमा चलाये बिना ही, निर्वासित कर दिया गया है और सरकारसे यह माँग भी करती है कि उनपर जारी किया गया हुक्म वापस ले लिया जाये।

श्री गांधीने प्रस्ताव पेश करते समय कहा कि इस प्रस्तावमें फीजीके भारतीयोंकी उन दिनोंकी दशाका जब वे गिरमिटियोंकी हैसियतसे काम कर रहे थे, यह प्रथा सौभाग्यसे अब बन्द कर दी गई है, कोई उल्लेख नहीं है। जो लोग इस प्रश्नका अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे शाही परिषद्में गिरमिट-प्रथाके सम्बन्धमें

१. यहाँ नहीं दिया है।

२. गांधीजीके मित्र डा० प्राणजीवन मेहताके दामाद। वे १९१२ में सार्वजनिक सेवा-कार्यके लिए फीजी गये थे।

दिये गये स्वर्गीय श्री गोखले[1] और माननीय श्री मदनमोहन मालवीयके[2] भाषण पढ़ें। इन दोनों सज्जनोंने गिरमिट-प्रथाका अन्त करानेके महान् प्रयासमें बहुत बड़ी सहायता की है। भारतके बाहर हमारे देशवासियोंका जो दर्जा माना जाता है उससे हमारे दिलोंमें जबरदस्त शर्मके साथ यह बात भी उत्पन्न होती है कि हम इस साम्राज्यके अन्त्यज हैं। स्वर्गीय श्री गोखले हमारा ध्यान उस व्यवहारकी ओर आकर्षित किया करते थे जो हम अपने ही बन्धुओं, अन्त्यजोंके प्रति किया करते हैं। वे यह भी कहा करते थे कि साम्राज्यके विभिन्न राज्योंमें हमारे देशवासियोंके साथ किया जानेवाला व्यवहार उस पापके प्रायश्चित्त स्वरूप है जो हम अपने देशवासियोंके पंचमोंके प्रति करते आ रहे हैं। इस समय जो प्रस्ताव सभाके सामने है उसमें फीजीके भारतीयोंकी वर्तमान दशाका विवरण है। उसके द्वारा हम सरकारसे यह माँग करते हैं कि भारतीयोंने जब वहाँ हड़ताल की थी वह उन दिनों तथा उसके बाद जारी किये गये मार्शल लॉके दिनोंका पूरा विवरण प्रस्तुत करे। इस प्रस्ताव द्वारा हम सरकारसे यह माँग भी करते हैं कि जो लोग फीजीसे चले जाना चाहते हैं उन्हें यात्रा सम्बन्धी सुविधा प्रदान की जाये। एक जहाज बन्दरगाहमें पहुँच चुका है। माननीय पं० मदनमोहन मालवीयको इस सम्बन्धमें समाचार मिल चुका है और उन्होंने उन बदकिस्मत लोगोंसे, जो यहाँ आये हुए हैं और जिनमें लगभग ५०० कोढ़ी भी हैं, मिलनेके लिए एक प्रतिनिधि भेजा है। मैं भारत लौटे हुए दो प्रवासियोंसे मिल चुका हूँ। उन्होंने मार्शल लॉके दौरान घटित घटनाओंका सजीव चित्रण किया। जो बातें उन्होंने सुनाईं यदि वे सच हैं तो वह अमृतसरकी घटनाका दूसरा संस्करण ही है। फीजीमें स्थिति ठीक-ठीक क्या है इसे जाननेका भारत अधिकारी है। फीजीके डायरों[3], ओ'ब्रायनों और बॉसवर्थ स्मिथोंको जानना आवश्यक है। जब सब तथ्य देशके सामने आ जायेंगे तब आप लोगोंका यह दुःखद कर्त्तव्य होगा कि आप लोग अत्याचारियोंको उचित दण्ड दिये जानेकी माँग करें।

इस प्रस्तावमें श्री और श्रीमती मणिलाल डाक्टरके निर्वासनसे सम्बन्धित जानकारी हासिल करनेकी भी कोशिश की गई है। वे फीजीके नेता हैं। उन्हें निर्वासित क्यों किया गया? उनपर कोई मुकदमा नहीं चलाया गया था। यह निर्वासन लाला हरकिशनलाल[4] तथा अन्य व्यक्तियोंके निर्वासनसे भी अधिक असह्य है। पण्डित मोतीलाल नेहरू[5]

१. गोपाल कृष्ण गोखले (१८६६-१९१५)।

२. (१८६१-१९४६); बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्थापक।

३. रेजीनाल्ड एडवर्ड हैरी डायर (१८६४-१९२७); अमृतसर क्षेत्रके कमांडिंग आफिसर, जलियाँवाला बागमें सभाके लिए एकत्रित शान्त जनतापर जिन्होंने गोलियाँ चलानेका हुक्म दिया था; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १२८-३२२।

४. पंजाबके एक धनाढय व्यवसायी और महाजन।

५. (१८६१-१९३१); वकील और राजनीतिज्ञ; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दो बार सभापति।

और पण्डित मदनमोहन मालवीय उस घटनाके बाद यथासम्भव शीघ्र पंजाब गये थे और उन्होंने पंजाबके उन नेताओंका काम अपने हाथमें ले लिया था जो जेल भेजे जा चुके थे। श्री मणिलाल डाक्टर और श्रीमती मणिलाल डाक्टरका रिक्त स्थान कौन भरे? देशको अधिकार है कि वह इस मामलेमें इन्साफकी माँग करे। श्री गांधीने सभामें उपस्थित लोगोंका ध्यान उस उत्तरकी ओर आकर्षित किया जो स्वर्गीय सर जॉन गॉर्स्टने एक साल पूर्व मणिपुर-आक्रमणके सम्बन्धमें दिया था। सर गॉर्स्ट एक मुँहफट भारत उप-सचिव थे। उन्होंने सदनमें कहा था कि ब्रिटिश सरकारकी भारत-के सम्बन्धमें यह नीति है कि अफीमके बढ़े हुए पौधोंको निर्मूल कर दिया जाये। क्या हम यह जान लें कि श्री मणिलाल और श्रीमती मणिलाल अफीमके ऐसे ही पौधे थे? यह देखना भारतका कर्त्तव्य है कि जनताके सहज नेताओंको चुपचाप बिना किसी मुकदमेके यों ही उनसे पृथक न कर दिया जाये। गांधीजीने अपने भाषणको समाप्त करनेसे पूर्व कहा कि आप लोगोंको यह नहीं सोचना चाहिए कि [अबतक शायद] दक्षिण आफ्रिकाका प्रश्न साम्राज्यीय नागरिकता संघ (इम्पीरियल सिटिजनशिप एसो-सिएशन) की किसी अवहेलना अथवा उसके अपेक्षाकृत कम महत्त्वका होनेके कारण आप लोगोंके सम्मुख नहीं रखा जा सका है। यह संघ भारत सरकारसे बराबर घनिष्ठ सम्पर्क बनाये हुए है; इस प्रश्नको सामने न लानेका कारण यह है कि अभीतक एशि-याई आयोगने अपनी रिपोर्ट पेश नहीं की है। देशको मालूम है कि भारत सरकार दक्षिण आफ्रिकाके घटना-चक्रको उत्सुकताके साथ देख रही है। जब अवसर आयेगा तब यह संघ अवश्य ही दक्षिण आफ्रिकाके बारेमें भी देशको उसी तरह सचेत करेगा जैसा कि उसने फीजी और पूर्वी आफ्रिकाके मामलोंमें किया है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १४-७-१९२०

२८. कौंसिलोंका बहिष्कार

कौंसिलोंके प्रस्तावित बहिष्कारके सम्बन्धमें पण्डित रामभजदत्त चौधरीने[1] लाला लाजपतरायका विरोध किया है। मद्रासमें इस प्रश्नपर दो मत हैं। वहाँके अधिकांश राष्ट्रवादी नेता कौंसिलोंके बहिष्कारके लिए राजी नहीं मालूम होते हैं। 'मराठा' ने अपने एक युक्तियुक्त लेखमें कौंसिलोंके बहिष्कारका विरोध किया है। बहिष्कारकी नीति अस्वीकार करनेके दो मुख्य कारण हैं (१) यदि राष्ट्रवादी कौंसिलोंका बहिष्कार करते हैं तो सब सीटोंपर नरम दलवाले पहुँच जायेंगे, (२) चूँकि विधान परिषदोंके माध्यमसे हमने अभीतक कुछ प्रगति की है, इसलिए हम कौंसिलोंके जरिये अब और

१. पंजाबके एक नेता और कवि; जिन्होंने अपनी पत्नी सरलादेवीके साथ पंजाबकी सार्वजनिक हलचलोंमें प्रमुख भाग लिया था।

अधिक प्रगति कर सकेगे; क्योकि इन कौसिलोमे जनताके प्रतिनिधियोको अधिक अधिकार दिये गये है।

अब पहला कारण ऐसा है जो एक बड़ी और लोकप्रिय दलकी प्रतिष्ठाके अनुकूल नही है। यदि कौसिलोंमे प्रवेश करना हानिकारक है तो फिर राष्ट्रवादियोको नरमदल-वालों द्वारा कौसिलोंमे सीटे हथिया लेनेकी बातपर उद्विग्न नही होना चाहिए। नरम-दलवाले कौसिलोमे जानेसे परहेज नही करेगे, क्या केवल इसीलिए एक झझटमे पड़ना कोई लाजिमी बात हो जाती है। अथवा वे यह कहना चाहते है कि यदि सभी लोग असहयोग अथवा बहिष्कारको स्वीकार नही करते तो कौसिलोसे बचा भी कैसे जा सकता है? उनके कथनका यही आशय है तो स्पष्ट है कि वे बहिष्कारके सिद्धान्तोसे अपर-चित है। हम किसी संस्थाका उसी सूरतमे बहिष्कार करते है जब उसे पसन्द न करते हों या जब हम उस संस्थाके सचालकोके साथ सहयोग न करना चाहते हो। कौसिल-प्रवेश न करनेका निर्णायक कारण यह अन्तिम बात ही हो सकती है। मेरा निवेदन यह है कि भले ही कौसिल-प्रवेश करनेमे आपका मकसद अड़गे डालना ही हो, परन्तु उनमे जाना एक प्रकारसे सरकारके साथ सहयोग करना ही है। ऐसी बहुत-सी कौसिले है जो अड़ंगोकी वदौलत ही फलती-फूलती है, ब्रिटेनकी विधान परिषद् स्वय इसका सर्वोत्तम नमूना है। आयरलैण्डके सदस्योकी योजनाबद्ध अड़गेबाजीका ब्रिटेनकी कॉमन सभापर कोई कहने योग्य असर नही हुआ। आयरलैडके निवासी जिस स्व-शासन-की माँग कर रहे थे वह उन्हे नही मिला। 'मराठा' की दलील यह है कि अडगेबाजी सक्रिय और उग्र असहयोग ही होगी। मै इसे माननेसे इनकार करता हूँ। मेरे मतानु-सार तो इससे अपने प्रति अर्थात् अपने सिद्धान्तके प्रति विश्वासकी कमी जाहिर होती है। दुविधामे पडना मृत्युको बुलाना है। यदि राष्ट्रवादी कौसिलोका बहिष्कार कर दे तो मेरी समझमे अग्रेज अथवा नरमदलके लोग इस घटनाको अविचलित भावसे स्वीकार नही कर सकते। आज हमारे सामने प्रश्न बिलकुल साफ है। क्या कोई नरमदलीय नेता यह जानते हुए भी कि उसके आधेसे अधिक मतदाता उसकी उम्मीदवारीका समर्थन नही करते कौसिल-प्रवेशकी इच्छा करेगा? मेरा तो खयाल यह है कि ऐसा कौसिल-प्रवेश विधि-सम्मत भी नही होगा। क्योकि ऐसा सदस्य अपने निर्वाचन-क्षेत्रका प्रतिनिधित्व नही करता। बहिष्कारकी मेरी कल्पनामे अनुशासनबद्ध आन्दोलन और सतर्क प्रचार ग्रहीत है। और इसका आधार है मेरा यह विश्वास कि स्वयं मतदाता अडगेबाजीके रूपमे किये गये अपूर्ण बहिष्कारकी अपेक्षा पूर्ण बहिष्कार पसन्द करेगे। अगर यह मान लिया जाये कि लोग पूर्ण बहिष्कार नही चाहते तो उसमे आस्था रखनेवालोका कर्त्तव्य हो जाता है कि वे मतदाताओंको यह समझानेका प्रयत्न करे कि अड़गे डालनेकी अपेक्षा बहिष्कार करना अच्छा है। कौसिलोमे प्रविष्ट होनेका अर्थ वहाँ बहुमतके आगे सर झुकाना अर्थात् सरकारसे सहयोग करना है। और अगर हम सरकारके यन्त्रको ही ठप कर देना चाहते है, और ऐसा है भी, तो हमे चाहिए कि खिलाफतके प्रश्न तथा पजावके मामले-मे हमारे साथ न्याय होनेतक हम अपनी सारी शक्ति सरकारके विरोधमे लगाये। अतः हम कौसिलोंमे बहुमतके आगे सिर झुकानेसे इनकार करे, क्योकि वह कौसिल न तो

देशकी इच्छाका प्रतिनिधित्व करेगी और न हमारा ही — यह दूसरी बात हमारे सिद्धान्तको देखते हुए अधिक उपयुक्त है। जो पदपर रहनेसे इनकार कर देता है वह मन्त्री उस मन्त्रीसे अच्छा है जो विरोध जाहिर करके भी पदपर बना रहता है। विरोध-भाव जाहिर करके भी पदपर बने रहनेसे ऐसा लगता है मानो स्थिति असह्य नही है। मैं कहता हूँ कि सरकारने जो स्थिति उत्पन्न कर दी है वह असहनीय है इसलिए जिसे आत्मसम्मान प्रिय है उस व्यक्तिके लिए तो एक ही मार्ग शेष रह जाता है, असहयोग करना — अर्थात् सारे सम्बन्धोका पूरा-पूरा त्याग। जनरल बोथाने[1] लॉर्ड मिलनर-की[2] कौसिलमे प्रविष्ट होनेसे इस कारण इनकार किया था क्योकि वे उस सिद्धान्तको कतई पसन्द नही करते थे जिसके अनुसार लॉर्ड मिलनर बोअरोके साथ व्यवहार किया करते थे। जनरल बोथाको सफलता मिली और उसका कारण यह था कि उनको लगभग पूरे ट्रान्सवालका समर्थन प्राप्त था। राजनीतिके दृष्टिकोणसे देखकर कहे तो सफलताका दारोमदार देशके द्वारा बहिष्कार आन्दोलनको अपनानेपर है। धार्मिक दृष्टिकोणसे देखे तो कह सकते हैं कि जब कोई व्यक्ति अपने सिद्धान्तके अनुसार आचरण करता है तो उसे सफलता प्राप्त हुए बिना नही रहती; और राष्ट्रीय सफलता भी इसी कारण असंदिग्ध बन जाती है कि सीधेसे-सीधा मार्ग दिखाकर सफलता प्राप्त करनेकी बुनियाद डाल दी गई है।

दूसरी दलील यह पेश की जाती है कि इन नई कौसिलोमें प्रवेश करनेपर सफलता अवश्यम्भावी इसलिए भी है कि हम इससे पूर्व अपेक्षाकृत कम प्रजातन्त्रीय संस्थाओंमें प्रविष्ट हो चुके हैं और हमने वहाँ भी काफी अच्छा काम करके दिखाया है। इस दलीलके उत्तरमे कहा जा सकता है कि उस वक्ततक हमारे बीच कोई खाई नही बन पायी थी, हम लोगोके हृदयोंमे ब्रिटेनकी ईमानदारी और न्याय-प्रियताके प्रति शंका उत्पन्न नही हुई थी या यो कहिये कि उस समय हम बहिष्कारको सफल कर सकनेके सम्बन्धमें आश्वस्त नही थे या कहिए जिस तरीकेको हम आज अपनाये हुए हैं उस समयतक वह हमारे सामने नही आ सका था। कदाचित् उपर्युक्त तीनो बाते इसका कारण रही हो। आखिरकार तरीके और ढंग तो समयके साथ बदलते रहते हैं। ज्यों-ज्यो काल बीतता जाये अधिकाधिक बुद्धिमान होते जाना चाहिए। जो भोजन बचपनके दिनोमें हमारे लिए उपयुक्त था वह आज जवानीमे उपयुक्त नही हो सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-७-१९२०

१. (१८६२-१९१९); बोअर जनरल तथा राजनीतिज्ञ; ट्रान्सवालके प्रधान मन्त्री, १९०७; दक्षिण आफ्रिका संघके प्रधान मन्त्री, १९१०-१९।

२. (१८५४-१९२५); ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज रिवर कॉलोनीके गवर्नर, १९०१-५; दक्षिण आफ्रिकाके उच्चायुक्त, १८९७-१९०५; उपनिवेश सचिव, १९१९-२१।

२९. बहुमतका कानून

होमरूल लीग तथा नेशनल यूनियन द्वारा बम्बईमे आयोजित पंजाब-सम्बन्धी सभामे मैने जो भाषण दिया था उसका विवरण पढनेपर तथा उसमे यह देखनेके पश्चात् कि मैने उस सभामें जनरल डायरपर मुकदमा चलाने तथा सर माइकेल ओ'डायरपर महाभियोग लगानेकी माँग करते हुए एक प्रस्ताव पेश किया था, श्रीमती बेसेंटने[1] पूछा है कि जिस प्रस्तावके मुद्दोको मै ठीक न मानता होऊँ उसे मैने क्योकर प्रस्तुत किया। मेरे उस भाषणके कारण श्री शास्त्रीको[2] भी क्षोभ हुआ है। मैने अभी-तक अपने उस भाषणकी कोई रिपोर्ट नही पढी है। इसलिए मै यह कह सकनेमे असमर्थ हूँ कि मेरे उस भाषणको ठीक-ठीक वितरित किया गया है या नही। मैने भाषण गुजरातीमे दिया था और सम्भव है कि सवाददातासे अनुवाद करनेमे गलती हो गई हो। मेरे भाषणकी प्रकाशित रिपोर्टके बावजूद, मै अपनी स्थितिको स्वतन्त्र रूपसे समझानेका प्रयत्न करूँगा, और सो भी खुशीसे क्योकि मै यह मानता हूँ कि इन दो बडे नेताओं द्वारा उठाया गया सैद्धान्तिक प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है।

मुझपर प्राय: यह दोष लगाया जाता है कि मेरा स्वभाव अपनी बातपर अडे रहनेका है। मुझसे कहा गया है कि मै बहुमतके निर्णयके आगे भी नही झुकता। मेरे सिर यह दोष भी मढ़ा गया है कि मेरा रवैया निरंकुशतावादी है। अब पजाब-सम्बन्धी उस सभामे ही मुझसे आग्रह किया गया कि मै वह प्रस्ताव पेश करूँ हालाँकि मुझे यह ठीक नही लगता था। मैने उसे प्रस्तुत करना स्वीकार तो कर लिया परन्तु मैने उस प्रस्तावमे कही गई बातोके विरोधमे मत प्रकट करनेका अपना अधिकार सुरक्षित रखा। और मैने उसका विरोध किया भी। मै इस आरोपको कभी स्वीकार नही कर सका हूँ कि मै हठी या निरकुश हूँ। बल्कि मुझे इस बातका गर्व है कि गैर-महत्त्वपूर्ण प्रश्नोपर मेरा स्वभाव दूसरोकी बात स्वीकार कर लेनेका ही है। निरकुशतासे मुझे घृणा है। मै अपनी स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दताको एक मूल्यवान वस्तु मानता हूँ और दूसरोकी स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दताका उतना ही आदर करता हूँ। यदि किसी पुरुष या स्त्रीको मेरा तर्क नही भाता तो मै नही चाहता कि वह मेरे कहनेके अनुसार करे। मै लकीरका फकीर नही हूँ; यदि मेरी बुद्धिको ठीक लगे तो मै अपने प्राचीनतम शास्त्रोंकी बातको माननेसे इनकार कर देता हूँ, — उसे ब्रह्मवाक्य मानकर स्वीकार नही करता। तथापि अनुभवसे मैने यह सीखा है कि यदि मै समाजमे रहना चाहता हूँ और साथ ही अपनी स्वतन्त्रता भी बनाये रखना चाहता हूँ तो मुझे अपनी स्वतन्त्रताका

१. एनी बेसेंट (१८४७–१९३३); थियोसॉफिकल सोसाइटीकी अध्यक्षा; बनारसमें सेंट्रल हिन्दू कॉलिजकी संस्थापिका; १९१७के कांग्रेस अधिवेशनकी अध्यक्ष।

२. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री (१८६९–१९४६); विद्वान् राजनीतिज्ञ; भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी)के अध्यक्ष, १९१५–१९२७।

आग्रह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मामलोतक ही सीमित रखना चाहिए। अन्य ऐसे सब मामलोमे जिनमें निजी धर्म या नीति-संहितापर आँच न आती हो, व्यक्तिको बहुमतके निर्णयके सामने सिर झुकाना ही चाहिए। इस दृष्टिसे उक्त प्रस्तावको प्रस्तुत करनेका अवसर मुझे अपनी [अनाग्रही] स्थितिको व्यक्त करनेका अवसर था। मेरे कथित हठी स्वभावके तो अनेक उदाहरण देशके सामने रखे जा चुके है। बिना परेशानीके दूसरोके सामने झुक सकनेके एक ऐसे अवसरका हाथ लगना खुशीकी बात थी। यो मेरा अब भी यही खयाल है कि देशका जनरल डायरपर मुकदमा चलाये जाने और सर माइकेल ओ'डायरकी सदनमें भर्त्सना करनेकी माँग पेश करना ठीक नही है। वह तो ब्रिटिश सरकारका ही काम है। मै तो यह चाहता हूँ कि अपराधियोको साम्राज्यके अन्तर्गत किन्ही भी पदोपर न रखा जाये। उस वक्तसे अभीतक अपनी राय बदलने लायक ऐसी कोई बात मेरी नजरमे नही आई। और मैंने इस बातपर जिस सभामें यह प्रस्ताव पेश किया था उसी सभामे अपनी यह बात भी जोर देकर सामने रखी थी। जनरल डायरपर मुकदमा चलाये जानेकी माँग करनेमें कोई नैतिक दोष नही है। इसलिए मैंने प्रस्ताव पेश किया। देशको ऐसी माँग पेश करनेका हक है फिर भी कांग्रेस उप-समितिने सलाह दी है कि यदि हम उस अधिकारपर अड़े नही तो उससे देशका भला ही होगा। किन्तु मैंने सोचा कि मेरी स्थिति बिलकुल स्पष्ट है, मै आज भी मुकदमा चलाये जानेके खयालके विरुद्ध हूँ; फिर भी मुकदमा चलाये जानेकी बात सम्मिलित करनेवाले प्रस्तावको प्रस्तुत करनेमे मुझे कोई आपत्ति इसलिए नही है कि वह विचार अपने आपमे बुरा अथवा हानिकारक नही था।

परन्तु मै यह स्वीकार करता हूँ कि जिस संकटमय परिस्थितिसे होकर हम लोग गुजर रहे है उसमे मेरे द्वारा उस प्रस्तावका प्रस्तुत किया जाना एक खतरनाक प्रयोग था, क्योंकि इस अवसरपर हम सार्वजनिक व्यवहारकी नई संहिता तैयार करने तथा जनसाधारणको शिक्षित या प्रभावित करने या उसका मार्ग-दर्शन करनेका प्रयास कर रहे हैं, ऐसे समय कोई ऐसा काम करना उचित न होगा जिससे जनसाधारणके मनमें उलझन पैदा हो जाये या जिससे ऐसा लगे कि हम जनताकी खुशामद कर रहे है। मेरा खयाल है कि इस समय हठी और निरकुश कहलाया जाना, जनताकी वाहवाही लूटनेकी गरजसे उसकी हाँ-मे-हाँ मिलानेका आभास देनेकी अपेक्षा अच्छा है। यदि हम जनताकी निरकुशतासे बचना चाहते है और यदि हम व्यवस्थित रूपसे देशकी उन्नति करनेके इच्छुक है तो उन लोगोको जो जनसाधारणका नेतृत्व करनेका दावा करते है जनताका मुँह देखकर नही चलना चाहिए। मेरा विश्वास है कि किसी व्यक्तिका अपनी रायकी उद्घोषणा-भर करते रहकर जनसाधारणकी रायके आगे नतमस्तक हो जाना केवल अपर्याप्त है इतना ही नही बल्कि महत्त्वपूर्ण मामलोमें यदि जनताकी राय नेताओको बुद्धिसगत प्रतीत नही होती तो जनसाधारणकी सम्मतिके विपरीत कदम उठाना नेताओका कर्त्तव्य हो जाता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-७-१९२०

३०. जनरल डायर

सैनिक परिषद्ने जनरल डायरको निर्णयकी भूलका दोषी पाया है और सरकारको सलाह दी है कि उन्हें भविष्यमें कोई सरकारी पद न दिया जाये। श्री मॉण्टेग्युने[1] जनरल डायरके आचरणकी बड़ी बेमुरौवतीसे आलोचना की है। फिर भी, चाहे जिस कारणसे हो, मैं किसी भी तरह यह नही मान पा रहा हूँ कि सबसे बडे अपराधी जनरल डायर ही हैं। उन्होने जो क्रूरता बरती, वह स्पष्ट है। सैनिक परिषद्के सामने अपने बचावमें उन्होने जो-कुछ कहा, उसकी हर पक्तिसे उनकी वह घोर कायरता प्रकट होती है जो किसी भी सैनिकके लिए सर्वथा अशोभनीय है। उन्होने ऐसे पुरुषों और बालकोकी एक निहत्थी भीडको "विद्रोहियोकी फौज" कहा, जिनमे से अधिकाश छुट्टियाँ मनानेके लिए एकत्र हुए थे। लोगोंको एक अहातेमे घेरकर उन्होंने कुत्ते-बिल्लियोकी तरह उन्हें अपनी गोलियोका शिकार बनाया, और उनका खयाल है, उन्होने इस तरह पंजाबके त्राताका काम किया। ऐसा आदमी तो सिपाही माने जाने लायक भी नही है। उनके काममे कही कोई बहादुरी नही थी। उन्होंने आगे बढकर कोई खतरा उठानेकी हिम्मत नही दिखाई। बिना कोई चेतावनी दिये उन्होने ऐसे लोगोंपर गोलियाँ चलाई जिन्होने उनका तनिक भी प्रतिरोध नही किया था। इसे "निर्णयकी भूल" नही कहते। यह तो एक काल्पनिक खतरेसे सामना पड़ जानेपर किसीकी निर्णयबुद्धिके जड़ हो जानेका उदाहरण है। यह हृदयहीनताका प्रमाण है, ऐसी अक्षमताका सबूत है जिसे अपराध ही माना जायेगा। लेकिन मेरा निश्चित मत है कि जनरल डायर-पर जितना क्रोध उतारा गया है, दरअसल उसमे से अधिकाशके पात्र और लोग हैं। इसमे सन्देह नही कि गोलीबारी "दिल दहलानेवाली" थी और निर्दोष लोगोकी जान लेना एक जघन्य कृत्य था। लेकिन उसके बाद लोगोको जिस तरह तिल-तिल कर यन्त्रणा दी गई, उन्हें जिस तरह अपमानित किया गया और पुसत्वहीन बनानेकी कोशिश की गई, वह जनरल डायरकी करतूतोसे भी अधिक काली, अधिक दुराशयपूर्ण, अधिक विद्वेष-प्रेरित तथा आत्माके लिए अधिक घातक थी। और जनरल डायर जलियाँवाला बागके हत्याकाण्डके लिए जितनी निन्दाके पात्र है उससे भी अधिक निन्दाके पात्र वे लोग हैं जिन्होंने ये जघन्य कृत्य किये। जनरल डायरने तो कुछ लोगोंकी जान ली, लेकिन इन सबने तो एक राष्ट्रकी आत्माको ही कुचलकर रख देनेकी कोशिश की। कर्नल फ्रैंक जॉन्सनकी[2] चर्चा कोई नही करता हालाँकि वह कही अधिक बड़ा अपराधी था? उसने निर्दोष लाहौरपर आतंकका साम्राज्य स्थापित कर दिया और अपने

१. ई० एस० मॉण्टेग्यु (१८७९–१९२४); भारत मन्त्री, १९१७-२२; और मॉण्टेग्यु-चेम्सफोर्ड सुधार योजनाके सह-प्रणेता।

२. अप्रैल-मई १९१९ में लाहौरके मार्शल लॉ क्षेत्रकी कमान इन्हींके हाथोंमें थी; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १२८-३२२।

निष्ठुरतापूर्ण आदेशोंके द्वारा सभी मार्शल लॉ अधिकारियोंके लिए निष्ठुरताका एक उदाहरण पेश किया। लेकिन सचमुच मुझे जिसके सम्बन्धमें कुछ कहना है वह कर्नल जॉन्सन भी नही है। पजाव और भारतकी जनताका पहला काम तो कर्नल ओ'ब्रायन, श्री बॉसवर्थ स्मिथ, राय श्रीराम, और श्री मलिक खाँकी सेवाओंसे मुक्ति पाना है। अव भी वे सरकारी नौकरीमें वने हुए हैं। उनका दोष भी उतना ही सिद्ध हो चुका है जितना जनरल डायरका। जनरल डायरकी जो भर्त्सना की गई है, उससे अगर हम सन्तुष्ट हो जाते हैं और पंजावके प्रशासनको स्वच्छ वनानेके अपने स्पष्ट कर्त्तव्यकी उपेक्षा कर देते हैं तो उसका मतलव यह होगा कि हमने अपना फर्ज अदा नही किया। यह कार्य मचोसे लच्छेदार भाषण देने और प्रस्ताव पास करनेसे सम्पन्न नहीं होगा। अगर हम स्वयं कोई प्रगति करना चाहते हों और अधिकारियोंको यह एहसास कराना चाहते हों कि उन्हें अपने-आपको जनताका मालिक नही वल्कि ऐसा न्यासी और सेवक मानना है जो गलत आचरण करके और अपनेको न्यासके लिए अयोग्य सिद्ध करके अपने पदोंपर वने नहीं रह सकते हैं, तो उसके लिए कठोर कर्मकी आवश्यकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-७-१९२०

२१. रहस्यपूर्ण

दक्षिण आफ्रिकाकी[1] प्रत्यावर्तन-योजना (रिपैट्रिएशन स्कीम) में कुछ अटपटापन जरूर है। मैंने यह कल्पना भी नही की थी कि अन्तरकालीन रिपोर्टका १९१४ के भारतीय राहत विधेयकसे[2] लेशमात्र भी सम्बन्ध हो सकता है। उस अधिनियमको मैं पूरा-पूरा पढ गया हूँ और श्री एन्ड्रयूजसे उस सम्बन्धमें बातचीत भी कर चुका हूँ। उस वारेमें श्री एन्ड्रयूज द्वारा ध्यान आकर्षित किये जानेके समयतक मैं तो यह भूल भी गया था कि स्वय उस अधिनियममें एक खण्ड[3] ऐसा है जिसके अन्तर्गत अधिवासके स्वत्वसे वंचित करके नि.शुल्क यात्राकी सुविधा प्रदान की जा सकती है। सरकारी वक्तव्य[4] श्री एन्ड्रयूज द्वारा दी गई सूचनाकी पुष्टि करता है। मेरे मनमें उलझन इसलिए हो रही है कि राहत विधेयकके नि.शुल्क यात्रा सम्बन्धी खण्डको कार्यान्वित करनेके लिए अन्तरिम रिपोर्टकी आवश्यकता क्यों समझी गई। राहत अधिनियम द्वारा रद किये गये नेटाल कानूनके विभिन्न अधिनियमोंके अनेक खण्डोंका स्थान उपर्युक्त खण्ड ले लेता है। उन खण्डोंके अन्तर्गत तीन पौंडी कर अदा करनेके

१. देखिए "पत्र: अखबारोंको", १-७-१९२०।
२. देखिए खण्ड १२, परिशिष्ट २५।
३. खण्ड ६।
४. १४-७-१९२० के यंग इंडियामें उद्धृत।

लिए बाध्य उन व्यक्तियोंको, नि.शुल्क यात्राकी सुविधा दी गई थी जो उस करकी अदायगीसे अथवा पुन गिरमिटिया मजदूर बननेसे बच निकलना चाहते हो, प्रस्तुत खण्डका मंशा केवल उन्ही लोगोको प्रभावित करना था। तथापि वह सामान्यतया लागू कर दिया गया था और यह हल न जाने कितनी गर्म बहसोंके बाद मिला था परन्तु विधान सभाके वाद-विवादसे उसका क्षेत्र बिलकुल स्पष्ट हो गया। उस समय-तक ऐसी धारणा थी कि जबतक कोई व्यक्ति तीन पौडी कर अदा करता है तब-तक वह वास्तवमे अधिवासी नही बनता और उसपर से उक्त करके उठा लिये जानेके बाद यदि वह नि शुल्क यात्रा सम्बन्धी खण्डका लाभ उठाना चाहता है तो उसको अधिवासके उस स्वत्वसे हाथ धोना पडेगा जो उन दिनों लगभग बीस वर्षोंसे चले आ रहे तीन पौडी करको हटाये जानेके प्रश्नका न्यायपूर्ण हल माना जाता था। इस अन्तरिम रिपोर्टके अनुसार उस खण्डकी परिसीमा थोडी-बहुत बदल जाती है। परन्तु व्यक्तिगत रूपसे मै सशकित नही हूँ, क्योकि इस खण्डके अनुसार नि.शुल्क यात्राके लिए लिखित प्रार्थनापत्र आवश्यक है और नेटालमे बसे हुए किसी भी भारतीयसे ऐसी लिखित प्रार्थना प्राप्त करना कठिन कार्य है। यह तो उन्ही गिरमिटिया भारतीयोके बारेमे सम्भव हो सकता है जो गिरमिटके बन्धनसे मुक्त हो जानेके पश्चात् आज अपना भरण-पोषण करनेमे असमर्थ है। इस खण्डका लाभ उठानेको और अधिवासका हक खो देनेको बहुत ही थोड़े भारतीय तैयार होगे। साथ ही मै यह सोचे बिना भी नही रह पाता कि एक ऐसे खण्डके नियम-विरुद्ध प्रयोगका प्रयास किया जा रहा है जो गरीब लोगोकी मददके लिए नही, सदिग्ध अधिवासके मामलोसे निपटनेके लिए तैयार किया गया था। सदिग्ध अधिवासके मामलोसे मेरा तात्पर्य उन मामलोसे है जिनमें एशियाई विरोधी दलके लोग 'अधिवास प्राप्त नही किया गया' कह सकते थे। आज उस करको हटा लेनेके ६ वर्ष पश्चात् ऐसे प्रत्येक भारतीयको, जिसके लिए उस कर की अदायगी लाजिमी थी, वैध अधिवास प्राप्त हो गया है। सरकार व्यक्तियोकी मुसीबतसे बेजा फायदा उठाये और उन्हें एक बहुमूल्य हकसे वचित करनेकी कोशिश करे, यह बात अधिकारके सम्बन्धमे मेरी जो धारणा है उसके विपरीत बैठती है। विषम परिस्थितियोमे ऐसी योजनाको प्रकाशित न करना ही बेहतर होगा। यद्यपि सरकार इसे कार्यान्वित करनेका अपना इन्तजाम पुख्ता करनेमे लगी हुई है किन्तु मुझे इस बातका इतमीनान है कि इस योजनासे इने-गिने भारतीय ही लाभ उठानेको —जो कि एक संदिग्ध प्रकारका लाभ होगा—तैयार होगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४–७–१९२०

३२. पुलिस सुपरिंटेंडेंटका आदेश

श्री गांधी अखबारोंको लिखते हैं :[1]

माननीय पंडित मदनमोहन मालवीयने गुजराँवाला (पंजाब)के पुलिस अधीक्षक (सुपरिटेंडेंट) श्री एफ० ए० हैरनके हस्ताक्षरोंसे जारी किये गये एक आदेशकी प्रति मुझे दी है। उनका कहना है कि अगर मुझे गुजराँवाला जिलेका — जिसका पूरा दौरा मैं अपने पंजाब-निवासके कालमें कर चुका हूँ — कोई अनुभव हो तो उसके आधार-पर आदेशकी जैसी आलोचना कर सकूँ, करके उसे छपवा दूँ। आदेशपर ५ जून, १९१९की तारीख पड़ी हुई है। स्मरण रहे कि १४ अप्रैल, १९१९को गुजराँवालाकी एक भीड़ द्वारा रेलवे पुलमें आग लगा दी जानेपर भीड़पर जो गोलीबारीकी गई थी, उसका निर्देशन करनेवाले यही सुपरिटेंडेंट हैरन थे। यह है वह आदेश :

गुजराँवाला
५ जून, १९१९

सेवामें
पुलिस सब-इंस्पेक्टर

अब यह लगभग निश्चित है कि कुछ ही दिनोंमें इस जिलेके शेष शहरों-पर से भी मार्शल लॉ उठा लिया जायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि जो मामले मार्शल लॉ हटाये जानेके समय मार्शल लॉ आयोगोंके विचाराधीन होंगे, केवल उन्हीं मामलोंकी सुनवाई आगे भी मार्शल लॉके अधीन जारी रह सकेगी।

अन्य सभी मामलोंको, चाहे समरी अदालत द्वारा उनकी जाँच की जा रही हो या उसके सामने उनकी सुनवाई चल रही हो, उठा लेना होगा और उसके बाद उनकी सुनवाई आम कानूनके अन्तर्गत ही हो सकेगी। इसका मतलब होगा इन मामलोंका काफी लम्बा खिंचना, क्योंकि आम कानूनके अधीन अदालतमें इनकी सुनवाई धीरे-धीरे होगी और अपील वगैरह भी की जायेंगी। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि जो मामले समरी अदालतोंमें सुनवाईके लिए तैयार हों, उन्हें सुनवाईके लिए तुरन्त भेज दिया जाये, और जिन मामलोंकी अभी तहकीकात चल रही हो और वह तहकीकात जल्दी पूरी की जा सकती हो तो उनकी तहकीकात पूरी करके उन्हें भी तुरन्त सुनवाईके लिए भेज दिया जाये। इस जिलेमें पुलिसने अपेक्षाकृत कम मामले ही सुनवाईके लिए भेजे हैं, और इसलिए अवश्य ही ऐसे बहुत-से लोग अभी यहाँ बच रहे होंगे जो

१. यह बॉम्बे क्रॉनिकलके १५-७-१९२० के अंकमें अखबारोंके नाम पत्रके रूपमें प्रकाशित हुआ था।

अपराधी हैं और जिनके खिलाफ सबूत भी मौजूद हैं। इन लोगोंके मामलोंको तुरन्त सुनवाईके लिए भेजा जाये।

जो मामले मुल्तवी पड़े हों, उन्हें पूरा करनेके लिए अब जोरदार कोशिश करनी चाहिए। शिनाख्तके लिए लोगोंको जल्दी ही जमा किया जाये और नये गवाह आदि जुटानेकी हरचन्द कोशिश की जाये ताकि वे अभियुक्तोंका दोष सिद्ध करनेमें सहायता दे सकें।

फरार लोगोंको गिरफ्तार करनेकी ओर अबतक समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। अब ऐसा करना जरूरी है। कांस्टेबिलों और सफेदपोशों [खुफिया पुलिस]को फरार लोगोंके पीछे लगा देनेमें जल्दी करनी चाहिए और उन्हें तुरन्त ही गिरफ्तार कर लेनेकी हर सम्भव कोशिश करनी चाहिए। उनकी गिरफ्तारीके लिए कुछ पुलिस स्टेशनोंको एक रुक्का लिख भेजना काफी नहीं है।

मुझे अपने अफसरोंको यह समझानेकी जरूरत नहीं कि यह कितना आवश्यक है कि वे अपने सभी मामले तुरन्त पूरे कर लें और ऐसा प्रबन्ध करें जिससे मार्शल लॉ हटाये जानेके पूर्व काफी अभियुक्तोंके मामलोंकी सुनवाई हो जाये। अबतक सुनवाईके लिए भेजे गये मामलोंकी संख्याकी दृष्टिसे यह जिला अन्य जिलोंकी तुलनामें काफी पीछे है। इससे स्वभावतः यहाँकी पुलिसकी चुस्ती और फुर्तीकी आलोचना की जाती है। हालत सुधारनेके लिए अब भी कुछ किया जा सकता है, और अगर मेरे सभी अफसर दिलोजानसे इस काममें जुट जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि जो लोग यहाँ तहकीकातका काम कर रहे हैं उन्हें उन कर्मचारियोंसे कम ख्याति मिले जिन्होंने लाहौर और अमृतसरमें तहकीकात की है। लेकिन अगर सुनवाईके लिए भेजे जानेवाले मामलोंकी संख्या इसी तरह कम रही तो निःसन्देह सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंको उस कद्र और प्रतिष्ठासे वंचित रहना पड़ेगा जिसके कि कुछ दृष्टियोंसे वे हकदार हैं।

एफ० ए० हैरन
पुलिस सुपरिंटेंडेंट

इस जिलेमे बीसों गवाहोंने कांग्रेस उप-समितिके सामने यह बयान दिया कि मार्शल लॉके अन्तिम दिनोंमे गिरफ्तार लोगोके जत्थे-के-जत्थे सुनवाईके लिए तथाकथित समरी अदालतोमे भेजे गये। इन अदालतोकी अध्यक्षता करनेवाले अधिकारी काफी रात गये तक वहाँ बैठा करते थे और उन्होने सफाईके गवाहोंकी कोई बात सुने बिना सर्वथा निर्दोष लोगोको भिन्न-भिन्न अवधियोके लिए कारावासका दण्ड दे दिया। इस प्रकार सुनवाई करनेवाले एक अधिकारी थे कर्नल ओ'ब्रायन और दूसरे श्री बॉसवर्थ स्मिथ। ऊपर हमने जो आदेश उद्धृत किया है, उससे कांग्रेस द्वारा लिये गये बयानोके तथ्योंकी पुष्टि होती है और मुकदमे किस तरह चलाये गये, इसका एक भयंकर चित्र सामने आता है। अकालगढ़, रामनगर तथा अन्य स्थानोमे इसी तरह आनन-फानन,

बिना सोचे-समझे सर्वथा निर्दोष लोगोंको परेशान और कैद किया गया, और तब भी यह सब करनेवाले अधिकारी अपने पदोंपर बरकरार हैं और उनके हाथोंमें अत्याचार करनेकी सत्ता बनी हुई है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-७-१९२०

३३. भाषण: जालन्धरमें

१५ जुलाई, १९२०

हिन्दुस्तानीमें दिये गये एक छोटे-से भाषणमें महात्माजीने असहयोगका अर्थ पूरी तरह समझाया। उन्होंने कहा:

जहाँतक मुसलमानोंका सम्बन्ध है, उलेमाओं-सहित मेरे उन सभी मुसलमान मित्रों और भाइयोंने, जिन्हें सारे भारतमें सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता है, मुझे भरोसा दिलाया है कि कोई भी सच्चा मुसलमान उस सरकारको किसी प्रकारकी सहायता नहीं दे सकता जिसने अपने धार्मिक दायित्वकी उपेक्षा की है और जिसने उनके तीव्र विरोधोंके बावजूद इस्लामके पवित्र स्थानोंपर दखल जमा लिया है। पंजाबमें तो जो-कुछ मुसलमानोंको झेलना पड़ा वही हिन्दुओंको भी, और अगर खिलाफतका सवाल न भी होता तो सिर्फ पंजाबका मामला ही इस दृष्टिसे काफी है कि जिस सरकारने कांग्रेस कमेटी द्वारा सुझाई गई बहुत ही नरम ढंगकी सिफारिशोंको माननेसे आखिर-कार इनकार कर दिया है, उसके साथ सहयोग न किया जाये।

उन्होंने सभीसे अनुरोध किया कि पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने तथा अपने देशका नाम उजागर करनेके लिए वे इस आन्दोलनको अपनायें और आगे बढ़ायें। उन्होंने उपस्थित महिलाओंसे अनुरोध किया कि वे कताईको अपना खास काम मानकर उसे फिरसे अपनायें और बुनकरोंको अपना पुराना धन्धा एक बार फिरसे चलानेके लिए प्रोत्साहित करें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २१-७-१९२०

३४. भाषण : असहयोगपर[1]

१६ जुलाई, १९२०

श्री गांधी जब बोलनेको खड़े हुए तो लोगोंने उत्साहके साथ हर्षध्वनि की। श्री गांधीने कहा कि पंजाबके साथ किये गये अन्यायको लेकर मेरा मन कितना व्यथित है, इसे पूरी तरह व्यक्त कर पाना मेरे लिए असम्भव है। मैं तो पंजाबके हिन्दू और मुसलमान भाइयोंसे सिर्फ इतना ही कहूँगा कि वे १९१९के अप्रैल माहके उस दुर्भाग्य-पूर्ण दिनको[2] कभी न भूलें। मैं यह तो स्वीकार करता हूँ कि अधिकारियोंकी तरह ही जनताने भी गलती की, फर्क केवल कम या अधिकका है। अगर जनताकी गलती-का वजन पौंडोंमें किया जा सकता है, तो अधिकारियोंकी ज्यादतीका वजन टनोंमें किया जायेगा। लेकिन जबतक जनतासे तनिक भी गलती होना लाजिम है तबतक उसे जलियाँवाला बागके ढंगकी सैकड़ों विभीषिकाओंके लिए तैयार रहना चाहिए; और जबतक लोग हिंसात्मक प्रवृत्तिसे सर्वथा मुक्त नहीं हो जाते तबतक मैं उनसे पूरी तरह संतुष्ट भी नहीं हो सकता। लेकिन जब सारी गलतीकी जिम्मेदारी सरकारकी ही होगी तो स्थिति बदल जायेगी। तब मैं सभी लोगोंसे कहूँगा कि वे अपने-आपको बिलकुल मुक्त मानकर उठ खड़े हों और उस सरकारसे कोई नाता-रिश्ता न रखें जो उनके सम्मान और स्वाभिमानके साथ खिलवाड़ करती है। पंजाबके सम्बन्धमें बोलते हुए श्री गांधीने कहा कि मैं अनुभव करता रहता हूँ कि पंजाबके लोगोंने, चाहे वे अपनी बहादुरीके लिए कितने भी विख्यात हों, गत अप्रैल माहमें अपनी भूमिका ठीकसे नहीं निबाही। वे भयभीत हो गये, उनकी हिम्मत टूट गई। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अगर वे भयभीत न हो गये होते, उनकी हिम्मत टूट न गई होती तो यह कैसे सम्भव था कि उन्हें जमीनपर नाक रगड़ते हुए रेंगकर चलनेका आदेश[3] दिया जाता और वे इस बर्बरताको स्वीकार कर लेते? अगर उनमें तनिक भी आत्म-सम्मानकी भावना थी, अगर वे अपने-आपको मनुष्य मानते थे तो इस तरह आदमी-के दर्जेसे गिराया जाना स्वीकार कैसे कर लेते? अगर उन्हें अपने पुंसत्व, अपने आत्मा-भिमान और सम्मानका तनिक भी खयाल होता तो उन्होंने सर झुकाकर इस अपमानको बरदाश्त करनेके बजाय खुशी-खुशी मौतको गले लगाया होता। लेकिन मैं यहाँ व्यर्थ ही पंजाबके लोगोंके दोष दिखानेको नहीं आया हूँ। मेरा यह नाशवान् शरीर भी

१. यह भाषण अमृतसरके अंजुमन पार्कमें स्थानीय खिलाफत समिति द्वारा आयोजित सभामें दिया गया था। सभामें गांधीजीके अलावा शौकत अली और डा० किचलू भी बोले थे।

२. १३ अप्रैल — जलियाँवाला बागके गोलीकाण्डका दिन।

३. तात्पर्य जनरल डायर द्वारा २० अप्रैल, १९१९को जारी किये गये रेंगकर चलनेके आदेशसे है।

उन्हीं तत्त्वोंसे बना हुआ है जिनसे पंजाबियोंका निर्माण हुआ है। मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि ऐसी परिस्थितियोंसे सामना पड़नेपर भी मेरी हिम्मत टूट नहीं जायेगी। मैं तो ईश्वरसे सिर्फ यह प्रार्थना ही कर सकता हूँ कि वह मुझे इतना बल दे कि मैं कभी भी ऐसे अपमानोंको बरदाश्त न करूँ — तब भी नहीं जब मेरे सामने इसका एकमात्र विकल्प मृत्युको गले लगाना हो। आप लोगोंने अपनी आशा हंटर समितिपर[1] केन्द्रित कर रखी है; आपको लगता है कि वह अपराधियोंको समुचित दण्ड देकर आपके अपमानोंको धो देगी। लेकिन आपकी यह आशा बेकार है और फिर अब तो पंजाबके अन्यायके साथ खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय भी जुड़ गया है। मेरा निश्चित विश्वास है कि आप क्रोध और आवेशमें कोई काम करके इन अन्यायोंका निराकरण नहीं करवा सकते। उनका निराकरण तो ठंडे दिमागसे काफी सोच-समझकर की गई कार्रवाइयोंसे ही सम्भव है। एक सबसे अच्छा कदम है असहयोग। इसके बाद श्री गांधीने उन्हें असहयोगके विभिन्न चरण समझाते हुए कहा कि अगर पहली अगस्त सारे भारतमें सामान्य विरोध-प्रदर्शनके एक शान्तिपूर्ण दिनके रूपमें बीत गई तो इसका मतलब होगा, आपने सफलताके लिए एक सुदृढ़ नींव डाल दी। अगर हिंसा हुई तो यह आन्दोलन स्वयंमेव ठप हो जायेगा। मेरा आपसे हार्दिक अनुरोध है कि आप सब सचाई और बहादुरीसे एक सच्चे सिपाहीकी तरह काम करें, ऐसे सिपाहीकी तरह जो नीचताके साथ दूसरोंकी जान लेनेमें नहीं बल्कि उदारताके साथ अपनी जान दे देनेमें गौरवका अनुभव करता है। श्री गांधीने आगे कहा, सम्भव है कि इस देशके बहुत-से मुसलमान, जिनमें इस सभामें उपस्थित मुसलमान भी शामिल हैं, अभी यह न जानते हों कि टर्कीके साथ शान्ति-सन्धिकी शर्तें इस्लामके लिए कितने गम्भीर अपमानकी बात है। उन सबको काफी सावधानीके साथ प्रचार-कार्यके द्वारा यह चीज समझानी होगी, और यह काम अब शीघ्र ही शुरू किया जायेगा। लेकिन जहाँतक पंजाबके अपवादका सम्बन्ध है, श्री बॉसवर्थ स्मिथ, कर्नल ओ'ब्रायन, श्रीराम तथा मलिक खाँने यहाँके लोगोंका जिस तरह अपमान किया, उसके बारेमें तो कोई भी अनजान नहीं है। यह मार सभी वर्गों, सभी दलोंपर समान रूपसे पड़ी और आपमेंसे अधिकांश लोगोंको उसका प्रत्यक्ष अनुभव है। फिर जबतक ये अधिकारी पंजाबमें बने हुए हैं तबतक आप अपनेको किस मुँहसे मनुष्य कह सकते हैं, कैसे यह दावा कर सकते हैं कि आपमें आत्माभिमान और सम्मानकी तनिक भी भावना है? सम्भव है आपको खिलाफतके सवालकी कोई जानकारी न हो, लेकिन जलियाँवालाकी विभीषिकाकी स्मृति तो आपके हृदय-पटलपर इस तरह अंकित है कि उसे कभी मिटाया ही नहीं जा सकता।

१. भारत सरकारने यह समिति बम्बई, दिल्ली और पंजाबमें अप्रैल महीनेमें हुए उपद्रवोंकी जाँच करनेके लिए १४-१०-१९१९ को नियुक्त की थी। समितिने सरकारके सामने अपनी रिपोर्ट ८ मार्च, १९२० को पेश की जो २८ मई, १९२० को प्रकाशित हुई थी।

इसके बाद श्री गांधीने श्रोतृ-समूहसे पूछा कि क्या आपके बीच श्री गुलाम जीलानी[1] उपस्थित हैं — गुलाम जीलानी, जिनके साथ किये गये अत्याचार और नृशंसताको कोई भी भूल नहीं सकता। श्रोताओंमें से उन्हें किसीने बताया कि वे तो हिजरतपर गये हैं। इसपर श्री गांधीने कहा कि इस प्रकार उन्होंने सम्मानके साथ इस देशका परित्याग कर दिया है, लेकिन वे अपने पीछे अपने भाइयोंको छोड़ गये हैं, जो ईश्वरके सामने अब जिम्मेदार हैं कि उस सम्मानको सफलतापूर्वक कायम रखें। तो क्या पंजाब उस सम्मानकी रक्षाके लिए कुछ नहीं करेगा? आपके सामने एकमात्र उपाय असहयोग है। यही सबसे स्वाभाविक उपाय है। लेकिन यह नहीं हो सकता कि लोग सरकारकी कौंसिलों और अदालतोंकी कार्रवाईमें भाग भी लें और उसके विरुद्ध असहयोग भी करें। मुझसे लोग अक्सर पूछते हैं कि अगर हम सरकारी नौकरी छोड़ देंगे, अगर हम उन पेशोंको छोड़ देंगे जो हमारी जीविकाके एकमात्र साधन हैं तो हम गुजारा कैसे कर पायेंगे? लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि जबतक आपके पास ईश्वरके वरदानस्वरूप दो हाथ और दो पाँव हैं, तबतक आप अपनी जीविकाके लिए उसी हाथ-पाँव देनेवालेपर भरोसा रख सकते हैं। मैं यह माननेको तैयार नहीं हूँ कि भारतके सभी मुसलमान हिजरत करेंगे, लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि वे असहयोग कर सकते हैं और उन्हें असहयोग करना चाहिए। उन्हें यह याद रखना चाहिए कि उनके सहयोगके बिना सरकारका तन्त्र एक दिन भी नहीं चल सकता।

इसके बाद उन्होंने पहली अगस्तके कार्यक्रमका महत्त्व बताते हुए उनसे अनुरोध किया कि आप यह दिवस पूरी तरह शिष्ट और शान्त ढंगसे मनायें। मैं यहाँ कौंसिलोंके बहिष्कारके सवालपर विचार करनेको तैयार नहीं हूँ, क्योंकि मैं जनता और नेताओंके बीच कोई मतभेद उत्पन्न करना नहीं चाहता। मैं तो लोगोंको उनके स्थानीय नेताओंकी इच्छापर छोड़ता हूँ। और जहाँतक खुद मेरी बात है, मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि असहयोगकी दृष्टिसे कौंसिलोंका बहिष्कार एक आवश्यक कदम है, और मैं बम्बईमें जहाँ-कहीं भी रहूँगा, वहाँसे इसका प्रचार करता ही रहूँगा।
भाषणके अन्तमें श्री गांधीने, जिस चीजको वे स्वदेशीका मूलमन्त्र मानते हैं, उसपर-अर्थात् हाथसे कते सूतके हाथसे ही बुने कपड़ोंके उपयोगपर जोर दिया। उन्होंने कहा कि लोग सिर्फ ऐसे ही वस्त्रका उपयोग करें। खिलाफत-दिवसपर स्वदेशीका महत्त्व इस बातमें है कि इस तरह लोग अंग्रेजोंको यह प्रतीति करा सकते हैं कि कपड़े-जैसी आवश्यक वस्तुओंके सम्बन्धमें भी कोई राष्ट्र उनके बिना काम चला सकता है और उस हदतक स्वतंत्र हो सकता है। और जिस क्षण उन्हें यह प्रतीति हो

१. एक मसजिदके इमाम, जिन्होंने रामनवमीके उत्सवका आयोजन करनेमें भाग लिया था। उन्हें १६-४-१९१९ को गिरफ्तार करके उनके साथ बड़ा अत्याचार किया गया; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ २१२-२१३।

जायेगी उसी क्षण भारत जिस न्यायकी माँग कर रहा है वह न्याय दिलानेमें वे इसके साथ कन्धेसे-कन्धा मिलाकर चलनेको तैयार हो जायेंगे।

अन्तमें पेशावरकी अभी हालकी घटनाकी थोड़ी चर्चा हुई और विशेष रूपसे इस बातकी कि मुहाजरीनोंकी यात्राको सुरक्षित बनानेके लिए भविष्यमें क्या किया जाये। इसके बाद सभा समाप्त हो गई।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, २७–७–१९२०

३५. भाषण : लाहौरमें

१७ जुलाई, १९२०

शनिवार १७ जुलाई, १९२० को दिल्ली गेटके बाहर पं० रामभजदत्तकी अध्यक्षतामें लाहौरके नागरिकोंकी एक सार्वजनिक सभा हुई।

गांधीजी ज्यों ही अपना भाषण देनेके लिए उठे त्यों ही जोरकी हर्षध्वनि हुई। वे हिन्दीमें बोले।[1] उन्होंने कहा कि मैं कुछ ही शब्द कहूँगा। पेशावरकी घटनाके सम्बन्धमें श्री जफरअली खाँ[2] ने जो विवरण हम लोगोंके सम्मुख प्रस्तुत किया है उसे सुनकर हमें क्षोभ हुआ है। वैसे इसमें रोनेकी कोई बात नहीं है। जब वे बोल रहे थे तब मैंने आप लोगोंमें से कुछको रोते देखा। अगर आप लोग खिलाफतके प्रश्नका समाधान कराना चाहते हैं तो आप लोगोंको रोना छोड़ देना चाहिए। आप लोग एक साम्राज्यके विरुद्ध ही नहीं बल्कि समूचे ईसाई संसारके खिलाफ युद्ध कर रहे हैं। यूरोपीय लोग चतुर, होशियार, धूर्त और शस्त्रोंके प्रयोगमें पारंगत हैं। उनमें त्याग-भावना भी है। गत महायुद्धके दिनोंमें प्रत्येक परिवारने कमसे-कम एक व्यक्ति लड़ाईके लिए दिया था। अपने वाइसरायको ही लीजिए; उनका एक पुत्र उस युद्धमें मारा गया था; परन्तु उन्होंने बाह्य रूपसे एक दिन भी दुःख प्रकट नहीं किया। ईश्वरके कार्यके लिए हमें आत्मत्यागी बनना चाहिए और रोना तो हरगिज नहीं चाहिए। रक्तपात हो तो भी धैर्य नहीं खोना चाहिए। यदि [धैर्य खोकर] आप चन्द यूरोपीयोंको मार डालनेमें सफल हो जायें तो उससे कोई लाभ नहीं होगा। यदि मैं असहयोग-पर व्याख्यान देनेके लिए यूरोप जाऊँ तो वहाँके लोग मुझपर हँसेंगे, परन्तु संसारमें शरीरबल ही सब-कुछ नहीं है। यूरोपीय लोग युद्ध-कौशल जानते हैं। पुराने जमानेमें कोई सशस्त्र व्यक्ति प्रतिद्वंद्वी या शत्रुके हाथमें भी खड्ग आ जानेतक युद्ध नहीं करता था। परन्तु आजकल तो बम, हवाई जहाज और तोपें इत्यादि निकल आये हैं।

१. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

२. लाहौरसे निकलनेवाले *जमींदार* नामक पत्रके सम्पादक और मालिक; देखिए "पंजाबमें दमन" २९–९–१९२०।

कुछ यूरोपीयोंको मौतके घाट उतार देनेमें कोई बहादुरी नहीं है। बल्कि सच्चा साहस तो इस बातमें है कि जहाँ आप खड़े हो जायें वहाँसे, कुछ भी क्यों न हो जाये, तिल-भर हटनेको तैयार न हों। आप लोगोंको किसीका रक्त बहानेका अधिकार नहीं है। अपना रक्त आप अवश्य बहा सकते हैं। खिलाफतके प्रश्नको हल करनेका केवल यही मार्ग है। मैं उलेमाओंका परामर्श ले चुका हूँ। अगर आप लोगोंका भी विश्वास यही है कि असहयोग एक प्रकारका जिहाद या धर्मयुद्ध है, तो आप लोगोंको उसे अपनाना चाहिए। आप लोगोंको नगरनिगमकी सदस्यता त्याग देनी चाहिए और बावर्ची आदिकी नौकरियाँ भी त्याग देनी चाहिए। खिलाफत एक धार्मिक प्रश्न है और यदि आप लोग उस सम्बन्धमें दुखी हैं तो आपको आत्म-बलिदानी बनना चाहिए। हिजरतके बारेमें मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि आप देशमें ही रहें और सब प्रकारके कष्ट झेलें। आप लोग नगरनिगमकी सदस्यता, उपाधियों या पदोंके लिए मरना चाहते हैं या खुदा के लिए?

पंजाबका पहला सवाल तो वह मुसीबत है जो पिछले बरस आप लोगोंपर बरपा हुई थी; दूसरा सवाल है डायर और ओ'डायरसे भी बदतर ओ'ब्रायन, बॉसवर्थ स्मिथ, श्रीराम और मलिक साहेब खाँ-जैसे आदमियोंका अबतक अपनी नौकरियोंपर कायम रहना। क्या आप लोग ऐसी परिस्थितियोंमें कौंसिलोंमें जाने और अपने बच्चोंको स्कूल भेजनेके लिए तैयार हैं?

ईश्वरसे न्याय उन्हींको मिलता है जो उसके पात्र होते हैं। आप लोगोंसे जमीन-पर पेटके बल रेंगनेको कहा गया था, क्योंकि आप लोग उसके पात्र थे। यूरोपमें एक बालक भी ऐसा आदेश न मानता। क्या वहाँ यह सम्भव हो सकता था कि अगर किसी आदमीके पास टिकट नहीं है तो उसे गोलीसे उड़ा दिया जाये? यहाँ इसका कारण यही है कि आप लोगोंके पास शक्ति नहीं है। परन्तु कैसी शक्ति हमें चाहिए? यदि हमारे पास सहनशक्ति है तो सब कठिनाइयाँ शीघ्र ही दूर हो जायेंगी।

गांधीजीने अपने सम्बन्धमें श्री मॉण्टेग्यु द्वारा दिये गये वक्तव्य तथा श्री शौकत-अली[1] और पंडित रामभजदत्तके कथनोंका उल्लेख करनेके पश्चात् कहा कि यदि आप लोग हिंसात्मक कार्य करेंगे तो खिलाफतके प्रश्नके समाधानकी आशा जाती रहेगी। जलियाँवाला बाग-जैसी हजारों घटनाएँ क्यों न घटित हो जायें परन्तु आप लोगोंको उत्तेजित नहीं होना है। फाँसीपर चढ़नेकी नौबत आ जाये तो भी — यद्यपि सरकारसे मैं यह आशा नहीं करता — आप लोगोंको उसके लिए तैयार रहना चाहिए। मैं आपके साहसको कम करनेके लिए पंजाब नहीं आया हूँ। निरे सिपाहीकी अपेक्षा वह व्यक्ति कहीं बढ़कर है जो कष्ट झेलनेको सदा कटिबद्ध है। आगामी पहली अगस्त-को आप लोग मुकम्मिल हड़ताल रखें और ईश्वर-प्रार्थना करें परन्तु यह-सब केवल स्वेच्छासे प्रेरित होकर करें। एक प्रस्ताव पास करना होगा परन्तु कोई जुलूस नहीं निकाला

१. १८७३–१९३८; मौलाना मुहम्मद अलीके भाई।

जायेगा। अगर सभा करनेकी मनाही होगी तो सभा भी न होगी। आप लोग पुलिस और सरकारके सब हुक्मोंकी तामील करें। इतना कहनेके उपरान्त गांधीजीने असहयोगकी उन चार मंजिलोंको समझाया, जिनका केन्द्रीय खिलाफत कमेटी बम्बई ऐलान कर चुकी थी। गांधीजीने कहा कि पंजाबमें आधेसे ज्यादा मुसलमान हैं। यदि हिन्दू उनके साथ सहानुभूति रखेंगे तो यह कर्त्तव्य-पालन ही कहलायेगा। यदि हिन्दू और सिख मुसलमानोंसे अलग रहें तो भी मुसलमानोंको चाहिए कि वे अपने मनमें रहनेवाले ईश्वरके प्रति अपना कर्त्तव्य निभायें। पंजाबमें करोड़ों मुसलमान रहते हैं। यदि उनमें साहस और त्यागकी भावना हो तो वे क्या नहीं कर सकते? वे समस्त भारतको हिला सकते हैं। हिन्दुओंसे मैं यह कहना चाहता हूँ कि मैं मुसलमानोंका समर्थन करता हूँ और सब जगह उनके साथ जाता-आता हूँ सो हिन्दुओंके हितकी दृष्टिसे ही। अगर मुसलमानोंके साथ हिन्दू शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं तो उन्हें मुसलमानोंकी सहायता करनी चाहिए। मुझसे कई लोगोंने कहा कि खिलाफतका प्रश्न हल हो जानेपर मुसलमान हिन्दुओंका साथ छोड़ देंगे। मेरा उनका बीस बरसोंसे घनिष्ठ सम्पर्क रहा है; उसके बलपर मैं यह कह सकता हूँ कि यह आशंका मिथ्या है।

मैं गायोंकी रक्षा, हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच पारस्परिक प्रेमकी स्थापना और उसकी वृद्धिके द्वारा करना चाहता हूँ। खिलाफतमें सहायता पहुँचानेके बदलेमें दानस्वरूप नहीं।

अन्तमें आपसे मेरा निवेदन यह है कि आप लोग अनुशासनका पालन करना सीखें — आज सुबह मेरे देखनेमें आया कि यहाँके रेलवे स्टेशनपर एक मुसाफिरका सामान भीड़के पैरों तले कुचला जा रहा था। उससे मुझे दुःख हुआ। आप लोगोंको अनुशासनका मूल्य समझना चाहिए और स्वयंसेवकोंको ऐसे सभी अवसरोंपर सुव्यवस्था कायम रखनी चाहिए। उन्हें भी स्टेशनके अन्दर भीड़ लगानेके बजाय स्टेशनके बाहर ही रहना चाहिए। आशा है कि पहली अगस्तको तनिक भी शोरगुल या अव्यवस्था नहीं होने पायेगी। यदि लोग अपने-अपने विभागीय नायकोंके निर्देशोंके अनुसार चलें तो वे देखेंगे कि पंजाब और खिलाफतके प्रश्नका हल छः महीनेके अन्दर ही निकल आयेगा।

पंजाब-निवासियोंकी ओरसे डा० सैफुद्दीन किचलूने[1] अपने संक्षिप्त भाषणमें मौलाना शौकत अली और गांधीजीको, मुसलमानोंके लिए वे जो-कुछ कर रहे हैं उसके लिए, धन्यवाद दिया। रातके १२.४५ बजे सभा समाप्त हुई।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, २०–७–१९२०

१. पंजाबके एक कांग्रेसी नेता।

३६. कौंसिलोंका बहिष्कार

धीरे-धीरे असहकारका रूप निखरता आ रहा है। इस समय राष्ट्रके सम्मुख जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है वह है कौसिलोका बहिष्कार करना। मुझे उम्मीद है कि जनता अडिग रहकर अपने इस कार्यको पूरा करेगी।

जिस सरकारकी नीयत खराब है, जिसने जान-बूझकर न्याय नही किया जिसके हृदयमे जनताके प्रति तिरस्कार-भाव होनेका हमे विश्वास हो गया है, उसके द्वारा विरचित योजनासे हमे क्या मिलनेवाला है?

इस समय मुझे समस्त राज्य-तन्त्र विषके समान दिखाई दे रहा है। नीमसे मीठे फलकी आशा ही कैसे की जा सकती है? मुख्य प्रश्न यह है. क्या हम विधान परिषदोमे भाग लेकर निरंतर प्रतिरोध करे अथवा इन परिषदोमे बिलकुल ही भाग न ले? विघ्न-बाधाओसे कोई योद्धा पराजित नही होता। अग्रेज कुशल योद्धा है। विधान परिषदोंमे जाकर सरकारको हैरान करनेका अर्थ है, लम्बे-तीखे भाषण देना, गालियाँ तक बकना तथा जब वोट लिये जाये तब उसके पक्षमे अपना वोट न देना। जो यह मानते है कि ऐसे उपायोसे सरकार थक जायेगी, उन्होने प्रशासन-व्यवस्थाका कुछ अध्ययन ही नही किया है। हमारे द्वारा इस तरह विघ्न डालनेसे वह छोटी-छोटी चीजे तो देगी, लेकिन सार-तत्त्व कभी नही देगी।

हमने इस तरह आजतक जो विजय प्राप्त की है उसमे कदाचित् ही कोई महत्त्व-पूर्ण हो। भारतका धन बदस्तूर बहता चला जाता है। सेनाका भय तनिक भी कम नही हुआ है। गोरे कालेके बीच भेद बराबर बना हुआ है। प्रपच कम होनेके बदले बढ़ गया है। राजनीतिमे तिल-भर सुधार नही हुआ है। कौन कहेगा कि [सरकार और जनता] दोनोके बीचका सम्बन्ध दिन-प्रतिदिन निर्मल होता जा रहा है।

यदि थोड़ेसे भारतीय न्यायाधीश बना दिये गये, कुछ लोगोको कार्यकारिणी परि-षद्‌की नौकरी मिल गई, कुछ भारतीय विधान परिषदोमे चले गये, एक भारतीयको लॉर्ड बना दिया गया तो क्या इससे हमारा कल्याण हो गया? मै तो इन सब बातोंको प्रलोभन मानता हूँ। यह हमे निद्रावस्थामें रखनेके लिए अफीमकी गोली है। जब-तक न्याय नही मिलता तबतक सरकारकी ओरसे मिला हुआ सम्मान वस्तुत: अपमान है, इतनी सीधी-सी बात हम क्यो नही समझ पाते?

मै तो सारे हिन्दुस्तानकी ओरसे जबरदस्त आशा लगाये बैठा हूँ; लेकिन मेरे मतमे मुझे गुजरातसे सर्वाधिक आशा करनेका विशेष अधिकार है। मै उम्मीद रखूँगा कि गुजरात इस सम्बन्धमे अग्रणी रहेगा।

गुजरातकी जनता सतर्क मानी जाती है। उसे बहुत ठीक हिसाब करना आता है। मैने जो आँकडे जनताके सम्मुख रखे है वे तो एकदम स्पष्ट है। कीचड़में पाँव रखे और छीटे न उडे, यह कैसे सम्भव हो सकता है? जबतक प्रशासन अन्याय बुद्धिसे भरा हुआ है तबतक विधान परिषद्‌को मै कीचड़ ही मानूँगा।

हैरान और परेशान करनेकी नीतिसे आयरलैण्डकी जनता कुछ प्राप्त नही कर सकी; [हालाँकि] उसके पास पार्नेल जैसा महान् योद्धा था। अब उस जनताने हारकर हिंसाको अख्तियार कर लिया है। इसे भी मै तो भूल ही मानता हूँ। हैरान करनेसे कुछ हासिल नही होता, इसके उदाहरणस्वरूप मैने आयरलैण्डका दृष्टान्त आपके सामने रखा है। दक्षिण आफ्रिकामे जनरल बोथाके सम्मुख दो मार्ग थे · धारासभामे जाकर न्यायकी याचना करना अथवा विधान सभाका त्याग कर देना। उन्होने विधान सभाको छोडना पसन्द किया और उनकी विजय हुई। उन्हे अपना मनपसन्द संविधान मिला और वे स्वतन्त्र प्रजाके प्रधान नियुक्त हुए।

विधान परिषदोका त्याग करनेसे राष्ट्र उन्नत होगा। जनताको शुद्ध शिक्षा मिलेगी तथा प्रशासन चलानेका बोझा सिर्फ सरकारपर ही आ पड़ेगा। मेरी दृढ़ मान्यता है कि यदि जनताका शिक्षित भाग भी अपना कर्त्तव्य समझ सरकारकी ओरसे मिलनेवाले स्पष्ट प्रलोभनोंका त्याग कर दे तो सरकार पल-भर प्रशासन-प्रबन्ध नही चला पायेगी। शासन-प्रबन्ध केवल जनताकी सर्वसम्मतिसे चलता है। जब जनता स्पष्ट रूपसे उसका विरोध करने लगे तब वह कदापि नही चल सकता। सरकार मुख्यत जनताको भयभीत करके नही वरन् भरमाकर शासन-प्रबन्ध चलाती है। डरका उपयोग भी अवश्य करती है लेकिन वह तो अन्तिम अस्त्र है। न्याय भी किया जाता है, लेकिन उतना ही जितना राज्य चलानेके लिए जरूरी है। न्याय करना उत्तम 'पालिसी' है इसलिए कुछ हदतक न्याय मिलता है, जबकि हम तो यह माँगते हैं कि पृथ्वी रसातलको भले ही चली जाये न्याय तो होना ही चाहिए।

और हमारे सम्मुख अंग्रेज अधिकारियोंका हृदय-परिवर्तन करनेकी बात इसी तत्त्वका समावेश करवानेके लिए आती है। हृदय-परिवर्तनके लिए हमें यह साबित करना चाहिए कि हम उनके समकक्ष है। अपने शरीरबल अथवा नैतिक बलके आधारपर ही यह समता प्राप्त की जा सकती है। शरीरबलसे प्राप्त की गई समता अपेक्षाकृत हीन स्तरकी समता है, यह पशुनीति है; और [किसी भी] हिन्दूके लिए त्याज्य है। सहस्रो वर्षोंसे हमें जो शिक्षा प्राप्त होती रही है वह विभिन्न प्रकारकी है। मेरी दृढ मान्यता है कि नैतिक बलसे अंग्रेजोंको वशमें किया जा सकता है। मै उनके द्वारा नियुक्त अधिकारियोके सम्बन्धमें अनेक कटु बातें लिखता हूँ तथापि मेरी मान्यता है कि ब्रिटिश जनता नैतिक बलसे जितना प्रभावित होती है उतनी यूरोपमें और कहींकी जनता नही होती। और विधान परिषदोका ज्ञानपूर्वक त्याग करना नैतिक बलकी एक छोटी-सी निशानी है। यह त्याग आसानीसे किया जा सकता है लेकिन यह प्रभावशाली तभी हो सकता है जब जनताके प्रतिनिधि होने योग्य पुरुष ही यह त्याग करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-७-१९२०

३७. स्त्रियोंका कर्त्तव्य

पंजाबमे जो अत्याचार हुए है उनके सम्बन्धमे विख्यात भद्र महिला जाईजी जहा-गीर पेटिटकी अध्यक्षतामे बम्बईकी स्त्रियोने अपने विचार व्यक्त किये है। इससे दो उद्देश्योकी पूर्ति हुई है। एक तो उन्होने हिन्दुस्तानके दु खमे भाग लिया और वह दु ख क्या है, उसे समझा। ऐसे अत्याचारोके सम्बन्धमे स्त्रियाँ उदासीन नही रह सकती। जहाँ स्त्रियाँ अपना स्त्रीत्व तथा पुरुष अपना पौरुष खो बैठे, यदि ऐसा अवसर उप-स्थित हो जाये तो वहाँ स्त्रियाँ मौन नही रह सकती। पजाबमे केवल पुरुषोका ही अपमान नही हुआ, स्त्रियोका भी हुआ है। मनियाँवाला गाँवमे स्त्रियोका अपमान करनेमे उद्धत अधिकारी श्री बॉसवर्थ स्मिथने कोई कसर नही छोड़ी थी। इसलिए स्त्रियो द्वारा वम्बईमे सभा आयोजित करना अपना कर्त्तव्य निभानेसे अधिक कुछ नही है। मुझे उम्मीद है कि गुजरातके मुख्य नगरोमे भी सभाएँ आयोजित करके स्त्रियाँ प्रस्ताव पास करेगी।

स्त्रियाँ स्वयको अबला मानकर ऐसे कार्योके उत्तरदायित्वसे मुक्त नही हो सकती है। अवला विशेषण आत्माके सम्बन्धमे कदापि लागू नही हो सकता। निर्बलता तो शरीरके बारेमे कही जा सकती है। एक बालिका जिसकी आत्मा उज्ज्वल है, जिसे आत्माकी प्रतीति हो गई है, वह बालिका साढ़े छ फुट लम्बे उद्धत अंग्रेजका सामना करके उसे परास्त कर सकती है। जिस स्त्रीको अपने अस्तित्वका भान हो गया है उसका स्त्रीत्व उसके आत्मबलसे सुशोभित है। अपने शरीरकी दुर्बलताको स्वीकार करके जो स्त्री मनसे भी दुर्बल बन जाती है वह अपने स्त्रीत्वको सुशोभित नही कर सकती। हमारे शास्त्र हमे वताते है कि सीता, द्रौपदी आदि स्त्रियोने अपने तेजसे दुष्टोको भयभीत कर दिया था। जैसे हाथीका शरीरबल मनुष्यके बुद्धिबलके आगे कुछ नही कर पाता वैसे ही मनुष्य अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनोके आत्मबलके आगे मनुष्यका बुद्धिबल तथा शरीरवल तृणवत् है।

इसलिये मै चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानकी स्त्रियाँ अपनेको अबला मानकर अपने राष्ट्रकी रक्षा करनेके अधिकारको न तजे। जिस स्त्री-जातिने हनुमान आदि वीरोको पैदा किया, उसे अबला कहना निरा अज्ञान है। हो सकता है, स्त्रीको अबला कहनेमे अभिप्राय पुरुषको स्त्रीके प्रति उसके कर्त्तव्यकी प्रतीति करवाना रहा हो। अर्थात् इसका यह अभिप्राय रहा हो कि शरीरसे बलवान होनेके कारण उसे अपनी राक्षसो-जैसी उद्धत वृत्तिसे अबला स्त्रीको सतानेका अधिकार नही है बल्कि उसका कार्य तो स्त्रीकी रक्षा करते हुए ऐसे साधनोंको उसके हाथमे देना है जिससे उसकी आत्माका विकास हो।

यह युग केवल शरीर-बलका है—ऐसे भ्रममे पडे रहकर हम यह मानते है कि हम हिन्दुस्तानके दीन और दु खी लोग क्या कर सकते है, और ऐसा सोचकर

कर्त्तव्यहीन बने रहते हैं। जान पड़ता है इस मान्यताने पुरुष वर्गको भी अवला बना दिया है। कितना अच्छा हो यदि हिन्दुस्तानके लोग यह समझ ले कि वस्तुतः ऐसी कोई बात नही है। हिन्दुस्तानकी जनताको जब आत्म-सम्मानकी प्रतीति हो जायेगी तभी वह सबल बनेगी तथा तदुपरान्त यहाँ जनरल डायर नही रह पायेंगे।

ऐसा बल किस तरह आये? इसके लिए किसी बड़े प्रशिक्षणकी जरूरत नही है। ईश्वरपर विश्वास करके हमें किसीके शरीरबलसे नही डरना चाहिए। शरीरबलके धनी अधिकसे-अधिक हमारे प्राण ले सकते हैं। उस शरीरके प्रति जब हम निडर हो जाते हैं तभी सिंह बनते हैं। इसलिए वास्तविक बल राक्षसी शरीर प्राप्त करनेमे नही वह तो मानसिक दृढ़ता, आत्माकी पहचान तथा मौतके प्रति निडर-भाव रखनेमे है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-७-१९२०

३८. स्वदेशी

मै शुद्ध स्वदेशीके[1] सम्बन्धमे अबतक जो-कुछ लिख चुका हूँ, उसपर पाठकोको मनन करनेकी सलाह देता हूँ। चरखेके सम्बन्धमें आजके 'नवजीवन'में जो खबर[2] दी गई है उसे पढकर प्रत्येक स्वदेशी-प्रेमी स्त्री-पुरुषको प्रसन्नता हुए बिना नही रहेगी।

यहाँ मै दूसरी ऐसी कुछ जानकारी भी देना चाहता हूँ जो गुजराती बहनोके लिए विशेषतया विचारणीय है।

माननीय पण्डितजीने[3] हिन्दू विश्वविद्यालयके लिए चन्दा देनेकी अपील करते हुए वहाँ स्वदेशीका प्रचार करने, करघोंकी प्रतिष्ठापना करनेकी बात की और कहा कि हिन्दुस्तानकी कुछ रानियाँ भी कातना सीखनेके लिए राजी हो गई हैं। तालियोंकी गडगड़ाहटके बीच उन्होने कहा कि जबतक हिन्दुस्तानके राजा-महाराजा चरखा नही चलायेंगे तबतक उन्हे शान्ति नही होगी।

पण्डितजीने ऐसा क्योकर कहा? वे समझते हैं कि हिन्दुस्तानकी आर्थिक स्वतन्त्रताका आधार चरखो और हथकरघोंपर निर्भर है। जहाँ आर्थिक स्वातन्त्र्य न हो वहाँ या तो दूसरी तरहकी स्वतन्त्रताकी आशा करना ही व्यर्थ है अथवा उसे प्राप्त करनेके लिए इंग्लैंडकी तरह उलटे-सीधे तौर-तरीके अपनाने पड़ते हैं।

इसी विचारसे प्रेरित हो डाक्टर माणेकबाई बहादुरजीने कातना सीख लिया है और हर रोज थोडा-बहुत कातती हैं। माणेकबाई बम्बईके भूतपूर्व एडवोकेट जनरलकी धर्मपत्नी हैं तथा प्रसिद्ध स्वर्गीय डाक्टर आत्माराम सगुणकी सुपुत्री हैं। उनकी तबीयत

१. देखिए "शुद्ध स्वदेशी", ११-७-१९२०।

२. जिसमें कहा गया था कि श्री रेवाशंकर मेहता द्वारा घोषित किये गये पुरस्कारकी शर्तोंके अनुरूप श्री गणेश भास्कर काळेने एक चरखा बनाया है। देखिए खण्ड १६, पृष्ठ २२३-२४।

३. पंडित मदनमोहन मालवीय।

कुछ वर्षोंसे बहुत खराब है। अब भी वे कमजोर ही हैं। उन्होंने हर रोज थोड़ा-बहुत कातनेका निश्चय किया है।

और अब अतिया बेगम तथा जजीरा बेगमने चरखा सीखना शुरू कर दिया है।

पंजाबमें श्रीमती सरलादेवी स्वदेशीके काममें जुटी हुई हैं। वे अपने हाल ही के पत्रमें लिखती हैं कि उन्होंने अमृतसर जाकर वहाँ रतनचन्द और बुग्गा चौधरी, जो जेलमें हैं, की धर्मपत्नियों और रतनदेवीको, जो अपने पतिके शवको गोदमें रख रात-भर विलाप करती रही थी, इस कार्यमें लगा लिया है। उन्होंने वहाँ एक समिति नियुक्त करके स्त्रियोंके लिए चरखेके वर्ग खोले हैं। लुधियानामें स्त्रियोंकी सभा करके वहाँ यही काम शुरू कर दिया है। यह सारी प्रवृत्ति कबतक चल सकेगी, इसके बारेमें हम कुछ नहीं कह सकते लेकिन अनुभव हमें कमसे-कम इतना तो सिखाता है कि जहाँ एक भी सच्ची निष्ठावाला व्यक्ति हो वहाँ आरम्भ की हुई प्रवृत्ति मन्द नहीं पड़ सकती।

आजकल देशमें हाथसे कते सूतके कपड़े पहननेका शौक बढ़ता जा रहा है। ऐसे समय यह आवश्यक है कि गुजरातकी बहनें आगे आयें। उनमें शक्ति तो बहुत है, लेकिन पहले इच्छा [भी तो] होनी चाहिए। वस्त्रहीनोंकी लाज ढाँकनेका प्रयत्न साधारण प्रयत्न नहीं है। जबतक स्त्रियाँ काम करनेके लिए आगे नहीं आती तबतक हिन्दुस्तानमें कपड़ेकी तंगी कम नहीं हो सकती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८–७–१९२०

३९. पत्र : एक पाठककी ओरसे[1]

मुझे यहाँ यह पत्र प्रकाशित करते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मैंने ऐसी अनेक दलीलें सुनी हैं और उनका उत्तर भी दिया जा सकता है। पूछा गया है कि बंगालको उसके कर्त्तव्यके प्रति सचेत करनेका क्या उपाय है? अवसर आनेपर उसे अपने कर्त्तव्यका भान हो जायेगा। फिर क्या प्रत्येक प्रान्तका अपना-अपना कार्यक्षेत्र नहीं होता? बंगालने धन नहीं दिया तो विद्वत्ताका दान दिया है। गुजरातने जो दान दिया है उसमें आश्चर्यकी बात नहीं है। गुजरातके पास [धन] बहुत है, उसे देना आता है और उसने दिया है। बंगालको देना नहीं आता; इससे उसने नहीं दिया। कविश्रीको[2] सहायताकी आवश्यकता जान पड़ी इसका अर्थ यही है कि बंगाल उन्हें

१. कचनलाल एम० खाँडवाला। उक्त पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। ११–७–१९२० के नवजीवनमें गांधीजी द्वारा की गई टीकाकी चर्चा करते हुए श्री खाँडवालाने लिखा था कि गुजरातकी आलोचना सही नहीं है तथा बंगालके लोगोंने बंगालसे बाहरके प्रान्तोंके सार्वजनिक कार्योंमें कभी योगदान नहीं किया है। देखिए "शान्तिनिकेतन", ११-७-१९२०।

२. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

पूरी तरह पहचान नहीं चुका। किन्तु क्या इसलिए हम भी सहायता न करें? यह बात सच है कि कविश्रीकी कीमत पैसेमें नहीं आँकी जा सकती, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम अपनेको पैसेसे उनकी सहायता करनेके दायित्वसे मुक्त मानें। बल्कि इसका यह अर्थ है कि हम पैसेसे उनकी जितनी मदद करें उतनी कम है। मैं तो यही मानता हूँ कि उन्हें आनेका विशेष आमन्त्रण देनेके बाद गुजरातने जितना दिया है वह कम है। इसलिए "ताना देने"का प्रश्न ही नहीं उठता। गुजरात अन्य अनेक अवसरोंपर अपने कर्त्तव्यके प्रति जागरूक रहा है इसी कारण मेरे-जैसे भिक्षुक आगे भी उसी कर्त्तव्य-निष्ठाकी आशा रखते हैं। कविश्रीने कोई भिक्षा नहीं माँगी है; बल्कि शान्तिनिकेतनकी स्थितिका अवलोकन करने तथा श्री एन्ड्रयूज द्वारा दिये गये वर्णनको पढ़नेके बाद मैंने ही गुजरातका ध्यान उसके कर्त्तव्यकी ओर दिलाया है। यह उत्तर लिखते समय मुझे सूचना मिली है कि बम्बईसे शान्तिनिकेतनके लिए १०,००० रुपये प्राप्त हुए हैं। यह रकम कविश्रीके [बम्बई] आनेके तुरन्त बाद ही इकट्ठी की गई थी। इससे जो जबरदस्त तंगीकी हालत थी वह दूर हो गई है। लेकिन इससे उन लोगोंको, जिन्हें मेरी माँग उचित जान पड़े, रुक जानेकी आवश्यकता नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८–७–१९२०

४०. भाषण: कौंसिलोंके बहिष्कारपर[1]

१८ जुलाई, १९२०

गांधीजीने कहा कि कौंसिलोंसे सम्बन्ध न रखना भारतीयोंके नजदीक राष्ट्रीय प्रतिष्ठा एवं आत्म-सम्मानका विषय है और जबतक मार्शल लॉके अपराधियोंको दण्ड नहीं मिल जाता तबतक कोई भी आत्म-सम्मानकी भावना रखनेवाला भारतीय उनमें भाग नहीं ले सकता। उन्होंने कहा कि अंग्रेजोंकी अन्तरात्मा उदात्त है लेकिन दुर्भाग्य-वश वे बेंथम, डारविन तथा भौतिकवादके अन्य प्रचारकोंकी लम्बी-चौड़ी बातोंमें आकर ईसामसीहके उपदेशोंसे दूर चले गये हैं। अंग्रेजोंके साझीदार बननेके लिए भार-तीयोंको अपनेमें आत्म-सम्मान और मान-मर्यादाके गुण लाने होंगे; केवल यही अंग्रेजों-के दिलपर असर डाल सकते हैं। उनका दीन-हीन और लाचार बनकर रहना ठीक नहीं है।

प्रासंगिक रूपसे गांधीजीने कहा कि मैं अपने देशके कृषकोंको तथा अपने घरों और खेत-खलिहानके प्रति उनके प्रेमको अच्छी तरह जानता हूँ। मेरा खयाल है कि

१. लाहौरमें; १८–७–१९२० को एक अनौपचारिक सम्मेलन आयोजित किया गया था और उसमें मार्शल लॉके दौरान पंजाबमें हुए अत्याचारों तथा खिलाफत सम्बन्धी शिकायतोंके प्रति विरोध प्रदर्शित करनेके लिए नवनिर्मित कौंसिलोंके बहिष्कारके प्रश्नपर विचार-विमर्श हुआ था।

कर न देनेके परिणामस्वरूप उनकी अधिकारियोंसे टक्कर हो सकती है। इसलिए मैं उन्हें कर अदा न करनेकी सलाह नहीं दूंगा, क्योंकि यह तो मेरे कार्यक्रमकी अन्तिम मंजिल होगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २०–७–१९२०

४१. पत्र : मगनलाल गांधीको

[१८ जुलाई, १९२० के बाद][1]

चि० मगनलाल,

चरखेपर और कालेके ऊपर तो मैं बिलकुल मुग्ध हो गया हूँ। तुम भी बस उसीकी रट लगाते रहो। चरखेके चित्रका और कालेकी तसवीरका ब्लाक बनवानेका काम अब भाई आनन्दानन्दको सौंपना। उनसे मिलना-जुलना भी। उनका जीवन-वृत्तान्त प्राप्त करना। उनकी पढाई-लिखाई कितनी क्या है? चरखेका पेटेंट अपने नामसे लेना। कालेकी सम्मति मिले तो उसका नाम 'गगाबाई चरखा' रखना। [किन्तु] उन्हें अपना नाम देनेकी इच्छा है। उनकी अभी भी यही इच्छा हो तो वैसा ही करना। चरखेपर नाम-धाम आदि सब देवनागरी और उर्दूमें लिखवाना। पेटेंटकी अरजी देनेमें ढील न करना। ट्रस्टकी बात मेरे ध्यानमें है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७९३) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

४२. पत्र : मगनलाल गांधीको

गुरुवार [१८ जुलाई, १९२० के बाद]

चि० मगनलाल,

चरखेके बारेमें जितना सोचता हूँ कालेकी रचनापर उतना ही अधिक मुग्ध होता जाता हूँ। उनकी तबीयतकी देखभाल करते रहना। और पूनियाँ आदि बनानेके यन्त्रोंके नमूनोंकी आकृतियाँ भी उनसे तैयार करा लेना।

छोटालालसे कहना कि भाई विट्ठलदास सारी खादी शीघ्र ही मँगवायेंगे। जिसमें ताना और बाना, दोनों हाथके सूतके हों, ऐसी खादी अपने पास ही बचा रखना।

१. ऐसा लगता है कि यह और अगला पत्र १८–७–१९२०के नवजीवनमें चरखेसे सम्बन्धित घोषणाके बाद लिखे गये थे। देखिए "स्वदेशी", १८–७–१९२०की पाद-टिप्पणी २।

रामजीभाईका खयाल रखना। वे आदमी सज्जन है। उनके १८ रुपये जमा रखना। इसकी एवजमें उन्हे सूत भेजना और उनसे बड़े अर्जका कपड़ा बुननेको कहना। वे बुन देंगे। अब हमारे पास बड़े अर्जकी ऐसी खादी जिसमें ताना-बाना, दोनो हाथके सूतके हो, होनी चाहिए। कताईका काम अहमदाबादमें शुरू नही किया तो धुनियेका बोझ बेकार ही उठाना पड़ेगा। जल्दी करना।

ट्रस्ट मेरे ध्यानमे है। एक मिनट भी खाली नही बैठता किन्तु लाचार हो जाता हूँ। आज सारा दिन 'यंग इंडिया'के लिए लिखता रहा; अब थक गया हूँ लेकिन पूरा कर डालूंगा।

बा की देखभाल करते रहना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७९४) से।
सौजन्य. राधाबेन चौधरी

४३. भाषण: रावलपिंडीमें[1]

१९ जुलाई, १९२०

अगर हिन्दू यह समझ जायें कि सात करोड़ मुसलमान उनके देशभाई हैं और वे उनके साथ दुश्मनी करके नही रह सकते तो यह निश्चय कर लेना उन्हे अपना परम कर्त्तव्य मालूम होगा कि उन्हें मुसलमानोंके साथ जीना है और उन्हींके साथ मरना है। मै तालियोंकी गड़गड़ाहट नही चाहता, बड़े-बड़े जलसे भी नही चाहता, चाहता हूँ तो सिर्फ काम। अगर हिन्दू अपना कर्त्तव्य भूलकर मुसलमानोंके साथ इस प्रसंगपर कुर्बानी नही करते तो मै उनसे कहूँगा कि आज जैसे इस्लामपर खतरा आया हुआ है वैसे ही किसी दिन उनके धर्मपर भी खतरा आयेगा। यूरोपके मित्र देशोंके मन्त्रियोका खयाल है कि वे मुसलमानोको वहाँसे निकाल बाहर कर सकते है, इसी तरह वे किसी दिन हिन्दुओंको भी गुलाम बनानेकी बात सोच सकते है। हमारा कर्त्तव्य है कि जबतक मुसलमान भाई अपने दीन और ईमानपर कायम रहकर कुर्बानी करनेके लिए तैयार हों तबतक हम हिन्दुस्तानकी आजादीकी खातिर उनके साथ डटे रहे। . . .

मै पिछले तीस वर्षोसे मुसलमान भाइयोको जानता हूँ; और मै इस बातके लिए उनपर कुर्बान हूँ कि वे हिम्मतका काम कर सकते है, बहादुरी दिखा सकते है; लेकिन मैने यह भी देखा है कि जोशमें आकर उन्होने कई बार बहुत बड़े-बड़े काम कर डाले, मगर जोश ठडा हो जानेपर उनकी काम करनेकी शक्ति ही चली

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित।

जाती है। इस लड़ाईमे हमे कुर्बानी तो करनी ही है; हममें उस सल्तनतकी-सी काबिलियत भी होनी चाहिए जिसके खिलाफ हम जूझ रहे हैं, इस सल्तनतके सिपाही ठडे दिमागसे, अनुशासन, समझदारी और बहादुरीके साथ लडते है। अगर आप उनके खिलाफ खड़े होना चाहते है तो आपको भी वही समझदारी, वही बहादुरी और वही अनुशासन सीखना चाहिए। अगर आप जोशमे आकर अपने नेताके आदेशोका पालन नही करेगे तो आपको विजय नही मिलेगी। बहुत-से राष्ट्रोको सिर्फ इसी कारण न्याय नही मिल पाया कि उन्होने क्रोधसे काम लिया। ईश्वर भी उसी व्यक्तिको इन्साफ देता है जिसमें तदबीर है, हिम्मत है, सही ढगसे काम करनेकी शक्ति है लेकिन क्रोध नही है। रावलपिंडीके हिन्दू और मुसलमान भाई काफी ताकतवर हैं। उनमें आपसमे झगड़नेकी ताकत भी है। मेरी उनसे यह मिन्नत है कि वे कुर्बानीकी ताकत हासिल करे। मै फिर कहता हूँ कि कुर्बानी तलवार खीचकर लड़नेको तैयार हो जानेमे नही है। तलवार उठा लेनेमे तो मुसलमान बडे बहादुर हैं। उनकी तलवारकी ताकतके लिए मै उन्हें मुबारकबाद देता हूँ, लेकिन उन्हें यह भी समझाना चाहता हूँ कि अगर आप तलवार चलानेकी ताकतकी कामना करते है तो आपके भीतर जान दे देनेका माद्दा भी होना चाहिए। पंजाबी तलवार उठाना जानते हैं, लेकिन मै उनकी तलवारको भाड़ेकी तलवार मानता हूँ। भाड़ेकी तलवारसे किसीको डराया नही जा सकता। जो आपसे भी अच्छी तरह तलवार चलाना जानता हो आपकी तलवार उसके सामने बेकार हो जाती है, और आपके हाथसे तलवार छूटी कि आप भी असहाय हो गये। लेकिन मैने ऐसा उपाय ढूँढ़ निकाला है जिससे आप अपनी तलवार म्यानमे रखकर लड सकते है। मुझे तो लगता है कि अगर आप तलवारका उपयोग करेगे तो आपको पराजय ही मिलेगी। इतना ही नही, वह तलवार उलटकर आपके ही भाइयो और बहनोंकी गर्दनपर पड़ेगी। अगर आप असहयोगकी खूबी समझना चाहते है तो मेरा कहा मानिए। मैं 'कुरान शरीफ'की जानकारी रखनेका दावा नही करता, लेकिन आपके उलेमाओंका ही कहना है कि असहयोग एक बहुत जबरदस्त ढंगका जिहाद है। तलवार उठानेपर भी आदमी मरता ही है और असहयोग करनेपर भी मरता है। तो जिसमें दूसरोंको मारनेकी बात नही है, उस असहयोगको अपनाकर आप कुर्बानी क्यों न करें?

सुना है, पेशावरमे मुहाजरीनोंके ऊपर जो जुल्म किये गये हैं, उनको लेकर लोग बहुत उत्तेजित हैं; उनका खून खौल रहा है। मुझे लगता है कि मुहाजरीनोका कोई दोष नही था; दोष अंग्रेज सिपाहियोंका ही था। लेकिन ऐसी गलत बातें हो जानेपर भी हमें धैर्यसे काम लेना चाहिए, उन्हें बरदाश्त कर लेना चाहिए। अगर आप यह निश्चय कर लें कि खूनकी नदी भले बह जाये, लेकिन हम अपनी मर्दानगी नही छोड़ेंगे, अपना आपा नही खोयेंगे बल्कि हिम्मतके साथ कुर्बानी करते रहेगे तो आप तय मानिए कि आपको विजय मिलेगी ही। . . .

सरकारके साथ कोई सम्बन्ध नही रखना है, इसी सिद्धान्तको समझनेमे सच्चा सहयोग निहित है। . . .

अगर इन [खितावयाफ्ता] लोगोंमें अपने खिताव छोड़नेकी ताकत और भलमनसाहत न हो तो मैं इनके बजाय खानसामाओंसे ही कहूँगा कि सरकारी नौकरोंके लिए रोटी पकाना भी इस जालिम सरकारके जुल्मोंमें हाथ बँटाना है। . . .

मैं सिपाहियोंसे हथियार छोड़ देनेको तो कहूँगा लेकिन यह नहीं चाहूँगा कि वे फिर कभी किसी दुश्मनपर हथियार उठायें। मैं उन्हें अपनी ही तरह बेतलवारका सिपाही बननेको कहूँगा। मुझमें कोई शारीरिक शक्ति तो है नहीं; लेकिन मैं मानता हूँ कि मेरी मर्जीके खिलाफ मुझसे कुछ भी नहीं कराया जा सकता। आगे समय आनेपर मैं किसानोंसे भी मालगुजारी न देनेको कहूँगा, लेकिन अभी मैं सिपाहियों और किसानों दोनोंसे कहूँगा कि जबतक कोई निर्देश नहीं दिया जाता तबतक वे कोई कदम न उठायें। हमारी लड़ाईकी खूबी अनुशासनमें है, इसलिए मैं अपने बेहथियार, बेतलवार सैनिकोंसे कहूँगा कि जबतक उन्हें हुक्म न दिया जाये तबतक वे कोई कदम न उठायें। समय आनेपर उन्हें हुक्म दिया जायेगा। लेकिन जबतक हमें यह नहीं लगता कि सारा हिन्दुस्तान अनुशासनको मानने लगा है तबतक हम सिपाहियों और किसानोंसे कुछ नहीं कहेंगे। . . .

ये लोग सेनामें भरती क्यों होते हैं? पैसेके लिए। जो पैसा इन्सानकी इन्सानियत ले ले, वह पैसा बहुत ही तुच्छ वस्तु है। क्या आप बॉसवर्थ स्मिथ, जॉन्सन, श्रीराम आदिके काले कारनामे भूल गये हैं? पेटके बल रेंगनेका आदेश क्या आप भूल गये हैं? मैं आपसे विनती करता हूँ कि आप पैसेके लालचमें भरतीके जालमें न फँसें। मेहनत-मजदूरी करके अपनी रोटी कमायें और साफ कहें कि हम सेनामें भरती नहीं हो सकते। जरा सोचिए कि अगर पंजाब ऐसा करता है तो उसका कितना भारी असर होगा। जितने सिपाही पंजाब देता है उतने सिपाही और कौन-सा प्रान्त देता है? और अगर पंजाब सिपाही न दे तो वह कौन-सी ताकत है जो दूसरी जगहोंसे सिपाही प्राप्त कर सकती है? . . .

मैंने भी सरकारकी सिपाहीगिरी की है, लेकिन अब उससे ऐसा कह देनेका समय आ गया है कि तुम्हारी सल्तनतसे खुदाकी सल्तनत हमें हजार गुना अधिक प्यारी है। उस सल्तनतमें हम अपना धर्म कायम रख सकते हैं; तुम्हारी सल्तनत तो अन्यायपर टिकी हुई है। वह ईश्वरका विरोध करके खड़ी है, उसके प्रति हम वफादार नहीं हो सकते।

मार्शल लॉसे पंजाबकी नाक कटी है, उसका अपमान हुआ है। इसे धोनेका यही तरीका है कि आप सरकारसे कह दें कि हम वफादार प्रजा बनकर रहना चाहते हैं, लेकिन उसी हालतमें जब सरकार सीधी चाल चले और पंजाबके साथ न्याय करे। जबतक आप [सरकार] ऐसा नहीं करते तबतक हमें आपसे कोई मुहब्बत, कोई लगाव नहीं हो सकता। . . .

मॉण्टेग्यु साहबने कहा है कि गांधीने देशकी सेवा तो की है, लेकिन अब वह पागल हो गया है, और जरूरत हुई तो उसे गिरफ्तार भी किया जा सकता है। अब मैं आपसे कहूँगा कि अगर गांधीको गिरफ्तार किया जाये तो आप लोग पागल

न बन जाइयेगा। किचलूकी गिरफ्तारीपर आप पागल हो गये थे, सत्यपालकी[1] गिरफ्तारीपर भी आप पागल हो गये थे। आपने मकान जलाये, निर्दोष लोगोंकी जानें ली। अगर आप मुझे प्यार करते हैं तो हम दोनोंके गिरफ्तार कर लिये जाने या फाँसीपर लटका दिये जानेपर भी आप धैर्यसे काम लें। मेरा खयाल है, अगर मैं प्रधान मन्त्री होऊँ और कोई ऐसा व्यक्ति, जिसे मैं पागल गांधी मानता होऊँ, मेरा विरोध करे तो मेरा दिल कहता है कि मैं भी अवश्य ही उस गांधीको अन्दमान भेज दूँ। मॉण्टेग्यु मुझे पागल मानते हैं; अगर वे सचमुच मुझे पागल मानें और गिरफ्तार कर लें तो इसमें गुस्सेकी क्या बात है? अगर आप मुझे पागल न समझते हों तो आप मेरा कहना मानें, और मेरा कहना मानकर जेल जायें। जहाँ किसी जालिमका राज हो वहाँ जेल महलके समान है और महल जेलके समान है। अगर आपने कभी जेल-महलका अनुभव प्राप्त किया है तो मैं जो कहता हूँ, उसे आप स्वीकार करेंगे। अगर आप मानते हों कि मेरी अन्तरात्माके माध्यमसे ईश्वर मुझसे जो-कुछ कहता है, आपसे मैं वही कहता हूँ तो आप मेहरबानी करके मुझे यह भरोसा दिलायें कि अगर सरकार मुझे सजा दे तो भी आप अपना गुस्सा पी जायेंगे, उसका विस्फोट नहीं होने देंगे; बल्कि सरकारसे बुलन्द आवाजमें यह कहेंगे कि चाहे हमें फाँसी दो या जेल, आपको हमारा सहयोग नहीं मिल सकता; आपको हमारा सहयोग जेलमें मिलेगा; फाँसीके तख्तेपर मिलेगा, लेकिन फौजी रिसालोंमें नहीं, विधान सभाओंमें नहीं; और न किसी और सरकारी महकमेमें। . . .

इस शिक्षाके लिए शारीरिक शक्तिकी जरूरत नहीं है और न कोई खास इल्म सीखनेकी जरूरत है। इसके लिए शौकत अली-जैसा शरीर भी नहीं चाहिए। इसके लिए बस एक ही तत्त्वको जानना जरूरी है — धैर्यको। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको ऐसी प्रेरणा दे, ऐसी शक्ति दे कि हिन्दुस्तान और सब-कुछ भूलकर इस कामको अपने हाथमें ले ले। अगर हम इसे साध लें तो हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेके प्रेमके गुलाम बनकर रहेंगे और वे दुनियाको यह हुक्म दे सकनेकी स्थितिमें होंगे कि बेईमानी और अन्याय बन्द करो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५–८–१९२०

१. चिकित्सक और पंजाबके कांग्रेसी नेता; इन्हें १० अप्रैल, १९१९ को निर्वासित किया गया था।

४४. भाषण : गूजरखानमें[1]

२० जुलाई, १९२०

महात्मा गांधी जोरकी हर्षध्वनिके बीच उठे; खिलाफतके मामलेमें हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखोंकी एकताकी जरूरत समझाते हुए उन्होंने कहा कि गैर-मुसलमानोंके पवित्र स्थानोंके उद्धारका यही एक रास्ता है। इस ध्येयकी पूर्तिके लिए त्याग किये बिना काम न चलेगा। कच्चा गढ़ीकी[2] घटना इसका उदाहरण है। आगे चलकर गांधीजीने श्रोताओंसे कहा कि आप लोग अंग्रेजोंके प्रति किसी प्रकारकी हिंसाका प्रयोग न करें। सफलताका मार्ग यह नहीं है और न इस ढंगसे सरकारका विरोध करनेमें आप समर्थ ही हैं। हमारा हथियार तो एक ही है — हिन्दू-मुस्लिम एकता। यदि इन दो जातियोंके बीच सच्ची एकता हो और संकल्पकी दृढ़ता हो तो हमें सरकारको सूचित कर देना चाहिए कि जबतक खिलाफतका प्रश्न इस तरह हल नहीं किया जाता जिससे मुसलमानोंको सन्तोष हो जाये तबतक हम लोग सरकारसे सहयोग नहीं करेंगे। जैसा कि मैं घोषित कर चुका हूँ पहली अगस्तका दिन व्रत और हड़तालके दिनके रूपमें मनाया जाना चाहिए और मस्जिदों और मन्दिरोंमें प्रार्थना की जानी चाहिए। वक्ताने मुसलमानोंके साथ उस समयतक हमदर्दी दिखानेके अपने निश्चयको प्रकट किया जबतक खिलाफतके प्रश्नका निर्णय उनके अनुकूल नहीं हो जाता। उन्होंने कहा कि देखा गया है कि मुसलमान लोग यदाकदा क्रोधके वशीभूत हो जाते हैं और हाथमें तलवार उठा लेते हैं। इसकी इस अवसरपर आवश्यकता नहीं है और इससे बजाय लाभके नुकसान अधिक पहुँच सकता है। इसके बाद वक्ताने सरकारके साथ असहयोगपर अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा, पहली अगस्तको असहयोग आरम्भ हो जायेगा। पहली अगस्तको सरकारसे स्पष्ट रूपसे यह कह देना चाहिए कि चूँकि खिलाफतके प्रश्नका निर्णय उनके पक्षमें नहीं किया गया है इसलिए भविष्यमें हम वफादार बने रहनेको तैयार नहीं हैं। खिताब तथा अवैतनिक पद छोड़ दिये जायें। वकीलोंको वकालत छोड़ देनी चाहिए। क्योंकि इस सरकारकी कचहरियोंमें वकालत करनेकी अपेक्षा शरीर-श्रमपर बसर करना कहीं अच्छा है। सरकारी खानसामाओं और बावर्चियोंको भी अपनी नौकरियाँ छोड़ देनी चाहिए क्योंकि जो अत्याचारियोंकी नौकरी करता है वह उनके द्वारा किये जानेवाले अत्याचारोंमें भागीदार बनता है। कौंसिलोंका भी बहिष्कार किया जाना चाहिए। यदि इससे काम न चला तो मैं सैनिकोंके पास जाऊँगा और उनसे कहूँगा कि आप लोगोंको ऐसी सरकारकी नौकरी नहीं करनी

१. म्युनिसिपल गार्डन्समें आयोजित सार्वजनिक सभामें।
२. देखिए "हिजरत और उसका अर्थ", २१-७-१९२०।

चाहिए जो आपकी धार्मिक भावनाओंके प्रति उदासीन हैं। यदि इससे भी काम न चला तो मैं किसानोंके पास जाऊँगा और उनसे सरकारको लगान न अदा करनेकी बात कहूँगा। परन्तु ऐसा तभी किया जायेगा जब मुझे आप लोगोंकी एकताके विषयमें विश्वास हो जायेगा।

श्री गांधीने आगे चलकर कहा कि श्री मॉण्टेग्युकी राय है कि मैंने अपने कर्त्तव्यका पालन किया है। लेकिन उनके नायबका मत है कि मुझपर पागलपन सवार है। मैं अपने निश्चयपर दृढ़ और अटल हूँ और फाँसीपर चढ़ने या निर्वासित किये जानेसे नहीं डरता। उन्होंने श्रोताओंसे कहा कि यदि मुझे, शौकत अली और डा० किचलूको फाँसी दे दी जाये या हम निर्वासित कर दिये जायें तो भी आप लोग शान्ति-भंग न करें। पिछले वर्ष डा० किचलू और सत्यपालके निर्वासनके समय आपने ऐसा ही किया था; अब ऐसा नहीं होना चाहिए। मैं अपने भाइयोंकी सहायता करनेके लिए सदैव तैयार हूँ, चाहे जेलमें रहूँ अथवा उसके बाहर। जेलके बारेमें आपकी जो भी धारणाएँ हों परन्तु कारावास आततायियोंके अधीन भोगी जानेवाली स्वतन्त्रतासे बेहतर तो है ही। आप लोग अपने घरोंको जेल और जेलोंको महल मानें। आवश्यकता इस बातकी है कि मनमें दृढ़ता हो। मैं तालियाँ पीटने और बड़ी-बड़ी सभाएँ आयोजित करनेको बहुत लाभदायक नहीं मानता। यह समय अमली काम करनेका है।

महात्मा गांधीने अपना व्याख्यान बैठे-बैठे दिया और चूँकि वे कुछ अस्वस्थ थे, इसलिए उन्होंने भाषण समाप्त होते ही श्रोताओंसे विदा माँगी। इसपर कैम्पबेलपुरके चार आदमी खड़े हो गये और कहने लगे कि हम लोग गांधीजीको कैम्पबेलपुर ले जानेके लिए आये हैं। गांधीजीने उनसे कहा कि आप उस स्थानपर आइये, जहाँ मैं ठहरा हुआ हूँ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०

४५. देशकी पुकारपर

डा० सप्रूने[1] इलाहाबादकी खिलाफत कान्फ्रेन्समे बड़ा जोशीला भाषण दिया। उन्होने मुसलमानोकी वेदनाके प्रति सहानुभूति प्रकट की, लेकिन साथ ही उन्हें असहयोग न करनेकी भी सलाह दी। उन्होने स्पष्ट स्वीकार किया कि वे असहयोगके स्थानपर कोई दूसरा उपाय नही सुझा सकते, लेकिन उनका निश्चित मत था कि यह इलाज तो खुद मर्जसे भी बुरा है। उन्होने यह भी कहा कि मुसलमान लोग भारतीय न्यायाधीशोसे पदत्याग करनेका अनुरोध नही कर सकते और अगर वे ऐसा करते है तो सफल नही होगे। इस हालतमें अगर वे अबोध-अज्ञान सर्वसाधारणसे साथ देनेका अनुरोध करते है तो वे अपने सिर एक बहुत भारी जिम्मेदारी लेगे।

मै स्वीकार करता हूँ कि डा० सप्रूकी इस आखिरी दलीलमें जोर है। उनके मनमें यह भय काम कर रहा है कि अज्ञानियोके असहयोगसे परेशानी पैदा होगी और अव्यवस्था फैलेगी, लेकिन लाभ कुछ नही होगा। मेरे विचारसे तो किसी भी असहयोगका कुछ सुपरिणाम निकलना निश्चित है। अगर वाइसराय महोदयका दरबान यह कहे कि "हुजूर, मै अब सरकारकी और सेवा नही कर सकता, क्योकि इसने मेरे राष्ट्रीय सम्मानको चोट पहुँचाई है" और इस्तीफा दे दे तो मेरे खयालसे यह काम सरकारके अन्यायके विरुद्ध किये गये जोरदारसे-जोरदार भाषणसे भी अधिक कारगर और वजनदार साबित होगा।

फिर भी जबतक हम इस कामके लिए देशके ऊँचेसे-ऊँचे तबकेसे अपील नही करते तबतक उस दरबानसे कुछ कहना गलत होगा। इसलिए मेरा इरादा यह है कि अगर सरकारके दरबानोसे इस अन्यायी सरकारसे अलग हो जानेको कहनेकी जरूरत पडी तो सबसे पहले मै न्यायाधीशो और कार्यकारिणी परिषद्के सदस्योसे अनुरोध करूँगा और कहूँगा कि आज सारे भारतमे खिलाफत और पंजाबके सवालोपर किये गये दोहरे अन्यायके प्रति जो विरोध उठ रहा है, उसमे वे भी शामिल हो। दोनो ही सवाल हमारे राष्ट्रीय सम्मानसे सम्बन्धित है।

मै तो यही मानता हूँ कि ये सज्जन कुछ पैसोके लोभसे इन उच्च पदोपर नही आये है, और मेरा ख्याल है कि ख्यातिके लोभसे भी नही आये। मेरे खयालसे ये देशकी सेवा करनेके विचारसे ही इन पदोंपर आये। पैसेके लोभसे नही आये क्योकि इन पदोपर उन्हें जितने पैसे मिलते है, उससे अधिक तो वे पहले ही कमा रहे थे। और इसी तरह यह भी नही माना जा सकता कि ये ख्यातिके लोभसे आये, क्योकि देशका सम्मान बेचकर ख्याति नही अर्जित की जा सकती। जो एक विचार उन्हें इस समय इन पदोंपर बनाये रख सकता है वह है देशकी सेवाका विचार।

१. सर तेजबहादुर अम्बिकाप्रसाद सप्रू (१८७५–१९४९); राजनयिक और वकील।

जब जनताको सरकारमें विश्वास होता है, जब सरकार जनमतकी प्रतिनिधि होती है तब न्यायाधीश और कार्यपालक अधिकारी, शायद देशकी सेवा कर सकते हैं। लेकिन जब सरकार जनमतकी प्रतिनिधि न हो, जब वह बेईमानी और आतंकको शह दे तो न्यायाधीश और कार्यपालक अधिकारी अपने पदोंपर कायम रहकर उस बेईमानी और आतंकके साधन बन जाते हैं। इसलिए ये उच्च पदाधिकारी कमसे-कम इतना तो कर ही सकते हैं कि वे एक बेईमान और आतंकवादी सरकारके एजेंट बननेसे इनकार कर दें।

न्यायाधीशोंके सम्बन्धमें तो यह आपत्ति उठाई जायेगी कि वे राजनीतिसे ऊपर हैं और उन्हें ऊपर रहना चाहिए। लेकिन यह सिद्धान्त वहींतक ठीक माना जा सकता है जहाँतक कुल मिलाकर सरकार जनताके कल्याणकी इच्छुक हो और कमसे-कम बहुमतकी इच्छाका प्रतिनिधित्व करती हो। राजनीतिमें भाग न लेनेका मतलब इतना ही है कि किसीका पक्ष न ले। लेकिन जब पूरे देशका विचार एक हो, इच्छा एक हो और जब पूरे देशको न्याय देनेसे इनकार कर दिया जाये तब वह दलगत राजनीतिका सवाल नहीं रह जाता, राष्ट्रके जीवन-मरणका सवाल बन जाता है। उस हालतमें प्रत्येक नागरिकका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह ऐसी सरकारकी सेवा करनेसे इनकार कर दे जिसका व्यवहार ठीक नहीं है और जो राष्ट्रीय इच्छाका अनादर करती है। और तब न्यायाधीशोंके लिए भी, अगर वे अन्ततः देशके ही सेवक हैं तो, राष्ट्रके साथ कदमसे-कदम मिलाकर चलना आवश्यक है।

अब हमें दूसरी दलीलपर विचार करना है। यह बात न्यायाधीशों और कार्यकारिणी परिषद्के सदस्यों, दोनोंपर समान रूपसे लागू होती है। लोग कहेंगे कि मेरा अनुरोध तो सिर्फ भारतीयोंतक ही लागू हो सकता है, और जिन पदोंको बड़े संघर्षके बाद राष्ट्रीय हकमें प्राप्त किया गया है उन्हें छोड़नेसे भला क्या लाभ निकलेगा। कितना अच्छा होता, अगर मैं अंग्रेजोंसे भी उतनी ही कारगर अपील कर सकता जितनी कि भारतीयोंसे। इसलिए अभी मैंने जिस दलीलका जिक्र किया है, उसपर भी विचार करना जरूरी है। यह तो सच है कि इन पदोंको काफी लम्बे संघर्षके बाद हासिल किया गया है, लेकिन ये पद इसलिए उपयोगी नहीं कि इन्हें बहुत संघर्ष करके हासिल किया गया है, बल्कि इसलिए हैं कि इनके बलपर हम देशकी सेवा करना चाहते हैं। जिस क्षण इन पदोंमें यह खूबी नहीं रह जाती, उसी क्षण इनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है, और चाहे ये कितने भी संघर्षके बाद हासिल किये गये हों और इस कारण आरम्भमें कितने ही मूल्यवान रहे हों, इस खूबीके अभावमें उनसे हमारा हित-साधन होनेके बजाय हानि ही होती है, जैसी कि अभी हो रही है।

मैं इन उच्च पदोंपर आसीन अपने इन प्रतिष्ठित देशभाइयोंसे यह भी निवेदन करूँगा कि अगर वे अपने पद छोड़ देंगे तो संघर्ष कम समयमें ही समाप्त हो जायेगा और सर्वसाधारणसे अपने विरोधके प्रदर्शनस्वरूप असहयोग करनेको कहनेमें जिस खतरेकी आशंका है, शायद वह खतरा भी टल जायेगा। अगर खिताबयाफ्ता लोग अपने खिताब छोड़ दें, जिन लोगोंको अवैतनिक पद मिले हुए हैं वे अगर अपने पद छोड़

दें, अगर उच्च पदाधिकारी अपने उच्चासनोंको छोड़ दे और भावी विधायकगण कौंसिलों-का बहिष्कार करे तो सरकारके होश तुरन्त ठिकाने आ जायें और वह जनताकी इच्छाको कार्यान्वित करनेके लिए तैयार हो जाये। क्योंकि तब तो सरकारके सामने विशुद्ध रूपसे स्वेच्छाचारी शासनके अलावा और कोई विकल्प ही नहीं रह जायेगा। इसका मतलब शायद सैनिक तानाशाही होगी। लेकिन अब विश्व-मतका जोर इतना बढ गया है कि ऐसी तानाशाहीकी बात ब्रिटेन आसानीसे नही सोच सकता। मैंने जो-कुछ करनेका सुझाव दिया है, वह सब अगर किया जाये तो दुनिया एक ऐसी शान्तिपूर्ण क्रान्तिका नजारा देखेगी जैसी शान्तिपूर्ण क्रान्ति उसने कभी नही देखी है। अगर एक बार यह अहसास हो जाये कि असहयोग कभी विफल हो ही नही सकता तो रक्तपात और हिंसा बिलकुल उठ जाये।

हाँ, इसमे कोई सन्देह नही कि राष्ट्रीय असहयोग-जैसा सख्त कदम तभी उठाया जा सकता है, जब उद्देश्य बहुत बड़ा हो। और मैं कहता हूँ कि इस अवसरपर इस्लाम-का जैसा अपमान किया गया है, वैसा अपमान फिर अगली एक सदी तो नही ही किया जा सकता। अगर इस्लामको उठना है तो वह अभी उठे, अन्यथा अगर सदा नही तो कमसे-कम एक सदीतक तो वह इसी अवस्थामे पड़ा रहेगा। और जहाँतक अन्यायकी गुरुताकी बात है, जलियाँवाला बागमें जो नरसंहार किया गया, उसके बाद पंजाबमें जो बर्बरता बरती गई, हंटर समितिने जिस तरह सारे मामलेकी लीपापोती की, भारत सरकारने जो खरीता[1] भेजा, श्री मॉण्टेग्युने जिस तरह पहले वाइसरायका, और फिर पजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नरका समर्थन करते हुए पत्र[2] लिखा, और मार्शल लॉके दौरान पंजाबियोंके जीवनको नरक बना देनेवाले अधिकारियोको हटानेसे जिस तरह इनकार किया गया, उससे अधिक बड़े अन्यायकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। इन कारंवाइयोके रूपमें भारतके प्रति अन्यायोंका एक ताँता-सा बाँध दिया गया, और अगर भारतमें तनिक भी आत्मसम्मानकी भावना हो तो उसे अपनी समस्त भौतिक सम्पदाओंका बलिदान करके भी इन अन्यायोका निराकरण करना है। और अगर वह ऐसा नही करता तो उसका मतलब यह होगा कि उसने एक छोटेसे तात्कालिक लाभके लिए अपनी आत्मा बेच दी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१–७–१९२०

१. देखिए खण्ड १७, परिशिष्ट ४।

२. देखिए खण्ड १७, परिशिष्ट ५।

४६. चरखेका संगीत[1]

धीरे-धीरे ही सही लेकिन निस्सन्देह, भारतके कदाचित् सबसे पुराने यन्त्रका संगीत हमारे समाजमे एक बार फिर व्याप्त होने लगा है। पडित मालवीयजीने कहा है कि जबतक भारतको रानी-महारानियाँ सूत नही कातने लगती, और राजे-महाराजे करघोंपर बैठकर राष्ट्रके लिए कपडे नही बुनने लगते तबतक उन्हें सन्तोष नही होगा। उन सबके सामने औरंगजेबका उदाहरण है, जो अपनी टोपियाँ खुद ही बनाता था। और उससे भी बडे बादशाह — कबीर — खुद एक जुलाहे थे और अपने काव्यमे उन्होने इस कलाको अमर बना दिया है। जब यूरोप शैतानके चगुलमे नही फँसा था, उन दिनों वहाँकी रानियाँ भी सूत कातती थी और इसे एक अच्छा काम मानती थी। अग्रेजीमें कुमारी और पत्नीके लिए जो शब्द है, वे अंग्रेजीके कताई और बुनाईके अर्थोमे प्रयुक्त धातुओसे व्युत्पन्न है। इस बातसे इस कलाकी प्राचीन गरिमा सिद्ध है। "जब आदम जमीन गोड़ता था और हौवा सूत कातती थी, उस समय जिसे हम सभ्य व्यक्ति कहते है, ऐसा कौन था?" — यह वाक्य भी इसी तथ्यका सूचक है। फिर आश्चर्य नही, अगर पंडितजी भारतके राज-परिवारोको हमारी पवित्र भूमिके इस प्राचीन धन्धेको पुन. प्रारम्भ करनेके लिए राजी कर लेनेकी आशा रखते है। भारतकी समृद्धि और सच्ची स्वतन्त्रता शस्त्रास्त्रोकी झनझनाहटपर निर्भर नही करती। इसकी स्वतन्त्रता और समृद्धि तो, बहुत ज्यादा अंशोंमे, घर-घरमे एक बार फिर चरखेके सगीतको गुजरित कर देनेपर निर्भर करती है। इसका संगीत हारमोनियम, कार्सटिना और एकॉडियन आदि बेहूदे वाद्योके सगीतसे अधिक मधुर, अधिक लाभदायक है।

दरअसल पडितजी जिस सुन्दर ढंगसे भारतीय राज-परिवारोको चरखेको अपनानेके लिए राजी करनेकी कोशिश कर रहे है, वह किसी दूसरेके लिए सम्भव नही। और इधर पडितजी है तो उधर सरलादेवी चौधरानी। वे तो स्वय ही एक ऐसे परिवारकी है जो भारतके राज-परिवारोकी श्रेणीमे आता है, फिर भी उन्होने यह कला सीख ली है और मन-प्राणसे इस आन्दोलनमे शामिल हो गई है। उनके सम्बन्धमे स्वयं उनसे और दूसरोंसे मुझे जो-कुछ भी मालूम हुआ है, उस सबसे यही पता चलता है कि उन्हे स्वदेशीकी लगन लग गई है। उनका कहना है कि मलमलकी साडी पहनना उन्हें अट-पटा लगता है और गर्मीके मौसममे भी वे खद्दरकी साड़ी ही पहनती है। सचाई यह है कि स्वदेशीका जितना प्रचार उनकी जिह्वा और वाणीसे नही होता, उतना ही प्रचार उनकी खद्दरकी साड़ियोंसे हो रहा है। वे अमृतसर, लुधियाना तथा और भी बहुत-सी जगहोमे आयोजित सभाओंमे इस विषयपर बोल चुकी है और इस तरह अपनी अमृतसरकी बुनाई समितिके लिए उन्होने श्रीमती रतनचन्द, बुग्गा चौधरी तथा रतन-देवीकी सेवाएँ प्राप्त की है। ये वही विख्यात रतनदेवी है जो १३ अप्रैलकी उस

१. देखिए "स्वदेशी", १८-७-१९२०।

डरावनी रातमें जनरल डायरके कर्फ्यू आर्डरके वावजूद सैकड़ों मृतकों और दम तोड़ते लोगोंके बीच अपने मृत पतिके सिरको गोदमें लिए बैठी रही थीं। मैं इन महिलाओंको बधाई देता हूँ। मेरी तो यही कामना है कि चरखेका संगीत और यह विचार उन्हें परम तोष दे कि वे राष्ट्रका काम कर रही हैं। मुझे आशा है कि अमृतसरकी अन्य महिलाएँ भी सरलादेवीको उनके प्रयत्नोंमें सहायता देंगी और वहाँके पुरुष भी इस सम्बन्धमें अपने कर्त्तव्यको पहचानेंगे।

पाठकगण जानते होंगे कि बम्बईमें तो बहुत ही प्रमुख और प्रतिष्ठित परिवारोंकी महिलाओंने भी कताईका काम शुरू कर दिया है। उनमें डा० श्रीमती माणेकबाई बहादुरजी भी शामिल हैं, जो यह कला सीख चुकी हैं और अब इसे सेवासदनमें[1] भी शुरू करनेकी कोशिश कर रही हैं। जंजीराकी बेगम साहिबा तथा उनकी बहन श्रीमती अतिया बेगम रहमानने भी यह कला सीखनेका वचन दिया है। मुझे विश्वास है कि ये भली महिलाएँ इस कलाको सीखकर पूरी नियमितताके साथ राष्ट्रके लिए एक निश्चित मात्रामें सूत दिया करेंगी।

मैं जानता हूँ कि कुछ भाई इस महान् कलाके पुनरुद्धारके प्रयत्नपर हँसते हैं। वे कहते हैं कि मिलों, सिलाई मशीनों या टाइपराइटरोंके इस युगमें कोई पागल ही चरखे-जैसे दकियानूसी यन्त्रका पुनरुद्धार करनेमें सफल होनेकी आशा कर सकता है। ये मित्र भूल जाते हैं कि सिलाईकी मशीन आ जानेपर भी सुईका प्रचलन उठ नहीं गया है और न टाइपराइटर आ जानेपर हाथसे लिखनेकी कलाका अन्त हो गया। कोई कारण नहीं कि जैसे होटलोंके साथ-साथ घरेलू रसोई-घर चल रहे हैं वैसे ही सूत कातनेवाली मिलोंके साथ-साथ चरखे क्यों नहीं चल सकते। सच तो यह है कि टाइपराइटर और सिलाईकी मशीनें समाप्त हो सकती हैं, किन्तु सुई और सरकंडेकी कलम बराबर बनी रहेगी। मिलोंकी भी बरबादी हो सकती है, लेकिन चरखा तो हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता है। इन आलोचकोंसे मैं कहूँगा कि वे जरा गरीबोंकी झोंपड़ियोंको जाकर देखें, जहाँ उनकी कमाईके स्वल्प साधनोंमें चरखा एक बार फिर बहुत बड़ा योग देने लगा है। वे उन्हीं झोंपड़ियोंमें रहनेवाले लोगोंसे पूछकर देखें कि क्या चरखेके कारण उनके घरोंमें खुशहाली नहीं आई है।

श्री रेवाशंकर जगजीवनने जो पुरस्कार घोषित किया था, ईश्वरकी कृपासे उसके बहुत फलप्रद होनेकी आशा है। कुछ समयमें भारतके पास एक नये ढंगका सुन्दर-सुघड़ चरखा होगा — जिसकी खोज बड़े धैर्य और मनोयोगके साथ ढाकाके एक कारीगरने की है। इसके पुर्जे बहुत साधारण-से हैं और बनावट बिलकुल सादी। इसकी कीमत भी कम ही होगी और इसकी मरम्मत आसानीसे की जा सकेगी। इसपर साधारण चरखेकी बजाय अधिक सूत काता जायेगा और पाँच-एक वर्षके बालक-बालिकाएँ भी इसे चला सकते हैं। लेकिन इस नये यन्त्रकी जो सम्भावनाएँ हैं, वे चाहे पूरी हों या नहीं, मेरा यह निश्चित मत है कि हाथसे कताई और बुनाई करनेका पुनः प्रचलन

१. दयाराम गीदूमल (१८५७-१९३९) द्वारा महिलाओंको कामकाज सिखानेके लिए स्थापित एक समाज-सेवी संस्था।

भारतके आर्थिक और नैतिक पुनरुत्थानमे अधिकसे-अधिक सहायक सिद्ध होगा। लाखो-करोड़ों खेतिहर लोगोके लिए कोई सीधा-सादा सहायक धन्धा होना जरूरी है। कताई वर्षो पूर्व भारतका गृह-उद्योग थी और अगर इन लाखो-करोड़ो लोगोको भुखमरीसे बचाना हो तो उन्हें एक बार फिर अपने घरोमे कताईका काम शुरू करनेकी सुविधा देना आवश्यक है और प्रत्येक गाँवके लिए अपना बुनकर होना जरूरी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-७-१९२०

४७. श्री एन्ड्र्यूजकी कठिनाई

श्री एन्ड्र्यूजको भारतसे जितना प्रेम है, उसकी बराबरी उनका इंग्लैंड-प्रेम ही कर सकता है। ईश्वरकी सेवा अर्थात् भारतके माध्यमसे मानवताकी सेवा ही उनके जीवनका व्रत है। उन्होने खिलाफत आन्दोलनपर 'बॉम्बे क्रॉनिकल'मे कुछ बहुत महत्त्व-पूर्ण लेख लिखे हैं। उनमे उन्होने इग्लैंड, फ्रास या इटली किसीको नही बख्शा है। उन्होंने दिखाया है कि किस तरह टर्कीके साथ घोर अन्याय किया गया है और किस तरह [ब्रिटिश] प्रधान मन्त्रीका वचन तोड़ा गया है। अपने अन्तिम लेखमे उन्होने सुलतानके नाम लिखे श्री मुहम्मद अलीके पत्रपर विचार किया है और उसमे वे इस निष्कर्षपर पहुँचे है कि श्री मुहम्मद अलीने इसमें जो माँगे बताई है उनका वाइसरायके पास भेजे गये खिलाफत सम्बन्धी आखिरी प्रार्थनापत्रमें उल्लिखित माँगोसे मेल नही बैठता। श्री एन्ड्र्यूज इस प्रार्थनापत्रमे की गई माँगोंसे पूरी तरह सहमत है।

मैंने श्री एन्ड्र्यूजके साथ इस सवालपर यथासम्भव पूरे विस्तारसे विचार-विमर्श किया है। उन्होंने मुझसे कहा है कि मैं अपनी स्थिति जितनी स्पष्ट कर चुका हूँ, उससे अधिक पूर्णताके साथ उसे एक बार फिर सार्वजनिक रूपसे स्पष्ट करूँ। उन्होने इस विषयकी चर्चा करनेका जो आमन्त्रण दिया है, उसके पीछे उनका एकमात्र ध्येय यही है कि जिस उद्देश्यको वे यथार्थतः न्यायसम्मत मानते है उसे शक्ति प्रदान कर सके और उसके पक्षमे यूरोपके सबसे प्रभावशाली जनमतको खड़ा कर सके, ताकि मित्र-देशो और विशेष रूपसे इंग्लैंडको शर्मके मारे ही इस सन्धिकी शर्तोमे परिवर्तन करना पड़े।

मै श्री एन्ड्र्यूजके आमन्त्रणको सहर्ष स्वीकार करता हूँ। सबसे पहले तो मै यह कहना चाहूँगा कि ऐसा कोई भी धार्मिक सिद्धान्त, जो तर्कसंगत और नीतिसम्मत न हो, मुझे कतई स्वीकार नही। मै असगत धार्मिक भावनाको भी तभी सहन करता हूँ जब वह अनैतिक न हो। खिलाफत-सम्बन्धी माँगोके पीछे मुस्लिम जगत्की धार्मिक भावना तो है ही, साथ ही उन माँगोंको मैं न्यायसम्मत और तर्कसंगत भी मानता हूँ। इस तरह इन माँगोंको और भी बल मिलता है।

मेरी रायमे श्री मुहम्मद अलीने माँगोका जो ब्योरा पेश किया है, उसमे कुछ भी आपत्तिजनक नही है। इसमे सन्देह नही कि उन्होने कूटनीतिक भाषाका प्रयोग

किया है; लेकिन जबतक कही गई बातमें वजन हो तबतक मैं उसकी भाषाको लेकर झगड़नेको तैयार नहीं हूँ।

श्री एन्ड्रयूजके खयालसे, श्री मुहम्मद अलीकी भाषासे ऐसा प्रकट होता है कि वे आर्मीनियावालों की मर्जीके खिलाफ आर्मीनियाकी स्वतन्त्रताका और अरबोंकी मर्जीके खिलाफ अरबकी स्वतन्त्रताका विरोध करेंगे। मुझे इसमें ऐसा कोई आशय दिखाई नहीं देता। जिस चीजका वे और सारा मुस्लिम जगत् तथा मेरे खयालसे इसीलिए सभी हिन्दू लोग विरोध करते हैं वह है इंग्लैंड तथा अन्य शक्तियोंका, आत्म-निर्णयके सिद्धान्तकी आड़ लेकर, टर्कीको बिलकुल श्रीहीन और खण्ड-खण्ड कर देनेका लज्जाजनक प्रयत्न। अगर मैं इस्लामकी आत्माको सही पहचानता हूँ तो कहूँगा कि इसका स्वरूप सच्चे अर्थोंमें तत्त्वत: गणतान्त्रिक है। इसलिए अगर अरब या आर्मीनिया टर्कीसे स्वतन्त्र होना चाहते हों तो उन्हें स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। जहाँतक अरबकी बात है, उसकी पूर्ण स्वतन्त्रताका मतलब होगा खिलाफतको टर्कीके सुलतानसे लेकर किसी अरब सरदारके हाथोंमें सौंप देना। इस अर्थमें अरब सम्पूर्ण मुस्लिम संसारका है, सिर्फ अरबोंका ही नहीं। और अरब लोग मुसलमान रहते हुए मुस्लिम जगत्‌के मतकी अवगणना करके अरबको सिर्फ अपनी सम्पत्ति बनाकर नहीं रख सकते। खलीफाको मुस्लिम तीर्थस्थानोंका संरक्षक होना चाहिए और इसलिए उन स्थानोंको जानेवाले मार्गोंपर भी उसका नियन्त्रण रहना चाहिए। उसे ऐसी स्थितिमें होना चाहिए कि वह सारी दुनिया-के खिलाफ उनकी रक्षा कर सके। और अगर किसी ऐसे अरब सरदारका उदय होता है जो इस कसौटीपर टर्कीके सुलतानसे अधिक खरा उतरे तो मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुसलमान लोग उसीको खलीफा मान लेंगे।

इस प्रकार मैंने सैद्धान्तिक दृष्टिकोणसे इस प्रश्नपर विचार कर लिया। वस्तु-स्थिति यह है कि इंग्लैंडके मन्त्रियोंकी बातोंका न मुसलमान भरोसा करते हैं और न हिन्दू। वे नहीं मानते कि अरब या आर्मीनियावाले टर्कीसे पूर्ण रूपसे स्वतन्त्र होना चाहते हैं। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे स्वशासन चाहते हैं। इस तथ्यसे किसीको इनकार नहीं है। लेकिन अरब लोग या आर्मीनियावाले टर्कीसे — नाममात्रको — कोई रिश्ता नहीं रखना चाहते, ऐसी निश्चित जानकारी किसीको नहीं है।

लेकिन इस समस्याका समाधान एक आदर्श स्थितिके सैद्धान्तिक विवेचनमें नहीं। इसका हल यह है कि ईमानदारीके साथ एक मिले-जुले आयोगकी नियुक्ति की जाये जिसमें सर्वथा स्वतन्त्र विचारवाले भारतीय मुसलमान तथा हिन्दू और ऐसे ही स्वतन्त्र विचारोंके यूरोपीय सदस्य शामिल हों। ये लोग जाँच-पड़ताल करके इस बातका पता लगायें कि आर्मीनियावाले और अरब लोग सचमुच क्या चाहते हैं, और फिर कोई ऐसी व्यवस्था करे जिससे विभिन्न राष्ट्रोंकी माँगों और इस्लामकी माँगोंके बीच सामंजस्य स्थापित करके दोनोंको सन्तुष्ट किया जा सके।

सभी जानते हैं कि स्मर्ना और थ्रेस, जिसमें आड्रियानोपल भी शामिल है, बेईमानीके साथ टर्कीसे छीन लिये गये हैं; सीरिया तथा मेसोपोटामियाका शासना-धिकार दूसरोंको दे दिया गया है; और हेजाजमें ब्रिटिश संगीनोंके संरक्षणमें ब्रिटिश

सरकारका एक मनपसन्द व्यक्ति प्रतिष्ठित कर दिया गया है। यह स्थिति असह्य है, अन्यायपूर्ण है। इसलिए आर्मीनिया और अरबके सवालोके अतिरिक्त, उन दूसरी बेई-मानियों और धोखेबाजियोंको भी तुरन्त दूर कर देना जरूरी है जो शान्ति-सन्धिकी शर्तोंको दूषित कर रही है। इस तरह आर्मीनिया और अरबकी स्वतन्त्रताके सवालके न्यायसम्मत निपटारेका मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। इस बातसे सिद्धान्ततः तो कोई इनकार नही ही करता कि इन दोनोको स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, इसलिए अगर सम्वन्धित लोगोंकी इच्छाका किसी हदतक एक ठीक अन्दाजा लगा दिया जाये तो बहुत आसानीसे व्यवहारतः भी इन्हे स्वतन्त्रताकी गारंटी दी जा सकती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१–७–१९२०

४८. विदेशोंमें भारतीय

बम्बईके एक्सेल्सियर थियेटरमे ईस्ट आफ्रिका और फीजीके विषयमें प्रस्ताव पास करनेके लिए एक सभा[1] हुई थी जिसकी अध्यक्षता सर नारायण चन्दावरकरने की थी। सभा बहुत शानदार थी। सभा-भवन खचाखच भरा हुआ था। श्री एन्ड्रयूजने अपने भाषणमे इस बातको स्पष्ट किया कि आवश्यकता किस बातकी है। उन्होंने बताया कि पूर्वी आफ्रिकामे भारतीयोंके राजनीतिक और नागरिक दोनों ही अधिकार खतरेमे है। श्री अनन्तानीने, जो स्वयं पूर्वी आफ्रिकाके एक प्रवासी भारतीय है, एक जोरदार भाषणमे बतलाया कि वहाँ भारतीय सबसे पहले जाकर बसे थे। काणे नामक एक भारतीय मल्लाहने ही इतिहासमे सुपरिचित वास्को-डि-गामाको भारत पहुँचनेका मार्ग दिखाया था। हर्षध्वनिके बीच उन्होंने कहा कि डा० लिविंग्स्टोनकी खोज करने और उन्हें राहत देनेके लिए स्टेनलीने जो यात्रा की थी उसकी पूरी व्यवस्था भी भारतीयोंने की थी। भारतीय मजदूरोने अपना जीवन बड़े खतरेमें डालकर युगाण्डा रेलवेको बनाया था। ठेका एक भारतीय ठेकेदारने ले रखा था। हुनरका काम भारतीय कारीगरोने ही किया था। और अब उन्हीके देशवासियोंको इसके प्रयोगसे वचित किये जानेका खतरा सामने है।

पूर्वी आफ्रिकाकी उच्च भूमिको उपनिवेश तथा निचली जमीनको रक्षित प्रदेश घोषित कर दिया गया है। इस घोषणामे एक कुटिल अभिप्राय निहित है। उपनिवेश-प्रथा यूरोपियोंको अपेक्षाकृत बड़े अधिकार प्रदान करती है। इस प्रयासमे कि ऊँची भूमिको गोरे लोग अपने ही रहने-बसनेका स्थल न बना बैठे और भारतीयोको रहने-बसनेके लिए नीची दलदलवाली जमीन ही न दी जाये, भारत सरकारको अपने सब साधन काममे लाने पड़ेंगे।

१. देखिए "भाषण: फीजीके सम्बन्धमें", १३–७–१९२०।

मताधिकारका प्रश्न शीघ्र ही अत्यन्त उग्र चर्चाका विषय बन जायेगा। मतदाताओंका विभाजन करना अथवा भारतीयोको नामजदगीके द्वारा नियुक्त करना घातक होगा। मतदाताओंके लिए जो भी योग्यता निर्धारितकी जाये वह सबके लिए समान होनी चाहिए और उसके आधारपर एक ही निर्वाचक-सूची बननी चाहिए। जैसा कि श्री एन्ड्र्यूजने सभाको ध्यान दिलाया यह सिद्धान्त केप [उपनिवेश]मे सफल हुआ है।

पूर्वी आफ्रिकासे सम्बन्धित प्रस्तावके दूसरे भागमे बताया गया है कि पूर्वी आफ्रिकाके उस प्रदेशमे जहाँ जर्मनीका शासन था हमारे देशवासियोकी दशा क्या है। वहाँ भारतीय सैनिक [साम्राज्यकी ओर से] लडे और अब भारतीयोकी दशा वहाँ जर्मनीके शासनके समयसे बदतर है। हिज हाइनैस आगाखाँने सुझाव दिया था कि जर्मन पूर्वी आफ्रिकाकी शासन-व्यवस्था भारतवर्ष द्वारा होनी चाहिए। सर थियोडोर मौरीसन [दक्षिण आफ्रिकाके] सारे भारतीयोको जर्मन पूर्वी आफ्रिकामे ही भर देना चाहते थे। नतीजा यह हुआ कि दोनो सुझाव गिर गये और जिसका अन्देशा था वैसा ही हुआ। अंग्रेज कूटनीतिज्ञोके लोभकी विजय हुई है और वे भारतीयोको निकाल बाहर करनेमें प्रयत्नशील है। भारत सरकार किस चीजकी रक्षा करेगी? क्या ऐसा करनेकी उसकी इच्छा है? क्या स्वयं भारतका शोषण नही किया जा रहा है? श्री जहाँगीर पेटिटने स्वर्गीय गोखलेके इन शब्दोकी याद दिलाई कि जबतक हम अपने घरको सुव्यवस्थित न कर ले तबतक हमें समुद्रपार रहनेवाले देशवासियोके सम्मानकी रक्षाके सम्बन्धमें पूर्ण रूपसे सन्तोषदायक हलकी आशा न करनी चाहिए। जब हम स्वय अपने देशमें दासोकी तरह है तब हम बाहर उससे बेहतर दर्जा कैसे पा सकते है? श्री पेटिट योजनाबद्ध और प्रचण्ड प्रतिकारके इच्छुक है। मेरे विचारमें प्रतिकार दोनो ओर मार करनेवाला शस्त्र है। यदि इससे उस पक्षको, जिसके विरुद्ध शस्त्र इस्तेमाल किया जाता है, क्षति पहुँचती है तो वह चलानेवालेको भी क्षति पहुँचाये बिना नही रहता। इसके सिवा बदला लेगा कौन? अंग्रेज सरकारसे यह आशा रखना कि वह अपने ही लोगोके विरुद्ध कारगर ढगसे बदला लेगी, बहुत ज्यादा होगा। वे विरोध प्रकट करेगे, बहस करेगे, समझायेंगे, बुझायेंगे, एतराज करेगे। लेकिन अपने ही उपनिवेशोके विरुद्ध युद्ध नही ठानेगे। और यदि प्रतिकारसे काम नही चलता तो उसका तार्किक परिणाम युद्धके सिवा कुछ और हो ही नही सकता।

हमें वास्तविकताका सामना साहसके साथ करना चाहिए। समस्या अंग्रेजो तथा हमारे लिए समान रूपसे कठिन है। उपनिवेशोमें अंग्रेजों और भारतीयोकी एक राय नही है। अंग्रेज लोग हमें उन स्थानोंमें नही रहने देना चाहते जो स्वय उनके रहने योग्य है। उनकी संस्कृति हमारी सस्कृतिसे भिन्न है। दोनो जातियाँ एक-दूसरेसे तबतक नही घुल-मिल सकती जबतक उनमे एक दूसरेके प्रति सम्मानकी भावना न हो। अंग्रेज अपनेको शासन करनेवाली जातिका समझता है। भारतीय यह मानना चाहता है कि वह शासितोंकी जातिका नही है, और इसी प्रयत्नमे मानो यह स्वीकार कर लेता है कि वह शासितोके वर्गका है। इसलिए पहले हमें अपने देशमे समानताकी स्थिति

प्राप्त करनी चाहिए तभी हम विदेशमे अपनी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमे कोई प्रभावकारी छाप डालनेकी उम्मीद कर सकते है।

इसका मतलब यह नही है कि जबतक हम अपने घरमे परेशानीकी हालतमे रह रहे है तबतक हम विदेशोमे अधिक अच्छा काम करनेका प्रयत्न न करे। हमें लगातार प्रयत्न तो करना ही चाहिए और विदेशोमे रहनेवाले अपने देशवासियोकी सहायता अवश्य करनी चाहिए। बात केवल यह है कि अगर हम अपनी सच्ची स्थिति जान जायें तो हम और विदेशोमे रहनेवाले हमारे भारतीय सहिष्णु और धैर्यवान बनने लगेंगे और यह जानने लगेंगे कि हमारी मुख्य शक्ति अपने ही देशमे अपनी स्थिति सुधारनेकी दिशामे केन्द्रीभूत होनी चाहिए। यदि हम यहाँ अपनी स्थितिको इतना ऊँचा उठा सके कि बराबरके साझीदारोकी भाँति रहने लगे — नाम-मात्रके लिए नही बल्कि वास्तवमे — ताकि प्रत्येक भारतीय ऐसा अनुभव करने लगे तो शेष बाते अपने-आप हल हो जायेंगी।

फीजीका प्रश्न एक भिन्न प्रश्न है यद्यपि ऊपर जो-कुछ कहा गया है, वह उसके सम्बन्धमें भी लागू होता है। वहाँ अब दर्जेका सवाल नहीं रह गया है। हम तो केवल इतना ही जानना चाहते है कि मार्शल लॉ क्यो जारी किया गया, गोली क्यो चलाई गई, और डाक्टर मणिलाल और श्रीमती मणिलालको बिना मुकदमा चलाये और बचावका अवसरतक दिये बिना निर्वासित क्यो किया गया? सरकारने हमे बहुत लम्बे समयतक इन्तजारमे रखा है। हमे पूर्ण न्यायके लिए आग्रह करना चाहिए और जितनी जल्दी हो सके हमें उन सबको जो मातृभूमि लौट आना चाहते है वापस बुला लेना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-७-१९२०

४९. "हिजरत" और उसका अर्थ

भारत एक महाद्वीप है। यहाँके हजारों लोग, जो प्रबुद्ध और मुखर है, जानते है कि यहाँके लाखो-करोड़ों मूक बाशिन्दे आज क्या कर रहे है, क्या सोच रहे है। सरकार और शिक्षित भारतीय भले ही यह सोचे कि खिलाफत आन्दोलन आई-गई हो जानेवाली चीज है, लेकिन इस देशके करोडो मुसलमानोका विचार इससे भिन्न है। उनकी हिजरत बहुत तेजीसे बढ़ रही है। अखबारोमे महत्त्वहीन मानकर छापी गई ऐसी खबर देखनेको मिली है कि अफगानिस्तानके लिए एक विशेष ट्रेन रवाना हुई, जिसमे एक बैरिस्टरके साथ साठ औरते और बीस दुधमुंहे शिशुओ-सहित चालीस बच्चे भी थे। ट्रेनमे सवार लोगोंकी संख्या कुल मिलाकर ७६५ थी। रास्तेमे लोगोने उनका बडा जय-जयकार किया। उन्हें नकद रुपया, खाद्य पदार्थ और अन्य चीजे भी भेंट की गई और मार्गमे और भी मुहाजरीन उनके साथ हो गये। कोई शौकत अली चाहे कितना

भी उग्र और धर्मान्धतापूर्ण प्रचार करे, उसके कारण लोग अपना घर-बार छोड़कर एक अनजाने देशके लिए प्रस्थान नहीं कर सकते। वे ऐसा तभी कर सकते हैं जब उनको इस बातका गहरा विश्वास हो कि जो राज्य उनकी धार्मिक भावनाका कोई खयाल न करे, उसमें शाही ठाठ-बाटसे रहनेकी अपेक्षा उसे छोड़कर भिखारीका जीवन स्वीकार करना ज्यादा अच्छा है। यह सब दृश्य भारत सरकारकी आँखोंके सामने ही घटित हो रहा है, लेकिन वह उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देती। इसका कारण तो यही हो सकता है कि वह शक्तिके मदमें चूर है।

लेकिन इस आन्दोलनका एक दूसरा पक्ष भी है। नीचे इसी १० तारीखको जो सरकारी विज्ञप्ति दी गई है, उससे इस दूसरे पक्षसे सम्बन्धित तथ्य मालूम हो जायेंगे।

> पेशावर और जमरुदके बीच कच्चागढ़ीमें इसी ८ तारीखको मुहाजरीनोंके सम्बन्धमें एक दुर्भाग्यपूर्ण वारदात हो गई। अभीतक उसके सम्बन्धमें जो खबरें मिली हैं, उनके अनुसार तथ्य इस प्रकार हैं: मुहाजरीनोंका एक दल ट्रेनसे जमरुद जा रहा था। उस दलके लोगोंमें से दोको ब्रिटिश सैनिक पुलिसने बिना टिकट यात्रा करते पाया। इस्लामिया कालेज स्टेशनपर कुछ बकझक हो गई, लेकिन गाड़ी चलती रही और वह कच्चागढ़ी पहुँची। इन दोनों मुहाजरीनोंको छुड़ानेकी कोशिश की गई, जिसमें कोई चालीस मुहाजरीनोंके एक दलने सैनिक पुलिसपर हमला कर दिया, और जो ब्रिटिश अधिकारी बीच-बचाव करने आया उसे उन्होंने फावड़ेसे गहरी चोट पहुँचाई। इसपर कच्चागढ़ीमें भारतीय सैनिकोंकी एक टुकड़ीने मुहाजरीनोंपर दो-तीन बार गोलियाँ चलाई, क्योंकि उन्होंने ब्रिटिश अधिकारीपर घातक हमला किया था। एक मुहाजरीन मारा गया, एक घायल हुआ और तीनको गिरफ्तार कर लिया गया। मृत मुहाजरीनके शरीरको पेशावर भेज दिया गया और वहाँ ९ तारीखको उसे दफना दिया गया। इस वारदातके कारण पेशावर नगरमें बड़ी उत्तेजना फैल गई है, और खिलाफत हिजरत समिति उन्हें नियंत्रित रखनेकी कोशिश कर रही है। ९ तारीखकी सुबहको हड़ताल रही। मामलेकी पूरी जाँचकी व्यवस्था कर दी गई है।

अब, पेशावरसे जमरुद तो सिर्फ कुछ ही मीलके फासलेपर है। स्पष्ट है कि चन्द आनोंके लिए बिना टिकट यात्रा कर रहे मुहाजरीनोंको गाड़ीसे उतारनेकी कोशिश करना सेनाके लिए मुनासिब नहीं था। लेकिन सचाई यह है कि उन्होंने ऐसी कोशिश की। इस हालतमें दलके शेष लोगोंका बीचमें पड़ना भी तय ही था। परिणामत: कुछ टंटा हुआ। एक ब्रिटिश अधिकारीपर फावड़ेसे हमला किया गया। नतीजा यह हुआ कि गोलियाँ चलीं और एक मुहाजरीन मारा गया। क्या इस सबसे ब्रिटेनकी प्रतिष्ठा बढ़ी है? आज जब कि एक धार्मिक मामलेको लेकर इतने सारे लोग देश छोड़कर बाहर भाग रहे हैं, सरकारने सीमान्त क्षेत्रोंमें काफी सूझ-बूझ-

वाले अधिकारियोको क्यों नही रखा है? सैनिकोकी इस कार्रवाईका किस्सा एकसे दूसरेको और दूसरेसे तीसरेको और इस तरह सारे भारत और सारे मुसलमान-जगत्को मालूम हो जायगा। इस दौरान लोग अनजाने ही, या शायद जानबूझकर भी, इस किस्सेमे नमक-मिर्च लगाते जायेंगे। इस तरह लोगोकी भावना, जो वैसे ही काफी तीव्र है, और भी तीव्र हो उठेगी। विज्ञप्तिमे कहा गया है कि सरकार और भी जाँच कर रही है। हमे आशा है, जाँच पूरी तौरसे की जायेगी और इस तरहकी व्यवस्था कर दी जायेगी जिससे सैनिक लोग फिर ऐसा कोई काम, जो स्पष्टत. ही सर्वथा विवेकहीन प्रतीत होता है, न कर सके।

और अब क्या मै असहयोगका विरोध करनेवालों का ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित कर सकता हूँ कि जबतक वे असहयोगका कोई अच्छा विकल्प नही ढूँढ लेते तबतक वे या तो असहयोग आन्दोलनमे सहयोग दे या फिर एक गुप्त ढगकी ऐसी असंगठित विप्लववादी प्रवृत्तिके लिए तैयार रहें जिसके परिणाम क्या होगे, यह कोई नही कह सकता और जिसके प्रसारको रोकना या नियन्त्रित करना असम्भव ही होगा?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-७-१९२०

५०. पहली अगस्तकी हड़ताल

[२१ जुलाई, १९२०]

केन्द्रीय खिलाफत समिति, बम्बईने निम्नलिखित हिदायतें जारी की है:

यद्यपि शान्तिकी शर्तोमे सशोधन करानेके लिए प्रत्येक प्रयत्न किया जा रहा है तथापि यह लगभग निश्चित ही दीख पड रहा है कि आगामी पहली अगस्तसे पूर्व ऐसा नही हो सकेगा। यह समिति असहयोगके शीघ्र ही होनेवाले प्रदर्शनके पवित्र आयोजनको सुचारु रूपसे सम्पन्न करना चाहती है। वह यह भी जान लेना चाहती है कि इस सम्बन्धमे सार्वजनिक भावना कितनी गहरी है। इसलिए समिति अनुष्ठानको पूर्ण रूपसे सफल बनानेके लिए हिन्दुओं तथा अन्य गैर-मुसलमान जातियोके सहयोगकी माँग करती है।

१. यह समिति आगामी पहली अगस्तको पूर्ण हडताल करनेकी सलाह देती है। परन्तु मिल-कर्मचारियोसे प्रार्थना की जाती है कि जबतक वे अपने मालिकोसे स्वीकृति न ले ले तबतक कामसे गैरहाजिर न रहे। जिनकी आवश्यकता रोजमर्राके नितान्त आवश्यक कार्योके लिए रहा करती है, जैसे अस्पताल-कर्मचारी, सफाई करनेवाले लोग तथा बन्दरगाहोपर काम करनेवाले मजदूर, उनको भी काम बन्द नही करना चाहिए।

२. पहली अगस्तको तमाम दिन प्रार्थनामें व्यतीत करना चाहिए। जिनके लिए सम्भव हो वे उस दिन उपवास करे।

३. देशभरमे छोटे-से-छोटे गाँवमें भी सभाएँ होनी चाहिए; उन सभाओंमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया जाये, चाहे उसे पेश करनेके पूर्व व्याख्यान दिये जायें अथवा न दिये जायें —

प्रस्ताव

". . के निवासियोंकी यह सभा केन्द्रीय खिलाफत समिति द्वारा टर्कीके साथ हुए सुलहनामेमे मुसलमानोंकी भावनाओ और इस्लामी कानूनके अनुसार परिवर्तन करानेके लिए जो आन्दोलन चलाया जा रहा है उसके साथ अपनी पूर्ण सहानुभूति व्यक्त करती है। और इस वातको अपनी स्वीकृति प्रदान करती है कि खिलाफत समिति द्वारा अपनाया गया असहयोग आन्दोलन तवतक चलाया जाये जबतक कि उक्त सुलहनामेकी शर्तोंमे सशोधन न हो जाये। यह सभा साम्राज्य-सरकारसे साम्राज्यकी भलाईके लिए ही, जिसका प्रतिनिधित्व करना उसका कर्त्तव्य माना जाता है, विनयपूर्वक अनुरोध करती है कि वह सन्धिकी इन शर्तोंमे, जिन्हे सभीने मन्त्रियोकी घोषणाओके सरासर प्रतिकूल और अन्यायपूर्ण बताया है, न्यायपूर्ण सशोधन करानेके लिए प्रयत्न करे।" इस प्रस्तावको वाइसराय महोदयके पास इस प्रार्थनाके साथ भेजना चाहिए कि वे उसे सम्राट्की सरकारतक भेजनेकी कृपा करे। केन्द्रीय खिलाफत समितिके पास यह सूचना प्रेषित कर देनी चाहिए कि प्रस्ताव पास कर दिया गया है और उसे वाइसरायके पास भेज भी दिया गया है।

कानूनकी अवज्ञा नहीं करनी है

ध्यान रहे · जुलूस न निकाले जाये। भाषण सयत भाषामें दिये जायें। आशा है कि सभी जगह सभाओमे काफी जनसमुदाय एकत्रित होगा। पुलिस तथा सरकारकी सभी हिदायतो या आज्ञाओका सख्ती और वारीकीसे पूरा पालन किया जाये। अगर किसी स्थानमे सभा न करनेके वारेमें लिखित आदेश जारी किया जा चुका है तो वहाँ [सार्वजनिक] सभा न की जाये। इस वातका जितना अनुरोध किया जाये थोडा है कि आन्दोलनकी सफलता समाज द्वारा पूर्ण शान्ति बनाये रखने तथा आन्दोलनके सम्बन्धमे पुलिस द्वारा दी गई सभी हिदायतोके माननेपर निर्भर है। यह वात साफ तौरसे समझ लेनी चाहिए कि यह आन्दोलन सविनय अवज्ञाका आन्दोलन नहीं है। जनताकी स्वतन्त्रतामे बाधा पहुँचानेवाले अनुचित आदेश जारी किये जायें तव क्या किया जाये, इस वातका निर्णय समिति आदेशके गुणदोषोका विचार करके देगी।

उपाधियाँ छोड़ दो

यह आशा की जाती है कि इस दिन समस्त उपाधिधारी व्यक्ति, अवैतनिक न्यायाधीश, पुर-शासक, विधान परिषदोके सदस्य जो लाखो मुसलमानोके कल्याणपर

प्रभाव डालनेवाले इस आवश्यक प्रश्नके विषयमें सोचते-गुनते हैं और जो आन्दोलनके प्रति सहानुभूति रखते हैं, अपनी उपाधियों अथवा अवैतनिक नौकरियोंको त्याग देंगे।

[मो० क० गांधी
अबुल कलाम आजाद[1]
शौकत अली
अहमद हाजी सिद्दीक खत्री
सैफुद्दीन किचलू
फजलुल हसन हसरत मोहानी[2]
मुहम्मद अली
असहयोग कमेटीके सदस्य,
माउण्ट रोड, मजगाँव, बम्बई][3]

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २१-७-१९२०

५१. भाषण : कराचीकी ईदगाहमें

२२ जुलाई, १९२०

२२ जुलाईको खिलाफतकी [एक सार्वजनिक] सभा कराचीके ईदगाह मैदानमें प्रोफेसर वास्वाणीकी[4] अध्यक्षतामें हुई। निम्नलिखित व्यक्तियोंने भाषण दिये: प्रोफेसर वास्वाणी, श्री गांधी, डा० किचलू, मौ० शौकत अली और कराचीके लोकामल चेलाराम सेठ। श्री वास्वाणीने सभाकी कार्यवाही प्रारम्भ की। तदनंतर गांधीजीने अस्वस्थताके कारण बैठे-बैठे ही अपना व्याख्यान दिया। गांधीजीने कहा:

अपनी कराची-यात्राके कारण बतलानेसे पहले मैं आप लोगोंसे कराची रेलवे स्टेशनपर मैंने जो दृश्य देखा उसकी चर्चा करना चाहता हूँ। हमें आज सवेरे पहुँचना था, लेकिन एक दुर्भाग्यपूर्ण रेल-दुर्घटना और उसके बाद ही रेलकी पटरी अवरुद्ध हो जानेके कारण हम लोग रातको ९ बजे पहुँच सके। कराची सिटी स्टेशन खचाखच भरा हुआ था; बहुतसे लोग सायबानोंमें खड़े हुए थे और कितने ही सीटी बजा

१. १८८९-१९५८; कांग्रेसी नेता तथा कुरानके प्रसिद्ध व्याख्याकार; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दो बार अध्यक्ष निर्वाचित; भारतीय सरकारके शिक्षा-मन्त्री।

२. खिलाफत आन्दोलनके एक नेता, जो ब्रिटिश मालके बहिष्कारपर जोर दे रहे थे और जो २४ नवम्बर, १९१९ को आयोजित खिलाफत सम्मेलनमें गांधीजीके मुख्य विरोधी थे।

३. जैसा २२-७-१९२० के बॉम्बे क्रॉनिकलमें है।

४. टी० एल० वास्वाणी (१८७९-१९६६); साधु वास्वाणीके नामसे विख्यात सिन्ध प्रान्तके एक संत पुरुष; लेखक तथा मीरा एजुकेशनल इन्स्टीट्यूशन्स, पूनाके संस्थापक।

रहे थे। इससे मेरे मनपर क्या छाप पड़ी? अपने प्रति आप लोगोंके स्नेहको तो मैंने पहचाना लेकिन प्रेमका मतलब यह नहीं कि पूराका-पूरा प्लेटफार्म भर दिया जाये और मुझे, जिसे आप लोग प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं, बाहर निकलने न दिया जाये। यह शिक्षा और ज्ञानकी कमीका नतीजा है। अगर स्वयंसेवक भीड़को नियन्त्रित न कर सके और अपने अफसरोंके हुक्मोंकी पाबन्दी न करे तो स्वयंसेवकोंसे लाभ ही क्या। इस प्रकारकी परिस्थितिमें काम आगे नहीं बढ़ सकता। रेलवे स्टेशनकी बात कह चुकनेपर मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि हमारे मुसलमान भाई खिलाफतके लिए कष्ट उठा रहे हैं। ब्रिटिश संसद तथा वाइसराय अपने वायदे भूल गये हैं। संकटके इस कालमें मैं सभी हिन्दुओंसे मुसलमानोंकी सहायता करनेका अनुरोध करता हूँ। यदि ऐसा न किया गया तो हिन्दुओंको यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि दासता न केवल सात करोड़ मुसलमानोंके दरवाजे बल्कि बाईस करोड़ हिन्दुओंके दरवाजे भी खटखटायेगी। हमने सभाएँ की हैं, व्याख्यान दिये हैं, प्रस्ताव पास किये हैं और मुसलमानोंकी भावनाओंका सम्मान किया जाये, इस बातका आग्रह और अनुरोध करनेके लिए प्रतिनिधि मण्डल बाहर भेजे हैं। लेकिन उस सबका कोई नतीजा न निकला। टर्कीको कठिनाइयाँ और मुसीबतें झेलनी पड़ रही हैं। खिलाफतके प्रश्नके समाधानके लिए आप लोगोंको रक्त बहाना होगा। रक्त बहानेसे आप क्या मतलब समझते हैं? इसका मतलब यह नहीं है कि आप अंग्रेजोंका — जिनके हाथमें खिलाफतके प्रश्नका निर्णय है — खून करें; नहीं, उसका मतलब इतना ही है कि आपको शान्तिपूर्वक स्वयं अपने प्राणोंकी बलि देनेके लिए तैयार रहना होगा। इस स्थिति-तक पहुँचनेके लिए वीरताकी आवश्यकता है। यह वीरता क्या है? यह वीरता वह शक्ति है जो आध्यात्मिक बलसे भरपूर हो। आध्यात्मिक बल क्या है? क्षत्रिय बनना। क्षत्रिय क्या है? एक सैनिक। हमें वास्वाणी या प्राध्यापक बननेकी जरूरत नहीं है बल्कि आध्यात्मिक बलसे युक्त सैनिक बननेकी जरूरत है — ऐसे सैनिक जो अपने स्थानपर डटे रहें, भागें नहीं। मैं चाहता हूँ कि आप सब ऐसे सिपाही बन जायें जिनके पास ऐसा दृढ़ आत्म-बल हो कि वे अपने स्थानसे कभी पलायन न करें। दमनका दृढ़ता लेकिन शान्तिके साथ विरोध किया जाये। दूसरोंकी हत्या करना या सरकारी इमारतोंको जला देना वीरता नहीं है। सरकारी इमारतें तो मानो आप ही की हैं। वास्तविक वीरता तो खुद अपना खून बहानेमें है। मेरे भाई शौकत अली कहते हैं कि उन्होंने सैनिक-परिवारमें जन्म लिया है। उनके पिता तथा पितामह सिपाही थे तथा वे स्वयं एक सिपाही हैं। लेकिन मैं अपने सैनिकोंको उनके सैनिकोंसे मोर्चा लिवानेके लिए तैयार हूँ। एक लाख ब्रिटिश लोग ३० करोड़ भारतीयोंपर शासन करते हैं। यदि आप लोग अपनी संख्याके अनुरूप शक्ति प्रमाणित कर सकें तो आप अपनी मातृभूमिको आजाद करनेमें समर्थ होंगे। यदि हम मातृभूमिकी स्वतन्त्रता, पंजाबमें जो अत्याचार किया गया है उसका न्याय और खिलाफतके निर्णयोंपर पुनर्विचार चाहते हैं तो हममें यह वीरता और तेज आना चाहिए। यदि आपके अन्दर वीरत्वकी भावना नहीं है तो आप औरतोंसे भी ज्यादा कमजोर हैं। यदि वह आपमें है तो उसका उपयोग कीजिए

और इस प्रकार आप इन तीनो वस्तुओको प्राप्त कीजिए; नही तो इसका मतलब होगा सदैवके लिए दासता। अंग्रेजोंका खून बहानेसे खिलाफत आन्दोलन कभी सफल न होगा। हम उनसे टक्कर नही ले सकते। उनके पास हथियार, हवाई जहाज तथा मशीनगनें हैं। यदि आपमें तेज है तो असहयोग कार्यक्रम अच्छी तरह कार्यान्वित किया जा सकता है। हिन्दुओंको यह न सोचना चाहिए कि मुसलमान लोग बादमें उनका विरोध करेंगे। इस्लाम शुद्ध धर्म है और वह कभी हिन्दुओंको गुमराह नही करेगा। असहयोग अन्य सभी अस्त्रोंसे बढ़-चढ़कर है। ऐसी सरकारकी अन्यायपूर्ण शर्तोंका मुकाबला करनेका केवल एक ही तरीका है — असहयोग। असहयोग पहली अगस्तसे शुरू होने जा रहा है तथा प्रत्येक भारतवासी — मनुष्य, स्त्री या बच्चे — का कर्त्तव्य है कि वह इसे सफल बनाये। दुकानें बन्द रखी जायें, मस्जिदों और मन्दिरोंमें प्रार्थनाएँ की जायें और प्रत्येक आदमी [उस दिन] व्रत रखे। आजकी जैसी सभा नही; खूब बड़ी-बड़ी सभाओंका आयोजन किया जाये। किसी प्रकारके बलका प्रयोग न किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११०७

५२. तार: गुलाम रसूलको[1]

हैदराबाद (सिन्ध)
[२३ जुलाई, १९२०][2]

गुलाम रसूल
खिलाफत
मुलतान

आना असम्भव प्रतीत होता है, अहमदाबाद अविलम्ब जाना नितान्त आवश्यक; फिर कभी मुलतान आनेकी आशा। कृपया क्षमा कीजिए। शौकत अली और किचलू आज रातको रवाना होकर कल शामको पाँच बजे पहुँच रहे हैं।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११३५

१. यही तार केवलकृष्ण, मन्त्री, कांग्रेस, मुलतानको भी भेजा गया था।
२. यह तार खुफिया विभाग द्वारा इसी तारीखको रोक लिया गया था।

५३. तार: सत्याग्रह आश्रम, साबरमतीको

हैदराबाद (सिन्ध)
[२३ जुलाई, १९२०][1]

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती

पहलेके तारको[2] रद समझना। पंडितजी और सरलादेवीके साथ सोमवारकी रात्रिको आश्रम पहुँच रहा हूँ।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एक्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११३५

५४. तार: शंकरलाल बैंकरको

हैदराबाद (सिन्ध)
[२३ जुलाई, १९२०][3]

शंकरलाल बैंकर[4]
चौपाटी
बम्बई

जवाहरलालके[5] साथ अहमदाबादके लिए कल रवाना हो रहा हूँ। मोतीलाल नेहरूको[6] तार भेज रहा हूँ। सम्भवत पंजाब असहयोगको अंगीकार कर लेगा।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एक्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११३५

१. यह तार इसी तारीखको खुफिया विभाग द्वारा रोक लिया गया था।

२. उपलब्ध नहीं है।

३. इसी तारीखको खुफिया विभाग द्वारा रोक लिया गया था।

४. यंग इंडियाके प्रकाशक; अहमदाबादकी कपड़ा मिलोंकी हड़तालके दौरान गांधीजीके निकट सम्पर्कमें आये; १९२२ में गांधीजीके साथ जेल गये।

५. जवाहरलाल नेहरू (१८८९–१९६४)।

६. १८६१–१९३१; इलाहाबादके वकील और कांग्रेसी नेता।

५५. भाषण: खिलाफत सम्मेलन, हैदराबाद (सिन्ध)में

२३ जुलाई, १९२०

गांधीजीने २३ करोड़ हिन्दुओंसे कहा कि वे ७ करोड़ मुसलमानोंकी सहायता करें क्योंकि उनका मजहब खतरेमें है। इन दोनों जातियोंके बीच मेल रहना आवश्यक है। किसी स्थूल सहायतासे कुछ नहीं होगा; न कोई स्थूल बल हमारे काम आ सकता है। केवल आत्मबल ही हमारी सहायता कर सकता है। आप लोग सरकारके वफादार तभी रह सकते हैं जब धर्मपर आँच न आती हो। सरकारके पास अपेक्षाकृत अधिक शारीरिक बल और अधिक जोरदार तलवार है। आप लोगोंको अत्याचारी सरकारकी सहायता नहीं करनी चाहिए।

गांधीजीने असहयोगका जोरदार समर्थन किया और समझाया कि वह क्या वस्तु है। उन्होंने कहा, मैं जानता हूँ कि मुसलमान हिंसा करेंगे और तलवार उठायेंगे; लेकिन जनरल डायरने यह साबित कर दिखाया कि वे अधिक हिंसक हो सकते हैं तथा उनके पास ज्यादा भारी तलवार है। उन्होंने किसी शर्तके बिना किये गये बलि-दानकी सिफारिश की और कहा कि उस समय सरकारकी तोपें और हवाई जहाज बेकार साबित होंगे। भारत मंत्रीने कहा है कि गांधीने बड़ी मूर्खताका काम किया है और उसे पिछले वर्ष जो आजादी दी जाती रही वह अब नहीं दी जायेगी। लेकिन मैं अपनेको आजाद मानता ही नहीं। पंजाबके दंगों तथा खिलाफतके मसलेके कारण मुझे तो लगता है कि मैं जेलमें ही हूँ। इससे तो मैं मुसलमानोंके लिए मरना ज्यादा पसन्द करता हूँ और यदि मुझे फाँसीपर चढ़ा दिया गया तो आप लोग मुझे मुबारकबाद दीजियेगा। हिंसाका मार्ग मत अपनाओ; बल-प्रयोग मत करो और असहयोग करो। वह पहली अगस्तको शुरू होनेवाला है। यदि असहयोग करनेका सामर्थ्य नहीं है, तो हिजरत की जाये।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११२८

५६. तार : अमृतलाल ठक्करको

हैदराबाद (सिन्ध)
२४ जुलाई, १९२०

अमृतलाल ठक्कर[1]
अकाल सहायता समिति
पुरी

अपना यह महान् कार्य ऐसी स्थितिमें न छोड़ें कि हानि हो जाये। इसलिए अपने अकाल सम्बन्धी सेवा-कार्यको समाप्त कर लेनेपर ही आप ब्रिटिश गियाना जा सकते हैं।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११३१

५७. भाषण : सिन्ध राष्ट्रीय कालेजमें

२४ जुलाई, १९२०

महात्मा गांधी आज (शनिवार, तारीख २४ को) सुबह सिन्ध राष्ट्रीय कालेजमें पधारे। कालेजके फाटकपर कर्मचारीगण तथा विद्यार्थियोंने उनका स्वागत किया; उन्हें कालेजके भिन्न-भिन्न विभागोंमें ले जाया गया। श्रीमती सरलादेवी चौधरानीके साथ [निरीक्षणके पश्चात्] कालेजके हॉलमें लौटनेपर उन्हें हिन्दीमें मानपत्र भेंट किया गया। उसका उत्तर गांधीजीने हिन्दीमें[2] दिया।

उन्होंने कहा कि हिन्दीमें मानपत्र पाकर मुझे सन्तोष हुआ है, क्योंकि हिन्दी उन वस्तुओंमें से एक है जिनकी मुझे लगन लगी हुई है और जिसकी हिमायत मैं अपने व्याख्यानों और लेखों द्वारा करता आया हूँ। किसी व्यक्तिको सम्मानित करनेका सबसे अच्छा तरीका उसके कहनेपर चलना है न कि तालियोंकी गड़गड़ाहट करना। देशमें आज जो शिक्षाप्रणाली प्रचलित है उसके सम्बन्धमें जब मैं विचार करता हूँ

१. अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर (१८६९–१९५१); गुजराती इंजीनियर; भारत सेवक समाजके आजीवन सदस्य; जीवन-भर हरिजनों तथा आदिवासियोंके उत्थानके लिए कार्य करते रहे। उन दिनों वे लोक अकाल सहायता समिति (पीपल्स फैमिन रिलीफ कमेटी), पुरीके मन्त्री थे।

२. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

तो मुझे बड़ी वेदना होती है। जिनका पालन-पोषण उस पद्धतिसे हुआ है वे उसके अनेकों दोष और उसने राष्ट्रीयताकी भावनाको जो हानि पहुँचाई है उसे नहीं समझ सकते। मैंने स्वयं बहुत दूर तक यही शिक्षा पाई है और मैं मानता हूँ कि इससे कुछ लाभ हुआ है, लेकिन अपने देशवासियोंपर अंग्रेजीका मुलम्मा चढ़ा हुआ देखकर मुझे जितना दुःख होता है उतना अन्य किसी वस्तुसे नहीं। मैं इंग्लैंडमें काफी रहा हूँ और मैं जानता हूँ कि वहाँ कोई अंग्रेज किसी दूसरे अंग्रेजसे अपनी मातृभाषाको छोड़कर अन्य किसी भाषामें वार्तालाप नहीं करता। जब मैं भारतीयोंको अपने भारतीय भाइयोंके साथ विदेशी भाषामें बोलते देखता हूँ तब मुझे बड़ी वेदना होती है। प्रोफेसर यदुनाथ सरकार[1] और श्री सिगविक[2] कहा करते हैं कि भारतीय विद्यार्थीके ऊपर अंग्रेजीका इतना भारी बोझ है कि उसके परिणामस्वरूप वह मौलिक रूपसे कुछ सोच ही नहीं सकता। सिन्धी विद्यार्थीको मैं पहले सिन्धी और बादमें हिन्दी पढ़नेकी राय दूँगा। हिन्दीको तो समस्त भारतकी भाषा होना ही है; इसलिए इसका अध्ययन अन्य प्रदेशोंके लिए अनिवार्य है ताकि सभी एक ही मंचपर एकत्रित हो सकें। हिन्दीके पक्षमें अन्य कारण भी हैं, फिलहाल इतनोंको ही सामने रखता हूँ; इसलिए मुझे यह जानकर सन्तोष हो रहा है कि सिन्ध राष्ट्रीय कालेजमें हिन्दीको प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

इसके पश्चात् गांधीजीने अपने दूसरे प्रिय विषय — स्वदेशी — को उठाया। उन्होंने कहा, भारतवर्षके निवासियोंका मुख्य आधार खेतीबारी है परन्तु उन्हें एक पूरक व्यवसायकी आवश्यकता भी है जिसके सहारे वे अपना आपत्ति और अनावृष्टि आदिका समय काट सकें। वह व्यवसाय तो कपड़ा बुनना ही हो सकता है। एक जमाना था जब भारतीय वस्त्र देशका गौरव थे और बहुत महीन होनेके कारण उनकी माँग समस्त संसारमें थी। उससे दुनियाकी धन-राशि भारतमें आती थी और उसकी सन्तानको सुख और सन्तोष देती थी। वर्तमान समयमें इसे तथा इसी प्रकारके अन्य उद्योगोंको दुर्दिनोंका सामना करना पड़ रहा है। देशभक्तिकी भावनासे भरे हुए नवयुवकोंका यह कर्त्तव्य है कि वे बुनाईके पुनरुज्जीवनमें सहायक बनें। वे यह काम विलायती कपड़ों और विलायती माल — वे देखनेमें चाहे जितने सुन्दर क्यों न हों — के स्थानपर स्वदेशी कपड़ा और स्वदेशी माल काममें लाकर कर सकते हैं। इससे हजारों स्त्रियोंको काम मिलेगा। इससे हमारे उन अनेक देशवासियोंको रोटी मिलेगी जो अपना पेट बड़ी कठिनाईसे भर सकते हैं या दो जून भी भोजन नहीं पाते हैं। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हो रही है कि सिन्ध राष्ट्रीय कालेजमें कृषिके साथ-साथ कालीन

१. (१८७०–१९५८); इतिहासकार तथा ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगज़ेब और फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर आदि पुस्तकोंके लेखक।

२. हेनरी सिगविक (१८३८–१९००); एक अंग्रेज नीतिवेत्ता, दार्शनिक और विचारक।

बुनना सिखाया जाता है। मैं आशा करता हूँ कि जब मैं अगली बार हैदराबाद आऊँगा तब मुझे यह देखनेको मिलेगा कि यहाँ कपड़ा बुनना भी सिखाया जाता है।

अन्तमें महात्माजीने कहा कि आपके कालेजके विद्यार्थियों और कर्मचारियोंको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है और आप लोगों द्वारा किये गये हार्दिक स्वागतके लिए मैं आपका आभारी हूँ।

मुझे दुःख है कि समयाभावके कारण मैं आप लोगोंसे उतनी देरतक बातचीत नहीं कर पाया जितना कि मैं चाहता था। मैं इस कालेजकी समृद्धिकी कामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि इसमें विद्यार्थीगण, जिनका हित साधन इस कालेजका उद्देश्य है, अधिक संख्यामें प्रविष्ट होंगे।

'वन्देमातरम्' और 'महात्माकी जय' के नारोंके बीच गांधीजीने अपने दलके साथ वहाँसे प्रस्थान किया।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, २९-७-१९२०

५८. भाषण : खिलाफत सम्मेलन, हैदराबाद (सिन्ध) में

२४ जुलाई १९२०

प्रस्ताव ५, जिसे हाजी अब्दुल्ला हारूनने पेश किया :

यह सम्मेलन गांधीजीकी असहयोग नीतिको स्वीकार करता है और इस विषयमें केन्द्रीय खिलाफत समितिके आदेशोंपर चलनेको तैयार है।

गांधीजीने जोरदार शब्दोंमें इसका समर्थन किया। उन्होंने असहयोगकी चारों मंजिलोंके हर पहलूको सामने रखते हुए असहयोगका रूप समझाया। सब खिलाफत-समर्थकोंको हिदायत की कि पहली अगस्तको असहयोगकी पहली मंजिलकी सभी आज्ञाओंको अवश्य कार्यान्वित किया जाये। साथ ही यह भी कहा कि उस दिन हड़ताल की जाये, व्रत रखा जाये और सार्वजनिक सभाका आयोजन किया जाये और कहा कि हिन्दू-मुस्लिम एकता अवश्य स्थापित होनी चाहिए। गांधीजीने कहा कि हिजरत असहयोगकी आखिरी मंजिल है। जो लोग देश छोड़नेके लिए तैयार है उन्हें चाहिए कि वे [सरकारसे] असहयोग करें, अन्यथा उनकी हिजरत दिखावा-मात्र है और निर्बलताकी अभिव्यक्ति है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११४१

५९. तार: खिलाफत कार्यकर्त्ताओंकी लीगको[1]

हैदराबाद (सिन्ध)
[२५ जुलाई, १९२० को अथवा उसके पूर्व][2]

आपको कानून नही तोड़ना चाहिए। कानून भगसे नुकसान पहुँचेगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११०९

६०. भाषण: हैदराबाद (सिन्ध) में

२५ जुलाई, १९२०

२५ जुलाईको हैदराबाद नागरिक संघके तत्त्वावधानमें आयोजित सभामे गांधीजीने सार्वजनिक रूपसे व्याख्यान दिया जिसमें उन्होंने खिलाफतकी रक्षाके लिए स्वदेशीको एक अस्त्रके रूपमें अपनानेकी सलाह दी। उन्होने कहा, स्वदेशीके द्वारा लंकाशायरकी मिलोंको भारी क्षति पहुँचेगी और उसके परिणामस्वरूप ये प्रभावशाली मिल-मालिक उनकी मिलोंमें तैयार किये गये कपड़ेके बहिष्कारका कारण जानना चाहेंगे। जब उन्हें यह सारी गड़बड़ क्यों हो रही है इसकी हकीकत मालूम होगी तब वे अपने व्यापारकी खातिर इंग्लैडमें खिलाफत और जलियाँवाला बागके मामलोंमें सन्तोषजनक निपटारा करानेकी दिशामे कदम उठायेंगे।

गांधीजीने भारतीय मिलोंमें बने सूती वस्त्रोंतक के बहिष्कारकी सिफारिश की क्योंकि वे उनके कताई सम्बन्धी कुटीर-उद्योगमें बाधक थे, जिसके कल्याणके लिए वे इतने चिन्तित थे। उन्होंने कहा सभी महिलाओंको चाहिए कि वे सम्मानपूर्ण जीविकोपार्जनके लिए अपने-अपने घरोंमें बैठकर चरखा चलायें। जो स्त्रियाँ मिलोंमें काम करने जाती हैं उनका विवाह नही होना चाहिए क्योंकि अक्सर ऐसा देखा गया है कि ऐसी औरतें चरित्रहीन ओवरसीयरोंके दबावमे आकर अपना सतीत्व खो बैठती हैं। गांधीजीने शिकायतके स्वरमे कहा कि उनकी पत्नी भी मिलोंमें तैयार किये गये वस्त्र पहनती हैं जबकि उन्हें पूर्ण रूपसे हाथके कते-बुने वस्त्र ही पहनने चाहिए।

१. राजद्रोहात्मक सभा कानून (सेडीशस मीटिंग्स ऐक्ट) को लागू करनेके क्षेत्रका दायरा बढ़ानेके बारेमें दिल्ली खिलाफत लीगको भेजा गया था।

२. यह तार २७ जुलाईको खुफिया विभाग द्वारा रोक लिया गया था। गांधीजी २३, २४ और २५ जुलाईको हैदराबाद (सिन्ध) में थे।

उन्होंने कहा कि मैं भारतके अपने भ्रमणमें सरलादेवीको साथ रखता हूँ क्योंकि उन्होंने स्वदेशीके मेरे सिद्धान्तोको कस्तूरबासे भी अधिक अच्छी तरह समझ लिया है। उन्होंने यह भी कहा कि यो सरलादेवी भी स्वदेशी कपड़ेका उतना उपयोग नहीं करतीं जितना मैं चाहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११४३

६१. इश्तहार: खिलाफतके सम्बन्धमें[1]

[बम्बई सिन्नी
२६ जुलाई, १९२०][2]

अल्लाहो अकबर

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

जो शख्स इस्लामके दुश्मनका दोस्त बनता है वह भी इस्लामका दुश्मन माना जा सकता है।

खिलाफतका तीसरा दिन आ पहुँचा है।

चलो बढो। काम करनेका मैदान सामने है। अपने ईमानकी मजबूतीका सबूत दो।

असहयोग [तर्के मवालात] का काम शुरू हो चुका है और यह इम्तहानकी पहली मंजिल है। इस्लामके नाम, अल्लाह और पैगम्बरकी शानका खयाल करो, कोई ऐसा काम न किया जाये जिससे तुम्हारे अकीदेकी कमजोरी जाहिर हो। यही दुश्मनोको शिकस्त देनेका रास्ता है।

पहली अगस्तको असहयोग शुरू हो रहा है। उस दिन नमाज पढो, रोजा रखो, कारबार बन्द रखो, सभाएँ करो और परवरदिगारसे वायदा करो कि हक और सचाईके लिए तुम हर तरहकी मुसीबत झेलोगे। खिताबो और अवैतनिक पदोको छोड़ दो। यह भी याद रखो कि दगे और बदअमनी किसी भी शक्लमें फायदेमन्द नही है। उनसे दूर रहो और सच्चे रास्तेपर चलते रहो।

हिदायतें तफसीलके साथ अलग शायाकी जा रही है। आगे क्या करना है अपने जिले या सूबेकी खिलाफत कमेटीसे मालूम करो और याद रहे कि बढा हुआ कदम पीछे न हटे। तुम्हारी जिन्दगीकी कामयाबीका राज यही है।

१. जान पड़ता है कि मूल इश्तहार उर्दूमें रहा होगा और उपलब्ध अंग्रेजी पाठ उसीका अनुवाद है।

२. ऐसा ही साधन-सूत्रमें दिया गया है।

शाया करनेवाले:

मो० क० गांधी

अबुल कलाम आजाद	शौकत अली
अहमद हाजी सिद्दीक खत्री	सैफुद्दीन किचलू
फजलुल हसन हसरत मोहानी	मुहम्मद अली

असहयोग समितिके सदस्य,
माउण्ट रोड, मजगाँव, बम्बई

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृ० १११८

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया: होम: पोलिटिकल. जुलाई १९२०: संख्या १०६ डिपोजिट।

६२. खिलाफत आन्दोलन और श्री मॉण्टेग्यु

श्री मॉण्टेग्यु इस खिलाफत आन्दोलनको पसन्द नही करते जो दिनो-दिन जोर पकड़ता जा रहा है। खबर है कॉमन्स सभामे पूछे गये प्रश्नके उत्तरमे उन्होने कहा कि यद्यपि मैं स्वीकार करता हूँ कि श्री गांधीने अतीतमें देशकी विशिष्ट सेवाएँ की है, लेकिन उनके वर्तमान रुखसे मुझे चिन्ता होती है, और यह अपेक्षा नही की जा सकती कि अब उनके प्रति वैसा ही उदारतापूर्ण व्यवहार किया जायेगा जैसा रौलट अधिनियमको लेकर होनेवाले आन्दोलनके दौरान किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि मुझे [भारतकी] केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारोमे पूरा भरोसा है। ये सरकारे आन्दोलनपर सावधानीसे नजर रख रही है तथा उन्हे परिस्थितिसे निपटनेके लिए पूरी सत्ता प्राप्त है।

कुछ क्षेत्रोमे श्री मॉण्टेग्युके इस वक्तव्यको धमकी माना गया है। कुछने तो यहाँतक माना है कि इस प्रकार उन्होने भारत सरकारको, अगर वह चाहे तो, एक बार फिर आतकका शासन स्थापित कर देनेकी पूरी छूट दे दी है। निश्चय ही उनकी यह बात सरकारको जनताके सद्भावपर आधारित करनेकी उनकी इच्छासे मेल नही खाती। साथ ही अगर हंटर समितिके निष्कर्ष सही हो और अगर गत वर्षके उपद्रवोंकी जड़में मै ही रहा होऊँ तब तो निःसन्देह मेरे साथ असाधारण उदारताका व्यवहार किया गया। मै यह भी स्वीकार करता हूँ कि आज साम्राज्यका संचालन जिस ढगसे किया जा रहा है उसे देखते मेरी इस वर्षकी गतिविधियाँ गत वर्षकी गतिविधियोकी तुलनामे साम्राज्यके लिए ज्यादा खतरनाक है। असहयोग स्वयमे तो सविनय अवज्ञासे भी अधिक हानिरहित है, लेकिन प्रभावकी दृष्टिसे देखे तो यह सरकारके लिए सविनय अवज्ञासे कही अधिक खतरनाक है। अभीतक असहयोगका उद्देश्य सरकारको केवल इस हदतक गतिशून्य कर देना है कि उसे लाचार होकर न्याय देना पड़े। अगर

इसका चरमरूपमे प्रयोग किया जाये तव तो यह सरकारको बिलकुल ठप ही कर दे सकता है।

एक भाई मेरे भाषणोको वरावर सुनते रहे हैं। एक बार उन्होने मुझसे पूछा कि क्या मेरे ये भाषण भारतीय दण्ड सहिताके राजद्रोह-सम्वन्धी खण्डके अन्तर्गत नही आते। यद्यपि मैंने इस वातपर पूरा विचार नही किया था, फिर भी मैंने उनसे कहा कि सम्भावना यही है कि मै इस खण्डके अन्तर्गत आता हूँ और अगर उसके अनुसार मुझपर आरोप लगाया गया तो मैं अपनेको "निर्दोष" नही बताऊँगा। कारण, मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मौजूदा सरकारसे मुझे कोई प्रेम नही है। और मेरे भाषणोका उद्देश्य लोगोके मनमें उस सरकारके विरुद्ध, जिसने अपनी कार्रवाइयोसे, उनका विश्वास, सम्मान और समर्थन प्राप्त करनेके सारे दावे खो दिये है "नफरत" पैदा कर देना है—ऐसी नफरत कि वे उस सरकारको सहायता और सहयोग देना अपने लिए शर्मकी बात माने।

मैं साम्राज्य सरकार और भारत सरकारमे भेद नही करता। खिलाफतके सम्बन्धमे साम्राज्य सरकारपर जो नीति थोप दी, उसे उसने स्वीकार कर लिया है। उधर पजावके मामलेमें भारत सरकारने आतकवादकी जो नीति अपनाई और एक वहादुर जातिको पुसत्वहीन बना देनेकी जिस प्रक्रियाका सूत्रपात किया, उसका समर्थन साम्राज्य सरकारने किया। ब्रिटिश मन्त्रियोने अपने वचन तोड डाले है और भारतके सात करोड मुसलमानोकी भावनाको मनमाने तौरपर चोट पहुँचाई है। पजाब सरकारके उद्धत अधिकारियोने सर्वथा निर्दोष स्त्रियो और पुरुषोको अपमानित किया। लेकिन स्थिति यह है कि न केवल उनके अन्यायोका प्रतिकार नही किया गया है, बल्कि जिन अधिकारियोने पजावके लोगोको इतनी निर्दयताके साथ अमानुषिक अपमानका शिकार वनाया, वे अव भी इस सरकारके अधीन अपने-अपने पदोपर बने हुए हैं।

जव गत वर्ष मैं अमृतसरमे था, उस समय मैंने पूरी उत्कटताके साथ लोगोसे अनुरोध[1] किया था कि वे सरकारके साथ सहयोग करे और शाही घोषणामे जिन वातोंकी कामना की गई है उन्हे फलीभूत करनेमें हाथ वँटायें। मैंने वैसा इसलिए किया कि मै ईमानदारीके साथ मानता था कि एक नये युगका उदय होनेवाला है, और भय, अविश्वास तथा इनसे उत्पन्न होनेवाले आतककी पुरानी भावनाओके स्थानपर अव सम्मान, विश्वास और सद्भावनाके नये भाव आनेवाले हैं। मैंने सचमुच ऐसा मान लिया था कि मुसलमानोकी भावनाको तुष्ट किया जायेगा, जिन अधिकारियोने पंजावमे सैनिक शासनके दौरान गलत आचरण किया था, उन्हे कमसे-कम वरखास्त कर दिया जायेगा और लोगोको अन्य प्रकारसे भी यह प्रतीति कराई जायेगी कि जिस सरकारने जनताकी ज्यादतियोके लिए उसे दण्डित करनेमे वरावर इतनी चुस्ती दिखाई है (और वैसा करके ठीक ही किया है) वह सरकार अपने मुलाजिमोको भी उनके दुष्कृत्योके लिए दण्डित करनेमें चूक नही सकती। लेकिन मैंने वहुत ही आश्चर्य और निराशाके साथ देखा कि साम्राज्यके वर्तमान सूत्र-संचालक तो वेईमान और वेहया हो

१. देखिए खण्ड १६, पृष्ठ, ३७४-७८।

गये है। भारतके लोगोंकी इच्छाओंकी उन्हें कोई वास्तविक चिन्ता नही है और भारतके सम्मानका उनकी नजरोमे कोई महत्त्व नही है।

जिस सरकारके कर्त्ता-धर्त्ता ऐसे लोग हो, उससे मुझे कोई मोह नही हो सकता। और जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मेरे लिए यह बड़े अपमानकी बात है कि इस तरह अन्यायपर अन्याय किया जाता रहे और मै स्वतन्त्र बना रहूँ। और चुपचाप यह सब देखता रहूँ। फिर भी, श्री मॉण्टेग्युका यह धमकी देना उचित ही है कि अगर मै इसी तरह सरकारके अस्तित्वके लिए खतरा पैदा करता रहा तो मुझे जेलमें ठूँस दिया जायेगा। और यह निश्चित है कि मै आज जो-कुछ कर रहा हूँ वह अगर फलप्रद सिद्ध हुआ तो सरकारका अस्तित्व खतरेमे होगा। लेकिन मुझे दु:ख इस बातका है कि जब श्री मॉण्टेग्यु मेरी अतीतकी सेवाओको स्वीकार करते है तो उन्हें यह भी सोचना चाहिए था कि अगर सरकारका मुझ-जैसा हितकामी व्यक्ति उसे अपनी सद्भावना और सहयोग देनेमे असमर्थ हो जाये तो उस सरकारमे अवश्य ही कोई बहुत बडी बुराई होगी। अन्यायको बनाये रखनेके लिए मुझे जेलमे ठूँसनेकी धमकी देनेसे कही ज्यादा सरल काम यह था कि मुसलमानो तथा पजाबके साथ न्याय करनेपर जोर दिया जाता। कहा गया है कि अतीतमे मैने साम्राज्यकी अच्छी सेवा की है, लेकिन मुझे तो पूरी आशा है कि अगर ठीकसे देखा जाये तो एक अन्यायपूर्ण सरकारके प्रति असन्तोषकी भावना उत्पन्न करके मैने उसकी और भी बड़ी सेवा की है।

लेकिन इस समय मैं जो-कुछ कर रहा हूँ उसको पसन्द करनेवाले लोगोका कर्त्तव्य स्पष्ट है। अगर भारत सरकारको मुझे जेलमे ठूँस देना ही अपना कर्त्तव्य जान पड़े तो मुझे जेल भेज दिये जानेपर लोगोंको नाराजगी नही होनी चाहिए। किसी भी नागरिकको, जिस राज्यमे वह रहता है, उस राज्यके कानूनके अनुसार उसकी स्वतन्त्रतापर इस तरह लगाई गई रोकका विरोध करनेका कोई अधिकार नही है; और जो लोग उस नागरिकसे सहानुभूति-भर रखते है उन्हें तो ऐसा करनेका और भी कम अधिकार है। मेरे सम्बन्धमे तो सहानुभूति आदिका कोई सवाल ही नही उठता। कारण, मै जान-बूझकर इस सीमातक सरकारका विरोध कर रहा हूँ कि उसका अस्तित्व खतरेमे पड़ जाये। इसलिए मेरे समर्थकोके लिए वह आनन्दकी घड़ी होनी चाहिए जब म गिरफ्तार किया जाऊँ। मेरी गिरफ्तारीका मतलब होगा मेरी सफलताका शुभारम्भ, बशर्ते कि सारे समर्थक उस नीतिपर चलते रहें जिस नीतिका मै पोषक हूँ। अगर मुझे सरकार गिरफ्तार करेगी तो इसीलिए कि मै जिस असहयोगका प्रचार कर रहा हूँ उसकी प्रगति रुक जाये। अब इसके बाद जो स्वाभाविक प्रतीत होता है वह यह कि अगर मेरी गिरफ्तारीके बाद भी असहयोग उसी जोरसे चलता रहा तो सरकारको या तो और लोगोको भी गिरफ्तार करना पड़ेगा या जनताका सहयोग प्राप्त करनेके लिए उसकी बात माननी पड़ेगी। उत्तेजनाके वशीभूत होकर ही सही, यदि जनताने कोई हिंसात्मक कार्रवाई की तो उसका परिणाम घातक होगा। इसलिए इस आन्दोलनके दौरान चाहे मुझे गिरफ्तार किया जाये या किसी औरको, सफलताकी पहली शर्त यह है कि उसपर किसी प्रकारकी नाराजी प्रकट न की जाये। यह नही हो सकता

कि हम सरकारके अस्तित्वके लिए खतरा भी उपस्थित करे और साथ ही, अगर सरकार अपने अस्तित्वको खतरेमे डालनेवालोंको दण्डित करके अपने-आपको बचानेकी कोशिश करे तो उस कोशिशका विरोध भी करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-७-१९२०

६३. एक महत्त्वपूर्ण त्यागपत्र

खिलाफत दलके पंजाबके महत्त्वपूर्ण दौरेके दरम्यान मुझे एक सब-डिविजनल अफसरने[1] अपने त्यागपत्रकी एक प्रति दी। उन्होने त्यागपत्र खिलाफतके सवालपर दिया है। यह इसी अकमें अन्यत्र छापा गया है। पत्रसे स्पष्ट प्रकट होता है कि विभिन्न वर्गोके मुसलमानोपर टर्कीके साथ हुई शान्ति-सन्धिकी शर्तोंका कैसा असर हुआ है। यह मुस्लिम-ससारके प्रति एक ऐसा अन्याय है, जिसे कभी भुलाया नही जा सकता और इसके लिए सबसे अधिक जिम्मेदार है इंग्लैंड। जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा, इस अन्यायका निराकरण करवानेके लिए जो आन्दोलन चल रहा है, उसका जोर कम होनेके बजाय बढ़ता ही जायेगा। श्री मुहम्मद आजम वीस वर्ष पुराने अधिकारी है और उनकी सेवाएँ लगभग अनिवार्य समझी जाती है। जब कोई ऐसा अधिकारी भी किसी सरकारसे इस कारण अलग हो जाये कि वह एक बहुत बड़े अन्यायमे शरीक हुई है तो यह जरूरी हो जाता है कि वह सरकार अपनी उस कार्रवाईपर एक बार ध्यानसे सोचे।

लेकिन यह त्यागपत्र प्रकाशित करनेमें मेरा मुख्य उद्देश्य इस ओर सरकारका ध्यान दिलाना नही है (क्योकि सारी स्थिति उसके ध्यानमे तो है ही), बल्कि श्री मुहम्मद आजमको बधाई देना और जनताके सामने उनका अनुकरणीय उदाहरण पेश करना है। श्री मुहम्मद आजमने एक ऐसे पदको लात मार दी है जो बहुत-से लोगोके लिए स्पृहणीय होगा। सासारिक दृष्टिकोणसे देखा जाये तो इस तरह उन्होने बहुत बडी चीज खो दी है। लेकिन धर्म या सम्मानकी दृष्टिसे उन्होने कुछ खोया नही बल्कि पाया ही है। अपनी आत्माको बेचकर रुतबा और पैसा पानेमें क्या रखा है? उनके वरिष्ठ अधिकारियोके लिए यह श्रेयकी बात है कि उन्होने इस आधारपर त्यागपत्रकी स्वीकृतिकी सिफारिश की है कि वह अन्तरात्माकी खातिर दिया गया है। अगर ऊँचे तबकेके सरकारी नौकर श्री मुहम्मद आजमका अनुकरण करे तो शायद इस आन्दोलनका उद्देश्य पूरा हो जाये और निचले तबकेके कर्मचारियोको अपनी नौकरियाँ भी न छोडनी पडें।

श्री मुहम्मद आजमने अपने आचरण द्वारा सक्रिय साहसका उदाहरण प्रस्तुत किया है। जिसकी मिसाल मुश्किलसे ही देखनेको मिलती है। लेकिन कोई काम न करनेमे

१. ऐबटाबादके सब-डिविजनल अफसर।

भी एक साहस है; मेरी समझमें भारतके लोगोमें वह पर्याप्त मात्रामे है। अत. भरोसा किया जा सकता है कि कोई भी भारतीय उस पदके लिए अर्जी नही देगा जिसे उन्होने रिक्त किया है। यह तो लगभग तय है कि कोई मुसलमान ऐसा नही करेगा। लेकिन मुझे आशा है कि हिन्दू लोग भी उतनी ही दृढतासे काम लेगे और अपने मुसलमान भाइयोके सामने यह सिद्ध कर देगे कि मुसलमान जिस कठिनाईमे पड़ गये हैं, उसे वे भली भाँति महसूस करते है और वे उन्हे अपना समर्थन देनेमे पीछे नही रहेगे।

शायद कोई कहे कि इस पदके लिए किसी भारतीयको अर्जी देनेकी जरूरत ही नही पडेगी, क्योकि यह ऐसा पद है जिसे कोई अग्रेज भी खुशी-खुशी स्वीकार करना चाहेगा। मुझे भी इसमे कोई सन्देह नही है। लेकिन अगर विरोध प्रदर्शनार्थ कोई स्वेच्छासे किसी पदका त्याग कर दे और उस पदके लिए विरोध करनेवाले वर्गका कोई भी व्यक्ति अर्जी न दे तो इससे सामान्य स्थितिमे कुछ फर्क तो पड ही जाता है। जो चीज जरूरी है वह सिर्फ यह कि लोगोमें सरकारी नौकरियोके लिए जो एक गलत ढगका मोह आ गया है, उससे छुटकारा पा लिया जाये। योग्य और ईमानदार लोगोके लिए इज्जतके साथ अपनी रोजी कमानेके और भी बहुत-से रास्ते है। आखिरकार पूरी आबादीमें सरकारी नौकरोकी संख्या दालमे नमकके बराबर ही तो है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-७-१९२०

६४. पहली अगस्त

ऐसी कोई सम्भावना दिखाई नही देती कि पहली अगस्तसे पूर्व सम्राट्के मन्त्री शान्ति-सन्धिकी शर्तोमे परिवर्तन करनेका वचन दे देंगे जिससे उस दिन असहयोग आदोलनका समारम्भ स्थगित हो जाये। आगामी पहली अगस्तका दिन भारतीय इतिहास-मे उतना ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा जितना महत्त्वपूर्ण गत वर्षका ६ अप्रैल सिद्ध हुआ था। ६ अप्रैलको ही रौलट अधिनियम समाप्त होनेकी प्रक्रिया आरम्भ हुई थी। कोई भी नही मान सकता कि उस प्रबल आन्दोलनके बावजूद, जो समाप्त नही सिर्फ स्थगित ही किया गया है, रौलट अधिनियम बना रह सकेगा। यह बात सभीको स्पष्ट होगी कि जो शक्ति पंजाब और खिलाफतके मामलेमे न्याय करनेकी अनिच्छुक सरकारको न्याय देनेपर विवश कर रही है वही शक्ति रौलट अधिनियमको भी रद करवा कर रहेगी। और वह शक्ति है सत्याग्रहकी शक्ति — चाहे उसे सविनय अवज्ञाका नाम दीजिए या असहयोगका।

बहुत-से लोग गत वर्षकी वारदातोके कारण असहयोग प्रारम्भ करनेकी बातसे भयभीत है। उन्हें भय है, कही ऐसा न हो कि भीड फिर उसी तरह पागलपन कर बैठे और परिणामत. फिर कही गत वर्षकी तरह ही सरकार वही प्रतिशोधात्मक कार्र-

वाई न करे, जिसकी भयंकरता आधुनिक कालके इतिहासमें बेमिसाल है। जहाँतक स्वयं मेरी बात है, मैं सरकारकी उन्मत्तता और क्रोधकी उतनी परवाह नही करता जितनी कि भीडके क्रोधकी। भीडका क्रोध तो समग्र राष्ट्रकी अव्यवस्थित स्थितिका द्योतक है जब कि सरकार तो आखिरकार एक छोटासा सगठनमात्र है; और इसीलिए सरकारके क्रोधकी अपेक्षा भीडके क्रोधसे निपटना कही अधिक कठिन होता है। जिस सरकारने अपने-आपको शासन करनेके अनुपयुक्त सिद्ध कर दिया हो उसे उखाड़ फेंकना, किसी भीडमे शामिल अज्ञात लोगोके पागलपनका इलाज करनेकी अपेक्षा, आसान है। लेकिन ऐसे महान् आन्दोलनोको सिर्फ इस कारणसे बिलकुल बन्द नही किया जा सकता कि सरकार या जनता या कि दोनो क्रोधके प्रवाहमे गलत काम कर बैठते है। अपनी भूलो और विफलताओंसे हमें कुछ सीखना है। कोई भी सच्चा सेनापति इस कारण युद्ध करना छोड़ नही देता कि उसे हार खानी पडी है, या दूसरे शब्दोमे, उससे गलतियाँ हुई हैं। और इसलिए हमे आशा और विश्वासके साथ उस दिनकी प्रतीक्षा करनी चाहिए जब असहयोग आन्दोलन छेडा जायेगा। पहलेकी ही तरह इसका प्रारम्भ प्रार्थना और उपवासके साथ करना है, जो इस विरोध-प्रदर्शनके धार्मिक स्वरूपका द्योतक होगा। उस दिन हडताल भी की जाये और सभाएँ आयोजित करके ऐसे प्रस्ताव पास किये जाये, जिनमे शान्ति-सन्धिकी शर्तोंमें संशोधन करने तथा पंजाबके मामलेमें न्याय करनेकी प्रार्थना की जाये और जबतक न्याय नही दिया जाता तबतक असहयोगपर डटे रहनेका निश्चय किया जाये।

पहली अगस्तसे ही अपने खिताबों और अवैतनिक पदोका त्याग भी प्रारम्भ हो जाना चाहिए। कुछ लोगोंने ऐसा सन्देह प्रकट किया है कि खिताबो और अवैतनिक पदोका त्याग करनेके लिए पर्याप्त पूर्वसूचना नही दी गई है। लेकिन अगर यह बात ध्यानमे रखे कि खिताबोंका त्याग पहली अगस्तसे ही शुरू होना है तो यह सन्देह तुरन्त दूर हो जाता है। और खिताबोंका त्याग सिर्फ इसी दिन नही करना है। सच तो यह है कि मैं ऐसी आशा भी नही करता कि पहले ही दिन इस अनुरोधका उत्तर बहुत अधिक लोग दे सकेंगे। इसके लिए काफी जोरदार प्रचार करना पडेगा और प्रत्येक खिताबयाफ्ता या उच्च पदस्थ व्यक्तितक सन्देश पहुँचाना होगा तथा इस तरह खिताबो और पदोके त्याग करनेमे जो कर्त्तव्य निहित है, वह प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्तिको समझाना होगा।

लेकिन इस आन्दोलनमें सबसे बड़ी चीज है लोगोमें व्यवस्था, अनुशासन और सहयोगकी भावना पैदा करना तथा कार्यकर्त्ताओके बीच सामंजस्य बनाये रखना। सगठन ठीकसे किया जाये। पजाबकी सभाओमे जो हजारो व्यक्ति एकत्र हुए उससे हमे भरोसा हुआ है कि लोग सरकारके साथ सहयोग बन्द कर देना चाहते हैं, लेकिन उन्हे यह भी जानना चाहिए कि यह काम कैसे किया जाये। अधिकाश लोग सरकारके पेचीदे तंत्रको नही समझते। वे नही महसूस करते कि आज सरकार जो टिकी हुई है वह सिर्फ इसी कारण कि वे अपने-अपने तरीकेसे, जिसकी उन्हें कोई जानकारी नही है, उसे सहारा दे रहे हैं। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक अपनी सरकारके प्रत्येक कामके

लिए जिम्मेदार होता है। और जबतक उस सरकारकी कार्रवाइयोको बरदाश्त किया जा सकता है तबतक उसे समर्थन देते रहना भी उचित ही है। लेकिन जब वह सरकार किसी व्यक्ति और उसके राष्ट्रको चोट पहुँचाये तो उसका समर्थन करनेसे हाथ खीच लेना उसका कर्त्तव्य हो जाता है।

लेकिन जैसा कि मैंने कहा, हर नागरिक यह नही जानता कि वह व्यवस्थित ढंगसे यह काम कैसे करे। इसलिए सच्ची सफलताकी पहली शर्त ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देना है जिससे किसी भी प्रकारकी हिंसा न हो पाये। अगर हम सरकारके कर्त्ता-धर्त्ता लोगोपर या हमारा साथ न देनेवाले लोगोके प्रति, अर्थात् सरकारके समर्थकोके प्रति, किसी प्रकारकी हिंसा करते है तो ऐसी प्रत्येक कार्रवाईका मतलब होगा हमारा पतन तथा असहयोगका अन्त और निर्दोष लोगोकी प्राण-हानि। इसलिए जो लोग असहयोगको जल्दसे-जल्द सफल बनाना चाहते हों वे अपने आस-पासके क्षेत्रमें पूरी व्यवस्था बनाये रखनेको कोशिश करना अपना पहला कर्त्तव्य मानेगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८–७–१९२०

६५. गोलीके शिकार "मुहाजरीन" के बारेमें कुछ और

पिछले हफ्ते मैंने गोलीका शिकार होनेवाले मुहाजरीनके बारेमें कुछ लिखा था।[1] खिलाफत दलके पंजाबके दौरेके दौरान मुझे एक हस्ताक्षरयुक्त बयान दिया गया जिसमें उक्त घटनाके विवरण दिये गये है। इसी घटनाके बारेमे सरकारने भी एक विज्ञप्ति जारी की है। चूंकि बयानसे लगता है कि यह काफी जिम्मेदार लोगोकी ओरसे दिया गया है और चूंकि इसमे जो-कुछ कहा गया है वह सरकारी विज्ञप्तिमे कही गई बातोसे भिन्न है, इसलिए मैं इसे जनताके सामने प्रस्तुत करके इस ओर सरकारका भी ध्यान आकृष्ट करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ। मगर इस बयानमे कही गई बाते सच्ची हों तो यह उन तथाकथित सिपाहियोके लिए बहुत लज्जाका विषय है जिन्होने महिलाओंके सम्मानकी रक्षा का प्रयत्न करनेवाले एक व्यक्तिकी हत्या करनेमें पाशविक सुखका अनुभव किया।

मुझे मालूम हुआ है, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तकी सरकार इस मामलेकी अदालती जाँच करवा रही है। लेकिन जिन्हे अदालती जाँच कहा जाता है, उन जाँचोके सम्बन्धमे भी लोगोके मनमे इतना सन्देह भर गया है कि जबतक जाँच वास्तवमे पूरी स्वतन्त्रता और ईमानदारीसे नही की जायेगी तबतक उसके निष्कर्षोको कोई महत्त्व नही दिया जायेगा। इसलिए अगर सरकार चाहती है कि उसपर ब्रिटिश सैनिकोके कायरतापूर्ण कृत्यपर पर्दा डालनेका आरोप न लगाया जाये तो वह प्रचारका भय किये बिना अधिकसे-अधिक विश्वसनीय व्यक्तियोको इस मामलेकी जाँच करनेके लिए

१. देखिए "हिजरत और उसका अर्थ", २१–७–१९२०।

आमन्त्रित करेगी। कदाचित् किन्ही भी स्थानीय व्यक्तियोके सम्बन्धमें ऐसा नही कहा जा सकता कि अगर ये जाँच करेंगे तो पक्षपात नही होगा।

यह घटना कुछ कम महत्त्वकी नही है। दुर्भाग्यवश जनरल डायर ऐसा कह चुके हैं कि भारतमें अग्रेज महिलाओंके जीवन और सम्मानको पवित्र माना जाता है। मुझे आशा है कि भारत प्रत्येक महिलाके सम्मान और जीवनको एक पवित्र और प्रिय थाती मानता है। अत. इस घटनामें महिलाओके सम्मानका प्रश्न जुडा हुआ है। फिर यह सवाल भी जुडा हुआ है कि भारतीय सिपाहियोने गोली चलानेसे इनकार कर दिया था। अगर यह सच हो कि उन्होंने गोली चलानेसे इनकार कर दिया और अगर इसके कारण वही हो जो बयानमें बताये गये है तो यह उनके लिए गौरवकी बात है। इस घटनाके महत्त्वका एक कारण यह भी है कि इस दुःखद घटनाका सम्बन्ध एक धार्मिक प्रश्नपर देश छोड़कर जाते हुए लोगोसे है। मै सरकारको यह बता दूं कि पजाबके सैकड़ों-हजारो लोग इस मामलेकी चर्चा बड़ी सरगरमीसे कर रहे है। अगर सरकार चाहती है कि मामलेके एक अपुष्ट विवरणकी जनतामें ऐसी चर्चा न हो तो जल्दीसे-जल्दी इसकी पूरी जाँच कराना जरूरी है।

बहुत अच्छा होता अगर इस विवरणमें, जो हम अन्यत्र छाप रहे है, आवेशकी भावना और अलंकारिता न होती। अगर किसी घटनाका विवरण विशेषणोंके प्रयोगसे मुक्त हो और विवरण देनेवाला व्यक्ति अपनी निजी राय उसमें न शामिल करे तो उससे उस विवरणमें ज्यादा जोर आ जाता है। लेकिन अनुभवहीन लोगोसे सही और सटीक विवरणकी अपेक्षा करना शायद ज्यादती ही होगी — विशेषकर उस स्थितिमे जब विवरण देनेवाला व्यक्ति किसी और भाषामे विवरण दे और उसे कोई ऐसा व्यक्ति अनुवाद करके लिखित रूपमें प्रस्तुत करे जो अच्छा अनुवादक नही है और उस लिखित विवरणमें बराबर अपने विचार ठूंस देनेको उत्सुक रहता हो। जो भी हो, मै पाठकोको सलाह दूंगा कि जबतक उनके सामने सरकारी विवरण नही आ जाता तबतक वे इस सम्बन्धमे कोई मत स्थिर न करे।

इसके अतिरिक्त, इस घटनासे यह भी प्रकट होता है कि सरकारके लिए हिज-रतके सम्बन्धमें अपनी एक नीति निर्धारित कर लेना आवश्यक है। अगर वह इस शान्तिपूर्ण और धार्मिक विरोध-प्रदर्शनको रोकना न चाहती हो तो उसे स्पष्ट रूपसे वैसा कह देना चाहिए। अन्यथा सरकारकी नीतिसे अनभिज्ञ छोटे अधिकारी अपने मूर्खतापूर्ण और विवेकशून्य कार्यों द्वारा ऐसे ढगसे एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न कर दे सकते है जो सरकारको वाछनीय न हो। मुसलमानोकी हिजरतका जो यह सिलसिला चल पड़ा है, उसके कुछ इतने व्यापक रूप धारण कर लेनेके लक्षण दिखाई दे रहे है कि उसे भाग्यके भरोसे नही छोडा जा सकता। सभी पक्षोके हितकी दृष्टिसे यह अत्यन्त वाछनीय है कि सरकार इस सम्बन्धमें अपनी नीतिकी स्पष्ट घोषणा करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-७-१९२०

६६. तार: तीसरे खिलाफत दिवसके बारेमें[1]

बम्बई
२९ जुलाई, १९२०

आशा है कि मद्रास प्रेसीडेन्सी पहली अगस्तको पूर्णतया शान्त और अनुशासित रहकर, पूरी हड़ताल रखकर, हृदयसे प्रार्थना करते हुए, बड़ी-बड़ी पर अनुशासनपूर्ण सभाएँ करके और अधिकसे-अधिक खिताब लौटाकर, [खिलाफतकी तीसरी वर्षगांठ मनानेमें] पूरा-पूरा योग देगी। सभी सरकारी आदेशोंका सख्तीसे पालन होना चाहिए। दृढ़ताके साथ सहयोगसे हाथ खींचकर और आदेशोंका पालन करके ही खिलाफतके सवालका हल और राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षा तथा हिन्दू-मुस्लिम एकतामें वृद्धि की जा सकती है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३०-७-१९२०

६७. भाषण: बम्बईमें

२९ जुलाई, १९२०

बम्बईके मुजफ्फराबाद मुहल्लेमें २९ जुलाईको मुसलमानोंकी एक बड़ी सभामें आसन्न असहयोग आन्दोलन, जो १ अगस्तसे आरम्भ हो गया है, पर बोलते हुए श्री गांधीने कहा कि अब असहयोगपर भाषण देनेका समय बीत गया और अब तो उसे व्यावहारिक रूप देनेका समय आ पहुँचा है। लेकिन उसकी पूर्ण सफलताके लिए दो चीजें आवश्यक हैं — एक तो यह कि लोगोंमें हिंसात्मक प्रवृत्तिका कहीं कोई लेश नहीं रहना चाहिए; और दूसरे उनमें आत्म-बलिदानकी भावना होनी चाहिए। मेरी कल्पनाका असहयोग किसी ऐसे वातावरणमें सम्भव नहीं हो सकता जिसमें हिंसाकी भावना व्याप्त हो। हिंसा क्रोधका प्रदर्शन है और ऐसा कोई भी प्रदर्शन हमारी मूल्यवान शक्तिका अपव्यय है। क्रोधको वशमें रखना राष्ट्रीय शक्तिका संचय करना है, जिसका यदि व्यवस्थित ढंगसे उपयोग किया जाये तो आश्चर्यजनक परिणाम निकल सकते हैं। असहयोगकी मेरी कल्पनामें लूट-खसोट, आगजनी और भीड़के पागलपनसे सम्बद्ध अन्य ऐसी ही कार्रवाइयोंके लिए स्थान नहीं है। मेरी योजनामें यह पहले ही

१. यह तार गांधीजी और शौकत अलीने मद्रास अहातेको एक सन्देशके रूपमें भेजा था।

मान लिया गया है कि लोगोंमें बुराईपर काबू रखनेकी क्षमता है। इसलिए अगर लोगोंमें उपद्रवकी कोई ऐसी प्रवृत्ति पाई गई, जिसपर वे काबू नहीं रख सकते तो फिर जहाँतक मेरी बात है, मैं उस प्रवृत्तिपर काबू करनेके प्रयत्नमें सरकारकी सहायता करूँगा। अगर उपद्रव हुए तो मेरे सामने सवाल होगा दो बुराइयोंके बीच चुनाव करनेका, और यद्यपि मैं वर्तमान सरकारको बुरा मानता हूँ फिर भी फिलहाल उस उपद्रवको रोकनेमें मैं बिना किसी हिचकके सरकारको मदद दूँगा। लेकिन मुझे जनतामें विश्वास है। मुझे विश्वास है, लोग जानते हैं कि इस उद्देश्यको अहिंसक तरीकोंसे ही सिद्ध किया जा सकता है। इसी बातको अगर हम बहुत बुरे ढंगसे कहना चाहें तो कहेंगे कि यदि लोगोंमें इच्छा हो तो भी उनमें इतनी शक्ति नहीं है कि वे पशुबलके सहारे यूरोपके उन अन्यायी देशोंका विरोध कर सकें, जिन्होंने अपनी सफलताके मदमें चूर होकर न्यायकी सारी मान्यताओंको ताकपर रख दिया और यूरोपके एकमात्र इस्लामी राज्यके साथ ऐसा क्रूर व्यवहार किया।

बेजोड़ हथियार

श्री गांधीने कहा, आप लोगोंके हाथमें असहयोग रूपी बेजोड़ और जबरदस्त हथियार है। जो सरकार झूठ और कपटका सहारा लेकर अन्यायका समर्थन करे, उसके साथ सहयोग करना धार्मिक दुर्बलताका लक्षण है। इसलिए जबतक सरकार अपने-आपको अन्याय और असत्यके दोषोंसे मुक्त नहीं कर लेती तबतक समाजमें व्यवस्था कायम रखनेकी अपनी योग्यताको देखते हुए जहाँतक सम्भव हो वहाँतक सरकारको किसी भी प्रकारकी सहायता न देना आपका कर्त्तव्य है। अतएव असहयोगके प्रथम चरणमें ऐसी व्यवस्था की गई है जिसमें सार्वजनिक शान्ति-सुव्यवस्थाके लिए कमसे-कम खतरा हो और इस आन्दोलनमें शामिल होनेवाले लोगोंको यथासम्भव कमसे-कम बलिदान करना पड़े। और अगर आप मानते हों कि आप एक बुरी सरकारको कोई सहायता नहीं दे सकते और न उसका अनुग्रह ही स्वीकार कर सकते हैं तो स्वभावतः आपको सम्मानसूचक सभी खिताब छोड़ देने चाहिए, क्योंकि उन खिताबोंपर अब कोई गर्व करनेकी बात नहीं रह गई है। वकीलोंको, जो वास्तवमें न्यायालयोंके अवैतनिक अधिकारी ही हैं, न्यायालयोंकी कार्यवाहीमें मदद देना बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि ये न्यायालय एक अन्यायी सरकारकी प्रतिष्ठाके पोषक हैं। लोगोंको आपसी झगड़े पंच-फैसलेसे सुलझाने चाहिए। इसी तरह माता-पिताओंको अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंसे निकाल लेना चाहिए और उन्हें समस्त सरकारी नियन्त्रणोंसे मुक्त एक राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धतिका विकास करना चाहिए या फिर निजी तौरपर शिक्षणकी व्यवस्था करनी चाहिए। हो सकता है यह उद्धत सरकार, जिसे अपने पशुबलका बहुत गुमान है, लोगोंकी इन कार्रवाइयोंपर हँसे — विशेषकर इस कारण कि न्यायालयों और स्कूलोंको जनताकी सहायता करनेवाली संस्थाएँ माना जाता है, लेकिन मुझे इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जिस सरकारने शक्तिके मदमें चूर होकर

अपना सारा विवेक खो दिया है उस सरकारपर भी इन सब बातोंका नैतिक प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

स्वदेशी

स्वदेशीको असहयोग आन्दोलनके एक कार्यक्रमके रूपमें स्वीकार करनेमें मुझे संकोच होता है। मुझे तो स्वदेशी प्राणोंकी तरह प्यारी है। लेकिन अगर स्वदेशीसे खिलाफत आन्दोलनको कोई वास्तविक सहायता नहीं मिल सकती तो इस आन्दोलनमें स्वदेशीके सवालको भी शामिल करनेकी मेरी इच्छा नहीं है। चूंकि असहयोगकी कल्पना आत्म-बलिदानकी भावनापर आधारित है, इसलिए इस आन्दोलनमें स्वदेशीका एक उचित स्थान है। विशुद्ध स्वदेशीका मतलब है बनाव-शृंगारके प्रति अपने मोहका परित्याग। मैं समस्त राष्ट्रसे अनुरोध करता हूँ कि वह यूरोप और जापानके बनाव-शृंगारके सामानके प्रति अपना मोह त्याग दे और लाखों-करोड़ों बहनोंके हाथोंसे काते गये सूतसे हथकरघोंपर बुने सुन्दर स्वदेशी वस्त्रोंका उपयोग करनेमें ही सन्तोष माने। अगर हमारा राष्ट्र अपने धर्मो और आत्म-सम्मानके लिए उपस्थित खतरेके प्रति सचमुच जागरूक हो गया हो तो वह यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकता कि स्वदेशीको तत्काल ही हर तरहसे अपना लेना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक है, और अगर भारतके लोग धार्मिक उत्साहके साथ स्वदेशीको अपना लें तो मैं आपको भरोसा दिलाता हूँ कि आपके हाथोंमें एक नई ताकत आ जायेगी, जिसका स्पष्ट प्रभाव सारी दुनियापर पड़ेगा। इसलिए मैं मुसलमान भाइयोंसे यह अपेक्षा करता हूँ कि उन्हें सुन्दर और महीन विदेशी वस्त्रोंका जो शौक है उस शौकको छोड़कर अपने भाइयों और बहनोंकी मेहनतसे उनके घरोंमें तैयार किये गये सादे वस्त्रोंका उपयोग करें और इस तरह इस क्षेत्रमें शेष लोगोंका पथ-प्रदर्शन करें। और मुझे आशा है कि इसमें हिन्दू भी उनका अनुकरण करेंगे। यह एक ऐसा त्याग है, जिसमें स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे सभी शामिल हो सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४–८–१९२०

६८. सन्देश: खिलाफत दिवसपर[1]

बम्बई
३१ जुलाई, १९२०

तीसरे खिलाफत दिवसके सम्बन्धमे असहयोग समितिने निम्नलिखित निर्देश जारी किये हैं: "पहली अगस्त गम्भीर जिम्मेदारी और महत्त्वपूर्ण परिणामों सहित हमारे सामने है। हमे अपने न्यायसगत उद्देश्यके सफल होनेका पूरा विश्वास है, अलबत्ता हमें पूर्ण अनुशासित रहकर पर्याप्त मात्रामे आत्म-बलिदान करना होगा। यदि हम सरकारको मदद देना और उससे मदद लेना बन्द कर देते है तो हम देशमे व्यवस्था बनाये रखनेमे भी समर्थ होंगे अतएव हमे अधिकारियोसे टक्कर और अचानक उत्तेजित होनेके अवसर टालते हुए समस्त सरकारी आदेशो और नोटिसोका पालन करना चाहिए। हम आशा करते है कि इतवारको मुकम्मिल हडताल होगी। दूकान बन्द करनेसे इनकार करनेवाले किसी व्यक्तिपर कोई दबाव नही डाला जाना चाहिए। आन्तरिक शक्ति और शुद्धिके लिए समिति प्रार्थना और उपवासको सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानती है। यह भी आशा है कि इतवारको यथासम्भव बडीसे-बड़ी सभाओका आयोजन किया जायेगा। किन्तु जुलूस नही निकाले जाने चाहिए। खिताबों और अवैतनिक पदोका परित्याग करवानेका विशेष प्रयत्न होना चाहिए। माता-पिताओसे समितिका अनुरोध है कि वे सरकारी मान्यता प्राप्त या सरकार द्वारा नियन्त्रित स्कूलोसे अपने बच्चे उठा लें। वकीलोसे प्रार्थना है कि वे फिलहाल अपनी वकालत बन्द कर दें।

इन कामोका नैतिक प्रभाव पडेगा, इस सम्बन्धमे हमें कोई सन्देह नही है। हम यह भी आशा करते है कि इतवारसे पूर्ण स्वदेशी व्रतका पालन प्रारम्भ होगा। यह व्रत प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बच्चेको व्यक्तिगत तौरपर अपने भीतरकी त्याग-भावना प्रकट करनेके योग्य बनाता है। इसके पालनसे हममें अपने धर्म और सम्मानके लिए त्याग करनेकी हार्दिक इच्छा बल पकड़ेगी और आगे हम और भी अधिक त्यागके लिए कटिबद्ध रहेगे। विधान परिषदोके पूर्ण बहिष्कारके लिए आन्दोलन बराबर जारी रखा जाना चाहिए। अन्तमे समिति मुसलमानोसे यह आशा करती है कि वे त्यागके साथ शान्ति और अनुशासन कायम रखनेमें अग्रणी रहेगे। हमें पूरा विश्वास है कि हमारे हिन्दू भाई भी अपना कर्त्तव्य निबाहनेमे चूकेंगे नही और मुसलमानोंका साथ देंगे।"

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १-८-१९२०

बॉम्बे क्रॉनिकल, ३१-७-१९२०

१. यह तार गांधीजी और शौकत अलीने तृतीय खिलाफत दिवसपर भेजा था।

६९. हमारा कर्त्तव्य

आखिर पहली अगस्तका दिन आ पहुँचा। असहकारके अनेक दोष गिनाये जाते हैं। किन्तु इसके विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति तो यह उठाई गई है कि असहकार किया गया तो खून-खराबी अवश्य होगी।

इस दोषसे मुक्त रहना नितान्त सहज है। यदि प्रत्येक स्थानपर थोडे भी लोग शान्ति बनाये रखनेके लिए तत्पर रहे तो शान्तिका वातावरण बनाये रखनेमे कोई दिक्कत नही आनी चाहिए। असहकारके लिए सबसे पहले शान्तिका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। यदि हम शान्ति नही रख सकते तो फिर हमे असहकार करनेका अधिकार ही नही है।

कितने ही लोग आयरलैण्डके सिन-फेन आन्दोलनका उदाहरण देते है और कहते है कि वहाँ असहकार और हिंसा दोनों चलते है। दोनो साथ-साथ चलते है यह तो सही है लेकिन इसी कारण आयरलैण्डको अभीतक स्वराज्य नही मिल पाया है। इसके सिवा हममें तथा आयरलैण्डमे बहुत भेद है। हम हिंसारहित असहकारसे सहज ही अपनी इच्छाकी पूर्ति कर सकते है। हिंसा होते ही हमे असहकार भी रोकना पडेगा। हिन्दुस्तान-जैसे वड़े देशमे लोग हिंसासे अपनी इच्छापूर्ति नही कर सकते और यदि हम शान्तिपूर्वक असहकार करे तो कोई भी इतने बड़े देशके शासनको नही चला सकता।

इसलिए हिंसाको रोकनेका सफल प्रयत्न ही हमारी सबसे बडी विजय है। हिंसा हो तो उसे रोकनेके लिए हम स्वयमेव सरकारकी सहायता करेगे — करनी भी चाहिए। हिंसा होनेका अर्थ यह होगा कि हम समाजपर कोई प्रभाव नही डाल पाये। असहकारके सम्बन्धमे दूसरी चर्चा यह है कि लोग असहकार करनेके लिए तैयार ही नही है। इसका अर्थ यह हुआ कि लोगोमे आत्म-बलिदानकी शक्ति नही है।

जो सरकार अन्यायकी पराकाष्ठातक पहुँच जाये उसकी ओरसे प्राप्त हुए मानको हम मान समझे, उसकी पाठशालाओमे जाकर पढे और उसकी अदालतोंमे हम वकालत करे तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि हम उसके कार्यसे असन्तुष्ट है?

कुछ लोग लिखते है कि यदि थोड़े-से लोग अपनी पदवियाँ छोड दे, अपने बच्चोको पाठशालाओसे उठा ले तथा दो-चार वकील वकालत करना बन्द कर दें तो उसका सरकारपर क्या असर हो सकता है? यह शका उचित नही है। यदि अन्यायी सरकारकी मदद करने अथवा उसका अनुग्रह लेनेकी बातको हम पाप समझते हों तो हम सख्यामे कम हो अथवा ज्यादा, हमें उस सहायता अथवा अनुग्रहका परित्याग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अधिक लोगोसे त्याग करवानेका उत्तम मार्ग भी यही है।

दुनियाके किसी भी भागमे लोग एकाएक सुधारोको स्वीकार नही कर लेते। शुरुआत हमेशा थोड़े लोगोसे होती है, और जब अधिकाश लोग थोड़े व्यक्तियोकी

दृढ़तासे अवगत हो जाते हैं तव उनका अनुकरण करते हैं। सब लोगोके करनेपर ही हम अमुक कार्य करेंगे, ऐसा सोचे तो सुधार होगा ही नही; इससे विलम्ब तो होता ही है और कभी-कभी उससे वहुत नुकसान हो जाता है। इसके अलावा सबकी अथवा अधिकाश लोगोकी बाट जोहना तो अपने कर्त्तव्यके प्रति हमारे अल्प विश्वासका द्योतक है। इसलिए मुझे उम्मीद है कि जिन लोगोंने यह समझ लिया है कि हमें सरकारकी मदद नही करनी चाहिए, वे थोड़े हों अथवा ज्यादा, असहकार करना आरम्भ कर देंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १–८–१९२०

७०. श्री मॉण्टेग्युकी धमकी

श्री मॉण्टेग्युने खिलाफत सम्बन्धी प्रश्नका उत्तर देते हुए मेरे बारेमे जो धमकी[1] दी है उससे हमें उत्तेजित होनेका कोई कारण नही है। श्री मॉण्टेग्यु तथा अन्य अधिकारियोके आदर्शमें कोई भेद नही है। यह तो अधिकारीवर्गका रवैया ही है कि लोकमतके विरुद्ध कार्य करनेके प्रयत्नमे वे जनताको दबानेमे कोई कसर नही उठा रखते। श्री मॉण्टेग्यु उस आदतसे मुक्त कैसे रह सकते है? जनता खिलाफत और पंजाबके अन्यायके विरोधमें अपना सिर उठा रही है। उसे अपनी मनमानी करने देनेका अर्थ तो सत्ताका झुक जाना ही हुआ। और सत्ता झुकना नही चाहती; इसीसे वह जनताको बलपूर्वक दबा रही है।

ऐसे समय यदि जनता मेरी सलाह माने तो राज्याधिकारी मुझे गिरफ्तार करनेके सिवा और क्या करेंगे?

मुझे गिरफ्तार करनेके तीन उद्देश्य हो सकते हैं:

१ मुझे आतंकित करके मेरे विचारोमे परिवर्तन लाया जाये।

२. मुझे जनतासे अलग करके लोकमतको दुर्बल बनाया जाये।

३. मुझे जनताके बीचसे हटाकर उसकी परीक्षा ली जाये कि वह इस अन्याय-से सचमुच घबराती है या नही।

मेरा खयाल है कि सरकारका मुझे आतंकित करनेका कोई इरादा नही हो सकता। लोकमतको दुर्बल बनानेका हेतु तो है ही, लेकिन अधिक ठीक तो यही जान पड़ता है कि वह जनताकी परीक्षा लेना चाहती है। उसे इसका अधिकार है। यदि जनता इस कसौटीपर खरी उतरती है तो उसी क्षण उसकी विजय हो जाये। इस कसौटीके विरोधमें हमें कुछ भी नही कहना है।

१. मॉण्टेग्युने कॉमन्स सभामें घोषणा की थी कि "यदि श्री गांधी 'असहकार' का आग्रह करते रहे तो पिछले वर्ष उनकी कार्रवाइयोंके प्रति जो रुख अपनाया गया था वैसा रुख अपनाना नितान्त असम्भव हो जायेगा।"

किन्तु यदि मुझे गिरफ्तार किया गया तो जनताको क्या करना चाहिए? हमारे संघर्षमे जेल जानेका विचार तो ग्रहीत ही है। अतएव मेरे जेल जानेसे जनताको हर्षित होना चाहिए, कमसे-कम उसे क्रुद्ध तो नही होना चाहिए। मै जेल जाने-जैसा कार्य करूँ और फिर जेलसे भागूँ अथवा जनता दुखी हो तो इसमे दोष सरकारका नही, हमारा है। जिस राज्यकी सरकार अन्यायी है उस राज्यकी जनताकी स्वतन्त्रता उसकी जेलोंमे ही होती है।

फलतः मुझे उम्मीद है कि यदि मुझे जेल जाना पड़ा तो जनता असहकार-आन्दोलनको और भी तीव्रतासे चलायेगी।

सम्भवत. सरकार चाहती है कि जनता उन्मत्त हो उठे; इससे उसे शस्त्र प्रयोग करनेका अवसर मिलेगा। यदि सरकार ऐसा न चाहती हो तब भी जनताके उत्तेजित होनेका परिणाम तो दमन और उत्पीड़न ही होगा।

अतएव अगर जनताने असहकारको समझ लिया है तो मेरी अथवा किसी अन्यकी गिरफ्तारीपर जनता असहकार जारी रखकर सरकारको यह बता देगी कि लोकमतके बिना राज्य चलाना असम्भव है।

लेकिन स्वाभाविक रूपसे मनमे यह प्रश्न उठता है कि श्री मॉण्टेग्य जनताके दमनका उलटा रास्ता अपनाकर दोहरे अपराधके भागी क्यो बनते है? एक तो यही अपराध है कि उन्होने अन्यायमे भाग लिया; और अब उस अन्यायको निभानेके लिए जनताका दमन दूसरा अपराध होगा। सीधा रास्ता तो यह है कि जब जनता असहकारतक करनेके लिए तत्पर हो गई है तब वे लोकमतको मान्यता प्रदान करके अन्यायको दूर कर दे, और इस प्रकार असहकारकी जड ही मिटा डाले।

श्री मॉण्टेग्यु इस बातको स्वीकार करते है कि मैंने आजतक अपने कार्योसे ब्रिटिश साम्राज्यकी सेवा ही की है। भिन्न-भिन्न अवसरोंपर किया गया सत्याग्रह भी इस सेवामे आ जाता है। वस्तुतः देखा जाये तो मेरी मुख्य सेवाएँ सत्याग्रहके द्वारा अन्यायको दूर करवानेमे ही निहित है। मेरी दृढ़ मान्यता है कि आज भी मै जो कर रहा हूँ वह एक बहुत बड़ी सेवा है। इस समय तो मै केवल सत्याग्रह कर रहा हूँ। असहकार सत्याग्रह रूपी वटवृक्षकी एक शाखा ही है। यह सब होनेके बावजूद सरकार मेरी आजकी प्रवृत्तिको दूषित समझती है, यह खेदजनक है। मेरे जैसा साम्राज्यका मित्र जब असहकार जैसे प्रचण्ड अस्त्रका उपयोग करनेके लिए कटिबद्ध हो जाये तब श्री मॉण्टेग्युको यह मानकर कि जनताकी भावनाओंको सचमुच ही बहुत ठेस पहुँची है, न्याय दिलानेके लिए तत्पर हो जाना चाहिए था। अगर उनके प्रयत्न व्यर्थ जाते तो वे अपने पदसे त्यागपत्र दे सकते थे। लेकिन उन्होने विपरीत मार्ग ही अपनाया है। तथापि मै आशा रखता हूँ कि जनता शान्त और अविचलित रहकर श्री मॉण्टेग्युकी धमकीका उत्तर असहकार द्वारा ही देगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १–८–१९२०

७१. युवराजका आगमन

मैंने यह मत व्यक्त किया था कि हमारी वर्तमान स्थितिको देखते हुए, यदि इस समय युवराज यहाँ पधारे तो हम उनका स्वागत नही कर सकेंगे। मेरे इस मतको भी मॉण्टेग्यु अराजभक्तिपूर्ण मानते हैं।

वास्तवमें इससे इतना ही सूचित होता है कि अब समय बदल गया है। युवराजका स्वागत न करनेमें मैं स्वय तो कोई अराजभक्ति नही मानता। इतना ही नही बल्कि इस कठिन समयमे स्वागत समारोहोंमें भाग लेनेकी बातको मैं जनताके प्रति विश्वासघात करना समझता हूँ।

प्रधान मन्त्रीका कहना है, माननीय युवराज ब्रिटिश साम्राज्यके प्रतिनिधिके रूपमें यहाँ पधार रहे हैं। साम्राज्यकी समृद्धि एव शक्तिका प्रदर्शन करनेके निमित्त उन्हें आना पड़ेगा, यह हम जानते हैं। इस स्वागत-आयोजनमें भाग लेनेका अर्थ मैं वाइसरायसे लेकर छोटेसे-छोटे अधिकारीतक को मान देनेके बराबर समझता हूँ। इन अधिकारियोंमें पजावके वे अधिकारी भी आ जाते हैं जिन्होंने अपने व्यवहारसे अपने पदकी प्रतिष्ठाको चोट पहुँचाई है।

जिन लोगोकी भावनाओंको ठेस पहुँची है, जिनके घाव अभी भरे नही हैं और लॉर्ड सभाने अपने अज्ञान तथा उद्धतताके कारण जनरल डायरके अपराधोंको ढककर जिनके घावोपर नमक छिड़कनेका काम किया है, वे लोग युवराजको दिये जानेवाले स्वागत समारोहोमे भाग कैसे ले सकते हैं? इनमे भाग लेना नौकरशाहीको सज्जनताका प्रमाणपत्र देनेके समान है। जनतामे जो अशान्ति फैली है उसे नौकरशाही शातिका जामा पहनाना चाहती है। इसलिए यदि लोगोमे कुछ और करनेकी हिम्मत न हो, वे लोग कोई और बलिदान करनेको तैयार हों या न हों तथापि इतनी अपेक्षा तो उनसे की ही जाती है कि वे इन समारोहोमे भाग नही लेगे और इस प्रकार अपनी पीड़ित भावनाओंको अभिव्यक्त करेंगे।

स्वागत समारोहोंमे भाग न लेकर हम युवराजका कोई अपमान नही कर रहे हैं। इसमे युवराजका अपमान कदापि नही है; उनका अपमान करनेका इरादा किसीका नहीं हो सकता। यदि इससे किसीका अपमान होता ही है तो वह केवल नौकरशाहीका। लेकिन हम उसका भी अपमान नही करना चाहते। हाँ, उसे अपने सिरपर बैठानेसे इनकार करते हैं और ऐसा करना हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य है। अतएव मुझे उम्मीद है कि श्री मॉण्टेग्यु भले ही कुछ कहें, हम स्वागत समारोहोंमें भाग न लें। यह हमारा धर्म है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-८-१९२०

७२. टिप्पणियाँ

लोकमान्यकी बीमारी

लोकमान्य तिलक[1] महाराजकी बीमारीने गम्भीर रूप धारण कर लिया है, यह समाचार सुनकर लाखो भारतीयोके हृदय कॉंप उठे हैं। जन-जागृतिमे उन्होने जो भाग लिया है, उन्होंने जिस स्वतन्त्र प्रवृत्तिका परिचय दिया है, जो बलिदान किये हैं, उनके कारण जनता उन्हे पूजती है। लाखोके लिए उनके वचन आदेश ही हैं। देशका स्वराज्य उनके जीवनका परम उद्देश्य है। आज जनता उनका वियोग सहन करनेको तैयार नही है। जनता स्वयं इस समय गम्भीर रोगसे पीडित है। उस रोगका निदान तथा उपचार करनेमे लोकमान्यने प्रमुख भाग लिया है। इस समय जनता समस्त नेताओकी सेवाओ तथा सलाहकी भूखी है। नेताओमे लोकमान्य उच्चतम स्थानपर प्रतिष्ठित हैं। उन्हे अपनी जिन्दगीमे ही स्वराज्य मिल जानेकी उम्मीद है, ऐसा भव्य है लोकमान्यका आशावाद। भगवान् उन्हे व्याधिमुक्त करे, दीर्घायु दे तथा स्वराज्यके दर्शन कराये।

उड़ीसामें अकाल

भाई अमृतलाल ठक्करका हाल ही मे प्राप्त पत्र हृदय-द्रावक है। उसमे से मैं निम्नलिखित वाक्य उद्धृत करता हूँ![2]

एक और पत्रमे वे लिखते हैं:

> **गुजरातसे कुल मिलाकर ४०,००० रुपये मिल चुके हैं लेकिन बुरे महीने तो अभी आगे आनेवाले हैं। अच्छी-खासी रकमकी जरूरत पड़ेगी। जनतासे एक बार और अपील करनेके लिए मैं आपसे विशेष अनुरोध करता हूँ। कुल मिलाकर डेढ़ लाखसे कम रुपये नहीं चाहिए। अन्य प्रान्तोंसे प्राप्त हुई रकमको मिलाकर अब तक लगभग अस्सी हजार रुपये हुए हैं।**

इसमे मुझे अपनी ओरसे कुछ कहनेको नही रह जाता। बरसात अच्छी हुई है, फिर भी उड़ीसाके लोगोका कष्ट एकाएक दूर होता नही दिखता। भाई अमृतलाल जैसे-जैसे परिस्थितिका अध्ययन करते जाते हैं वैसे-वैसे उन्हें और भी अधिक दु:खके दर्शन होते हैं। इस दु:खी प्रान्तके लोगोमे अपना दु:ख कह सुनाने तककी हिम्मत नहीं रह गई है। मुझे उम्मीद है कि सब लोग उनके दु:खमें भाग लेकर इस पुण्यकार्यमे योगदान देंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १–८–१९२०

१. बाल गंगाधर तिलक (१८५६–१९२०); देशभक्त, राजनीतिज्ञ और विद्वान्। यह टिप्पणी स्पष्टतः उनकी मृत्युसे पूर्व लिखी गई थी।

२. यहाँ नही दिया गया। गांधीजीने जिस भागके उद्धृत किये जानेकी चर्चा की है उसमें कहा गया था कि पिपलीथानाके लोग अन्नके अभावमें मर रहे हैं।

७३. पत्र: वाइसरायको[1]

[१ अगस्त, १९२०][2]

महोदय,

दक्षिण आफ्रिकामें मेरी मानवीय सेवाओंके लिए आपके पूर्ववर्ती वाइसराय द्वारा दिया गया कैसरे-हिन्द स्वर्ण पदक[3] लौटाते हुए मुझे दु.ख होता है, तथापि मैं इसे लौटा रहा हूँ। साथ ही जुलू युद्ध-पदक जो १९०६ में भारतीय स्वयंसेवक सहायता दलके अधिकारीकी हैसियतसे दक्षिण आफ्रिकामें मेरी युद्ध-सेवाओंके लिए प्रदान किया गया था और बोअर युद्ध पदक जो भारतीय डोलीवाहक दलके सहायक-निरीक्षककी हैसियतसे १८९९ में बोअर युद्धके दौरान मेरी सेवाओंके लिए दिया गया था, भी लौटा रहा हूँ। खिलाफत आन्दोलनके सिलसिलेमे आजसे प्रारम्भ असहयोगकी योजनापर अमल करनेके सन्दर्भमें मैं इन पदकोंको वापस कर रहा हूँ। इन पदकोंको मैंने अपने सम्मानकी तरह आँका है; परन्तु फिर भी जबतक मेरे मुसलमान देशभाई अपनी धार्मिक भावनाओंके प्रति किये गये अन्यायको झेल रहे हैं मैं इन्हे शान्तिपूर्वक धारण नही कर सकता। पिछले महीने जो घटनाएँ हुई हैं उनसे मेरी यह राय और भी दृढ़ हो गई है कि साम्राज्य सरकारने खिलाफतके मामलेमें अधर्म, अनैतिकता और अन्यायसे काम किया और फिर वह अपनी अनैतिकताकी रक्षाके लिए एकके बाद-एक गलत काम करती ही चली गई। मैं ऐसी सरकारके प्रति सम्मान और स्नेह नहीं बनाये रख सकता। साम्राज्य सरकार और आपकी सरकारका पंजाबके प्रश्नपर जो रुख रहा है उससे मुझे और भी गहरा असन्तोष हुआ है। आप जानते ही हैं कि मुझे कांग्रेस द्वारा नियुक्त एक आयुक्तके रूपमें अप्रैल १९१९ के दौरान पंजाबमें हुए उपद्रवोंके कारणोंकी जाँच करनेका सौभाग्य मिला था उसके आधारपर मेरा सोचा-समझा मन्तव्य यह बना है कि सर माइकेल ओ'डायर पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर-पदके लिए सर्वथा अयोग्य व्यक्ति हैं और उनकी नीति ही अमृतसरमें भीड़को उत्तेजित करनेका मुख्य कारण थी। नि.सन्देह भीड़ द्वारा की गई ज्यादतियाँ भी अक्षम्य थी। आगजनी, पाँच बेगुनाह अंग्रेजोंकी हत्या और कुमारी शेरवुडपर[4] कायरतापूर्ण हमला, सभी बातें बहुत ही निन्दनीय और निष्कारण थी, परन्तु जनरल डायर, कर्नल फ्रैन्क जॉन्सन, कर्नल

१. यह ४-८-१९२० के यंग इंडियामें भी "रिनन्सीएशन ऑफ मेडल्स" (पदक-त्याग) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

२. इस तारीखको खिलाफत आन्दोलनके सिलसिलेमें असहयोग प्रारम्भ होनेका उल्लेख है, तदनुसार यह तारीख मान ली गई है।

३. १९१५ में लॉर्ड हार्डिंगने प्रदान किया था।

४. एक अंग्रेज महिला जो अमृतसरके मिशन स्कूलमें काम करती थी। १० अप्रैल, १९१९ को वह साइकिलपर कहीं जा रही थी, तभी उनपर नृशंस हमला किया गया था और एक भारतीयने उसकी प्राण-रक्षा की थी।

ओ'ब्रायन, श्री बॉसवर्थ स्मिथ, राय श्रीराम सूद, श्री मलिक खाँ और अन्य अफसरोने सम्वन्धित लोगोको दण्ड देनेके इरादेसे जो काम किये वे जरूरतसे ज्यादा सख्त थे। वे इस हदतक अमानवीयता और घोर निर्दयतासे भरे हुए थे कि उनकी कोई मिसाल नही मिलती।

आपने सरकारी अधिकारियोके अपराधोको कोई महत्त्व नही दिया, सर माइकेल ओ'डायरको सर्वथा दोष-मुक्त कर दिया, श्री मॉण्टेग्युने जैसा खरीता भेजा और सबसे अधिक तो इग्लैडकी लॉर्ड सभाने भी पजाबकी घटनाओके बारेमे जिस लज्जाजनक अज्ञानका प्रदर्शन किया और भारतीयोंकी भावनाओकी जैसी निर्दयतापूर्ण अवहेलना की उसे देखकर मै साम्राज्यके भविष्यके बारेमे बहुत चिन्तित हूँ। मै अब वर्तमान सरकारकी ओरसे बिलकुल ही विरक्त हो गया हूँ और अब उसे पहले जैसा निष्ठापूर्ण सहयोग नही दे सकता। भारत सरकार अपनी प्रजाके हितोंकी ओरसे बिलकुल उदासीन साबित हुई है। मेरी नम्र रायमे ऐसी किसी भी सरकारको पश्चात्ताप करनेके लिए आवेदनो, शिष्टमण्डलो और ऐसे ही साधारण तरीके अपनाकर बाध्य नही किया जा सकता।

यूरोपीय देशोमें पजाब और खिलाफतके प्रति किये गये अपराधो-जैसे गम्भीर अपराधोंको क्षमा करनेका परिणाम जनता द्वारा हिंसापूर्ण क्रान्ति होता। वहाँकी जनता राष्ट्रको अपग बनानेकी मशासे किये गये इस प्रकारके अन्यायोका हर कीमतपर मुकाबला करती। परन्तु आधा भारत तो इतना अशक्त है कि उसमे हिंसात्मक विरोध करनेकी शक्ति नही है और शेष आधा ऐसा करना नही चाहता। अतएव मैंने असहयोगका उपाय सुझाया है। इसके अनुसार जो लोग अपनेको सरकारसे अलग रखनेके इच्छुक है वे सहयोगसे हाथ खीच सकते है और यदि इस असहयोगको हिंसासे दूर रखकर व्यवस्थित ढगसे चलाया जाये तो सरकारको अपने पैर पीछे हटाने और गलतियाँ सुधारनेको अवश्य ही बाध्य होना पड़ेगा। परन्तु मै जनताको जहाँतक अपने साथ लेकर चल सकता हूँ वहाँतक असहयोगकी नीतिका पालन करते हुए भी आपसे यही आशा रखूँगा कि आप फिर न्यायके पथपर चलने लगेगे। अतएव मै आपसे सादर निवेदन करता हूँ कि आप जनताके जाने-माने नेताओका एक सम्मेलन बुलाये और उनके परामर्शसे एक ऐसा रास्ता निकाले जो मुसलमानोको सन्तोष और दु:खी पजाबियोको राहत दे सके।[१]

आपका विश्वस्त सेवक,
मो० क० गांधी

[अग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया : फौरेन : पोलिटिकल : फाइल स० १०० : १९२१

१. पत्रपर वाइसरायके राजनैतिक सचिवने निम्नलिखित टिप्पणी दी थी: मैं समझता हूँ कि वाइसरायके निजी सचिव कैसरे-हिन्द पदक हमारे पास रखनेको भेज देंगे। कुछ और करनेकी आवश्यकता नही है। —जॉन वुड

७४. पत्र : दयालजीको

१ अगस्त, १९२०

भाईश्री दयालजी,

तुम्हारा पत्र मिला। तीन दिनकी हड़तालका विचार[1] मुझे तो जरा भी पसन्द नही। एक दिनकी हड़ताल मैं समझ सकता हूँ। यदि हम सचमुच अपनी भक्तिभावना-का परिचय देना चाहते हों तो मैं तो कुछ व्यावहारिक कार्य पसन्द करूँगा। इसलिए हमें उनके गुणोको ढूँढ निकालना चाहिए और उन्हे अपने जीवनमे उतारनेका प्रयत्न करना चाहिए। वे अत्यन्त सादे थे, उनकी स्मृतिको बनाये रखनेके लिए हम सादगीका व्रत ले। सब लोग लोकमान्यके नामसे किसी ऐसी वस्तुका त्याग करे जो उन्हे अत्यन्त प्रिय हो। उन्हें बहादुरी पसन्द थी सो हमे हर तरहके भयको छोड बहादुर बननेका प्रयत्न करना चाहिए। वे चाहते थे कि इस देशकी प्रजा शरीरसे बलवान् हो, हम सबको उनका स्मरण कर सबल बननेका यत्न करना चाहिए। उन्हे देश प्राणोके समान प्यारा था, हमें भी उनका स्मरण कर अपने प्रति प्रेमको छोड दिन-प्रतिदिन देशके प्रति शुद्ध प्रेमका विकास करना चाहिए। उन्हे विद्वत्ता प्रिय थी। मराठी और सस्कृत-पर बहुत अधिकार था। हमे भी अगर हम अपनी-अपनी मातृभाषाको कम चाहते हो और उसका हमारा ज्ञान कम हो तो उसे बढाना चाहिए। हम मातृभाषा और सस्कृत-का ज्ञान प्राप्त करे। इस तरहकी उनकी अन्य अनेक विभूतियोका उल्लेख किया जा सकता है। उनमे से जो-जो हमे अच्छी लगे उनका विकास कर उन्हें [लोकमान्यको] सदैव जीवित रखे। और अन्तमें जिनसे कुछ भी न बन पडे वे देशहितके लिए एक पैसेसे लेकर चाहे जितना धन दे।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ५

१. देखिए "लोकमान्यका स्वर्गवास", ८-८-१९२०।

७५. भाषण : खिलाफत दिवसपर बम्बईमें[1]

१ अगस्त, १९२०

श्री गांधीने निम्नलिखित प्रस्ताव रखा :—

यह बैठक लिखित रूपमे केन्द्रीय खिलाफत समितिके उस आन्दोलनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करती है जो उसने टर्कीके साथ सधिकी शर्तोमे मुसलमानोंकी भावनाओ और इस्लाम धर्मके अनुकूल सुधार करवाने के लिए शुरू किया है और जो इन शर्तोमे सशोधन होनेतक जारी रहेगा। यह बैठक खिलाफत समिति द्वारा चलाये जानेवाले इस असहयोगको ठीक भी मानती है। यह सभा साम्राज्य सरकारसे, उस साम्राज्यके हितमे जिसकी वह प्रतिनिधि मानी जाती है, सादर अनुरोध करती है कि वह उन सधि-शर्तोमे संशोधन करवाये जिनको सभीने अन्यायपूर्ण और स्पष्ट ही मन्त्रियोकी घोषणाके प्रतिकूल बताया है।

श्री गांधीने कहा कि समाचारपत्रोंके जरिये सरकार और अन्य लोग मुझसे कहते हैं कि असहयोगके इस प्रश्नपर भारत मेरे विचारोंसे सहमत नहीं है। वे यह भी कहते हैं कि असहयोग आन्दोलनका परिणाम देशका सर्वनाश होगा। ऐसी हालतमें जो लोग असहयोग आन्दोलनमें शरीक हुए हैं वे इन बातोंका खंडन केवल सभाओंमें शामिल होकर और प्रस्ताव पास करके नहीं बल्कि सर्वोत्तम ढंगसे तो असहयोगके कार्यक्रमपर अमल करके ही कर सकते हैं। इस सिलसिलेमें उन्हें सबसे पहले अपने-अपने खिताब, तमगे और अवैतनिक पद त्याग देने चाहिए। मैं जानना चाहूँगा कि इस सभामें शरीक होनेवाले लोगोंमें से कितनोंने ऐसा किया है। यहाँ जो लोग मौजूद हैं शायद उनमें से बहुत थोड़े लोगोंके पास ऐसे खिताब और अवैतनिक पद हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि स्वयं जिनके पास कोई खिताब या तमगा नहीं है उनका इस सम्बन्धमें कोई कर्त्तव्य नहीं बचता। उनका कर्त्तव्य है कि वे जिनको खिताब और अवैतनिक पद प्राप्त हैं, उनसे पूरे आदरके साथ उन पदों और खिताबोंको त्याग देनेके लिए कहें। सबसे पहले अवैतनिक न्यायाधीशों (ऑनरेरी मैजिस्ट्रेटों)से अपने पदोंको छोड़ देनेको कहना चाहिए। अपने मित्रोंसे कहना चाहिए कि वे सरकारी स्कूलोंसे अपने बच्चोंको उठा लें। अध्यापकोंसे भी वे अपने पद त्यागनेको कहें। इस सबका असर यह होगा कि सरकारको मालूम हो जायेगा कि लोग उसके शिक्षा-संस्थानोंके बिना काम चलानेका निश्चय कर चुके हैं। अभिभावक अपने बच्चोंको गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे स्कूलोंमें भेज सकते हैं। फिर जैसी शिक्षा वे इन सरकारी स्कूलोंमें पा रहे हैं उसे देखते हुए यदि बच्चे साल-छः महीने स्कूल न

१. केन्द्रीय खिलाफत समितिके तत्त्वावधानमें; सभाकी अध्यक्षता मियाँ मुहम्मद छोटानीने की थी।

जायें तो मुझे नहीं लगता कि उनकी कुछ हानि होगी। तीसरे मैं सभी वकीलोंसे वकालत छोड़ देनेको कहूँगा। अदालतोंमें वकालत जारी रखकर वकील जनताकी सेवा करते हैं, इस विचारको मैं कतई ठीक नहीं मानता। मेरा खयाल है कि यदि वकालतके बजाय वे जनताकी भलाईके लिए खिलाफतका अथवा अन्य कोई काम करें तो देशकी अधिक सेवा होगी। कुछ लोगोंने यह आशंका व्यक्त की है कि अदालत गये बिना अपने मामलोंका फैसला करा पाना शायद सम्भव नहीं होगा। मैं समझता हूँ कि यदि वे अपने 'पंच' चुन लें तो अपेक्षाकृत कम खर्च और कम समयमें अदालतोंका सहारा लिये बिना वे न्यायकी आशा कर सकते हैं। फिर मैं आपसे कहूँगा कि आप मैसोपोटामियामें कोई असैनिक पद स्वीकार न करें क्योंकि ऐसी सरकारके अधीन पद स्वीकार करना जो उस देशपर शासन करना चाहती है, जो इस्लामके तीर्थस्थल जजीरत-उल-अरबका भाग है, खिलाफतके अहितमें काम करना है।

आगे बोलते हुए श्री गांधीने कहा कि अपना उद्देश्य हासिल करनेके लिए आपको सबसे पहला काम यही करना है। दूसरा काम स्वदेशीका कड़ाईसे पालन करना है। जैसा कि मैंने मुजफ्फराबादमें[1] हालकी सभामें कहा था, यह काम आपके आन्दोलनकी सफलताके लिए दो जरूरी चीजोंमें से एक है। मैंने तब भी कहा था जिसे आज भी दुहराता हूँ कि आपको असहयोगके सिलसिलेमें दो शर्तोंका दृढ़तासे पालन अवश्य करना होगा — वे शर्तें हैं अहिंसा और स्वदेशी। आपकी ओरसे की गई किसी भी तरहकी हिंसा असहयोगको असफल कर देगी; मैं आप सबसे हिंसासे बचनेको कहूँगा। आपको क्रोध नहीं करना चाहिए। फिर यदि आप चाहते हैं कि आपका आन्दोलन सफल हो तो आपको त्याग करने लिए तैयार रहना चाहिए। अन्य बातोंके साथ आप अच्छे कपड़ोंका शौक छोड़कर भी त्याग कर सकते हैं। जब मैं स्वदेशीकी हिमायत कर रहा था, श्री हसरत मोहानीने मुझे बताया कि शायद उत्तर भारतके लोग बारीक सुन्दर सूतके कपड़ोंके बिना काम नहीं चला सकते। लोगोंकी जिस असमर्थताका उल्लेख हसरत मोहानीने किया है मैं तो उसे समझ ही नहीं सकता। पच्चीस वर्ष पहले भारतके लोग घरके कते मोटे सूतके कपड़ेसे अच्छी तरह काम चला लेते थे; परन्तु अब मैनचेस्टरके कपड़ेने उनकी रुचि और विचार बदल दिये हैं। आज हमारा वस्त्र-उद्योग जिस दशामें है उसमें सूती कपड़ेकी हमारी मिलें अच्छा महीन कपड़ा तैयार करनेमें समर्थ नहीं हैं। लोगोंको मोटे कपड़ेसे सन्तुष्ट होना चाहिए। फिलहाल उपाय यही है कि हाथ करघा उद्योगका पुनरुत्थान किया जाये। यदि प्रत्येक हिन्दुस्तानीके घरमें चरखा हो जाये तो हम स्थानीय बुनकरोंके लिए पर्याप्त सूत कात सकते हैं। वे उसे बुनकर कपड़ा तैयार कर देंगे और जब वे देखेंगे कि उनके देशभाई विदेशी कपड़े छोड़ने और अच्छे बारीक कपड़ेके लिए खासे दाम देनेको भी तैयार हैं तो वे वैसा

१. देखिए "भाषण: बम्बईमें", २९-७-१९२०।

कपड़ा भी तैयार करने लगेंगे। यदि आप पूरे जोश और उत्साहसे स्वदेशी व्रतका पालन करते हैं तो उससे भारतका करोड़ों रुपया बचने लगेगा। निःसन्देह स्वदेशी व्रतके पालनमें कुछ त्याग करना पड़ता है परन्तु आपको यह त्याग करनेके लिए तैयार होना चाहिए। इससे संसारको मालूम हो जायेगा कि जबतक खिलाफतका सवाल सन्तोषजनक ढंगसे हल नहीं हो जाता तबतक आप सभी असुविधाएँ झेलने और कष्ट सहनेको तैयार हैं।

अन्तमें श्री गांधीने कहा कि जैसा मैंने बताया है असहयोग आन्दोलनकी सफलताके लिए जरूरी चीजें हैं — अहिंसा, खिताबों तथा अवैतनिक पदोंका त्याग और स्वदेशीका कड़ाईसे पालन। यदि आप यह करें और ईश्वरसे प्रार्थना करें तो चूँकि आपका उद्देश्य न्यायपूर्ण है वह अवश्य सफल होगा।

डा० किचलू, श्री शौकत अली और अन्य लोगोंने प्रस्तावका समर्थन किया और प्रस्ताव पास हो गया।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २-८-१९२०

७६. तिलकको श्रद्धांजलि

[२ अगस्त, १९२०][1]

राष्ट्रप्रेम श्री तिलकके जीवनका आधार था और उसके रूपमें वे हमारे लिए एक ऐसी विरासत छोड गये हैं कि हम ज्यों-ज्यो उसका उपयोग करेंगे त्यों-त्यो वह बढेगी ही। कलके जबरदस्त जुलूससे साफ पता चलता है कि उस महान् देशभक्तका जनतापर कितना प्रभाव था।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ३-८-१९२०

७७. भाषण: बम्बईके स्वागत-समारोहमें[2]

२ अगस्त, १९२०

मौलाना मुहम्मद अली और भारतीय खिलाफत प्रतिनिधि मण्डलके अन्य सदस्य सोमवारको बम्बई पहुँचे। उनके स्वागतमें मस्तानशाह टैंकमें एक सभाका आयोजन किया गया। अस्वस्थ होनेके कारण श्री छोटानी सभामें नहीं आ सके। उनकी अनुपस्थितिमें महात्मा गांधीसे सभाकी अध्यक्षता करनेको कहा गया।

१. "कलके जबरदस्त जुलूस" के संदर्भसे लगता है कि यह २ अगस्तको लिखा गया था।
२. खिलाफत शिष्टमण्डलके सम्मानार्थ आयोजित।

कुरानकी कुछ आयतें पढ़नेके बाद सभाकी कार्रवाई शुरू हुई। उसके बाद अध्यक्षने उपस्थित जनसमूहसे कहा, "मुझे इस बातका खेद है कि श्री छोटानी सभामें नहीं आ सके। मैं आशा करता हूँ कि वे जल्दी ही अच्छे हो जायेंगे और पहलेकी तरह मन लगाकर खिलाफत समितिका कार्य करने लगेंगे। इसके बाद उन्होंने कहा कि मेरे लिए और हम सबके लिए यह प्रसन्नताकी बात है कि भाई मुहम्मद अली और उनके साथियोंने पूरे परिश्रमसे खिलाफत सम्बन्धी काम किया और उसके बाद सही-सलामत अपने वतन लौट आये।

मौलाना मुहम्मद अलीके लिए मेरे दिलमें कितना स्नेह है उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। अली बन्धुओंसे सर्वप्रथम मेरी भेंट १९१५में दिल्लीमें हुई, बादमें अलीगढ़में भी मेरी उनसे मुलाकात हुई। मैं उनसे काफी प्रभावित हुआ। उस समय मुझे ऐसा लगा कि श्री गोखलेको हिन्दुओंमें जो सम्मान प्राप्त है वही एक दिन दोनों भाइयोंको मुसलमानोंमें प्राप्त होगा। मुझे इस बातकी खुशी है कि मेरा यह विचार सच साबित हुआ है।

इसके बाद महात्मा गांधीने मौलाना मुहम्मद अलीसे अनुरोध किया कि उन्होंने खिलाफतके बारेमें यूरोपमें जो काम किया, जनताको उसके बारेमें बतायें।

[अंग्रेजीसे]

ऑल अबाउट द खिलाफत

७८. लोकमान्य[1]

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक नहीं रहे। उनकी मृत्यु हो गई है, यह विश्वास करना कठिन है। वे जनताके अभिन्न अंग थे। जनतापर जितना प्रभाव उनका था उतना हमारे युगके और किसी व्यक्तिका नहीं था। उनके हजारों देशभाई उन्हें जिस श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे वह असाधारण थी। निःसन्देह वे जनताके आराध्य थे। हजारों लोगोंके लिए उनके शब्द ही कानून थे। वास्तवमें हमारे बीचसे एक महामानव उठ गया है। सिंहकी आवाज मौन हो गई है।

अपने देशभाइयोंपर उनके इस जबरदस्त प्रभावका कारण क्या था? मेरी रायमें इसका उत्तर बहुत सीधा-सादा है। उनकी देशभक्तिकी भावना अत्यन्त प्रबल थी। स्वदेश-प्रेमके अलावा वे और कोई धर्म नहीं जानते थे। वे एक जन्मजात लोकतंत्रवादी थे। बहुमतके शासनमें उनका विश्वास कुछ इतना उग्र था कि मुझे तो सचमुच डर लगता था। लेकिन यही उनके प्रभावका कारण था। उनकी इच्छाशक्तिमें फौलादकी दृढ़ता थी और इसका उपयोग उन्होंने देशके लिए किया। उनका जीवन एक खुली पुस्तकके समान था — जिसे जो चाहे पढ़ ले। उनकी रुचियाँ बहुत सादी थीं। उनका व्यक्तिगत जीवन सर्वथा निष्कलंक व उज्ज्वल था। उन्होंने अपनी अद्भुत शक्तियाँ

१. यह लेख यंग इंडियाके प्रथम पृष्ठपर मोटी काली रेखाओंके बीच छापा गया था।

देशकी सेवामे अर्पित कर दी। जैसी लगन और धुनके साथ स्वराज्यके सिद्धान्तका प्रचार लोकमान्यने किया वह अन्यतम थी। इसीलिए उनके देशवासी आँख मूँदकर उनका विश्वास करते थे। उनके साहसने कभी उनका साथ नही छोडा। उनकी आशावादिता अदम्य थी। उन्होने अपने जीवनमें ही स्वराज्यको पूर्ण रूपसे प्रतिष्ठित देखनेकी आशा की थी। और अगर वे असफल रहे तो इसमे उनका कोई दोष नही था। निश्चय ही वे स्वराज्यको कई वर्ष निकट ले आये है। अब यह हमारा काम है कि हम कमसे-कम समयमे उनके उस स्वप्नको एक सत्यमे परिवर्तित कर देनेके लिए दूने जोरसे प्रयत्न करे।

लोकमान्य तिलक नौकरशाहीके प्रबल शत्रु थे, लेकिन इसका मतलब यह नही कि उन्हे अंग्रेजो और अग्रेजी शासनसे घृणा थी। मै अग्रेजोको आगाह कर देता हूँ कि वे उन्हें कभी अपना शत्रु माननेकी भूल न करे।

मुझे पिछली कलकत्ता काग्रेसके अवसरपर उनसे हिन्दीके राष्ट्रभाषा होनेके सम्बन्धमे एक बहुत ही विद्वत्तापूर्ण वार्त्ता सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, और यह वार्त्ता उन्होने पहलेसे कोई तैयारी किये बिना प्रस्तुत की थी। वे उसी समय काग्रेस पडालसे लौटे ही थे। हिन्दीपर उनकी गम्भीर वार्त्ता सुनना सचमुच एक बहुत ही आनन्ददायक अनुभव था। अपनी वार्त्तामे उन्होंने देशी भाषाओके विकासकी ओर ध्यान देनेके लिए अग्रेजोकी बडी सराहना की। यद्यपि अंग्रेज जूरियोके सम्बन्धमे उनका अनुभव बहुत बुरा रहा, फिर भी उनकी इंग्लैंड-यात्राने उन्हें ब्रिटिश लोकतत्रका पक्का हामी बना दिया था, और उन्होने बहुत ही गम्भीरताके साथ यह विचित्र-सा सुझाव-तक दे दिया कि भारतको चाहिए कि वह देशको सिनेमाके सहारे पजाबके अन्यायसे परिचित कराये। इस घटनाका वर्णन मै इसलिए नही कर रहा हूँ कि इस सम्बन्धमे मै उनसे सहमत हूँ (क्योकि सच यह है कि मै नही हूँ); बल्कि मेरा उद्देश्य यह दिखाना है कि अंग्रेजोके प्रति उनमे घृणाका कोई भाव नही था। लेकिन उनके लिए यह सहन करना असम्भव था कि साम्राज्यके भीतर भारतका दर्जा अन्य देशोसे कम हो।[1] वे [साम्राज्यके सभी देशोमे] तत्काल समानता चाहते थे। उनका विश्वास था कि यह समानता उनके देशका जन्मसिद्ध अधिकार है। और भारतकी स्वतत्रताके लिए लड़ते-हुए उन्होंने सरकारको बख्शा नही। इस लडाईमे उन्होने न तो किसीके साथ कोई रियायत की और न किसीसे रियायतकी माँग की। मुझे आशा है कि भारतके इस पूज्य पुरुषकी योग्यताको अंग्रेज लोग भी स्वीकार करेगे।

जहाँतक हम भारतवासियोंकी बात है, भावी पीढियाँ उन्हे आधुनिक भारतके निर्माताके रूपमे याद करेगी। वे उन्हें एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें स्मरण करेगी जो उनके लिए जिया और उनके लिए मरा। ऐसे व्यक्तिको मृत कहना ईश-निन्दाके समान है। उनके जीवनका जो स्थायी तत्त्व था वह तो सदा-सदाके लिए हमारे साथ रहेगा। आइए, अब हम भारतके इस एकमात्र लोकमान्यकी बहादुरी, सादगी तथा अद्भुत

१. यहाँ मूलमें छपाईकी कुछ भूल रह गई जान पड़ती है। उसे सुधारकर अनुवाद किया गया है।

कर्मठता और देशप्रेमके गुणोंको अपने जीवनमें उतारे और इस प्रकार उनका एक अमर स्मारक खड़ा करे। ईश्वर उनकी आत्माको शान्ति दे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-८-१९२०

७९. कांग्रेस और असहयोग

माननीय पंडित मालवीयजीके प्रति मेरे मनमें अत्यधिक आदरभाव है और मैंने अक्सर उनके लिए धर्मात्मा शब्दका प्रयोग किया है। इन्हीं पंडित मालवीयजीने मुझसे सार्वजनिक रूपसे और निजी तौरपर भी यह अनुरोध किया है कि जबतक कांग्रेस असहयोगके प्रश्नपर अपना मत व्यक्त न कर दे तबतक उसे स्थगित रखा जाये। 'मराठा' ने भी ऐसा ही किया है। इन अनुरोधोंके कारण मुझे एक बार रुककर इस सम्बन्धमें विचार करना पड़ गया, लेकिन मुझे दु:खके साथ कहना पड़ता है कि काफी सोचने-विचारने पर भी मैं उनके अनुरोधोंको स्वीकार नहीं कर पाया हूँ। पंडितजीको प्रसन्न करनेके लिए मैं बहुत-कुछ कर सकता हूँ, बहुत-कुछ दे सकता हूँ। मैं अपने सभी कार्योंके लिए उनका समर्थन और आशीर्वाद प्राप्त करना चाहता हूँ। लेकिन एक उच्चतर कर्त्तव्यका मुझसे तकाजा है कि असहयोग समितिने जो कार्यक्रम निश्चित कर दिया है, उससे मैं पीछे न हटूँ। जीवनमें कुछ ऐसे क्षण आते हैं जब आपके लिए कोई ऐसा काम करना भी जरूरी हो जाता है जिसमें आपके अच्छेसे-अच्छे मित्र भी आपका साथ न दे सकें। जब कभी कर्त्तव्यको लेकर आपके मनमें द्वन्द्व पैदा हो जाये उस समय आपको अपने अन्तरकी शान्त और क्षीण आवाजपर ही निर्णय छोड़ देना चाहिए।

अभी मुझसे असहयोग स्थगित रखनेका अनुरोध करनेका कारण यह है कि शीघ्र ही कांग्रेसकी बैठक होगी और उसमें वह असहयोगके पूरे सवालपर विचार करके उसके सम्बन्धमें अपना निर्णय देगी। इसलिए (मालवीयजीका कहना है) कि कांग्रेसके निर्णयकी प्रतीक्षा करना अच्छा होगा। मेरी नम्र सम्मतिमें, जिस मामलेमें मनमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है, उस सिलसिलेमें कोई काम करने से पूर्व कांग्रेससे परामर्श करना किसी कांग्रेसीका कोई कर्त्तव्य नहीं है। अन्यथा करनेका अर्थ होगा गत्यवरोध।

कांग्रेस तो आखिरकार राष्ट्रके विचारोंको वाणी देनेवाली संस्था है। और जब किसीके पास ऐसी कोई सुविचारित नीति या कार्यक्रम हो जिसे वह चाहे कि सब लोग स्वीकार करें या अपनायें, लेकिन साथ ही वह उसके पक्षमें जनमत भी तैयार करना चाहता हो, तो स्वभावत: वह कांग्रेससे उसपर विचार करने और उसके सम्बन्धमें अपना मत स्थिर करनेको कहेगा। लेकिन जब किसीका किसी नीति विशेष या कार्य विशेषमें अडिग विश्वास हो तब उसपर कांग्रेसके मतकी प्रतीक्षा करना उसकी

भूल होगी। इसके विपरीत, ऐसे व्यक्तिको तो उस नीति या कार्यक्रमके अनुसार काम करके उसकी कार्य-साधकता सिद्ध कर देनी चाहिए ताकि सम्पूर्ण राष्ट्र उसे स्वीकार कर ले।

काग्रेसके प्रति मेरी वफादारीका तकाजा है कि अगर उसकी कोई नीति मेरी अन्तरात्माके विरुद्ध न पड़ती हो तो मैं उस नीतिका पालन करूँ। अगर मैं अल्पमतमे होऊँ तो यह हो सकता है कि मै अपनी नीतिका पालन करूँ, लेकिन काग्रेसके नाम-पर न करूँ। इसलिए किसी प्रश्न-विशेषपर काग्रेसके निर्णयका मतलब यह नही है कि कोई काग्रेसी उस निर्णयके विरुद्ध काम नही कर सकता। उसका मतलब तो इतना ही है कि अगर वह उसके विरुद्ध काम करता है तो अपनी जिम्मेदारीपर और यह जानते हुए करता है कि काग्रेस उसके साथ नही है।

हर काग्रेसीको, हर सार्वजनिक संस्थाको यह अधिकार है — और कभी-कभी तो यह उसका कर्त्तव्य भी हो जाता है — कि वह अपना मत व्यक्त करे, बल्कि उसके अनुसार काम भी करे, और कांग्रेसके लिए उसी निर्णयपर पहुँचनेका मार्ग प्रशस्त करे। दरअसल राष्ट्रकी सेवा करनेका यही सबसे अच्छा तरीका है। सुविचारित और सुचिन्तित नीतियोंका सूत्रपात करके हम काग्रेस-जैसी विचार-विमर्श करनेवाली एक बडी संस्थाके लिए आधार-सामग्री प्रस्तुत करते है ताकि उसके सहारे वह सही मत स्थिर कर सके। काग्रेस किसी भी प्रश्नपर राष्ट्रके मतको तबतक कोई निश्चित और सही अभिव्यक्ति नही दे सकती जबतक कि हममें से कमसे-कम कुछ लोगोने इस सम्बन्धमे क्या करना है, इस बातपर पहलेसे ही कुछ दृढ विचार न बना रखे हो। अगर सभी लोग अपना मत देना बन्द कर देगे तो आखिरकार काग्रेसको ही अनिवार्यत. अपना मत देना बन्द करना पडेगा।

किसी भी संस्थामे सदा तीन श्रेणियोंके लोग आते है. एक तो वे जिनके विचार अमुक नीतिके पक्षमे है, दूसरे वे जिनकी राय उस नीतिपर सुनिश्चित किन्तु विपक्षमें होती है और तीसरे वे जिनके इस सम्बन्धमे कोई निश्चित विचार ही नही है। काग्रेस इसी तीसरी और बड़ी श्रेणीके लोगोके एवजमें निर्णय लेती है। असहयोगके सम्बन्धमे मै एक निश्चित विचार रखता हूँ। मेरा खयाल है कि अगर हम सुधारोका कुछ उपयोग करना चाहते हों तो हमें आजके दुर्गन्धपूर्ण, अस्वच्छ और पतनकारी वातावरणके बदले शुद्ध, स्वच्छ और ऊपर उठानेवाला वातावरण उत्पन्न करना होगा। मेरे विचारसे हमारा पहला कर्त्तव्य खिलाफत और पजाबके सम्बन्धमें साम्राज्य सरकारसे न्याय प्राप्त करना है। इन दोनों ही मामलोमें झूठ और उद्धतताके सहारे अन्यायका पोषण किया जा रहा है। इसलिए मै समझता हूँ कि इस राष्ट्रका पहला कर्तव्य सरकारकी गन्दगी दूर करना है, उसके बाद ही दोनोके बीच पारस्परिक सह-योगकी बात उठ सकती है। विरोध-अवरोधकी नीति भी तो तभी सम्भव है, जब एक-दूसरेके प्रति सम्मान-भाव और विश्वास हो। इस समय तो शासकवर्गको हमारा या हमारी भावनाओंका कोई खयाल नही है, और न हमें ही उसमें कोई विश्वास है। इन परिस्थितियोंमे सहयोग एक अपराध है। ऐसे प्रबल विचार रखते हुए मै काग्रेस

और देशकी सेवा तभी कर सकता हूँ जब मैं उन विचारोंपर आचरण करके कांग्रेसके सामने ऐसी सामग्री प्रस्तुत करूँ जिसके आधारपर वह अपना मत निश्चित करे।

मेरे लिए तो असहयोगको स्थगित करनेका मतलब मुसलमान भाइयोंके सामने बेईमान साबित होना है। उनका अपना एक धार्मिक कर्त्तव्य है, जिसे उन्हें पूरा करना है। साम्राज्य सरकारके मन्त्रियोंने न्यायके नियमोंकी अवमानना करके और अपने वचनोंको भंग करके उनकी धार्मिक भावनाको गहरी चोट पहुँचाई है। मुसलमानोंको अभी और इसी समय इसके प्रतिकारके लिए कदम उठाना है। वे कांग्रेसके निर्णयकी प्रतीक्षा नहीं कर सकते। वे तो कांग्रेससे सिर्फ यही अपेक्षा रख सकते हैं कि वह उनके कार्यों-की संपुष्टि करेगी और उनके दुःखोंको अपना मानकर इस गाढ़े वक्तमें उनके कन्धेसे-कन्धा मिलाकर चलेगी। कांग्रेस द्वारा इस सम्बन्धमें अपनी कोई नीति निर्धारित करने तक वे अपने कदम रोक नहीं सकते, और न कांग्रेस द्वारा कोई विपरीत निर्णय करने-की स्थितिमें वे उस समयतक उस रास्तेसे पीछे ही लौट सकते हैं, जबतक कि किसी और तरहसे यह सिद्ध न हो जाये कि उन्होंने जो कदम उठाया वह गलत था। खिलाफतका सवाल उनकी अन्तरात्माका सवाल है। और जहाँ अन्तरात्माका सवाल हो, वहाँ बहुमतका नियम नहीं चल सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४–८–१९२०

८०. राजद्रोही कौन?

श्री मॉण्टेग्युने राजद्रोहकी एक नई परिभाषा खोज निकाली है। युवराजकी भारत-यात्राके समय उनके स्वागतका बहिष्कार करनेके मेरे सुझावको वे राजद्रोह मानते हैं और कुछ अखबारोंने उनकी बातसे प्रेरणा लेकर उन सभी लोगोंको "अशिष्ट" कह डाला है जिन्होंने वैसा सुझाव दिया है। इन "अशिष्ट" लोगोंपर उन्होंने स्वयं "युव-राजका बहिष्कार करने"का सुझाव देने तकका आरोप लगाया है। मैं युवराजके बहिष्कार और उनके सरकारी स्वागत-प्रबन्धोंके बहिष्कारमें एक बुनियादी और गहरा अन्तर करता हूँ। अगर महाविभव युवराज बिना किसी सरकारी संरक्षण और वर्तमान सरकारके सुरक्षा-आयोजनके आयें या आ सकते हों तो, जहाँतक मेरी बात है, मैं उनका हार्दिक स्वागत करूँगा। युवराज एक संवैधानिक राजाके उत्तराधिकारी हैं, इसलिए उनकी गति-विधियोंका नियमन मन्त्रिगण करते हैं और उन्हें मन्त्रियोंके समादेशोंपर ही चलना होता है — भले ही ये समादेश अत्यन्त विनम्र कूटनीतिक भाषामें लपेटकर ही दिये गये हों। इसलिए बहिष्कारके समर्थकोंने जब बहिष्कारका सुझाव दिया तो दरअसल उन्होंने उद्धत नौकरशाही और महामहिमके बेईमान मन्त्रियोंके ही बहिष्कारका सुझाव दिया।

आप दोनों हाथोंमें लड्डू चाहें, यह तो नहीं हो सकता। यह सच है कि संवैधानिक राजतन्त्रमें राज-परिवार राजनीतिसे ऊपर होता है, लेकिन यह नहीं हो सकता कि

आप युवराजको राजनीतिक लाभ उठानेके उद्देश्यसे राजनीतिक यात्रापर भी भेजे और जो लोग आपके हाथोकी कठपुतली बननेको तैयार नही है वे अगर आपको मात देनेके खयालसे शाही यात्राके बहिष्कारकी घोषणा करे तो आप शिकायत करे कि उन्हे सवैधानिक दस्तूरोका कोई ज्ञान नही है, क्योकि युवराजकी इस यात्राका उद्देश्य आनन्द-लाभ करना नही है। श्री लॉयड जॉर्जके शब्दोमे महाविभव युवराज "ब्रिटिश राष्ट्रके दूत"के रूपमें यहाँ आनेवाले है। दूसरे शब्दोमे, वे स्वयं श्री जॉर्जके दूतके रूपमे उन्हे योग्यताका प्रमाणपत्र देने और सम्भवत मन्त्रियोंको एक नया जीवन प्रदान करनेके लिए आ रहे है। इसके पीछे उद्देश्य उस सरकारको सुदृढ़ और सशक्त बनानेका है जो आज भारतपर जुल्म बरपा कर रही है। लेकिन इस स्थितिके बावजूद श्री मॉण्टेग्युने पहले ही ऐसा मान लिया है कि इस बार युवराजका ऐसा शानदार स्वागत किया जायेगा जैसा राज-परिवारके किसी सदस्यका पहले कभी नही किया गया था, जिसका मतलब यह हुआ कि पंजाबके अधिकारियोकी बर्बरता और खिलाफत-सम्बन्धी सरकारी वादोंको साफ-साफ तोड़ देनेकी वातका लोगोपर कोई वास्तविक और गहरा असर नही हुआ है और न वे इन कारणोसे विशेष विक्षुब्ध ही है। भारत सरकार जानती थी कि इस समय इस देशका कलेजा लहूलुहान है, और उसे मन्त्रियोसे कह देना था कि युवराजको भेजनेके लिए यह अवसर उपयुक्त नही है। मै साहसपूर्वक कहना चाहूँगा कि युवराजको यहाँ बुलाकर एक ऐसी सरकारकी प्रतिष्ठा और सम्मान बढानेकी कोशिश की जा रही है जो दरअसल तिरस्कारपूर्वक बरखास्त कर दी जाने लायक है, और यह काम जलेपर नमक छिड़कनेके समान है। मै दावा करता हूँ कि मेरा यह कहना मेरी राजनिष्ठा सिद्ध करता है कि भारतकी मन स्थिति अभी ऐसी नही है, अभी वह इतना शोकसंतप्त है कि उसके लिए महाविभव युवराजके स्वागतमे आयोजित किसी भी समारोहमे भाग लेना कठिन है। और मन्त्रिगण और भारत सरकार इस गूढ़ राजनीतिक खेलमे युवराजको शतरजका मोहरा बनाकर राजद्रोहका ही परिचय दे रहे है। अगर वे अपने दुराग्रहपर डटे ही रहते है तो युवराजकी इस यात्रासे कोई सम्बन्ध न रखना भारतका स्पष्ट कर्त्तव्य है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-८-१९२०

८१. असहयोगके खिलाफ जिहाद

मैंने सर नारायण चन्दावरकर तथा अन्य लोगो द्वारा जारी किया गया वह घोषणा-पत्र[1] ध्यानसे पढ लिया है, जिसमें लोगोको असहयोगम शामिल होनेसे मना किया गया है। मैंने तो आशा की थी कि उसमे असहयोगके खिलाफ कुछ ठोस तर्क प्रस्तुत किये गये होंगे, लेकिन यह देखकर बड़ा दुख हुआ कि उसमें (निस्सन्देह, अनजाने ही) सिर्फ महान् धर्मो और इतिहासके तथ्योंको विकृत रूपमें प्रस्तुत किया गया है। घोषणापत्रमें कहा गया है:

> हमारी मातृभूमिके समस्त धार्मिक सिद्धान्तों और परम्पराओके अनुसार ही नहीं बल्कि मानव जातिका त्राण और उत्थान करनेवाले सभी धर्मोके अनुसार असहयोग एक निंद्य और अवांछनीय चीज है।

मै कहूँगा कि 'भगवद्गीता' अन्धकार और प्रकाशकी शक्तियोके बीच असहयोगके सिद्धान्तका ही प्रतिपादन है। अगर 'गीता'की शाब्दिक व्याख्या की जाये तो इसमें न्याय-पक्षका प्रतिनिधित्व करनेवाले अर्जुनको अन्याय-पक्षके पोषक कौरवोसे सशस्त्र युद्ध करनेका उपदेश दिया गया है। तुलसीदासने सन्तोको असन्तोसे दूर रहनेकी सलाह दी है। 'जेन्दावेस्ता' मे अहुरमज्द[2] और अहरमन[3] के बीच सतत सघर्षका चित्रण किया गया है। इन दोनोमें कभी कोई समझौता हो ही नही सकता। 'बाइबिल' के विषयमें यह कहना कि उसमें असहयोगका निषेध किया गया है, ईसामसीहके प्रति अपने अज्ञानका परिचय देना है। वास्तवमे वे अनाक्रामक प्रतिरोधियोके सरताज थे, जिन्होंने सदूसी[4] और फैरिसी[5] लोगोकी ताकतको खुली चुनौती दी और सत्यके लिए पुत्रको पितासे अलग करनेमे तनिक भी हिचकिचाहट नही दिखाई। और इस्लामके रसूलने क्या किया? जबतक उनकी जानपर खतरा नही आ पड़ा तबतक वे मक्कामें बहुत ही सक्रिय ढगसे असहयोग करते रहे; और जब उन्होंने देखा कि सम्भव है उन्हें और उनके अनुयायियोको व्यर्थ ही अपने प्राण देने पड़ें तो वे भागकर मदीना चले गये और अपने विरोधियोसे लोहा ले सकनेकी स्थितिमे आते ही फिर वापस लौट आये। सभी धर्मोंमे अन्यायी व्यक्तियों और अन्यायी राजाओके विरुद्ध असहयोग करनेके कर्त्तव्यका उतनी ही दृढतासे विधान किया गया है जितनी दृढतासे न्यायप्रिय

१. इसपर हस्ताक्षर करनेवालोंमें अन्य लोगोंके साथ-साथ सर नारायण चन्दावरकर, गोकुलदास के० पारेख, फीरोज सेठना, सी० वी० मेहता, जमनादास द्वारकादास, के० नटराजन्, एच० पी० मोदी, उत्तमलाल के० त्रिवेदी, बी० सी० दलवी, मावजी गोविन्दजी, एन० एम० जोशी तथा का० द्वारकादास भी शामिल थे। यह ३०-७-१९२० के बॉम्बे क्रॉनिकलमें प्रकाशित किया गया था।

२. प्रकाश और नेकीकी शक्ति।

३. अन्धकार और बुराईकी शक्ति।

४ व ५. यहूदी जातियाँ।

व्यक्तियों और राजाओंके साथ सहयोग करनेके कर्त्तव्यका। सच तो यह है कि दुनियाके अधिकांश धर्मग्रन्थोंने तो असहयोगसे भी आगे जाकर ऐसा विधान किया है कि किसी अन्यायको भीरुताके साथ स्वीकार कर लेनेसे अच्छा तो हिंसाके सहारे उसका प्रतिकार करना है। घोषणापत्रमें हिन्दुओंकी धार्मिक परम्पराओंकी दुहाई दी गई है। लेकिन ये परम्पराएँ तो बहुत स्पष्ट रूपसे असहयोगके कर्त्तव्यका प्रतिपादन करती हैं। प्रह्लाद अपने पितासे अलग हो गया, मीराबाई अपने पतिसे और विभीषण अपने क्रूर भाईसे।

सांसारिक पहलूकी चर्चा करते हुए घोषणापत्रमें कहा गया है कि "राष्ट्रोंके इतिहासमें ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता जिससे प्रकट हो कि जब कभी इसका (अर्थात् असहयोगका) सहारा लिया गया हो और यह सफल हुआ हो या इससे कुछ लाभ हुआ हो।" असहयोगकी शानदार सफलताका एक बिलकुल ताजा उदाहरण हमारे सामने मौजूद है। जनरल बोथाने लॉर्ड मिलनरकी सुधार-योजनाके अनुसार गठित नई कौंसिलोंका बहिष्कार किया और इस प्रकार उन्होने देशके लिए एक सर्वांगपूर्ण और सुन्दर संविधान प्राप्त किया। रूसके दुखोबर[1] लोगोंने असहयोग किया, और यद्यपि उनकी संख्या बहुत छोटी थी फिर भी सम्पूर्ण सभ्य संसार उनके दु:खोसे इतना अभिभूत हो गया कि कैनेडा उन्हें रहनेको स्थान देनेके लिए तैयार हो गया और अब वे वहाँ एक समृद्धिशाली समुदायके रूपमें रह रहे हैं। स्वयं भारतमे ऐसे दर्जनो उदाहरण मिलते हैं, जब छोटे-छोटे राज्योकी प्रजाने बहुत दु:खी हो जानेपर अपने सरदारोसे सारे सम्बन्ध तोड़ लिये और इस तरह उन्हे अपनी बात स्वीकार करनेपर मजबूर किया। मुझे तो इतिहासमे ऐसा एक भी उदाहरण नही मिलता जब कोई सुनियोजित असहयोग विफल हुआ हो।

यहाँतक तो मैंने अहिंसक असहयोगके ऐतिहासिक दृष्टान्त दिये है। मैं नही समझता कि अपने सुविज्ञ पाठकोको हिंसक असहयोगके भी ऐतिहासिक दृष्टान्त बताना मेरे लिए जरूरी है, क्योंकि इसके तो बहुत सारे दृष्टान्त उन्हे मालूम ही होंगे। लेकिन मैं इतना अवश्य कहूँगा कि हिंसक असहयोग जितने अवसरोंपर सफल हुआ है उतने ही अवसरोंपर विफल भी हुआ है। और चूँकि मैं इस तथ्यसे अवगत हूँ इसलिए मैंने देशके सामने एक अहिंसक असहयोगकी योजना प्रस्तुत की है, जिसे अगर सन्तोषजनक ढंगसे कार्यान्वित किया गया तो सफलता निश्चित है और अगर उसका कोई परिणाम न भी निकले तो भी उससे कोई हानि होनेकी सम्भावना निश्चय ही नही है। कारण, मान लीजिए कि एक भी व्यक्ति अपने पदसे त्यागपत्र देकर असहयोग करता है तो इससे वह कुछ प्राप्त ही करता है, खोता नहीं। यह इसका धार्मिक या नैतिक पहलू है। यह कोई राजनीतिक परिणाम लाये, इसके लिए बहुत सारे लोगोका विभिन्न प्रकारसे समर्थन मिलना आवश्यक है। इसलिए मुझे असहयोगसे किसी भयकर परिणामकी आशंका नही है। अलावा इसके हो सकता है, कि लोग उत्तेजनाके वशीभूत होकर या किसी और कारणसे कही कुछ हिंसात्मक कार्रवाई कर बैठें। लेकिन मैं तो एक

१. रूसका एक धार्मिक सम्प्रदाय, जो किसी भी चर्चका बन्धन स्वीकार न करके स्वतन्त्र धर्म-साधनामें विश्वास रखता था। १८९८ में इस सम्प्रदायके लोग रूस छोड़कर कैनेडामें जा बसे।

सम्पूर्ण जातिके पुंसत्वहीन बना दिये जानेके खतरेके मुकाबले हिंसाका खतरा उठाना हजार गुना ज्यादा पसन्द करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-८-१९२०

८२. गोरक्षा

हिन्दू धर्ममें गोरक्षाका बहुत माहात्म्य है। यह धर्म-विहित तो है ही, साथ ही एक धर्मेतर सिद्धान्तके रूपमे भी यह मनुष्यको ऊपर उठानेवाली चीज है। लेकिन आज हम हिन्दुओमें गाय और गोवशके लिए कोई खयाल ही नही रह गया है। भारतमें मवेशियोके खाने-पीने और रहनेकी जैसी बुरी दशा है वैसी ससारके अन्य किसी देशमे नही है। इग्लैंडके लोग गोमास खाते हैं, लेकिन वहाँ भी ऐसी गाये नही मिलेगी जिनके हाड चमडीके भीतरसे झाँकते दिखाई दें। हमारे अधिकाश पिंजरापोलोका प्रबन्ध बहुत बुरा है और वहाँ व्यवस्था नामकी कोई चीज नही दिखाई पडती। वे पशु-जगत्‌के लिए सच्चे वरदानके बदले ऐसे गोदाम बन गये हैं जिनमें सिर्फ मरणासन्न पशुओको ही लाया-रखा जाता है। भारतके अंग्रेजोसे, जिनके लिए यहाँ प्रतिदिन सैकड़ों गायें मारी जाती हैं, हम कुछ नही कहते। स्वय हमारे राजा लोग ही अपने अंग्रेज मेहमानोको गोमास परोसनेमें तनिक भी नही हिचकिचाते। इसलिए हमारी गोरक्षा गौओको मुसलमानोके हाथोसे बचानेतक सीमित है। गोरक्षाके इस उलटे तरीकेके कारण हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच न जाने कितने फसाद हुए हैं और कितना द्वेष उत्पन्न हुआ है। इसके कारण शायद उससे अधिक गोहत्या हुई है जितनी कि अगर हमने सही ढगसे प्रचार किया होता तब हुई होती। हमें इसका प्रारम्भ तो स्वय अपनेसे ही करना चाहिए था। और आज भी अपनेसे ही करना चाहिए। इसी तरह हम सारे देशमे ऐसा उपयोगी प्रचार कर सकते हैं जिससे लोगोके मनमें पशुओके प्रति दयापूर्ण व्यवहार करनेकी भावना जगे और वे पशु-शालाओ, डेरियो और पिंजरापोलोंकी व्यवस्था वैज्ञानिक ढंगसे करना सीखें। हमें अंग्रेजोंके बीच इस ढगका प्रचार करना चाहिए जिससे वे स्वेच्छासे गोमांस खाना छोड दें, या अगर वे न छोड़ें तो विदेशसे आयात किये गये गोमाससे ही सन्तोष करे। हमें भारतसे पशुओके निर्यातपर रोक लगवानेकी व्यवस्था करनी चाहिए और ऐसे उपायोसे काम लेना चाहिए जिससे हम लोगोकी जरूरत पूरी करनेके लिए अधिक मात्रामें और शुद्ध दूध प्राप्त कर सके। मुझे इसमें रचमात्र भी शका नही है कि अगर हम इन समझदारीपूर्ण तरीकोसे काम करे तो मुसलमान लोग इसमें स्वेच्छासे हमारी सहायता करने लगेंगे, और जब हम उनके त्योहारोके अवसरपर उन्हे गोवध करनेसे रोकनेके लिए उनके साथ जोर-जबरदस्ती करना बन्द कर देंगे तो देखेंगे कि उनके पास गोवधका आग्रह रखनेका कोई कारण ही नही रह गया है। अगर हमने किसी

तरहकी जोर-जबरदस्ती की तो जवाबमें वे भी वैसा करेंगे और इस तरह कटुता बढ़ेगी। ध्यान रहे कि हम जोर-जबरदस्ती करके मुसलमानोको या किसीको भी अपनी धार्मिक अथवा अन्य प्रकारकी भावनाका आदर करनेको मजबूर नही कर सकते। वास्तवमे, हम उनके भीतर मैत्री-भाव पैदा करके ही ऐसा कर सकते है।

यही कारण है कि मैंने खिलाफतके सवालपर कोई सौदेबाजी करनेसे इनकार कर दिया है, और मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा करके मैंने बुद्धिमानी ही की है। मै अपनी गिनती कट्टरसे-कट्टर हिन्दुओंमे करता हूँ। गायको मुसलमानोके छुरेसे बचानेके लिए मै भी उतना ही उत्सुक हूँ जितना कोई अन्य हिन्दू। लेकिन बिलकुल इसी कारणसे मै मुसलमानोकी खिलाफत सम्बन्धी माँगोंका समर्थन करनेके पीछे यह शर्त लगानेसे भी इनकार करता हूँ कि वे गोरक्षामे हमारा साथ दे। मुसलमान हमारे पड़ोसी, हमारे भाई है। वे लोग कष्ट मे है। उनकी शिकायते उचित है और मेरा यह परम कर्त्तव्य है कि मै अपनी धन-सम्पत्ति और प्राणोकी बाजी लगाकर भी उनकी शिकायते दूर करवानेमे हर उचित तरीकेसे उनकी सहायता करूँ। इसी तरीकेसे मै मुसलमानोंकी स्थायी मैत्री प्राप्त कर सकता हूँ। मै मानव-स्वभावकी अच्छाईमे सन्देह नहीं कर सकता। हर उदात्त और मैत्रीपूर्ण कार्यका अनुकूल प्रभाव उसपर होगा बल्कि होता ही है। अगर हम शर्तोके साथ सहायता देते है तो उस सहायतामे कोई उदारता नही रह जायेगी। अगर हम उन्हे बिना किसी शर्तके सहायता देते है तो उसका परिणाम गोरक्षाके रूपमे प्रकट होना निश्चित है। लेकिन अगर उसका कोई विपरीत परिणाम निकले तब भी मेरे विचारोमे कोई अन्तर नही आयेगा। प्रतिदानकी कोई अपेक्षा न रखते हुए स्नेह और बलिदानकी भावना रखना ही सच्ची मित्रताकी कसौटी है।

लेकिन हिन्दुओंमे कुछ अधैर्यकी भावना दिखाई देती है। गोरक्षाके लिए हम इतने अधीर हो रहे है कि इस उद्देश्यसे हम नगरपालिकाओसे कानून बनवानेकी कोशिश करते है और मुसलमानोंकी सभाओमे इस सम्बन्धमे प्रस्ताव पास करानेका प्रयत्न करते रहते है। मै अपने हिन्दू देशभाइयोसे धीरज रखनेको कहूँगा। स्वयं हमारे मुसलमान भाई इस मामलेमे बहुत सुन्दर ढगसे काम कर रहे है। मै पाठकोको मौलाना अब्दुल बारीकी[1] उस घोषणाका स्मरण दिलाता हूँ जिसमे उन्होने कहा है कि एक सच्चे मुसलमानके नाते वे जबतक अपने-आपको अपने अनुगामियोसे गोरक्षाका अनुरोध करनेकी स्थितिमे नही पाते तबतक हिन्दुओ द्वारा दी गई कोई सहायता स्वीकार नही कर सकते। और वे अपनी बातके बिलकुल पक्के निकले। तबसे वे इस बातके लिए अनुकूल वातावरण तैयार करनेका अथक प्रयास करते रहे है कि लोग गोरक्षाके सिद्धान्तको मानव-धर्म और उपयोगिताकी दृष्टिसे स्वीकार कर ले। हकीम अजमल खाँने[2]

१. लखनऊके एक राष्ट्रवादी मुसलमान, जिन्होंने खिलाफत आन्दोलनमें भाग लिया और अपने अनुगामियोंसे गोहत्या न करनेका अनुरोध किया।

२. १८६५–१९२७; प्रसिद्ध हकीम और राजनीतिज्ञ, जिन्होंने खिलाफत आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया; १९२१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

मुस्लिम लीगके अध्यक्षकी हैसियतसे, कुछ सदस्योके प्रबल विरोधके बावजूद, त्योहारोके अवसरपर गोवध न करनेका प्रस्ताव लीगसे स्वीकार करा लिया। अली-बन्धुओने अपने घरमें गोमास खाना बन्द कर दिया है। हमे इन उदार हृदय मुसलमानोके प्रति गहरी कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए कि उन्होने हमारे अनुरोध-आग्रहके बिना इतना किया। हमे उन लोगोको इस बातकी पूरी छूट देनी चाहिए कि इस कठिन समस्याका समाधान वे अपने ही तरीकेसे करे। हिन्दू भाइयोको मेरी यह सलाह है कि "आप मुसलमानोकी इस दुःखकी घड़ीमे उदारता और आत्म-त्यागके भावसे, आप उनके लिए कितना-कुछ दे रहे हैं इसका तनिक भी ध्यान किये बिना, उनकी सहायता कीजिए और फिर आप देखेंगे कि आपने किस तरह गोरक्षाका काम किया है।" इस्लाम एक उदात्त धर्म है। इसमें और इसके अनुयायियोमे विश्वास रखिए। जबतक खिलाफत आन्दोलन चल रहा है तबतक अगर कोई हिन्दू उनसे गोरक्षा या अन्य किसी धार्मिक मामलेमे सहायता की चर्चा करता है तो उसे हमें अपराध मानना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-८-१९२०

८३. तार: अब्दुल जब्बारको

बम्बई

[५ अगस्त, १९२० के पूर्व][1]

अब्दुल जब्बार
सभापति
खिलाफत
हैदराबाद (सिन्ध)

आपका तार [मिला]। पीर साहबसे अनुरोध करे कि बहादुर अनुयायियोको सहनशीलता और धैर्यका उपदेश दें, सब निष्ठापूर्वक हिंसासे बचे और सहर्ष जेल जायें। यदि अब भी हम लोगोकी जरूरत हो तो तुरन्त तार दें। कल रवाना हो सकते हैं।

गांधी
शौकत अली

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११८४

१. तार ५ अगस्तको दर्ज किया गया था।

८४. पत्र : मोहनलालको

आश्रम
साबरमती
७ अगस्त, १९२०

भाई मोहनलाल,

छल-कपटको मैं कही भी उचित नही मानता। दिनोदिन भ्रष्टाचार बढे या घटे इस बातका अस्पृश्यता-निवारणसे कोई सम्बन्ध नही। धर्म तो अस्पृश्यता-निवारणमे है। मैं समझता हूँ कि वढवानकी राष्ट्रीय पाठशाला छोटे बच्चोकी शिक्षाका काम सँभाल सकती है। मध्यम वर्गकी बेरोजगारी समाप्त करनेका एकमात्र उपाय उन्हे ऐसे धन्धे सिखाना है जो शारीरिक श्रमकी अपेक्षा रखते है। श्री अरविन्द बाबूकी मुझे विशेष जानकारी नही है।

गुजराती पत्र (जी० एन० २३४) की फोटो-नकलसे।

८५. तार : अब्दुल जब्बारको

अहमदाबाद,
[८ अगस्त, १९२० के पूर्व][1]

अब्दुल जब्बार
हैदराबाद (सिंध)

शौकत अली और मैं हैदराबाद जा रहे थे। यहाँ रास्तेमे कार्यक्रम रद्द करनेका तार मिला। धन्यवाद। अब बम्बई लौट रहे है। मद्रास जानेका विचार है। स्थितिकी सूचना तारसे बम्बई दें। हम मद्रास जाये या नही। आशा है पीर साहब खाना खाने लगे है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ ११८५

१. तार इसी तारीखको खुफिया विभाग द्वारा रोका गया था।

८६. लोकमान्यका स्वर्गवास

लोकमान्य अद्वितीय थे। इस देशके लोगोने यह सिद्ध कर दिखाया है कि उन्होंने तिलक महाराजको जो पदवी प्रदान की थी वह पदवी सरकार द्वारा दी गई पदवियोसे लाखो गुना अधिक मूल्यवान थी। पूरी बम्बई लोकमान्यकी शवयात्रामे सम्मिलित होनेके लिए निकल पडी थी यदि ऐसा कहे तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

उनके अन्तिम दिनोमे दिखाई पडनेवाले दृश्य अविस्मरणीय है। उनके प्रति लोगोका अगाध प्रेम अवर्णनीय है।

फ्रासमें कहावत है. "राजा दिवगत हुए, राजा चिरजीवी हो।" यही उक्ति इंग्लेड आदि सब देशोमे प्रचलित है तथा राजाकी मृत्यु होनेपर वे लोग ऐसा ही कहते है। भावार्थ यह है कि राजा कभी नही मरता। राजतन्त्र एक क्षणके लिए भी नही रुकता।

बम्बईके विशाल जन-सागरने भी यह सिद्ध कर दिखाया है कि तिलक महाराज कभी मरनेवाले नही है, मरे नही है, वे जीवित है और सदैव जीवित रहेंगे। उनके सगे-सम्बन्धी भले ही दुखी हुए हो, उनकी आँखोसे मोतीकी तरह आँसू टपके हो किन्तु गाँवकी अपार जनता रोते-बिसूरते नही आई थी। वह तो मानो कोई उत्सव मनाने आई थी। गाँवके लोगोके गाजे-बाजे तथा भजनोने लोगोको इस बातका स्मरण कराया कि लोकमान्य मरे नही है। 'लोकमान्य तिलक महाराजकी जय' के घोषसे चारो दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठी और लोगोको इस बातका ध्यान ही न रहा कि तिलक महाराजके नश्वर शरीरका दाह-सस्कार करना है। इस तरह जनताने अपना अन्तिम और सही निर्णय दिया, डाक्टरोके 'बुलेटिनो' को झूठा साबित कर दिया।

शनिवारकी रातको जब मुझे उनकी मृत्युका समाचार मिला था उस समय मेरे मनमे भी कुछ खलबली मची; लेकिन जनताका यह जयघोष सुनकर मन शान्त हो गया। मै समझ गया कि तिलक महाराज जीवित है, क्षणभगुर देहका पात हो गया है लेकिन उनकी अजर-अमर आत्मा तो लाखो हृदयोमे निवास करती है।

एक अग्रेज लेखकने कहा कि दो सच्चे मित्र जबतक जीवित रहते है तबतक कुछ नही तो देहसे भिन्न ही रहते है। परस्पर एक-दूसरेमे थोडा भेद भी देखते है। लेकिन यदि वे सच्चे मित्र है तो उनमें से जो मर जाता है वह भेदकी दीवारको तोड़ देता है। मृत होकर भी वह जीवित मित्रके शरीरमें जीता है। जीवित मित्रके लिए वह कभी मरता नही है। उसी तरह तिलक महाराज आज लाखो व्यक्तियोमें जीवित है। शनिवारतक तो वे अपने शरीरमें ही विशेष रूपसे जीवित थे।

ऐसी मृत्यु इस युगमें आजतक किसी लोकनायकको नसीब नही हुई है। दादाभाई[1] गये, फीरोजशाह[2] गये, गोखले भी सिधार गये। सबकी अर्थियोके पीछे सहस्त्रो

१. दादाभाई नौरोजी (१८२५-१९१७); प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा देशभक्त; "भारतके पितामह" नामसे प्रसिद्ध। १८८६, १८९३ और १९०६ के काग्रेस अधिवेशनोंके अध्यक्ष।

२. फीरोजशाह मेहता (१८४५-१९१५); भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके संस्थापकोंमें से एक; १८९० तथा १९०९ में दो बार काग्रेसके अध्यक्ष निर्वाचित।

लोग श्मशान-भूमितक गये थे लेकिन तिलक महाराजके समय भीड़का कोई पार नही था। उनके पीछे तो सारा जगत् गया। रविवारके दिन बम्बईके लोग पागल हो उठे थे।

यह कैसा चमत्कार है? जगत्मे चमत्कार जैसी कोई वस्तु नही है; अथवा कह सकते है, जगत् स्वय एक चमत्कृति है। कारणके विना कार्य नही होता, इस सिद्धान्तमे कोई अपवाद नही हो सकता। लोकमान्यके हृदयमे भारतके प्रति अपार प्रेम था इसीसे लोगोंके मनमे भी उनके प्रति अत्यन्त स्नेह था। स्वराज्यके मन्त्रका जिस हद-तक लोकमान्यने जाप किया उस हदतक किसी और व्यक्तिने नही किया। और जिस समय लोगोने अन्त.करणसे इस बातका अनुभव किया कि भारतको स्वराज्यके योग्य होनेमे अभी थोडा समय लगेगा उस समय लोकमान्यने अन्त करणपूर्वक यह माना कि भारत आज ही स्वराज्यके लिए तैयार है। उनकी इस मान्यताने लोगोके दिलोको जीत लिया। लोकमान्य यह मानकर ही चुप नही बैठे, वे जीवन-भर अपनी इस मान्यताके अनुसार कार्य करते रहे और उससे जनतामे एक नवीन उत्साहका स्फुरण हुआ। स्वराज्य प्राप्त करनेकी उनकी अधीरता संक्रामक थी। उन्होने लोगोको भी अधीर कर दिया और लोगोमे जैसे-जैसे यह अधैर्य बढता गया वैसे-वैसे वे उनकी ओर खिचते गये।

उनके ऊपर कितनी ही आपदाएँ आईं, कितने ही दु ख आये लेकिन उन्होने अपने इस मन्त्रको नही छोड़ा। इस तरह वे कठिन परीक्षामे उत्तीर्ण हुए, जनताके मनमे उनके प्रति अटूट विश्वासभावनाने जन्म लिया और उनके वचनको कानून माना जाने लगा।

ऐसा महान् जीवन, देह नष्ट होनेसे क्षीण नही हो जाता बल्कि देह नष्ट होनेके बाद उसकी शुरुआत होती है।

तिलक महाराजके लिए कुछ विशेष किया जाना चाहिए — ऐसा एक मित्रने मुझे लिखा है और मेरी सलाह माँगी है। साथ ही उन्होने यह भी सुझाव दिया है कि यदि उनकी स्मृतिमे तीन दिनतक हडताल की जाये तो क्या यह ठीक न होगा? उन्हें मैंने जो उत्तर दिया है उसे यहाँ मै विस्तारसे लिख रहा हूँ।[1]

जिनकी हम आराधना करते हो, उनके सद्‌गुणोका अनुसरण करनेमे ही सच्ची आराधना है। परिणामतः मुझे तो हड़ताल करनेकी अपेक्षा कोई रचनात्मक कार्य करनेकी बात अधिक प्रिय लगती है। उस दिन हडताल करना, उपवास करना आदि नि.सन्देह आवश्यक है, लेकिन विशेषता तो अनुकरणमे ही होनी चाहिए। वे अत्यन्त सादे थे; उनकी स्मृतिमे हम सादेपनका संकल्प करे, और असुविधा उठाकर भी वस्तुओका त्याग करे। वे वीर थे; हम उनकी निर्भयताका अनुकरण करते हुए मन जिस बातके लिए गवाही दे, वही करे और अपने उद्देश्यसे कभी पीछे न हटें। वे विचारशील थे; हम भी कुछ बोलते अथवा करते समय खूब विचार करे और तब कुछ बोले अथवा करे। वे विद्वान् थे उन्हें अपनी मातृभाषा तथा संस्कृतपर आश्चर्यजनक रूपसे अधिकार था; हम उनके जैसा विद्वान् बननेका आग्रह रखे। अपने क्रियाकलापोमे विदेशी

१. देखिए "पत्र: दयाल्जीको", १-८-१९२०।

भाषाका त्याग करे तथा मातृभाषाका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर अपने विचारोंको उसमें अभिव्यक्त करे। संस्कृत भाषाका अध्ययन करके अपने धर्मकी विशेषताओंको, जो हमारे शास्त्रोंमें छिपी हुई हैं, प्रकाशमें लायें। वे स्वदेशी-प्रेमी थे, हम स्वदेशीका अर्थ समझकर स्वदेशीपर आचरण करें। उन्हें देशके प्रति अगाध-प्रेम था, हम भी अपने जीवनमें वैसे ही प्रेमका विकास करें तथा यथाशक्ति दिन-प्रतिदिन देशसेवामें अधिकसे-अधिक निरत हों। ऐसा करनेमें ही उनकी सच्ची पूजा होगी। जिनसे यह नहीं हो सकता वे उनकी स्मृतिमें एक पैसेसे लेकर अधिकसे-अधिक जितना धन देना चाहें दें, और इस तरह प्राप्त हुई रकमको राष्ट्रीय स्कूलोंकी स्थापनामें, योग्य विद्यार्थियोंके लिए शिक्षा प्राप्त करनेके निमित्त छात्रवृत्तियाँ देने अथवा अन्य सार्वजनिक कार्योंमें लगाया जाये।

लोकमान्य चालू शासन-पद्धतिके कट्टर शत्रु थे, लेकिन कुछ लोगोंके मनमें यह जो धारणा है कि उन्हें अंग्रेजोंसे अरुचि थी वह गलत है। मैंने स्वयं उनके मुखसे अनेक बार अंग्रेजोंकी प्रशंसा सुनी है। वे अंग्रेजोंके साथ किसी भी तरहके सम्बन्धको सर्वथा अनिष्टकारक नहीं मानते थे। अलबत्ता वे इतना अवश्य चाहते थे कि अंग्रेज उन्हें तथा भारतीय जनताको अपने समकक्ष मानें। अंग्रेजोंके अथवा किसीके भी अधीन रहना उन्हें तनिक भी पसन्द न था।

उन्हें ब्रिटेनकी आम जनतापर ऐसी श्रद्धा थी कि एक बार उन्होंने यह विचित्र सुझाव रखा था कि सिनेमाके द्वारा ब्रिटिश जनताको पंजाबके अत्याचारोंसे परिचित कराया जाये।

ऐसे प्रौढ़ देशभक्तका स्वर्गवास होनेपर हम शोक मना रहे हैं। जिस देहसे हमने उन्हें जाना था यदि वे उसी देहमें बने रहते तो हमें लाभ होता, यह निर्विवाद है, लेकिन ऐसे व्यक्ति देह रहे या न रहे तो भी देशसेवा करते रहते हैं, देशका नेतृत्व किया करते हैं। जिन्होंने अपने कार्यक्रमको निश्चित कर लिया था, जिन्होंने उस कार्यक्रमके अनुसार पैंतालीस वर्षोंतक कार्य किया, जिन्होंने अपनी देहको देशसेवामें ही जीर्ण कर दिया, वे देहपात होनेपर जन-मनसे विस्मृत नहीं हो सकते, कभी नहीं मर सकते। इसलिए हमें यह मानना चाहिए कि लोकमान्य तिलक मरकर भी हमें जीवित रहनेका मन्त्र दे गये हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-८-१९२०

८७. कांग्रेसका स्थान

माननीय पडित मालवीयजी मेरे निकट सदैव वन्दनीय है। उन्हे मै धर्मात्माके रूपमें जानता हूँ। उन्होंने मुझे सलाह दी है कि काग्रेसका विशेष अधिवेशन होनेतक मुझे असहकारको मुल्तवी रखना चाहिए। वैसी ही सलाह 'मराठा'के सम्पादक तथा अन्य लोगोने भी दी है। पडितजीकी सलाहको न मानना मेरे लिए दुखद बात है। मै अनेक कष्ट सहकर भी उनकी सलाहको माननेके लिए तैयार हूँ। लेकिन जहाँ मेरी अन्तरात्मा मुझे कुछ और ही करनेके लिए कहती है वहाँ मै विवश हो जाता हूँ और दीनताका अनुभव करते हुए भी सलाह नही मान पाता। मेरे लिए यह ऐसा ही प्रसंग सिद्ध हुआ है।

मेरा असहकारको मुल्तवी रखनेका अर्थ मुसलमान भाइयो द्वारा भी उसे स्थगित करना हुआ। खिलाफत सम्बन्धी शर्तोंके प्रकाशित हो जानेके बाद असहकार उनका धर्म हो गया है। जिन्होने उनके धर्मका अपमान किया है, उनके धर्मको सकटमें डाला है, वे उनकी मदद कर कैसे सकते है। उनकी भेटको किस तरह स्वीकार करे? और फिर सारी जनताको विचारपूर्वक असहकारकी सलाह देनेके बाद, अत्यन्त सबल और अकाट्य कारणोके अभावमे मै असहकार मुल्तवी कैसे कर सकता हूँ? खिलाफतके प्रश्न-पर असहकारको चालू रखना मेरे लिए स्वधर्म हो गया है।

इतना तो वर्तमान स्थितिको देखते हुए कथनीय था। लेकिन आइये, अब हम काग्रेसकी स्थितिका अध्ययन करे। मेरी नम्र रायमे काग्रेस प्रतिवर्ष जनताकी वृत्तिका, उसके विचारोका लेखा-जोखा करती है। काग्रेस सामान्य रूपसे जनताको नया रास्ता नही दिखाती। यह बतानेका काम काग्रेसका नही है। काग्रेसकी प्रतिष्ठा इसीलिए है कि वह जन-मतका प्रतिनिधित्व करनेवाली सस्था है। इसीलिए काग्रेस अधिवेशन होनेतक और उसके द्वारा कोई नवीन प्रवृत्ति प्रारम्भ करने तक हमारा चुपचाप बैठे रहना ठीक नहीं है। यदि हम ऐसा करे तो काग्रेस प्रगति कर ही नही सकती। यदि हम काग्रेसके मतको जानने तक असहकारको मुल्तवी रखे तो वह हमेशा मुल्तवी ही रहेगा। अगर लोगोका अपना निश्चित मत न हो तो काग्रेस जनतासे एकदम भिन्न कोई वस्तु तो है नही कि लोग उससे उसका मत वरदानकी तरह पा सके। अमुक वस्तुके पक्षमे जबतक बहुमत नही बन जाता तबतक काग्रेस अपनी राय व्यक्त नही करती। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि अल्पमतवालो को तमाम मुश्किलोके बीच अपना कार्य करते ही रहना चाहिए। उनकी प्रवृत्तिको काग्रेस रोकती नही, रोकना भी नही चाहती, रोकनेका अधिकार उसे है भी नही। इसलिए जिन्हे अमुक सुधार पसन्द है, जिन्हे अपनी शक्तिके बारेमे श्रद्धा है और जो काग्रेसके पक्षके है, उनका कांग्रेसके प्रति यह कर्त्तव्य है कि वे अपने सुधारोको जनताके सम्मुख पेश करे, उनपर अमल करे जिससे काग्रेसको अपना मत स्थिर करनेकी सामग्री मिले। सब सुधार इसी तरहसे हुए

है। रौलट अधिनियमका विरोध करनेसे पूर्व किसीने कांग्रेसका मत जाननेकी प्रतीक्षा नही की।

पंडितजीने अत्यन्त प्रेमपूर्वक मुझे जो सलाह दी है उसका अर्थ इतना ही है कि उन्होंने असहकारके बारेमे कोई दृढ राय स्थिर नही की है। उनकी इस सलाहको मैं शिरोधार्य नही कर सकता, इसका अर्थ यह है कि मैं दृढतापूर्वक इस अन्तिम निश्चयपर पहुँच गया हूँ कि असहकार-आन्दोलन करनेमे हम जितना विलम्ब करते है उतना ही हमें पाप लगता है। जबतक मुझे सरकारकी न्यायबुद्धिके सम्बन्धमे तनिक भी श्रद्धा थी तबतक मै उसके साथ सहकार करता रहा और जनताको भी वैसी ही सलाह देता था। अमृतसर कांग्रेसमें मैंने अत्यन्त दृढतापूर्वक सरकारसे सहकार करनेकी सलाह दी थी, क्योंकि मै अन्त.करणपूर्वक मानता था कि पंजाबको तथा मुसलमान भाइयोको न्याय मिलेगा। मेरी यह मान्यता गलत साबित हुई इसीसे मै असहकार करने लगा। सरकारकी प्रत्येक मेहरबानी, उसके सब सुधार मेरे लिए विषैले दूधके समान त्याज्य हो गये है। यही कारण है कि मै अकेला भी रह गया तो भी पुकार-पुकारकर यही कहूँगा कि हमे सरकारकी विधान परिषदोमे नही जाना चाहिए।

कांग्रेसके प्रतिनिधि तीन तरहके होते है। एक किसी प्रश्नके सम्बन्धमे अनुकूल एव स्पष्ट मतवाले, दूसरे उसके सम्बन्धमे प्रतिकूल स्पष्ट मतवाले तथा तीसरे अस्पष्ट मतवाले। पहले पक्षके लोगोंको कांग्रेस अधिवेशनमे जानेवाले अस्पष्ट मतवाले प्रतिनिधियो-पर प्रभाव डालनेका प्रयत्न करना चाहिए। यह उनका कर्त्तव्य है। और आचरण करनेसे अधिक प्रभावशाली बात क्या हो सकती है? इसलिए मेरी बुद्धि तो यही सुझाव देती है कि जो असहकारमे भारतका कल्याण देखते है, जो असहकारके द्वारा ही खिलाफत तथा पंजाबको न्याय मिलनेकी सम्भावना देखते है उन्हे असहकार करना चाहिए, दूसरोको असहकार करनेकी सलाह देनी चाहिए और असहकार करके जनमतको शिक्षित करना चाहिए। यह उनका धर्म है। इसीमे कांग्रेसकी प्रतिष्ठा है, उसकी प्रगति है। कोई सुधारक अपने विचारोंको अमलमे लानेसे पूर्व किसीकी राह नही देखता। पुण्य कर्म करते समय सलाह लेनेमें इतना विलम्ब नही करना चाहिए और पापकर्म सलाह मिलनेके बावजूद नही करना चाहिए, यह शाश्वत धर्म है। वर्तमान परिस्थितियोको देखते हुए असहकारको मै पुण्यकर्म समझता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-८-१९२०

८८. शास्त्र क्या कहते हैं ?

सर नारायण चन्दावरकर तथा अन्य सज्जनोने एक लेख लिखा है। उसमे उन्होने असहकारकी वहुत निन्दा की है और कहा है कि धर्मशास्त्र और इतिहास उसके विरुद्ध है। हस्ताक्षरकर्त्ता लिखते है कि 'गीता', 'कुरान', 'वाइविल' तथा पारसी 'अवेस्ता' असहकारको अधर्म मानते है। उनमे से उन्होने कोई दृष्टान्त उद्धृत नही किया।

मेरा खयाल है कि 'गीता' आदिका मैंने भी थोडा-वहुत अध्ययन किया है। मैंने उन धर्मग्रन्थोंमे असहकारके दर्शन किये है। 'गीता'मे देवासुर-सग्रामका वर्णन आता है। न्याय और अन्यायके वीच कभी मेल नही हो सकता, यह वात 'गीता' स्पष्ट रूपसे वताती है। 'गीता'का यदि केवल अक्षरार्थ ही करे तव भी हमे मालूम पडेगा कि जव अर्जुनने पापी कौरवोके साथ युद्ध करनेमे आनाकानी की तव श्रीकृष्णने उन्हे युद्ध करनेके लिए प्रेरित किया। इसलिए शब्दार्थसे तो 'गीता' हमे यह सिखाती है कि न केवल हमे अन्यायीके साथ असहकार ही करना चाहिए वल्कि उसे दड भी देना चाहिए। 'गीता'का भावार्थ दंड देना नही सिखाता; लेकिन उसकी असख्य पक्तियाँ न्याय और अन्यायके विवाद सम्वन्धी शिक्षणसे भरी हुई है।

जिस तरह अंधकार और प्रकाशमे परस्पर वैर-भाव है, जिस तरह सर्दी और गर्मी साथ-साथ नही रह सकते उसी तरह न्याय तथा अन्याय एक साथ नही रह सकते। इसीसे हममें परस्पर रूठ जानेकी प्रथा परम्परासे चली आ रही है। रैयत जव अन्यायी राजासे परेशान हो जाती है तभी वह उससे रूठ जाती है। जव वहुत ज्यादा परेशान हो उठती है तव वह उसके राज्यको भी छोड देती है। ऐसे उदाहरण समय-समयपर देखनेमे आते है। आज भी दो राज्योमे ऐसी हलचल जारी है। प्रह्लादने अपने राक्षसी पिता, मीरावाईने अपने पति तथा नरसिंह मेहताने[1] अपनी जात-विरादरीके साथ असहकार किया। इन तीनोकी हम आज पूजा करते है। तुलसीदासने सन्त असन्तका भेद वताते हुए कहा है कि दोनोके बीच परस्पर मेल नही हो सकता। परिणामतः हिन्दू धर्मकी तो यही शिक्षा है कि न्याय-अन्यायके वीच परस्पर मेल सर्वथा त्याज्य है। 'अवेस्ता'मे अहुरमज्द तथा अहुरमनमे सदैव द्वन्द्व-युद्ध होता रहता है। 'वाइविल'मे खुदा और शैतानमे संघर्ष होता है। अहुरमज्द — खुदा — न्यायकी प्रतिमूर्ति है, और अहरमन — शैतान — अन्यायका प्रतीक है। ईसा मसीह तो सत्याग्रही शूरवीर थे। वे दाम्भिक, झूठे, मदान्ध व्यक्तियोसे हमेशा असहकार करते रहे। नीतिके प्रश्नको लेकर वे किसी भी परिवारके सदस्योको एक-दूसरेका विरोध करनेकी सलाह देनेमे संकोच नही करते थे। रोमके महान् साम्राज्यका उन्होने अकेले ही विरोध किया था। अव रहा 'कुरानशरीफ'। लोग इस्लामके सम्वन्धमें जिस तरह लिखते है, उससे ऐसा जान पड़ता है कि वे पैगम्वरके जीवनसे नितान्त अपरिचित है। पैगम्वर

१. १४१४–१४७९; गुजरातके सन्त-कवि और कृष्ण-भक्त।

जबतक मक्कामे रहे तबतक वे अन्यायियोके साथ असहकार करते रहे। एक ओर जहाँ मुसलमान स्वय ही असहकारके समर्थनमे इस्लामका उदाहरण देते है वहाँ उनसे यह कहना कि उनका धर्म असहकारके विरुद्ध है, कितना आश्चर्यजनक होगा।

इतिहासके प्रमाण भी असहकारका प्रतिपादन करते है। सामान्य रूपसे देखनेपर भी जान पडेगा कि इतिहास युद्धका आख्यान है; और युद्ध मात्र चरम असहयोगका स्वरूप है। एक पक्ष दूसरे पक्षका त्याग करता है, यह असहकार ही है। युद्ध आसुरी-असहकारका परिचायक है। मै हिन्दुस्तानके लोगोके सम्मुख जिस असहकारको प्रस्तुत कर रहा हूँ वह दैवी असहकार है। ऐसा कहनेमें मुझे तनिक भी धृष्टता दिखाई नही देती। जिस असहकारमें खूनखराबी — हिंसा — है उस असहकारमे हार-जीत रहती है। जिसमें केवल कुर्बानी — आत्मत्याग — है वहाँ जीत-ही-जीत है। ऐसे असहकारका कोई कैसे विरोध कर सकता है, यह मेरी समझके बाहर है। जो दैवी असहकार करता है वह न्याय-प्राप्तितक सहकार नही करता। जर्मनीने शस्त्रबलसे असहकार किया, इसलिए उसकी पराजय हुई और उसने आत्म-समर्पण कर दिया। रूसके दुखोबर लोगोने नि शस्त्र असहकार किया इससे वे पराजित नही हुए। जब उनके लिए रूसमे रहना असम्भव हो गया तब उन्होने रूसको छोड़ दिया, लेकिन रूसके अत्याचारी शासकोकी अधीनता स्वीकार नही की। आज वे कैनेडामे एक प्रतिष्ठित समाजके रूपमे अपना जीवन व्यतीत कर रहे है। व्यक्तिगत असहकारमे व्यक्तिकी जीत है। सामाजिक असहकार हो तो समाजकी जीत होती है। दैवी असहकारमे प्रयत्न व्यर्थ जाता ही नही अतएव उसपर कोई दोषारोपण नही किया जा सकता। उसका थोडासा भी आचरण सुखदायी होता है और वह आचरणकर्त्ताको अपेक्षाकृत बडे संकटसे मुक्त करता है।[1] अत्याचारी शासक द्वारा प्रदान की गई पदवीको त्यागकर, उस असहकारसे त्यागी सुखका अनुभव करता है, उसकी अदालतोको त्यागकर वह सन्तोष प्राप्त करता है एव यदि समाजका बहुमत वैसा त्याग करे तो सारा समाज अन्यायसे सहकार करना छोड़ निर्मल हो जाता है और उस हदतक आरोग्य प्राप्त करता है।

सहकार व असहकार दोनो अनादिकालसे चली आनेवाली नीतियाँ है। न्यायीसे हमेशा सहकार व अन्यायीसे असहकार। हिन्द सरकार तथा ब्रिटिश सरकार — दोनो ही इस समय लगातार अन्याय कर रही है। उनके साथ सहकार करना पाप है; असहकार धर्म है, कर्त्तव्य है।

बिछुरत एक प्राण हर लेही।
मिलत एक दारुण दुख देही।।

इसी कारण असन्तसे असहकार — यह शास्त्र-वचन है। इसको सहस्रो 'मैनी-फैस्टो' भी नही बदल सकते।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८–८–१९२०

१. स्वल्पमप्यस्यधर्मस्य त्रायते महतो भयात्। गीता, २-४०।

८९. गोरक्षा

गोरक्षा मुझे अत्यन्त प्रिय है। यदि कोई व्यक्ति मुझसे प्रश्न करे कि हिन्दू धर्मका सबसे महत्त्वपूर्ण बाह्य स्वरूप क्या है — तो उत्तरमे मै कहूँगा गोरक्षा। [लेकिन] वर्षोसे मैने यह अनुभव किया है कि हम अपने इस धर्मको भूल गये है। मैने ससार-भरमे ऐसा कोई मुल्क नही देखा जहाँ गोवशकी हालत हिन्दुस्तानके समान बुरी हो। इसीसे हमे हिन्दुस्तानके मवेशियोकी जितनी पसलियाँ दिखाई देती है उतनी किसी अन्य देशके मवेशियोंकी नही दिखाई देती। अंग्रेज लोग गोमास भक्षण करते है; तथापि इंग्लैंडमे मैने कोई दुर्बल पशु नही देखा।

जैसे हमारे ढोर दुबले, वैसे हम दुबले। जहाँ ढोर भूखे मरते है वहाँ अगर तीन करोड़ लोग भूखे मरें तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नही है।

हमारे पिंजरापोलोकी दशा देखिए! व्यवस्थापकोकी उदारताके प्रति तो मेरे हृदयमे सम्मानका भाव है, लेकिन उनकी व्यवस्थाके सम्बन्धमे बहुत कम सम्मान है। पिंजरापोल गाय और उसके वंशकी रक्षा करते हैं, मैं यह नही मानता। पिंजरापोल कोई निकम्मे पशुओंको रखने या उन्हे भूखे मरने देनेका ही स्थान नही होना चाहिए। पिंजरापोलमें मैं आदर्श गाय-बैलोंको देखनेकी आशा रखता हूँ। पिंजरापोल शहरोके बीच न होकर बड़े-बड़े खेतोमे होने चाहिए एवं उनपर बेशुमार दौलत खर्च की जाये इसके बदले उनसे बेशुमार दौलत प्राप्त होनी चाहिए।

हिन्दुस्तानके पशुओंको हिन्दू किस तरहसे रखते है? उनके बदनमे नुकीला पैना कौन कोंचता है? उनपर असह्य बोझ कौन लादता है? उन्हे कम चारा कौन देता है? उनसे आवश्यकतासे अधिक काम कौन लेता है?

मेरी दृढ़ मान्यता है कि हिन्दुओका प्रथम कर्त्तव्य अपने घरको ही साफ करना है। मुझमे शक्ति हो, मेरे पास समय हो तो मैं पिंजरापोलोको सुधारनेमे, जनताको पशुओंकी देखभाल करनेका शास्त्रीय ज्ञान देनेमे, निर्दयी हिन्दुओको अपने पशुओके प्रति दयाभावकी शिक्षा देनेमे, गरीबसे-गरीब बालक या रोगीके पास स्वच्छ दूध पहुँचानेमे गोरक्षा मंडलियोंको लगाऊँ। और मै सबसे पहले हिन्दुओसे ऐसी मडलियोकी व्यवस्थाका महान् कार्य करनेके लिए कहूँगा।

तत्पश्चात् मैं अंग्रेजोसे गोमासका त्याग करनेकी विनती करूँगा। राजा लोग [अक्सर] अंग्रेज मेहमानोकी आवभगत करते समय अपने मुख्य धर्मको भूल उन्हें गोमास देनेमे नही हिचकिचाते। मै उन्हें इस अधर्माचरणके लिए लज्जित करूँगा तथा उसे त्याग देनेका अनुरोध करूँगा।

इतना करनेके बाद ही मुझे अपने मुसलमान भाइयोसे गोवध बन्द करनेके लिए कहनेका अधिकार होगा। इस तरह यह बिलकुल स्पष्ट है कि हमारा धर्म क्या है। लेकिन हम इसे भूलकर अन्तिम कार्य पहले करने लग गये है। मुसलमान भाइयोके हाथसे, सद्भावना अथवा बलपूर्वक भी गायोको मुक्त करवानेमे हम अपने मनमे गोरक्षाकी

इति मान लेते हैं। परिणामत हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच वैर-भाव बढ गया; विवादका कारण उपस्थित हो गया और इस प्रवृत्तिके फलस्वरूप अधिक पशुओका वध हुआ है, कारण कि मुसलमान भाई [इस विषयमें] हठधर्मी करने लगे हैं। गायको बचानेके लिए अपने प्राण उत्सर्ग करना हमारा परम धर्म है।

लेकिन आज हमें अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है और मैंने उसे हाथ बढाकर ले लिया है। प्रत्येक हिन्दू उस अवसरका लाभ उठाकर गायकी सहज ही रक्षा कर सकता है। मुसलमानोपर इस समय भारी सकट आ पडा है, उनके दीनका अपमान हुआ है। इस समय आपको बिना किसी शर्तके, बदलेमें बिना किसी वस्तुकी अपेक्षा किये उनकी सहायता करनी चाहिए। पड़ोसीके नाते ऐसा करना हमारा कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्यका पालन करता है वह चाहे या न चाहे, उसे फलकी प्राप्ति होती है। मुसलमानोके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करके हम उनकी सज्जनताको चुनौती देते हैं। जिस मैत्रीमे बदलेकी अपेक्षा की जाती है वह सच्ची मैत्री नही है। वह तो व्यापार है। हम इस समय व्यापारके विचारको भूलकर मुसलमानोकी सहायता करे क्यो कि [गो] रक्षा करना उन्हीके हाथमे है।

कुछ लोग कहते है कि ऐसे मामलोमे मुसलमानोका विश्वास नही किया जा सकता। मुझे तो मनुष्य-स्वभावपर भरोसा है; इस्लामपर एतबार है। सज्जनताका बदला सज्जनता ही होता है — यही ईश्वरीय न्याय है। जब हमारा हेतु मिश्रित होता है तभी हमे विपरीत परिणामोकी उपलब्धि होती है। आज भी मुसलमान अपनी ओरसे बहुत-कुछ कर रहे हैं। मौलाना अब्दुल बारी साहबने मेरी मदद् करना तभी स्वीकार किया जब उन्होने अपने धर्मंमे गोरक्षाका समर्थन देखा। हकीम अजमलखाँ गोरक्षाके निमित्त अथक परिश्रम कर रहे हैं। दोनो अली भाइयोके घरमें गोमास आना ही बन्द हो गया है।

इस तरह जो सुधार हो रहे हैं उनपर सन्देह करके अथवा उतावलीके कारण हमे उनकी गति अवरुद्ध नही करनी चाहिए।

अनेक स्थानोपर मैं गोवधका निषेध करनेके सम्बन्धमे कानून बनाये जानेका आन्दोलन होते देखता हूँ। कुछ स्थानोपर मैं मुसलमानोसे शर्त किये जानेकी बातें सुनता हूँ। दोनो बातोमें मुझे तो नुकसान ही दिखाई देता है। कट्टर हिन्दुओके समक्ष इस समय एक ही कर्त्तव्य है और वह यह कि चुपचाप मुसलमानोकी मदद करें। यह उनका नैतिक कर्त्तव्य भी है। इसीमें दोनो धर्मोके मानकी रक्षा निहित है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-८-१९२०

९०. पत्र : हरमान कैलेनबैकको[1]

१० अगस्त, १९२०

प्रिय लोअर हाउस,[2]

कितने लम्बे अर्से बाद तुम्हे यह पत्र लिखनेका सौभाग्य मिला है। बडी तलाश करनेपर अब कही तुम्हारा पता मिल पाया है। लेकिन एक भी दिन ऐसा नही गुजरा है जब तुम्हारा खयाल न आया हो। तुम्हारा हाल सबसे पहले मुझे जोहानिसबर्गकी एक महिलाने बताया। कुमारी विंटरबॉटम[3] और पोलक[4] तो कुछ भी नही बता पाये। पी० के० नायडू[5] भी कुछ नही बता सके। डा० मेहताने[6] तार भेजकर मुझे तुम्हारा पता बताया। जमनादासका[7] भी एक पत्र मिला है उससे मैंने कह दिया है कि अगर हो सके तो बर्लिनमे तुमसे मुलाकात कर ले। जमनादास लिखता है कि या तो वह खुद या डा० मेहता तुमसे मिलनेकी कोशिश करेगे। कितना अच्छा होता अगर मै वहाँ आकर तुम्हें गले लगा सकता! मेरे लिए तो तुम्हारा पुनर्जन्म ही हुआ है। मैंने यह मान लिया था कि अब तुम इस दुनियामे नही रहे। मै तो यह विश्वास ही नही कर पाता था कि दुनियामे रहते हुए भी तुम मुझे इतने दिनोतक कोई पत्र नही लिखोगे। एक दूसरी सम्भावना यह थी कि तुम पत्र तो लिखते होगे लेकिन वे मुझे मिल नही पाते होगे। मैंने कैम्पके पतेसे पत्र लिखा, लेकिन कोई जवाब नही मिला। मै अब भी यही मानता हूँ कि तुमने पत्र लिखा अवश्य होगा लेकिन मुझे मिल नही पाया। मै डा० मेहताको तुमसे मिलनेके लिए तार दे रहा हूँ। और मै अपने बारेमें क्या लिखूं? फिलहाल तो कुछ नही लिखूंगा। देवदास मेरे साथ है, वह हर दिशामे निरन्तर प्रगति कर रहा है। अभी मै देवदास और एक दूसरे विश्वस्त साथीके[8] साथ यात्रा कर रहा हूँ। उसे देखोगे

१. एक जर्मन वास्तुकार; दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी और मित्र।

२. गांधीजी विनोदमें हरमान कैलनबैकको 'लोअर हाउस' और अपनेको 'अपर हाउस' कहते थे।

३. फ्लोरेंस विंटरबॉटम, नैतिकता समिति-संघ (यूनियन ऑफ एथिकल सोसाइटीज), लन्दन की मन्त्री।

४. हेनरी सॉलोमन लिऑन पोलक, गांधीजीके मित्र और सहयोगी; इंडियन ओपिनियनके सम्पादक; देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ४७।

५. पी० के० नायडू, ब्रिटिश भारतीय संघ, ट्रान्सवालके मन्त्री।

६. डा० प्राणजीवन मेहता, बैरिस्टर और जौहरी; उनका गांधीजीसे सम्बन्ध तभी प्रारम्भ हुआ जब इंग्लैंडमें विद्यार्थीके रूपमें गांधीजी उनसे मिले थे। फीनिक्स आश्रमकी स्थापना हुई, तबसे लेकर १९३३ में अपनी मृत्युतक वे गांधीजीको आर्थिक सहायता देते रहे।

७. गांधीजीके चचेरे भाई श्री खुशालचन्द गांधीके पुत्र। छगनलाल और मगनलालके भाई।

८. श्रीमती सरलादेवी चौधरानी।

तो उसपर मुग्ध हो जाओगे। बात यह है कि इस महिलासे मेरा बहुत घनिष्ठ सम्पर्क हो गया है। वह अक्सर यात्रामे मेरे साथ रहा करती है। उसके साथ मेरे सम्बन्धोंको किसी परिभाषामे नही बाँधा जा सकता। मै उसे अपनी आध्यात्मिक पत्नी कहता हूँ। एक मित्रने हमारे सम्बन्धोंको बौद्धिक विवाह कहा है। मै चाहता हूँ तुम उससे मिलो। मै अपने लाहौर और पजाबके निवास-कालमे कई महीने उसीके घर ठहरा था। श्रीमती गाधी आश्रममें हैं। वे वृद्ध तो काफी हो गई हैं, लेकिन बहादुर पहलेकी ही तरह हैं। तुमने उनके गुणदोष-सहित उन्हें जिस रूपमे देखा था, अब भी वे वैसी ही हैं। मणिलाल और रामदास फीनिक्समे ही हैं। वे 'इंडियन ओपिनियन' का काम देखते हैं। हरिलाल कलकत्तेमे अपना धन्धा करता है।

उसकी पत्नीका देहान्त हो गया है। उसके बच्चोकी देखभाल श्रीमती गाधी करती हैं। छगनलाल और मगनलाल मेरे साथ हैं। मेढ[1] और प्रागजी[2] भारतमें ही हैं। प्रागजीसे सम्पर्क बना रहता है, लेकिन मेढसे उतना नही। मगनभाई[3] मेरे साथ नही हैं। तो इस तरह तुम इस परिवारके जितने लोगोको जानते हो, उनमें से अधिकाशका थोडा-बहुत समाचार तुम्हें मालूम हो गया। और हाँ, इमाम साहबको[4] तो मै भूल ही गया था। वे और उनकी पत्नी मेरे साथ हैं। उनकी निष्ठा तो अद्भुत है। अभी पिछले ही दिनो मैंने फातिमाकी[5] शादी करके उसे विदा कर दिया। इससे वे काफी निश्चिन्त हो गये हैं। एन्ड्रयूजसे अक्सर मुलाकात हो जाती है। वे बगालमें रहते हैं। आनन्दलाल[6] भी मेरे ही साथ है। मै दो साप्ताहिकोका सम्पादन कर रहा हूँ। दोनो अच्छे चल रहे हैं। अभी तो मैंने सरकारसे बहुत जबरदस्त लड़ाई ठान रखी है। परिणाम क्या होगा, कोई नही कह सकता।

और अब मै पत्र समाप्त करूँगा। दो साल पूर्व एक बार मै मौतके पजेमें आ गया था। अगर तुम्हें फुरसत हो तो चाहूँगा कि पत्र-व्यवहार फिरसे शुरू कर दो। मै अब और भी सादा जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। अब मै फल और मेवोपर नही रहता। सिर्फ बकरीका दूध, रोटी और दाख लेता हूँ। मैंने पाँच चीजोसे अधिक न खानेका व्रत ले रखा है। लन्दनमे लिये गये व्रतके कारण मै गायका दूध नही लेता। नमक न लेनेका व्रत छोड दिया है, क्योकि देखता हूँ, पानीके साथ और समुद्री हवामें हम अजैव (इनआर्गेनिक) नमक लेते ही हैं।

१. श्री सुरेन्द्रराय मेढ, दक्षिण आफ्रिकी सत्याग्रहके प्रमुख कार्यकर्ता।

२. प्रागजी खण्डूभाई देसाई, दक्षिण आफ्रिकी सघर्षमें भाग लेनेवाले एक सत्याग्रही। वे इंडियन ओपिनियनके गुजराती स्तम्भोमें अक्सर लिखा करते थे।

३. मगनभाई पटेल, फीनिक्स आश्रमके एक शिक्षक।

४. इमाम साहब अब्दुल कादिर बावजीर, हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्ष; दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रहीके रूपमें १९१० में जेल गये; सन् १९३० के नमक सत्याग्रहमें महादेव देसाईके गिरफ्तार हो जानेपर उनका काम सँभाला।

५. इमाम साहबकी पुत्री।

६. गांधीजीके चचेरे भाई अमृतलालके पुत्र।

आशा है, शीघ्र ही तुम्हारी अपनी लिखावटमे लिखा पत्र पढनेका सौभाग्य मिलेगा। सस्नेह,

तुम्हारा,
अपर हाउस

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी
सौजन्य: नारायण देसाई

९१. खड्ग-बलका सिद्धान्त

पशुबलकी सत्ताके इस युगमे किसीके लिए भी यह विश्वास करना लगभग असम्भव है कि कोई व्यक्ति ऐसा भी हो सकता है जो इस सिद्धान्तको अस्वीकार कर दे कि अन्तिम निर्णायक शक्ति पशुबल ही है। और इसलिए मुझे गुमनाम व्यक्तियोके ऐसे बहुत-से पत्र मिलते रहते है जिनमे मुझे सलाह दी जाती है कि जनताके बीच हिंसाका विस्फोट होनेपर भी मुझे असहयोग आन्दोलनकी प्रगतिमे बाधा नही डालनी चाहिए। कुछ दूसरे लोग, जो मानते है कि भीतर-ही-भीतर मै अवश्य ही हिंसाकी तैयारी कर रहा होऊँगा, आकर मुझसे पूछते है कि खुली हिंसाकी घोषणा करनेकी वह शुभ घड़ी कब आयेगी। वे मुझे विश्वास दिलाते है कि अंग्रेज लोग हिंसाके अलावा — चाहे वह छिपी हो या खुली — और किसी चीजके सामने नही झुकेगे। मालूम हुआ है, कुछ लोग ऐसा भी मानते है कि मै भारतका सबसे बड़ा मक्कार आदमी हूँ, क्योंकि मै अपना असली इरादा जाहिर नही करता। उनका पक्का विश्वास है कि मै भी हिंसामे उतना ही विश्वास करता हूँ जितना कि अधिकाश लोग करते है।

चूँकि ससारके अधिकाश लोग खड्ग-बलके सिद्धान्तसे इतने अधिक प्रभावित है और चूँकि असहयोगकी सफलताका दारोमदार इसी बातपर है कि जबतक असहयोग चलता रहे, किसी प्रकारकी हिंसा न हो, और क्योकि इस मामलेमे मेरे विचारोपर बहुत अधिक लोगोंका आचरण निर्भर करता है, इसीलिए मै इन सारी बातोको यथा-सम्भव अधिकसे-अधिक स्पष्ट शब्दोंमे बताना चाहता हूँ।

मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जहाँ चुनाव सिर्फ कायरता और हिंसाके बीच करना हो, वहाँ मै हिंसाको ही चुननेकी सलाह दूँगा। मेरे सबसे बडे लड़केने एक बार मुझसे पूछा कि १९०८ मे जब मुझपर करीब-करीब घातक हमला किया गया था,[1] उस समय अगर वह मौकेपर मौजूद होता तो उसका क्या कर्त्तव्य था: मेरी हत्या होते देखना और भाग निकलना या अपनी शारीरिक शक्तिका प्रयोग करके, जिसका प्रयोग वह कर सकता था और करना भी चाहता, मुझे बचाना। मैंने अपने उपर्युक्त

१. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ९०-९४।

विश्वासके अनुरूप ही उसे उत्तर दिया था कि उस हालतमें हिंसा करके भी मेरी रक्षा करना उसका कर्त्तव्य था। अपनी इसी मान्यताके अनुसार मैंने बोअर-युद्धमे, तथाकथित जूलू-विद्रोहमें और गत महायुद्धमें भाग लिया। कोई भारतका अपमान करे और भारत कायरतापूर्वक या लाचार बनकर अपना अपमान होते देखता रहे, इसकी अपेक्षा मै चाहूँगा कि वह अपने सम्मानकी रक्षाके लिए शस्त्र उठाकर भिड़ जाये।

लेकिन मेरे विचारसे अहिंसा हिंसासे लाख दर्जे अच्छी चीज है, क्षमाशीलतामें दण्ड देनेकी अपेक्षा अधिक पौरुष है। कहा भी है, "क्षमा वीरस्य भूषणम्" अर्थात् क्षमा वीरोका भूषण है। लेकिन अपना हाथ रोके रहनेमे क्षमाशीलता तभी है जब उस व्यक्तिमे दण्ड देनेकी शक्ति हो। दीन और असहाय व्यक्तिकी क्षमा निरर्थक है। अगर कोई चूहा किसी बिल्लीको अपने शरीरके चिथडे कर लेने दे तो उसका मतलब यह नही होगा कि उस चूहेने बिल्लीको क्षमा कर दिया। इसलिए जो लोग जनरल डायर और उनके अन्यायी साथियोको सजा देनेकी आवाज उठाते हैं, उनकी भावनाको मै समझता हूँ। अगर उनका वश चले तो वे जनरल डायरके चिथडे कर दे। लेकिन मै नही मानता कि भारत दीन और असहाय है। मै इतना ही चाहता हूँ कि भारतकी और मेरी शक्तिका उपयोग एक बडे उद्देश्यके लिए हो।

लेकिन जब मै शक्तिकी बात कहता हूँ तो आप मुझे गलत न समझे। शक्ति किसीकी शारीरिक क्षमतासे ही उद्भूत नही होती। यह तो हृदयकी अदम्य इच्छासे उत्पन्न होती है। अगर शारीरिक क्षमताकी बात ले तो कोई भी सामान्य जूलू किसी भी सामान्य अंग्रेजसे बहुत शक्तिशाली होता है। लेकिन वह किसी अंग्रेज लडकेको देखकर भाग खडा होता है, क्योंकि वह उस लड़केके रिवाल्वरसे या उन लोगोसे डरता है जो उस लडकेकी खातिर रिवाल्वरका प्रयोग करेगें। वह मृत्युसे डरता है और अपने हृष्ट-पुष्ट कद्दावर शरीरके बावजूद साहस छोड देता है। हम भारतके लोग क्षण-भरमे यह बात समझ सकते है कि तीस करोड लोगोको एक लाख अंग्रे-जोसे डरनेका कोई कारण नही है। इसलिए अगर हम उनके प्रति असंदिग्ध रूपसे क्षमाशीलताका भाव रखते है तो इसका मतलब होगा, हमने उतने ही निश्चित रूपसे अपनी शक्तिको पहचान लिया है। इस विवेकजनित क्षमाशीलताके साथ ही हममें शक्तिकी ऐसी जबरदस्त लहर आयेगी कि फिर किसी भी डायर या फ्रेंक जॉन्सनके लिए निष्ठावान भारतीयोको अपमानित कर सकना असम्भव हो जायेगा। अगर मैं इस समय लोगोंको अपनी बात न समझा पाऊँ तो मुझे उसकी कोई परवाह नही। हमें जिस बुरी तरह पददलित किया गया है, उसे देखते यह असम्भव है कि हममें क्रोध और प्रतिशोधकी भावना न हो। लेकिन मै यह अवश्य कहूँगा कि भारत अपना दण्ड देनेका अधिकार छोड़कर अधिक लाभ पा सकता है। हमे इससे बेहतर काम करना है, दुनियाको एक उच्चतर सन्देश देना है।

मै स्वप्नदर्शी नही हूँ। मै एक व्यावहारिक आदर्शवादी व्यक्ति होनेका दावा करता हूँ। अहिंसा-धर्म केवल ऋषियो और सन्तोके लिए ही नही है। यह आम लोगों-के लिए भी है। जैसे पशु-जगत्का नियम हिंसा है, वैसे ही मनुष्य जातिका नियम अहिंसा है। पशुकी आत्मा सोई रहती है और वह शारीरिक बलके अलावा और कोई

नियम नही जानता। लेकिन मनुष्यका गौरव एक उच्चतर नियम—आत्माकी शक्ति—के निर्देशपर चलनेमे हैं।

इसलिए मैने भारतके सामने आत्मबलिदानके प्राचीन नियमको रखनेका साहस किया है। सत्याग्रह और उसकी शाखाएँ—अर्थात् असहयोग और सविनय अवज्ञा—ये सब और कुछ नही कष्टसहनके नियमके ही नये-नये नाम हैं। जिन ऋषियोने पूर्ण हिंसाके बीच अहिंसाके नियमको खोज निकाला वे न्यूटनसे कही अधिक मेधावान थे। वे स्वय वेलिंग्टनसे[1] भी बडे योद्धा थे। वे स्वय शस्त्र-प्रयोगमे निष्णात थे, अत. उन्होने उसकी निरर्थकता समझी और इसलिए थके-हारे संसारको उन्होने सिखाया कि उसकी मुक्तिका मार्ग हिंसा नही, अहिंसा है।

सक्रिय अहिंसाका मतलब है स्वेच्छासे कष्टसहन। इसका मतलब अन्यायीकी इच्छाके आगे दीनतापूर्वक झुक जाना नही है। इसका मतलब तो अपनी आत्माकी समस्त शक्तिसे अत्याचारीका विरोध करना है। हमारे अस्तित्वको सार्थक बनानेवाले इस नियमका अनुसरण करके कोई अकेला व्यक्ति भी अपने सम्मान, अपने धर्म और अपनी आत्माकी रक्षा करनेके लिए एक अन्यायी साम्राज्यकी समस्त शक्तिको चुनौती दे सकता है और उस साम्राज्यके पतन या पुनरुद्धारका कारण बन सकता है।

अत. यदि मै भारतसे अहिंसाका आचरण करनेको कह रहा हूँ तो उसका कारण यह नही है कि भारत कमजोर है। मै उससे अपनी शक्ति और बलको जानते हुए भी अहिंसाका आचरण करनेको कहता हूँ। इस शक्तिका बोध प्राप्त करनेके लिए उसे शस्त्रास्त्र चलानेका प्रशिक्षण लेनेकी जरूरत नही है। आज अगर हमे उसका प्रशिक्षण लेनेकी जरूरत जान पड़ती है तो उसका कारण यह है कि शायद हम अपने-आपको हाड-मासका लोंदा-भर समझते हैं। मै चाहता हूँ, भारतको इसकी प्रतीति हो जाये कि उसके पास आत्मा भी है जिसका कभी नाश नही हो सकता, और जो समस्त शारीरिक दुर्बलताओके बावजूद समस्त ससारके सयुक्त भौतिक-बलको चुनौती दे सकती है। राम तो सिर्फ एक साधारण मनुष्य ही थे, लेकिन वे अपनी वानरसेना लेकर उस दशशीश रावणकी उद्धत शक्तिके मुकाबले जा डटे जो चारो ओर घहराते समुद्रसे घिरी लकामे अपनेको पूर्णतया सुरक्षित मानता था। क्या यह शारीरिक शक्तिपर आत्मिक शक्तिकी विजयका द्योतक नही है? लेकिन एक व्यावहारिक व्यक्ति होनेके नाते मै उस समयतक प्रतिज्ञा नही करूँगा जबतक भारत यह न स्वीकार कर ले कि राजनीतिक दुनियामें अध्यात्म एक व्यवहार्य चीज है। भारत इंग्लैंडकी मशीनगनो, टैंकों और विमानोके सामने अपने-आपको शक्तिहीन और असहाय समझता है; और वह अपनी दुर्बलताके कारण ही असहयोगका सहारा ले रहा है। फिर भी, इससे वही उद्देश्य सिद्ध होगा, अर्थात् अगर पर्याप्त सख्यामे लोगोने असहयोग किया तो भारत ब्रिटिश अन्यायके भयकर बोझसे मुक्त हो जायेगा।

१. अंग्रेज जनरल, जिसने नेपोलियनको वॉटरलूके मैदानमें अन्तिम रूपसे पराजित किया था।

मैं असहयोगको सिन फैनवादसे[1] अलग मानता हूँ, क्योंकि इसकी कल्पनाके अनुसार असहयोगका प्रयोग हिंसाके साथ-साथ कर सकना सम्भव नही है। लेकिन मैं हिंसावादी लोगोंको भी एक बार इस शान्तिपूर्ण असहयोगको आजमाकर देखनेको आमन्त्रित करता हूँ। अगर यह असफल होगा तो किसी सहज दोषके कारण नही बल्कि लोगोंके उत्साहकी कमीके कारण होगा। और यही अवसर असली खतरेका होगा। ऐसे उच्चात्मा व्यक्ति, जो राष्ट्रीय अपमानको सहनेके लिए अब कतई तैयार नहीं हैं, अपना क्षोभ बाहर निकालना चाहेगे। और इसके लिए वे हिंसाका सहारा लेगे। लेकिन जहाँतक मैं जानता हूँ, ऐसा करके वे न तो स्वय ही इस अन्यायसे छुटकारा पा सकेगे और न देशको ही दिला सकेगे, बल्कि अपने प्रयासमे वे स्वयं नष्ट हो जायेगे। भारत यदि खड्ग-बलके सिद्धान्तका सहारा ले तो हो सकता है, उसे कुछ समयके लिए सफलता मिल जाये। लेकिन भारत तब वह भारत नही रह जायेगा जिसपर मैं गर्व कर सकूँगा। भारतसे मेरे अभिन्न सम्बन्धका कारण यही है कि आज मेरे पास जो-कुछ है उसके लिए मैं उसीका ऋणी हूँ। मेरा निश्चित मत है कि उसे दुनियाको एक सन्देश देना है एक रास्ता दिखाना है। उसे यूरोपका अन्धानुकरण नही करना है। जिस समय भारत खड्ग-बलके सिद्धान्तको स्वीकार कर लेगा, वह मेरी परीक्षाकी घडी होगी। और मुझे आशा है, मैं इस कसौटीपर खरा ही सिद्ध होऊँगा। मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओसे बँधा हुआ नही है। अगर उसमें मेरा विश्वास सच्चा और सजीव है तो वह भारतके प्रति मेरे प्रेमकी सीमाओको लाँघ लेगा। मेरे जीवनका उद्देश्य अहिंसा-धर्मपर चलते हुए भारतकी सेवा करना है और अहिंसाको मैं हिन्दुत्वका मूल मन्त्र मानता हूँ।

जो लोग मुझमे विश्वास नही रखते, उनसे फिलहाल तो मैं यही अनुरोध करूँगा कि वे इस भ्रममे पडकर कि मैं हिंसा चाहता हूँ, अभी-अभी आरम्भ होनेवाले इस संघर्षके मार्गमे लोगोंको हिंसाके लिए भड़काकर विघ्न न डाले। दुराव-छिपावको मैं पाप मानता हूँ उससे घृणा करता हूँ। अहिंसक असहयोगको वे एक बार आजमाकर तो देखे, फिर उन्हें स्वयं ही मालूम हो जायेगा कि मेरे मनमे किसी प्रकारका दुराव-छिपाव नही था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११–८–१९२०

१. आयरलैंडका एक हिंसात्मक राष्ट्रीय आन्दोलन। इस आन्दोलनके समर्थकोंका उद्देश्य भाषा-संस्कृति तथा राजनीतिके क्षेत्रमें भी राष्ट्रीय पुनर्जागरण लाना था।

९२. अदालतें और स्कूल

असहयोग समितिने असहयोगके प्रथम चरणमे वकीलो द्वारा अदालतोके बहिष्कारका और माता-पिताओ तथा विद्यार्थियो द्वारा, जहाँ जैसा प्रसग हो, स्कूलो और कालेजोके बहिष्कारका कार्यक्रम रखा है। मै जानता हूँ कि अदालतो और स्कूलोका बहिष्कार करनेकी सलाह देनेपर भी अगर लोगोने मुझे खुल्लम-खुल्ला पागल करार नही दे दिया है तो उसका श्रेय एक कार्यकर्त्ता और योद्धाके रूपमे मेरी ख्यातिको ही है। लेकिन मै यह दावा करनेका साहस करता हूँ कि मेरे पागलपनमे भी एक तरीका है। यह बात बहुत आसानीसे समझी जा सकती है कि सरकार इन अदालतोके माध्यमसे ही अपनी सत्ताकी धाक जमाती है, और इन स्कूलोमे ही अपने क्लर्क और दूसरे कर्मचारी तैयार करती है। अगर सरकार कुल मिलाकर न्यायप्रिय हो तो उसकी अदालते और स्कूल बहुत अच्छी संस्थाएँ हैं। लेकिन अगर वह अन्यायी हो तो ये सस्थाएँ मृत्यु-पाश बन जाती है।

पहले वकीलोंके सम्बन्धमें

मेरे असहयोग विषयक विचारोकी आलोचना जैसी दृढता और योग्यताके साथ इलाहाबादके 'लीडर' ने की है, वैसी दृढ़ता और योग्यताके साथ और किसी अखबारने नही की है। सन् १९०८मे लिखी अपनी 'हिन्द स्वराज्य'[१] नामकी पुस्तिकामे मैंने वकीलोके सम्बन्धमें जो विचार प्रकट किये हैं, उनकी उसने बडी दिल्लगी उड़ाई है। लेकिन इस सम्बन्धमे मेरे विचार अब भी वैसे ही हैं। और अगर समय मिला तो मै इन स्तम्भोंमें उन विचारोपर और भी विस्तारसे लिखनेकी आशा रखता हूँ। लेकिन फिलहाल मै उनपर कुछ नही लिख रहा हूँ, क्योकि मेरे सर्वथा निजी विचारोका मेरी इस सलाहसे कोई सम्बन्ध नही है कि वकीलोको अपना धन्धा बन्द कर देना चाहिए। और मैं निवेदन करूँगा कि राष्ट्रीय असहयोगके लिए वकीलोका अपना धन्धा बन्द करना जरूरी है। सरकारके साथ अदालतोके जरिये जितना सहयोग वकील करते हैं, उतना शायद और कोई नही करता। वकील लोग जनताको कानूनका अर्थ समझाते हैं और इस प्रकार सरकारकी सत्ताको सहारा प्रदान करते हैं। यही कारण है कि उन्हे अदालती अफसर कहा जाता है। उन्हे हम अवैतनिक पदाधिकारी भी कह सकते हैं। ऐसा कहा जाता है कि सरकारका सबसे प्रबल मुकाबला यदि किसीने किया है तो वकीलोने ही किया है। नि सन्देह, यह बात अशत सत्य है। लेकिन इससे इस धन्धेमे निहित बुराई दूर नही हो जाती। इसलिए जब राष्ट्रकी इच्छा सरकारको ठप कर देने की है और यदि वकालत-पेशा लोग सरकारको अपनी इच्छाके सामने झुकानेमे राष्ट्रसे सहयोग करना चाहते हों तो उन्हें अपना धन्धा बन्द कर देना चाहिए। लेकिन

१. दरअसल यह १९०९ में लिखी गई थी; देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ६।

आलोचकोका कहना है कि अगर वकील और बैरिस्टर लोग मेरे फैलाये जालमे फँस जायें तो सरकारको तो इससे प्रसन्नता ही होगी। लेकिन मैं ऐसा नही मानता। जो बात सामान्य स्थितिमें लागू होती है, वही असामान्य स्थितिमे लागू नही होती। साधारण समयमे सरकार वकीलो द्वारा अपनी तीव्र आलोचना नापसन्द कर सकती है, लेकिन जब उसके विरोधमे कोई जोरदार कार्रवाई की जा रही हो, ऐसे समयमे वह एक भी वकीलका समर्थन नही खोना चाहेगी, और वकालत करते रहना ही यह समर्थन है।

इसके अलावा, मेरी योजनामे धन्धा बन्द करनेका मतलब गतिहीनता नही है। वकीलोको अपना धन्धा बन्द करके आराम नही करना है। उनसे यह अपेक्षा की जायेगी कि वे अपने मुवक्किलोको अदालतोका बहिष्कार करनेकी सलाह दे। वे लोगोके विवाद निवटानेके लिए पचायत-मण्डलोकी व्यवस्था करेगे। जो राष्ट्र एक ऐसी सरकारसे न्याय प्राप्त करनेको कृतसकल्प हो जो न्याय देना नही चाहती, उसके लिए आपसी झगडोमें अपना समय बरबाद करनेकी गुजाइश नही है। वकीलोसे अपने मुवक्किलोको यह सत्य समझानेकी अपेक्षा की जायेगी। पाठक शायद नही जानते होगे कि इग्लैंडमे गत महायुद्धके दौरान बहुत-से प्रमुख वकीलोने अपना धन्धा बन्द कर दिया था। इस तरह अस्थायी तौरपर अपना धन्धा बन्द करके वकील लोग युद्ध-प्रयत्नमे, सिर्फ अपने अवकाश और मन बहलावके समयमे नही बल्कि पूरे समय काम करने लगे। असली राजनीति कोई खेल और मन बहलावकी चीज नही है। स्वर्गीय श्री गोखले अक्सर इस बातपर दुख प्रकट करते थे कि हम लोगोने राजनीतिको मन बहलावसे अधिक महत्त्व नही दिया। हम इस चीजको नही समझते कि बहुत ही गम्भीर भावसे अपना सारा समय लगाकर सरकारका काम करनेवाली प्रशिक्षित नौकरशाहीके विरुद्ध हमारी लडाइयोका सचालन शौकिया राजनीतिज्ञोके हाथोमे रहनेसे देशकी कितनी बडी क्षति हुई है।

हमारे आलोचकोंका यह भी कहना है कि अपना धन्धा छोड देनेपर वकील लोग भूखो मरेगे। यह बात सिन्हा-जैसे वकीलोके लिए नही कही जा सकती। वे तो कभी-कभी यूरोप-भ्रमणके लिए या अन्य उद्देश्यसे यो भी अपना धन्धा बन्द कर देते है। लेकिन जो लोग इस धन्धेसे मुश्किलसे अपनी जीविका-भर कमा पाते है, वे अगर सच्चे और ईमानदार हो तो हर स्थानीय खिलाफत समिति उन्हे पूरा समय देनेके बदले मानदेयके रूपमे एक रकम देती रह सकती है।

अन्तमे मुसलमान वकीलोकी बात ले, जिनके बारेमे कहा गया है कि अगर वे अपना धन्धा छोड देगे तो तुरन्त ही उसका लाभ हिन्दू वकील उठायेंगे। मुझे आशा है कि अगर हिन्दू वकील अपना धन्धा बन्द न करेगे तो कमसे-कम इतने साहसका परिचय तो अवश्य देंगे कि अपने मुसलमान भाइयोके मुवक्किलोको अपना मुवक्किल नही बनायेंगे। लेकिन मेरा निश्चित विश्वास है कि कोई भी धार्मिक प्रवृत्तिका मुसलमान यह नही कहेगा कि हम यह सघर्ष तभी चला सकते है जब त्याग और बलिदानमे हिन्दू भी हमारे साथ हो। अगर हिन्दू अपने कर्त्तव्यका पालन करते हुए मुसलमानोका साथ देते है तो इससे उनका सम्मान बढेगा और दोनो समुदायोके

लोगोंको लाभ पहुँचेगा। लेकिन हिन्दू साथ दे या नही, मुसलमानोको तो आगे वढना ही है। अगर यह उनके लिए जीवन-मरणका सवाल है तो उन्हे उसकी जो भी कीमत चुकानी पडे, उसका खयाल नही करना चाहिए। अपने सम्मान, विशेषकर अपने धार्मिक सम्मानकी रक्षा करनेके लिए जो भी मूल्य चुकाना पड़े, कम ही होगा। वलिदान वही लोग कर सकते है जो बलिदान किये विना नही रह सकते। लाचारीका वलिदान कोई वलिदान नही होता। वह स्थायी नही होगा। जिस आन्दोलनका समर्थन अनिच्छुक कार्यकर्त्ता किसी प्रकारके दबावके कारण करे तो उस आन्दोलनमे सत्यनिष्ठा नही होती। जिस दिन एक-एक मुसलमान शान्ति-सन्धिकी शर्तोंको अपने प्रति किया गया व्यक्तिगत अन्याय मानने लगेगा उस दिन खिलाफत आन्दोलनकी शक्ति दुर्निवार हो उठेगी। जिस समय किसीके प्रति व्यक्तिगत तौरपर कोई अन्याय किया जाता है उस समय वह उसके प्रतिकारके लिए दूसरोकी सहायता या वलिदानकी प्रतीक्षा नही करता। नि सन्देह वह दूसरोकी सहायता पानेकी कोशिश करता है, लेकिन चाहे उसे सहायता मिले या नही, उस अन्यायके खिलाफ उसका सघर्ष चलता रहता है। अगर उसका पक्ष न्यायपूर्ण है तो ईश्वरीय नियम यही है कि उसे सहायता मिलेगी। ईश्वर असहायोका सहायक है। जब पाण्डव द्रौपदीकी रक्षा करनेमे असमर्थ हो गये तब ईश्वरने ही आकर उसकी लज्जाकी रक्षा की। जव ऐसा लग रहा था कि सभी लोगोने पैगम्वरका साथ छोड दिया है तब उनकी सहायता खुदाने की थी।

अव स्कूलोंके बारेमें

मै तो यह मानता हूँ कि अगर हममे अपने वच्चोकी शिक्षा स्थगित करनेका साहस नही है तो हम इस सघर्पमे विजय पानेके उपयुक्त पात्र नही है।

आन्दोलनके पहले चरणमे सरकारकी कृपासे प्राप्त पद-प्रतिष्ठाके परित्यागकी वात शामिल की गई है। दरअसल कोई भी सरकार किसीके प्रति ऐसी कृपा-दृष्टि तभी दिखाती है जव उस व्यक्तिने उसकी उससे भी वडी सेवा करके उसपर कृपा की हो। जो सरकार मुफ्त ही कृपा बाँटती चलेगी उसे खराब और विवेकशून्य सरकार माना जायेगा। जो सरकार जनताकी इच्छापर आधारित हो उससे हम अपनी सेवाओंकी स्वीकृतिके प्रतीकस्वरूप कोई मामूली अलकार पानेके लिए भी अपने प्राणोकी बाजी लगा देते है। लेकिन जनताकी इच्छाका अनादर करनेवाली अन्यायी सरकारसे प्राप्त की गई कोई भी जागीर गुलामी और अपमानकी निशानी वन जाती है। इस दृष्टिसे हमे एक क्षण भी सोच-विचार किये विना स्कूलोको छोड देना चाहिए।

मेरे लिए तो असहयोगकी सारी योजना अन्य वातोके अलावा हमारी भावनाकी गहराई और व्यापकता परखनेकी एक कसौटी भी है। क्या हम खरे है? क्या हम कष्ट-सहनके लिए तैयार है? कहा गया है कि हमे खितावयाफ्ता लोगोसे अधिककी अपेक्षा नही रखनी चाहिए, क्योकि उन्होने कभी किसी राष्ट्रीय मामलेमे हिस्सा नही लिया है और उन्होने जो सम्मान पाया है वह इतनी वडी कीमत देकर पाया है कि वे सहज ही उसे छोडनेको तैयार नही होगे। मै आपत्ति करनेवाले लोगोके सामने यह दलील पेश करता हूँ, और उनसे पूछता हूँ कि स्कूली वच्चोके

माता-पिताओं और कालेजके वयस्क छात्रोंके बारेमें उनका क्या कहना है? उनका तो खिताबयाफ्ता लोगोंकी तरह सरकारसे कोई वैसा गहरा सम्बन्ध नहीं है। प्रश्न यह है कि उनकी भावनाएँ इतनी तीव्र हैं या नहीं कि वे स्कूली पढ़ाईका त्याग कर सकें?

लेकिन मेरे विचारसे स्कूल छोड़ देनेमें कोई त्याग और बलिदान है ही नहीं। अगर हम सरकारसे पूरी तरहसे स्वतन्त्र रहकर अपनी शिक्षाकी भी व्यवस्था नहीं कर सकते तो हम असहयोगके बिलकुल अनुपयुक्त हैं। हर गाँवको अपने बच्चोंकी शिक्षाकी व्यवस्था खुद ही करनी चाहिए। मैं तो इस मामलेमें सरकारी सहायतापर निर्भर करना बिलकुल पसन्द नहीं करूँगा। अगर हममें सच्ची जागृति आ जाये तो बच्चोंकी पढ़ाईमें एक दिनका भी व्यवधान न पड़े। जो शिक्षक आज सरकारी स्कूलोंको चला रहे हैं वे अगर त्यागपत्र दे दें तो वे हमारे राष्ट्रीय स्कूलोंका संचालन-भार सँभाल सकते हैं और हमारे बच्चोंमें से अधिकांशको बजाय मामूली क्लर्क बनानेके उन्हें जिन चीजोंकी शिक्षाकी जरूरत है, उन चीजोंकी शिक्षा दे सकते हैं। और बेशक, मैं अलीगढ़ कालेजसे इस मामलेमें नेतृत्व करनेकी अपेक्षा रखता हूँ। अगर हम मदरसोंको खाली कर दें तो उसका नैतिक प्रभाव बड़ा जबरदस्त होगा और मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दू माता-पिता और विद्यार्थी अपने मुसलमान भाई-बहनोंका अनुकरण करेंगे।

दरअसल माता-पिता और विद्यार्थी किताबी ज्ञानके पीछे न पड़कर अपनी धार्मिक भावनाका खयाल करें, इससे शानदार शिक्षा और क्या हो सकती है? इसलिए जो विद्यार्थी स्कूलों और कालेजोंसे हटा लिये जायें उनकी किताबी शिक्षाका अगर तत्काल कोई प्रबन्ध नहीं किया जा सकता तो जिस उद्देश्यके लिए उन्हें सरकारी स्कूल छोड़नेकी जरूरत पड़ सकती है, उस उद्देश्यके लिए स्वयंसेवकोंके रूपमें काम करना एक लाभदायक शिक्षा सिद्ध हो सकती है। कारण वकीलोंकी तरह ही विद्यार्थियोंके मामलेमें भी मेरी कल्पना यह नहीं है कि वे स्कूल छोड़कर निष्क्रिय जीवन बितायें। स्कूल छोड़नेवाले सभी लड़कोंसे, अपनी योग्यताके अनुसार, इस आन्दोलनमें हाथ बँटानेकी अपेक्षा की जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-८-१९२०

९३. भेंट : 'मद्रास मेल'के प्रतिनिधिसे[1]

१२ अगस्त, १९२०

[मद्रास मेलके] एक प्रतिनिधिने कल श्री मो० क० गांधीसे भेंट की। श्री गांधी दक्षिण भारतके कुछ प्रमुख मुस्लिम केन्द्रोंके दौरेके सिलसिलेमें मद्रास आये हुए है। वे कई कार्यकर्त्ताओके साथ अपने कार्यक्रमपर विचार करनेमें व्यस्त थे; फिर भी उन्होने जिस विषयको लेकर मुसलमान और हिन्दू आज इतने आन्दोलित हो उठे है, उस विषयसे सम्बद्ध प्रश्नोंके उत्तर देनेकी तत्परता दिखाई।

[प्रतिनिधि :] श्री गांधी, सत्याग्रहके अपने गतवर्षके अनुभवोके बाद भी क्या आप यह सोचते हैं, आपको यह विश्वास है कि लोगोंको असहयोग करनेकी सलाह देना ठीक है?

[गाधीजी .] विलकुल।

आप किस तरह मानते है कि गत वर्षके सत्याग्रह आन्दोलनके समयसे अब स्थिति बदल गई है?

मै समझता हूँ कि अव लोग उस समयकी अपेक्षा अधिक अनुशासित हो गये है। इन लोगोमें मै जनसाधारणको भी गिनता हूँ, जिन्हे वहुत वडी सख्यामे देशके विभिन्न भागोमे देखने-समझनेका मुझे अवसर मिला है।

और आपको भरोसा है कि जनसाधारण सत्याग्रहकी भावनाको समझता है?

हाँ, पूरा भरोसा है।

और यही कारण है कि आप असहयोगके कार्यक्रमको कार्यरूप देनेपर जोर दे रहे है?

हाँ, इसके अतिरिक्त एक और बात भी है। जिस खतरेकी आशका सत्याग्रहके सविनय अवज्ञावाले हिस्सेमे थी, उसकी आशका असहयोगमे नही है, क्योकि असहयोगमे हम कानूनोकी सविनय अवज्ञाके कार्यक्रमको सार्वजनिक आन्दोलनके रूपमे नही अपनाने जा रहे है। अबतक जो परिणाम सामने आये है, वे वहुत उत्साहवर्धक है। उदाहरणके लिए, यद्यपि अधिकारियोने सिंध और दिल्लीके नागरिकोकी स्वतन्त्रतापर वहुत क्षोभकारी प्रतिवन्ध लगा रखे है, फिर भी राजद्रोहात्मक सभा-सम्बन्धी घोषणाके बारेमें समितिकी हिदायतोंका उन्होने पूरी तरह पालन किया है। यही बात दीवारोपर पर्चे न चिपकानेके आदेशके बारेमे भी है। वैसे तो हम नही मानते कि

१. यह १३-८-१९२० के मद्रास मेलमें इस शीर्षकसे छपा था: "श्री गाधीके साथ एक बातचीत/ असहयोगसे सम्बन्धित बातोका खुलासा"; प्रस्तावना स्वरूप लिखे गये पैरेके साथ भेंटका यह विवरण यंग इंडियामें उद्धृत किया गया था।

पर्चे चिपकानेमें कोई अपराध-जैसी बात है, लेकिन अधिकारियोंने उसे अपराध ही माना है।

अगर सरकारके साथ सहयोग करना बन्द कर दिया जाता है तो आप उससे अधिकारियोंपर किस तरहका दबाव पड़नेकी आशा रखते हैं?

मैं मानता हूँ, और सभी मानेंगे कि जनता चाहे राजी-खुशी सरकारके साथ सहयोग करे या मजबूरीसे, लेकिन उसके इस सहयोगके बिना कोई सरकार क्षण-भर भी नहीं टिक सकती; और अगर लोग हर क्षेत्रमें एकाएक सहयोग देना बन्द कर दें तो सरकार बिलकुल ठप हो जायेगी।

लेकिन क्या इसमें एक बहुत बड़ा "अगर" नहीं लगा हुआ है?

हाँ, अवश्य है।

और आप इस "अगर"के विरुद्ध किस तरह सफल होनेकी सोचते हैं?

संघर्षकी मेरी जो योजना है उसमें किसी भी प्रकार कार्यसिद्ध करनेका कोई विचार नहीं है। अगर खिलाफत आन्दोलनने सचमुच सभी वर्गों और जनसाधारणको प्रभावित किया है तो इसमें भाग लेनेके लिए पर्याप्त लोग भी सामने आयेंगे ही।

लेकिन इस प्रसंगमें क्या आप एक सत्यको यों ही मानकर नहीं चल रहे हैं?

नहीं, मैं किसी भी सत्यको यों ही मानकर नहीं चल रहा हूँ, क्योंकि जो तथ्य मेरे सामने हैं उनके आधारपर तो मैं यही मानता हूँ कि खिलाफतके सवालपर मुसलमानोंकी भावना बड़ी तीव्र है। अब देखना यही है कि उनकी भावना इतनी तीव्र है या नहीं कि सफल असहयोगके लिए जितने बलिदानकी जरूरत है वे उतना बलिदान कर सकें।

मतलब यह कि आपने स्थितिका जो सर्वेक्षण किया है उसके आधारपर आपको विश्वास होता है कि मुस्लिम आबादीके एक बहुत बड़े हिस्सेका समर्थन आपको प्राप्त है और इस विश्वासके आधारपर आप सोचते हैं कि असहयोग करनेकी सलाह देकर आपने ठीक ही किया, यही न?

हाँ।

और आपको यह भरोसा है कि इस असहयोगका इतना प्रसार होगा कि लोग सरकारसे सहयोग करना पूरी तरह बन्द कर देंगे?

नहीं, ऐसा नहीं है, और न फिलहाल मैं ऐसा चाहता ही हूँ। अभी तो मैं उसी हदतक असहयोग कर रहा हूँ जिस हदतक वह सरकारको यह महसूस करानेके लिए जरूरी है कि इस मामलेमें जनताकी भावना कितनी तीव्र है और इस कारण वह सरकारसे इतनी अधिक असन्तुष्ट है कि खिलाफत और पंजाबके सवालोंपर जो-कुछ किया जा सकता था, वह न तो भारत सरकारने किया और न ही साम्राज्य सर-कारने।

लेकिन श्री गांधी क्या आप यह महसूस करते हैं कि मुसलमानोंके बीच भी ऐसे बहुत-से लोग हैं जो अपनी जातिके प्रति किये गये इस अन्यायको चाहे जितना

भी महसूस करते हों, लेकिन असहयोगके लिए उनके मनमें कोई खास उत्साह नहीं है?

हाँ, यह बात तो मैं महसूस करता हूँ, लेकिन असहयोग करनेके लिए तैयार लोगोंकी अपेक्षा उनकी संख्या कम है।

और फिर भी आप यह तो देख ही रहे हैं कि आपने लोगोंसे अपने खिताब और पद छोड़ने और कौंसिलोंके चुनावका बहिष्कार करनेकी जो अपील की उसकी सन्तोषजनक प्रतिक्रिया नहीं हुई है। इन बातोंसे क्या यह लक्षित नहीं होता कि आप उनके विश्वासकी गहराईको बहुत बढ़ाकर आँक रहे हैं?

मेरा खयाल है, नहीं, क्योंकि अभी तो असहयोगकी प्रारम्भिक अवस्था ही है और हमारे देशवासी बराबर बहुत सावधानी बरतते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त इसके प्रथम चरणका सम्बन्ध अधिकांशत समाजके उच्चतम वर्गोंसे है, जिनकी संख्या बहुत ही कम है, हालाँकि इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे बड़े प्रभावशाली लोग हैं।

क्या आप मानते हैं कि इन उच्चवर्गीय लोगोंने आपके अनुरोधका पर्याप्त अनुकूल उत्तर दिया है?

फिलहाल तो मैं यह नहीं कह सकता कि उन्होंने दिया है और न यही कह सकता हूँ कि नहीं दिया है। निश्चित उत्तर मैं इस माहके अन्तमें ही दे सकूँगा।

क्या आप ऐसा मानते हैं कि सम्राट् और राज-परिवारके प्रति अपनी वफादारीमें शंकाकी कोई गुंजाइश न छोड़ते हुए भी कोई युवराजकी यात्राके सम्बन्धमें असहयोग करनेकी सलाह दे सकता है?

अवश्य दे सकता है, और उसका सीधा-सादा कारण यह है कि अगर युवराजकी प्रस्तावित यात्राके बहिष्कारमें कोई गैर-वफादारी है भी तो वह तत्कालीन सरकारके प्रति गैर-वफादारी है, न कि महाविभव युवराजके प्रति।

युवराजकी यात्राके बहिष्कारका प्रचार करके आपकी रायमें क्या लाभ होगा?

इस यात्राका बहिष्कार करके मैं दुनियाको यह दिखाना चाहता हूँ कि भारतके लोगोंको वर्तमान सरकारसे कोई हमदर्दी नहीं है और पंजाब तथा खिलाफतके सवालों-पर और कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक कदमोंके सम्बन्धमें भी सरकारकी नीति उन्हें बहुत ज्यादा नागवार गुजरती है। मैं समझता हूँ कि युवराजकी यात्रा लोगोंके लिए वर्तमान सरकारके प्रति अपनी नापसन्दगी जाहिर करनेका एक अनोखा सुअवसर है। आखिरकार इस यात्राके पीछे बहुत जबरदस्त राजनीतिक परिणामोंकी कल्पना तो की ही गई है। यह यात्रा ऐसी नहीं है जिसका कोई राजनीतिक महत्त्व नहीं होगा। भारत सरकार और साम्राज्य सरकार इस यात्राको प्रथम कोटिके राजनीतिक महत्त्वकी घटना बनाना चाहती हैं, अर्थात् वे इस यात्राका उपयोग भारतपर अपनी पकड़ मज-बूत करने के लिए करना चाहती हैं। इसलिए अपने तईं तो मैं यही मानता हूँ कि दो सरकारों द्वारा अपने हितके लिए आयोजित इस यात्राका बहिष्कार करना लोगोंका

परम कर्त्तव्य है, क्योंकि फिलहाल इन दोनो सरकारोका हित जनताके हितोके सर्वथा विरुद्ध पडता है।

क्या आपका मतलब यह है कि आप बहिष्कारका प्रचार इसलिए चाहते हैं कि आपके विचारसे भारतपर ब्रिटिश शासनकी पकड़का दृढ़ हो जाना इस देशके हितकी दृष्टिसे वांछनीय नहीं है?

हाँ! वर्तमान सरकार जैसी क्रूर सरकारकी पकडका देशपर दृढ हो जाना यहाँके लोगोके कल्याणकी दृष्टिसे वाछनीय नही है। मै इंग्लैंड और भारतके सम्बन्धो-को ख्वाहमख्वाह शिथिल कर देना नही चाहता। मै तो यह चाहता हूँ कि उनके सम्बन्ध दृढ हो, लेकिन शर्त यह है कि उससे भारतका कल्याण हो।

क्या आप यह मानते हैं कि कौंसिलोंका बहिष्कार न करना और असहयोग, ये दोनो बातें परस्पर असंगत हैं?

नही, मै ऐसा नही मानता, क्योकि जो व्यक्ति असहयोगका कार्यक्रम स्वीकार करता है उसके लिए कौसिलके उम्मीदवारके रूपमे खडा होना सगत नही होगा।

आपके विचारसे असहयोग अपने-आपमें एक लक्ष्य है या किसी लक्ष्यको सिद्ध करनेका साधन? यदि यह किसी लक्ष्यको सिद्ध करनेका साधन है तो वह लक्ष्य क्या है?

दरअसल यह एक लक्ष्यको सिद्ध करनेका साधन ही है और वह लक्ष्य है वर्त-मान सरकारको, जो बहुत ही अन्यायी हो गई है, न्यायके मार्गपर लाना। जिस प्रकार किसी न्यायी सरकारके साथ सहयोग करना कर्त्तव्य है; उसी प्रकार अन्यायी सरकारके विरुद्ध असहयोग करना भी कर्त्तव्य है।

क्या आप कौंसिलमें प्रवेश करके रोध-अवरोधकी नीति अपनाने या वफादारीकी शपथ लेनेसे इनकार करनेको असहयोगसे संगत मानेंगे?

नही, असहयोगके एक सच्चे प्रयोगकर्त्ताकी हैसियतसे मै मानता हूँ कि ऐसा कोई सुझाव असहयोगकी असली भावनासे मेल नही खाता। मैंने अक्सर कहा है कि रोध-अवरोधकी नीतिपर तो सरकार फूलती-फलती ही है, और जहाँतक वफादारीकी शपथ न लेनेका सम्बन्ध है, मुझे तो दरअसल इसमे कोई प्रयोजन दिखाई नही देता, इसका मतलब है व्यर्थ ही महत्त्वपूर्ण समय और बहुत-सारा धन नष्ट करना।

मतलब यह कि रोध-अवरोधकी नीतिका असहयोगके कार्यक्रममें कोई स्थान है ही नहीं?

नही . . .।

क्या आपको पूरा भरोसा है कि संवैधानिक आन्दोलनके लिए सभी तरहके प्रयास करके देख लिये गये हैं और अब एकमात्र रास्ता असहयोग ही बचा है?

असहयोगको मैं असंवैधानिक तो मानता ही नही उलटे यह अवश्य मानता हूँ कि अब हमारे सामने असहयोग ही एकमात्र सवैधानिक उपाय है।

क्या आपको इसे सिर्फ सरकारका कारोबार ठप कर देनेकी दृष्टिसे अपनानेमें भी संवैधानिकता ही नजर आती है?

बेशक, इसमें असवैधानिकता तो जरा भी नही है, लेकिन कोई समझदार व्यक्ति ऐसे सभी उपायोका जो संवैधानिक हो किन्तु अन्यथा वांछनीय न हो, प्रयोग नही करेगा; और न मैं लोगोंको ऐसा करनेकी सलाह ही देता हूँ। मैं असहयोगका अनुष्ठान क्रमिक तौरपर कर रहा हूँ, क्योकि मैं एक कृत्रिम व्यवस्थाके बदले सच्ची व्यवस्थाको विकसित करना चाहता हूँ। असहयोगके सिलसिलेमे मैं ऐसा कोई कदम नहीं उठाने जा रहा हूँ, जिसके बारेमे मुझे इस बातका पूरा भरोसा न हो कि देश उसके लिए तैयार है, अर्थात् असहयोगके परिणामस्वरूप अराजकता और अव्यवस्था नही फैलेगी।

आप यह निश्चय कैसे करेंगे कि अराजकता नहीं फैलेगी?

उदाहरणके लिए अगर मैं पुलिसको हथियार रख देनेकी सलाह देता हूँ तो वैसा उसी हालतमे करूँगा जब मुझे यह भरोसा हो जाये कि चोरो और डाकुओसे हम अपनी रक्षा आप कर सकते है। लाहौर और अमृतसरके नागरिकोने, जब सेना और पुलिस वहाँसे हट गई थी तब, स्वयसेवकोकी व्यवस्था करके ठीक यही काम किया था। जहाँ सरकार पर्याप्त सैनिकोके अभावमें सुरक्षाका कोई उपाय नही कर पाई थी, मैं जानता हूँ वहाँ भी, लोगोने सफलतापूर्वक अपनी सुरक्षाकी व्यवस्था की।

आपने वकीलोंको अपना धन्धा बन्द करके असहयोग करनेकी सलाह दी है। इस सम्बन्धमें आपका अपना अनुभव क्या है? क्या आपके अनुरोधपर इस काममें इतने वकील शामिल हुए हैं कि आप ऐसी आशा कर सकें कि इस तरहके लोगोंकी सहायतासे आप असहयोग आन्दोलनको उसके सभी चरणोंसे सफलतापूर्वक निभा ले जा सकेंगे?

मैं यह नही कह सकता कि मेरे अनुरोधके उत्तरमे अभीतक बहुत ज्यादा लोग असहयोग आन्दोलनमे शामिल हुए है। कितने लोग शामिल होगे, यह कहनेका समय भी अभी नही आया है। लेकिन मैं इतना कह सकता हूँ कि असहयोग समिति असहयोगके कार्यक्रमको सभी चरणोसे सफलतापूर्वक निभा ले जाये, इसके लिए भी सिर्फ वकीलो और उच्च शिक्षा प्राप्त लोगोपर ही मैं निर्भर नही कर रहा हूँ। जहाँतक असहयोगके कार्यक्रमके अगले चरणोंका सम्बन्ध है, मेरी आशा अधिकतर जनसाधारणपर ही टिकी हुई है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया १८-८-१९२०

९४. भाषण: असहयोगपर[1]

१२ अगस्त, १९२०

अध्यक्ष महोदय और दोस्तो,

पिछले वर्षकी तरह ही इस बार भी मुझे बैठकर ही बोलना पड़ेगा — इसके लिए क्षमा चाहता हूँ। पिछले वर्षकी अपेक्षा मेरी आवाजमें ज्यादा जोर आ गया है, लेकिन शरीर अब भी कमजोर ही है; और अगर मैं खड़ा होकर बोलनेकी कोशिश करूँ तो चन्द मिनटमें ही मेरा सारा शरीर काँपने लगेगा। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप मुझे बैठकर बोलनेकी इजाजत देंगे। यहाँ मैं आपके सामने एक बहुत महत्त्वपूर्ण सवालपर बोलने बैठा हूँ — ऐसे सवालपर जिसके महत्त्वका अन्दाजा हमने अबतक शायद नहीं लगाया है।

मद्रासके इस मनोरम और प्राचीन समुद्र तटपर मैं इस महत्त्वपूर्ण सवालपर बोलना शुरू करूँ, इससे पहले अवश्य ही आप मुझसे अपेक्षा करेंगे, चाहेंगे कि मैं दिवंगत लोकमान्य तिलक महाराजको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करूँ। (दीर्घ हर्ष-ध्वनि) मेरा आपसे यह अनुरोध है कि आप चुपचाप शान्तिके साथ मेरी बातें सुनें। मैं यहाँ आप सबके दिल-दिमागसे एक अपील करने के लिए आया हूँ और यह काम तबतक असम्भव है जबतक आप मेरी बातोंको पूरी शान्तिके साथ सुननेको तैयार न हों। दिवंगत देशभक्तको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मैं इससे ज्यादा कुछ नहीं कह सकता कि उनके जीवनकी तरह ही उनकी मृत्युने भी देशमें एक नई शक्तिका संचार हुआ है। मैं उनकी शव-यात्रामें शामिल था। अगर उस अवसरपर आप भी वहाँ उपस्थित होते तो मेरे शब्दोंका ठीक अभिप्राय समझ सकते। श्री तिलक देशके लिए जिये। उनके जीवनका उद्देश्य देशकी स्वतन्त्रता, जिसे वे स्वराज्य कहते थे, प्राप्त करना था और जब वे मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए थे, तब भी उन्हें इसी स्वतन्त्रताकी धुन लगी हुई थी। अपने देशभाइयोंपर उनके इतने जबरदस्त प्रभावका यही कारण था; अपने इसी देशप्रेमके कारण उन्हें समाजके कुछ गिने-चुने उच्च वर्गीय लोगोंका ही नहीं, बल्कि अपने लाखों-करोड़ों देशभाइयोंका प्रेम प्राप्त था। उनका जीवन सतत आत्मबलिदानकी एक दीर्घ गाथा ही है। उन्होंने अपना अनुशासन और आत्मबलिदानपूर्ण जीवन १८७९ में प्रारम्भ किया और अन्ततक यही जीवन जीते रहे। यही देशपर उनके असाधारण प्रभावका रहस्य था। वे सिर्फ अपने देशके कल्याणकी इच्छा ही नहीं करते थे बल्कि देशके लिए जीना और देशके लिए मरना भी जानते थे। इसलिये मुझे आशा है कि आजकी इस सन्ध्यामें इस विशाल जनसमुदायसे मैं जो-कुछ कह रहा हूँ, वह विफल नहीं होगा, बल्कि जैसे बलिदानका उदाहरण लोकमान्य

१. मद्रासके प्रेसिडेंसी कालेजके सामने समुद्र तटपर आयोजित सभामें।

तिलक महाराजका जीवन था, वैसा ही वलिदान करके लोग मेरी वातोको सफल वनायेगे। उनका जीवन अगर हमें कुछ सिखाता है तो एक ही सर्वोच्च पाठ सिखाता है—वह यह कि अगर हम देशके लिए कुछ करना चाहते है तो वह भापणो—चाहे वे कितने ही जोरदार, कितने भी वाग्मितापूर्ण और कितना भी विश्वास उत्पन्न करनेवाले हो—से नही, वल्कि अपने हर शब्द और हर कामके पीछे वलिदानकी भावना रखकर ही कर सकते हैं। मै आपमे से प्रत्येक व्यक्तिसे यह पूछने आया हूँ कि क्या आप सव अपने देशके लिए, अपने देशके सम्मानके लिए, अपने धर्मके लिए पर्याप्त त्याग करनेको इच्छुक और तैयार है। मुझे मद्रासके नागरिकोमे, और इस महान् प्रान्तके निवासियोमे असीम विश्वास है। यह विश्वास मुझमे १८९३ से ही उत्पन्न होने लगा था, जव मै पहले-पहल दक्षिण आफ्रिकामे तमिल मजदूरोके सम्पर्कमे आया। मै आशा करता हूँ कि परीक्षाकी इस घडीमे यह प्रान्त भारतके किसी भी प्रान्तसे पीछे नही रहेगा, वलिदानकी इस भावनामे सवसे आगे जायेगा और एक-एक शव्दको कार्य-रूप देगा।[1]

असहयोगकी आवश्यकता

यह असहयोग, जिसके वारेमे आपने इतना सुना है, क्या चीज है, और हम क्यो असहयोग करना चाहते है? पहले मै इस "क्यो"पर विचार करूँगा। इस देशके सामने दो सवाल है: इनमे पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण है खिलाफतका सवाल। इस सवालपर भारतके मुसलमानोका हृदय व्यथासे छलनी हो उठा है। इंग्लैंडके प्रधान मन्त्रीने अंग्रेज राष्ट्रकी ओरसे काफी सोच-विचारकर जो वचन दिये थे, उनसे वे सरे-आम मुकर गये। भारतके मुसलमानोंको दिये गये इन्ही वचनोके आधारपर भारत ब्रिटिश राष्ट्रको सहायता देनेको तैयार हुआ और यह सहायता उसने स्वीकार भी कर ली, लेकिन अव इन्ही वचनोको तोड़ दिया गया है और महान् इस्लाम धर्मको खतरेमे डाल दिया गया है। मुसलमानोका विचार है, और मै कहूँगा कि उनका यह विचार विलकुल सही है, कि जवतक ब्रिटेन अपने वचन पूरे नही करता तवतक उसके प्रति निष्ठा और वफादारी वरतना उनके लिए असम्भव है, और अगर मुसलमानोके सामने यह सवाल आता है कि वे ब्रिटेनके प्रति वफादारी दिखाये या अपने मजहवी उसूलो और पैगम्वरके प्रति वफादारी दिखाये तो वे निर्णय करनेमे क्षणभर की भी देर नही करेगे—वल्कि सच तो यह है कि वे अपना निर्णय घोपित कर चुके है। उन्होंने तो बहुत ही स्पष्ट शव्दोमे, खुलेआम और ईमानदारीके साथ सारी दुनियाको यह वता दिया है कि ब्रिटिश मन्त्री और ब्रिटिश राष्ट्रने उन्हे जो वचन दिये है, अगर वे उनका निर्वाह नही करते और भारतमे रहनेवाले इस्लामके ७ करोड़ अनुयायियोकी भावनाका आदर करना नही चाहते तो मुसलमानोके लिए ब्रिटिश सरकारके प्रति सच्ची वफादारी रखना असम्भव होगा। तो अव सवाल सिर्फ इतना ही रह जाता है कि इस सम्वन्धमे भारतके शेप लोग क्या सोचते है—वे अपने मुसल-

१. यहांतक का अंश हिन्दूसे लिया गया है।

मान देशभाइयोके प्रति पडोसीका कर्त्तव्य निभाना चाहते है या नही। और अगर वे यह कर्त्तव्य निभाना चाहते हों तो उनके सामने मुसलमानोके प्रति अपनी सद्भावना, भाई-चारा और मैत्री-भाव प्रदर्शित करनेका तथा वे जो दीर्घकालसे कहते आ रहे है कि मुसलमान हिन्दुओके भाई है, इसे सत्य सिद्ध करनेका सुनहरा अवसर प्रस्तुत है, अगले सौ बरसोमे भी फिर ऐसा अवसर नही आयेगा। अगर हिन्दू लोग मुसलमान भाइयोके साथ अपने स्वाभाविक नातेको ब्रिटिश राष्ट्रके साथ अपने नातेसे ऊपर मानते है तो मै आपसे कहूँगा कि अगर आपको लगता हो कि मुसलमानोकी माँगे न्यायसगत है, उनके हृदयकी सच्ची भावनापर आधारित है, और उनके पीछे एक जबरदस्त धार्मिक भावना काम कर रही है तो आपका एकमात्र कर्त्तव्य यही है कि जबतक मुसलमानोका उद्देश्य न्याय-सम्मत, शालीनतापूर्ण और भारतके लिए किसी भी तरहसे हानिकर नही है तबतक आप उनकी पूरी-पूरी सहायता करे। ये बहुत ही सीधी-सादी शर्तें है। इन्हे मुसलमानोने स्वीकार कर लिया है, और जब उन्होने देखा कि हिन्दू उन्हे जो सहायता देनेको तत्पर है, वह सहायता स्वीकार करनेकी स्थितिमें वे हैं, अर्थात् वे दुनियाके सामने अपने उद्देश्य और साधनका औचित्य बराबर सिद्ध कर सकते है, तभी उन्होने हिन्दुओकी दोस्तीका प्रस्ताव स्वीकार करनेका निश्चय किया। तो अब हिन्दुओ और मुसलमानोका यह कर्त्तव्य है कि वे एक होकर यूरोपकी ईसाई शक्तियोके सामने डट जायें और उन्हें बता दे कि भारत दुर्बल भले हो पर उसमे भी अपने आत्म-सम्मानकी रक्षा करनेकी पर्याप्त क्षमता है, वह आज भी अपने धर्म और आत्म-सम्मानकी खातिर मर मिटना भूल नही गया है।

संक्षेपमें यही है खिलाफतका सवाल। लेकिन आपके सामने पजाबका सवाल भी है। पजाबकी घटनाओसे भारतीयोके हृदयपर ऐसा आघात पहुँचा है जैसा पिछले सौ वर्षोमे कभी किसी घटनासे नही पहुँचा था। मै १८५७के गदरको भी ऐसी घटनाओसे अलग नही रख रहा हूँ। गदरके दौरान भारतीयोको चाहे जितनी भी कठिनाइयाँ झेलनी पडी हो, लेकिन उनका जैसा अपमान करनेकी कोशिश रौलट अधिनियम बनाते समय की गई, और उसके पास हो जानेके बाद उनका जैसा अपमान किया गया, वह भारतके इतिहासमें बेमिसाल है। आप पंजाबके साथ किये गये बर्बरतापूर्ण व्यवहारके सम्बन्धमें ब्रिटिश राष्ट्रसे न्याय प्राप्त करना चाहते है, इसलिए आपको उसका उपाय ढूंढ निकालना है, कॉमन्स सभा, लॉर्ड सभा, श्री मॉण्टेग्यु और भारतके वाइसराय, ये सभी जानते है कि खिलाफत और पजाबके सवालोपर भारतीयोंकी भावना कितनी तीव्र है। ससदके दोनों सदनोमे इन प्रश्नोपर जो बहस-मुबाहिसा हुआ, इस सम्बन्धमें श्री मॉण्टेग्यु और वाइसराय महोदयने जो-कुछ किया उस सबसे आपको पूरी तरह स्पष्ट हो गया होगा कि भारत जिस न्यायका हकदार है और जिसकी वह माँग कर रहा है, वह न्याय वे नही देना चाहते। हमारे नेताओको इस कठिन परिस्थितिसे छुटकारा पानेका कोई रास्ता ढूंढना चाहिए, और जबतक हम भारतमे ब्रिटिश शासकोंके साथ देना-पावना बराबर नही कर लेते, जबतक ब्रिटिश शासक हमारे आत्म-सम्मानका उचित खयाल नही रखने लगते तबतक उनके और हमारे बीच कोई भी सम्बन्ध,

कोई भी मैत्रीपूर्ण समागम सम्भव नही है। इसीलिए मैने असहयोगका यह सुन्दर और लाजवाब रास्ता सुझाया है।

क्या यह असंवैधानिक है?

कुछ लोग मुझसे कहते है कि असहयोग असवैधानिक है। मै साहसपूर्वक कहूँगा कि यह असवैधानिक नही है। इसके वितरीत, मै मानता हूँ कि असहयोगका सिद्धान्त न्यायसम्मत है और कर्त्तव्य-कर्म है। यह प्रत्येक मनुष्यका सहज अधिकार है और पूर्णत. सवैधानिक है। ब्रिटिश साम्राज्यके एक बहुत बडे प्रेमीने कहा है कि ब्रिटिश सविधानके अन्तर्गत कोई भी सफल विद्रोह सर्वथा सवैधानिक है, और उसने अपनी बातकी पुष्टि करनेके लिए इतिहाससे ऐसे दृष्टान्त प्रस्तुत किये है जिन्हे मै अस्वीकार नही कर सकता। लेकिन कोई विद्रोह चाहे सफल हो या असफल, मै तबतक उसकी सवैधानिकताका दावा नही कर सकता जबतक विद्रोहका मतलब वही हो जो साधारणतया इस शब्दसे प्रकट होता है—अर्थात् हिंसक तरीकोसे जबरदस्ती न्याय प्राप्त करना। इसके विपरीत, मैंने अपने देशभाइयोसे बार-बार कहा है कि हिंसासे यूरोपको चाहे जो सिद्धि मिल जाये, भारतको कोई सिद्धि नही मिलनेवाली है। मेरे मित्र, भाई शौकत अली हिंसक तरीकोमे विश्वास रखते है, और अगर ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध तलवार उठा सकना उनके बसकी बात होती तो मै जानता हूँ कि उनमे इतना पुरुषोचित साहस और इतनी सूझबूझ है कि वे ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध युद्ध ठान देते। लेकिन चूँकि एक सच्चे सिपाहीकी हैसियतसे वे समझते है कि भारतके लिए हिंसक उपाय अपनानेका रास्ता बन्द है, इसलिए उन्होने मेरी तुच्छ सहायता स्वीकार करते हुए मेरे मतका अनुमोदन किया है, और मुझे वचन दिया है कि जबतक मै उनके साथ हूँ और जबतक उन्हें इस सिद्धान्तमे विश्वास है तबतक वे किसी अग्रेजके प्रति या दुनियाके किसी भी आदमीके प्रति अपने मनमे हिंसाकी भावनातक नही आने देगे। और मै आपको बता दूं कि वे बातके बहुत धनी साबित हुए है और उन्होने जो वचन दिया उसका वे धार्मिक निष्ठाके साथ पालन करते रहे है। स्वय मै यहाँ इस बातकी साक्षी भरता हूँ कि अहिंसक असहयोगकी योजनाका वे अक्षरश पालन करते रहे है, और मै सारे भारतसे इसी अहिंसक असहयोगके मार्गपर चलनेका अनुरोध करता हूँ। मै कहूँगा कि ब्रिटिश भारतमे हमारे बीच आज शौकत अलीसे अधिक अच्छा सिपाही कोई नही है। जब तलवार उठानेका समय आयेगा, और ऐसा समय अगर कभी आया, तो आप देखेंगे कि शौकत अलीने आगे बढकर तलवार उठा ली है, किन्तु तब मै सभ्य ससारसे दूर, भारतके किसी एकान्त वनमे चला जाऊँगा। जिस क्षण भारत तलवारके सिद्धान्तको स्वीकार कर लेगा, उसी क्षण भारतीयके रूपमे मेरे जीवनका अन्त हो जायेगा। मै ऐसा इसलिए मानता हूँ कि भारतको दुनियाको एक सन्देश देना है, और इसलिए कि मेरे विचारसे हमारे प्राचीन पुरुषोने सदियोके अनुभवके बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि इस धरतीके किसी भी मनुष्यके लिए हिंसापर आधारित न्याय सच्ची चीज नही है, बल्कि सच्ची चीज आत्मबलिदानपर आधारित न्याय है, यज्ञ और कुरबानीसे प्राप्त किया गया न्याय है। इस सिद्धान्तमे मेरी

अटूट आस्था है और अन्ततक रहेगी। इसी कारण मैं आपसे कहता हूँ कि यद्यपि मेरे मित्र वैसे तो हिंसाके सिद्धान्तमें विश्वास रखते हैं और अहिंसाके सिद्धान्तको उन्होंने कमजोरोंके अस्त्रके रूपमे अपनाया है, लेकिन मैं अहिंसाके सिद्धान्तको सबसे शक्तिशाली लोगोंका अस्त्र मानकर उसमे विश्वास करता हूँ। मै मानता हूँ कि जो व्यक्ति अपने शत्रुके सामने खाली हाथ सीना तानकर खडा हो सके और मृत्युको ललकार सके वह सबसे बहादुर सिपाही है। यह तो रहा असहयोगके अहिंसक पक्षके बारेमे। अत मैं अपने सुविज्ञ देशभाइयोसे कहना चाहूँगा कि जबतक असहयोग अहिंसक रहता है तबतक उसमे जरा भी असंवैधानिकता नही है।

अब मैं आपसे सवाल पूछता हूँ. क्या ब्रिटिश सरकारसे मेरा यह कहना कि मुझे तुम्हारी सेवा करना स्वीकार नही, असवैधानिक है? क्या हमारे आदरणीय अध्यक्ष महोदयके लिए यह असवैधानिक है कि जो भी उपाधियाँ उन्हे सरकारसे प्राप्त हुई हैं, उन सबको वे पूरे सम्मानके साथ सरकारको लौटा दे? क्या किसी माता-पिताका सरकारी या सरकारी अनुदान प्राप्त स्कूलसे अपने बच्चोको निकाल लेना असवैधानिक है? क्या किसी वकीलके लिए यह कहना असवैधानिक है कि जबतक तुम्हारी कानूनकी सत्ताका उपयोग मेरे उत्थानके लिए नही बल्कि मेरा पतन करनेके लिए किया जा रहा है तबतक मैं तुम्हारी उस सत्ताको बल नही दूँगा? क्या किसी सरकारी कर्मचारी या जजके लिए यह कहना असवैधानिक है कि जो सरकार सारी जनताकी इच्छाका आदर करना नही चाहती उसकी सेवा करनेसे मैं इनकार करता हूँ? मै पूछता हूँ क्या पुलिसके सिपाही या किसी सैनिकके लिए, जब वह जानता है कि उसे जिस सरकारकी सेवा करनी पड रही है वह उसके अपने ही देशभाइयोको अपमानित और तिरस्कृत करती है, यह असवैधानिक है कि वह अपना त्यागपत्र दे दे? क्या मेरे लिए यह असवैधानिक है कि मैं कृषकोके पास जाकर उनसे कहूँ. आप जो कर सरकारको देते हैं, अगर उन करोका उपयोग आपके कल्याणके लिए नही, बल्कि आपको कमजोर बनानेके लिए होता है, तो आपका कर देना ठीक नही है? मेरा विचार है, और मैं आपके सामने भी यही निवेदन करना चाहूँगा कि इसमे जरा भी असवैधानिकता नही है। इससे भी बड़ी बात यह है कि मैंने अपने जीवनमे इनमे से हर एक काम करके देख लिया और किसीने भी उनकी संवैधानिकतामे शका नही उठाई है। खेड़ामे मैं सात लाख कृषकोके बीच काम कर रहा था। उन सबने कर देना बन्द कर दिया था, और सारा भारत एक स्वरसे मेरे साथ था। किसीने भी ऐसा नही सोचा कि यह काम असवैधानिक है। मैं आपसे निवेदन करूँगा कि असहयोगकी पूरी योजनामे कुछ भी असवैधानिक नही है। मै कहूँगा कि भारतकी जनताके लिए जो असवैधानिक और घोर रूपसे असवैधानिक है वह यह कि एक ऐसे राष्ट्रके अधीन रहते हुए जिसने अपने लिए एक इतने शानदार सविधानकी रचना की है, वह अर्थात् जनता, एक असवैधानिक सरकारको सहन करे, कमजोरी दिखाये और पेटके बल रेगे। उसके लिए असवैधानिक यह है कि उसका जो भी अपमान किया जाये उसे चुपचाप बरदाश्त कर ले। भारतके ७ करोड़ मुसलमानोंके लिए असंवैधानिक यह है कि उनके

धर्मके साथ इतना बडा अन्याय किया जाये और वे उसे सिर झुकाकर सह ले। और सारे भारतके लिए असवैधानिक यह है कि वह चुपचाप बैठा रहे और उस अन्यायी सरकारके साथ सहयोग करे जिसने पंजाबके आत्म-सम्मानके साथ खिलवाड किया है, उसे पैरो तले रौदा है। मै अपने-देशभाइयोसे कहूँगा कि जबतक आपमे आत्म-सम्मानकी भावना है, जबतक आप उन परम्पराओके उत्तराधिकारी और रक्षक है जो आपको पुश्त-दर-पुश्तसे विरासतमे मिली है, तबतक आपका भारत सरकार-जैसी एक अन्यायी सरकारके साथ असहयोग न करना असवैधानिक है, और सहयोग करना असवैधानिक। मैं अंग्रेजोका विरोधी नही हूँ, ब्रिटेनका विरोधी नही हूँ, और न किसी सरकारका विरोधी हूँ। मै विरोधी हूँ असत्यका, विरोधी हूँ पाखण्डका, विरोधी हूँ अन्यायका। जबतक सरकार अन्याय करनेपर तुली हुई है, तबतक वह मुझे अपना शत्रु माने — प्रचण्ड शत्रु माने। मै आपसे सच कहता हूँ, ईश्वरकी साक्षी देकर कहता हूँ कि जब अमृतसर काग्रेसमे मैंने घुटने टेककर आपसे, यानी आपमेसे जो लोग वहाँ मौजूद थे उनसे, सरकारके साथ सहयोग करनेकी प्रार्थना की थी उस समय मैंने यही आशा की थी — मुझे पूरी तरह यह आशा थी — कि ब्रिटेनके मन्त्रिगण जो आमतौरपर बुद्धिमान ही है, मुसलमानोकी भावनाको तुष्ट करेगे और पजाबमे जो बर्बरता बरती गई है उसके सम्बन्धमे न्याय करेगे। मै समझता था कि शाही-घोषणाके रूपमे ब्रिटेनने हमारी ओर मैत्रीका हाथ बढाया है, और इसीलिए मैंने आपसे कहा था कि इसके जवाबमे आप भी उसे सद्भावना देकर अपनी उदारताका परिचय दे। इसी कारण मैंने आपसे सरकारके साथ सहयोग करनेका अनुरोध किया था। लेकिन आज वह विश्वास जाता रहा, ब्रिटिश मन्त्रियोके आचरणने उसे जड़-मूलसे उखाड़ फेका है। इसलिए आज मै यहाँ आपसे यह अनुरोध करने आया हूँ कि आप विधान परिषदोमे रोध-अवरोधकी व्यर्थकी नीतिसे काम न ले, बल्कि वास्तविक और ठोस असहयोग करे जो दुनियाकी सबसे शक्तिशाली सरकारको भी बिलकुल अशक्त और निस्तेज बना देता है। आज मेरा यही उद्देश्य है। जबतक हम अनिच्छुक ब्रिटिश सरकारको, उसकी कलमको हमे हमारा प्राप्य न्याय और आत्म-सम्मान देनेपर मजबूर नही कर देते तबतक उसके साथ हम कोई सहयोग नही कर सकते। हमारे शास्त्रोका कहना है, उनकी सीख है कि अन्याय और न्याय, किसी अन्यायी व्यक्ति और न्यायप्रिय व्यक्ति तथा सत्य और असत्यके बीच कोई सहयोग हो ही नही सकता, और मै यह बात भारतके बडेसे-बडे धर्माचार्योके प्रति सम्पूर्ण आदर-भाव रखते हुए और बिना किसी खण्डन या प्रतिवादकी आशकाके कह रहा हूँ। सहयोग करना तभीतक आपका कर्त्तव्य है जबतक सरकार आपके सम्मानकी रक्षा करती है। लेकिन जब वह आपके सम्मानकी रक्षा करनेके बजाय आपको सम्मानसे वचित करने लग जाये तो उसके साथ असहयोग करना भी आपका उतना ही बड़ा कर्त्तव्य हो जाता है। यही असहयोगका सिद्धान्त है।

असहयोग और विशेष कांग्रेस

मुझसे कहा गया है कि काग्रेसकी आवाज समस्त राष्ट्रकी आवाज है, इसलिए मुझे उसकी विशेष बैठक होने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। मै जानता हूँ कि

कांग्रेस सारे राष्ट्रकी इच्छाओ और आशाओकी प्रतिनिधि है। अगर बात सिर्फ मेरी, यानी निजी रूपसे गाधीकी, होती तो मै अनन्त कालतक प्रतीक्षा कर सकता था। लेकिन मेरे हाथमे एक पवित्र दायित्व था। अपने मुसलमान देशभाइयोको मै ही सलाह दे रहा था, और कुछ समयके लिए उनका सम्मान मेरे हाथोमे है। मै उनसे स्वयं उनकी अन्तरात्माके निर्णयके अलावा और किसीके निर्णयकी प्रतीक्षा करनेके लिए कहनेकी हिम्मत नही कर सकता। क्या आप समझते है कि मुसलमान अपनी प्रतिज्ञा वापस ले सकते है, या उन्होने जो सम्मानपूर्ण स्थिति अपनाई है उससे पीछे हट सकते है? अगर सयोगवश — और ईश्वर न करे ऐसा संयोग आये — विशेष कांग्रेसका निर्णय मुसलमानोके विरुद्ध होता है तो भी मै अपने देशभाइयोको, मुसलमानोको यही सलाह दूँगा कि वे अकेले हो तब भी, उनके धर्मका जो अपमान करनेकी कोशिश की जा रही है, उसे बरदाश्त करनेके बजाय डटकर जूझते रहे। इसलिए अब यह बात मुसलमानोंपर निर्भर करती है कि वे चाहें तो काग्रेसके सामने जाये और घुटने टेककर उससे सहायताकी माँग करे। लेकिन यह सहायता उन्हे प्राप्त हो या न हो, उस समय उनके लिए यह सम्भव नही था कि वे काग्रेसके नेतृत्वकी राह देखते बैठे रहते। उन्हे व्यर्थकी हिंसा, अर्थात् अपनी तलवार खीच-कर भिड जानेकी उद्धतता और शान्तिपूर्ण अहिंसक किन्तु प्रभावकारी असहयोगके बीच चुनाव करना था और उन्होने अपना चुनाव कर लिया है। मै आपसे यह भी कहूँगा कि लोगोका कोई ऐसा समूह हो जो मेरी ही तरह असहयोगके पावन स्वरूपका अनुभव करता हो तो मुझे और आप सबको काग्रेसके लिए प्रतीक्षा न करके उसके अनुसार काम शुरू कर देना चाहिए और इस तरह काग्रेसके लिए कोई विपरीत निर्णय देना असम्भव बना देना चाहिए। आखिरकार काग्रेस है क्या चीज? काग्रेसकी रचना करनेवाले अलग-अलग व्यक्तियोके सम्मिलित स्वरका नाम ही तो कांग्रेस है, और ये व्यक्ति अगर किसी विषयपर एकमत होकर काग्रेसके सामने जायें तो वह वही निर्णय देगी जो ये चाहते हैं। लेकिन अगर हम काग्रेसके सामने अपना कोई निश्चित मत लेकर जाये ही नही — चाहे उसका कारण यह हो कि हमारा कोई मत ही नही है, या यह कि मत तो है लेकिन उसे प्रकट करनेमें हम भय खाते है — तब तो स्वभावत. हमे काग्रेसके निर्णयकी प्रतीक्षा करनी पडेगी। जिन लोगोमें किसी निश्चयपर पहुँचनेकी क्षमता नही है उनसे मै कहूँगा कि वे बेशक प्रतीक्षा करे। लेकिन जिन लोगोको सब कुछ दिनके प्रकाशके समान स्पष्ट दिखाई दे रहा हो, उनका काग्रेसके निर्णयकी प्रतीक्षा करना अपराध है। काग्रेस आपसे प्रतीक्षा करनेकी नही बल्कि काम करनेकी अपेक्षा करती है ताकि उस कामके आधारपर वह राष्ट्रीय भावनाकी गहराई माप सके। काग्रेसके सम्बन्धमें मुझे इतना ही कहना था।

कौंसिलोंका बहिष्कार

असहयोगके कार्यक्रममे कौसिलोके बहिष्कारको मैंने सबसे प्रमुख स्थान दिया है। कुछ मित्रोने 'बहिष्कार' शब्दके प्रयोगपर आपत्ति की है, क्योकि मैंने ब्रिटिश माल

—या ब्रिटिश माल ही क्यो, किसी भी अन्य देशके मालका बहिष्कार करनेमें असहमति व्यक्त की है और अब भी करता हूँ। लेकिन वहाँ बहिष्कारका अपना एक अलग मतलब है और यहाँ अलग। अगले वर्ष जिन कौन्सिलोका गठन होनेवाला है उनके बहिष्कारसे मैं असहमत नही हूँ, इतना ही नही मै चाहता हूँ कि उनका बहिष्कार किया जाये। और मै ऐसा क्यो चाहता हूँ? इसलिए कि जनताको, जनसाधारणको हम नेताओके स्पष्ट नेतृत्वकी जरूरत है। वे हमसे कोई गोलमोल बात नही चाहते। यह जो सुझाव दिया जा रहा है कि हम चुनाव तो लड़ ले, लेकिन उसके बाद वफादारीकी शपथ लेनेसे इनकार कर दे, उससे राष्ट्र हम नेताओमें अविश्वास करने लगेगा। यह राष्ट्रको स्पष्ट नेतृत्व देना नही माना जायेगा। इसलिए मेरे भाइयो, मै आपसे कहता हूँ कि आप इस जालमे न फँसे। अगर हम चुनाव लड़कर वफादारीकी शपथ न लेनेका तरीका अपनाते है तो उसका मतलब होगा, हमने देशको बेच दिया। उसमे कठिनाई हो सकती है और मै आपके सामने स्वीकार करता हूँ कि मुझे इस बातका भरोसा नही है कि अधिकाश भारतीय आज जो घोषणा करके चुनाव लड़ेगे उसपर कल अमल भी करेगे। जो लोग ईमानदारीके साथ ऐसा मानते है कि हमे चुनाव लड़ना चाहिए और बादमे वफादारीकी शपथ लेनेसे इनकार कर देना चाहिए, उनसे मै आज ही कह देना चाहता हूँ कि वे स्वय अपने लिए और राष्ट्रके लिए जो जाल बिछा रहे हैं उसमे फँसे बिना नही रहेगे। मेरा यही विचार है। मेरे मतमे, अगर हम देशको अधिकसे-अधिक स्पष्ट नेतृत्व देना चाहते है और इस महान् राष्ट्रके साथ खिलवाड़ नही करना चाहते तो हमे राष्ट्रके सामने यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि सरकार हमारे प्रति चाहे जितना बड़ा अनुग्रह करना चाहे, हम उसे तबतक नही स्वीकार करेगे जबतक कि उसके साथ एक अन्याय जुड़ा हुआ है, ऐसा दोहरा अन्याय जिसका प्रतिकार अबतक नही किया गया है। एक ग्रीक कहावत है कि "ग्रीक लोगोसे खबरदार रहो, और खासकर तब, जब वे तुम्हारे पास कोई उपहार लेकर आये।" इसी तरह मै कहता हूँ, जो मन्त्री इस्लाम और पंजाबके साथ किये गये अन्यायको बराबर कायम रखनेपर तुले हुए है, उन मन्त्रियो द्वारा दिया गया कोई भी उपहार हम स्वीकार नही कर सकते, क्योकि यह कोई जाल भी हो सकता है। और उसे स्वीकार करनेका अर्थ, सम्भव है, जालमें फँस जाना सिद्ध हो। इसलिए हमे उनकी ओरसे और भी सावधान रहना चाहिए। अतः मेरी सलाह है कि हमे कौंसिलोपर रीझना नही चाहिए, उनके साथ कोई सरोकार नही रखना चाहिए।

लोग मुझसे कहते है कि अगर हम लोग, जो राष्ट्रकी भावनाका प्रतिनिधित्व करते है, चुनाव नही लड़ते तो नरम दलवाले, जो उसके असली प्रतिनिधि नही है, चुनाव लड़ेगे। मै यह नही मानता। मै नही जानता कि नरम दलवाले काहेका प्रतिनिधित्व करते है और न यह जानता हूँ कि राष्ट्रवादी लोग काहेका प्रतिनिधित्व करते है। मै जानता हूँ कि नरम दलवालोमे अच्छे और बुरे, दोनो तरहके लोग है। और मै जानता हूँ कि राष्ट्रवादी दलमे भी अच्छे और बुरे, दोनो तरहके लोग है। मै जानता हूँ कि नरम दलके बहुतसे लोग ईमानदारीसे ऐसा मानते है कि असहयोग करना घोर

अपराध है। लेकिन मैं उनके प्रति पूरा आदर-भाव रखते हुए उनसे असहमति व्यक्त करता हूँ। उनसे इतना अवश्य कहूँगा कि यदि वे चुनाव लड़ेंगे तो अपने ही बिछाये जालमे फँस जायेंगे। लेकिन इससे मेरी स्थितिमे कोई फर्क नही पड़ता। अगर मैं हृदयसे ऐसा मानता हूँ कि मुझे कौंसिलोमे नही जाना चाहिए, तो मुझे कमसे-कम अपने निश्चयपर अटल रहना चाहिए, भले ही मेरे शेष निन्यानवे देशभाई चुनावमें भाग क्यो न ले। यही एक तरीका है जिससे सार्वजनिक काम किया जा सकता है और जनमत तैयार किया जा सकता है। यही एक तरीका है जिससे सुधार सम्भव है और धर्मकी रक्षा हो सकती है। अगर सवाल धार्मिक सम्मानका हो तो चाहे मैं अकेला होऊँ या मेरे साथ बहुतसे लोग हों, मुझे अपने सिद्धान्तपर अटल रहना है। अगर मैं इस प्रयासमे मर भी जाऊँ तो जीवित रहकर अपने सिद्धान्तसे डिग जानेकी अपेक्षा यह मृत्यु अधिक श्रेयस्कर है। मेरे विचारसे कौंसिलोके लिए चुनाव लड़ना किसीके लिए भी गलत है। अगर हम एक बार यह महसूस कर लेते है कि हम सरकारके साथ सहयोग नही कर सकते तो हमे ऊपरसे ही इसकी शुरुआत करनी होगी। हम जनताके सामने सहज-स्वाभाविक नेता है और हमे यह अधिकार है कि हम राष्ट्रके सामने जाकर उसे असहयोगका सन्देश दे। इसलिए मैं कहूँगा कि चाहे जिस शर्तपर भी हो, कौंसिलोके लिए चुनाव लड़ना असहयोगके सिद्धान्तसे असगत है।

वकील और असहयोग

मैंने एक और कठिन कदम उठानेका सुझाव दिया है — यह कि वकीलोको अपना धन्धा बन्द कर देना चाहिए। यह जानते हुए कि इन वकीलोके जरिये सरकारने बराबर अपनी शक्ति और सत्ता किस तरह कायम रखी है, मैं इस सम्बन्धमें और कुछ कह भी कैसे सकता हूँ। यह बिलकुल सच है कि हमारा नेतृत्व आज वकील लोग ही कर रहे है, वे ही हमारे देशकी लडाई लड़ रहे है, लेकिन जब सरकारके विरुद्ध सीधी कार्रवाई करनेकी बात आती है, सरकारी कामकाज ठप कर देनेका सवाल आता है तो मैं जानता हूँ कि ऐसे मौकोपर सरकार अपनी प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मानकी रक्षाके लिए वकीलोका ही मुँह जोहने लगती है — चाहे वे सरकारसे कितनी ही लड़ाई करते रहे हो। इसलिए अपने वकील भाइयोसे मैं कहूँगा कि अपना धन्धा बन्द करके सरकारको यह दिखा देना उनका कर्त्तव्य है कि वे अब और अपने पदोपर नही बने रहेंगे; पदोपर बने रहनेकी बात इसलिए कहता हूँ कि वकील लोग अदालतो-के अवैतनिक अधिकारी माने जाते है, और अदालतोके अनुशासनात्मक अधिकार-क्षेत्रके भीतर आते है। अगर वे सरकारके साथ सहयोग बन्द करना चाहते है तो उन्हे अपने इन अवैतनिक पदोपर अब आगे नही रहना है। लेकिन तब अमन और कानून-का क्या होगा? हम इन्ही वकीलोके जरिये अमन और कानूनकी सत्ता स्थापित करेंगे। हम पचायती अदालतोकी स्थापना करके अपने देशभाइयोको शुद्ध और घरेलू न्याय, स्वदेशी न्याय, प्रदान करेंगे। वकीलोंका अपना धन्धा बन्द करनेका यही मतलब है।

माता-पिता और असहयोग

मैंने एक और भी कठिन कदमका सुझाव दिया है — यह कि अपने बच्चोको सरकारी स्कूलोसे निकाल लेना चाहिए और कालेजके छात्रोसे कालेज छोड देनेको कहना चाहिए तथा सभी सरकारी अनुदान-प्राप्त स्कूलोको खाली कर देना चाहिए। मैं और कुछ कह भी कैसे सकता था? मैं राष्ट्रकी भावनाकी गहराईकी थाह लेना चाहता हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि इस सवालपर मुसलमानोकी भावना काफी गहरी है या नही। अगर उनकी भावना गहरी है तो वे क्षण-भरमे समझ जायेंगे कि जिस सरकारमें उन्होंने अपना सारा विश्वास खो दिया है, जिस सरकारपर उन्हे तनिक भी भरोसा नही है, उस सरकारके स्कूलोंमे अपने बच्चोको पढाना उनके लिए ठीक नही है। अगर मै सरकारकी कोई सहायता नही करना चाहता तो उससे कोई सहायता स्वीकार कैसे कर सकता हूँ? मैं समझता हूँ कि स्कूल और कालेज सरकारके लिए क्लर्क और सरकारी कर्मचारी गढनेकी फैक्टरियाँ है। अगर मैं सरकारके साथ सहयोग बन्द करना चाहता हूँ तो मैं क्लर्क और अन्य सरकारी कर्मचारी गढनेकी इस बडी फैक्टरीको कोई भी सहायता नही दूँगा। आप इसे चाहे जिस दृष्टिकोणसे देखिए, लेकिन यह सम्भव नही है कि एक ओर तो आपको असहयोगके सिद्धान्तमे भी विश्वास हो, लेकिन साथ ही अपने बच्चोको इन स्कूलोंमे भी भेजते रहें। ये दोनों बाते एक साथ चल सकना असम्भव है।

उपाधिधारियोंका कर्त्तव्य

मैंने इससे भी आगे बढकर एक और सुझाव दिया है। मैंने सुझाव दिया है कि हमारे खिताबयाफ्ता लोग अपने खिताब छोड दे। ये लोग इस सरकार द्वारा दिये गये खिताब और सम्मानसूचक पदवियाँ आदि कैसे रख सकते है? जब हम यह मानते थे कि हमारा राष्ट्रीय सम्मान ब्रिटिश सरकारके हाथोमे सुरक्षित है तब ये उपाधियाँ और पदवियाँ सचमुच प्रतिष्ठाकी प्रतीक थी। लेकिन अब जब कि हम सचमुच यह मानने लगे है कि इस सरकारसे हम न्याय नही प्राप्त कर सकते, ये प्रतिष्ठाकी नही, अप्रतिष्ठा और अपमानकी प्रतीक बन गई है। हर खिताबयाफ्ता व्यक्ति अपने खिताब और सम्मान-सूचक पदका उपभोग राष्ट्रके थातीदारकी हैसियतसे करता है, और सरकारके साथ सहयोग बन्द करनेके कार्यक्रमके इस प्रथम चरणमे उसे क्षण-भरका भी सोच-विचार किये बिना अपना खिताब, अपना पद छोड देना चाहिए। मैं अपने मुसलमान देशभाइयोसे कहता हूँ कि अगर वे अपने इस प्राथमिक कर्त्तव्यमे चूक जाते है तो निश्चय ही वे असहयोगमें असफल रहेगे। फिर अगर निस्तार हो सकेगा तो एक ही हालतमे कि साधारण जनता इन उच्चवर्गीय लोगोकी परवाह न करके असहयोगका प्रश्न बिलकुल अपने हाथोमे ले ले और स्वयं ही यह लडाई चलाये — ठीक वैसे ही जैसे फ्रांसीसी क्रान्तिके समय जनताने अपने नेताओंको एक ओर करके शासनतन्त्र खुद अपने हाथोमें ले लिया था और फतहकी मंजिलकी ओर कूच कर दिया था। मैं क्रान्ति नही चाहता। मैं व्यवस्थित प्रगति चाहता हूँ। मैं व्यवस्थाहीन

व्यवस्था नही चाहता। मैं अराजकताकी स्थिति नही चाहता। आज सर्वत्र अव्यवस्था ही है, जिसे मेरे सामने गलत ढगसे व्यवस्थाके रूपमें पेश किया जा रहा है। मैं इस अव्यवस्थामें से सच्ची व्यवस्थाको विकसित करना चाहता हूँ। जो व्यवस्था किसी अत्याचारी द्वारा सरकारके अत्याचारी तत्त्वोंको अपने हाथमें रखनेके लिए स्थापित की गई हो वह व्यवस्था, मैं कहूँगा, व्यवस्था नही बल्कि अव्यवस्था है। मैं अन्यायके स्थानपर न्यायको प्रतिष्ठित करना चाहता हूँ। इसलिए मैं आपसे अनाक्रामक असहयोग करनेको कहता हूँ। अगर हम इस शान्तिपूर्ण और अचूक सिद्धान्तके रहस्यको समझ ले तो आप देखेंगे कि जब कोई आपपर तलवार उठायेगा उस समय आप उसके विरुद्ध क्रोधका एक शब्द भी नही कहना चाहेंगे और डडे या तलवारकी बात तो जाने दीजिए, आप उसपर अपनी अँगुली भी नही उठाना चाहेंगे।

साम्राज्यकी एक सेवा

शायद आप सोचते होंगे कि ये बाते मैंने क्रोधमे कही है, क्योकि मैंने इस सरकारके तरीकोंको अनैतिक, अन्यायपूर्ण, पतनकारी और असत्यपूर्ण माना है। मैंने इन विशेषणोंका प्रयोग बहुत सोच-समझकर किया है। इन विशेषणोंका प्रयोग मैंने अपने सगे भाईके लिए किया है, जिनके साथ मैं पूरे १३ सालतक असहयोगकी लड़ाई चलाता रहा था। और आज यद्यपि उनकी स्मृति ही शेष रह गई है, फिर भी मैं आपको बताऊँ कि जब उनके कार्य अनैतिक आधारपर स्थित होते थे मैं उनसे कह देता था कि आप अन्याय कर रहे है। मैं उनसे कहा करता था कि आप सत्यके मार्गपर नही चलते। लेकिन उस समय मुझमें कोई क्रोध नही होता था। मैं उनसे यह परम सत्य इसीलिए कहता था कि मैं उन्हें प्यार करता था। उसी तरह मैं ब्रिटिश लोगोंसे कहता हूँ कि मैं उन्हें प्यार करता हूँ और उनके साथ सम्बन्ध बनाये रखना चाहता हूँ, लेकिन सुनिश्चित शर्तोंपर ही बनाये रखना चाहता हूँ। मैं अपने आत्मसम्मानको सुरक्षित रखना चाहता हूँ और उनके साथ पूरी तरह बराबरीका दर्जा चाहता हूँ। अगर मुझे ब्रिटिश जनताके साथ बराबरीका दर्जा प्राप्त नही हो सकता तो मैं ब्रिटेनसे कोई सम्बन्ध रखना नही चाहता। अगर ब्रिटिश लोगोको यहाँसे चले जाने दूँ और उसके परिणामस्वरूप हमारे राष्ट्रीय जीवनमें कुछ कालके लिए अव्यवस्था और अराजकता आ जाये तो मुझे वह बरदाश्त होगी, लेकिन ब्रिटिश राष्ट्रके समान किसी महान् राष्ट्रके हाथों अन्याय पाना स्वीकार नही होगा। आप देखेंगे कि जिस दिन यह अन्याय समाप्त हो जायेगा उस दिन श्री मॉण्टेग्युके उत्तराधिकारी असहयोग करने और बहिष्कार — महाविभव युवराजके बहिष्कारका नही बल्कि उस सरकार द्वारा आयोजित उनकी यात्राका बहिष्कार जो इसके जरिये भारतकी गरदनपर अपनी पकड़ मजबूत करना चाहती है — का सुझाव देनेके लिए मेरी प्रशंसा करेंगे और यह मानेंगे कि इस प्रकार मैंने साम्राज्यकी जितनी सेवा की उतनी सेवा पहले कभी नही की थी। अगर मैं अकेला भी होऊँ, अगर मैं राष्ट्रको युवराजकी यात्राके प्रति किसी प्रकारका उत्साह न दिखानेके लिए राजी न भी कर पाऊँ, तो भी मैं अपनी समस्त शक्तिसे इस यात्राका बहिष्कार करूँगा। आज मैं इसी उद्देश्यसे आपके सामने

खड़ा हुआ हूँ, और आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप इस धर्म-युद्धमे शामिल हो। लेकिन आपको जो व्यक्ति इस युद्धमे शामिल होनेको आमन्त्रित कर रहा है, वह कोई सपनोंकी दुनियामे रहनेवाला व्यक्ति नही है, कोई सन्त नही है। मै नही मानता कि मै सपनोकी दुनियामे रहनेवाला व्यक्ति हूँ। मै सन्त होनेका दावा भी नही करता। मै धरतीपर रहनेवाला पार्थिव प्राणी हूँ, आपके जैसा ही या शायद आपसे भी अधिक साधारण आदमी हूँ। मुझमें भी आपकी जैसी ही कमजोरियाँ सम्भव है, लेकिन मैने दुनिया देखी है। मैन दुनियामे अपना जीवन आँखे खोलकर जिया है। मनुष्यको आजतक जिन कठिनसे-कठिन अग्नि-परीक्षाओमे से गुजरना पड़ा है, उनसे मै गुजरा हूँ। मै इस तपस्यासे गुजर चुका हूँ। मैने अपने पवित्र हिन्दुत्वके रहस्यको समझा है। मैने यह सीखा है कि असहयोग सिर्फ सन्तका ही नही, प्रत्येक साधारण नागरिकका कर्त्तव्य है — प्रत्येक साधारण नागरिकका, जो बहुत ज्यादा नही जानता, न बहुत जाननेकी परवाह करता है, लेकिन अपना साधारण घरेलू कर्त्तव्य निभाना चाहता है। यूरोपके लोग अपने जनसाधारणको भी, गरीब जनताको भी, तलवारके सिद्धान्तकी सीख देते है। लेकिन भारतकी परम्पराओकी रक्षा करनेवाले ऋषियोने भारतकी जनताको तलवारके सिद्धान्तकी नही, हिंसाके सिद्धान्तकी भी नही, बल्कि कष्टसहन और आत्मबलिदानके सिद्धान्तकी सीख दी है। और जबतक मै और आप यह प्राथमिक सबक सीखनेको तैयार नही है तबतक, समझ लीजिये, हम तलवार उठानेके लायक भी नही हो सकते, और यही वह सबक है जो हमारे भाई शौकत अलीने सीखा है — हमे सिखानेके लिए सीखा है, और यही कारण है कि मैने उन्हे पूरी विनम्रताके साथ जो सलाह दी, उसे आज वे स्वीकार करते है और कहते है: "असहयोग जिन्दावाद।" याद रखिए कि इंग्लैंडमे भी किसी समय विद्यार्थियोको स्कूलोसे हटाया गया था, और कैम्ब्रिज तथा ऑक्सफोर्डके कालेज बन्द कर दिये गये थे। वकीलोने अपना धन्धा छोड़कर खाइयोमे युद्ध लड़ा था। मैं आपसे खाइयोमे जाकर लडनेको नही कहता, यह अवश्य कहता हूँ कि इंग्लैंडके स्त्री-पुरुष और बहादुर नौजवानोने जो बलिदान किया था, वह आप भी करे। याद रखिए कि आप एक ऐसे राष्ट्रके विरुद्ध जूझ रहे है जो अवसर आनेपर बड़ेसे-बडा बलिदान करनेकी भावनासे ओतप्रोत है। याद रखिए कि मुट्ठी-भर बोअरोने एक परम शक्तिशाली राष्ट्रके खिलाफ कैसा कडा मोर्चा लिया था। लेकिन उनके वकीलोंने अपना अध्ययन-कक्ष छोड़ दिया था, माताओने अपने बच्चोको स्कूलो और कालेजोंसे हटा लिया था और वे सबके-सब राष्ट्रके स्वयसेवक बन गये थे। मैने उन्हें अपनी आँखों यह सब करते देखा है। मै भारतमे अपने देश-भाइयोसे किसी और सिद्धान्तका नही, सिर्फ आत्मबलिदानके सिद्धान्तका पालन करनेको कह रहा हूँ और यह सिद्धान्त हर युद्धकी पहली शर्त है। आप चाहे हिंसावादी विचारधाराके हों या अहिंसावादी विचारधाराके, बलिदान और अनुशासनकी आगसे होकर तो आपको गुजरना ही पड़ेगा। ईश्वर आपको और हमारे नेताओको सद्बुद्धि दे, साहस और सच्चा ज्ञान दे कि वे देशको उसके प्रिय और चिर पोषित लक्ष्यकी दिशामे बढनेकी प्रेरणा दे। ईश्वर भारतकी जनताको सच्चा रास्ता दिखाये, सच्ची दृष्टि दे

और बलिदानके इस कठिन तथापि सुगम मार्गका अनुसरण करनेकी योग्यता और साहस दे।

[अंग्रेजीसे]

स्पीचेज ऐंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, (तृतीय संस्करण), पृष्ठ ५२४-४१
हिन्दू, १३-८-१९२०

९५. भाषण: मद्रासमें असहयोगपर[1]

१३ अगस्त, १९२०

गांधीजीने खिताबोंके सम्बन्धमें बात करते हुए इच्छा व्यक्त की कि अध्यक्ष, हकीम अब्दुल अजीज अपना खिताब त्याग दें।

उन्होंने असहयोगके दूसरे कदम, अर्थात् सरकारी पदोंसे त्यागपत्र देनेकी बातको विस्तारसे समझाया।

इसके बाद उन्होंने तीसरे और चौथे अर्थात् सैनिक सेवासे हटने और कर-अदायगीसे इनकार करनेके कदमोंकी चर्चा की।

उन्होंने कहा कि तीसरी अवस्थापर पहुँचते-पहुँचते, हम लगभग भारतके शासक बन जायेंगे; परन्तु जबतक खिताबयाफ्ता लोग अपने खिताब, अवैतनिक न्यायाधीश अपने पद और वकील अपनी वकालत नहीं छोड़ देते, बच्चोंको सरकारी और सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओंसे नहीं हटा लिया जाता, विधान परिषदोंका बहिष्कार नहीं किया जाता, स्वदेशी-व्रतको पूरी तरह प्रोत्साहन नहीं दिया जाता और नेतागण हाथके कते-बुने कपड़ोंमें जनताके पास अपनी मोटरें छोड़कर फकीरोंकी तरह नंगे पाँव नहीं जाते तबतक वे सरकारी कर्मचारियों और सिपाहियोंसे अपने-अपने पद त्यागनेका अनुरोध नहीं कर सकते और न रैयतसे करोंकी अदायगी बन्द करनेके लिए कह सकते हैं। उन्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि पदोंको छोड़नेसे वे असहाय हो जायेंगे। खिलाफत समिति उनकी सहायता करेगी . . . यदि हम असहयोग सफलतापूर्वक चला सकें तो सरकारको अपना शासन चलाना असम्भव हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट, एक्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ १२७७

1. जुमा मस्जिद, ट्रिप्लीकेनमें।

९६. तलवारका न्याय

मुझे उपदेश देनेवालोंकी कोई गिनती ही नही है। कोई मुझे अपना नाम बताकर पत्र लिखता है तो कोई अज्ञात नामसे ही तथा कोई स्वय उपस्थित होकर अपनी सलाह दे जाता है। कोई लिखता है कि मै कायर हूँ, तलवारसे डरता हूँ इसलिए मैं इस संसारमे कुछ नही कर सकता, और अपनी कायरताके कारण ही मै बिना सोचे-समझे अहिंसाकी बात करता रहता हूँ। किसीका कहना है कि मेरे मनमे तो हिंसा ही भरी हुई है, मुझे खून करना भाता है; लेकिन मै इतना "पक्का", इतना "धूर्त" हूँ कि अपने विचारोको छिपाता हूँ और इस तरह ऊपर-ऊपरसे अहिंसाकी बात करते हुए मै मन-ही-मन हिंसा करवाना चाहता हूँ। इन पक्षोके अतिरिक्त एक पक्ष ऐसे लोगोंका भी है जो समझते है कि मै धूर्त नही हूँ, सिर्फ अवसरकी बाट जोह रहा हूँ और अवसर मिलते ही तलवार चलानेकी सलाह दे दूँगा। वे मानते है कि आज वह अवसर आ गया है और अब मुझे जल्दी करनी चाहिए।

साधारणतया मुझे इन उपदेशकों द्वारा दी गई सलाहका उत्तर देनेमे अपना समय नही गँवाना चाहिए। यदि मुझे कोई धूर्त मानता है तो उसकी मुझे क्या परवाह अथवा चिन्ता हो सकती है? और फिर अपनी साधुताका समर्थन करने अथवा धूर्तताका खण्डन करनेमें मुझे 'नवजीवन' के पाठकोका समय लेनेका क्या अधिकार है? अपना बचाव करनेकी दृष्टिसे तो निःसन्देह मुझे इस विवादमें न पडना चाहिए, लेकिन आजकल मेरी स्थिति ऐसी है कि आम लोग मेरे विचारोंको जाननेके लिए लालायित रहते है, मै इस बातको जानता हूँ तथा मै यह भी समझता हूँ कि मेरा आचरण मेरे विचारोपर निर्भर करता है। इन्ही लोगोकी खातिर मै अपनी स्थितिका स्पष्टीकरण करनेकी जरूरतको महसूस करता हूँ और एक बार फिर पाठकोसे पशुबलके सम्बन्धमे अपने विचारोको प्रस्तुत करनेकी अनुमति लेता हूँ।

तलवारका बल, पशुबल है। हिंसा करनेमे बुद्धिबलके प्रयोगकी आवश्यकता नही होती। बुद्धिको कुमार्गपर ले जाकर हम निःसन्देह पशुबलके लिए उसका उपयोग कर सकते हैं। लेकिन बुद्धिका उपयोग करनेपर भी पशुबल तो अन्ततः पशुबल ही रहता है और मारनेका सिद्धान्त तो पाशविक सिद्धान्त है। पशुमे आत्मा केवल मूढावस्थामें होती है, पशुको आत्मज्ञान होता ही नही। इसीसे हम पशु-योनिको मूढ योनिकी संज्ञा देते हैं। खाना, पीना, सोना या डरना — ये क्रियाएँ मनुष्यो तथा पशुओ दोनोमे समान होती हैं। लेकिन मनुष्योंमें सदसद् विवेक और आत्माको पहचाननेकी शक्ति है। एक पशु दूसरे पशुको अपने शरीरबलसे ही वशमे करता है। यह उसका जातीय नियम है, लेकिन मानव जातिका नियम यह नही है। मानव जातिका सहज स्वाभाविक नियम तो प्रेमबल — आत्मबलसे दूसरोपर विजय प्राप्त करना है। अर्थात् जब कोई

मनुष्य प्रेमसे दूसरे मनुष्यको अपने वशमें करता है तब वह अपने नियमके अधीन होकर आचरण करता है। इस समय वह देवता नही बन जाता। देवता अशरीरी होते है। वे पशु तथा मनुष्य दोनोकी ही तरह आचरण करते है। देवता श्वेत भी है और अश्वेत भी। मनुष्य अनेक बार पशुबलका आचरण करता हुआ देखा जाता है; उसमें पाशविक शक्ति भी है और जबतक उसकी आत्माका विकास नही होता तबतक वह एक बुद्धिमान पशु होता है। मनुष्यका शरीर पानेपर भी वह मानवी नियमका अनुसरण न करके पशुके नियमके अनुसार चलता है। तथापि हम उसके इस आचरणको उसका जातीय स्वभाव नही कह सकते। अतएव मैं मानता हूँ कि यदि हमे स्वानुभूति हो जाये तो हम तत्क्षण पाशविक न्यायका त्याग कर दें।

लेकिन धर्मवेत्ताओंने यह देखा है कि अनेक मनुष्योंकी पाशविक वासनाएँ मनुष्य शरीर पानेपर भी मरती नही। इसलिए उन्होंने यह बात स्वीकार की है कि मनुष्य शरीरमे भी पशुबलको अवकाश है और बताया है कि किन परिस्थितियोंमें इसका उपयोग किया जा सकता है।

मनुष्य जब भयके कारण दूसरोके वशमें रहता है तब वह कोई अपने स्वभावानुसार आचरण नही करता, वह तो पशुबलके अधीन रहता है। जो पशुबलसे दूसरोको वशमे नही करना चाहता वह पशुबलके अधीन होकर भी नही रह सकता। फलत. जो पशुबलसे डरता है उसको आत्मज्ञान नही हुआ है, ऐसा मानकर या जानकर शास्त्रोने इस स्थितिमे पशुबलके उपयोगकी सलाह दी है।

सन् १९०८ मे एक पठानने मुझपर घातक प्रहार किया था। उस समय मेरा बड़ा लड़का[1] मेरे पास न था। उसमे पर्याप्त शरीरबल था। मेरे जैसे विचार आज है वैसे ही उस समय भी थे इसलिए मैंने उस पठानपर मुकदमा दायर नही किया। अपने बच्चोंको भी उस समय मै क्षमा — प्रेमबल — की शिक्षा दे रहा था। इसलिए इस प्रहारके बाद पहली बार मुलाकात होनेपर मेरे पुत्रने मुझसे कहा. 'जिस समय आपपर हमला हुआ उस समय यदि मैं वहाँ होता तो मै जानना चाहता हूँ कि मेरा क्या कर्त्तव्य होता? आपने हमे सिखाया है, यदि कोई मनुष्य हमें मारे तो उसके बदले हमे उसे मारना नहीं चाहिए और साथ ही उसकी इच्छाके अधीन भी नही होना चाहिए। इस सिद्धान्तको मैं समझता हूँ। लेकिन मुझमें वैसा आचरण करनेकी शक्ति नही है। मै आपको मरता हुआ नही देख सकता। आपपर आक्रमण हो तो आपकी रक्षा करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ; लेकिन मैं सिर्फ अपनी जान गँवाकर आपकी रक्षा नही कर सकता। इस स्थितिमें क्या मुझे आपपर प्रहार करनेवाले मनुष्यको मारना चाहिए अथवा आपपर जिस समय प्रहार किया जा रहा हो उस समय चुपचाप देखते रहना चाहिए अथवा वहाँसे भाग जाना चाहिए।" मैंने उसे उत्तर दिया: "तू भाग जाये अथवा मेरी रक्षा न करे यह तो अपौरुषकी निशानी है। यदि तू अपने जीवनको संकटमे डालकर मेरी रक्षा नही कर सकता तो तुझे अवश्य ही मारनेवालेके साथ लड़कर मेरी रक्षा करनी चाहिए। अपौरुषसे तो पशुबलका प्रयोग करना

१. हरिलाल गांधी।

श्रेयस्कर है।" आज भी मेरा दृष्टिकोण यही है। हिन्दुस्तान भयके कारण शस्त्र न उठाये इसकी अपेक्षा यह अधिक आवश्यक है कि वह शस्त्रधारी बन अपनेपर आगत संकटोंका सामना करे। इसी विचारसे प्रेरित हो मैंने बोअर युद्धमे भाग लिया था और जूलू-विद्रोहके समय सरकारकी सहायता की थी। इसी कारण मैंने गत महायुद्धके समय इंग्लैंडकी मदद की थी तथा हिन्दुस्तान आनेपर भरती-कार्यमें जुटा था।

क्षमा, वीरका भूषण है। जिसमें अपमानका बदला लेनेकी शक्ति है वही प्रेम करना [क्षमा करना] जानता है। जिसमें विषयोका उपभोग करनेकी शक्ति है वही उनपर काबू पाकर ब्रह्मचारी कहला सकता है। चूहा बिल्लीको क्षमा कर ही नही सकता। हिन्दुस्तानके लोगोमे लड़नेकी शक्ति हो और फिर वे न लडे तो यह उनके आत्मबलका सूचक होगा।

यहाँ "लड़नेकी शक्ति"का अर्थ समझानेकी आवश्यकता है। लड़नेकी शक्ति अर्थात् मात्र शरीरबल नही। जिनमे हिम्मत है वे लड़नेकी शक्ति रखते हैं और जिन्होने मृत्युके भयको जीत लिया है वे लोग लड़ सकते हैं। बलिष्ठ हब्शी लोगोको मैंने गोरे लड़कोंसे डरते देखा है, क्योकि उन्हें गोरोंके रिवाल्वरोंका भय है। मैंने दुर्बल लोगोंको सबल लोगोके साथ जूझते भी देखा है। अतएव हिन्दुस्तान जिस दिन डरना छोड़ देगा उस दिन उसमे बिना अस्त्रके भी लड़नेकी ताकत आ जायेगी। लडनेके लिए शस्त्र चलानेमे दक्षता प्राप्त करना आवश्यक है, ऐसा माननेका कोई कारण नही। अत. जिस समय मनुष्यको आत्मबलकी प्रतीति हो जाती है उसी समय उसे अपनी लडनेकी शक्तिका भी भान हो जाता है और इसी कारण मैं मानता हूँ कि सच्चा योद्धा वही है जो मारकर मरनेका नही बल्कि मरकर जीनेका मन्त्र साध लेता है।

अहिंसाके अविजित सिद्धान्तकी खोज करनेवाले ऋषि-मुनि स्वयं महान् योद्धा थे। जब उन्होने आयुध-बलकी तुच्छताको जान लिया और मानव स्वभावका साक्षात्कार कर लिया तभी वे इस हिंसामय जगत्मे अहिंसाके सिद्धान्तको देख सके। आत्मा समस्त विश्वपर विजय प्राप्त कर सकती है, आत्माका सबसे बड़ा शत्रु स्वय आत्मा ही है, उसे जीतनेका अर्थ है, जगत्को जीतनेका बल प्राप्त कर लिया—ऐसी शिक्षा उन्होने हमे दी थी।

उन्होंने इस सिद्धान्तको ढूँढ़ निकाला, इस कारण सिर्फ वे लोग ही इसका पालन कर सकते हैं—ऋषि-मुनियोंने यह बात न तो कही, न लिखी और न उन्होने इसकी शिक्षा ही दी। उन्होंने बताया कि वस्तुतः बच्चोके सम्बन्धमें भी यही नियम लागू होता है और वे भी इसका पालन कर सकते हैं। केवल साधु-सन्यासी ही इसपर आचरण करते हों, सो बात नही, इसका आंशिक पालन सभी करते हैं। और जिस नियमका आंशिक पालन किया जा सकता है, उसका पूर्ण पालन भी किया जा सकता है।

मैं इस नियमपर आचरण करनेमें लगा हूँ। आज अनेक वर्षोंसे मैं ज्ञानपूर्वक इसका पालन करता आया हूँ और हिन्दुस्तानके लोगोंको भी पुकार-पुकारकर इसका पालन करके लिए कहता आया हूँ।

मै स्वय अपनेको आदर्शवादी मानता हूँ और व्यवहारकुशल भी। लेकिन मै नही समझता कि उस नियमका पालन तभी हुआ माना जा सकता है जब वह ज्ञानपूर्वक किया जाये। इसलिए मै श्रद्धालु और अश्रद्धालु सबके सम्मुख इस नियमको ठीक वैद्यके समान प्रस्तुत करता हूँ। उसके महत्त्वको समझनेके लिए ज्ञानकी जरूरत नही है—इसे सिद्ध करनेके निमित्त मै अपनेसे विपरीत विचार रखनेवाले लोगोको अपने साथ लेकर चल रहा हूँ। भाई शौकत अली हिंसाको प्रधान महत्त्व देते जान पडते है, वे दुश्मनको मारना ही अपना धर्म समझते है। फलत. वे अहिंसाके सिद्धान्तका पालन अपने हृदयमे घृणा रखकर करते है। वे असहयोगको कायरोका अस्त्र मानते है, इसीसे शरीरबलकी अपेक्षा उसे हीन समझते है। इसके बावजूद वे मेरे साथ आ मिले है, क्योकि इस समय वे स्पष्टत यह समझते है कि नि शस्त्र असहयोगके अतिरिक्त किसी अन्य उपायसे उनके धर्मकी रक्षा नही की जा सकती।

जिनको मेरे विचारोमे श्रद्धा नही है उनसे भी मै भाई शौकत अलीका अनुकरण करनेका अनुरोध करता हूँ। मेरे मनकी विशुद्धताको मान लेनेकी उन्हे कोई जरूरत नही है, लेकिन इतना अवश्य समझनेकी जरूरत है कि असहयोगके साथ हिंसा नही निभ सकती। सम्पूर्ण रूपसे असहयोग आरम्भ करनेमे सबसे बडी रुकावट हिंसाकी आशका ही है। जो शस्त्रधारी है अथवा शस्त्र उठानेके लिए उत्सुक है उन्हे भी असहयोगके दौरान अपनी तलवारे म्यानमे रखनी पड़ेंगी।

मेरे विचारसे तो जब हिन्दुस्तानमें पशुबलको प्रधानता दी जाने लगेगी तब प्राचीन और अर्वाचीन, पूर्व और पश्चिमके बीचका अन्तर मिट जायेगा। उसी समय मेरी कसौटी होगी। मै हिन्दुस्तानको अपना देश माननेमे गर्वका अनुभव करता हूँ, क्योकि मै मानता हूँ कि हिन्दुस्तान जगत्के सम्मुख आत्मबलकी श्रेष्ठताको सिद्ध करनेकी शक्ति रखता है। जब हिन्दुस्तान पशुबलकी श्रेष्ठताको स्वीकार कर लेगा तब उसे मातृभूमि कहनेमे मुझे हर्षकी अनुभूति नही होगी। मेरा विश्वास है कि मेरा धर्म किसी क्षेत्र अथवा भूगोलकी सीमासे बँधा हुआ नही है। मेरी कामना है कि ईश्वर मुझे यह बात सिद्ध करनेकी शक्ति दे कि मेरा धर्म देह या क्षेत्रकी सकुचित सीमाओसे परिसीमित नही है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५–८–१९२०

१७. अदालतें और स्कूल

खिलाफत असहयोग समितिने मेरे सुझावपर वकीलोको वकालत छोडने, माता-पितासे अपने बच्चोको पाठशालाओसे निकाल लेने तथा कालेजके विद्यार्थियोको कालेज छोड देनेकी सलाह दी है। मै जानता हूँ कि इस कारण कुछ लोग मुझे पागल समझते होगे; लेकिन सम्भवत. दक्षिण आफ्रिकामे मैने जो काम किया उसके कारण अभीतक उन्होने प्रकट रूपसे मेरी हँसी नही उड़ाई है, तथापि मुझे अपने पागलपनमे बुद्धिमत्ता दिखाई देती है! मै गम्भीरतापूर्वक मानता हूँ कि आजकी परिस्थितियोको देखते हुए वकालत छोड़ना वकीलोकी और सरकारी स्कूलोसे बच्चोको उठा लेना जनताका कर्त्तव्य हो जाता है। और यदि वकील अदालतोको त्याग दे तथा लोग सरकारी पाठशालाओ और कालेजोको खाली कर दे तो इसका बहुत असर होगा।

आइये, सर्वप्रथम हम वकीलोके सम्बन्धमें विचार करे। किसी भी सरकारकी सत्ता उसकी अदालतोपर निर्भर करती है। अदालतोके माध्यमसे वह अपराधियोको दण्ड देती है। अदालतोके जरिये ही दीवानी झगडोका फैसला किया जाता है और इसीसे जनतापर सरकारका आधिपत्य जमता है। वकीलोके बिना ये अदालते नही चल सकती। इसलिए वकीलोको भी अदालतोका अधिकारी कहा जा सकता है। सरकार न्यायकारी हो तो अदालतों या वकीलोसे भले ही लाभ होता हो, लेकिन जब सरकार अन्यायी बन गई हो तब उसको अदालते चलानेमे सहायता देना उसके अन्यायका पोषण करना है। वकीलोकी मदद न मिले तो अदालतोका चलाना लगभग असम्भव है। मै जब वकीलोसे अदालतका धन्धा बन्द करनेकी बात करता हूँ तब मेरे कहनेका आशय यह नही कि वकील सभी काम-धाम छोड़कर घर बैठ जाये; बल्कि मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि उन्हें अपना सारा समय खिलाफत अथवा पजाबका कार्य करनेमे लगा देना चाहिए। इसके अतिरिक्त इसका एक उद्देश्य यह भी है कि वकील अपने मुवक्किलोपर दबाव डालकर उन्हें अदालतोमें जानेसे रोके। ऐसे वकील पच नियुक्त करे और अपने मुवक्किलोके झगडोका निपटारा उनके घरोपर कराये। ऐसा करनेपर अदालते निष्क्रिय हो जायेंगी और लोग राज्यसत्तासे स्वतन्त्र रहना सीखेगे।

वकील यदि वकालत छोड दे तो यह बात सरकारको अच्छी लगेगी — ऐसा कुछ लोग कहते हैं। यह कोरा वहम है। यह सच है कि साधारणतया वकील सरकारके कार्योकी कडी आलोचना करते दिखाई देते है लेकिन जब सरकारका तख्ता उलटनेके आसार नजर आते है तब सरकार वकीलोकी मदद लेनेकी कोशिश करती है और वकील यह मानकर कि उनकी आजीविका सरकारपर निर्भर करती है उसे मदद देते है। इसलिए उस समय वकीलोंकी भी कसौटी हो जाती है।

कुछ लोग प्रश्न करते है कि यदि वकील अपना धन्धा छोड दे तो आजीविका उपार्जनके लिए क्या करे? इसका एक उत्तर तो यह है कि बड़े वकीलोके सम्बन्धमें

यह प्रश्न उठ ही नही सकता। छोटे-छोटे वकीलोंको खिलाफत समिति आजीविका प्रदान करके आन्दोलनके काममें लगा सकती है अथवा उन्हे जनताकी ओरसे नियुक्त पचोंमे न्याय प्राप्त करानेके कार्यमे लगाकर मेहनताना दे सकती है। और फिर वकील कोई ऐसे नही होते कि वकालत छूटनेपर हाथपर-हाथ धरकर बैठ जाये। उनमें अपनी रोजी दूसरे ढंगसे कमानेकी शक्ति होती है और होनी चाहिए।

अन्तमे वकीलोको मेरी यह सलाह नही है कि वे सनदे छोड़ दे, बल्कि यह है कि वे आन्दोलनके दौरान वकालत बन्द कर दे।

स्वर्गीय गोखले कहा करते थे कि दृढ, होशियार अथवा सगठित नौकरशाहीसे भिडनेका कार्य अर्थात् राजनीतिका संचालन जनता अपने आरामके — खेलके समय करती है। इसीसे वह कार्य कच्चा रह जाता है। इस दोषसे मुक्त होनेका मार्ग भी यही है कि वकील वकालत बन्द करके जनताके कार्यको आरामके समयका कार्य न मानकर अपना मुख्य कार्य माने। यह तो वकालत बन्द किये बिना सम्भव नही है। वकील स्वय बलिदान करनेके लिए तैयार न हो तो वे जनतासे बलिदानके लिए कैसे कह सकते है? खिलाफत अथवा पजाबके मामलेमे न्याय प्राप्त करना कोई खेल नही है। इस तरह प्रत्येक दृष्टिसे जाँच करनेपर यही लगता है कि वकीलोको यदि खिलाफत या पजाबके मामलेमे सच्ची चिन्ता हो तो उनसे वकालत हो ही नही सकती।

अब हम पाठशालाओं व कालेजोके त्यागके सम्बन्धमे विचार करे।

हमारी सरकार इन पाठशालाओ तथा कालेजोके द्वारा नौकर तैयार करती है। सरकारको मिलनेवाली ऐसी महत्त्वपूर्ण सहायताको बन्द करनेकी बात साधारण बात नही है। जबतक हम सरकारको अच्छा मानते है तबतक सरकारी पाठशालाओमें पढकर सरकारी नौकरीके लायक लोग तैयार करना कोई शर्मकी बात नही; लेकिन जब सरकार जनताके विरुद्ध खड़ी हो तब पाठशालाओको उसके हाथमें रहने देना उसकी सत्ताको प्रतिष्ठित करना है।

पाठशालाओको यदि हम सरकारी अनुग्रहके रूपमे माने तो भी हमे अन्यायी सरकारका अनुग्रह स्वीकार नही।

पाठशालाओके बन्द होनेसे बच्चोकी शिक्षा अधूरी रह जायेगी, ऐसी शकाका कोई कारण नही है। यदि कोई पाठशाला पूरी तरहसे बन्द हो जाये तो उसका सचालन जनता कर सकती है। जनतामें इतनी शक्ति न हो तो इससे यह सिद्ध होता है कि उसमें सरकारके विरुद्ध लड़नेकी शक्ति नही है। सब अथवा ज्यादातर माता-पिता अपने बच्चोंको पाठशालाओसे निकाल ले तो उनके अध्यापक खुद-ब-खुद त्यागपत्र दे देंगे। ऐसा हो तो हम उन्ही अध्यापकोसे पाठशालाएँ चलाये। यदि उनपर फीससे कुछ अधिक खर्च आये तो उसे सम्बन्धित स्थानोकी समितियाँ उठा ले। माता-पिता भी उतना ही अधिक भार वहन करें।

इसके अतिरिक्त अगर कुछ समयतक शिक्षा बन्द रहे तो इसमे क्या हर्ज है? पर शिक्षा बन्द करनेकी तो इसमें बात ही नही है उलटे मेरा दावा तो यह है कि बच्चोंको पाठशालाओसे निकाल लेना अथवा उनका स्वयं कालेज छोडना ही सच्ची

शिक्षा है। जब हम धर्मके अथवा न्यायके निमित्त अपने बच्चोको पाठशालाओसे उठा लेगे अथवा वे समझदार हुए तो स्वयं ही उनसे बाहर निकल आयेंगे तब उन्हे धर्मकी अथवा न्यायकी जो प्रतीति होगी और उनकी ऐसी शिक्षा कोई साधारण शिक्षा नही होगी। उसे मै तो सच्ची शिक्षा मानूँगा। इस तरह पाठशालाओको छोडनेके बाद विद्यार्थी यदि स्वयंसेवक बन जायेंगे तो यह एक अतिरिक्त लाभ ही होगा।

मुसलमान भाइयोका यह कहना है कि खिलाफतके मामलेमे उन्हे बहुत आघात पहुँचा है। यह सचमुच, धार्मिक भावनाओका प्रश्न है। पाठशालाओका बहिष्कार मुसलमान माँ-बापोकी धार्मिक भावनाओंकी कसौटी है। यह हिन्दुओकी मुसलमानोके प्रति मैत्रीकी भावनाओंकी कसौटी है, और यह कसौटी अत्यन्त सहल होनेपर भी बहुत प्रभावशाली है। लाखों विद्यार्थी पाठशालाएँ छोड़ दे, इसका सरकार क्या अर्थ लेगी? यह लोकभावनाका कितना सुन्दर मापदण्ड है। और जनता अपने बचावकी शिक्षाको अपने हाथमें ले यह जन-जागृतिका कितना बड़ा परिचायक है।

गत महायुद्धके समय इग्लैंडमें बहुत सारी पाठशालाएँ बन्द हो गई थी। बोअर-युद्धके समय बोअरोकी सारी पाठशालाएँ बन्द रही थी।

उपर्युक्त कारणोसे मेरी मान्यता है कि हिन्दू और मुसलमान दोनोको अपने बच्चे पाठशालाओसे निकाल लेने चाहिए और कालेजके विद्यार्थियोको कालेज जाना छोड देना चाहिए। यह उनका धर्म है। जो कार्य करने योग्य है यदि उसे एक व्यक्ति भी करे तो भी उचित है। एक व्यक्ति द्वारा किया गया पुण्यकार्य उसे तो फल देगा ही। यदि उसे सब लोग करेंगे तो उसका फल सबको मिलेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-८-१९२०

९८. आगामी गुजरात राजनीतिक परिषद्

इस मासके अन्तमे जो परिषद् होनेवाली है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसमें असहयोगके महान् प्रश्नपर निर्णय होनेवाला है। इस परिषद्के जल्दी बुलाये जानेके दो हेतु है, लोकमतको प्रशिक्षित करना तथा काग्रेसके विशेष अधिवेशनमे गुजरातके मतको प्रस्तुत करना। महान् साम्राज्यके साथ असहयोग करनेमे बहुत दृढता, हिम्मत, होशियारी, स्वार्थ-त्याग, एकता और शिक्षा आदिकी जरूरत है। अग्रेज सरकारकी वर्तमान राजनीति इतनी अधम है कि जबतक यह राजनीति कायम है तबतक इससे सहकार करना पाप है—ऐसा मुझे प्रतिपल अधिकाधिक स्पष्ट रूपसे अनुभव होता है। लेकिन इस राजनीतिमे सुधार करवाना सहज कार्य नही है। इसलिए असहयोग सहज कार्य नही होना चाहिए और मै चोरी-छिपे गुजरातका मत जैसे-तैसे असहयोगके पक्षमें ले लेना नही चाहता, बल्कि मै चाहता हूँ कि जो प्रतिनिधि इस परिषद्मे भाग ले रहे है वे गम्भीरतापूर्वक दोनो पक्षोंकी दलीलोकी जाँच कर अपनी राय स्वतन्त्रतापूर्वक दे।

मुझे उम्मीद है कि जो लोग असहयोगके विरुद्ध हैं वे अपने पूरे दल-बल सहित परिषद्में भाग लेंगे और अपने तर्कोंको दृढ़तापूर्वक परिषद्के सम्मुख प्रस्तुत करेंगे, तथा इसी तरह असहयोगके समर्थक लोग भी पूरी तैयारीसे आयेंगे — मैं ऐसा मान लेता हूँ। श्रोतृगण विनयपूर्वक, बिना किसी शोरके तथा मर्यादामें रहकर दोनों पक्षोंकी दलीलोंको सुनें। यह ध्यान रखना दोनोंका कर्त्तव्य है। ऐसी परिषदोंसे स्पष्ट मत प्राप्त करनेके लिए मैंने जो कहा है वह अनिवार्य शर्त है। ब्रिटिश कॉमन्स सभाके जैसे उद्धत व्यवहार, अविनय तथा जंगलीपनका हमें तनिक भी अनुकरण नहीं करना चाहिए। पहलेसे ही एक निश्चित मत बनाकर भाग लेना और विरोधी पक्षके तर्कोंसे भड़क जाना, यह कोई शुद्ध निर्णय करनेका रास्ता नहीं है। इसलिए यदि व्यवस्थापक इस सम्बन्धमें पत्रिकाएँ प्रकाशित करके प्रतिनिधियोंको पहलेसे ही सूचित कर देंगे तो उससे बहुत लाभ होगा तथा परिषद्का काम सुचारु ढंगसे चल सकेगा।

जिस तरह शान्ति आदि बनाये रखना आवश्यक है उसी तरह चतुर सदस्योंका चुनाव करना भी लोगोंका कर्त्तव्य है। सदस्य पर्याप्त संख्यामें भाग लें, यह वांछनीय है।

परिषद्में प्रत्येक वर्ण और धन्धेके प्रतिनिधियोंके होनेकी आवश्यकता है। जनता शिक्षित-अशिक्षितके भेदको छोड़कर दूसरे योग्य धन्धों आदिके सूचक भेद करनेकी पद्धतिको अपनाये, यह उसके लिए अधिक शोभनीय है। अक्लका — व्यवहार-बुद्धिका ठेका कोई साक्षरोंने ही लिया हो, ऐसी बात तो जगत्में दिखाई नहीं देती। किसानोंके सुख-दु:खकी बात जितनी अपढ़ किसान कर सकता है उतना कोई दूसरा भारतीय, जो चाहे कितना ही पढ़ा-लिखा क्यों न हो लेकिन इस क्षेत्रके अनुभवसे हीन हो, नहीं कर सकता। इसीसे मैं किसानों, बुनकरों, बढ़इयों, लुहारों, मोचियों आदि की ओरसे अधिकसे-अधिक प्रतिनिधियोंको सम्मिलित हुआ देखना चाहता हूँ। हिन्दुस्तानमें किसानोंकी जितनी आबादी है उसी अनुपातमें जबतक स्वदेशाभिमानी किसान प्रतिनिधियोंके रूपमें हमारे राजकीय अथवा समाज-सुधार सम्मेलनोंमें न हों तबतक हमारे देशकी सच्ची उन्नति होनेकी बातको मैं तो असम्भव मानता हूँ। चम्पारन[1] या खेडा[2] जिलोंमें कुछ महीनोंमें ही मुझे किसानोंकी दशाका जो अनुभव हुआ है वह कदाचित् असंख्य पुस्तकोंको पढ़ लेनेसे भी प्राप्त नहीं किया जा सकता था।

और यदि हम किसान आदि वर्गोंकी ओरसे नियुक्त किये गये प्रतिनिधियोंका स्वागत करना चाहते हों तो हमारी परिषदोंमें बहुत ज्यादा कुर्सियोंको तथा आडम्बरको अवकाश नहीं है। हिन्दुस्तानकी आबहवामें कुर्सियाँ, परदे आदि व्यवधान हैं। स्वच्छ भूमिपर दरी बिछाकर हम सभाओंकी कार्यवाही अधिक सरलता तथा बहुत कम खर्चेमें चला सकते हैं, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है। जबतक हिन्दुस्तानमें तीन करोड़ लोग भूखे मरते हैं, जबतक उससे भी अधिक लोगोंके अंगोंपर वस्त्र नहीं हैं और जबतक उड़ीसामें असंख्य लोग बिना कारण ही हड्डियोंके ढाँचे-से दिखाई देते हैं तबतक, मेरे विचारानुसार, हमें विविध रंगोंसे सज्जित मण्डप बनाने तथा कुर्सियोंपर बैठनेका अधिकार नहीं है।

१. १९१७के दौरान।
२. १९१८के दौरान।

कुर्सियोपर बैठना जनताकी आवश्यकता नही है — इसलिए मैं तो व्यवस्थापकोसे अनुरोध करूँगा कि वे बहुत ज्यादा जरूरी होनेपर ही थोड़ी-सी कुर्सियाँ रखकर बाकी लोगोके लिए जमीनपर ही बैठनेकी व्यवस्था करे। यदि वे ऐसा करेगे तो जनताका पैसा बचेगा तथा थोडी जगहमे बहुत सारे लोग समा सकेगे। मैं अभी-अभी हैदराबादमे खिलाफतके सम्बन्धमे हुई एक सभामे भाग लेकर लौटा हूँ। वहाँ सहस्रो मुसलमान — पीर, वकील-बैरिस्टर, पाटीदार आदि — आरामसे भूमिपर बैठे हुए भले लग रहे थे। मिट्टीका अस्थायी मंच बनाया गया था, उसीपर प्रमुख व्यक्ति पालथी लगाकर बैठे हुए थे। अध्यक्ष भी उसी मचपर विराजमान थे। मंच बल्लियोके आधारपर खड़ा किया गया था तथा ये बल्लियाँ लम्बी थी। उसके अन्तमें अध्यक्षका स्थान था। इससे सब उनको देख सकते थे तथा वक्ता उनके एक ओर खडे होकर भाषण देते थे। हजारो लोगोके बैठनेके लिए यह मण्डप एक ही दिनमे बनाया गया था।

परिषद्मे शोर न हो भीड़ न हो, उसके लिए स्वयसेवक पहलेसे प्रशिक्षित किये जाने चाहिए। वे सब एक स्थानपर एकत्रित खड़े रहनेके बदले निर्धारित स्थानपर रहे तो बन्दोबस्त हो सकता है। और अगर वे दूरीके कारण एक दूसरेतक अपनी आवाज न पहुँचा सके तो उन्हे झडियों आदिसे इशारा करके बात समझाना सीख लेना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-८-१९२०

९९. भाषण : श्रमिकोंके अधिकारों तथा कर्त्तव्योंपर[1]

१५ अगस्त, १९२०

अध्यक्ष महोदय तथा मित्रो,

आशा है कि बैठे-बैठे बोलनेके लिए आप मुझे क्षमा कर देगे। मेरी आवाज जैसी सालभर पहले थी उससे ज्यादा तेज हो गई है, लेकिन मेरा शरीर मेरी इच्छाके अनुकूल खड़े होकर बोलने लायक मजबूत नही हो पाया है। आपसे दोबारा मिलकर परिचय ताजा करते हुए मुझे बेहद खुशी हो रही है। मेरा खयाल है कि पिछले साल जब मुझे आपके सामने बोलनेका सौभाग्य मिला था मैंने आपको बताया था कि मैं अपनेको मजदूर, आपका साथी ही मानता हूँ। शायद आपने स्वेच्छासे नही, मजबूरीसे मजदूरी करना स्वीकार किया है। परन्तु मै श्रमको बहुत श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता हूँ। मेरे मनमे श्रमकी इतनी अधिक प्रतिष्ठा है कि मैंने मजदूरोका-सा जीवन अपना लिया

१. यह भाषण केन्द्रीय श्रम बोर्डके तत्त्वावधानमें मद्रासके समुद्र तटपर हुई एक सभामें दिया गया था, जिसकी अध्यक्षता बी० पी० वाडियाने की थी।

है, और अब बहुत बरसोसे मै उन्हीकी तरह शारीरिक श्रम करता हुआ उनके बीच रह रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक चेतनाशील प्राणीके जीवनके लिए यह प्रकृतिका विधान है कि वह हाथ-पाँव हिलाकर ही अपना आहार जुटाये। इस प्रकार शारीरिक श्रम करके सिर्फ आप अपने अस्तित्वको बनाये रखनेके नियमका ही पालन कर रहे है और आपको अपने जीवनसे असन्तुष्ट होनेका कोई कारण नही है। इसके विपरीत मै तो कहूँगा कि आप जिसके लिए श्रम कर रहे है अपनेको उस राष्ट्रका न्यासी माने। राष्ट्र करोडपतियो और पूँजीपतियोके बगैर चल सकता है परन्तु श्रमिकोके बिना नही। आपके और मेरे श्रममें एक बुनियादी अन्तर है। आप किसी औरके लिए श्रम कर रहे है। साधारण स्थितिमे शायद यह आशा की जा सकती है कि हर व्यक्ति स्वय ही मालिक हो और स्वय ही मजदूर भी। मै मानता हूँ कि मै अपनी इच्छासे श्रम करता हूँ। इसलिए अपना मालिक मै ही हूँ। स्वाभाविक रूपसे तो हम सबको अपना-अपना मालिक होना चाहिए। परन्तु इस अवस्थातक एक दिनमे नही पहुँचा जा सकता। अतएव दूसरोके लिए काम करते हुए मजदूर किस तरहका आचरण करे यह आपके लिए एक बहुत विचारणीय प्रश्न बन जाता है। जिस प्रकार श्रम करनेमें कोई शर्मकी बात नही है, उसी प्रकार दूसरोके लिए श्रम करनेमे भी शर्मकी कोई बात नही है। अलबत्ता मालिक और नौकरके बीचके सही सम्बन्धोको समझ लेना जरूरी हो जाता है। आपके कर्त्तव्य क्या है? आपके उत्तरदायित्व क्या है? और आपके अधिकार क्या है? यह समझना काफी आसान है कि अपने श्रमके बदले पैसा पाना आपका अधिकार है, और यह समझना भी उतना ही आसान है कि जो मजूरी आप पाते है उसके बदलेमे अपनी पूरी योग्यता-भर काम करना आपका कर्त्तव्य है। मैने ज्यादातर, सभी जगह श्रमिकोको अपना उत्तरदायित्व अच्छी तरह और ईमानदारीसे निभाते देखा है। फिर श्रमिकोके प्रति मालिकोका भी कुछ कर्त्तव्य है, इसलिए श्रमिकोको यह पता लगाना जरूरी हो जाता है कि श्रमिक किस हदतक मालिकोपर अपनी इच्छा आरोपित कर सकते है। यदि ऐसा लगे कि हमे पर्याप्त वेतन और आवासकी सुविधा प्राप्त नही है तो देखना चाहिए कि उनके लिए माँगें किस तरह पेश करे। यह कौन निश्चित करेगा कि मजदूरोके लिए जरूरी आराम और जरूरी वेतन क्या है? निस्सन्देह, सबसे अच्छी बात तो यही है कि स्वय आप, श्रमिक लोग अपने अधिकार पहचाने और उन अधिकारोको अमलमे लानेका उपाय जाने और उनपर अमल भी करे। इसके लिए आपको थोडीसी प्राथमिक शिक्षा और प्रशिक्षणकी आवश्यकता है। आप देशके विभिन्न भागोसे सिमटकर केन्द्रमे आ पहुँचे है और काफी सख्यामे यहाँ इकट्ठे है। शायद परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थी कि आप खेती या पहलेके अपने-अपने धन्धोमे पर्याप्त पैदा नही कर सके और आपने किसी एक मालिकके अधीन मजदूरी करना स्वीकार कर लिया। परन्तु बादमे आपने देखा कि आपको यहाँ भी आपकी जरूरतके लायक न पैसा मिल रहा है, न रहनेकी जगह और अब आपकी समझमे नही आ रहा कि अपना काम किस तरह चलाया जाये। अतएव मै श्री वाडियासे तथा अन्य उन लोगोसे जो आपका नेतृत्व कर रहे है, आपको सलाह दे रहे है, कहना चाहता हूँ कि उनका

प्रथम कर्त्तव्य आपको अक्षर-ज्ञान देना नही वरन् मानवीय व्यापारो और मानवीय सम्बन्धोंका ज्ञान देना है। मै यह सुझाव बड़े आदर और नम्रताके साथ दे रहा हूँ। जहाँतक मै भारतमें श्रमका सर्वेक्षण कर पाया हूँ तथा दक्षिण आफ्रिकामे मजदूरीकी शर्तोंके बारेमे मैंने जो कटु और दीर्घ अनुभव प्राप्त किया है उनके आधारपर मैंने देखा यह है कि ज्यादातर नेतागण मजदूरोको पढना-लिखना तथा मामूली हिसाब-किताबका ज्ञान कराना पर्याप्त मानते है। बेशक वह एक जरूरी बात है। परन्तु उससे भी पहले आपको अपने अधिकारोका सही ज्ञान और तदनुसार चल सकनेका उपाय मालूम होना चाहिए। विभिन्न हड़तालोका पुरस्कर्त्ता होनेके नाते मै यह समझ गया हूँ कि यह बुनियादी शिक्षा मजदूरोको एक दिनमे दी जा सकती है। अब मै हड़तालके विषयमे कुछ कहूँगा।

आज सारे ससारमे हड़ताले की जाती है। छोटीसे-छोटी बातको लेकर मजदूर हडताल करने लगते है। पिछले छ. महीनोका मेरा निजी अनुभव है कि कई हडतालो-से मजदूरोको लाभके बजाय नुकसान पहुँचा है। जहाँतक सम्भव था मैंने बम्बईकी हड़ताल, टाटा आइरन वर्क्सकी हड़ताल, गोरखपुरमे दो बार हडताल और पजाबकी प्रसिद्ध रेलवे मजदूरोकी हडतालका अध्ययन किया है। इन चारो हड़तालोमे मै थोड़ा-बहुत मजदूरोके सम्पर्कमे रहा हूँ और जो-कुछ मै बताने जा रहा हूँ, वह मुझे मज-दूरोसे ही मालूम हुआ है। ये सभी हड़ताले, कुछ हदतक असफल रही। मजदूर पूरी तरह अपने मुद्दे स्पष्ट नही कर पाये। इसका क्या कारण था? उनका नेतृत्व ठीकसे नही किया गया था। मै चाहता हूँ कि आप नेताओके इन दो वर्गोंका अन्तर पहचाने; एक तो वे जो आपमे से है और दूसरे वे जो समयपर आपके बीचके इन नेताओको सलाह देते है, वे स्वयं मजदूर नही है परन्तु मजदूरोसे सहानुभूति रखते है या उनसे मजदूरोके प्रति सहानुभूति रखनेकी आशा की जाती है। मुझे आपको यह बतानेकी जरूरत नही कि जबतक आपका आपसमें, अपने नेताओसे तथा जो आपसे ऊपरके लोग है उनसे, सम्पर्क नही है और जबतक विचारोंका आदान-प्रदान पूर्णरूपसे नही होता तबतक असफलता ही हाथ आयेगी। इन चारो हडतालोंमे परस्पर पूरा सम्पर्क नही था। असफलताका एक और ठोस कारण मैंने यह पाया है कि मजदूर अपने निर्वाहके लिए अपने संघोसे आर्थिक मददकी आशा करते थे। जबतक मजदूर अपने संघके कोषपर निर्भर रहता है तबतक वह अनिश्चित समयतक हड़ताल जारी नही रख सकता। कोई भी हडताल जो अनिश्चित कालतक जारी नही रखी जा सकती, पूरी तरह सफल नही हो सकती। मैंने जो हडताले करवाईं उन सभीमें एक अनिवार्य नियम मैंने यह रखा कि मजदूर अपने निर्वाहका सहारा स्वयं खोजे। इसीमे सफलताका रहस्य निहित है। आपकी शिक्षाका उपकार भी इसीमें है। आपको इस बातका इत्मीनान रहना चाहिए कि यदि आप एक जगह काम करके कुछ मजदूरी पा सकते है तो आपका काम वही मजदूरी कही और पा सकने योग्य भी होना चाहिए। इसलिए हडतालियोसे निठल्ले रहकर सफलता पानेकी आशा नही की जा सकती। आपकी माँगे उचित होनी चाहिए और जिन लोगोको आप गद्दार वगैरा कहते है, उनपर भी कोई दबाव

नही डाला जाना चाहिए। यदि आप अपने साथी मजदूरोपर ऐसा कोई दबाव डालेगे तो उसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी। मै समझता हूँ कि आपके सलाहकार आपको बतायेगे कि यदि ये तीन बाते पूरी तरह मानी जाये तो कोई हड़ताल कभी असफल नही हो सकती। इससे आपके सामने यह बात सहज ही स्पष्ट हो जाती है कि हड़ताल शुरू करनेसे पहले सौ बार सोचनेकी जरूरत है। आपके अधिकारो और उनपर अमलके बारेमे मुझे आपसे इतना ही कहना था।

परन्तु जैसे-जैसे मजदूर संगठित होते जायेगे, हड़ताले करनेकी आवश्यकता भी घटती चली जायेगी। और मानसिक रूपसे विकसित होनेके बाद आप यह भी आसानीसे समझ लेगे कि हड़ताल करनेके सिद्धान्तके बजाय पंच-फैसलेके सिद्धान्तका प्रतिष्ठित हो जाना ज्यादा अच्छा है। इस अवस्थातक पहुँचना आवश्यक हो गया है। मै इस मुद्देको स्पष्ट करनेमे आपका और अधिक समय नही लेना चाहता।

अब मै आपके राष्ट्रीय उत्तरदायित्वोके सम्बन्धमे आपसे कुछ कहना चाहूँगा। जिस प्रकार आपको अपने मालिकोसे सम्बन्धित उत्तरदायित्व समझने है उसी प्रकार यह भी जरूरी है कि आप अपने राष्ट्रके प्रति अपना उत्तरदायित्व समझें। आपकी प्राथमिक शिक्षा तभी पूरी होगी। यदि आप श्रमकी प्रतिष्ठाको अच्छी तरह समझ ले, तो आप महसूस करेगे कि आपको अपने देशके प्रति भी एक कर्त्तव्य निभाना है। इसलिए अपने देशके मामलोको जितने अच्छे ढंगसे आप समझ सकें, समझना चाहिए। ढेर सारी किताबोमें अपना सिर खपाये बिना आपको यह सब समझ लेना है कि आपके शासक कौन है, उनके प्रति आपका क्या कर्त्तव्य है तथा आपके लिए उन्हे और उनके लिये आपको क्या करना चाहिए। मै मौजूदा हालातोंका बयान नही करना चाहता। यहाँ मै आपके सामने लम्बा भाषण देने नही आया हूँ। जो उलझे हुए प्रश्न देशको आन्दोलित कर रहे है यहाँ उनमे आपकी दिलचस्पी पैदा करना मेरे लिए सम्भव नही है। आपको मेरा इतना बता देना काफी है कि इस महान् देशके नागरिककी हैसियतसे आपका प्रथम कर्त्तव्य अपने अधिकार और उत्तरदायित्व समझ लेना है। जबतक आप इन चीजोको समझनेका प्रयास नही करते, मेरी नम्र रायमे आप पूरी तरह अपने धर्मका पालन नही कर सकते। यदि मैंने आपके मनमे अपने देशके मामलोंकी जानकारी प्राप्त करनेकी इच्छा जगा दी तो आजका मेरा काम खत्म हो गया। मुझे आशा है कि आप जबतक अपने सलाहकारो और नेताओंकी सहायतासे देशसे सम्बन्धित मुख्य-मुख्य बातोंको नही समझ लेते तबतक आप चैनसे नही बैठेंगे। मै यहाँके मजदूर संगठनकर्त्ताओंको धन्यवाद देता हूँ कि उन्होने मुझे आमन्त्रित किया। आप सबने आकर मेरी बात शान्तिसे सुनी इसके लिए भी मै आप सबको धन्यवाद देता हूँ। मै आपको अपनी ओरसे आश्वासन देना चाहता हूँ कि जब कभी आपको मेरी सलाहकी जरूरत जान पड़ेगी, मै उसके लिए प्रस्तुत रहूँगा। इसलिए मुझे इस बातका दु:ख है कि एक बार आपने मुझे मद्रास बुलाया और मै कार्य-व्यस्त होनेके कारण आपका निमन्त्रण स्वीकार न कर सका। परन्तु आप मेरी इतनी बात सही मानिए कि न आनेका कारण इच्छाका अभाव नही, असमर्थता थी। आपके योग्य

समृद्धिकी शुभकामना करते हुए मैं आशा करता हूँ कि आप देशके अच्छे नागरिकोंकी तरह अपना कर्त्तव्य निबाहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९–८–१९२०

स्पीचेज ऍड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, (तृतीय संस्करण), पृष्ठ ७८४-८८

१००. भाषण: कुम्भकोणममें असहयोगपर

१९ अगस्त, १९२०

सर्वश्री गांधी और शौकत अली क्रमशः अंग्रेजी और उर्दूमें बोले। उनके भाषणोंका वाक्यशः तमिलमें अनुवाद किया गया। कुम्भकोणमकी उस सार्वजनिक सभामें उपस्थित विशाल श्रोतृसमूहकी ओर मुखातिब होकर अपने स्वागतमें किये गये अभिनन्दनका उत्तर देते हुए महात्मा गांधीने कहा कि मुझे दुःख है कि मेरा तमिलका ज्ञान पर्याप्त नहीं है, लेकिन साथ ही मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप राष्ट्रीय सम्पर्ककी भाषाके रूपमें हिन्दी या उर्दू अवश्य सीखें, क्योंकि यह हमारी राष्ट्रीय प्रगतिकी एक अनिवार्य शर्त है। क्या ही अच्छा होता अगर इन अभिनन्दनोंमें से अंग्रेजीके बजाय कुछ तमिलमें प्रस्तुत किये गये होते। महात्मा गांधीने लोगोंसे आगे कहा कि याद रखिये, पर्याप्त धनके बिना खिलाफत आन्दोलन नहीं चल सकता और यद्यपि पैसेका अपने-आपमें न तो कोई खास महत्त्व है और न वह आत्म-बलिदानके समान बड़ी चीज ही है। फिर भी मैं आप सबसे, और विशेषकर उन लोगोंसे जो असहयोग आन्दोलनमें सक्रिय रूपसे भाग नहीं ले सकते, अनुरोध करूँगा कि खिलाफत-कोषमें अपनी शक्ति-भर चन्दा दें। श्री गांधीने कर्मकी आवश्यकतापर जोर देते हुए कहा कि भाषण, बहस-मुबाहिसे और प्रदर्शनों आदिका समय बीत गया है और संगठित रूपसे निरन्तर और अथक काम करनेका समय आ गया है। लोगोंको सिर्फ कामकी ही धुन होनी चाहिए। खिलाफत तथा पंजाबके सवालोंने वर्तमान सरकारको दुर्भावना-पूर्ण, अनैतिक और अन्यायी साबित कर दिया है और अब लोगोंका, यह परम कर्त्तव्य हो गया है, आपमें से प्रत्येकका यह दायित्व हो गया है कि ऐसी सरकारसे सहयोग करना बन्द कर दें। टर्कीके सम्बन्धमें जो शर्तें रखी गई हैं वे यदि सचमुच इस्लामके लिए अपमानजनक हैं तो हर मुसलमानका यह धार्मिक कर्त्तव्य है कि वह हर प्रकारके असहयोगके लिए तैयार हो जाये। भारतमाताकी सन्तान होनेके नाते मुसलमानोंको हिन्दू भाई समझते हैं और वे अपने धर्मके प्रति सच्चे रहना चाहते हैं तथा अपने आत्म-सम्मान और अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करना चाहते हैं। इसलिए उन्हें भी मेरे बतलाये तरीकेसे अहिंसक असहयोग करना चाहिए। स्मरण-पत्र आदि भेजकर आन्दो-

लन चलानेके सामान्य तरीके असफल सिद्ध हो चुके हैं। अब आप सबके सामने असहयोगका सिद्धान्त ही एकमात्र उपाय रह गया है और जो लोग इस सिद्धान्तको ठीक समझते हैं उन्हें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि खिताबोंका त्याग, परिषदोंका बहिष्कार, स्कूलोंसे बच्चोंको निकाल लेना, अपनी वकालत छोड़ देना, युवराजके प्रस्तावित आगमनका बहिष्कार और जोर-शोरसे स्वदेशीके लिए काम करना — ये सभी चीजें असहयोगके कार्यक्रमको प्रभावशाली बनानेके लिए अत्यावश्यक हैं। ऐसी सभी शिक्षण-संस्थाओंको खाली कर देना चाहिए जिनकी व्यवस्था सरकार करती हो या जिनको सरकारसे अनुदान प्राप्त होता हो या जिनको सरकारने मान्यता दे रखी हो क्योंकि इनका काम मुख्यतः सरकारके लिए क्लर्क और नौकर तैयार करना ही है। जहाँतक परिषदोंकी बात है, सरकारके काममें बाधा डालनेके खयालसे उनमें सीटें हासिल करनेकी हदतक सहयोग करनेका विचार पूरी तरह असहयोग करना नहीं है; आधे मनसे असहयोग करना है। आज तो हमें एक ऐसी दुरभिमानी और शक्तिशाली सरकारसे लोहा लेना है, उससे असहयोग करना है जो लोकमतके विरुद्ध खड़ी रहने और अपनी अन्यायपूर्ण नीतिपर दृढ़ रहनेमें समर्थ है। इसलिये वर्तमान परिस्थितियोंमें उसके विरुद्ध आधे मनसे की गई किसी प्रकारकी कार्रवाई पर्याप्त नहीं हो सकती। उम्मीदवारोंको चुनावमें खड़े नहीं होना चाहिए और लोगोंको अपने चुनाव-क्षेत्रोंसे प्रतिनिधि भी नहीं भेजने चाहिए। इसके बाद श्री गांधीने बताया कि वकीलोंको अपनी वकालत क्यों स्थगित कर देनी चाहिए और क्यों युवराजके आगमनका बहिष्कार करना चाहिए। उन्होंने कहा कि मैंने जो अनेक कदम उठानेकी बात कही है वे केन्द्रीय खिलाफत समितिके असहयोग सम्बन्धी कार्यक्रमके पहले दौरमें शामिल किये गये हैं और उनकी व्यवस्था कुछ इस तरह की गई है कि आज समाजके उच्चतर स्तरके लोग स्वयं आत्म-त्याग करके इस मामलेमें आम लोगोंका नेतृत्व करें। आखिरी दौरमें आम लोगोंको असहयोगपर अमल करनेका सुअवसर प्राप्त होगा। सरकारकी ओरसे प्राप्त खिताब अब अपमानके तमगे बनकर रह गये हैं इसलिए तनिक भी आगा-पीछा किये बिना उनका त्याग कर दिया जाना चाहिए। अन्तमें गांधीजीने श्रोतृ-समूहसे जोरदार अपील करते हुए कहा कि जैन सभाने मेरे अभिनन्दनमें मुझे जैन-मतानुयायी बताया है, लेकिन बात गलत है। मैं वैष्णव हूँ; और अपने पितासे असहयोग करनेवाला प्रह्लाद असहयोगियोंका सरताज था। उसने अपने आचरण द्वारा दिखा दिया कि अगर कोई व्यक्ति मानता है कि ईश्वर ही सबसे बड़ा है तो अपने पिता-तकसे असहयोग करना उसका परम कर्त्तव्य हो जाता है। इस संकटपूर्ण कालमें यदि वैष्णव असहयोग नहीं करता तो इसका मतलब होगा कि उसने अपने धर्मके अनुसार आचरण नहीं किया। थोरोने बिलकुल ठीक कहा है कि अन्यायी सरकारके अधीन अपनी स्वतन्त्रता, सम्पत्ति और सुख-सुविधाएँ होम करके घोर कष्ट सहन करना ही एकमात्र सम्माननीय मार्ग है। श्री शौकत अली मेरे इस अहिंसक असहयोगमें पूरा

योग दे रहे हैं क्योंकि उनका खयाल है कि भारतमें इतनी शक्ति नहीं कि वह सशस्त्र प्रतिरोध कर सके; लेकिन मेरा तो निश्चित मत है कि इस प्रस्तावित असहयोगके ढंगका अहिंसक प्रतिरोध करनेके लिए कहीं ज्यादा ताकत जरूरी होती है। इसके बाद श्री शौकत अलीने अपने भाषणमें जोर देकर कहा कि खिलाफतकी अखण्डताको बनाये रखना मुसलमानोंका धार्मिक कर्त्तव्य है। कुरानके आदेश हर सच्चे मुसलमानके लिए अनुल्लंघनीय हैं। उन्होंने अनुरोध किया कि हिन्दू इस संघर्षमें मदद दें या न दें, मुसलमानोंको हर हालतमें संघर्ष जारी रखना चाहिए। उन्होंने हिन्दुओंसे भी अपना समर्थन देनेकी अपील की और मुसलमानोंको बताया कि उनका गांधीजीको अपने नेताके रूपमें चुनना ही हिन्दू-मुस्लिम एकताकी सबसे बड़ी जीत है। अगर इस्लामके सम्मानकी रक्षाके लिए लोगोंसे युद्ध करके उन्हें मार डालना मुसलमानोंके लिए धर्म है तो खुद अपनी जान देना और आगे बढ़कर तकलीफें झेलना भी उनका ही धर्म है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १८-८-१९२०

१०१. भाषण : नागौरमें

१६ अगस्त, १९२०

नागौरमें हुई सार्वजनिक सभाकी खासियत यह थी कि उसमें मुसलमान महिलाएँ बहुत भारी संख्यामें एकत्र हुई थीं। श्री शौकत अलीने कहा : आपकी उपस्थितिसे मेरा बहुत साहस बँधा है और उम्मीद रखता हूँ कि आप कमजोर दिल लोगोंमें अपने मजहबके लिए हिम्मत और कुर्बानीका जज्बा पैदा करेंगी। क्योंकि यह आपकी अपनी खूबी है।

श्री गांधीने कहा : मुसलमान महिलाएँ जितनी भारी संख्यामें उपस्थित हुई हैं उससे पता चलता है कि खिलाफतके सवालपर मुसलमानोंकी भावनाएँ कितनी तीव्र हो उठी हैं और इससे प्रकट होता है कि इस आन्दोलनने उनके हृदयको कितनी गहराईसे स्पर्श किया है। उन्होने हिन्दू-मुस्लिम एकताके महत्त्वपर जोर दिया और कहा कि यह चीज ब्रिटेनके साथ हमारे सम्बन्धोंसे भी बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १८-८-१९२०

१०२. भाषण : त्रिचिनापल्लीमें

१७ अगस्त, १९२०[1]

त्रिचिनापल्लीके नागरिकोने हमारा जो शानदार स्वागत किया है उसके लिए मै आप सबको अपने भाई शौकत अली तथा अपनी ओरसे भी धन्यवाद देता हूँ। आप सबने हमारा जो अभिनन्दन किया है उसके लिए भी आपको धन्यवाद देता हूँ। लेकिन आइए, अब कामकी बात करे।

आपसे दुबारा मिलकर मुझे बड़ी खुशी हो रही है; कारण बतानेकी जरूरत मै नही समझता। मै त्रिचिनापल्ली, मदुरा और इनके जैसे जिन अन्य थोड़ेसे स्थानोके नाम ले सकता हूँ, मुझे उनसे बड़ी-बडी अपेक्षाएँ है। मै समझता हूँ "मद्रास बीच" पर असहयोगके सम्बन्धमे दिया गया मेरा भाषण आप लोगोने पढा होगा। इस समय इस जबरदस्त सभामें उपस्थित लोगोका ज्यादा समय लिये बिना मै श्री एस० कस्तूरी रंगा आयगरके[2] भाषणसे उठनेवाले एक-दो मुद्दोपर विचार करना चाहता हूँ। उन्होने जो कहा उसका यह आशय होता है कि मुझे असहयोगके सम्बन्धमे कांग्रेसका निर्णय होने तक रुके रहना चाहिए था। लेकिन यह सम्भव नही था, क्योकि हिन्दू कुछ करते है या नही इसका खयाल रखे बिना मुसलमानोका अपने धर्मकी दृष्टिसे कुछ कर्त्तव्य और है। किसी ऐसी बातपर जो इस्लामके सम्मानसे बहुत ही गम्भीर रूपसे सम्बद्ध है, इस्लामका जो आदेश है उसके अलावा किसी और आदेशके लिए रुके रहना उनके लिए गैर-मुमकिन था। इसलिए यह बात बिलकुल असम्भव थी कि वे कांग्रेसके सामने जाकर घुटने टेककर तफसीलसे अपना कार्यक्रम उसके सामने पेश करते और उससे उस कार्यक्रमके सम्बन्धमे आशीर्वाद माँगते और अगर उन्हे इस राष्ट्रीय संगठनका आशीर्वाद प्राप्त करनेका सौभाग्य न मिलता तो बादमे उसके प्रति कोई असम्मानका भाव भी मनमे न लाते। उनका तो यही परम कर्त्तव्य था कि वे अपने कार्यक्रमके अनुसार कार्य शुरू कर देते। मुसलमानोंके सामने एक सर्वथा उचित उद्देश्य है और वे उसे सिद्ध करना चाहते है। अतएव उन्हे अपना भाई समझनेवाले हिन्दुओका यह कर्त्तव्य है कि वे उनके दु:खके साथी बनें। हमारे नेताको स्वय असहयोगके सिद्धान्तसे कोई झगडा नही है लेकिन उन्हे उसकी तीन मुख्य तफसीलोपर आपत्ति है।

उनका विचार है कि हमें कौसिलोमें स्थान प्राप्त करनेकी कोशिश करनी चाहिए और अपनी लडाई कौसिल-भवनमें चलानी चाहिए। मै कौसिल-भवनमें एक शानदार लड़ाईकी सम्भावनासे इनकार नही करता। हम पिछले ३५ वर्षोसे यह करते आये है। मै आपसे और उनसे भी समादरपूर्वक यह कहूँगा कि कौसिलोमे जाना और वहाँ

१. मूल सूत्रमें १८ अगस्तकी तारीख दी गई है लेकिन गांधीजी उससे एक दिन पहले त्रिचिनापल्ली गये थे; देखिए "मद्रास-यात्रा", २९-८-१९२० ।

२. मद्राससे प्रकाशित हिन्दूके सम्पादक ।

लड़ना असहयोग नही है; और असहयोग जितना सफल हो सकता है अभी तो उसका आधा भी सफल नहीं हुआ है। जिन लोगोंका अपना निश्चित मत है और जिनकी एक निश्चित आचरण-नीति है उनके बीच जाकर उन्हें अपने दृष्टिकोणके अनुकूल बनानेकी लड़ाई आप उनसे नही लड सकते। और अगर आप केवल व्यवधान उपस्थित ही करना चाहें तो वह भी सम्भव नही हो सकता। अगर चिकित्साशास्त्रकी भाषामे कहें तो यह परस्पर विरोधी पदार्थोको मिलाना है, जिसका कोई भी अच्छा परिणाम नही निकल सकता। लेकिन अगर आप कौसिलका पूरा बहिष्कार करे तो उससे खिलाफत और पंजाबके मामलेमे किये गये अन्यायोके सम्बन्धमे देशमें एक लोकमत तैयार होगा और फिर उसे कोई भी दबा नही पायेगा। कौसिलोमें जानेसे एक यह लाभ हो सकता था कि शासकोके मनमे हमारे प्रति सद्भावना उत्पन्न हो जाती; लेकिन उनमे तो सद्भावनाका सर्वथा अभाव है। सद्भावनाके बदले हमने अन्याय ही पाया है। खैर अब मैं दूसरी बात लूँ।

श्री कस्तूरी रंगा आयंगरकी दूसरी आपत्तिका सम्बन्ध वकीलोके अपने धन्धे बन्द कर देनेके सुझावसे है। दूध अपने आपमें बहुत अच्छी चीज है, लेकिन उसमे जरा-सा भी संखिया पड़ जाये तो वह तत्काल विषैला हो जाता है। उसी प्रकार कानूनी अदालत भी बडी अच्छी चीज है [मगर तभी] जब कोई परम शक्तिशाली सरकार अपनी जनताके साथ न्याय करना चाहे और न्यायको इस तन्त्रके माध्यमसे शुद्ध रूपमे छनकर आने दे। ये अदालते सरकारकी शक्तिके सबसे बड़े प्रतीक है और असहयोगकी लडाईमें ऐसा नही हो सकता कि आप इन अदालतोंको अछूता छोड दे और तब भी असहयोग करनेका दावा करे। लेकिन अगर आप श्री आयंगरकी आपत्तिको ध्यानसे पढे तो आप देखेंगे कि उसका आधार यह आशका ही है कि वकीलोका जिस बातके लिए आह्वान किया गया है, उसमें वे योगदान नही करेगे। लेकिन इसीमे तो असहयोगकी खूबी छिपी हुई है। अगर एक भी वकील अपना धन्धा बन्द कर देता है तो उसका उतना लाभ तो देशको मिलेगा ही। इसलिए अगर हमे यह निश्चय हो जाये कि हम सरकारको इस तरह उस शक्तिसे वंचित कर सकेंगे जो उसे कानूनी अदालतोके द्वारा प्राप्त होती है, तो फिर हमे यह कदम उठाना ही है, चाहे इसमे एक वकील भाग ले या बहुतसे।

फिर उन्होंने सरकारी स्कूलोंके बहिष्कारकी योजनापर भी आपत्ति की है। मैं तो इस सम्बन्धमे भी वही बात कहूँगा जो मैंने वकीलोके सम्बन्धमें कही है, अगर हम सचमुच असहयोग करनेका इरादा रखते है तो हमे सरकारसे कोई सुविधा नही लेनी चाहिए; फिर वह सुविधा हमारे लिए कितनी ही लाभदायक क्यो न हो। इतने जबरदस्त संघर्षमे हम यह हिसाब लगाते हुए नही बैठे रह सकते कि कितने स्कूल और कितने माता-पिता हमारी बात मानेंगे। ज्यामितिका प्रमेय कठिन होता है, क्योंकि उसमें अधूरे प्रमाणके आधारपर कोई बात स्वीकार नही की जाती, वैसे ही अगर आप महज इस कारणसे राष्ट्रीय विकासकी किसी अवस्थासे बच निकलना चाहें क्योंकि वह बहुत कठिन है तो वह समस्त विकास-प्रक्रिया एक तमाशा बनकर ही रह जायेगी।

यहाँ सभाके एक भागमें कुछ हलचल-सी हुई और कुछ क्षण बाद महात्माजीने अपना भाषण पुनः शुरू किया।

तो असहयोग और सहयोगका हमे अच्छा खासा पदार्थ-पाठ मिल गया। (हँसी) असहयोगका पाठ हमे तब मिला जब वहाँ कुछ नौजवानोने लडाई-झगडा शुरू किया। असहयोग एक बडा खतरनाक हथियार है, मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नही है। अगर एक व्यक्ति भी निश्चय कर ले तो वह पूरी सभामें गड़बडी पैदा कर सकता है (हँसी) और हमे अभी यह प्रत्यक्ष देखनेको मिला (हँसी)। लेकिन हमारा असहयोग अहिंसक है। उसमे अगर उसकी बुनियादी शर्तोका पालन किया जाये तो कोई दोष उत्पन्न नही हो सकता। अगर असहयोग असफल होता है तो इसलिए नही कि खुद उसमें किसी शक्तिका अभाव है। वह असफल होगा तो इसलिए कि लोगोने उसमे हाथ नही बँटाया; या इसलिए कि लोगोने उसके लिए सामान्य सिद्धान्तोको अच्छी तरह ग्रहण नही किया। अभी आपने सहयोगका भी प्रत्यक्ष दृश्य देखा (हँसी); वह भारी कुर्सी कितने ही लोगोके सिरपर से गुजरती हुई दूर चली गई क्योकि तमाम लोगोने उसमे हाथ लगाया। इस तरह वह भारी गुम्बदनुमा चीज भी स्त्री, पुरुष और बच्चोंके सहयोगसे हमारी आँखोसे ओझल हो गई। हर व्यक्ति यह मानता और जानता है कि यह सरकार अपने शस्त्रोकी शक्तिके बलपर नही बल्कि जनताके सहयोगके बल-पर टिकी हुई है। (हर्ष ध्वनि) ऐसा हर व्यक्ति जिसमें तनिक भी तर्क-बुद्धि है आपको बतायेगा कि इसका विलोम भी उतना ही सच है (हँसी); यानी यह सरकार जिस सहयोगके सहारे टिकी हुई है यदि वह सहयोग बन्द हो जाये तो वह टिक नही सकती। इसमें सन्देह नही कि यह काम जरा कठिन है। अभीतक तो हमने अपनी वाणीका 'बलिदान' करना — यानी भाषण देना ही सीखा है। अब हमें अपनी सुख-सुविधाएँ और माल-मिल्कियतका बलिदान करना भी सीखना चाहिए और यह चीज हमें अंग्रेजोसे ही सीखनी है। जिन लोगोने इंग्लैंडका इतिहास पढा है वे सब जानते है कि हम इस समय एक ऐसे राष्ट्रके विरुद्ध जूझ रहे है जिसमें बलिदान करनेकी बहुत बड़ी क्षमता है। हम तीस करोड़ भारतीय जबतक पर्याप्त रूपसे बलिदान नही करते तबतक हम दुनियामें न कुछ नाम कमा सकते है और न अपना खोया हुआ आत्मसम्मान ही प्राप्त कर सकते है।

हमारे मित्रने ब्रिटिश या विदेशी सामानके बहिष्कारका सुझाव दिया है। सभी विदेशी वस्तुओके बहिष्कारका ही दूसरा नाम स्वदेशी है। उनका विचार है कि सब विदेशी चीजोके बहिष्कारको ज्यादा समर्थन प्राप्त होगा। अपने पिछले अनेक वर्षोंके अनुभवसे तथा व्यापारी-वर्गके निकट सम्पर्कजन्य ज्ञानसे, मै आपको बताना चाहता हूँ कि विदेशी वस्तुओका बहिष्कार अथवा केवल ब्रिटिश वस्तुओका बहिष्कार मेरे सुझाए हुए अन्य कार्यकी अपेक्षा अधिक दुष्कर है। मैने जो अन्य कार्य सुझाये है उनमे से किसीमे धन-त्यागकी कोई आवश्यकता नही है। वे काम तो किये ही जाने है। ब्रिटिश या विदेशी वस्तुओके बहिष्कारका अर्थ अपने बडे-बड़े व्यापारियोसे करोड़ो रुपये त्याग देनेके लिए कहना है। यह हमें करना तो है ही, परन्तु यह बहुत ही धीरे

होनेवाला काम है। मैं जानता हूँ, यहाँ जो अन्य काम मैंने सुझाये हैं उनके बारेमे भी यही कहा जा सकता है; परन्तु वस्तुओका बहिष्कार एक प्रकारका दण्ड देना समझा जाता है और दण्ड तभी प्रभावशाली होता है जब विरोधीको उससे कष्ट पहुँचे। मैंने जो सुझाया है वह दण्ड नही वरन् एक पवित्र कर्त्तव्यका पालन है, वह आत्मनिग्रहकी दिशामे अपनी ही इच्छासे उठाया हुआ कदम है और इसलिए तुरन्त प्रभावकारी होता है फिर चाहे उसे एक ही आदमी क्यो न उठाये। और एक आदमी द्वारा भी अपने कर्त्तव्यका पूर्ण पालन करनेसे राष्ट्रकी स्वतन्त्रताकी नीव पड़ती है।

मैं अपने राष्ट्र तथा अपने मुसलमान भाइयोको यह बात समझा देनेके लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ कि यदि वे राष्ट्रीय सम्मान या इस्लामके सम्मानकी रक्षा करना चाहते है तो वे निःसन्देह ऐसा कर सकते है किन्तु दण्ड देकर या लगातार दण्ड देते हुए नहीं वरन् पर्याप्त आत्मबलिदानके द्वारा। मैं अपने सभी नेताओंके बारेमें बहुत आदरपूर्ण शब्दोका प्रयोग करना चाहता हूँ। किन्तु उन्हे आदर देनेका यह अर्थ नही कि हम उस आदरको देशकी उन्नतिमें बाधा बनने दे। मै बहुत बेचैन हूँ और चाहता हूँ कि इस अत्यन्त नाजुक समयमे देश अपना रास्ता चुने। इसमें सन्देह नही कि ब्रिटिश राष्ट्रकी राजसत्ताको शस्त्रबलसे छीननेका विचार हम नही कर सकते। आज तो हम यही कर सकते है कि आबाल-वृद्ध, वनिता, जिनको यह पूरा विश्वास है कि एकमात्र रास्ता कांग्रेसके फैसलेका या किसी अन्य आदेशका इन्तजार न करके अन्तरात्माके आदेशपर चलना है वे या तो खिलाफत और पंजाबके दुहरे अन्यायको झेले, तौहीन सहें, राष्ट्रके नपुसकीकरणको स्वीकार कर ले या त्याग द्वारा राष्ट्रके सम्मानकी रक्षा करें। जबतक राष्ट्र फैसला न करे तबतक हम और आप प्रतीक्षा करनेके लिए बाध्य नही है। यदि हमे इन बातोके सही होनेका विश्वास है तो हमे आज ही फैसला कर लेना चाहिए। इसलिए त्रिचिनापल्लीके नागरिको, पूरा भारत क्या करता है आप इसका इन्तजार न करे, आप स्वय असहयोगका कदम उठा सकते है और यदि अबतक इस दिशामे कुछ नही किया है तो कलसे ही तदनुसार कार्य आरम्भ कर दें। कल ही आप अपने सब खिताब वापस कर सकते है; (हर्षध्वनि) सभी वकील कलसे ही वकालत छोड़ सकते है, जो लोग किसी अन्य जरियेसे जीवन-निर्वाह नही कर सकते, अगर वे अपना पूरा समय और ध्यान समितिके काममे लगाये तो खिलाफत समिति उनकी मदद आसानीसे कर सकती है और यदि वकील मेहरबानी करके वकालत त्याग देते है, तो आप देखेंगे कि निजी हस्तक्षेप द्वारा अपने झगड़े निपटा लेनेमें आपको कोई कठिनाई नही होगी। यदि आपमे इच्छा और सकल्प हो तो आप कलसे ही अपने स्कूलोंका राष्ट्रीयकरण कर सकते है। मैं जानता हूँ कि आपमें से थोड लोग ही यदि ऐसा करना चाहें तो ये कठिन काम है। किन्तु जब इस बडी सभामे उपस्थित सब लोग एकमत हो जाये तो यह इतना आसान है जितना कि हमारा यहाँ बैठना; या जितना आसान आपके लिए उस कुर्सीको वहाँ ले जाना था, उतना ही आसान इस योजनापर कलसे अमल करना है बशर्ते कि आप एकमत

हों, आपका सकल्प एक हो और आपमें देशके प्रति प्रेम हो, देशके सम्मान और धर्मके प्रति प्रेम हो। (देरतक हर्षध्वनि)

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-८-१९२०

१०३. कुछ और आपत्तियोंके उत्तर

'स्वदेशमित्रन्' मद्रासके बहुत ही प्रभावशाली तमिल दैनिकोंमें से है। इसकी पाठक-सख्या बहुत बडी है। इसके स्तम्भोंमें प्रकाशित एक-एक चीज ध्यान देने लायक होती है। इसके सम्पादकने असहयोगके मार्गमे कुछ व्यावहारिक वाधाओंकी चर्चा की है। इसलिए मुझसे जहाँतक बन सकता है, मै उनपर पूरी तरह विचार करूँगा।

मुझे नही मालूम, इस अखबारको यह खबर कहाँसे मिली है कि मैंने असहयोगके अन्तिम दो चरणोपर अमल करनेका इरादा छोड़ दिया है। मैंने जो कहा है वह यही कि अभी वे बहुत दूर हैं, और ऐसा मैं अब भी कहता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि सभी चरणोंमें कुछ-न-कुछ खतरेकी आशका है ही, लेकिन अन्तिम दो चरणोमे खतरेकी अधिक आशंका है और उनमें भी दूसरेमे अधिक। आन्दोलनको कई चरणोंमें इसलिए बाँटा गया है कि उसके कार्यान्वयनमें कमसे-कम खतरा रहे। अन्तिम दो चरण तबतक प्रारम्भ नही किये जायेंगे जबतक समिति जनतापर इतना नियन्त्रण प्राप्त नही कर लेती कि उसे विश्वास हो जाये कि सैनिको द्वारा नौकरी छोड देने या जनता द्वारा कर देना बन्द कर देनेसे, मानवीय बुद्धि जहाँतक अनुमान लगा सकती है वहाँतक तो जनताके बीच हिंसाका कोई विस्फोट नही होगा। मेरी यह निश्चित मान्यता है कि लोग इन दोनो चरणोंको कार्यान्वित करनेके लिए आवश्यक अनुशासनमे रह सकते हैं। जब एक बार वे समझ लेंगे कि एक अनिच्छुक सरकारको अपनी इच्छाके सामने झुकानेके लिए हिंसा बिलकुल अनावश्यक है और इस लक्ष्यकी सिद्धि गौरवमय असहयोगके माध्यमसे ही की जा सकती है तो वे प्रतिशोधके तौरपर भी हिंसाका सहारा लेनेका खयाल अपने मनमें नही रखेंगे। तथ्य यह है कि हमने अबतक जनतासे संगठित और अनुशासित ढंगका काम लेनेकी कोशिश नही की है। अगर हम सचमुच एक स्वशासित राष्ट्रकी स्थिति प्राप्त करना चाहते हैं तो किसी-न-किसी दिन यह कोशिश करनी ही पडेगी। मेरे विचारसे यह घड़ी उसके लिए बहुत उपयुक्त है। हर भारतीय पजाबके अपमानको अपना अपमान समझता है, हर मुसलमान खिलाफतके सम्बन्धमें किये गये अन्यायपर क्षुब्ध है। इसलिए वातावरण ऐसा है, जिसमें लोगोसे संगठित और संयत आन्दोलनकी आशा की जा सकती है।

जहाँतक जनता द्वारा हमारे अनुरोधका उत्तर देनेका सम्बन्ध है, मैं सम्पादक महोदयकी इस बातसे सहमत हूँ कि कर देना बन्द करनेके अनुरोधका उत्तर लोग जल्दीसे-जल्दी और अधिकसे-अधिक सख्यामे देंगे, लेकिन जैसा कि मैंने कहा है, जबतक

जनसाधारण अपनी जायदाद बिकते देखकर भी अहिंसापर दृढ रहना नही सीख लेता तबतक अन्तिम चरणको किसी खास हदतक कार्यान्वित करना असम्भव ही होगा।

मै उनकी इस बातसे भी सहमत हूँ कि अगर हमने चोरो और डाकुओके खिलाफ स्वयं अपना बचाव करनेकी योग्यता प्राप्त न कर ली हो तो लोगोके सैनिक और पुलिस-सेवासे एकाएक अलग हो जानेके परिणाम बहुत घातक होगे। लेकिन मेरा कहना है कि जब हम सेना और पुलिससे लोगोको बड़े पैमानेपर हटानेको तैयार होगे तो हम देखेगे कि हम अपनी रक्षा आप करनेकी स्थितिमे भी है। अगर पुलिस और सेनाके आदमी देशभक्तिकी भावनासे अपने पद छोड़ते है तो मै निश्चय ही उनसे अपेक्षा करूँगा कि वे राष्ट्रीय स्वयसेवकोके रूपमें, किरायेके टट्टुओके रूपमे नही बल्कि अपने देशभाइयोके जानमाल और आजादीके तत्पर रक्षकोके रूपमे अपना वही कर्तव्य निभायेगे। असहयोग आन्दोलन ऐसी चीज है जिसमें सब-कुछ स्वत ही व्यवस्थित हो जाता है। अगर सरकारी स्कूल खाली कर दिये जाते है तो निस्संदेह मै राष्ट्रीय स्कूल स्थापित किये जानेकी आशा रखता हूँ। अगर वकील लोग सामूहिक रूपसे अपना धन्धा बन्द कर देते है तो वे पचायती अदालतोकी व्यवस्था करेगे और इस तरह राष्ट्रको एक ऐसी न्याय-प्रणाली प्राप्त हो जायेगी जिससे वह जल्दी और कम खर्चमे आपसी झगड़ोका निपटारा भी कर पायेगा और गलत काम करनेवालेको सजा भी दे पायेगा। मै यहाँ इतना और कह दूँ कि खिलाफत समिति भलीभाँति समझती है कि यह काम कितना कठिन है किन्तु ऐसी जो भी कठिनाई सामने आयेगी उसे निपटानेके लिए वह आवश्यक उपाय कर रही है।

जहाँतक असैनिक सेवा छोड़नेकी बात है, उससे किसी खतरेकी आशका नही है, क्योकि कोई भी तबतक अपना पद नही छोड़ेगा जबतक वह अपने मित्रोके जरिये या अन्य किसी प्रकारसे अपनी और अपने परिवारकी रोटीका प्रबन्ध नही कर लेता।

मैने विद्यार्थियोंको स्कूल-कालेज छोड़नेका जो सुझाव दिया है, उसे भी पसन्द नही किया गया है। मेरी नम्र रायमें, यह असहयोगके सच्चे स्वरूपको समझनेकी असमर्थताका द्योतक है। यह सच है कि हम अपने बच्चोकी शिक्षाके लिए पैसा देते है। लेकिन जब शिक्षा देनेवाली संस्था भ्रष्ट हो गई हो तब हम उस सस्थाको चलानेवाले लोगोके भ्रष्टाचारमे हिस्सेदार हुए बिना उसकी सेवाओंका उपयोग नही कर सकते। अगर विद्यार्थी स्कूल या कालेज छोड़ देगे तो मुझे नही लगता कि स्वय शिक्षक लोग भी अपने पद छोड़ देनेका औचित्य समझनेमे चूकेगे। लेकिन अगर वे इस बातको न भी समझे तो भी जहाँ सम्मान और धर्मपर आँच आई हो वहाँ पैसेकी चिन्ता तो नही ही की जा सकती।

जहाँतक कौसिलोके बहिष्कारका सम्बन्ध है, उसमे नरम दलवालो और अन्य लोगोके प्रवेश करनेसे उतना बनता-बिगड़ता नही जितना कि असहयोगमें विश्वास रखनेवाले लोगोके प्रवेश करनेसे। ऐसा तो नही हो सकता कि आप नीचेके स्तरपर असहयोग करे और ऊपरके स्तरपर सहयोग। कौसिलका कोई सदस्य स्वय तो कौसिलमें

बना रहे और कौंसिलकी मेज साफ करनेवाले गुमाश्तेको त्यागपत्र देनेको कहे — यह नही हो सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-८-१९२०

१०४. स्वदेशी

अभी पिछले दिनों 'चरखेका संगीत' शीर्षक मेरे लेखकी[1] आलोचना करते हुए 'लीडर'ने मुझपर कुछ ऐसे विचार आरोपित किये है जो दरअसल मेरे मनमे कभी रहे ही नही। लोगोको स्वदेशीका सच्चा महत्त्व समझानेके लिए इस सम्बन्धमें प्रचलित कुछ भ्रान्तियोको दूर कर देना आवश्यक है। 'लीडर'के विचारसे मिलके सूतसे मिलमें तैयार किये गये कपडेके स्थानपर हाथसे कते और हाथसे बुने कपडेको प्रतिष्ठित करनेकी कोशिश करके मै प्रगतिके मार्गमें रोड़ा अटका रहा हूँ। वास्तवमें मै ऐसी कोई कोशिश नही कर रहा हूँ। मिलोंसे मेरा कोई झगडा नही है। मेरे विचार अविश्वसनीय रूपसे सीधे-सादे है। भारतको प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति लगभग १३ गज कपडेकी जरूरत है। मेरा खयाल है कि भारत इसके आधेसे भी कम कपडेका उत्पादन करता है। भारत अपनी सारी जरूरत पूरी करने लायक रुई स्वय पैदा करता है। वह लाखो गाँठ रुई जापान और लकाशायरको भेजता है और तैयार कपडेके रूपमें उसका अधिकांश फिर वापस मँगवाता है, हालाँकि उसमें हाथसे कताई और बुनाई करके अपनी जरूरत-भरका सूत और कपड़ा स्वयं तैयार कर सकनेकी क्षमता है। भारतका मुख्य धधा खेती है, लेकिन यह धन्धा उसके लिए काफी नही पड़ता। इसलिए उसके लिए किसी दूसरे धन्धेका भी सहारा लेना जरूरी है। यहाँके लाखो करोडो लोगोके लिए हाथसे कताई करना ऐसा ही एक धन्धा है। अभी सौ वर्ष पहले यह हमारा राष्ट्रीय धन्धा था। यह कहना गलत है कि आर्थिक दबाव और आधुनिक मशीनोने हाथसे कताई और बुनाईके धन्धेको बरबाद किया है। दरअसल हमारे इस जबरदस्त उद्योगको अपनी अनोखी और अनैतिक चालोसे पूर्णत. नही तो करीब-करीब बरबाद किया ईस्ट इडिया कम्पनीने। अगर मेहनतकी जाये और हम अपनी रुचि तनिक बदल लें तो मिल-उद्योगको कोई नुकसान पहुँचाये बिना इस उद्योगका पुनरुद्धार किया जा सकता है। हमारे यहाँ कपड़ेकी जो कमी है उसका तात्कालिक उपाय मिलोंकी सख्यामे वृद्धि करना नही है। इस कमीको आसानीसे पूरा करनेका एकमात्र उपाय हाथसे कताई और बुनाई करना है। अगर इस धन्धेका पुनरुद्धार हो जाये तो प्रतिवर्ष हमारे देशसे जो छ: करोड़ रुपये बाहर जाते है, वे देशमें ही रह जायें और यह रकम झोंपडियोमें बैठकर काम करनेवाली हमारी लाखो गरीब बहनोमें बँट जाये। इसलिए मै स्वदेशीको भारतकी घोर निर्धनताका, आशिक ही सही,

१. २१ जुलाई, १९२० का लेख।

लेकिन एक बहुत ही सहज और स्वाभाविक निराकरण मानता हूँ। इसके अतिरिक्त अनावृष्टिके समय यह किसानोंके लिए एक प्रकारका सहज बीमा भी है।

लेकिन इस उद्योगके पुनरुद्धारके लिए, जो आज इतना आवश्यक है, दो बातें बहुत जरूरी हैं। एक तो यह कि लोगोंमें खद्दरके प्रति रुचि पैदा की जाये, और दूसरे यह कि एक ऐसा संगठन कायम किया जाये जो धुनी हुई रुईका लोगोंके बीच वितरण करे और फिर उन्हें मेहनताना देकर उनसे सूत प्राप्त करे।

एक ही वर्षमें थोड़ेसे लोगोंके मूक परिश्रमकी बदौलत गुजरातकी गरीब औरतोंके बीच कताईके एवजमें हजारों रुपये बाँटे गये हैं और इन औरतोंने प्रतिदिन थोड़ेसे पैसे कमानेमें भी आनन्दका अनुभव किया है क्योंकि इससे वे अपने बच्चोंके लिए दूध आदि खरीद सकती हैं।

'लीडर' ने यह दलील चीनी-उद्योगपर भी लागू करनेकी कोशिश की है लेकिन वह उसपर लागू नहीं होती। भारतकी माँग पूरी करने लायक ईख यहाँ पैदा नहीं की जाती। चीनी-उद्योग कभी भी हमारा राष्ट्रीय और पूरक उद्योग नहीं था। विदेशी चीनीके कारण देशी चीनीका उत्पादन समाप्त नहीं हो गया है। भारतमें चीनीकी माँग बढ़ती गई और इसलिए वह चीनीका आयात करता है। लेकिन चीनीके आयातके कारण भारतका धन उस अर्थमें विदेशोंकी ओर नहीं बहता जिस अर्थमें विदेशी वस्त्रके आयातके कारण बहता है। अधिक चीनीका उत्पादन करनेके लिए वैज्ञानिक ढंगकी खेती और ईख पेरने और शोधनेके लिए ज्यादा और अधिक अच्छी मशीनोंकी जरूरत है। इसलिए चीनी-उद्योगकी स्थिति दूसरी है। जहाँतक चीनीका सम्बन्ध है, स्वदेशी वांछनीय है, लेकिन कपड़ेके सम्बन्धमें तो वह एक तात्कालिक आवश्यकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-८-१९२०

१०५. भाषण : कालीकटमें

१८ अगस्त, १९२०

अध्यक्ष महोदय और मित्रो,

आप लोगोंने हमारा जो हार्दिक स्वागत किया है, उसके लिए मैं अपने भाई शौकत अली और अपनी ओरसे आपको धन्यवाद देना चाहता हूँ। यहाँ आनेका अपना उद्देश्य बतानेसे पहले मैं आपको यह सूचना देना चाहता हूँ कि पीर महबूब शाहको, जिनपर विद्रोहके लिए सिन्धमें मुकदमा चल रहा था, दो सालकी साधारण कैदकी सजा दी गई है। पीर साहबपर क्या आरोप लगाया गया था यह मैं ठीक-ठीक नहीं जानता। मैं नहीं जानता कि जो शब्द उनके कहे हुए बताये जाते हैं वे वास्तवमें उन्होंने कभी कहे थे या नहीं। परन्तु मैं यह जरूर जानता हूँ कि पीर साहबने बचावमें कोई भी सबूत देनेसे इनकार कर दिया और दी गई सजाको बिलकुल उदासीन

भावसे स्वीकार कर लिया। मेरे लिए यह सच्ची खुशीका विषय है कि पीर साहब, जिनका अपने अनुयायियोंपर बहुत असर है, हमारे द्वारा प्रारम्भ संघर्षकी भावनाको समझ गये हैं। अपने सामनेके इस बड़े काममें सफल होनेकी आशाका आधार सरकारकी सत्ताका विरोध करना नहीं बल्कि उसका आधार असहयोगकी भावनाको हमारे द्वारा समझ लेनेमें निहित है। बर्माके लेफ्टिनेंट गवर्नरने स्वयं हमें बताया है कि अंग्रेज भारतपर शस्त्रबलसे आधिपत्य नहीं जमाये हुए हैं; उनका आधिपत्य लोगोंके सहयोगके बलपर टिका है। इस तरह सरकार जनताके साथ जो भी गलत काम करे उसके प्रतिकारका उपाय उन्होंने हमें बता दिया है। चाहे वह गलत काम जान-बूझकर किया जाये चाहे अनजाने। जबतक हम सरकारसे सहयोग करते हैं, उस सरकारकी मदद करते हैं, तबतक उस हदतक हम गलत काममें साझेदार बनते हैं। मैं मानता हूँ कि सामान्य परिस्थितियोंमें समझदार प्रजा सरकारकी गलतियोंको बरदाश्त कर लेती है, परन्तु यदि सरकार जनताकी घोषित इच्छाके बावजूद उसपर अन्याय करे तो वह उसे बरदाश्त नहीं किया करती। और मैं इस जबरदस्त सभाको यह बता देना चाहता हूँ कि भारत सरकार और साम्राज्यीय सरकार दोनोंने मिलकर भारतके प्रति अन्याय किया है, और यदि हम अपनी प्रतिष्ठा और अधिकारोंके प्रति जागरूक एक स्वाभिमानी राष्ट्र हैं तो सरकार द्वारा हमपर किये गये इस दोहरे अपमानको सह लेना उचित और सही नहीं है। टर्कीके असहाय सुलतानपर थोपी गई सन्धि-शर्तोंको रूप देने और लागू करनेमें प्रमुख साझेदार बनकर साम्राज्यीय सरकारने साम्राज्यकी मुसलमान प्रजाकी मन-पूत भावनाओंको जान-बूझकर चोट पहुँचाई है। भारतके मुसलमानोंको शान्त करना जरूरी था उस समय वर्तमान प्रधान मन्त्रीने अपने सहयोगियोंसे सलाह करनेके बाद एक स्पष्ट वायदा किया था। मैं दावा करता हूँ कि खिलाफतके सवालका मैंने विशेष अध्ययन किया है। मेरा यह भी दावा है कि मैं खिलाफतके सवालपर मुसलमानोंकी भावनाको समझता हूँ। मैं कई बार कह चुका हूँ और फिर यहाँ घोषित करता हूँ कि खिलाफतके सवालपर सरकारने मुसलमानोंकी भावनाको ऐसी चोट पहुँचाई है जैसी पहले कभी नहीं पहुँचाई थी। और इस बातका प्रतिवाद ही नहीं किया जा सकता कि यदि भारतके मुसलमानोंने अत्यधिक आत्मसंयमसे काम न लिया होता, यदि उन्हें असहयोगका मन्त्र न दिया जाता और यदि वे उसे स्वीकार न कर लेते, तो अबतक भारतमें खून-खराबी फैल जाती। मैं यह बात अवश्य स्वीकार करता हूँ कि रक्तपातसे उद्देश्य पूरा नहीं होता। परन्तु जो आदमी क्रोधके आवेशमें हो, जिसका हृदय उद्विग्न हो वह कामके परिणामको नहीं देखता। यह हुआ खिलाफतके प्रति की गई गलतीके सम्बन्धमें।

अब मैं आपसे भारतके उत्तरी छोर, पंजाब, के बारेमें कुछ कहना चाहता हूँ। सोचिए इन दोनों सरकारोंने पंजाबके प्रति क्या किया? मैं यह बात निःसंकोच भावसे स्वीकार किये लेता हूँ कि अमृतसरमें एक क्षणके लिए भीड़ने अपना आपा खो दिया। प्रशासनकी क्रूरताने उन्हें पागल बना दिया था। परन्तु जनताके पागल हो जानेकी बिनापर बेकसूरोंका खून बहाना सही साबित नहीं किया जा सकता। उनसे

पागलपनकी कैसी, कीमत वसूल की गई? मेरा निवेदन है कि किसी भी हालतम कोई भी सम्य सरकार जनतासे ऐसी कीमत वसूल न करती जैसी इस सरकारने की। जिन्हें अदालतोंकी विडम्बना कहना चाहिए, ऐसी अदालतोमे निर्दोष व्यक्तियोके मुकदमे सुने गये और उन्हें आजीवन कारावासकी सजा दे दी गई। बादमे दी गई माफीको मै कोई महत्त्व नही देता। निर्दोष, निशस्त्र लोग, जो इकट्ठे होनेका सबब भी नही जानते थे, बिना आगाह किये बेरहमीसे कत्ल कर दिये गये। मनियाँवालामे उद्धत अधिकारियोने औरतोका शीलभंग किया; इन औरतोंने किसीका क्या बिगाडा था? मै चाहता हूँ कि उनके शीलभंगसे मेरा क्या प्रयोजन है, उसे आप समझ ले। एक अधिकारीने अपनी छड़ीसे उनके घूँघट उठा दिये। लोगोको पेटके बल रेगनेपर मजबूर किया गया। इन व्यक्तियोको बादमें हंटर समितिने सर्वथा निर्दोष घोषित किया। और इन सर्वथा अनुपयुक्त तमाम अन्यायोका प्रतिकार नही किया गया। मै मानता हूँ कि आगजनी और हत्याके अपराधियोंको सजा देना भारत सरकारका कर्त्तव्य था। किन्तु उसका यह और भी बड़ा कर्त्तव्य था कि वह उन अधिकारियोको सजा देती जिन्होंने निर्दोष व्यक्तियोंका अपमान और दमन किया था। इसके विपरीत देखते हम यह है कि सरकारकी इन ज्यादतियोंका, इस सरकारी आतंकवादका लार्ड सभाकी बहसमे समर्थन किया गया। इस्लाम और पंजाबके पौरुपके प्रति किये गये इसी दोहरे अन्यायको हम असहयोगसे धो देना चाहते है। हमने प्रार्थना की, आवेदन दिये, आन्दोलन किये और प्रस्ताव पास किये। श्री मुहम्मद अली अपने मित्रों सहित ब्रिटिश जनतासे भेट कर रहे है। उन्होने इस्लामकी बात दृढ़ताके साथ प्रस्तुत की है परन्तु उनकी बातपर कान नही दिया गया। इसके बारेमे उनका ऐसा कहना है कि फ्रास और इटलीने इस्लामकी शिकायतके प्रति बड़ी सहानुभूति दिखाई, किन्तु ब्रिटिश मन्त्रियोंने कोई सहानुभूति नही दिखाई। इससे जाहिर हो जाता है कि ब्रिटिश मन्त्री और भारतके वर्तमान पदाधिकारी जनताके साथ किस तरह पेश आना चाहते है। उनमे उसके प्रति कोई सद्भाव नही है, भारतकी जनताको सन्तुष्ट करनेकी उनकी कोई इच्छा नही है। इसलिए भारतके लोगोंको इस दोहरे अन्यायका कुछ उपाय तो करना ही चाहिए। अन्यायके विरुद्ध पश्चिमका तरीका हिंसासे काम लेनेका है। पश्चिमके लोगोंने जहाँ-कही, सही या गलत, किसी अन्यायको महसूस किया वहाँ विद्रोह करके रक्त बहाया। आधा भारत हिंसाके उपायमे विश्वास नही करता। यह मैने भारतके वाइसरायको लिखे अपने पत्रमे भी कहा है। शेष आधा हिंसा कर पाने लायक नही, दुर्बल है। परन्तु समस्त भारतको इस अन्यायसे गहरा आघात पहुँचा है और वह उद्वेलित है, और इसी कारण मैने भारतकी जनताको असहयोगका उपाय सुझाया है, जिसे मै सर्वथा निर्दोषपूर्ण, संवैधानिक, और साथ ही प्रभावशाली मानता हूँ। यह ऐसा उपाय है जो यदि ठीक तरहसे अपनाया जाये तो विजय निश्चित है। फिर यह आत्म-बलिदानका अति प्राचीन उपाय है। क्या भारतके वे मुसलमान, जो इस्लामके प्रति घोर अन्याय महसूस करते है, पर्याप्त आत्म-बलिदानके लिए तैयार है? विश्वके समस्त धर्मशास्त्र हमे उपदेश देते है कि न्याय और अन्यायमें कोई समझौता नही हो सकता।

न्यायप्रिय व्यक्तिका अन्यायी व्यक्तिसे सहयोग करना पाप है। और यदि हम इस शक्तिशाली सरकारको जनताकी इच्छाके आगे मजबूर करना चाहें, और ऐसा करना ही चाहिए, तो हमें असहयोगका महान् साधन अवश्य अपनाना होगा। यदि भारतके मुसलमान खिलाफतके मामलेमें न्याय हासिल करनेके लिए सरकारसे असहयोग करें तो उनके साधनोंके शुद्ध रहनेतक, मेरी समझमें हिन्दुओंका कर्त्तव्य है कि वे उनकी मदद करें। हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच टिकी रहनेवाली मित्रताको मैं ब्रिटिशोंके साथ अपने सम्बन्धोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। भारतमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच बन्दूक चले, शस्त्रबलसे शान्ति स्थापित रहे, इसके बजाय मैं किसी भी दिन अराजकताको बेहतर मानता हूँ। इसलिए मैंने अपने हिन्दू भाइयोंको सुझाया है कि यदि वे मुसलमानोंके साथ शान्तिसे रहना चाहते हैं तो आज ऐसा अवसर प्राप्त है जो फिर आगे सौ वर्षोंमें नहीं मिलेगा। मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि यदि भारत सरकार और साम्राज्यीय सरकारको पता चल जाये कि जनता इस दोहरे अन्यायको सही करानेके लिए कृतसंकल्प है तो वे जो जरूरी है उसे करनेमें आगा-पीछा नहीं करेंगे। परन्तु इस मामलेमें पहल भारतके मुसलमानोंको करनी होगी। आपको असहयोगके पहले चरणका कार्यक्रम पूरी लगनसे शुरू करना होगा। आप इस सरकारकी मदद न करें और इससे कोई मदद भी न लें। वे खिताब जो कल सम्मानसूचक थे, मेरी रायमें आज वे हमारी तौहीनीके बिल्ले हैं। इसलिए हमें सारे खिताब, सभी अवैतनिक पद त्याग देने चाहिए। जनताके नेताओं द्वारा ऐसा करना सरकारके कामोंके प्रति जनताकी विरोधी भावनाओंका बहुत जोरदार प्रदर्शन होगा। वकीलोंको अपनी वकालत अवश्य त्याग देनी चाहिए और सरकारकी उस ताकतका विरोध जरूर करना चाहिए, जिसने जनताकी रायके प्रतिकूल काम करनेका फैसला किया है। और न हमें उन स्कूलोंमें शिक्षण लेना चाहिए जो सरकारी नियन्त्रण या उसकी सहायतासे चलते हैं। स्कूलोंको खाली कर देनेसे भारतके मध्य-वर्गकी भावना प्रदर्शित होगी। राष्ट्र यदि अपने बच्चोंकी साहित्य-शिक्षाकी उपेक्षा कर दे तो भी यह उस सरकारके साथ सहयोग करनेकी अपेक्षा अच्छा होगा, जिसने खिलाफत और पंजाबके मामलोंमें अन्याय और झूठको बनाये रखनेकी कोशिश की है। इसी तरह मैंने नई सुधरी हुई कौंसिलोंका पूर्ण बहिष्कार करनेका सुझाव दिया है। इससे बखूबी जनताके प्रतिनिधियोंकी यह इच्छा जाहिर हो जायेगी कि जबतक ये दोनों अन्याय कायम हैं वे सरकारसे तबतक सहयोग नहीं करना चाहते। इसी तरह हमें पुलिस और सेनामें भरती होनेसे इनकार करना चाहिए। हमारे लिए पुलिस और सेनामें भरती होकर मैसोपोटामिया जाना या उस सरकारके खूनी कृत्यमें हाथ बँटाना असम्भव है। असहयोगके प्रथम चरणका अन्तिम सोपान स्वदेशी है। स्वदेशीका उद्देश्य सरकारपर दबाव डालना उतना नहीं जितना उसका उद्देश्य भारतके स्त्री-पुरुषोंकी त्याग कर सकनेकी क्षमताका प्रदर्शन करना है। जब एक चौथाई भारतका धर्म और पूरे भारतका सम्मान संकटमें है, तब फ्रांसकी छींट या जापानके रेशमसे सजने-सँवरनेके लिए हमारा जी ही नहीं कर सकता। हमें भारतके गरीब बुनकरोंके बुने हुए, उसी कपड़ेसे सन्तुष्ट होनेका निश्चय कर लेना

होगा जो वे अपनी झोपडीमे अपनी बहनोके घर बैठकर काते हुए सूतसे तैयार करते है। सौ साल पहले जब हमारी रुचि दूषित नही हुई थी और हम टीमटामकी इन तमाम विदेशी चीजोपर लुब्ध नही हुए थे, हमारा काम भारतके स्त्री-पुरुषो द्वारा देशमें तैयार किये कपड़ेसे चल जाता था। यदि मै एक पलमें ही भारतकी रुचि बदलनेमें समर्थ होता और उसे पहले जैसी सादगीपर वापस ले जा सकता तो मै आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि देवता इस महान् त्यागपर हर्ष प्रकट करनेके लिए स्वर्गसे उतर आते। यह सब असहयोगके प्रथम चरणमें आ जाता है। मुझे आशा है कि जिस तरह मेरे लिए यह समझना आसान है उसी तरह आपके लिए भी यह समझना आसान होगा कि यदि भारत असहयोगके प्रथम चरणके कार्यक्रमको भली-भाँति पूरा कर ले तो उससे हमे मनोवाछित सुविधाएँ प्राप्त हो जायेंगी। इसलिए मै फिलहाल आपसे असहयोगके अगले चरणोके बारेमें कुछ नहीं कहूँगा। मै चाहूँगा कि आप असहयोगके प्रथम चरणके कार्यक्रमोपर अपना ध्यान एकाग्र करेगे। आपने देखा होगा कि प्रथम चरणको सफल बनानेके लिए केवल दो बातोकी जरूरत है: (१) अनिवार्य रूपसे असहयोगके लिए पूर्ण अहिंसाकी भावना, (२) केवल थोड़ा-सा आत्म-बलिदान। मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है कि वह भारतके लोगोको असहयोगके इस परीक्षणमे गुजरने योग्य साहस और बुद्धि प्रदान करे। आपने हमारा जो भव्य स्वागत किया है उसके लिए मै आपको धन्यवाद देता हूँ। और आपने जिस अनुकरणीय धैर्य और शान्तिसे मेरी बात सुनी है उसके लिए भी मै आपको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

फ्रीडम्स बैटल, पृष्ठ २३७-४५

१०६. भाषण: मंगलौरमें

१९ अगस्त, १९२०

अध्यक्ष महोदय और भाइयो,

भारतके इस सुन्दर उद्यानका भ्रमण करके मुझे और मेरे भाई शौकत अलीको सचमुच बड़ी खुशी हुई है। आपने आज तीसरे पहर हमारा जैसा भव्य स्वागत किया, और यह जो विशाल जनसमुदाय हमारे सामने उपस्थित है, यह अगर उस उद्देश्यके प्रति आपकी सहानुभूतिका द्योतक है जिसका प्रतिनिधित्व करनेका गौरव हमें प्राप्त है तो यह हमारे लिए बहुत प्रसन्नताकी बात है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हम इस लगातार यात्रापर इसलिए नही निकले है कि लोग हमारा स्वागत करें, हमें मानपत्र भेंट करें — चाहे इस स्वागत और मानपत्रके पीछे उनका कितना ही सौहार्द हो। हमने अपनी प्यारी मातृभूमिके एक छोरसे दूसरे छोरकी यात्रा इसलिए प्रारम्भ की है कि आज हमारे सामने जो स्थिति मौजूद है उससे हम आपको अवगत करायें। इस स्थितिको देशके सामने रखना और उसे अपना रास्ता आप ही चुननेको कहना हमारा सौभाग्य है, हमारा कर्त्तव्य है।

अपनी यात्राके दौरान हमे बहुत-से मानपत्र दिये गये है, लेकिन मेरी नम्र सम्मतिमे कसरगोड़मे हमे दिये गये मानपत्रमे शब्दों और भावोका जैसा सन्तुलित प्रयोग किया गया वैसा और कही नही हुआ। इसमे हम दोनोको "प्रिय और पूज्य बन्धु" कहकर सम्बोधित किया गया था। यह दूसरा विशेषण — यानी "पूज्य" — स्वीकार करनेमें मै असमर्थ हूँ। लेकिन मै स्वीकार करूँगा कि "प्रिय" शब्द मुझे बहुत प्रिय है। लेकिन उससे भी अधिक प्रिय मुझे "बन्धु" शब्द है। उस मानपत्रके हस्ताक्षर-कर्त्ताओने हमारी यात्राके असली महत्त्वको समझा है। किन्ही भी दो सहोदर भाइयोका सम्बन्ध शायद उतना घनिष्ठ नही हो सकता जितना कि भाई शौकत अलीका और मेरा है, कोई भी सहोदर भाई एक उद्देश्य, एक लक्ष्यके लिए कदाचित उतने एक होकर काम नही कर सकते जितना कि वे और मै। और मैने शौकत अलीको सहोदर कहकर पुकारा जाना अपने लिए गौरव और सम्मानकी बात माना। मानपत्रकी विषय-वस्तु भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण थी। उसमे कहा गया था कि हम दोनोका एक होकर काम करना भारतके मुसलमानों और हिन्दुओकी एकताके मर्मका प्रतीक है। अगर हम दोनो इस अत्यन्त वाछनीय एकताको अपने आचरण द्वारा मूर्तिमान नही कर सकते, अगर हम दोनो इन दो जातियोके सम्बन्धोंको सुदृढ़ नही कर सकते तो मै नही जानता कि यह काम और कौन कर सकता है। इसके बाद बिना किसी अलंकार-अतिरंजनाके उसमे पजाब तथा खिलाफत-सम्बन्धी संघर्षोके अन्त:स्वरूपका वर्णन किया गया था और फिर बहुत ही सादी और सुन्दर भाषामे सत्याग्रह और असहयोगके आध्यात्मिक महत्त्वका वर्णन था। इसके आगे बहुत ही स्पष्ट शब्दोमें एक सीधा-सा वचन दिया गया था कि यद्यपि मानपत्रपर हस्ताक्षर करनेवाले लोग हमारे द्वारा प्रारम्भ किये गये सघर्षके महत्वको समझते है और यद्यपि सघर्षके साथ उनकी हार्दिक सहानुभूति है, फिर भी अन्तत. यही कहेगे कि यदि वे हर तफसीलकी दृष्टिसे असहयोगका पालन न भी कर पाये तो कमसे-कम इतना अवश्य करेगे कि इस सघर्षमे वे अपनी शक्ति-भर पूरी सहायता देगे। और अन्तमे उन्होने बहुत ही जोरदार और युक्तिसंगत शब्दोमें कहा था, "अगर हम अपने-आपको अवसरके अनुरूप सिद्ध नही कर पाये तो उसका कारण यह नही होगा कि हमने कोशिश नही की, बल्कि यह कि हममे उतनी योग्यता नही थी।" मै इससे अच्छे मानपत्रकी कामना नही कर सकता, इससे अधिक और कोई वचन नही चाहता और अगर आप मंगलौरके नागरिक इस मानपत्रके हस्ताक्षरकर्त्ताओकी ऊँचाईतक उठ सके और मुझे सिर्फ इतना भरोसा दिला दे कि आप इस संघर्षको ठीक मानते है और इससे आपकी पूरी सहमति है तो मुझे विश्वास है कि आप अपनी शक्ति-भर पूरा बलिदान करनेको तैयार रहेगे। कारण आज हम जिस संकटसे घिरे हुए है, वह सकट महामारी, इनफ्लुएंजा, भूकम्प और भयंकर बाढ़ आदि उन दैवी प्रकोपोसे कही अधिक गम्भीर है जो हमे समय-समयपर सहने पड़ते है। ये जो प्राकृतिक आपदाएँ है वे तो थोड़े-बहुत भारतीयोकी जान ही ले सकती है। लेकिन भारत जिस आपदासे इस समय घिरा हुआ है वह आपदा तो उसकी एक चौथाई सन्तानोकी धार्मिक भावनाको चोट

पहुँचा रही है और सारे राष्ट्रके आत्म-सम्मानपर प्रहार कर रही है। खिलाफत-सम्बन्धी अन्यायसे भारतके सभी मुसलमान व्यथित हैं और पंजाबपर जो जुल्म ढाया गया, उसने तो मानो भारतके पौरुषको लगभग कुचल कर ही रख दिया। क्या हम इस विपत्तिके सामने कमजोरी दिखायेंगे या कि अपनी समस्त शक्तिसे उसका मुकाबला करेंगे? इन दोनों अन्यायोंके निराकरणका उपाय असहयोगका आध्यात्मिक उपचार है। इसे मैं आध्यात्मिक अस्त्र इसलिए कहता हूँ कि यह हमसे अनुशासन और बलिदानकी अपेक्षा रखता है। इसकी माँग है कि और लोग क्या करते हैं इसकी चिन्ता किये बिना प्रत्येक व्यक्ति बलिदान करे। और इस कर्त्तव्य-पालनके पीछे जो आश्वासन जुड़ा हुआ है, मैंने जितने धर्मोका अध्ययन किया है वे सब जिस बातका आश्वासन दिलाते हैं, वह बहुत ही निश्चित और असन्दिग्ध है। वह आश्वासन इस बातका है कि दुनियामें आजतक ऐसा कभी नही हुआ कि बलिदानी व्यक्तिको उसके विशुद्ध बलिदानका पूर्ण और समुचित पुरस्कार न मिला हो। यह एक आध्यात्मिक अस्त्र है क्योकि इसके लिए अपनी अन्तरात्माके अलावा और किसीका आदेश लेनेकी जरूरत नही है। यह आध्यात्मिक अस्त्र इस मानेमे है कि यह किसी भी राष्ट्रके सर्वोत्तम गुणोको निखारकर रख देता है और अगर एक भी व्यक्ति इस अस्त्रको अपनाता है तो यह उसके व्यक्तिगत सम्मानकी रक्षा करता है, और अगर समस्त राष्ट्र इसका सहारा लेता है तो यह राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षा करता है। और यही कारण है कि मैंने अपने बहुतसे प्रतिष्ठित देशभाइयो और नेताओकी रायके विपरीत असहयोगको एक अचूक और सर्वथा व्यवहार्य अस्त्र बताया है। यह अचूक और व्यवहार्य इसलिए है कि यह व्यक्तिकी अन्तरात्माकी अपेक्षाओंको पूरा करता है। आज मौलाना शौकत अली जो-कुछ कर रहे हैं, ईश्वर उनसे उससे अधिककी अपेक्षा नही कर सकता, नही करेगा, क्योकि उन्होने उस ईश्वरकी सेवामे जिसे वे मानवमात्रका सर्वशक्तिमान् नियन्ता मानते है अपना सब-कुछ अर्पित कर दिया है। हम मंगलौरके नागरिकोके सामने खड़े होकर उनसे कहते है कि हम उनके चरणोपर जो बहुमूल्य उपहार रख रहे है उसे वे या तो स्वीकार करें या ठुकरा दें। और मेरा सन्देश सुननेके बाद अगर आप इस निष्कर्षपर पहुँचे कि इस्लाम और भारतके सम्मानकी रक्षाके लिए आपके पास असहयोगके अलावा और कोई उपाय नही है तो आप इस उपायको स्वीकार कर लेगे। मै आपसे कहूँगा कि आपके सामने जो बहुत सारे भ्रामक सवाल रखे जाते है, उनसे आप चक्करमे न पड़े और न इस कारणसे अपने उद्देश्यसे ही विचलित हों कि इस सवालपर आपके नेताओमें मतभेद है। आजतक धरतीपर जितने भी आध्यात्मिक या अन्य प्रकारके संघर्ष किये गये है उन सभीके साथ ऐसी कुछ बाते तो जुडी ही रही हैं। इसका कारण यह है कि ऐसा अवसर कुछ इतने आकस्मिक रूपसे आ जाता है कि अगर हमारे हृदयका स्वर अनुकूल न हो तो मन उलझनमे पड़ जाता है। और अगर हम सभी लोगोके मस्तिष्क और हृदयमें पूरा तादात्म्य होता तब तो हम इस धरतीपर सर्वांगपूर्ण मनुष्य होते। लेकिन आपमें से जो लोग अखबारोमें इस विषयको लेकर छिड़े विवादको पढ़ रहे होगे, वे देखेंगे कि

हमारे अखबारों और नेताओंमें परस्पर चाहे जितना मतभेद हो, इस बातको सभी एक स्वरसे स्वीकार करते हैं कि अगर इस उपायको हिंसासे अलग रखा जाये और इसे काफी बड़े पैमानेपर अपनाया जाये तो यह बहुत ही सक्षम उपाय है। मैं इस कठिनाईको स्वीकार करता हूँ, लेकिन खूबी तो इसपर विजय पानेमें ही है। असहयोग जैसे आध्यात्मिक अस्त्रके साथ हिंसाका मेल बैठाना सम्भव नहीं। अगर हम अपनी जान देते हुए दूसरोंकी भी जान लेते हैं तो उसका मतलब होगा कि हमने शुद्ध बलिदान नहीं किया। इसलिए हिंसासे बिलकुल अलग रहना असहयोगके लिए एक जरूरी और पहली शर्त है। लेकिन मुझे अपने देशके ऊपर इतना विश्वास है कि मैं जानता हूँ, जिस दिन वह इस सिद्धान्तके रहस्यको पूरी तरह हृदयंगम कर लेगा, उस दिन वह अवश्य ही उसके अनुसार आचरण करेगा। और जबतक भारत आत्म-बलिदानका पाठ नहीं पढ़ लेता तबतक वह किसी तरह कोई प्रगति नहीं कर सकता। अगर यह देश खड्ग-बलके सिद्धान्तको स्वीकार करता है — ईश्वर न करे ऐसा हो — तो भी आत्म-बलिदानका पाठ तो — पढ़ना ही पड़ेगा। दूसरी कठिनाई यह बताई जाती है कि इस विषयपर राष्ट्र एकमत नहीं है। मैं इसे भी स्वीकार करता हूँ। लेकिन इस कठिनाईके जवाबमें तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह एक ऐसा उपाय है जिसका सहारा हर व्यक्ति अपने सम्मानकी रक्षाके लिए और कोई राष्ट्र अपने राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षाके लिए ले सकता है, और इसलिए अगर समस्त राष्ट्र असहयोग नहीं करता, तो भी व्यक्तिगत रूपसे असहयोग करके व्यक्ति जो सफलता प्राप्त करेगा, वह उसके लिए भी श्रेयकी बात होगी और उसके राष्ट्रके लिए भी।

मेरी नम्र सम्मतिमें पहला चरण तो बहुत ही आसान है, क्योंकि इसमें किसी बड़े बलिदानकी बात आती ही नहीं। अगर हमारे खान बहादुर या दूसरे खिताबयाफ्ता लोग अपने खिताब छोड़ दें तो मैं कहूँगा कि उनके इस त्यागसे जहाँ राष्ट्रका यश और सम्मान बढ़ेगा वहाँ वे बहुत कम या कुछ भी नहीं गँवायेंगे। वे कोई पार्थिव सम्पदा नहीं खोयेंगे, इतना ही नहीं, इसके विपरीत उन्हें राष्ट्रकी सराहना मिलेगी। अब हम यह देखें कि इस प्रथम चरणका मतलब क्या है। "हिन्दू" के सुयोग्य सम्पादक श्री कस्तूरी रंगा आयंगर तथा लगभग सभी अखबार इस बातसे सहमत हैं कि खिताब छोड़ना एक आवश्यक और वांछनीय कदम है। और अगर सरकारके ये चुनिन्दा लोग निरपवाद रूपसे सरकारसे मिले खिताब सरकारको वापस कर दें और उसे बता दें कि भारत और इस्लामके सम्मानपर जो खतरा आया है उसके कारण भारत दोहरी व्यथाका अनुभव कर रहा है और इसलिए वे अब इन खिताबोंका भार नहीं ढो सकते तो मैं कहूँगा कि उनकी यह कार्रवाई, जिसमें न उनका और न राष्ट्रका एक पैसा खर्च होगा, राष्ट्रीय इच्छाका एक बहुत ही प्रभावकारी प्रदर्शन होगी।

अब असहयोगके दूसरे कदम या दूसरे विषयको लीजिए। मैं जानता हूँ कि कौंसिलोंके बहिष्कारके मुखालिफ लोग प्रबल विरोध कर रहे हैं। इस विरोधका विश्लेषण करनेपर आप देखेंगे कि विरोधका कारण यह नहीं है कि विरोधी लोग कुछ ऐसा

मानते हैं कि यह कदम गलत होगा या इसके सफल होनेकी सम्भावना नही है। इसका कारण यह विश्वास है कि सारा देश इसमे शामिल नही होगा और नरम दल-वाले कौसिलोंमें घुस जायेंगे। मैं मंगलौरके नागरिकोसे इस भयको अपने मनसे दूर कर देनेको कहता हूँ। अगर मगलौरके मतदाता एकमत हों तो वे नरमदलीय, गरमदलीय या किसी भी अन्य विचारके नेताओके लिए, अपने प्रतिनिधिके रूपमे, कौसिलोमें प्रवेश करना असम्भव बना सकते हैं। इस कदममें न पैसा गँवानेकी बात है, न सम्मान खोनेकी, लेकिन इससे सारे राष्ट्रको प्रतिष्ठा अवश्य मिलेगी। और मैं आपसे कहूँगा कि अगर उग्रवादी लोग भी किसी सीमातक एकमत होकर यह कदम उठायें तो इसका वांछित परिणाम हो सकता है। लेकिन अगर इसमें सभी शामिल नही होते तो भी लोगोंको व्यक्तिशः इसमें शामिल होनेसे डरना नही चाहिए। अगर एक व्यक्ति भी इसमें शामिल होता है तो वह कमसे-कम सच्ची प्रगतिकी नींव तो डाल देगा और फिर उसे यह सन्तोष तो मिलेगा ही कि कमसे-कम वह अपने तई सर-कारके अपराधोंमें हिस्सा नही बँटा रहा है।

अब मै उस धन्धेमें लगे लोगोकी बात लेता हूँ जो धन्धा किसी समय मैं भी करता था। मैंने भारतके वकीलोसे अपना धन्धा छोड़कर उस सरकारको समर्थन देना बन्द कर देनेको कहा है जो अब राष्ट्रको विशुद्ध और सच्चा न्याय देनेवाली सरकार नही रह गई है। और जो वकील यह कदम उठायेगा, उसके लिए यह व्यक्ति-गत रूपसे अच्छा है और अगर सभी वकील यह कदम उठाते है तो यह सारे राष्ट्रके लिए शुभ है।

और इसी तरह सरकारी और सरकारी अनुदान-प्राप्त स्कूलोके सम्बन्धमे मैं कहूँगा कि मेरी अन्तरात्माको यह बात गवारा नही कि जब हम सरकारको सभी प्रकारका समर्थन देना बन्द कर देने और उससे किसी भी प्रकारकी सहायता न प्राप्त करनेके खयालसे असहयोगके कार्यक्रमको लेकर चल रहे हो तो हमारे बच्चे पढ़नेके लिए सरकारी स्कूलोमें जाये।

असहयोगके दूसरे मुद्दे भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, लेकिन मैं अब उनके सम्बन्धमें बहुत-कुछ कहकर आपके धीरजकी परीक्षा नही लेना चाहूँगा। मगर मैंने आपके सामने चार बहुत ही महत्त्वपूर्ण और जोरदार कदम उठानेका सुझाव रखा है। इनमे से कोई भी कदम ठीकसे उठाया जाये तो उसके सफल होनेकी पूरी सम्भावना है। स्वदेशीका प्रचार असहयोगके एक मुद्देके रूपमें, बलिदानकी भावनाकी अभिव्यक्तिके रूपमे किया गया है, और यह एक ऐसा मुद्दा है जिसपर हर पुरुष हर स्त्री और हर बच्चा आचरण कर सकता है।

[अंग्रेजीसे]

फ्रीडम्स बैटल, पृष्ठ २४५-५३

१०७. भाषण: बंगलौरमें असहयोगपर[1]

२१ अगस्त, १९२०

महात्माजी उर्दूमें बोले और सबसे पहले उन्होंने खड़े न हो सकनेके लिए माफी माँगी। श्री गांधीने दो राष्ट्रीय कष्टोंपर जोर देने और असहयोग आन्दोलनके पहले मुद्देसे सम्बन्धित विभिन्न विषयोंको विस्तारसे समझानेके बाद स्पष्ट घोषणा की कि यदि भारत सदैवके लिए इसी सरकारी तन्त्रका गुलाम बना रहना चाहता है, यदि भारतीय लोग न्यायके लिए अदालतोंमें जाना जारी रखेंगे, यदि वे सरकारी स्कूलोंमें अपने बच्चोंको भेजते रहेंगे और परिषदोंमें जाते रहेंगे तो भविष्यमें मेरा अन्तःकरण उनकी मालाएँ स्वीकार करनेकी गवाही नहीं देगा। जबतक अन्यायोंका प्रतिकार नहीं हो जाता तबतक सरकारको किसी भी रूपमें दी गई मदद उन जंजीरोंको कसनेका ही काम करेगी जिनमें भारत इस समय जकड़ा हुआ है। जब हमें पूरी तरह यकीन हो कि सरकारने इस्लामको जोखिममें डाल दिया है तो मैं सरकारको मदद देना और 'कुरान शरीफ' की आयतें पढ़ना — दोनों काम एक साथ नहीं कर सकता। मुसलमान खिलाफतकी रक्षाके लिए तलवार ग्रहण करना अपना धार्मिक कर्त्तव्य मानते हैं। मैं सदासे ही तलवारके सिद्धान्तका विरोधी रहा हूँ और मौलाना अब्दुल बारीने मुझे यकीन दिलाया है कि उनके महान् पैगम्बरने भी असहयोगका प्रयोग किया था। मुझे पूरा विश्वास है कि देशमें तलवार उठानेकी शक्ति नहीं है। तब बात घूम-फिरकर असहयोगके सीधे-से मुद्देके पहले चरणपर आ जाती है। मुझे लगता है कि श्री शौकत अली यही सच मानते हैं कि तलवार उठानेमें त्याग है, परन्तु यह भी सच है कि असहयोगके लिए उससे बड़ा त्याग दरकार है, फिर भी एक बच्चा-तक उसे अपना सकता है। उन्होंने मुसलमानोंको आगाह किया कि पीर महबूब शाहने[2] जैसी दुर्बलता दिखाई है, उससे बचते रहें। उन्होंने कहा कि भारतीयोंने अपनी ही आदतोंसे पीरों और पुजारियोंको बिगाड़ दिया है। इसलिए मैं जनतासे त्यागकी जितनी आशा रखता हूँ उतनी पीरोंसे नहीं। मेरे दक्षिण आफ्रिकी संघर्षमें मेरा पहला सहयोगी पुजारी ही था, पर सफलता तो जनताके बलपर ही प्राप्त हुई थी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २७-८-१९२०

१. ईदगाहमें।

२. देखिए "हमारा कर्तव्य", २९-८-१९२०।

१०८. भाषण : लॉ कालेज, मद्रासके विद्यार्थियोंके समक्ष

२१ अगस्त, १९२०

श्री गांधीने अपना भाषण शुरू करते हुए कहा कि मैं विद्यार्थियोंसे दिल खोलकर बातचीत करना चाहता हूँ और मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि हम दो आदमी — मैं और मौलाना शौकत अली — इस सवालपर कंधेसे-कंधा मिलाकर इस संघर्षमें भाग कैसे ले पा रहे हैं, जब कि जीवनके कुछ मूलभूत सिद्धान्तोंके बारेमें हम दोनोंके विचार बिलकुल विरोधी हैं, विशेषकर एक मूलभूत सिद्धान्तके बारेमें मेरे लिए अहिंसा और शौकत अलीके लिए तलवार जीवनका अन्तिम और सर्वाधिक शक्तिशाली तत्त्व है। उन्होंने कहा कि इस सिलसिलेमें एक ईसाई महिलाका जो पत्र आज सुबह ही मिला है उसे पढ़कर सुना देना सर्वोत्तम होगा। इसमें अन्य बातोंके साथ यह भी लिखा है कि असहयोगकी आवश्यकताके बारेमें मद्रासके मेरे भाषणसे उनको पूरा विश्वास हो गया है कि असहयोग आवश्यक है और हालाँकि उन्हें टर्कीके साथ कोई विशेष सहानुभूति नहीं है फिर भी वे पूरी तरह यह महसूस करती हैं कि इस्लामके सम्मान और उसकी प्रतिष्ठाके लिए ही चलाये जानेवाले इस संघर्षमें केवल हिन्दुओंको ही नहीं वरन् ईसाइयोंको भी मुसलमानोंकी पूरी-पूरी सहायता करनी चाहिए; यह मामला अन्तःकरणका है और ऐसे मामलोंमें किसी भी राष्ट्रको अपना निर्णय सत्ताके इशारेपर छोड़ देनेके लिए नहीं कहा जाना चाहिए। उक्त महिलाने विधान परिषदों तथा सरकारी और सरकारी सहायता-प्राप्त स्कूलोंके बहिष्कार और असहयोगके पहले मुद्देके सिलसिलेमें उठाये जानेवाले दूसरे कदमोंसे भी सहमति प्रकट की है। श्री गांधीने श्रोताओंको पत्र पढ़कर सुनानेके बाद कहा कि यह एक शानदार पत्र है। मैंने असहयोगके या अपने मद्रासके भाषणके प्रमाणपत्रके रूपमें इसको पढ़कर नहीं सुनाया है, यह तो एक ऐसे निष्पक्ष ईसाईकी भावना है जो संघर्षकी धर्म-मूलक भावनासे पूर्णतः सहमत हुआ है और जो सोचता है कि यह एक ऐसा संघर्ष है जिसमें हिन्दुओं और ईसाइयोंको मुसलमानोंसे किसी कदर कम हिस्सा नहीं लेना चाहिए।

इसके बाद श्री गांधीने विधान परिषद्में वाइसरायके उद्घाटन भाषणपर टिप्पणी करते हुए कहा कि वाइसराय महोदयने असहयोगके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा है उसमें उनकी यह स्वीकारोक्ति अवश्य निहित है कि उससे अधिकारियोंने इतना सबक तो सीख लिया है कि किसी आन्दोलनसे घबराकर जल्दीमें हिंसात्मक कार्रवाई कर बैठना बुद्धिमानी नहीं है; उसकी तो खिल्ली उड़ाई जानी चाहिए ताकि वह अपने-आप समाप्त हो जाये। इंग्लैंडमें अंग्रेज सरकार ऐसा ही करती है, किन्तु भारतकी जनताको चाहिए कि खिल्ली उड़ानेकी कोशिश करनेके बजाय सरकारको सही बात मानने-

पर विवश कर दे। लॉर्ड महोदयने कहा कि स्वयं वकील रह चुकनेके नाते वे सदस्योंको [आन्दोलनसे] अलग रहनेकी सलाह देंगे। किन्तु यह सलाह सदस्योंका जरा भी भला नहीं कर सकती। एक ओर वाइसराय हैं जो वकीलोंसे कहते हैं कि अदालतोंसे जैसे बने चिपके रहो और दूसरी ओर मैं हूँ। मैं खुद भी वकील रहा हूँ, मैंने वर्षोंतक वकालत करके छोड़ी है, मैं जनताके बीच जनताके लिए ही पैदा हुआ हूँ। मैं वकीलोंसे कहता हूँ कि अदालतोंका बहिष्कार करो। अब फैसला वकीलोंको करना है। श्री गांधीने आगे कहा कि संसार-भरमें सरकारें अदालतोंके जरिये ही लोगोंकी नकेल अपने हाथमें पकड़े हुए हैं। पहलेके युगोंमें अनेक बुराइयोंके बावजूद इन अदालतोंकी एक यह उपयोगिता तो थी कि उन्होंने अराजकता नहीं फैलने दी और तथाकथित व्यवस्था कायम रखी। आजके युगमें तो अदालतें खालिस बुराई बनकर रह गई हैं। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि यदि वकील अदालतोंका बहिष्कार कर दें तो इससे सरकारका एक हाथ ही टूट जायेगा और उसका बल समाप्त हो जायेगा। यदि देशमें जन-आन्दोलनका नेतृत्व करनेवाले वकील स्वयं त्याग करनेको तैयार नहीं होंगे तो मैं इसकी सलाह लोगोंको देनेका साहस कैसे करूँगा। यदि वकील त्याग करनेको तैयार नहीं हैं तो जनतापर हमारी अपीलोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और तब तो हमें लोगोंसे यही कहना पड़ेगा कि वे इस प्रकारके संघर्षमें न पड़ें। अर्थात् हमें अपने शब्द वापस लेने पड़ेंगे और कहना पड़ेगा कि हम अबतक जिस अन्यायकी बात कर रहे थे वह इतना घोर नहीं है और न उसके कारण हमारे हृदयोंमें इतनी अधिक पीड़ा ही है कि प्रचार-आन्दोलनके रूढ़िगत तरीकोंके अतिरिक्त कुछ और करनेको कहा जाये। हो सकता है कि ब्रिटिश सरकार-जैसी या उससे भी ज्यादा नृशंस सरकारें संसारमें मौजूद हों, परन्तु भारतीयोंके लिए तो वही सबसे ज्यादा नृशंस है। वह दिनोंदिन पतनके गढ़ेमें गिरती जा रही है। वाइसरायकी घोषणासे हृदयको बड़ा धक्का लगा है। वाइसरायने कहा है कि अब पंजाबके मामलेपर विचार नहीं होगा। जो सरकार इस तरह जलेपर नमक छिड़क सकती है, उससे मिला पुरस्कार कितना ही मूल्यवान क्यों न हो स्वीकार नहीं किया जा सकता। पहले उसे अपने कियेपर पश्चात्ताप करना होगा। सरकार शायद खिलाफत आन्दोलनके बारेमें यह सोचती हो कि धीरे-धीरे वह अपने-आप मर जायेगा; किन्तु भारतीयोंके मरे बिना वह नहीं मरेगा। यह संघर्ष तो सभी भारतीयोंके समाप्त होनेपर ही समाप्त होगा।

इसके बाद वक्ताने जनताको अपने जीवनकी कुछ घटनाएँ सुनाईं जिनसे जाहिर होता था कि शास्त्रों, पूर्वजों और स्वाध्यायके माध्यमसे हिन्दू धर्मके सर्वोत्कृष्ट तत्त्वोंको आत्मसात कर लेनेवाले एक और सनातनी हिन्दूकी शौकत अली-जैसे कट्टर धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्तिके साथ पटरी कैसे बैठ गई। हम दोनों ही यह मानते हैं कि भारतका उद्धार हिन्दुओं और मुसलमानोंके हृदय मिलनेमें ही है, और यही मान्यता हमें समीप ले आई। मुसलमान इतने अधिक उद्धत या अहंकारी नहीं हैं कि हिन्दुओं या अन्य

लोगोंकी मददके बिना ही काम करनेकी जिद करें और फिर मेरे जैसे हिन्दूकी मदद स्वीकार करनेके सिवा शौकत अलीके सामने कोई विकल्प भी नहीं था। अपने धर्मके सर्वश्रेष्ठ तत्त्वोंको मैंने समझा है और हिन्दू धर्मकी उदार-भावनाको स्पष्ट करनेके लिए एक हिन्दूके नाते सहयोगका हाथ बढ़ाया था। इस मददको जिस भावनासे स्वीकार किया गया उसे स्पष्ट करनेके लिए गांधीजीने मौलाना अब्दुल बारीसे अपनी पहलेकी एक मुलाकातका हवाला देकर जो बातें हुई थीं, उन्हें विस्तारसे बताया; जिसका सारांश यह था कि जब उन्होंने (श्री गांधीने) इस बातपर जोर दिया कि हम किसी सौदेकी भावनासे मदद देने नहीं जा रहे थे तब मौलानाने इस बातपर जोर दिया कि यदि मुसलमान भलाईका बदला भलाईसे चुकानेकी बात सोचे बिना मदद कबूल करें तो वह इस्लामके विरुद्ध होगा। इस प्रकार अपने-अपने धर्मके हम दो कट्टर अनुयायी — मैं और श्री शौकत अली — इस्लाम और भारतके सम्मानकी रक्षाके उद्देश्यसे भाई-भाईसे भी ज्यादा पास आ गये।

वक्ताने आगे कहा कि वकीलोंको अपनी प्रशिक्षित बुद्धिके बलपर इस प्रश्नका मर्म समझनेमें समर्थ होना चाहिए। यह दो जातियोंके बीचका नहीं वरन् आध्यात्मिक भाषामें प्रकाश और अन्धकार, ईश्वर और शैतानके बीचका युद्ध है। निकृष्ट दर्जेकी आजकी पाश्चात्य सभ्यता मूर्तिमान शैतान ही है। वक्ताने कहा कि मैं इस निष्कर्षपर सोच-विचारकर वर्षोंतक पाश्चात्य सभ्यताका अध्ययन करनेके बाद ही पहुँचा हूँ। शैतानके वेशमें यह सभ्यता बुराईका ही प्रतिनिधित्व करती है। भारतीयोंको इस बुराईकी शक्तिसे जूझते रहना है। जो शक्तियाँ यूरोपकी जनताका भाग्य-निर्माण कर रही हैं वे बुराईका मूर्तिमन्त रूप हैं और ईसाइयतको उनसे अधिकाधिक संघर्ष करना है, क्योंकि बुराईका अन्धकार दिन-दिन घना होता जा रहा है। वक्ताने कहा कि मुझे यह कहनेमें तनिक भी हिचक नहीं होती कि भारतमें असहयोगकी पैरवी करनेवाले लोग ईश्वर (सत्य) का प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि वे विनम्रतम भावनासे ईश्वरके समक्ष खड़े होकर शस्त्रोंकी नहीं वरन् आत्म-बलिदानकी भावना पानेकी प्रार्थना करते हैं। ब्रिटिश लोग शेखी मारते हैं, धमकियाँ देते हैं और कभी कड़वे, कभी मीठे शब्दोंका प्रयोग भी करते हैं, किन्तु मन-ही-मन वे सच्चे साहसकी कद्र भी करते हैं। किन्तु देखता हूँ आज वाइसराय हमारे साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। उनके चारों ओरका वातावरण चापलूसीसे भरा हुआ है और वे उसका लाभ उठाना चाहते हैं। उन्होंने यह जाहिर किया कि विरोध उन्हें असह्य कदापि नहीं है। देशका मन बहलानेके लिए तो यह ठीक हो सकता है, परन्तु यह क्रूरता है क्योंकि इसके पीछे उद्देश्य ईमानदारी और न्यायका नहीं है। वाइसराय गलतीपर-गलती करते और जलेपर नमक छिड़कते चले जा रहे हैं। खिलाफतकी गलतीका दोष उन्होंने यूरोपके सिर मढ़ा है। ठीक है, भारतीय भी केवल ब्रिटिश शक्तियोंसे ही नहीं सभी शक्तियोंसे असह-

योग कर रहे हैं। संसारके जिस कोनेमें खिलाफत और पंजाबके प्रति अन्याय दिखाई पड़ता है भारतीय उससे असहयोग कर रहे हैं।

श्री गांधीने श्रोताओंसे अपील की कि वे अदालतोंको त्याग दें। साथ ही उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि जो व्यक्ति देशकी सेवा नहीं करता वह अपना भी भला नहीं कर सकता। मैं अपने बारेमें तो निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि वकालत छोड़कर ऐसी कोई भी सुख-सुविधा मुझे नहीं त्यागनी पड़ी जो पहले प्राप्त रही हो, क्योंकि लोगोंने मेरी सेवाका भरपूर बदला दिया और उनकी ममतासे सुविधाएँ मुझे सौगुनी होकर मिलीं। परन्तु उन्हें यह अवश्य कह सकना चाहिए कि उनका सब-कुछ देशके लिए अर्पित है, उनका एक-एक क्षण, मनोरंजनका समय भी, देशके लिए है। यदि वे सरकार-जैसी शक्तिशाली संस्थाके विरुद्ध, ऐसी संस्थाके विरुद्ध खड़े होना चाहते हैं जिसके पास सत्ताकी सारी शक्ति और कौशल है, जिसके पास मीठे शब्द, रिश्वत तथा त्यागकी भी शक्तियाँ हैं, तो उनको आत्म-त्यागकी इस सबसे बड़ी शक्तिको अपने अन्दर पैदा करनेके लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि वे समझ लें कि यदि वे अदालतोंमें जायेंगे तो उसी सरकारके हाथ मजबूत करेंगे जो पापका प्रतिनिधित्व करती है।

वक्ताने कहा कि इत्तफाकसे मुसलमानोंके साथ अपना भाग्य जोड़नेमें कुछ लोगोंको इसलिए हिचक होती है कि उनको आशंका है यदि मुसलमान विजयी हो गये तो वे हिन्दुओंपर हावी हो जायेंगे और उनको आतंकित करने लगेंगे। वक्ताने कहा कि ऐसी आशंका उस हिन्दू धर्मके लिए अपमानकारी है जिसकी भूमिमें कर्नल टॉडके कथनानुसार — हजारों 'थर्मापोलियाँ'[1] मौजूद हैं। कायरकी मौत मरनेकी अपेक्षा एक शहीदकी मौत पाना कहीं अच्छा है। धर्मकी तलवार किसी निर्दोषपर उठते ही वह धर्म लांछित हो जाता है और मुझे पूरा यकीन है कि इस्लाम लांछित धर्म नहीं है। हिन्दू धर्मकी महानता इसीमें है कि वह संकट-ग्रस्त मुसलमानोंकी मददके लिए बिना शर्त आगे बढ़े। मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि ईश्वर अवश्य ही इस्लामको एक नया आदेश भेजेगा कि मुसलमान हिन्दुओंको अपना साथी समझें और उनसे कभी लड़ाई-झगड़ा न करें। वक्ताने कहा यदि ईसाई धर्मपर भी इसी तरह संकट आ जाये तो मैं उसकी मदद करनेके लिए तैयार हूँ। मैं जनरल डायरको भी यदि वे संकटमें हों तो मदद दूँगा; परन्तु यदि वे जलियाँवाला बाग-जैसा काम करना चाहें तो मदद नहीं करूँगा। उन्होंने लोगोंसे कहा कि वे इस्लामके अनुयायियोंपर नहीं, भलाईपर भरोसा करके और ईश्वरको साक्षी मानकर इस्लामकी मदद करें। तब प्रत्येक मुसलमान उनका संरक्षक बन जायेगा और दोनोंके बीच अटूट एकता कायम हो जायेगी। तब आजकी अपेक्षा हिन्दू इस दिशामें अधिक निश्चिन्त होकर प्रार्थना कर सकेगा। आज

१. यूनानमें, वहाँ स्पार्टा-निवासियोंने ई० पू० ४८० में तत्कालीन ईरानियोंकी बहुत बड़ी सेनाको बहुत बहादुरीसे रोका था और वीर-गति पाई थी।

तो उसे यह भय बना रहता है कि सन्तके वेषमें शैतान ही तो उसे [मुसलमानोंकी मददकी] सलाह नहीं दे रहा है।

श्री गांधीने आगे बोलते हुए कहा कि सन्धिकी शर्तें बदलवानेका प्रयत्न इस्लामके पुनरुत्थानका ही प्रयत्न है। मुसलमान किसी खलीफाकी पूजा नहीं करते, न किसी ऐसे व्यक्तिकी जिसका चरित्र भ्रष्ट हो; वे इस्लामकी पूजा करते हैं और इस्लामके सार-तत्त्वके प्रतीकके रूपमें खलीफाको मानते हैं। वे सन्धिकी शर्तोंपर हस्ताक्षर करनेवाले सुलतानके लिए नहीं लड़ रहे हैं। वे तो सीधे-सीधे एक आदर्शके लिए लड़ रहे हैं; और हिन्दुओंको भी यही तय करना है कि वे अपने घर-द्वारकी रक्षा करें अथवा न करें। यदि हिन्दू धर्मने इस समय इस्लामका साथ नहीं दिया तो उसपर सदैवके लिए कलंक लग जायेगा। वक्ताने पूरी दृढ़ता और विनम्रताके साथ जोर देकर कहा कि इस्लामके लिए प्राणोत्सर्ग करनेका अर्थ होगा अपने ही धर्म और घर-द्वारके लिए प्राणोत्सर्ग करना।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७२२३) की फोटो-नकलसे।

१०९. लॉ कालेज, मद्रासके विद्यार्थियोंसे बातचीत

२२ अगस्त, १९२०

श्री गांधीने लॉ कालेजके विद्यार्थियोंसे एक अनौपचारिक बातचीतके दौरान इस प्रेसीडेन्सीके ब्राह्मणेतर आन्दोलनका उल्लेख करते हुए कहा:

मै यह कहनेको तैयार हूँ कि सघर्षकी प्रत्येक अवस्थामे ब्राह्मणतर लोगोकी माँगोंके सामने झुकना ब्राह्मणोंका कर्त्तव्य है। यदि वे सभी सीटोकी माँग करे तो वे उन्हे दी जायें। यदि मेरा वश चले तो में उन्हें कुछ और भी सीटे दे दूँ। ब्राह्मणेतर लोगोकी यह माँग ब्राह्मणोंमे उनके अविश्वासका परिणाम है। बहुत समयसे ब्राह्मण समाजको जितना दिया जा सकता है उतना देते आये हैं; परन्तु उन्होने अहकारम अपने और दूसरी जातियोके बीच जो भेदभाव पैदा कर लिया है वह नितान्त दारुण हैं। वह भेदभाव वैसा ही नृशंस है जैसा वह भेदभाव जिसे यूरोपीय जातियोंने अपने और रगदार जातियोके बीच खडा कर लिया है और जिसके विरुद्ध हम सघर्षरत है।

[अग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-८-१९२०

११०. पत्र : सी० एफ० एण्ड्रयूजको

बेजवाडा
२३ अगस्त, १९२०

प्रिय चार्ली,

मेरा मद्रास प्रान्तका दौरा आज पूरा हो गया, लेकिन इसने मुझे बहुत थका भी दिया है। इसमे लगातार यात्रा करनी पड़ी। मेरे अनुभवसे मेरी यह राय मज-बूत हुई है कि यह संघर्ष बिल्कुल सच्चा, सही है, और मेरा यह विश्वास और भी पुष्ट हुआ है कि शौकत अली एक महान् और नेक व्यक्ति है। सचमुच, मै आजतक जितने लोगोसे मिला हूँ वे उन सबसे अधिक खरे व्यक्ति है। वे उदार है, बेलाग है, बहादुर और नम्र है। उन्हे अपने उद्देश्यमें आस्था है, स्वयपर विश्वास है। ईश्वरमे उनकी सहज श्रद्धा है, इसलिए वे इतने आशावादी है कि उनके संसर्गमे आनेवाले दूसरे लोगोका मन भी ताजगीसे भर जाता है। आज जनताका रुख इतना उत्साहपूर्ण है कि आश्चर्य होता है। कार्यक्रमका अहिंसात्मक पक्ष बहुत प्रगति कर रहा है। बगलौरमें लोग बडी तादादमें इकट्ठे हुए थे; जहाँतक नजर जाती थी लोग-ही-लोग दिखाई देते थे। सभामे सिर्फ एक अग्रेज पुरुष और एक अंग्रेज स्त्री थी। लेकिन भीडने उनके साथ धक्कम-धक्कातक नही किया। हमे हर जगहसे भीड़के अहिंसात्मक आचरणकी साक्षी मिली है। और बहुत ही कठिन परिस्थितियोमे भी मुहाजरीनोके संयत व्यवहारके सम्बन्धमें जो साक्षी स्वयं सरकारने दी है, वह तो तुमने भी देखी ही होगी, हालाँकि उसने यह साक्षी कुछ अनिच्छासे ही दी है। मेरे विचारसे यह सब बहुत अच्छा है। लेकिन दूसरी ओर देखता हूँ, ऊँचे तबकेके लोगोने बहुत ही कम उत्साह दिखाया है। वे तो जरा भी त्याग नही करना चाहते। वे सब-कुछ भाषणों और प्रस्तावोंके बलपर ही पा लेनेकी आशा रखते है। वे बलिदानके लिए उद्यत राष्ट्रको आगे बढनेसे रोक रहे हैं।

[अग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी
सौजन्य : नारायण देसाई।

१११. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

बेजवाड़ा
२३ अगस्त, १९२०

रोज ही या तो रात गाड़ीमें वितानी पड़ी है या दिन। जब रातमें गाड़ीमें रहा हूँ तो बराबर भीड़के कारण परेशान रहा हूँ। लेकिन ईश्वरकी कृपासे अब हम यह थका देनेवाला दौरा लगभग समाप्त कर चुके हैं। सब बातोंके बावजूद मैं पूरी तरह स्वस्थ और ठीक-ठाक रहा हूँ।

तुम्हारे पत्र तुम्हारी सामान्य मनोदशाके अनुरूप ही है। कुछ पत्र तो निश्चय ही निराशा, शंका और सन्देहसे भरे हुए हैं।

तुम अब भी मथुरादासको[1] नहीं समझ पाई हो। वह तथा अन्य दूसरे लोग जो मेरे आसपास रहते हैं, हम सबसे श्रेष्ठ हैं। आशा है तुम भी अपनेको 'सब' में शामिल मानोगी। और अगर इसमें तुम अपनेको शामिल न मानो तो मुझसे तो वे श्रेष्ठ हैं ही। इसमें कुछ अस्वाभाविक भी नहीं है। मेरा दावा है कि मैंने अपने साथियोंके रूपमें अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तियोंको ही चुना है, मतलब यह कि उनमें मुझसे श्रेष्ठ होनेकी सम्भावनाएँ हैं। मैं तो अब बहुत ही कम प्रगति कर सकता हूँ, जब कि उनकी प्रगतिकी सम्भावनाएँ असीम हैं। उनका आदर्श मेरा चरित्र है और अपने आदर्श-के प्रति उनके मनमें प्रबल उत्साह है। मुझे और (अगर तुम सच्चे अर्थोंमें मेरी हो तो) तुम्हें उनका स्नेह और सौहार्द कायम रखनेके लिए, उनका उपयुक्त पात्र बनने-के लिए सब-कुछ दे देना चाहिए। अगर किसी सवालपर झुका नहीं जा सकता तो वह है सिद्धान्तका सवाल। उसके लिए तो हमें सब तरहका और सब कुछ त्याग कर देनेको तैयार रहना चाहिए। लेकिन मैं ऐसा सच्चा और निःस्वार्थ प्रेम प्राप्त करनेके लिए सारी दुनिया न्यौछावर कर दूँगा। उनका प्यार ऊपर उठाता है, सही रास्तेपर कायम रखता है। मैं उनका आश्रय हूँ, वे मेरे अवलम्ब हैं। तुम्हें उनके उत्साह और चौकसीपर गर्व होना चाहिए। वे कोई खतरा मोल नहीं लेना चाहते और इसमें वे सही हैं। मैं और तुम उनकी हर उचित अपेक्षाको पूरा करनेके लिए कर्त्तव्य-बद्ध हैं। तभी हमारा मिलन शुभ होगा।

हाँ, अगर तुम लाहौरमें अपने स्थानपर बनी रहो तो यह ठीक ही होगा। सप्ताह-भर बहुत उथल-पुथल और परेशानी बनी रहेगी, इसलिए कलकत्ता आनेसे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। तुम अपनी माँके घर जाना चाहती हो; ऐसा तो कभी शान्तिके समयमें, जब तुम कताई और हिन्दीमें पूरी महारत हासिल कर लो और हमारे लाहौरके कामको ठीकसे जमा दो तभी किया जा सकता है। देख रही हो कि मैं पंजाब

१. मथुरादास त्रिकमजी (१८९४-१९५१); गांधीजीकी सौतेली बहनके पौत्र; समाजसेवी, लेखक और गांधीजीके अनुयायी; बम्बई कांग्रेस कमेटीके मन्त्री १९२२-२३।

न कहकर लाहौरकी बात कह रहा हूँ। मेरी इच्छा है कि तुम वहाँ काफी सुदृढ़ नींव डाल दो, और इसीलिए मैं चाहता हूँ बहुत विस्तृत क्षेत्रमें काम न करके एक स्थान-पर खूब जमकर काम किया जाये।

तुम अपने महान् समर्पणका पुरस्कार माँगती हो। समर्पण तो स्वयं ही अपना पुरस्कार है।

सस्नेह,

तुम्हारा,
विधि-प्रणेता[1]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी
सौजन्य: नारायण देसाई

११२. भाषण: बेजवाड़ामें[2]

२३ अगस्त, १९२०

हमारे विरुद्ध की गई व्यूह-रचनाको यदि हम समझ न पाये तो हम अपने हाथों अपना विनाश कर लेंगे। हमारी सरकार शक्तिशाली है, और उसने अपनी सारी शक्ति, अपना सारा शस्त्रबल हमारे विरुद्ध व्यूह-बद्ध कर रखा है। सरकारमें ऐसे लोग हैं जो योग्य, साहसी, काममें रुचि लेनेवाले और त्याग करनेमें समर्थ हैं। यह एक ऐसी सरकार है जो अपना उद्देश्य पूरा करनेमें अच्छे या बुरे तरीके अपनाते हुए धर्माधर्म-का विचार नहीं करती। (शर्म, शर्मकी आवाजें) उस सरकारके लिए कोई भी हथ-कंडा अपनाना बड़ी बात नहीं है। वह भय दिखाने और आतंकित करनेका सहारा लेती है। वह हमें खिताबों, सम्मान, उच्च पदोंकी रिश्वत देती है। (शर्म, शर्मकी आवाजें) वह सुधारोंकी अफीम खिलाती है। किसी भी दृष्टिसे देखें, यह भभकेपर दो-दो बार खींची हुई निरंकुशताकी शराब है, जो प्रजातन्त्रकी बोतलमें सामने आती है। किसी कुशल और शरारती व्यक्ति द्वारा दिया गया बड़ेसे-बड़ा उपहार तबतक व्यर्थ है जबतक उसका दिल साफ नहीं है। यह सरकार एक ऐसी सभ्यताका प्रतिनिधित्व करती है जो शुद्ध भौतिकतावादी और नास्तिक है। (शर्म, शर्मकी आवाजें) मैंने सर-कारके ये गुण आपके क्रोधको भड़कानेके लिए नहीं बताये हैं बल्कि इसलिए बताये हैं कि आप उन ताकतोंको अच्छी तरह जान-बूझ लें जो आपके खिलाफ तैनात हैं। क्रोधसे कुछ काम नहीं बनेगा। परन्तु हमें नास्तिकताका आस्तिकतासे और

१. सरलादेवीको लिखे पत्रोंमें गांधीजीने अपने लिए "लॉ-गिवर" शब्दोंका प्रयोग किया है, देखिए "पत्र: सरलादेवी चौधरानीको", २४-८-१९२० ।

२. बेजवाड़ामें म्युनिसिपल ट्रैवेलर्स बँगलेके अहातेमें २३ अगस्त, १९२० को शामको श्री मो० क० गांधी और मौलाना शौकत अलीके सम्मानमें इस सभाका आयोजन किया गया था ।

असत्यका सामना सत्यसे करना होगा। हमें उनकी शरारतों और हथकडोका मुकाबला स्पष्टता और सादगीसे करना होगा। उनके आतंक और धमकियोको बहादुरीसे सहना होगा। आज हर स्त्री-पुरुष और बच्चेसे अडिग शौर्यकी अपेक्षा है। . . .

मैं बेजवाडाके नागरिकोसे प्रश्न करता हूँ कि सरकारी नौकरीमें आपके लिए जो सुख निहित हैं उनपर निगाह डालनेसे पहले आप उन्हे तराजूके एक पलड़ेपर और अपना धर्म तथा राष्ट्रीय सम्मान दूसरेपर चढाकर देखिये और तब चुनाव कीजिए। . . .

मेरी समझमे नही आता कि हममें से जिन लोगोने इस सरकारको समझ लिया है, जिन्होंने वाइसरायकी घोषणा पढ़ी है, जो पंजाब या खिलाफतके मामलेमे न्याय न देनेके इस सरकारके निश्चयको समझ चुके हैं, वे इस बातकी आशा कैसे कर सकते हैं कि इस सरकारसे सहयोग करके अथवा [कौंसिलोंमें प्रवेश करनेके बाद उसके मार्गमें] रोड़े अटकाकर हम किसी प्रकारकी वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। . . .

नरम दलके लोग इस सरकारके हाथो न्याय मिलना सम्भव मानते हैं। दूसरी ओर गरम दलके लोगोने इस सरकार और इसके कारनामोकी दृढतापूर्वक, जी खोलकर निन्दा की है। जनताकी मनोवृत्तिको समझनेवाला कोई भी राष्ट्रवादी व्यक्ति इन विधान परिषदोमे जानेसे लाभकी आशा कैसे कर सकता है? परन्तु यदि वे वास्तवमे जनमतका प्रतिनिधित्व करते हैं और यदि वे जन-मानसपर अपना असर कायम रखना चाहते है तो मैं उन्हें सुझाव देता हूँ कि विधान परिषदोमे बाहर रहें, जनमतको दृढ करें और जो कुछ भी देनेको तैयार नही है उनसे न्याय लेकर ही छोड़ें।

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया : होम पोलीटिकल दिसम्बर १९२०; स० २१०-१६ ए

११३. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

बम्बई जाते हुए मनमाडके रास्तेमें
२४ अगस्त, १९२०

परम प्रिय सरला,

तुम्हारे पत्रोंसे मुझे बहुत दुःख हुआ। तुम्हे मेरा उपदेश देना पसन्द नही, लेकिन जबतक तुम्हारा व्यवहार स्कूलमें पढ़नेवाली लड़कियो-जैसा है तबतक मैं तुम्हे उपदेशके अलावा और दूं भी क्या? अगर मेरा प्यार सच्चा है तो जबतक तुम, जिस आदर्शको तुमने योग्य मानकर स्वीकार किया है, उसे अपने आचरणमें नही उतारती तबतक यह प्यार उपदेशोके रूपमें ही प्रकट होगा। मैं यह बिलकुल पसन्द नही करता कि तुमने जो जीवन अपनाया है या जिसे अपनानेकी तुम कोशिश कर

रही हो उसे अपनानेकी आवश्यकतामें शंका करो। अपने प्राणोंको संकटमें डालकर भी बराबर सत्य बोलने और सत्यका आचरण करनेका पुरस्कार क्या हो सकता है? अपने देशके लिए मर मिटनेका पुरस्कार क्या हो सकता है? तुमने वर्षोंका समय लगाकर पिआनो बजानेमें सिद्धहस्तता प्राप्त की; उसका तुम्हें क्या पुरस्कार मिला? कोई भी जिस उद्देश्यको लेकर चलता है उसके लिए अपना सब-कुछ इसीलिए अर्पित कर देता है कि वह इसके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकता। तुम्हारे सन्तोषका आधार सम्पूर्ण समर्पण होना चाहिए। जिस समर्पणसे हमें सन्तोष नहीं मिलता वह लाचारीका समर्पण है जो किसी भी आत्माभिमानी व्यक्तिके लिए अशोभनीय है। और अगर मेरे सम्पर्कमें आकर तुम इस सीधे-से सत्यको भी नहीं समझ पाईं तो मैं तुम्हारे प्रेमका योग्य पात्र नहीं हूँ। क्योंकि अगर मेरा जीवन तुम्हें इतना भी नहीं सिखा पाया तो मैं किसी कामका आदमी नहीं हूँ। असीम आत्म-समर्पण और सत्य-निष्ठाके अतिरिक्त मुझमें और कोई गुण नहीं है। सभीने मुझमें दो गुण लक्ष्य किये हैं, और अगर तुम मेरे जीवनमें इतनी गहराईतक उतरनेके बाद भी उन्हें नहीं देख पाई हो तो अवश्य ही मुझमें कोई खामी होगी। मेरी ये जो सबसे मूल्यवान निधियाँ हैं, उनके अलावा मैं तुम्हें और दे भी क्या सकता हूँ? इसलिए तुम्हें मेरे उपदेशोंका बुरा नहीं मानना चाहिए बल्कि जिस प्रेम-भावसे मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ उसी प्रेम-भावसे तुम उन्हें स्वीकार करो। अगर मैं तुम्हारा 'लॉ-गिवर' [विधि-प्रणेता] हूँ और फिर भी यदि मैं तुम्हारे लिए हमेशा नियमोंका विधान नहीं करता तो कमसे-कम तुम्हें वे बातें तो समझाऊँगा ही जो शाश्वत महत्त्वकी या जो देशके लिए, जिसके लिए हम जीते हैं और जिसे इतना अधिक प्यार करते हैं, सर्वोपरि महत्त्वकी हैं।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि अगर तुम्हारे मनमें बुरे खयाल आयें तो तुम उन्हें लिखो नहीं। मेरा कहना यह है कि तुम ऐसे विचार अपने मनमें आने ही न दो।

सस्नेह,

तुम्हारा,
विधि-प्रणेता

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी
सौजन्य: नारायण देसाई

११४. असहयोगके पीछे धर्मका प्रमाण

श्री नारायण चन्दावरकर-जैसे विद्वान् नेताके साथ विवादमें पड़ना मेरे लिए कोई सुखकर काम नहीं है। लेकिन असहयोग आन्दोलनके प्रणेताके नाते मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि इस सम्बन्धमे अपने विचार स्पष्ट कर दूं, हालांकि ये विचार उन नेताओके विचारोके विरुद्ध पडते है जिन्हे मैं बहुत सम्मानकी दृष्टिसे देखता रहा हूँ। ´अपनी मलाबार-यात्राके दौरान मैंने अभी सर नारायणका वह प्रत्युत्तर पढा है जो उन्होने असहयोगके विरुद्ध बम्बईसे प्रकाशित घोषणा-पत्रके मेरे उत्तरके खण्डनस्वरूप दिया है। मुझे दु खके साथ कहना पड़ता है कि उनका प्रत्युत्तर मुझे जँचा नही। लगता है हम दोनोंने 'बाइबिल', 'गीता' और 'कुरान'को भिन्न दृष्टिकोणोसे पढा है या इनका अलग-अलग अर्थ लगाया है। जान पडता है हमने अहिंसा, राजनीति और धर्मको भी अलग-अलग रूपोमे समझा है। अब मैं यथासम्भव अधिकसे-अधिक स्पष्ट ढगसे यह समझानेकी कोशिश करूँगा कि इन शब्दोका मै क्या अर्थ लगाता हूँ और भिन्न-भिन्न धर्मोको किस रूपमे समझता हूँ।

सबसे पहले तो मैं सर नारायणको आश्वस्त कर दूं कि मैंने अपने अहिंसा-विषयक विचारोंमे कोई परिवर्तन नही किया है। मै अब भी यही मानता हूँ कि जब मनुष्यमें किसीको जीवन देनेकी शक्ति नही है तो उसे धरतीके किसी तुच्छसे-तुच्छ प्राणीका जीवन लेनेका भी अधिकार नही है। यह विशेष अधिकार तो सिर्फ उसीको है जिसने सारे प्राणियोको रचा है। मैं अहिंसाकी इस व्याख्याको स्वीकार करता हूँ कि यह सिर्फ किसीको हानि न पहुँचानेकी निषेधात्मक अवस्था ही नही है; वास्तवमे यह प्रेमकी, बुराई करनेवाले की भी भलाई करनेकी एक विधायक अवस्था है। लेकिन इसका मतलब यह नही कि अन्यायीको अन्याय करनेमें सहायता दी जाये या उसे चुपचाप सिर झुकाकर सह लिया जाये। इसके विपरीत प्रेम, जो अहिंसाकी सक्रिय अवस्था है, आपसे यह अपेक्षा रखता है कि आप अन्यायीसे अपने सारे सम्बन्ध तोडकर उसका विरोध करे; भले ही इससे वह नाराज ही क्यों न हो, उसे शारीरिक क्षति ही क्यों न पहुँचे। इसी तरह अगर मेरा लडका लज्जाजनक जीवन बिता रहा हो तो मुझे चाहिए कि उसे सहारा देकर कुमार्गपर चलते रहनेमें उसकी सहायता न करूँ; इसके विपरीत उसके प्रति मेरे प्यारका तकाजा यह होगा कि मैं उसको किसी भी तरहसे सहारा न दूं, भले ही इसके कारण उसे मौतके मुँह मे ही क्यो न जाना पडे। और उसी प्यारका तकाजा यह भी है कि अगर वह अपनी भूल समझकर पश्चात्ताप करे तो मै उसे गलेसे लगा लूं। लेकिन मुझे जोर-जबरदस्तीसे उसे नेक बननेपर मजबूर नही करना चाहिए। मेरे विचारसे 'बाइबिल'मे वर्णित अपव्ययी पुत्रकी कहानीका सन्देश भी यही है।

असहयोग कोई निष्क्रिय अवस्था नही है, यह एक बहुत ही सक्रिय अवस्था है—शारीरिक प्रतिरोध या हिंसासे भी अधिक सक्रिय। असहयोगके लिए निष्क्रिय

प्रतिरोध शब्द-पदका प्रयोग करना ठीक नहीं है। असहयोग शब्दका प्रयोग जिस अर्थमें मैं करता हूँ, उस अर्थमे यह एक ऐसी चीज है जिसका अहिंसात्मक होना जरूरी है, और इसलिए इसमे किसीको दण्डित करने या किसीसे बदला लेनेकी गुंजाइश नही है, और न ही यह द्वेष, दुर्भावना या घृणापर आधारित है। इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि अगर मैं जनरल डायरकी सेवा करता हूँ और निर्दोष व्यक्तियोको गोलियोसे भूननेमे उन्हें सहायता देता हूँ तो यह पाप होगा। लेकिन अगर उन्हें कोई शारीरिक रोग हो और मैं उनकी सेवा-शुश्रूषा करके उन्हे स्वस्थ कर दूँ तो मैं अपनी क्षमाशीलता या प्रेमका परिचय दूंगा। इसे मैं सहयोग नहीं कह सकता लेकिन सर नारायण इसे शायद सहयोग ही कहेगे। इस सरकारको इसकी अपराधवृत्तिसे विमुख करनेके लिए मैं इसके साथ हजार बार सहयोग करूँगा, लेकिन अपनी इस वृत्तिको चालू रखनेमें सहायता देनेके लिए मैं इसके साथ क्षण-भर भी सहयोग नही करूँगा। और अगर मैं इस सरकारसे प्राप्त कोई पदवी धारण किये रहूँ या "इसके अधीन कोई नौकरी करता रहूँ या कि इसकी अदालतो और स्कूलोको अपना समर्थन दूं" तो मैं गलत काम करनेका दोषी होऊँगा। जलियाँवालाके निर्दोष नर-नारियोके रक्तसे सने हाथोंसे भेंट दी गई मूल्यवानसे-मूल्यवान निधि स्वीकार करनेकी अपेक्षा मैं भिखारीका जीवन बिताना अधिक अच्छा समझूँगा। हमारे सात करोड़ भाइयोकी धार्मिक भावनापर निर्मम आघात करनेवालो के मधुर शब्दोकी अपेक्षा मैं उनकी ओरसे अपने नाम जारी किये गये कैदके वारंटको अधिक श्रेयस्कर मानूंगा।

'गीता'को जिस रूपमें मैंने समझा है वह सर नारायणके समझनेसे बिलकुल उलटा है। मैं नही मानता कि 'गीता' भलाई करनेके बजाय हिंसाकी सीख देती है। यह मुख्यतः हृदयके भीतर छिड़े द्वन्द्वका ही वर्णन है। गीताकारने एक ऐतिहासिक घटनाका सहारा लेकर हमे यह सीख दी है कि प्राणोको संकटमे डालकर भी अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए। यह फलाफलका ध्यान न रखते हुए कर्त्तव्य-पालनकी सीख देती है, क्योंकि हम नश्वर प्राणियोंमे इतनी क्षमता नही है कि अपने कर्मके अतिरिक्त किसी और वस्तुपर नियन्त्रण रख सके। 'गीता' प्रकाश और अन्धकारकी शक्तियोमे भेद करते हुए दिखाती है कि इन दोनोंका सयोग नही हो सकता।

मेरी नम्र सम्मतिमे ईसा मसीह राजनीतिज्ञोंके सरताज थे। उन्होने जो-कुछ सीजरको दिया जाना था, दिया। उन्होने शैतानके गुणको भी स्वीकार किया; किन्तु दिया। वे उससे बराबर दूर रहे और एक बार भी शैतानके मायाजालमें न फँसे। उनके समयकी राजनीति यही थी कि जनताको पुरोहितों और फैरिसियोके भुलावेमें न पड़नेकी सीख देकर उसका कल्याण किया जाये। उन दिनों फैरिसी लोग ही जन-जीवनका नियन्त्रण करते थे, उसको दिशा देते थे। आजकी शासन-प्रणाली ऐसी है कि उसका प्रभाव हमारे जीवनके हर क्षेत्रपर पड़ता है। यह हमारे अस्तित्वके लिए ही खतरा बन गया है। इसलिए अगर हम राष्ट्रके हितोकी रक्षा करना चाहते हैं तो हमे शासकोके क्रिया-कलापोंमें पूरी रुचि लेनी चाहिए और उनसे नैतिक नियमोका पालन करनेका आग्रह करके उनपर नैतिक दबाव डालना चाहिए। जनरल डायरने

निरीह जनताका कत्लेआम करके अवश्य एक "नैतिक प्रभाव" उत्पन्न किया। जो लोग असहयोग आन्दोलनको बढानेमे जुटे हुए है वे आत्म-त्याग, आत्म-बलिदान और आत्म-शुद्धिकी प्रक्रियासे नैतिक प्रभाव उत्पन्न करना चाहते है। मुझे आश्चर्य होता है कि सर नारायणने जनरल डायरके कत्लेआमकी चर्चा असहयोगके साथ-साथ, दोनोको एक धरातलपर रखकर, कैसे की। उनके आशयको समझनेकी मैने भरसक कोशिश की है, लेकिन दुःखके साथ कहना पड़ता है कि कुछ समझ नहीं पाया।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५–८–१९२०

११५. खिलाफत और स्वदेशी

स्वदेशीको मैने बहुत आशंकित मनसे असहयोगके कार्यक्रममे शामिल किया था। मौलाना हसरत मोहानी इतने उत्साहमें थे कि मुझे लाचार होकर इसे स्वीकार करना ही पडा। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि स्वदेशीको इस कार्यक्रममे शामिल करनेके उनके जो कारण है वे मेरे कारणोंसे भिन्न है। वे ब्रिटिश मालके बहिष्कारके पक्षधर है। जैसा कि मैने इसी अंकमे अन्यत्र बताया है, मै इस सिद्धान्तको स्वीकार नही कर सकता। लेकिन मोहानी साहब जब बहिष्कारको लोकप्रिय नही बना सके तो उन्होने इस भावसे इसे स्वीकार कर लिया कि कोई बेहतर चीज नही है तो स्वदेशी ही सही। लेकिन मेरे लिए यह बता देना जरूरी है कि असहयोगके कार्यक्रमोमे मैने स्वदेशीको कैसे शामिल किया।

असहयोग और कुछ नही, आत्म-बलिदानका शिक्षण ही है। और मेरा खयाल है कि जो देश असीम बलिदान कर सकता है वह अनन्त ऊँचाईतक भी उठ सकता है। यह बलिदान जितना विशुद्ध होगा, प्रगतिकी रफ्तार उतनी ही तेज होगी। स्त्री-पुरुषो और बच्चोके सामने स्वदेशी एक विशुद्ध ढंगका आत्म-बलिदान प्रारम्भ करनेका अवसर प्रस्तुत करती है। इस तरह यह हमारी बलिदानकी क्षमताकी परीक्षाका प्रसंग भी प्रस्तुत करती है। यह खिलाफतके सवालपर राष्ट्रीय भावनाकी गहराईका अन्दाजा लगानेका एक पैमाना है। क्या राष्ट्रकी भावना इस सवालपर इतनी तीव्र है कि वह बलिदानकी इस प्रारम्भिक प्रक्रियासे भी गुजर सके? जापानी रेशम, मैनचैस्टरके सूती वस्त्र और फ्रांसीसी लेसके कपड़ेके प्रति अपनी रुचि बदलकर अपनी सारी साज-सज्जाके लिए क्या राष्ट्र हाथके कते, हाथके वुने कपडे अर्थात् खादीसे ही सन्तोष मान लेगा? अगर करोड़ो लोग विदेशी वस्त्र पहनना या उनका उपयोग करना छोड़ दे और हम अपने घरोमे जो कपड़े तैयार कर सकते है उन्ही सादे कपड़ोसे सन्तोप कर लें तो यह हमारी संगठन-क्षमता, शक्ति, सहयोग और आत्म-बलिदानका परिचायक होगा; और जब हममे ये गुण आ जायेंगे तो हम जो चाहते है वह सब प्राप्त करनेमें समर्थ हो जायेंगे। यह राष्ट्रीय एकताका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रमाण होगा।

लेकिन ऐसी सिद्धि चाहने-भरसे ही प्राप्त नही हो सकती। इसे कोई एक आदमी, चाहे वह कितना ही योग्य और तत्पर हो, प्राप्त नही कर सकता और अगर हम चाहे कि देश-भरमें स्वदेशी भण्डार खोलकर इसको प्राप्त कर लेंगे तो यह भी नही हो सकता। यह तो तभी प्राप्त हो सकती है जब हम नया उत्पादन करे, और समझदारीके साथ वितरण करे। उत्पादनका मतलब है लाखों स्त्रियोका अपने घरोमें कताईका काम करना। इसके लिए जरूरत है ऐसे उत्साही लोगोंकी सेवाकी जो ईमानदारीके साथ घर-घर धुनी हुई रुईका वितरण करे और फिर पारिश्रमिक देकर उन सबसे सूत प्राप्त करे। इस उत्पादनका मतलब है हजारों चरखे तैयार करना; और इसका मतलब है पुश्तैनी बुनकरों द्वारा फिरसे अपना यह नेक पेशा अपना लेना। इसका मतलब है घरोमें काते गये सूतका इन बुनकरोमें वितरण करना और उनसे कपडे तैयार करवाना। इस तरह असहयोगके कार्यक्रममें स्वदेशीको एक शक्तिदायी साधनके रूपमे ही शामिल करनेकी बात मै सोच सकता हूँ। लेकिन इस ढंगके स्वदेशीका तिरस्कार नही करना है। और मुझे आशा है कि अगर कोई कार्यकर्त्ता और कुछ न भी करे, पहले उत्पादन और फिर वितरणको बढावा देकर स्वदेशीको आगे बढाये तो ऐसा माना जायेगा कि उसने कुछ-न-कुछ तो किया ही। अगर वह, भारतमें पहले से ही जो कपड़ा तैयार किया जा रहा है, उसीके वितरणसे सन्तुष्ट रह जाता है तो उसका मतलब होगा कि वह एक ही घेरेके भीतर घूम रहा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-८-१९२०

११६. विदेशी मालका बहिष्कार बनाम असहयोग-कार्यक्रम

श्री कस्तूरी रंगा आयंगरने मेरी उन तमाम दलीलोंका जवाब दिया है जो मैंने मद्रास समुद्र-तटकी महती सभामें असहयोगके प्रथम चरणसे सम्बन्धित विभिन्न बातोको विस्तारसे समझाते हुए उसके पक्षमें प्रस्तुत की थी। सिवाय खिताब छोड़नेके उन्होने मेरी और सारी बातोसे असहमति प्रकट की है। उन्होने अन्य मुद्दोकी जगह विदेशी मालके बहिष्कारका सुझाव दिया। अब मै जो-कुछ कहूँगा वह अपनी बातोको दुहराना ही होगा, क्योकि इस सम्बन्धमे 'यग इडिया' के पाठक मेरे सभी विचारोसे अवगत हैं। फिर भी अब चूँकि श्री कस्तूरी रगा आयगर-जैसे योग्य पत्रकार बहिष्कारका समर्थन कर रहे हैं, इसलिए इस सवालपर मुझे विचार करना ही पडेगा।

पहली बात तो यह है कि ब्रिटिश मालके बहिष्कारकी कल्पनाके पीछे दण्ड देनेका भाव है, इसलिए असहयोगमे इसे कोई स्थान नही दिया जा सकता, क्योकि असहयोगकी कल्पना तो आत्म-बलिदानके भावसे की गई है। और यहाँ सवाल एक पवित्र कर्त्तव्य निभानेका है।

दूसरे, अगर दण्डित करनेके लिए ही कोई कदम उठाना हो तो उसके पीछे जैसा प्रभाव उत्पन्न करनेका मन्तव्य है, वैसा प्रभाव उत्पन्न करनेके खयालसे उस कदममें

तेजी होनी चाहिए, निश्चितता और पूरा जोर होना चाहिए। इसलिए अगर इस उपायका सहारा व्यक्तिशः लिया जाये तो यह बिलकुल बेकार होगा; क्योंकि अगर इसका उचित प्रभाव नही हुआ तो इससे कोई सन्तोष नही मिल सकता, जबकि असहयोग अपने-आपमे एक सन्तोषप्रद चीज है।

तीसरे, ब्रिटिश मालका बहिष्कार पूरी तरह अव्यवहार्य है, क्योकि इसमें लखपतियों द्वारा अपने लाखों रुपयोके बलिदानका सवाल आ जाता है। मेरे विचारसे जितना कठिन किसी वकीलके लिए अपना धन्धा बन्द कर देना, किसी खिताबयाफ्ता व्यक्तिके लिए अपना खिताब छोड़ देना या जरूरत पड़नेपर माता-पिताके लिए अपने बच्चोंकी किताबी शिक्षा बन्द कर देना है, उससे हजार गुना कठिन किसी लखपतिके लिए अपने लाखो रुपये बलिदान कर देना है। और फिर इस महत्त्वपूर्ण तथ्यका खयाल भी कीजिए कि व्यापारियोंने अभी हालमे राजनीतिमे दिलचस्पी लेना शुरू किया है। इसलिए वे अब भी बहुत डरते हुए सोच-सोचकर कदम रखते हैं। लेकिन जिस वर्गसे असहयोगके प्रथम चरणका सम्बन्ध है, वह राजनीतिक वर्ग है जो वर्षोसे राजनीतिमें हिस्सा लेता चला आ रहा है और इसलिए ऐसा नही कि वह मनसे सामूहिक बलिदानके लिए तैयार न हो।

अगर ब्रिटिश मालके बहिष्कारको प्रभावकारी बनाना हो तो या तो सारे देशको एक साथ ही उसका बहिष्कार करना चाहिए या बिलकुल करना ही नही चाहिए। यह फौजी घेरे-बन्दीके समान है। आप घेरा-बन्दी तभी कर सकते है जब आपके पास काफी लोग और विध्वसक शास्त्रास्त्र हों। अगर कोई एक आदमी अपनी अँगुलियोके नाखूनोसे दीवारको खरोचने लगे तो दीवारका कुछ भी नही बिगडेगा, अलबत्ता उसकी अँगुलियाँ जरूर क्षत-विक्षत हो जायेंगी। लेकिन अगर कोई खिताबयाफ्ता आदमी अपना खिताब छोड़ देता है तो उसे यह परम तोष मिलेगा ही कि जिसने उसे यह खिताब दिया था उसके पापसे वह अलग हो गया है, और इस तरह अगर दूसरे लोग अपने खिताब छोड़नेसे इनकार करते हैं तो उसका उसपर कोई प्रभाव नही पडेगा। चूँकि बहिष्कारके पीछे दण्ड देनेका भाव है, इसलिए यह असहयोगके सहज व्यावहारिकताके गुणसे वंचित है। इस भावके जोर पकड़नेसे राष्ट्रीय नव-निर्माणकी प्रक्रियामें बाधा पड़ेगी। बलिदानकी भावनाका मतलब है अपनी कमजोरियोसे अपनेको मुक्त करनेका सकल्प। इसलिए यह एक शक्ति देनेवाली और हमें पवित्र बनानेवाली प्रक्रिया है, और इस तरह इसका उद्देश्य हमारी और जिनके आचरणसे असन्तुष्ट होकर हम इसके लिए तत्पर होते, उनकी भी भलाई करना है। और सबसे बडी बात तो यह है कि अगर भारतका अपना कोई उद्देश्य है तो उसे वह पाश्चात्य संसारके सन्दिग्ध उदाहरणका अनुकरण करके और इस तरह अपने बलिदानको भी भौतिक लाभकी आशासे दूषित करके पूरा नही कर सकता। उसे पूरा करनेका एकमात्र उपाय यही है कि वह विशुद्ध बलिदान करे — ऐसा बलिदान जो ईश्वरको भी प्रीतिकर हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-८-१९२०

११७. भाषण : गुजरात राजनीतिक परिषद्, अहमदाबादमें

२७ अगस्त, १९२०

आपने मुझे जो काम सौंपा है उसे करना मैं अपने लिए सम्मानकी बात मानता हूँ। लेकिन मैं इस मामलेमें पूरा तटस्थ नहीं हूँ। अध्यक्ष चुनना आसान भी है और कठिन भी। हमारा देश एक नाजुक दौरसे गुजर रहा है। ऐसे अवसरपर जब कि सारे देशकी आँखे हमपर लगी हुई हैं हमें अध्यक्ष-पदके लिए ऐसा व्यक्ति चुनना चाहिए जो बूढ़े और अनुभवी कप्तानकी तरह देशकी नैयाको अच्छी तरह पार लगा दे। स्वागत समितिकी बैठकमें कई नाम सुझाये गये थे। मैंने अपना मत श्री अब्बास तैयबजीके लिए दिया। मुझे लगा कि उनकी अध्यक्षतामें हमारी अधिकांश कठिनाइयाँ आसानीसे हल हो जायेंगी और चूँकि मैं स्वयं श्री तैयबजीको नजदीकसे जानता हूँ इसलिए मैं भी उन्हें हल करनेमें उनकी मदद कर सकूँगा। उनकी उम्र काफी हो चुकी है और वे कमजोर भी हैं लेकिन पंजाबके सवालके बारेमें उन्हें ज्यों ही मेरा तार मिला त्यों ही वे दौड़े हुए मेरे पास लाहौर जा पहुँचे। वे वहाँ बीमार पड़ गये; अत्याचारोंसे पीड़ित लोगोंकी सूची बनाते हुए [सदमेके कारण] उनके दिलकी धड़कन बढ़ गई। वे मुझे अपना छोटा भाई मानते हैं इसलिए तबीयत बहुत खराब हो जानेपर उन्होंने मुझे बुला भेजा और अपना वसीयतनामा लिखा डाला। दूसरे पक्षकी बात हमें ध्यानसे सुननी चाहिए। अध्यक्ष-पद स्वीकार करनेके लिए हमारा निमन्त्रण स्वीकार करना श्री अब्बास तैयबजीके लिए आसान चीज नहीं थी। चूँकि वे कमजोर हैं इसलिए बहस-मुबाहसेमें पूरा हिस्सा लेना उनके लिए मुमकिन नहीं होगा। इसलिए हमें उनका काम भरसक हलका करनेकी कोशिश करनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

गुजराती, ५-९-१९२०

११८. भाषण : गुजरात राजनीतिक परिषद्में असहयोगपर

२८ अगस्त, १९२०

कांग्रेसके इतिहासमें ऐसा प्रस्ताव[1] पेश करनेकी यह पहली घटना है। इस-लिए इस प्रस्तावपर सब लोगोंको बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और जो नेता उस प्रस्तावके विरोधमें बोलनेवाले हैं उनकी बातको विनयपूर्वक सुनना चाहिए। यदि हमें असहयोगके इस शस्त्रका उपयोग अच्छी तरह करना हो तो हमें अपने विरोधियोंको बलपूर्वक नहीं बल्कि प्रेमसे जीतनेकी कोशिश करनी चाहिए। यह शस्त्र

१. परिषद्के दूसरे दिन गांधीजीने असहयोगपर प्रस्ताव पेश किया था।

किसीपर जोर-जबरदस्ती करनेके लिए नही है। इस सुन्दर शस्त्रके उपयोगमें अधीरता या अशिष्टताके लिए कोई स्थान नही है। यदि प्रस्ताव नामंजूर हुआ तो मुझे दुख होगा किन्तु निराशा कदापि नही होगी और उसके कारण मैं इस शस्त्रका उपयोग करना बन्द भी नही करूँगा। जिन लोगोने जनताकी सेवा की है उनकी बात हमें सुननी ही चाहिए। जो लोग हमें चेतावनी देते हैं उनकी बात यदि हम नही सुनते तो फिर हम किस कामके लायक हैं? हमे तो बालकके विरोधको भी विनयपूर्वक सुनना चाहिए। यह हमारा कर्त्तव्य है। विनय ही असहयोगकी पहली और अन्तिम सीढी है। असहयोगके शस्त्रका उपयोग हमे वैर-भावसे नही करना है। मौलाना शौकत अलीने भी, जो सगे भाईसे भी ज्यादा एकतापूर्वक हमारा साथ दे रहे हैं, वैर-भावका सम्पूर्ण त्याग किया है। जो लोग इस शस्त्रको वैर-भावसे चलाना चाहते हैं उन्हे निराशा ही हाथ लगेगी। जो लोग असहयोगका विरोध कर रहे हैं वे दो बातें कहते हैं: एक तो यह कि उसमे जोखिम है और दूसरी यह कि भारतकी जनता उसके अयोग्य है। जिस सरकारके पास अनेक साधन हैं और जो पूरी तरह एकमत होकर काम करती है और जिसकी जातिके लोग संकटमें एकाएक घबराते नही हैं, उसके खिलाफ लड़नेमें हम इस शस्त्रका प्रयोग कर रहे हैं तो इसमें जोखिम तो है ही। किन्तु जोखिम उठाये बिना उसे मात देना भी असम्भव है। अंग्रेज जातिने कभी ऐसा कोई काम नही किया जिसमें जोखिम न रहा हो। मुट्ठी-भर अंग्रेज, हम बत्तीस करोड़ भारतवासियोपर राज्य कर रहे हैं, इसमें क्या वे कोई जोखिम नही उठाते? जर्मन लोगोके खिलाफ पूरी तैयारी किये बिना ही लड़नेवाले इस राष्ट्रने क्या जोखिम नही उठाया होगा? जोखिम उठाये बिना तो हम कुछ कर ही नही सकते। किन्तु यह बात ठीक है कि जोखिममें और अपनी प्राप्य वस्तुमें कुछ सन्तुलन होना चाहिए। मुझे लगता है कि असहयोग एक ऐसा शस्त्र है जिसमें जोखिम कम है और जो हमारे उद्देश्यकी प्राप्तिमें उपयोगी भी होगा। ऐसा कोई दूसरा व्यावहारिक शस्त्र जिसमे इसकी अपेक्षा कम जोखिम हो कोई बता ही नही सकता। ३५ वर्षसे कांग्रेस हमारी जो सेवा करती आ रही है उसे हमें भूलना नही है। उसके कारण ही हमे यह शस्त्र प्राप्त हुआ है। लेकिन इसका यह मतलब नही कि हम लकीरके फकीर बने रहे। सच्चा बेटा तो वह है जो अपने बापकी सम्पत्तिको बढाये। कुछ लोग कहते हैं कि असहयोगको अपनानेसे कांग्रेसका विधान भग होता है। लेकिन ऐसा कहनेके लिए कोई उचित कारण नही है। अलबत्ता सरकारको इससे परेशानी होगी। किसी शराबीसे उसकी शराबकी बोतल छीन ले तो उसे कष्ट होगा ही। सरकारके साथ असहयोग करना उससे भी ज्यादा बड़ी चीज है। सरकारकी सहायता करना तो अधर्म है। यदि वह जानती कि भारतकी जनता इसका विरोध करेगी तो खिलाफत का निर्णय जैसा हुआ है वैसा होता ही नही। मैं यह नही मानता कि खिलाफतका निर्णय दूसरे राष्ट्रोने किया है। हमारे महान् मन्त्री ऐसे हैं कि उन्हें तो वे घोलकर ही पी जाये। टर्कीके साथ जिन्होंने अन्याय किया है, उनसे सहयोग करना अधर्म है और हमे ज्यादासे-ज्यादा जोखिम उठाकर भी इस अधर्मसे दूर रहना चाहिए। प्रह्लाद-जैसा बालक भी असह-

योगका रहस्य समझ गया था, मेरे-जैसा भी उसका आचरण कर सकता है। तो फिर कुछ लोगोका यह कहना उचित नही कि जनता उसके लिए तैयार नही है। मेरे पुत्रों और मेरी स्त्रीने मेरे साथ असहयोग किया है। तो मै यह कैसे मान लूँ कि भारतकी जनता इस वस्तुको समझनेमे समर्थ नही है। यह शस्त्र व्यावहारिक है और यदि सब लोग उसका उपयोग करे तो उससे अनेक लाभ हो सकते है। हमारी प्रजा इस शस्त्रका उपयोग कोई पहली बार नही कर रही है। हमें यह नही मानना है कि हम असहयोग करेगे तो दूसरे लोग भी वैसा ही करेगे। इस सवालपर काग्रेसका निर्णय होने तक रुकना प्रगतिका चिह्न नही है। हमें उसपर अभीसे आचरण शुरू कर देना चाहिए और काग्रेसके पास काम कर दिखानेके बाद जाना चाहिए। मै काग्रेस द्वारा उसे स्वीकार करानेके लिए कलकत्ता जानेवाला हूँ। इतिहासमें असहयोगके अनेक उदाहरण है। बोअर लोगोंका उदाहरण तो मौजूद ही है। बोअर प्रजाको जो अधिकार दिये गये थे, वे उसे पसन्द नही आये और जनरल बोथाने असहयोग आरम्भ किया। अन्तमे उन्हें इग्लैंड बुलाया गया और आज आफ्रिकाकी जनता स्वतन्त्र है। बोअर लोगोंने कौसिलोंका त्याग किया था। यहाँकी कौसिलोमें नरम दलवाले लोग जाना चाहते हो तो भले जायें किन्तु राष्ट्रवादियोसे मै पूछूँगा कि आप वहाँ जाकर क्या करेगे? मेरा तो खयाल है कि वहाँ आपको बहुमत प्राप्त नही होगा। जबतक आपको प्रत्येक मत न मिले तबतक आपकी कुछ चलेगी नही। उनके हाथमे ऐसे पासे है जिनके द्वारा वे तुम्हे ठग सकते है। इसलिए उनके साथ तुम्हारे शुद्ध पासे किसी काम नही आयेगे। तुम्हारे पासे पोले है जबकि सरकारके पासोमे शीशा भरा हुआ है। इसलिए तुम्हारा वहाँ जाना निरर्थक है। ट्रान्सवालमें डेढ लाख गोरोके खिलाफ असहयोग करके १०,००० भारतीयोने विजय प्राप्त की थी तो फिर भारतमें इस शस्त्रको निकम्मा माननेका कोई कारण नही है। रायबहादुर रमणभाई कहते है कि प्रजा इस शस्त्रको लेकर एक बार पागल हुई और अकुशके बाहर गई तो भविष्यमें वह क्या-क्या अत्याचार नही करेगी? एक बार जहाँ अंकुश हटा कि फिर वह मर्यादामें नही रहेगी। किन्तु हम तो अपने कामका आरम्भ शिक्षित-वर्गसे कर रहे है। यदि हम धीरे-धीरे आगे बढें और सुव्यवस्थासे काम ले तो उससे भयकर अव्यवस्था उत्पन्न होनेका डर नही रहता। इस शस्त्रका कोई गलत उपयोग करेगा तो वह पन्द्रह दिन भी नही चलेगा। यह निर्मल शस्त्र कैसे भी आदमीके हाथमें क्यो न जाये, उससे अत्याचार होनेकी सम्भावना नही है। जो प्रजा निर्वीर्य हो गई है और अधीर होती जा रही है उसके लिए असहयोग ही एकमात्र उपाय है। श्री वामनराव कहते है कि हमारे हाथमे जो भी शस्त्र आ जाये और हम उसीको उठा ले तो जगली कहे जायेंगे। इसलिए चाहे जैसा शस्त्र उठानेका तो हमें अधिकार ही नही है। यदि आप लोगोमें से किसीको ऐसा लगे कि मैंने बिना किसी अनुभवके और बिना विचारे ही आप लोगोको इस शस्त्रका उपयोग करनेकी सलाह दी है तो आप मेरा त्याग कर देना। बिना सोचे-समझे किसी भी शस्त्रका प्रयोग करने से तो देशमे उथल-पुथल मच जायेगी और हमारी दशा पशुओ-जैसी हो जायेगी। तिलक महाराजकी श्मशान यात्राके समय

मैंने लोगोंको ऐसा व्यवहार करते देखा जिससे मेरे मनको आघात लगा। उस समय मुझे लगा था कि लोग मर्यादाका पालन नही कर सके। उनके अवसानसे हमें जो दु:ख हुआ है उसके आँसू अव भी सूखे नही है। इसीलिए अभीतक मैंने इस वातकी चर्चा नही की। असहयोगका शस्त्र मनचाहे ढगसे चलानेकी चीज नही है। उसमें हमारी शोभा नही है। असहयोगकी पूरी तालीम लेनेके वाद ही हमे उसमें पड़ना चाहिए। असहयोग हिंसा और रक्तपातको वढानेका नही उसे कम करनेका हथियार है। कहा जाता है कि खेडा जिलेमें सत्याग्रहके वाद लूटमार और चोरीकी घटनाएँ होने लगी। लेकिन ये तो पहले भी होती थी। रंगरूटोकी भरती करते हुए मैंने कहा था कि लूटमारके किस्से तो होते ही रहेंगे। इन्हे टालनेका तो यही उपाय है कि शस्त्र रखो या फिर मेरी तरह दो-चार वस्त्रोके सिवाय और कुछ न रखो। डाकुओंके उत्पात-से वचनेके लिए सरकारका मुँह ताकना तो स्वराज्यके लिए हमारी अयोग्यता प्रकट करता है। लुटेरोंको तुम्हें प्रेमसे जीतना है। असहयोगका वृक्ष कोई एकदम नही उगता। इससे तुम्हें अनेक विभूतियाँ प्राप्त होंगी। नगरपालिकाओंका त्याग तो हमें करना नही है क्योंकि वे हमारे गाँव और नगरोके लाभके लिए है। असहयोगका सारा कार्यक्रम एकदम कार्यान्वित करनेकी वात नही है। धीरे-धीरे करना है। हमे रुकना पडेगा। लेकिन ज्यादा समयतक नही रुकना पडेगा। इसपर हमे सरकारसे अमल नही कराना है, स्वयं करना है। यदि आपको ऐसा लगे कि इस प्रस्तावपर अमल करना सम्भव नही है तो इसे नामजूर कर देना। किन्तु यदि ऐसा लगे कि हमारे देशकी नाक कट गई है और धर्मका अपमान हुआ है तो आप इस प्रस्तावका स्वागत करना, इसे स्वीकार करना; घर जाकर उसपर विचार करना और यदि ठीक लगे तो इस शस्त्रका उपयोग करना।

[गुजरातीसे]

गुजराती, ५–९–१९२०

११९. हिन्दुओंके प्रति

मैं देखता हूँ, खिलाफतके प्रश्नको लेकर हिन्दू अव भी इस असमजसमे पड़े हुए है कि वे उसमे पूर्णतः भाग ले अथवा न लें। मैंने तो कई वर्षोसे निर्णय किया हुआ है कि हिन्दुस्तानका हित हिन्दू-मुसलमानोकी हार्दिक एकतामे ही निहित है। इसी कारण सत्याग्रहके दिन अर्थात् ६ अप्रैलको[1], हिन्दू-मुसलमानोकी एकतापर विशेष जोर दिया गया था।

मैं ब्रिटिश साम्राज्यसे सम्वन्ध रखनेकी अपेक्षा हिन्दू-मुस्लिम एकताको अधिक महत्त्व देता हूँ। ब्रिटिश साम्राज्यसे सम्वन्ध रखना हिन्दुस्तानकी जनताके लिए अनिवार्य नही है। लेकिन हिन्दू-मुस्लिम एकताके विना हिन्दुस्तानका कल्याण असम्भव है।

१. १९१९।

हिन्दुस्तानकी आबादीका तीन-चौथाई भाग एक-चौथाई भागसे वैर रखकर कभी भी स्वतन्त्रताका उपभोग नही कर सकता तथा सात करोड़ मुसलमानोका उन्मूलन भी उतना ही असम्भव है।

अनेक हिन्दू मानते है कि अंग्रेजी राज्यसे हिन्दू धर्मकी रक्षा होती है; इसलिए ब्रिटिश साम्राज्यसे भले ही और नुकसान होता हो लेकिन इससे होनेवाला हिन्दू धर्मकी रक्षाका लाभ ऐसा है जिससे उस सारे नुकसानकी भरपाई हो जाती है। हिन्दुओके लिए इससे अधिक लज्जास्पद विचार मुझे तो और कोई नही लगता। यदि तेईस करोड हिन्दू सात करोड मुसलमानोंके विरुद्ध अपना बचाव करनेमें सक्षम नही है तो इसमे या तो हिन्दू धर्मका दोष है अथवा उसके अनुयायी नामर्द या अधर्मी होने चाहिए।

अंग्रेज सरकार तलवारके जोरसे हिन्दू-मुसलमानोके बीच कृत्रिम एकता बनाये रखे, इसकी अपेक्षा मै यह अधिक पसन्द करूँगा कि हिन्दू-मुसलमान परस्पर तलवारसे मुकाबला करके अपना मामला तय कर ले।

लेकिन यदि हम तलवारसे मुसलमानोका सामना न करना चाहते हो, यदि हम उनके साथ सहोदरकी तरह रहना चाहते हो, यदि हम उनके मनको चुराकर मित्रभावसे गायोकी, अपने मन्दिरोकी तथा अपनी स्त्रियोकी रक्षा करना चाहते हो तो हमें आज जो सुअवसर प्राप्त हुआ है उसका स्वागत करना चाहिए। बादमें ऐसा योग सौ वर्षतक नही आयेगा।

मियाँ और महादेवकी कभी नही पट सकती, ऐसा मानना गलत है। इतिहासमें आपको मुसलमानोके अन्यायके अनेक उदाहरण मिलेगे; लेकिन इस्लाम भले लोगोका धर्म है। मुसलमान भले लोग है। उनमें दूसरोके प्रति सम्मान-भाव नही, दया नही —ऐसा मै नही मानता। वे अपने ऊपर किये गये उपकारोका बदला देना जानते है। फलत मै तो हिन्दुओको सलाह देता हूँ कि उन्हें मुसलमान भाइयोका विश्वास करना चाहिए। मनुष्य-मात्र स्वभावत निर्मल होता है, मुसलमान भी इस नियमके अपवाद नही है।

आजतक हमने परस्पर एकता स्थापित करनेका सज्जनोचित प्रयत्न नही किया है। ऐसे प्रयत्नमें बदलेकी अपेक्षा नही होती; यह कोई बनियेका सौदा नही होता। मुसलमानोंको शर्तोंके साथ मदद देना, मदद न देनेके समान है। सात करोड लोगोका मन शर्तोंसे नही बदला जा सकता। उनका विश्वास, उनका मान तो आडे समयमें उनकी मदद करके ही प्राप्त किया जा सकता है। बदला केवल ईश्वरसे ही माँगना चाहिए। मेरा हिन्दू धर्म मुझे सिखाता है कि अच्छा कार्य करते समय फलकी आशा नही रखनी चाहिए, लेकिन अच्छे कार्यका परिणाम अच्छा ही होगा, ऐसी आशा रखनी चाहिए। यह अनिवार्य नियम है, ऐसा जानते हुए भी यदि हमे इससे उलटा दृष्टान्त दिखाई दे तो यह मानना चाहिए कि हम अपनी अल्पबुद्धिके कारण इस विरोधाभासको समझनेमें असमर्थ है। वह अपवादरूप है, ऐसा माननेका कोई कारण नही है। ईश्वर हमेशा मनुष्यको भारी कसौटीपर कसता है। जो विकट संकटमें

भी उसे नही भूलते, अर्थात् सत्यपर विश्वास करते है भगवान् उन्हीकी सहायता करता है। इसीसे उसे निर्बलोंका रक्षक कहा गया है।

लेकिन मान लीजिए कि हिन्दुओंकी सज्जनताके बावजूद मुसलमान विश्वासघात करते है तो क्या हिन्दू नामर्द बने रहें? क्या उनमे अपने धर्मकी रक्षा करनेकी शक्ति नही है? यदि हिन्दू अपने धर्मका बचाव करनेके लिए शक्ति सचय करना चाहते हो तो उस शक्तिको भी वे मुसलमानोंकी सहायता करते हुए प्राप्त कर सकेगे? क्योंकि उन्हे मुसलमानोंकी सहायता करते हुए दृढता, वीरता, सत्यनिष्ठा, आत्मत्याग, एकता तथा योजना-शक्ति आदि गुणोंको अपनाना पड़ेगा।

मेरे कहनेका आशय यह नही है कि हिन्दू अपनी निर्बलताके कारण मुसलमानोकी सहायता करे अपितु यह है कि मुसलमान इस समय न्याय-मार्गपर है, उन्होने जो साधन अपनाये है वे भी न्यायोचित है, इसी कारण एक पडोसीके नाते उनकी सहायता करना हिन्दुओंका कर्त्तव्य हो गया है। यदि वे उस कर्त्तव्यका पालन नही करते तो इससे वे गुलामीके पाशको और भी मजबूत बनायेगे तथा मुसलमानोको मित्र बनानेके इस सुअवसरको हमेशाके लिए खो देगे। वे उनकी सहायता करके परवशताको हटायेगे तथा उनको अपना बना लेगे।

यह सोचकर प्रत्येक हिन्दूका यह परमधर्म हो जाता है कि मुसलमानोकी मदद करे। क्योकि ऐसा करके वह अपने धर्म तथा हिन्दुस्तानकी सहज ही रक्षा कर सकेगा। इस कर्त्तव्यको निभाते समय उन्हे बदलेकी अपेक्षा नही करनी चाहिए और किसी किस्मका भय भी नही करना चाहिए। ऐसे शुभ या महान् परिणामकी उपलब्धि करवानेवाला यज्ञ महायज्ञ होना चाहिए। इस यज्ञमे हम अपनी पदवियो, अपनी वकालत, अपनी सासारिक शिक्षाको होम दे; इसे मै अल्प बलिदान समझता हूँ। हिन्दू बलिदान दें या न दें, लेकिन प्रत्येक हिन्दूको इस युद्धका रहस्य तो समझ ही लेना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९–८–१९२०

१२०. हमारा कर्त्तव्य

पीर महबूब शाह[1] गिर गये। पीर महबूब शाह एक शक्तिशाली पुरुष थे। और वे अदालतके सामने अपनी सफाई पेश न करनेके लिए भी बाध्य नही थे। अपने सामने सचमुच ही जेलकी विभीषिकाके आ जानेपर वे डर गये। दो वर्षकी सादी कैद भी भोगनेके लिए तैयार न हुए, माफी माँगकर जेलसे छूट आये। समर्थ व्यक्ति भी थोड़ा-सा दु:ख सहन करनेके लिए तैयार नही होता, इसका क्या अर्थ है?

हम कोई सदासे ही नामर्द नही थे। हिन्दुस्तानकी जनतामें कष्ट-सहन करनेकी पर्याप्त शक्ति थी और आज भी है। इतना होनेके बावजूद हम सामान्य कष्टसे

१. इन्हें राजद्रोहके अपराधमें सिन्धमें सजा सुनाई गयी थी; देखिए "भाषण: कालीकटमें", १८–८–१९२०।

क्यों घबरा जाते है? जेलके दुखको मैं बड़ा दुख नही मानता। ऐसी दीनताका कारण हमारी गुलामी है। एक अरसेसे हम गुलामीकी अधम स्थितिमें रहते-रहते यह भूल गये है कि सच्ची स्वतन्त्रता क्या होती है। फलत. जेलसे बाहर रहते हुए हमे मान मिले या न मिले, हमारा धर्म रहे या जाये लेकिन हम कुछ हदतक अपनी शारीरिक स्वतन्त्रताका उपभोग कर सकते है और इतने-भरसे सन्तुष्ट रहते है तथा इससे विशेषकी आकाक्षा नही रखते। परिणामत: जब शरीरको दुख देकर आत्माको मुक्त करनेकी बात आती है तब हम कायरोंके समान आचरण करने लगते है।

हम वर्षोसे गुलाम है, इतना ही नही इस गुलामीमें हम सुख-सुविधाका अनुभव करने लगे है। अग्रेजी राज्यमे कुछ-एक लोगोको ऐश-आराम करनेका अवसर मिल रहा है, इसमे कोई सन्देह नही। जिस तरह चूहा रोटीके टुकडेको देखकर लोभवश चूहेदानमें चला जाता है या मछली आटेकी गोलीको देख जालमें फँस जाती है, उसी तरह हम भी कुछ-एक व्यक्तियोको मिलनेवाले ऐश-आरामसे लुब्ध होकर अपनी स्वतन्त्रता खो बैठते है।

पीर महबूब शाहके किस्सेसे हमे पस्त होकर नही बैठना है, बल्कि जिन परिस्थितियोमे दृढ पुरुष भी अपने ध्येयसे विचलित हो जाते है उन परिस्थितियोको बदलनेके प्रयत्न हमें दूने कर देने चाहिए। हमें अपनी पराधीनावस्थाको पहचानना चाहिए और उससे मुक्ति प्राप्त करनेके लिए शारीरिक सुखको त्यागकर अर्थात् ऐश-आरामको तिलाजलि देकर जेलके दु.खोको निर्भय होकर गले लगाना चाहिए।

और फिर एक गाडीमें जुते हुए अनेक बैलोमें से एकके बीमार अथवा थक जानेपर जिस तरह अन्य बैल उसका भार वहन कर लेते है उसी तरह हमें भी एक महबूब शाहके गिरनेसे उनके बोझको अपने कन्धोंपर उठा लेनेकी क्षमता रखनी चाहिए।

हमे प्राप्त होनेवाली विजय साधारण नही है; और ठीक इसी तरह हमें जिस सरकारसे जूझना है वह भी साधारण नही है। वह गुणो और अवगुणो, दोनोका ही समाहार है। वह बहादुर है, सगठित है, उसमें ज्ञान है, योजना-बुद्धि है, आत्म-बलिदान करनेकी शक्ति है फिर वह नास्तिक है, दम्भी है एव छल-कपटसे भरी हुई है। वह प्रलोभन देती है, फुसलाती है, भय दिखाती है, वह वीर होनेके कारण वीरताको पहचानती है और उसके वशीभूत होती है। फलस्वरूप यदि हम उसे परास्त करना चाहते है तो हमें उससे अधिक बहादुर बनना होगा। वह सगठित है, हमे परस्पर उससे कही अधिक सगठित होना चाहिए, उसके ज्ञानकी अपेक्षा हमारा ज्ञान अधिक शुद्ध होना चाहिए, उसकी योजना-शक्तिको हमे लज्जित करना चाहिए, उसमे आत्म-बलिदान करनेकी जो क्षमता है उससे कही अधिक क्षमता हममें होनी चाहिए। उसकी नास्तिकताको हम अपनी आस्तिकतासे, उसके दम्भको अपनी सरलतासे, छल-कपटको सचाईसे पराजित करे; उसकी पदवियो आदिके प्रलोभनोसे दूर भागें, उसके सुधारो अथवा ऊँचे ओहदोके फदेमे न फँसें और न डायर या जॉन्सनके भयसे भयभीत हो।

'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी' यह विचार करके हमें निराश नही होना चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका अर्थ उपर्युक्त शक्तियोको सचित करना ही

है। सारी जनता इन शक्तियोको कब प्राप्त करेगी — यदि हम यह सोचने बैठ जायें तो हमारा सर चकराने लगेगा। लेकिन यदि हम सब अपने हृदयसे ही यह प्रश्न करें कि हमे वैसी शक्ति कब प्राप्त होगी तो सब बाते अपने आप आसान हो जायेगी। जो हम करते है वह दूसरे भी कर सकते है — ऐसा मानें; न मानें तो हम अहकारी ठहरेगे।

पाठक वीर बने, सच्चा बने, आत्म-बलिदानके लिए तत्पर रहे, निडर बने, ईश्वरके प्रति आस्था रखे, सरकारी इनामोके लिए न ललचाये, सरकार द्वारा स्थापित विधान परिषदोसे लुब्ध न हो — ये सब बातें मुश्किल नही है। जो इतना करेगा स्वतन्त्र हो जायेगा और उसकी छूत दूसरोको लगे बिना नही रहेगी। और यदि यह छूत जनताको लग जाये तो वह स्वतन्त्र हो जायेगी। व्यक्ति तथा समाज दोनो-परएक ही नियम लागू होता है। समस्त राष्ट्र रोगसे पीडित हो और समस्त जनता उसके उपचारसे परिचित न हो तो भी जो व्यक्ति उसके उपचारसे परिचित हो उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उपचार करे। उसी तरह गुलामीसे मुक्त होनेका जो उपचार है — वह किया जाना चाहिए, फिर चाहे उसे जाननेवाला एक ही व्यक्ति क्यो न हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-८-१९२०

१२१. तीन मोह

हिन्दुस्तानमे मै जहाँ कही भी गया वही मैने देखा लोगोमें सरकारी स्कूलो, वकालत और विधान परिषदोंके प्रति भारी मोह है। स्कूलोके बिना लड़के अशिक्षित रह जायेंगे, वकालतके अभावमें वकील भूखे मरेगे और [लोगोको] न्यायकी प्राप्ति नही होगी तथा विधान परिषदोके न होनेपर जनताका कारोबार नही चल सकेगा — जबतक लोगोके हृदयोंमें ऐसा भय बना रहेगा तबतक न तो खिलाफत और न पजाबके मामलेका ही निपटारा सम्भव है।

सरकारी स्कूलोमें जो शिक्षा दी जाती है उसे [खुद-ब-खुद] प्राप्त कर लेनेकी शक्ति हममें आनी चाहिए और डिग्रीका मोह जाना चाहिए। इसी तरह घर बैठे ही न्याय प्राप्त करनेका तरीका हमें सीखना चाहिए। सरकारी अदालतोमे हमेशा न्याय ही मिलता हो सो बात नही। न्यायाधीश और अन्य व्यक्तियोको घूस लेते भी देखा गया है तथा भूल अथवा अज्ञानसे अन्याय करते हुए भी पाया गया है। प्रिवी कौंसिल-तक में अन्याय होनेके उदाहरण मिले है। बहुत हुआ तो यही होगा कि अदालतोका त्याग करनेसे कदाचित् हम परस्पर अपने झगड़ोको न निपटा सके। वकील भी धैर्य-पूर्वक यह मानकर कि वकालतके सिवा भी जीविका प्राप्त की जा सकती है, अन्य उपायोंसे अपनी जीविका अर्जित करनेका प्रयत्न करे। सबसे अधिक मोह तो विधान

परिषदोके प्रति देखनेमे आता है, तथापि इस मोहको समझना कठिन है। जिन्हे सरकारसे न्याय मिलनेकी आशा है उनसे तो मै कुछ नही कह सकता। ऐसा व्यक्ति जो शराब पीनेमे लाभ देखता हो, उससे शराब छुडवानेका प्रयत्न करना मिथ्या है। लेकिन बहुतसे लोग ऐसे है जो सरकारके प्रति मुझसे भी कम श्रद्धा-भाव रखते है। उन्हे उसपर आरम्भसे ही श्रद्धा न थी और न आज ही है। वे लोग विधान परिषदोके प्रलोभनमे कैसे फँस जाते है, यह बात मेरी समझके बाहर है।

जबतक सरकारी वर्गका अन्त करण शुद्ध नही, उसकी नीयत साफ नही, जबतक वह पजाबके पापका प्रायश्चित्त नही करता, जबतक वह मुसलमानोके प्रति किये गये विश्वासघातके कलंकको धो नही डालता तबतक चाहे वह कितने ही अच्छे सुधार क्यो न पेश करे, मेरे लिये तो वे जहर मिले दूधके समान त्याज्य है। श्री शर्मा[1] और डा० सप्रूके नियुक्त होनेसे क्या हुआ? इसे तो मै धोखेकी टट्टी मानता हूँ। लॉर्ड सिन्हा[2] गवर्नर हो गये, इससे भी क्या होता है? यह सब तोहफे देनेवाली सत्ता कौन-सी है? इनके देनेमे उसकी नीयत क्या है? अपने-आपको और भी दृढ करना, पजाबकी घटनाओ और खिलाफतके घावोकी मरहम-पट्टी करना। घाव भीतर ही भीतर गहरा होता चला जाये लेकिन बाहरसे सूखता हुआ दिखाई दे, ऐसी मरहम-पट्टी करनेवाले तबीबको हम क्या कहेगे?

माननीय वाइसराय महोदयके भाषणकी ओर देखिए। उनका कहना है कि यद्यपि वे पजाबके सम्बन्धमे आलोचना करनेवाले व्यक्तियोको उत्तर देनेकी क्षमता रखते है तथापि उत्तर देना उचित नही समझते और अन्तिम निर्णय भविष्यके इतिहासकारके हाथमे सौपते है। माननीय वाइसराय महोदय भूल जाते है कि अन्तिम निर्णय तो वे स्वय ही दे चुके है। सर माइकेल ओ'डायरने स्वयंको निर्दोष प्रमाणित किया है, जनरल डायरने कम-अक्लीसे काम लेकर भी कोई अपराध नही किया है; अन्य अधिकारियोने तो कोई अपराध किया ही नही; कर्नल ओ'ब्रायन आदि निर्दोष ठहराये जाकर सम्मानित ओहदोपर प्रतिष्ठित है; रौलट अधिनियम कायम है — यह है पजाबके सम्बन्धमें किया गया अन्तिम निर्णय। अब इतिहास क्या कहेगा? कदाचित् भविष्यमें इतिहास उन्हें अयोग्य अधिकारी ठहरायेगा; सर माइकेल ओ'डायरको नीरोके उपनामसे विभूषित करे। किन्तु इससे क्या होता है? इससे आज कष्ट भोगनेवाली प्रजाको कौन-सी राहत मिलनेवाली है? रोगीकी मृत्युके पश्चात् यदि रोगका दूसरा और ठीक निदान हो भी जाये तो रोगीको क्या लाभ? हम तो पंजाबके लिये आज ही न्याय माँगते है। यदि हम सब एक हों तो एक भी पंजाबीका पेटके बल रेंगना हमे ऐसा लगेगा मानो समस्त हिन्दुस्तानको पेटके बल रेंगना पडा हो। पापका प्रायश्चित्त किये बिना सरकारको लोगोसे सहयोगकी अपेक्षा करनेका कोई अधिकार नही। लोग सरकारकी मेहरबानीको स्वीकार नही कर सकते।

१. राय बहादुर बी० एन० शर्मा, वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य।

२. सत्येन्द्रप्रसन्न सिन्हा (१८६४–१९२८); वाइसरायकी परिषद्के कानून सदस्य; प्रथम भारतीय गवर्नर; बम्बईमें १९१५ में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष।

आइये, अब खिलाफतके सम्बन्धमें दिये गये उनके भाषणकी जाँच करें। उन्होंने मुसलमानोकी भावनाओको मित्र-राष्ट्रोके सम्मुख व्यक्त किया; इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे उनकी माँगके औचित्यको स्वीकार करते है। लेकिन मित्र-राष्ट्र जो-कुछ करते है उसपर हमारी सरकारका कोई वश नही है, ऐसा कहकर वे अपनेको निर्दोष प्रमाणित करना चाहते है। यह असत्य है। हिन्द सरकार जानती है और सारा जगत् जानता है कि टर्की सम्बन्धी समझौतेकी शर्तोकी रचना करने तथा उन्हे स्वीकार करवानेमे ब्रिटिश सरकारका प्रमुख हाथ है। वे जानते है कि श्री लॉयड जॉर्ज चाहते तो अवश्यमेव अपने वचनका पालन कर सकते थे और मुसलमानोकी भावनाओका समादर कर सकते थे। लेकिन उनका उद्देश्य तो टर्कीका नाश करना और इस्लामकी जडोको खोखला करना था। इसके बावजूद वाइसराय महोदय यह कहकर कि खिलाफतके सम्बन्धमे हम सब-कुछ कर चुके है, अपने उत्तरदायित्वसे छुटकारा पा लेना चाहते है, इसका अर्थ तो यह हुआ कि वे जनताको भ्रमित करते है।

ऐसे अन्यायोको दूर करनेके लिये जनता असहयोग-जैसे निर्दोष अस्त्रको धारण करनेके लिए जूझ रही है, तब वाइसराय महोदय उसकी हँसी उड़ाते है। मौलाना शौकत अली तथा मुझे गिरफ्तार करनेका विचार त्यागकर उन्होंने असहयोग आन्दोलनको हँसीमें उडा देनेका निश्चय किया है। यदि इस निश्चयमे पाखण्डका पुट न होता तो मैं माननीय वाइसराय महोदयका अभिनन्दन करता। जनरल डायर द्वारा किया गया कत्लेआम जगली हथियार है, तथा किसी आन्दोलनकी हँसी उड़ाकर उसे मन्द कर देना उसीका सुधरा हुआ रूप है। और यदि जनता असहयोग न करके पेटके बल रेंगनेके अपमानको भी पी जायेगी तो नि.सन्देह उसकी हँसी होगी। जो हाथ निर्दोष जनताके रक्तसे रजित है, जिस कलमसे इस्लामका अपमान हुआ है उस हाथ और कलमसे यदि राजसिंहासन भी मिले तो हमारे लिए वह त्याज्य होना चाहिए; दीन और इज्जतको बनाये रखनेवाली जनताका यही सिद्धान्त होना चाहिए।

अतएव मुझे उम्मीद है कि जनता दृढ़तापूर्वक असहयोगका पहला कदम उठाकर आत्म-सम्मानकी रक्षा करेगी, त्रिविध मोहका त्याग करेगी और वाइसराय महोदयको हँसी उड़ानेके परिणामस्वरूप पश्चात्ताप करनेके लिये विवश करेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९–८–१९२०

१२२. मद्रास-यात्रा

मद्रासकी श्रद्धा

मै पंजाबकी यात्राका विवरण नही लिख पाया, भाई महादेव देसाईने उसका चित्रण किया है। मेरा इरादा तो सिन्धके सस्मरण लिखनेका भी था; लेकिन उतना समय नही मिल सका। सिन्धियोका उत्साह भी कम न था। कहाँ उत्साह कम था और कहाँ ज्यादा, यह कहना मुश्किल है। तथापि मद्रासके लोगोने हमेशा मेरे मनपर विलक्षण प्रभाव डाला है। मद्रासमे हम दोनो भाइयोको अग्रेजीमे भाषण देने पड़े। जहाँ मुसलमान बहुत अधिक थे वहाँ किसी-किसी स्थानपर भाई शौकत अली हिन्दुस्तानीमे बोलते और लोग अत्यन्त शान्तिपूर्वक भाषण सुना करते थे। इसका मेरे मनपर बहुत असर होता था। मद्रासकी श्रद्धाका पार नही है, लोगोमे आन्तरिक शुद्धताके बहुत अधिक दर्शन होते है।

फिर भी निराशा

इतना होनेपर भी हमारी यात्राका तात्कालिक फल कुछ खास मिला हो सो नही कहा जा सकता। सभी जगहोपर कुछ वकीलोने वकालत बन्द कर दी है, किसी-किसीने अपने बच्चोको स्कूलसे उठा लेनेका निश्चय किया है, कुछ-एकने अपने ओहदोको छोड दिया है, कुछ लोगोने विधान परिषदोमे जानेका विचार त्याग दिया है, तथापि जनताकी भक्तिको देखते हुए यह नतीजा बहुत कम है।

कारण

कारण तुरन्त समझमे आ सकते है। अग्रगण्य व्यक्तियोमे से कितनोंको ही असहयोगमे विश्वास नही है। जिन्हे विश्वास है उनमें आत्मत्याग करनेकी शक्ति नही है। इनमे तीसरा एक वर्ग है जो झूठा है। वह कहता कुछ है और मानता कुछ है। नेताओकी ऐसी स्थिति होनेसे जनताका तुरन्त ही कोई कदम न उठाना स्वाभाविक है। इस अनुभवसे पता चलता है कि असहयोगरूपी शुद्ध आन्दोलनसे वातावरण शुद्ध होगा, पाखण्ड कुछ हल्का होगा और समाजका मैल उतराने लगेगा। इतनी शुद्धिके बिना राष्ट्रकी उन्नति होना असम्भव है।

मौलाना शौकत अली

इस यात्राके दौरान मुझे भाई शौकत अलीका जो परिचय मिला वह समस्त निराशाको दूर करनेवाला है। उनकी दृढता और सरलता, उनकी सचाई, उनका ईमान, अपने प्रति और लोगोके प्रति उनका अनन्य विश्वास, उनकी उदारता, सख्यभाव, शौर्य और नम्रता — ये सब गुण उनके जीवनको उद्भासित कर रहे है। मुझे विश्वास है कि हिन्दुस्तानके प्रति उनका प्रेम गहन है। उनकी अभिलाषा है कि हिन्दू-मुसल-

मान सदैव सहोदरके समान रहें। वे मुसलमानोसे निजी तौरपर और सार्वजनिक रूपसे यही कहते हे कि वे हिन्दुओका मन हरनेके लिए जितनी कुर्बानी दे सके, दें। यदि कोई हिन्दू मुसलमानकी भावनाओंको ठेस पहुँचाये तो भी उसे अदालतमें नही जाना चाहिए और पंचकी मार्फत अपना झगड़ा तय करना चाहिए।

हमारा मतभेद

हमारे बीच एक मतभेद है और उसे हम आरम्भसे ही जानते हैं; उसे जानते हुए भी हम सगे भाइयोके समान एक साथ रह सकते हैं। उसका कारण यह है कि हम दोनों एक दूसरेके प्रति तथा अपने आदर्शके प्रति पूर्णतया वफादार हैं। उनकी मान्यता है कि शत्रुकी हत्या की जा सकती है और उसके लिए भेदसे भी काम लिया जा सकता है। मेरी धारणा है कि शत्रुको मारना, मनुष्य-स्वभावके पतनका परिचायक है, उसकी हीनताका सूचक है और किसी भी अवसरपर भेदसे काम लेनेसे सच्चे लाभकी प्राप्ति नही होती। भेदसे काम लेनेवालेकी आत्माका हनन होता है। तथापि हम साथ आ मिले हैं क्योकि वे समझ गये हे कि प्रजाके पास शस्त्रबल है नही, उसमे एकता, दृढता, शौर्य, आत्मत्याग आदि गुणोका अभाव है और जबतक उसमें ये गुण नही हे तबतक वह तलवार उठा ही नही सकती। उनका कहना है कि उनकी मोटरके लिए अच्छी सड़ककी जरूरत होती है; किन्तु मेरा छकडा तो हर परिस्थितिमे चल सकता है। इसलिए फिलहाल उन्होने मेरे रास्तेको ही पसन्द किया है। दोनों रास्तोको अपनाते समय एक निश्चित प्रकारकी सामग्रीकी आवश्यकता होती हैं, इस कारण मेरे मार्गको अपनानेमे उन्होने सकोच नही किया है, इतना ही नही बल्कि उस मार्गको अपनानेके बाद सफलता प्राप्त करनेके लिए जिस योग्यताकी जरूरत होती है, वे उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं और लोगोको समझा-बुझा रहे हैं। निष्कपटभावसे वे लोगोसे कहते हैं कि वर्तमान परिस्थितियोमें गाधी द्वारा सुझाया गया मार्ग ही श्रेयस्कर है और उनकी दृढताकी बदौलत ही मुसलमान सम्पूर्ण शान्ति बनाये हुए हे।

उनका प्रभाव

मुसलमानोपर उनका प्रभाव जोरदार है। उनके प्रति मुसलमानोका भाव निर्मल और अलौकिक है। यदि हम कहें कि वे मुसलमानोके प्राण हे तो इसमे कोई अतिशयोक्ति न होगी।

सरकारका दुर्भाग्य

यह सरकारका दुर्भाग्य है कि वह ऐसे पुरुषको अपना शत्रु मानती है। उन्होने सत्रह वर्षतक सरकारकी नौकरी की है। इस दौरान वे अनेक अंग्रेजोके सम्पर्कमे आये हे। जो सरकार ऐसे बहादुर व्यक्तिको अपने पक्षमे नही रख सकी, वह सरकार कैसी होनी चाहिए? उनके मनमे सरकारके प्रति वैरकी खातिर वैर नही है। यदि सरकार बालिश्त-भर झुकती है तो वे गज-भर झुकने वाले व्यक्ति हे। मात्र अपने

दीन अथवा अपनी कौमका अपमान उन्हे सह्य नही है। पाखण्डसे वे दूर भागते है। ऐसा व्यक्ति हिन्दुस्तानसे बाहर होता तो किसी भी राज्यका सेनापति हो सकता था, उसे जो सरकार गिरफ्तार करनेकी बात सोच सकती है उस सरकारके साथ सहयोग करना पाप ही है।

गुजरातियोंका प्रेम-भाव

भाई शौकत अलीके अनुभवसे जिस तरह मेरे हृदयकी समस्त निराशा दूर हो जाती है उसी तरह मद्रासके गुजराती भाइयोके प्रेमको देख मुझे हर्षकी अनुभूति होती है। देशके प्रत्येक भागमे अन्य कौमोके समान गुजरातियोने भी खिलाफतके कार्यमे भाग लिया है। कालीकट और मगलौरमे तो उन्होने कमाल ही कर दिया। इन दोनो स्थानोपर गुजरातियोने प्रमुख भाग लिया। वहाँ हम दोनोंको एक भाटिया सज्जनके यहाँ ठहराया गया था। यह देख मै अत्यन्त प्रसन्न हुआ व आश्चर्यचकित रह गया। ये दोनो परिवार धर्महीन हो गये हो, सो बात नही; वे अपने वैष्णव-धर्मका पालन कर रहे ह तथापि मुसलमानको अपने घर ठहरानेमे उन्हें कोई दिक्कत महसूस न हुई। इसके अलावा वे उन मुसलमानोकी, जो अपेक्षाकृत कम समझदार है, मदद कर रहे है। बहनोने भी इस कार्यमे दिलचस्पी ली थी। मगलौरसे गाडी सबेरे जल्दी रवाना होती है। हम स्टेशनपर पहुँचे तब एक गुजराती बहन प्लेटफार्मपर कुकुम, अक्षत, श्रीफल और मिस्रीका कूजा लिये खड़ी थी। उन्होंने हमारा धर्मभाईके रूपमे स्वागत किया, हमे तिलक लगाया, दोनोके हाथमें नारियल व मिस्रीकी डली रखी और हमारी सफलताकी कामना करते हुए आशीर्वाद दिया। इस अवसरपर भाई शौकत अलीका प्रफुल्लित चेहरा देखने योग्य था। इस तरह गुजराती लोग दूर देशमे भी विवेक, मर्यादा, प्रेम आदि गुणोंका परिचय देते रहते है और सार्वजनिक जीवनमें भी भाग लेते है—यह सब देखकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई।

स्वदेशी

गुजराती स्वदेशीको भी सुन्दर ढगसे प्रोत्साहन दे रहे है। कालीकटमे छोटी-छोटी लड़कियोने भी सूत कातना सीखा है। इन लड़कियोंने चरखा चलाते हुए हमें चरखेका एक मधुर गीत भी सुनाया। कालीकट व कोचीनमे गुजरातियोमें जो-कुछ जागृति आई है तथा इस आन्दोलनको जो प्रोत्साहन मिला है, वह एक भाईके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप ही हुआ है। कुछ-एक गुजरातियोको, जो ऐश्वर्य सम्पन्न है, खादी पहने देख मुझें बहुत हर्ष हुआ।

एक समझदार गुजराती

अपने प्रांतसे दूर रहते हुए भी गुजराती अत्यन्त सफलतापूर्वक स्वदेशी आन्दोलनको चला रहे है—यह सुनकर सब लोग भले ही गर्वका अनुभव न करे, लेकिन मै जो घटना सुनाने जा रहा हूँ उसे सुनकर, मुझे विश्वास है, सब लोग हर्षसे पुलकित हो उठेंगे। कालीकटमे एक मलाबारी भाईने मेरे भाषणका अनुवाद किया, उससे लोगोको

पूरी तरह सन्तोष न हुआ। मेरे भाषणको समझनेवाले लोगोने उसमें भूलोंका दर्शन करवाया; जब भाई शौकत अलीकी वारी आई तब भाई मथुरादास अनुवाद करनेके लिए तैयार हुए। उनसे सब कोई परिचित थे। श्रोताओने तालियाँ बजाकर उनका स्वागत किया तथा प्रसन्नतापूर्वक उनके अनुवादको सुना। उन्होने भाई शौकत अलीके अंग्रेजी भाषणका मलयालममे इतना सुन्दर अनुवाद किया कि सबके मनको मोह लिया। कहते हैं कि भाई मथुरादासने अंग्रेजीके एक-एक भावको मलयालममें उतारा। वे अंग्रेजी, मलयालम व गुजराती तीनों भाषाएँ अच्छी तरह जानते है। उन्होने कोचीनके किसी सामान्य स्कूलमे थोडी-सी शिक्षा प्राप्त की थी। बाकी उन्होने जीवनमें प्राप्त होनेवाले विभिन्न अनुभवोसे ही सीखा है। वे स्वयं व्यापारी हैं, लेकिन राजनैतिक विषयोंका उन्हें अच्छा ज्ञान है। देशके इस भागमे रहनेवाले अधिकाश गुजराती दो तीन पीढ़ीसे कुटुम्ब सहित यहाँ आ बसे है। बहुतसे तो वही पैदा हुए हैं। वे समय-समयपर अपने वतन आते-जाते रहते हैं और इस प्रकार बराबर उससे सम्बन्ध बनाये हुए हैं। वे वहाँके लोगोसे कटे-कटे नही रहते बल्कि उनसे मिल-जुलकर रहते हैं। वहाँपर मुख्य रूपसे कच्छ-काठियावाड़के भाटिया तथा व्यापारी लोग व्यापार करनेके लिए जा बसे है।

हमारी दैनन्दिनी

हमारी यात्राकी दैनन्दिनी निम्नलिखित है:

१० अगस्त	बम्बई छोडा
१२-१३ ,,	मद्रास
१४ ,,	अम्बुर तथा वेल्लोर
१५ ,,	मद्रास
१६ ,,	तजौर तथा नागौर
१७ ,,	त्रिचिनापल्ली
१८ ,,	कालीकट
१९ ,,	मंगलौर
२० ,,	सेलम
२१ ,,	सेलम और बंगलौर
२२ ,,	मद्रास
२३ ,,	बेजवाड़ा
२५ ,,	बम्बई
२६ ,,	अहमदाबाद

हम लगातार २४ घंटे मद्रासके अतिरिक्त और किसी स्थानपर न रह सके और मद्रास भी इसी कारण रह पाये क्योकि हम पहले-पहल वही गये थे। बादमें तो केन्द्रस्थान होनेके कारण हम आते-जाते दो-चार घटे वहाँ रुकते। सेलमसे बगलौरकी १२५ मीलकी यात्रा हमे मोटरमे तय करनी पडी थी। इस रफ्तारसे यात्रा करना

हमारे लिए कुछ अधिक हो जाता था, लेकिन निमन्त्रण बहुत जगहोंसे मिले थे। इनकार करना उचित नही लगता था और फिर यह लोभ भी था कि हम जितनी दूरतक अपना सन्देश पहुँचा सकें उतना ही अच्छा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-८-१९२०

१२३. भाषण: गुजरात राजनीतिक परिषद्‌में बहिष्कारपर[1]

२९ अगस्त, १९२०

बहिष्कारको मैं विघ्नरूप मानता हूँ। शायद आप मेरी बात नही समझेंगे। हमारे ऊपर जो अन्याय हुए हैं, उनके विषयमे काफी कहा जा चुका है और उस सम्बन्धमें दो मत भी नही हैं। इस बातपर भी सब लोग सहमत हैं कि उस मामलेमें हमे कोई-न-कोई कदम उठाना चाहिए। इसके लिए हमारे पास असहयोगका शस्त्र है। तो फिर बहिष्कारका यह नया शस्त्र और किसलिए? बहिष्कारके सम्बन्धमें मैं धार्मिक दृष्टिसे जिन निर्णयोपर पहुँचा हूँ और उसमे मुझे जो नैतिक बाधाएँ दिखाई पड़ती हैं उन्हे मैं आपके सामने नही रखना चाहता। इस समय तो मैं आपके समक्ष इतना ही सिद्ध करना चाहता हूँ कि बहिष्कारकी नीति अव्यावहारिक सिद्ध हो चुकी है। बगभंगके बाद बहिष्कार आन्दोलन बगालमें पहले जितने जोशके साथ नही चलाया जा सका। भाई जीवनलाल,[2] श्री० बैप्टिस्टा और गगाधरराव देशपाण्डे[3] आदि सत्याग्रहके विरुद्ध और बहिष्कारके पक्षमे थे। उन्हे बहिष्कारका मोह था। अहमदनगरमे हुई परिषद्‌मे उन्होने बहिष्कारके लिए लोगोसे एक प्रतिज्ञा भी लिवाई थी। मेरे मतके खण्डनमे उन्होने वक्तव्य भी दिये थे। तीन माहके भीतर ही बहिष्कार शुरू होगा, ऐसी घोषणा होनेके बावजूद उसपर अमल नही हुआ। हसरत मोहानी-जैसा कर्मठ कार्यकर्त्ता भारतमें दूसरा शायद ही कोई हो। दिल्लीमें असहयोगके सम्बन्धमे हुई सभामे मैंने उनसे बड़ी प्रार्थना की और बहिष्कारका प्रस्ताव पेश न करनेके लिए समझाया। लेकिन मुसलमानोपर उनका ऐसा प्रभाव था कि मेरी बात कौन सुनता? मेरी बात उन्होने सुनी सही, कुछ लोगोको ऐसा भी लगा कि मेरे कथनमें कुछ तथ्य है। किन्तु अन्तमे बहिष्कारका प्रस्ताव पास हो गया। किन्तु उसपर अमल नही हो सका। कारण वे तो उसपर आशिक थे और आशिक,

१. परिषद्‌के तीसरे दिन श्री ग० वा० मावलंकरने अंग्रेजी मालके बहिष्कारका प्रस्ताव पेश किया था।

२. बैरिस्टर; अहमदाबादके एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, जिन्होंने सन् १९१५ में गाधीजीको सत्याग्रह आश्रमकी स्थापनामें मदद दी थी।

३. गगाधरराव बालकृष्ण देशपाण्डे; कर्नाटकके प्रसिद्ध राजनीतिक कार्यकर्त्ता जो 'कर्नाटक केसरी'के नामसे प्रसिद्ध हैं।

माशूकके सिवा किसी औरको क्यो देखेगा ? अन्तमे यह तो हो सकता है कि माशूकसे उसका संयोग न हो लेकिन दूसरी ओर तो उसका ध्यान नही ही जाता। हसरत मोहानीने मुसलमान व्यापारियोको समझाया और कहा कि आप लोग अंग्रेज पेढियोका माल न मँगाये। किन्तु उन व्यापारियोने करोडो रुपयोके लाभकी हानि स्वीकार नही की। कलकत्ता और बम्बई आदि नगरोमे मुझे अनेक लोगोसे मिलनेका अवसर आया है। और मैने देखा है कि बहिष्कार हमारे लिए अशक्य है। अन्तमे अब तो हसरत मोहानीने भी बहिष्कारका अपना आग्रह छोड दिया है। इस तरह मैने इस नीतिकी निष्फलता बार-बार देखी है। तो फिर इस विषम स्थितिसे हम क्यो नाता जोड़े रहे ? गुजरातकी जनताने असहयोग करनेका प्रस्ताव किया है, फिर बहिष्कारके प्रस्तावकी क्या आवश्यकता रह जाती है ? यदि बहिष्कारकी नीति उचित होती तो मैने उसे कबका स्वीकार कर लिया होता। मै मानता हूँ कि लंकाशायर ही इग्लैडका [प्रधान] मन्त्री है। यदि हम उसे पोषण न दे तो वह कमजोर हो जाये — यह बात भी सही है। किन्तु इसमे वैर-भाव है, क्रोध है; इसलिए मै उसका त्याग करता हूँ। उसमें अधर्म है केवल इसीलिए उसका त्याग करता हूँ ऐसी बात नही। उसके त्यागका एक और कारण यह है कि वह अव्यावहारिक है। इसके सिवाय एक दूसरी बात यह है कि आप लोगोंने स्वदेशीके सिद्धान्तको स्वधर्मके रूपमे स्वीकार किया है। तो फिर आप बहिष्कारको कैसे स्वीकार कर सकते है ? स्वदेशीकी भावनाको समझनेवाला जापान या अमेरिका या इग्लैडको छोडकर और जो दूसरे देश है उनके मालका भी उपयोग कैसे कर सकता है ? क्या आप बहिष्कारके द्वारा इंग्लैडको सजा देना चाहते है ? लेकिन सजा इस तरह नही दी जा सकेगी। सजा तो तभी होगी जब आप इग्लैडका सारा माल वर्ज्य समझें। किन्तु सारे मालका बहिष्कार तो कैसे हो सकता है ? अंग्रेजी उत्तम पुस्तकोको तो मै अवश्य ही पवित्र स्थानमे रखूँगा और उनकी पूजा करूँगा। अलबत्ता, कागज मेरे देशमें बनता हो फिर भी मै किसी दूसरे देशमे बने कागजपर लुभाऊँ तो यह बात मेरे लिए लज्जाजनक होगी। भारतमें किसी दिन तलवार खटकनेका मौका आये और वातावरण विषाक्त हो जाये तो उस समय आप बहिष्कार करना। लेकिन विचार कीजिए — कोई सेनापति अपनी सेनाको तैयार किये बिना लडनेके लिए नही जाता। बहिष्कारके लिए आपने क्या तैयारी की है ? अन्धकार और प्रकाशमे जितना अन्तर है उतना ही असहयोग और बहिष्कारमे है और रहेगा। मै आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप बहिष्कारकी बातको अस्वीकार कर दें।[1]

[गुजरातीसे]

गुजराती, १२-९-१९२०

१. प्रस्तावपर लोगोंकी राय ली गई और वह नामंजूर हो गया।

१२४. खद्दरकी प्रतिज्ञा[1]

श्रावण कृष्ण २, सं० १९७७ [३१ अगस्त, १९२०]

मै आजसे प्रतिज्ञा करता हुं की मै हाथसे कते हुए सूतमे से बुनी हुई खदरको हि मेरे उपयोगके लीये खरीद करुगा। टोपी और साकासको[2] इस प्रतिज्ञामें वधन नहि है।

मूल प्रति (जी० एन० २५१४) की फोटो-नकलसे।

१२५. दमनके बदले उपहास

असहयोग आन्दोलन परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयको बहुत नागवार गुजर रहा है और इसे समाप्त करनेके लिए उन्होंने दमनके वदले मजाक उड़ानेका तरीका अपनाया है। वैसे मैं उन्हें यह तरीका अपनानेके लिए हार्दिक रूपसे बधाई देता लेकिन पंजाव और खिलाफतके मामलेपर उनका रुख इतना उद्धत और अहंकारपूर्ण रहा है कि ऐसा करना सम्भव नही रह गया है। अगर असहयोगपर उनके भाषणको सन्दर्भसे अलग करके पढा जाये तो उसमे आपत्तिके लायक कोई वात नही है। यह वर्वरताकी स्थितिसे सभ्यताकी स्थितिकी ओर अग्रसर होनेका लक्षण है। अपने विरोधीका उपहास करना सभ्य राजनीतिका एक माना हुआ तरीका है। और अगर वरावर इसी तरीकेको जारी रखा जाये तो पजाबके अधिकारी जैसा वर्वर व्यवहार करते रहे हैं उसकी तुलनामे यह स्थिति वहुत अच्छी रहेगी। उन्होने इस आन्दोलनके सम्वन्धमें श्री मॉण्टेग्युके वक्तव्यको जो अर्थ दिया है, उसमें भी आपत्तिके लायक कोई चीज नही है। इसमे कोई सन्देह नही किया जा सकता कि अगर सचमुच हिंसाका विस्फोट हो तो किसी भी सरकारको उसे दवानेके लिए पर्याप्त शक्तिका उपयोग करनेका अधिकार है।

लेकिन मुझे दु:खके साथ कहना पडता है कि इस आन्दोलनका मखौल उड़ानेके उनके इस प्रयत्नको जब हम पजाव और खिलाफतके सम्वन्धमे उनकी भावनाओको ध्यानमें रखते हुए देखते हैं तो लगता है कि परमश्रेष्ठने जरूरत पड़नेपर ही इस

१. इस प्रतिज्ञाका पाठ हिन्दी और अंग्रेजी दोनोंमें गांधीजीकी लिखावटमें है। इसमें शब्दोंके गांधीजी द्वारा दिये गये हिज्जोंको ज्यों-का-त्यों रखा गया है। मूल प्रतिपर गांधीजीके साथ-साथ इन लोगोंके हस्ताक्षर भी हैं: चिमनदास ईसरदास, कुन्दनसिंह गंगासिंह मखीजानी, रामचन्द ताराचन्द मरजानी, पोहूमल हासोमल भूटानी, हरिराम मोहनदास रेलवानी, अलीमचन्द उद्धाराम जेन्दानी और रुक्मिणीबाई।

२. मोजे।

नेकीका सहारा ले लिया है। उन्होने आतंक और त्रास फैलानेके तरीकेको तिलाजलि नही दी है; लेकिन वे इस आन्दोलनको इतने खुले ढगपर और सचाईके रास्तेपर चलते देखते हैं कि इसे हिंसापूर्ण दमनके सहारे समाप्त करनेके किसी भी प्रयत्नका मतलव केवल यही नही होगा कि स्वय वाइसराय महोदय उपहासके पात्र वन जायेंगे वल्कि यह भी होगा कि सही विचार रखनेवाले सभी लोग उनकी भर्त्सना करेंगे।

लेकिन अव हम जरा उन विशेषणोंपर विचार करे जिनका उपयोग परमश्रेष्ठने इस आन्दोलनका मजाक उडाकर, इसे समाप्त करनेके लिए किया है। ये विशेषण हैं — "निरर्थक", "नासमझी-भरा", "मूलतः वेजान", "अव्यावहारिक" और "कल्पना-लोककी चीज"। उन्होने विशेषणोकी इस मालाका अन्त आन्दोलनको "मूर्खतापूर्ण योजनाओमे भी सबसे मूर्खतापूर्ण योजना" वताकर किया है। इस आन्दोलनने परम-श्रेष्ठको इतना अधीर बना दिया है कि उन्होने असहयोगकी हास्यास्पदता दिखानेके लिए अपना सारा शब्द-ज्ञान इस्तेमाल कर डाला है।

लेकिन परमश्रेष्ठका दुर्भाग्य कहिए कि जिस प्रकार दमन करनेसे इस आन्दोलनका और अधिक पनपना निश्चित है उसी प्रकार मखौल उडानेसे भी यह वरावर वढेगा। कोई भी जीवन्त आन्दोलन उस आन्दोलनको चलानेवाले लोगोके अधैर्य, अज्ञान या आलस्यके कारण ही मर सकता है। जिस आन्दोलनके संचालक कर्मठ लोग हो वह आन्दोलन कभी "वेजान" हो ही नही सकता, और मै दावा करता हूँ कि असहयोग समितिके सदस्य ऐसे ही कर्मठ लोग हैं। और "अव्यावहारिक" तो यह है ही नही, क्योकि हम देखते हैं कि हर कोई यह स्वीकार करता है कि अगर जनताने इसके प्रति पूरे उत्साहका परिचय दिया तो यह आन्दोलन अपना लक्ष्य सिद्ध करके रहेगा। साथ ही यह भी विलकुल सत्य है कि अगर जनताने इसके प्रति उत्साह नही दिखाया तो सभी लोग इस आन्दोलनको मात्र कल्पनाकी चीज ही वतायेंगे जो व्यवहार्य नही है। अव यह राष्ट्रका दायित्व है कि वह सगठित असहयोग करके इसका कोई प्रभाव-कारी उत्तर दे, और आज जो लोग इस आन्दोलनका उपहास कर रहे हैं उन्हे इसका सम्मान करनेको मजवूर कर दे। उपहास भी दमनके समान ही है। दोनो ही जव अपने इरादेमे नाकामयाव होते हैं तो जिनका दमन या उपहास किया जाता है, तव ये उनके प्रति सम्मान-भावमे वदल जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-९-१९२०

१२६. वाइसरायकी अधिघोषणा

अब मुझे यह विश्वास नही रहा कि परमश्रेष्ठमे भारतके वाइसरायके ऊँचे पद-पर बने रहनेकी ईमानदारी और योग्यता है; इसलिए हो सकता है कि अब मै उनके भाषणोको अपने मनमे पूर्वग्रह रखकर पढने लगा हूँ। लेकिन परमश्रेष्ठने कौसिलके सत्रका उद्घाटन करते हुए जो भाषण दिया, उससे उनके सोचनेका तरीका कुछ ऐसा जान पडता है कि किसी भी आत्मसम्मानी व्यक्तिके लिए उनसे या उनकी सरकारसे कोई सम्बन्ध कायम रखना असम्भव हो गया है।

उन्होने पजाबके सम्बन्धमे जो बाते कही, उनका मतलब है इस मामलेमे लोगोकी शिकायत दूर करनेसे साफ इनकार करना। उनकी इच्छा है कि हम "अपना ध्यान निकट भविष्यकी समस्याओपर केन्द्रित करे"। हमारे लिए तो "निकट भविष्यकी समस्या" यही है कि सरकारको पजाबके मामलेमे पश्चात्ताप करनेके लिए विवश कर दें। लेकिन इसका कोई लक्षण दिखाई नही देता। उलटे, परमश्रेष्ठ अपने आलोचकोको उत्तर देनेसे भी कतरा रहे है, जिसका मतलब यह है कि उन्होने भारतके सम्मानसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुत-से महत्त्वपूर्ण मामलोमे अपने विचार बदले नही है। वे "इन सवालोको इतिहासके निर्णयपर छोडकर सन्तुष्ट" है। मेरा तो खयाल है कि इस तरह-की भाषाका प्रयोग भारतीय मानसको और भी क्षुब्ध करनेके लिए ही किया जाता है। जिन लोगोके साथ अन्याय किया गया है और जो अब भी ऐसे अधिकारियोके पैरो तले कुचले जा रहे है जिन्होने अपने ही आचरणसे स्वयको किसी भी महत्त्व और दायित्वका पद सँभालनेके लिए सर्वथा अयोग्य सिद्ध कर दिया है, उन लोगोके लिए इतिहासके अनुकूल निर्णयका भी क्या उपयोग है? सहयोगके लिए जो दलीले दी गई है उनके बारेमे अगर कमसे-कम कहा जाये तो पजाबके साथ न्याय न करनेके सकल्प-पर डटी सरकारका यह एक फरेब ही है। जो रोगी असह्य पीडासे छटपटा रहा हो उसके सामने बहुत ही सुस्वादु व्यंजन परोसनेसे क्या उसका दुख दूर हो जायेगा? अगर कोई वैद्य उसे पीडासे मुक्त किये बिना इस तरह ललचाता हो तो इसे क्या वह अपना मजाक उडाना नही मानेगा?

खिलाफतके सवालपर परमश्रेष्ठका रुख शायद इससे भी बुरा है। जिस व्यक्तिके हाथोमें इस राष्ट्रका भाग्य सौप दिया गया है, वह कहता है "शान्ति-सम्मेलनमे सरकारसे जहाँतक बन पडा, उसने भारतीय मुसलमानोका दृष्टिकोण स्वीकार करानेके लिए पूरा जोर डाला है। लेकिन हमने उनके लिए जो प्रयत्न किये, उनका कोई खयाल न करते हुए वे हमे इसलिए असहयोग आन्दोलनकी धमकी दे रहे है कि मित्र-राष्ट्रोके लिए भारतीय मुसलमानोकी माँगे स्वीकार करना सम्भव नही हुआ।" यह बात अगर झूठी नही तो निश्चितरूपसे बहुत भ्रामक तो है ही। परमश्रेष्ठ जानते है कि शान्ति-सन्धिकी शर्ते मित्र-राष्ट्रोने तय नही की। वे जानते है कि इन शर्तोके

प्रमुख रचयिता श्री लॉयड जॉर्ज हैं, और जॉर्ज महोदयने कभी इस जिम्मेदारीसे इनकार नही किया है। उन्होने कुस्तुन्तुनिया, थ्रेस और एशिया माइनरके धन-धान्यपूर्ण प्रसिद्ध भू-भागके सम्बन्धमें भारतीय मुसलमानोको शपथपूर्वक जो वचन दिया था उसका कोई खयाल न करते हुए आश्चर्यजनक उद्धतताके साथ इन शर्तोको उचित ठहराया है। जब इन शर्तोके पीछे सिर्फ ग्रेट-ब्रिटेनकी ही प्रेरणा रही है तो इनकी जिम्मेदारी मित्र-राष्ट्रोपर डालना ठीक नही। जब हम इस बातकी ओर ध्यान देते है कि वाइस-राय महोदय मुसलमानोंके दावेको न्यायसम्मत मानते है तो उनका अपराध और भी बडा प्रतीत होता है; और इसे वे न्यायपूर्ण तो मानते ही है, क्योकि अगर वे ऐसा नही मानते तो फिर उसे "स्वीकार करानेके लिए जोर" क्यो डालते?

मेरे विचारसे परमश्रेष्ठके पजाबसे सम्बन्धित इस भाषणके कारण इस राष्ट्रके लिए यह और जरूरी हो गया है कि वह सरकारको इन दोनो अन्यायोंका निराकरण करनेको बाध्य करनेके लिए कोई रास्ता ढूंढे। तथाकथित सुधारोका लाभ तो बादमें देखा जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–९–१९२०

१२७. डिप्टी कमिश्नरकी हत्या

श्री विलोबीकी हत्या एक बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। स्वभावत जनसाधारणमें इस हत्यासे बड़ा रोष फैला है और मृत व्यक्तिके प्रति सहानुभूति जाग्रत हुई है। यह हत्या एक निर्मम, विवेकशून्य और धर्मान्धतापूर्ण कृत्य था। इससे खिलाफतके उद्दश्यका अहित ही हुआ है, हित नही। श्री विलोबीका टर्कीके सुलहनामेमे कोई हाथ नही था। लगता है, वे स्वय एक लोक-प्रिय अधिकारी थे। किसी निर्दोष व्यक्तिको, उसकी जातिके किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किये गये अपराधके कारण मार डालना पागलपनके सिवा और क्या कहा जा सकता है? तथापि इस तथ्यको स्वीकार करना ही पडेगा कि अनेक मुसलमान इस हत्याको शहीदोको शोभा देनेवाला एक पुनीत कार्य मानेंगे। मैने मुसलमानोको बडे शान्त भावसे ऐसा कहते सुना है कि इस प्रकारकी हत्याएँ न केवल उचित है बल्कि श्रेयस्कर भी है। मै ऐसे अनेक हिन्दुओको जानता हूँ जिनका कहना है कि यह बम फेंकनेका ही परिणाम था कि बगालका फिरसे एकीकरण[1] हो पाया। मुझे मालूम है कि बहुतसे लोग ढीगराको[2] शहीद मानते है। सिन फैन दलवाले अपने देशको अंग्रेजोसे आजाद करानेके लिए खुले तौरपर हत्याएँ और अन्य

१. बंगालका विभाजन १९०५ में हुआ था और दिसम्बर १९११ में बंगालके दोनों भागोंको पुनः एक कर दिया गया था।

२. मदनलाल ढींगरा, पंजाबका एक विद्यार्थी, जिसने १ जुलाई, १९०९ को राष्ट्रीय भारतीय संघ द्वारा लन्दनमें आयोजित एक स्वागत समारोहमें भारत सचिवके राजनीतिक सहायक सर कर्जन वाइलीको गोली मार दी थी।

प्रकारके हिंसात्मक कृत्य भी करते हैं। वे लोग ऐसी हत्या या आगजनी करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको वीरात्माके रूपमें देखते हैं। मुझे आशंका थी कि खिलाफतको लेकर कहीं हमारे बीच भी ऐसी ही बातें न होने लगें। यही कारण था कि मैंने इसके सम्बन्धमें शान्तिमय असहयोगका मार्ग सुझाया। मेरी रायमें असहयोगका जो सक्रिय और खुले तौरपर प्रचार किया गया है, उसीका यह परिणाम है कि इस देशमें हत्याएँ और कत्ल नहीं हो रहे हैं। श्री विलोबीकी हत्यासे यही प्रमाणित होता है कि अहिंसा और असहयोगका प्रचार इक्के-दुक्के धर्मान्धोंको नियन्त्रित करनेमें समर्थ नहीं हो पाया है और यह कोई आसान काम भी नहीं है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय एक ऐसी शिकायत है जिसकी जड़ गहरी है, और जो समयके साथ-साथ विस्मृत होनेके बजाय और भी गहराईमें उतरती चली जायेगी।

मैं देखता हूँ कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया'ने इस हत्याके लिए खिलाफत-सम्बन्धी प्रचारको जिम्मेदार ठहराया है और इस हत्याको उस आन्दोलनका "पहला फल" बताया है। मुझे लगता है कि इस पत्रने भाषाके प्रयोगमें बड़ी सावधानी बरती है। वह "इस आन्दोलनके कुछ पहलुओं" से ही इस अपराधका सम्बन्ध जोड़ता है। परन्तु मैं कहूँगा कि उस दुर्भाग्यपूर्ण हत्याके लिए इस आन्दोलनका कोई भी पहलू जिम्मेदार नहीं है। इस निर्मम कृत्यकी प्रेरणा ब्रिटिश मन्त्रियों द्वारा किये गये भीषण अन्यायसे ही मिली है।

'टाइम्स ऑफ इंडिया'का यह कथन कि यह दुःखद घटना "इस्लाम धर्मके लिए एक विशेष चेतावनी है, क्योंकि सभी विचारवान मुसलमानोंको समझना चाहिए कि उनके धर्मकी प्रतिष्ठा खतरेमें है", अपेक्षाकृत अधिक सुदृढ़ आधारपर स्थित है। मैं भी इस चेतावनीपर बल देना चाहूँगा। खिलाफत आन्दोलनके प्रत्येक कार्यकर्त्ताका यह विशेष कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह असहयोगको सफल बनानेकी शर्तके रूपमें उसे हिंसासे पूरी तरह अलग रखनेपर अब और ज्यादा जोर दे। मुझे पूरा विश्वास है कि निर्दोष व्यक्तियोंकी हत्याके विरुद्ध 'कुरान'की आयतोंसे भी प्रमाण दिये जा सकते हैं। अन्यायीको न्याय देनेपर मजबूर करनेके लिए उसके प्रति हिंसात्मक व्यवहार किया जाये, यह बात मैं भी समझ सकता हूँ। दुर्भाग्यसे आज सभ्य संसारने इसी मार्गको अपना रखा है। उसका समर्थन धर्मग्रन्थोंमें भी मिलता है। कहते हैं, इस्लाममें अत्याचारीके प्रति हिंसा करनेका स्पष्ट आदेश है। ईसाई धर्मके तथाकथित अनुयायी अन्यायोंको — चाहे वे काल्पनिक हों या वास्तविक — दूर करनेके लिए संगठित युद्धको उचित ठहराते हैं। हजारों हिन्दू 'गीता'की ऐसी व्याख्या करते हैं जिससे वह न्यायकी खातिर युद्धको उचित ठहरानेवाली प्रमाण-पुस्तक सिद्ध होती है। ऐसे लोग थोड़े ही हैं (परन्तु इनकी संख्या निरन्तर बढ़ती चली जा रही है) जो धार्मिक निष्ठाके साथ ऐसा मानते हैं कि हिंसा स्वयमें गलत है और उसका औचित्य तब भी नहीं ठहराया जा सकता जब उसका उपयोग सत्यकी प्रतिष्ठाके लिए किया जाये। परन्तु किसी निर्दोष, निहत्थे व्यक्तिको बिना किसी चेतावनीके मौतके घाट उतारना ('सभ्य' भले माना जाये) धार्मिक कृत्य नहीं हो सकता। खिलाफतके कार्यकर्त्ताओंके लिए इस कृत्यकी

सार्वजनिक भर्त्सना करके (यद्यपि ऐसी भर्त्सना आवश्यक ही है) या शिष्टाचार निभानेके लिए ऐसी भर्त्सनामे शामिल होकर सन्तोष मान लेना पर्याप्त नही है। हमारे लिए यह जरूरी है कि हम लगातार सार्वजनिक रूपसे और व्यक्तिगत रूपसे भी लोगोके बीच हिंसासे दूर रहनेकी आवश्यकताका प्रचार करे; हम उन्हे समझाये कि विशेषकर ऐसे अवसरपर इस बुराईसे दूर रहना कितना जरूरी है जब कि सफलताकी आशाओसे पूरित असहयोग आन्दोलन चल रहा है। हमारे रोम-रोमको यह अनुभूति होनी चाहिए कि प्रत्येक हत्या, प्रत्येक हिंसात्मक कृत्य हमारे आन्दोलनकी प्रगतिमे बाधक होगा।

यह आयरलैंडके सिन फैन आन्दोलन अथवा मिस्रके असहयोग आन्दोलनसे हमारे असहयोग आन्दोलनका भेद स्पष्ट कर देनेका अवसर है। सिन फैन आन्दोलन अपनी सफलताके लिए अहिंसापर आधारित नही है, और न कभी था। सिन फैन दलके लोग हिंसाका प्रयोग हर रूपमें और हर तरहसे करते हैं। उनके कृत्योका "त्रासकारी" रूप जनरल डायरके कृत्योके त्रासकारी रूपसे भिन्न नही है। अगर हम चाहे तो सिन फैन दलवालोकी क्रूरताको क्षमा कर सकते हैं, क्योकि हम उनके उद्देश्यके प्रति सहानुभूति रखते हैं। परन्तु इसके यह माने नही हैं कि उनके कृत्य जनरल डायरके कृत्यसे भिन्न है। केन्द्रीय खिलाफत समितिने असहयोग आन्दोलनके दौरान स्पष्ट रूपसे और सोच-समझकर अहिंसाको अपने सिद्धान्तके रूपमे अगीकार किया है। इसलिए हमे चाहिए कि हम अपने ही प्राणोकी तरह अग्रेजोके प्राणोकी भी रक्षा करे। हमे स्वेच्छासे हिंसक लोगोके हाथोसे अग्रेजोकी रक्षा करनेवाले स्वयसेवकोकी हैसियत अख्तियार कर लेनी चाहिए। हमारी सफलता हमारे बीच वर्तमान हिंसात्मक और धर्मान्ध तत्त्वोको नियन्त्रित रखनेकी हमारी क्षमतापर निर्भर करती है।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-९-१९२०

१२८. गुजरात राजनीतिक सम्मेलन

गुजरात राजनीतिक सम्मेलनको जो निर्णय लेना था, ले लिया है। स्वागत समितिके अध्यक्ष तथा सम्मेलनके वयोवृद्ध सभापति, दोनोने जो सक्षिप्त और सारगर्भित तथा दृढतासूचक भाषण दिये, उनके बाद सम्मेलनके निर्णयके बारेमे सन्देहकी कोई गुंजाइश नही रह गई है। परन्तु असहयोगके विस्तृत कार्यक्रमको स्वीकार करनेके लिए, शायद कोई भी तैयार न था। सम्मेलनके प्रस्ताव स्वभावत. गुजरातीमे थे। खास तौरसे 'यग इडिया' के पाठकोके लाभके लिए उनका अनुवाद दिया जा रहा है।[1] मै पाठकोसे उन्हे देखनेका अनुरोध करूँगा।

१. इन प्रस्तावोंका अनुवाद **यंग इंडियाके** १-९-१९२० के अंकमें प्रकाशित किया गया था।

सम्मेलनने अन्तिम रूपसे निर्णय कर डाला है, अब उसके लिए पीछे जानेकी कोई गुंजाइश नहीं रह गई। उसने कांग्रेसके आदेशकी प्रतीक्षा जान-बूझकर नहीं की है। गुजरातियोंका खयाल है कि उनके विचार काफी सुनिश्चित बन चुके हैं और वे अब कोई निश्चित कदम उठा सकते हैं। मैं उनको साधुवाद देता हूँ। उन्हें भरपूर चेतावनी दे दी गई थी। विरोध करनेवालोंके नेता राव बहादुर रमणभाई थे। परन्तु उनके पक्षके समर्थकोंकी संख्या बहुत छोटी थी। उनकी चेतावनी एक ही वाक्यमें व्यक्त की जा सकती है. असहयोगके प्रचारका उद्देश्य अराजकताकी ऐसी भावना जागृत कर देना है जिसे नियन्त्रित रखना करोड़ोंकी आबादीवाले इस राष्ट्रमें असम्भव हो जाये। यह एक ऐसे नेताकी चेतावनी है, जिसने अपना समस्त जीवन राजनीतिक और सामाजिक सुधारमें बिताया है और इस कारण हमारे सम्मानका पात्र है। गुजरात सम्मेलनने असहयोगके परिणामोंपर भली-भाँति विचार करके ही उसके पक्षमें अपना मत दिया है। श्री अब्बास तैयबजीने अपने भाषणके अन्तमें मर्मस्पर्शी स्वरमें कहा कि उन्हें न चाहते हुए भी असहयोगको अपनाना पड़ रहा है, क्योंकि अगर वे अपने आत्मसम्मानकी रक्षा करना चाहते हैं और अपने पीछे कोई स्वस्थ परम्परा छोड़ जाना चाहते हैं तो उनके सामने इसके अलावा और कोई रास्ता ही नहीं है। एक जमाना था जब ब्रिटिश न्याय-भावनामें उनकी सहज आस्था थी, परन्तु अब नहीं रह गई है, और अपनी इस आस्थापर इतना बड़ा आघात लगनेके बाद वे तबतक ब्रिटिश सरकारका समर्थन नहीं कर सकते जबतक कि वह अपनेको अन्यायसे मुक्त नहीं कर लेती।

सम्मेलनने उपाधियों, अवैतनिक पदों, अदालतों, सरकारी स्कूलों और कौंसिलोंके बहिष्कारकी आवश्यकतापर जोर दिया है। सम्मेलनने एक अलग प्रस्ताव पास करके, जो लोग मैसोपोटामियामें सैनिकों, क्लर्कों या मजदूरोंकी हैसियतसे काम करनेके लिए भरती होना चाहते हैं, उन्हें वैसा न करनेकी सलाह दी है। सम्मेलनने महाविभव ड्यूक ऑफ कनॉटके स्वागत-समारोहका भी बहिष्कार करनेको कहा है। यह उनके आगमनको भी उसी दृष्टिसे देखता है जिस दृष्टिसे महाविभव युवराजके आगमनको देखता है। इसने स्वदेशीपर स्वीकृति दी है, ब्रिटिश मालके बहिष्कारके प्रस्तावको अव्यावहारिक बताया है और उसे स्वदेशी तथा असहयोगकी सच्ची भावनासे असंगत मानते हुए एक बहुत बड़े बहुमतसे उसे अस्वीकार कर दिया है। रचनात्मक प्रस्तावोंके रूपमें उसने यह सुझाव दिया है कि पंचायती अदालतें, राष्ट्रीय स्कूल और विश्व-विद्यालय स्थापित किये जायें, और गाँवोंमें डाकुओं और लुटेरोंसे बचावके लिए स्वयं-सेवकों और बालचरोंके दल संगठित किये जायें।

सम्मेलनने अन्य शिकायतोंका उल्लेख करनेवाले प्रस्तावोंकी भाषा बदल दी है। इस तरह इसका कार्यक्रम स्पष्ट, असन्दिग्ध, निश्चयात्मक और सर्वांगपूर्ण है। लेकिन इसे निभानेके लिए गुजरातियोंको अपनी समस्त शक्ति और सामर्थ्य लगा देनी पड़ेगी। जब सरकारसे यह आशा की जाती है कि वह प्रस्तावोंको कार्यान्वित करेगी तब महज प्रस्ताव पास कर देनेसे ही काम चल जाता है। हमने सच्चे दिलसे पूरी तरह

सोच-समझकर ये प्रस्ताव पास किये है। इसलिए अगर हम इन्हे कार्यान्वित नही करते तो यह हमारे लिए लज्जाका विषय होगा।

जनसाधारणमें जो जागृति आ रही है, उसमे शंका नही की जा सकती। सम्मेलनने एक सबल कार्यकारिणी समिति नियुक्त की है। गुजरातमे असहयोगको एक वास्तविकता बना देना बहुत-कुछ इस समितिकी लगन और देशभक्तिपर निर्भर करेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-९-१९२०

१२९. हमारा बोझ

पीर महबूब शाहने घुटने टेक दिये है। वे एक बहादुर आदमी थे। उनकी गुनहगारी या बेगुनाहीसे मुझे कोई मतलब नही। जो शब्द कहनेका आरोप उनपर लगाया जाता है, अगर उन्होंने वे शब्द कहे तो निश्चय ही उन्होने लोगोको हिंसाके लिए भड़काया। उस अवस्थामे उन्हें जो दो वर्षकी सादी कैदकी सजा दी गई, वह निश्चय ही हलकी थी। देशके बडेसे-बड़े व्यक्तिको भी — चाहे वह अधिकारी-वर्गका हो अथवा जनताके बीचसे आता हो — अपराध सिद्ध हो जानेपर दण्डसे मुक्ति नही दी जा सकती। परन्तु जिस कारणसे पीर साहबके प्रति मेरे मनमे प्रशसाका भाव पैदा हुआ, वह कारण था उनका वह साहस, जिस साहसके साथ उन्होने अपना बचाव पेश न करने और वैध रूपसे नियुक्त एक न्यायाधिकरण द्वारा दिये गये दण्डको धैर्यपूर्वक सह लेनेका निश्चय किया। मैने सोचा, उन्होने सघर्षके मर्मको समझ लिया है। और उनके अनुयायियोने जिस ढंगसे अपने नेताकी कैदकी बात बरदाश्त की, वह भी अत्यन्त सन्तोषजनक थी।

किन्तु बादके समाचारसे पता चलता है कि पीर साहबने क्षमा-याचना करके रिहाई पा ली। इससे हमारी कमजोरी प्रकट होती है। हमारा लालन-पालन हमें सर्वथा दुर्बल और पुसत्वहीन बना देनेवाले वातावरणमे हुआ है, इसलिए हमारे बीच जो ऊँचेसे-ऊँचे व्यक्ति है, वे भी एक साधारणसे तूफानसे सामना पड़ते ही झुक जाते है। पश्चिमके राष्ट्रोंको जिस कठिन अनुशासनसे गुजरना पड़ता है, उस अनुशासनको झेले बिना हम पाश्चात्य सभ्यताके ऐशो-आरामके पीछे पागल है। नतीजा यह हुआ है कि हममे सादी कैदकी सजाके कष्टोको सहनेकी क्षमता भी लगभग समाप्त हो गई है। परन्तु पीर महबूब शाहके आत्म-समर्पणसे हमें हताश होनेकी जरूरत नही। जब किसी बोझसे भरी गाडीको अनेक घोडे खीच रहे हो और उनमेसे एक थक जाये या अन्य किसी कारणसे असमर्थ हो जाये तो बाकी घोड़े — अगर वे दमदार है तो — अपने साथीका भार बँटा लेते है और अधिक जोर लगाकर उस बोझको खीच ले जाते है। फिर आप ही सोचिए कि हम लोगोंको, जो कि मनुष्य है और जिन्हे ईश्वरने बुद्धिसे भी युक्त कर रखा है, अपने साथीके घुटने टेक देनेपर उसके हिस्सेका बोझ ढोनेके लिए उन पशुओकी तुलनामे कितना अधिक जोर लगाना चाहिए?

अतएव आइए, अब हम देखें कि उस बोझका वास्तविक अर्थ क्या है। जो सैनिक अपने प्रतिद्वन्द्वीकी शक्तिकी अवगणना करता है, वह कर्त्तव्यपरायण सैनिक नही है। इसलिए हम जिस सरकारके विरुद्ध इस भीषण सघर्षमे लगे हुए हैं उसकी शक्तिका सही ज्ञान होना हमारे लिए आवश्यक है। यह सरकार ऐसे लोगोका समूह है, जो मुख्यत बडे धूर्त और मक्कार हैं; उनका कोई दीन और ईमान नही है, वे झूठे हैं। लेकिन साथ ही वे बड़े साहसी, योग्य, आत्मबलिदानी और सगठनकी क्षमता से युक्त हैं। हमे उनके साहसका मुकाबला और भी अधिक साहस दिखाकर, उनके आत्मत्यागका मुकाबला और बडे आत्मत्यागका परिचय देकर और उनकी सगठन-शक्तिका मुकाबला और अच्छी संगठन-शक्तिका उदाहरण पेश करके करना है। इनके हाथोमे बेजोड हिंसात्मक शस्त्रास्त्र हैं। उनका सामना हमे अहिंसासे करना है। अगर हम इस कसौटीपर खरे नही उतरते तो हमें गुलामीकी स्थितिमे बने रहनेमें सन्तोष मानना चाहिए। असहयोगने राष्ट्रको ऐसा अवसर दिया है कि वह अपनी प्रतिष्ठा कायम रखनेके लिए आवश्यक सभी गुणोका परिचय दे सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-९-१९२०

१३०. पत्र : एस्थर फैरिंगको[1]

कलकत्ता जाते हुए
२ [सितम्बर][2], १९२०

रानी बिटिया,

घरसे भेजा हुआ तुम्हारा पहला विस्तृत पत्र मिला। पढ़कर बहुत खुशी हुई।

मैंने मेननके साथ चार दिन बडे अच्छे बिताये। वह खरी बात कहनेवाला, ईमानदार और साफ आदमी है। उसमें बनाव नही है। मैंने उससे कह दिया है कि वह जब भी चाहे आश्रम आ सकता है। मैंने यह भी कह दिया है कि आश्रममे तुम और वह दोनो रह सकते हो, उसे अपना घर भी बना सकते हो।

उसके सामने अब भी कुछ कठिनाइयाँ हैं। उसपर दबाव डाला जा रहा है कि वह तुम्हारी खातिर ईसाई बन जाये। मैं इसे तुम दोनो ही के लिए अशोभनीय मानता हूँ। अपना-अपना धर्म दोनोके लिए सर्वोपरि होना चाहिए। यह कोई यन्त्र नही है कि जब चाहा उसमे परिवर्तन कर दिया। इसलिए मेरी तो यह राय है कि तुम दोनोको अपना-अपना धर्म कायम रखना चाहिए।

१. एक डैनिश मिशनरी, जो १९१६ में भारत आई थीं और बादमें साबरमती आश्रममें रहने लगीं। गांधीजी उनके साथ पुत्रीवत् व्यवहार करते थे।

२. मूल पत्रमें तिथि २ अगस्त दी गई है पर उस दिन गांधीजी बम्बईमें थे। वे २ सितम्बरको कलकत्ताके मार्गमें थे और ३ को वहाँ पहुँचे थे।

और यदि तुम लोग अपना वंश आगे चलाना तय करते हो, तब फिर बच्चोंके धर्मका क्या होगा? ईश्वरसे डरनेवाले हर व्यक्तिके लिए यह एक बहुत अहम सवाल है।

मुझे तो इसका एक यही हल दिखाई पड़ता है कि तुम लोग शादी तो करो, पर तुम दोनोंके सम्बन्ध वासना-रहित रहे। लेकिन तुम दोनोंको ईश्वर जैसी प्रेरणा दे, वैसा ही करना। मेननकी इच्छा थी कि उसके साथ मेरी जो बातचीत हुई है उसे मैं तुमको लिख दूँ और वह मैंने कर दिया है। मेरा बतलाया हुआ हल तब उसको ठीक लगा था। परन्तु उसका कोई महत्त्व नहीं। तुम्हारे सम्बन्ध इतने पवित्र हैं कि उनमें दखल नहीं देना चाहिए।

एन मेरी अर्थात् कुमारी पीटर्सन—उनका आग्रह है कि मैं उनको इसी नामसे पुकारूँ—और मैं, दोनों ही एक-दूसरेको बहुत पसन्द आये। माफ करनेकी तो कोई बात थी ही नहीं। पर मैं उनसे अपनी भेंटका वर्णन नहीं करूँगा क्योंकि उन्होंने तुमसे उसका वर्णन कर ही दिया होगा।

बा, देवदास, महादेव, इमाम साहब, शकरलाल बैंकर, अनसूयाबेन भी अन्य कई लोगोंके साथ मेरे पास ही रह रहे हैं। तुम तो इन लोगोंको जानती हो। हरिलालसे मेरी भेंट आज रात कलकत्तामें होगी।

मैं जानता हूँ कि तुम वहाँ भारतके प्रति प्रेमका प्रचार कर रही हो। ईश्वरसे तुम्हारी और तुम्हारे उद्देश्यकी मंगल-कामना करता हूँ।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडियामें सुरक्षित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

१३१. भाषण: कांग्रेस अधिवेशन, कलकत्तामें

४ सितम्बर, १९२०

इसके बाद महात्मा गांधी कुर्सीपर, जिसे एक व्यक्ति सँभालकर पकड़े हुए था, खड़े हुए। श्रोतृसमूह देरतक जोरदार हर्ष-ध्वनि करता रहा। उन्होंने अंग्रेजीमें बोलते हुए श्रोताओंसे निवेदन किया कि वे श्रीमती बेसेंटका भाषण धैर्यके साथ सुनें। श्रोताओंने उनकी बात बड़ी शान्तिसे सुनी। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा कि मैं उन व्यक्तियोंसे दो शब्द कहना चाहता हूँ जो एक अधिकृत वक्ताको श्रोताओंके समक्ष अपने विचार प्रस्तुत करनेसे रोकनेका प्रयत्न कर रहे हैं। यह उनके लिए और इस जनसमुदायके लिए भी लज्जाकी बात है। मैं आप लोगोंमें से प्रत्येकसे यही कहूँगा कि यदि आप लोग यहाँ न्याय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे एकत्र हुए हैं तो दूसरोंके साथ न्याय करना आपका प्रथम और पुनीत कर्त्तव्य है। (हर्षध्वनि) श्री गांधीने आगे कहा:

आप ऐसा न मानें कि श्रीमती बेसेंटने जो स्थिति अपनाई है (शर्म-शर्मकी आवाजें) वह

जान-बूझकर देशके हितोको हानि पहुँचानेके लिए अपनाई है। आपके बीच काम करने-वाले पुरुषों और स्त्रियोके बीच जो मतभेद हैं उसे भूलना ही होगा। (हर्ष ध्वनि) आपमे स्वशासन की क्षमता है या नही (शान्त-शान्त), इसकी यह पहली कसौटी होगी। (खूब-खूब की आवाजे) अगर आप असहयोग आन्दोलनका समारम्भ करने जा रहे हैं तो आपका ऐसा आचरण शुभ कार्यका एक बुरा और शोचनीय प्रारम्भ माना जायेगा। (खूब-खूब की आवाजे)

बादमें उन्होंने श्रोताओंसे अनुरोध किया कि श्रीमती बेसेंटका भाषण शान्तिसे सुनना ही काफी नहीं बल्कि अपनी उम्र और भारतके प्रति अपनी शानदार सेवाओंके कारण वे जिस सम्मानकी पात्र हैं, वह सम्मान भी उन्हें दीजिए। (खूब-खूब की आवाजें)

जिस तरह उनका विरोध करनेमें मैं किसीसे कम सिद्ध नहीं होऊँगा उसी प्रकार श्रीमती बेसेंटके प्रति आदर-भाव रखनेमें किसीसे — उनके बड़ेसे-बड़े प्रशंसकोंसे भी — मैं कम नहीं हूँ। (खूब-खूब)। और उन्होंने इस देशकी जो सेवा की है, उसके लिए यह आदर तो उन्हें हर भारतीयसे पानेका हक है। अपने देशके नामपर आप जो अनुष्ठान करने जा रहे हैं, उस अनुष्ठानके नामपर मैं आप लोगोंसे निवेदन करता हूँ कि आप श्रीमती बेसेंटकी बातें और जिन अन्य लोगोंको आप अपना विरोधी मानते हैं, उन सबकी बातें भी आदरके साथ सुननेकी कृपा करें। (खूब-खूब। वन्दे-मातरम्के नारे)

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ५-९-१९२०

१३२. 'नवजीवन' का नया वर्ष

'नवजीवन' एक वर्षका हो गया। इस बीच उसपर अनेक आपदाएँ आईं। उनके बावजूद उसने अपना प्रथम वर्ष पूरा कर लिया; मैं अपनी समस्त इच्छाओंको सफल नही बना पाया हूँ। प्रेसकी असुविधाओ, कागजकी कमी, व्यवस्थाकी त्रुटियो आदि कठिनाइयोके कारण 'नवजीवन' में जितने पृष्ठ देनेका विचार था, उतने नही दिये जा सके।

कुछ-एक अवैतनिक एजेन्टो द्वारा परेशान किये जानेपर ग्राहकोंको दिक्कतोका सामना करना पडा है। इस प्रयोगके निष्फल सिद्ध होनेसे मुझे दु:ख हुआ है। "अवैतनिक", प्रेमभावसे किया गया कार्य, पैसे लेकर किये जानेवाले कार्यकी अपेक्षा अधिक अच्छा होना चाहिए, लेकिन हम उस सीमातक नही पहुँच पाये हैं। सेवाधर्मकी भावनाका लोगोमे प्रसार तो हो गया है लेकिन वह शक्ति अभी विकसित नही हुई है।

इन कठिनाइयोके अतिरिक्त मेरी निजी कठिनाइयाँ भी मुझे परेशान करती हैं। इसलिए मैं पाठकोके सम्मुख जो-कुछ प्रस्तुत करना चाहता था, नही कर सका। पत्रका

सम्पादन करना और भ्रमण करना, ये दोनों कार्य अगर असम्भव नही तो कठिन अवश्य ही हैं। इसी कारण मैं कितने ही लेख नही लिख पाया हूँ। सवाददाताओंका पथप्रदर्शन करना मुझे आता है, उन्हें प्रोत्साहन देनेकी अपनी इच्छाको भी मैं पूरा नही कर सका हूँ।

ऐसे अनेक प्रकारके दोषोके वावजूद पाठक धैर्यपूर्वक 'नवजीवन' को पढते हैं, यही मेरे लिए कम सन्तोषकी बात नही है। मेरी आकाक्षा है कि उसमे उल्लिखित विचारोका अशिक्षित-वर्गमें भी प्रसार हो। फलस्वरूप मैं पाठकोंसे अनुरोध करूँगा कि वे 'नवजीवन' के जिन विचारोसे सहमत हों उन विचारोको अशिक्षित-वर्गके सम्मुख भी रखें। 'नवजीवन' को अधिक पठनीय बनानेके लिए अपने प्रयत्नोको मैं जारी रखूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-९-१९२०

१३३. गुजरातकी पसन्द

गुजरातने अपना फर्ज अच्छी तरह अदा किया है। परिषद्ने[1] जिस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर अपना निर्णय दिया है वैसा महत्त्वपूर्ण प्रश्न परिषद्के सम्मुख न तो पहले कभी आया और न कदाचित् आगेके सौ वर्षोमे कभी आयेगा। ऐसे समय हमे दृढ नेताओंकी आवश्यकता थी। वे हमें मिल गये। श्री वल्लभभाई पटेल और बुजुर्ग अब्बास तैयबजीके भाषणोंको पढ़कर सभी स्वीकार करेंगे कि उनके भाषण दृढता और विनयशीलतासे परिपूर्ण तथा स्पष्ट थे। स्वागत मण्डलके अध्यक्षने अत्यन्त सरल गुजरातीमे प्रभावशाली ढगसे अपने विचारोको संक्षेपमे प्रस्तुत किया। श्री अब्बास अलीके भाषणकी शैलीके विषयमे हम कुछ नही कह सकते, क्यो कि वह मूलत. अंग्रेजीमे लिखा गया था। अन्य भाषण सक्षिप्त व सरल थे। मैंने अध्यक्ष-पदसे दिये गये ऐसे संक्षिप्त और सरल भाषण शायद ही देखे-सुने हों।

जैसे प्रमुख थे वैसी ही परिषद् थी। परिषद्ने जो प्रस्ताव पास किये हैं उनमे कोई कसर नही थी। प्रस्तावोके अमलकी कोई शर्त नही है, इनपर तुरन्त ही अमल शुरू किया जानेवाला है।

आज़तक जो प्रस्ताव पास हुए हैं उनमें सरकारसे कुछ करनेके लिए कहा गया था; किन्तु अब तो हमे ही [कुछ] करना है।

परिषद्को पर्याप्त चेतावनी दे दी गई है। नेताओने सभी संकटोंके प्रति चेतावनी दी है। लोगोको यह बात खूब अच्छी तरह समझा दी गई है कि अगर जनताने खुद अपने ही द्वारा लिये गये निश्चयको क्रियान्वित करनेकी शक्ति न दिखाई तो उसकी

१. २७, २८ और २९ अगस्त, १९२० को हुई गुजरात राजनीतिक परिषद्।

मान-हानि होगी। कदाचित् महासभा ही असहकार अथवा उसमें सुझाये गये कार्यक्रमके विरुद्ध मत दे, लेकिन परिषद्ने सर्वसम्मतिसे असहकारको स्वीकार किया है।

गुजराती व्यवहार-कुशल माने जाते हैं, वे आवेशमें आकर प्रस्ताव पास नहीं करते। प्रस्ताव पास करनेसे गुजरातियोंकी प्रतिष्ठामें जितनी वृद्धि हुई है अगर वे उसपर अमल न करेंगे तो उनकी प्रतिष्ठा उतनी ही कम हो जायेगी और गुजरात यदि अपने निश्चयसे डिगेगा तो उससे पूरे देशको नुकसान पहुँचेगा। किसी भी कार्यको आरम्भ न करना बुद्धिमत्ताका पहला लक्षण है, लेकिन कार्यको आरम्भ करनेके बाद उसे किसी तरह भी पार लगाना मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य है।

गुजराती भारतमाताके सम्मानके न्यासी बने हैं, प्रभु उन्हें दृढ़ता प्रदान करे।

परिषद्ने विधान परिषदों, सरकारी स्कूलों और अदालतोंका बहिष्कार करनेका प्रस्ताव पास किया है। जिन व्यक्तियोंके पास पदवियाँ आदि हैं परिषद्ने उन व्यक्तियोंसे पदवियाँ त्याग देनेका अनुरोध किया है। स्वदेशीको सम्पूर्णतः स्वीकार करते हुए परिषद्ने ब्रिटिश मालके बहिष्कारपर असहमति प्रकट की है। माननीय ड्यूक ऑफ कनॉट के आगमनपर उनका अभिनन्दन करनेकी बातका विरोध किया है। लोगोंको मैसोपोटामियाके लिए सिपाही, क्लर्क तथा मजदूरकी तरह भरती न होनेकी सलाह दी है।

इसका अर्थ यह हुआ कि:

१. खिताबयाफ्ता लोगोंको अपने खिताब आदि छोड़ देने चाहिए।

२. वकीलोंको अदालतोंका धन्धा छोड़ देना चाहिए और निजी रूपसे झगड़ोंका निपटारा करनेकी व्यवस्था करनी चाहिए।

३. माता-पिताको ऐसे किसी भी स्कूलसे, जिसमें सरकारका तनिक भी हाथ हो, अपने बच्चोंको उठा लेना चाहिए।

४. मतदाताओंको विधान परिषदोंके किसी भी उम्मीदवारको अपने मत नहीं देने चाहिए और उम्मीदवारोंको अपने नाम वापस ले लेने चाहिए।

५. प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बालकको सम्पूर्ण स्वदेशीका पालन करना चाहिए और उसके लिए घर-घर कातना व बुनना शुरू करना चाहिए।

इससे आप देख सकेंगे कि प्रजाने अपने सिरपर कोई कम जिम्मेदारी नहीं उठाई है। इतना होनेपर भी इस जिम्मेदारीमें उपद्रवका भय नहीं है। मात्र लोगोंकी कायरता अथवा आलस्यका ही भय है। उपर्युक्त कार्यक्रममें पैसेका नुकसान भी बहुत कम है।

अदालतोंकी जगह कौनसी संस्थाएँ हों? स्कूलोंकी एवजमें भी क्या होगा? इन प्रश्नोंके उत्तरमें परिषद्ने पंचोंकी मार्फत न्याय प्राप्त करनेकी योजनाका तथा नये स्कूल स्थापित करने अथवा चालू स्कूलोंको राष्ट्रीय स्कूलोंमें बदलनेका सुझाव दिया है।

यह सब कहते हुए तो बहुत सुन्दर प्रतीत होता है, लेकिन प्रचुर कार्यकर्त्ताओंके बिना कुछ नहीं हो सकता। कार्यकर्त्ता भी साहसी, नीतिमान, समझदार, विवेकी और धैर्यवान होने चाहिए। ऐसे कार्यकर्त्ता यदि हमें मिल सकें तो गुजरात, जो आज गुलामीके बन्धनोंमें जकड़ा हुआ है, कल ही स्वतंत्र हो जाये और उसके स्वतन्त्र होनेपर उस सीमातक भारतवर्षको भी स्वतन्त्र माना जायेगा।

उपर्युक्त कार्यक्रममें समस्त जनताके लिए कुछ-न-कुछ करनेकी बात तो आ ही जाती है। एक दूसरे की राह देखते हुए बैठे रहनेसे काम नही चल सकता, लेकिन जिनसे जितना हो सके उतना उन्हें कर देना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-९-१९२०

१३४. डिप्टी कमिश्नरकी हत्या

जब मैंने सुना कि एक मुसलमानने डिप्टी कमिश्नर श्री विलोबीकी हत्या कर दी है तब मुझे लगा कि मैं वहाँ होता तो कितना अच्छा होता और यदि वह घातक प्रहार मुझपर हुआ होता तो मैं उससे इस्लाम और देशकी जितनी सेवा कर सकता उतनी और किसी ढंगसे न कर पाता। उस अवसरपर मेरी मृत्यु होनेका परिणाम यह होता कि सारे संसारको हमारे सघर्षकी शुद्धतापर विश्वास हो जाता और उसी विश्वासमे हमारी विजयका मूल निहित है।

इस हत्यासे हमे नुकसान हुआ है। हमारे शान्तिपूर्ण संघर्षमे थोड़ा-सा अशान्तिका तत्त्व समाविष्ट हो गया है। सामान्य अंग्रेज जितनी निर्भयताका अनुभव करते थे उसमे अपेक्षाकृत ह्रास हुआ है। इससे बैर बढेगा और दमनका चक्र शुरू होगा। हमारी भूलके परिणामस्वरूप इस दमन-चक्रसे हमारा नुकसान हुए बिना नही रहेगा।

हमारे संघर्षमे कुछ भी गुप्त नही है। हम मन-ही-मन जो विचार करते है उन्हें खुले आम कहते है। हम असहकारकी इस लड़ाईमे कदापि हिंसा नही करना चाहते, इसलिए हमे इस हत्याकी भर्त्सना करनी चाहिए। हमे न केवल समाचारपत्रो, सभाओं व निजी बातचीतमें इसकी निन्दा करनी चाहिए बल्कि अपने मनमे भी इसकी निन्दा करनी चाहिए।

मैं इस समय जो लिख रहा हूँ वह मेरी अहिंसाकी कल्पनापर ही लागू होता हो सो बात नही। यह तो मैं नीतिके सर्वसाधारण सिद्धान्तोको ध्यानमें रखकर लिख रहा हूँ।

यदि हम असहकारको हिंसाके बिना ही चलाना चाहते हों तो हमें हिंसाको बन्द करना अपना प्रथम कर्त्तव्य मानना चाहिए। हिंसाके त्याग करनेका दावा करते हुए भी यदि हम गुप्त अथवा प्रगट रूपसे हिंसाका समर्थन करते हो तो यह विश्वास-घात करना ही माना जायेगा।

हिंसा होनेसे जनता असहकार-आन्दोलन नही चला सकती। समस्त हिन्दुस्तानमें आतंकका साम्राज्य हो और जनता स्वयमेव भयभीत हो जाये तो फिर असहकार करनेको कोई रह ही नही जायेगा। यह बात ऐसी है जो तुरन्त सबकी समझमें आ जानी चाहिए और असहकार आन्दोलन चलानेवाले प्रमुख व्यक्तियोकी समझमे यह बात आ गई है। इसी कारण यह आन्दोलन बिना किसी प्रकारकी हिंसाके चल रहा है।

तथापि मैं जानता हूँ कि कुछ-एक मुसलमान और हिन्दू इस तरहकी हिंसाको पसन्द करते हैं। आयरलैंडमें होनेवाले हत्याकांडको अनेक लोग बडी दिलचस्पीके साथ पढ़ रहे हैं। अनेक लोगोकी यह मान्यता है कि यदि बम विस्फोट न होता तो बगाल फिरसे एक न होता। कोई-कोई यह मानते हैं कि ढीगरा द्वारा की गई हत्यासे लाभ हुआ है। मेरी तो दृढ मान्यता है कि हिंसासे कोई फायदा नही होता और इससे कभी-कभी क्षणिक लाभ होता दिखाई देता है किन्तु वह अन्तत. हानिकारक होता है। अंग्रेजो-की विजयको मैं पराजय मानता हूँ, उनमें पापकी वृद्धि हुई है। लोभ, दम्भ, क्रोध, असत्य और अन्यायकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है, मदकी कोई सीमा नही है। जर्मनोके पास ऐसे अवगुणोके विकासका अब अवकाश ही नही रह गया है। वे अन्याय [करे तो] किसके प्रति करे? उनके क्रोध करनेसे भी क्या लाभ होगा?

जो लोग हिंसाके सिद्धान्तको माननेवाले हैं उनसे भी कमसे-कम मैं इतना अनुरोध तो अवश्य करूँगा कि वे दो घोड़ोपर एक साथ सवार नही हो सकते। या तो हम नि शस्त्र असहकार चलाये अथवा उसका पूर्णतया त्याग करे।

यह सब लिखनेका मेरा उद्देश्य यह नही है कि हमारे लिए असहकारको छोड़ने-का समय आ गया है; लेकिन मैं असहकार आन्दोलन चलानेवालोंको चेतावनी देना चाहता हूँ। वास्तविक भय कहाँ है यह बताना चाहता हूँ। श्री विलोबीका हत्यारा तो कदाचित् असहकार शब्दसे परिचित भी नही होगा; तथापि हमारी सफलताकी कुंजी हिन्दुस्तानके प्रत्येक व्यक्तिको नियन्त्रणमे रखनेमे है। यदि हममें यदा-कदा की जानेवाली हत्याओंको रोकनेकी शक्ति नही है तो हमारा संघर्ष कदापि आगे नही चल सकता।

इनको हम किस तरह रोक सकते हैं? वातावरणमे परिवर्तन करनेसे। और यह तभी संभव हो सकता है जब असहकार-आन्दोलन चलानेवाले लोग उसके स्वरूप और उसकी शर्तोंको अच्छी तरह समझ लें। उसकी पहली शर्त यह है कि हम प्रत्येक अंग्रेजके प्राणोके रक्षक बनें, और अपने आसपासके लोगोंको दलीलोसे, उदाहरणोसे समझायें कि हमारी विजयका पूर्ण आधार हिंसासे दूर रहनेमे है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-९-१९२०

१३५. असहयोगका प्रस्ताव[1]

५ सितम्बर, १९२०

चूंकि भारत सरकार और साम्राज्य सरकार दोनो खिलाफतके सवालपर भारतके मुसलमानोके प्रति अपना कर्त्तव्य निभानेमे बिलकुल असफल रही है और प्रधान मंत्रीने उन्हे शपथपूर्वक जो वचन दिया था उसे उन्होने जान-बूझकर स्वय ही तोड़ डाला है और चूंकि हर गैरमुस्लिम भारतीयका यह कर्त्तव्य है कि वह अपने मुसलमान भाइयोको, उनके धर्मपर जो आपदा आ पडी है उसे दूर करनेके उनके प्रयासमें, हर वैध तरीकेसे मदद दे।

और चूंकि १९१९ के अप्रैल मासमे जो-कुछ घटित हुआ उसमे उक्त दोनो सरकारोने पंजाबके निर्दोष लोगोंकी रक्षा नही की, और उन लोगोके प्रति अधिकारियोके असं-निकोचित और बर्बर व्यवहारके लिए उन्हें दण्डित नही किया तथा उन सर माइकेल ओ'डायरको दोषमुक्त कर दिया है जिन्होने अपने-आपको अधिकारियोके अधिकाश अपराधोके लिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे जिम्मेदार सिद्ध कर दिया है और साबित कर दिया है कि वे अपने प्रशासनके अधीन रहनेवाले लोगोके दु खोके प्रति कितने हृदय-हीन है; और चूंकि लार्ड सभामे जो बहस हुई उससे भारतके लोगोके प्रति सहानुभूतिका घोर अभाव प्रकट होता था और पजाबमे जो योजनाबद्ध आतक और त्रासकी नीति अपनाई गई उसके समर्थनका भी आभास मिलता था, और चूंकि वाइसराय महो-दयका पिछला भाषण इस बातका द्योतक है कि खिलाफत और पजाबके मामलोपर सरकारको कोई पश्चात्ताप नही है।

इसलिए इस कांग्रेसका विचार है कि जबतक उपर्युक्त दो अन्यायोका निराकरण नही कर दिया जाता तबतक भारतमे तोषका कोई भाव नही हो सकता, और राष्ट्रके सम्मानको प्रतिष्ठित करने तथा भविष्यमे ऐसे अन्यायोकी पुनरावृत्तिको रोकनेका एकमात्र प्रभावकारी उपाय स्वराज्य प्राप्त करना है। इस काग्रेसका यह भी विचार है कि भारतके लोगोके सामने इसके अलावा और कोई रास्ता नही रह गया है कि वे क्रमिक अहिंसक असहयोगकी नीतिका समर्थन करे और उसपर तबतक चलते रहें जबतक कि उक्त दोनो अन्यायोका निराकरण नही हो जाता और स्वराज्य नही मिल जाता।

और चूंकि जिन वर्गोंने अबतक जनमतका पथ-प्रदर्शन और प्रतिनिधित्व किया है, शुभारम्भ उन्हें ही करना है, और चूंकि लोगोको दिये गये ओहदो और खिताबोके जरिये, सरकारी नियन्त्रणमे चलनेवाले स्कूलोके जरिये, अपने न्यायालयो और अपनी धारासभाओके जरिये ही सरकार अपनी शक्ति बढ़ाती है और चूंकि इस आन्दोलनके

१. यंग इंडियामें प्रकाशित इस लेखका उप-शीर्षक था: "श्री गांधीका प्रस्ताव"।

अनुष्ठानमें कमसे-कम खतरा उठाना और अभीष्ट लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए जितने कम बलिदानसे काम चल सके उतना कम दलिदान करना वांछनीय है, इसलिए काग्रेस लोगोको आग्रहपूर्वक सलाह देती है कि:—

(क) खिताबों और अवैतनिक पदोंका त्याग किया जाये और स्थानीय परिषदोंकी नामजद सदस्यता भी छोड़ दी जाये;

(ख) सरकारी दरबारों और सरकारी अधिकारियों द्वारा या उनके सम्मानमें सरकारी या अर्धसरकारी तौरपर आयोजित समारोहोंमें भाग न लिया जाये;

(ग) सरकारके अधीन या उसके अनुदानपर अथवा उसके नियन्त्रणमे चलनेवाले स्कूलों और कालेजोसे धीरे-धीरे लोग अपने बच्चे हटा ले और ऐसे स्कूलो और कालेजोके बदले विभिन्न प्रान्तोमें राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजोकी स्थापना करें;

(घ) वकील तथा वादी-प्रतिवादी लोग धीरे-धीरे ब्रिटिश न्यायालयोंका बहिष्कार करे और इन लोगोंकी सहायतासे निजी झगड़ोके निपटारेके लिए पंचायती अदालतें स्थापित की जायें;

(ङ) सैनिक, क्लर्क और मजदूर-वर्गके लोग सरकारको मैसोपोटामियाके लिए अपनी सेवाएँ प्रदान न करे;

(च) नई कौसिलोके चुनावके उम्मीदवार अपना नाम वापस ले लें और अगर कोई कांग्रेसकी सलाहके बावजूद चुनावमें खड़ा हो तो मतदाता ऐसे उम्मीदवारको मत न दें;

(छ) विदेशी मालका बहिष्कार।

और चूंकि असहयोगकी कल्पना अनुशासन और आत्म-बलिदानकी शिक्षा देनेवाली चीजके रूपमे की गई है—ऐसी शिक्षा जिसके अभावमे कोई भी राष्ट्र वास्तविक प्रगति नही कर सकता—और चूंकि असहयोगके प्रथम चरणमें ही हर स्त्री-पुरुष और बच्चेको अनुशासन और आत्म-बलिदानकी शिक्षा प्राप्त करनेका अवसर देना चाहिए, इसलिए यह वस्त्रोंके मामलेमें बड़े पैमानेपर स्वदेशी अपनानेकी सलाह देती है, और चूंकि देशी पूँजीसे और देशी नियन्त्रणमें चलनेवाली भारतकी मौजूदा मिले, राष्ट्रकी माँग पूरी करनेकी दृष्टिसे पर्याप्त सूत और पर्याप्त वस्त्र तैयार नही कर पाती और न ऐसी सम्भावना है कि वे अभी बहुत समयतक ऐसा कर पायेंगी, इसलिए यह काग्रेस सलाह देती है कि तत्काल बहुत बड़े पैमानेपर अधिक वस्त्र तैयार करनेके लिए लोगोको उत्तेजन दिया जाये। इसके लिए यह जरूरी है कि फिरसे घर-घरमें चरखेका प्रचलन हो और इस देशके जिन लाखों बुनकरोंने उचित प्रोत्साहनके अभावमे अपना यह पुराना और सम्मानित धन्धा छोड़ दिया है वे फिरसे इसे अपनाये।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५–९–१९२०

१३६. भाषण: विषय-समितिकी बैठकमें[1]

५ सितम्बर, १९२०

श्री गांधीने अपने प्रस्तावके[2] समर्थनमें बोलते हुए नौकरशाहीके प्रति घोर अविश्वास प्रकट किया। उन्होंने कहा कि अमृतसर कांग्रेसके अवसरपर मेरे खयाल कुछ और थे; किन्तु चूँकि अंग्रेज लोग कूटनीतिके बड़े उस्ताद हुआ करते हैं, इसलिए अब मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि ये सुधार एक बहुत ही खतरनाक ढंगका जाल है —एक परदा है, जिसके पीछे हमारे देशको गुलामीमें बाँधनेवाली सुनहरी जंजीरें छिपी हुई हैं। मैं आप सबको होशियार कर देता हूँ कि इस जालमें कभी न फँसिए। अगर आप सच्ची भावनासे यह आन्दोलन प्रारम्भ-भर कर दें और मेरी इच्छाके अनुसार इसे चलायें तो मैं आपको भरोसा दिलाता हूँ—मुझे विश्वास है—कि आप एक वर्षके भीतर अपने देशको पूरी आजादी दिला देंगे। श्री गांधीने यह भी बताया कि राजनीतिक कार्योंमें जनसाधारण अब भी पिछड़ा हुआ है और निर्वाचन यन्त्र कैसे काम करता है, इसकी उसे कोई जानकारी नहीं है। मेरे विचारसे, यहाँके मतदाताओंमें उलझे हुए राजनीतिक सवालोंपर सही निर्णय लेनेकी शक्ति नहीं है, और न उनमें अपने लक्ष्यको ही समझनेकी क्षमता है, अतः इन सुधारोंके अधीन तो वे सिद्धान्तहीन लोगोंके हाथोंकी कठपुतली बन जायेंगे। श्री गांधीने अन्तमें कहा कि चुनावका बहिष्कार वह धुरी है जिसके चारों ओर, मेरे प्रस्तावनें जो कार्यक्रम रखा गया है, वह घूमता है। इसलिए इस सम्बन्धमें एकताके नामपर की गई कोई भी अपील मैं मंजूर नहीं कर सकता। अगर श्री तिलक-जैसे देशभक्त कौंसिलोंके सदस्य हो जाते तो उन्होंने जितना काम किया, उसका एक हिस्सा भी न कर पाते। मैं यह बात एक बार फिर कहता हूँ कि मुझे नरम दल वालोंके कौन्सिलोंमें प्रवेश पा जानेसे कोई भय नहीं है, और वे भले ही ऐसा मानते हों कि असहयोग एक खतरनाक चीज है, लेकिन मैं उनके मंगलकी ही कामना करता हूँ। मेरा आन्दोलन एक धार्मिक आन्दोलन है, और प्रत्येक सच्चे मुसलमानके लिए असहयोग आन्दोलन, जिसमें कौंसिलोंका बहिष्कार भी शामिल है, एक ऐसे धार्मिक आदेशकी तरह बन्धनकारी है जिसे वह कभी तोड़ नहीं सकता। मुसलमान लोग इस सवालपर इतने उत्तेजित हैं कि शान्ति और सुव्यवस्थाके हितमें और भ्रातृत्व तथा एकताके हितमें भी, हमें उनके साथ मिलकर सरकारसे असहयोग करना चाहिए। श्री दासकी[3] योजनासे काम नहीं चलेगा।

१. कलकत्ता कांग्रेसमें।

२. असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव।

३. चित्तरंजन दास (१८७०-१९२५); प्रसिद्ध वकील और कांग्रेसके नेता; वक्ता और लेखक; १९२१ में कांग्रेसके अध्यक्ष।

इसके बाद अध्यक्षके सामने दोनों प्रस्तावोंमें बहुतसे संशोधन पेश किये गये। संशोधनका प्रस्ताव पेश करनेवालोंमें श्री विजयराघवाचार्य[1], स्वामी श्रद्धानन्द[2], श्रीप्रकाश,[3] पंडित नेहरू तथा अन्य बहुतसे लोग भी शामिल थे। तदुपरान्त श्री जिन्नाने[4] लोगोंका ध्यान श्री दास और श्री गांधीके प्रस्तावोंके दो सिद्धान्तोंके बीच निर्णय करनेमें उठनेवाले मुद्दोंकी ओर आकृष्ट करते हुए प्रस्ताव और संशोधनोंपर आगे बहस करनेकी कार्यविधिके सम्बन्धमें जिज्ञासा प्रकट की।

यहाँ आकर श्री गांधीने प्रस्तावनाके सम्बन्धमें सहमति प्रकट करते हुए कहा कि मैं श्री दासकी प्रस्तावनाको, जिसमें असहयोगका उद्देश्य पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना बताया गया है, स्वीकार करनेके लिए तैयार हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू ६–९–१९२०

१३७. भाषण : विषय-समितिकी बैठकमें[5]

७ सितम्बर, १९२०

श्री गांधीने कहा कि मैं इस बातसे सहमत हो गया हूँ कि विद्यार्थी अपने स्कूल और वकील अपनी वकालत धीरे-धीरे छोड़ें। कारण यह है कि इस सम्बन्धमें मुझे जो व्यावहारिक अनुभव हुए हैं, उनका यही तकाजा है। असहयोग धीरे-धीरे जोर पकड़ता जा रहा है, लेकिन "धीरे-धीरे" का मतलब अनन्त काल नहीं है। मैं छूट सिर्फ उन्हीं वकीलोंको दे रहा हूँ जो . . .[6] और जो अपनी परिस्थितियोंसे विवश होकर, तत्काल अपनी वकालत बन्द करनेमें असमर्थ हैं। यही बात स्कूलोंके सम्बन्धमें भी है।

इसके बाद वफादारी और पूर्ण उत्तरदायी शासनकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा इस सम्बन्धमें अपनी स्थितिके बारेमें मैं हिन्दू और मुसलमान दोनोंके भ्रम दूर

१. सी० विजयराघवाचार्य (१८५२–१९४३); प्रमुख वकील और सक्रिय कांग्रेसी, १९२० की नागपुर कांग्रेसके अध्यक्ष।

२. महात्मा मुंशीराम (१८५६–१९२६); बादमें श्रद्धानन्दके नामसे प्रसिद्ध आर्यसमाजके राष्ट्रवादी नेता जिन्होंने दिल्ली और पंजाबकी कार्यविधियोंमें प्रमुख भाग लिया।

३. सन् १८९०– ; कांग्रेसके नेता और स्वतन्त्रता संग्रामके सेनानी; पाकिस्तानमें भारतके प्रथम उच्चायुक्त।

४. मुहम्मद अली जिन्ना (१८७६–१९४८); मुसलमान नेता, पाकिस्तानके जनक और प्रथम गवर्नर जनरल।

५. यह भाषण कलकत्तामें आयोजित कांग्रेसकी विषय-समितिकी बैठकमें दिया गया था।

६. यहाँ मूलमें कुछ अंश कटा-फटा है।

कर देना चाहता हूँ। मेरे प्रस्तावपर जो पूर्ण स्वशासनसे सम्बन्धित संशोधन पेश किया गया उसे यदि मैंने स्वीकार किया है, तो इसलिए नहीं कि खिलाफतका सवाल स्वराज्यके सवालसे कम महत्त्वपूर्ण है। मेरे लिए तो खिलाफत और पंजाबके सवाल स्वराज्यके सवालसे भी बड़े हैं। मुझपर श्री पालका[1] संशोधन स्वीकार करनेके लिए भी दबाव डाला गया, लेकिन मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा कि अपनी अन्तरात्माकी खातिर ही नहीं बल्कि व्यावहारिक उपयोगिताकी दृष्टिसे भी इसे अस्वीकार नहीं करना चाहिए। इसपर लोगोंने मुझसे कहा कि इस तरह तो मैं अपने-आपको कांग्रेसकी नौका डुबानेवाला व्यक्ति सिद्ध कर दूँगा, और ऐसी ही दूसरी बातें भी कही गईं। लेकिन इन बातोंका मुझपर कोई असर नहीं पड़ता। अगर देशके हितके लिए कांग्रेसमें कभी दरार पड़ जाये तो मैं इसकी परवाह नहीं करता। अगर राष्ट्रवादियोंके बीच भी कोई भारी दरार पड़ जाये तो मुझे उसकी चिन्ता नहीं। कांग्रेस मेरी दृष्टिमें एक राष्ट्रीय संस्था है — राष्ट्रवादी अथवा नरम दलीय संस्था नहीं। पहले कांग्रेसका सिद्धान्त और विधान ऐसा था कि उसके मंचपर देशके सभी मतोंके लोगोंके लिए गुंजाइश थी। मैं तो यही समझता हूँ कि कांग्रेसको अपना यह रूप कायम रखना चाहिए। इस सम्बन्धमें किसी भी व्यक्तिपर किसी तरहका दबाव डालना गलत है। श्री सी० विजयराघवाचार्यने ऐसी बातें कही हैं जिनका मतलब यह है कि मैं अपनी अतीतकी यश-प्रतिष्ठाका नाजायज फायदा उठा रहा हूँ। इससे मुझे बहुत दुःख हुआ है। उन्होंने कहा, मैं आपसे कहता हूँ कि कांग्रेसमें मेरे सम्बन्धमें एक व्यावहारिक व्यक्तिके रूपमें ही कोई धारणा बनाइए। मेरे संशोधनमें एक राजनीतिक सिद्धान्त भी समाहित है और एक धार्मिक सिद्धान्त भी, क्योंकि मैं समझता हूँ कि राजनीतिमें भी अन्तरात्मा और सदाशयतापूर्ण व्यवहार उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि व्यक्तिगत जीवनमें, हालाँकि इस क्षेत्रमें परिणामका खयाल रखकर चलना पड़ता है और इसका भी ध्यान रखना पड़ता है कि किस उपायसे हम अपने लक्ष्यतक पहुँच सकते हैं। आप समस्त पूर्वग्रहोंको छोड़कर इस सवालपर अपना मत दीजिए। परिणाम चाहे जो निकले, लेकिन मेरा विचार तो यही है कि अल्पमतको कांग्रेससे अलग नहीं होना चाहिए, बल्कि उसमें बने रहकर अल्पमतको बहुमतमें परिवर्तित करनेके लिए पूरी कोशिश करनी चाहिए। अगर मैं हार जाऊँ तो मैं कांग्रेससे अलग नहीं होऊँगा, और जबतक कांग्रेसके मंचसे सभी मतोंके लोगोंके हृदयतक अपनी बात पहुँचा सकनेकी गुंजाइश देखूँगा तबतक मैं इसमें बना रहूँगा। लेकिन जब ऐसी गुंजाइश नहीं देखूँगा तो अवश्य इससे अलग हो जाऊँगा। मेरे विचारसे कांग्रेसका काम किसी बातपर स्वीकृति या अस्वीकृति देना और कार्रवाई करना नहीं है। इसका काम तो जनताके निर्णयको अभिव्यक्ति देना है। कांग्रेसके प्रस्तावके सम्बन्धमें मेरी जो कल्पना है, उसके अनुसार वह कोई दलगत प्रस्ताव नहीं है, और मैं समझता हूँ, उसके प्रस्तावोंके प्रति अन्ध-

१. विपिनचन्द्र पाल (१८५८–१९३२), बंगालके शिक्षा-शास्त्री, ओजस्वी वक्ता और राजनीतिक नेता।

श्रद्धा रखना भी ठीक नहीं है। केन्द्रीय खिलाफत समितिकी तरह कांग्रेस कोई आदेश नहीं जारी कर रही है और इसीलिए मैंने प्रस्तावमें "सलाह देती है" शब्दोंका प्रयोग किया है। अगर दो महीने बाद कांग्रेसको ऐसा लगेगा कि वह अभी जो विचार व्यक्त कर रही है वह विचार देशका विचार नहीं है तो वह उसमें परिवर्तन कर देगी। इसलिए इस मामलेमें अन्तरात्माको घसीटने या उसकी दुहाई देनेका कोई कारण नहीं है।

कौंसिलोंके बहिष्कारके सम्बन्धमें श्री गांधीने अपना विचार दुहराते हुए कहा कि कौंसिलें एक जालके समान हैं, जिसमें आपको कभी नहीं फँसना चाहिए। वे मृत्यु-पाश हैं। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि श्री पालका प्रस्ताव श्री दासके प्रस्तावसे काफी अच्छा है, लेकिन चुनावोंके बहिष्कारके सम्बन्धमें मेरे विचार बिलकुल स्पष्ट हैं। मैं तो हर मतदाताके पास जाकर यह कहना चाहता हूँ कि पंजाब और खिलाफतके सवालोंपर सरकारने देशका जो अपमान किया है, उसका स्मरण करके आप लोग चुनावोंका बहिष्कार करें। मैं स्वराज्यके प्रस्तावके आधारपर उनसे कोई अनुरोध नहीं करूँगा। मेरे लिए तो स्वराज्य लक्ष्यतक पहुँचनेका एक साधन-मात्र है, और मैं तो स्वराज्यके बदले कोई भी ऐसी शासन-प्रणाली स्वीकार करनेको तैयार हूँ जिसे मैं देशके लिए हितकर समझूँ।

जहाँतक मूल सिद्धान्तका सवाल है, मेरे विचार स्पष्ट हैं। इस सम्बन्धमें मुझे हर बातमें श्री शौकत अलीका समर्थन करना चाहिए, और मुझे खुद भी ऐसा लगता है कि हमें आज जिस परिस्थितिमें पहुँचा दिया गया है, उस परिस्थितिमें मैं सरकारके प्रति कोई वफादारी नहीं दिखा सकता। चाहे ब्रिटेनके साथ सम्बन्ध रखकर या जरूरत हो तो उसके बिना भी मैं अपना लक्ष्य प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करनेको तैयार हूँ। ध्यान सिर्फ इतना ही रखना है कि तरीके शान्तिपूर्ण हों और उद्देश्य देशका कल्याण हो। कमसे-कम मानसिक रूपसे तो ब्रिटिश सम्बन्धोंके प्रति मुझे कोई मोह नहीं रह गया है। अन्तमें श्री गांधीने श्रोताओंसे अनुरोध किया कि आप, चाहे इस ओर या उस ओर, अपना मत स्थिर कीजिए। मैं आपसे एक बार फिर कहता हूँ कि आपको बेताब होकर, आपके लिए फैलाये गये इस मृत्यु-पाशमें नहीं फँस जाना चाहिए — आपको शैतानी शक्तियोंका शिकार होनेसे बचना चाहिए। मैं पाश्चात्य संसारके आधुनिक और नये आदर्शोंमें विश्वास नहीं रखता। मेरा विश्वास तो प्राच्य संसारके प्राचीन और शान्तिपूर्ण आदर्शोंमें है। कारण, मैं यह भली-भाँति जानता हूँ कि भारतकी पसन्द, भारतका श्रेय क्या है, और मैं आपसे दुनियाको अपने प्राचीन आदर्शोंपर आधारित एक नया सन्देश देनेका अनुरोध करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ८-९-१९२०

१३८. असहयोग — एक धार्मिक आन्दोलन

मैं 'यंग इंडिया' के पाठकोंका ध्यान कुमारी एन मेरी पीटर्सनसे प्राप्त विचारपूर्ण पत्रकी[1] ओर दिलाता हूँ। कुमारी पीटर्सन कुछ वर्षोंसे भारतमें ही रह रही हैं और वे भारतीय मामलोंका ध्यानपूर्वक अध्ययन करती रही हैं। वे अपनेको सच्ची राष्ट्रीय शिक्षाके कार्योंमें लगानेके उद्देश्यसे अपने मिशनसे अलग होने जा रही हैं।

मैंने पूरा पत्र नहीं दिया है — सभी व्यक्तिगत बातें निकाल दी हैं। लेकिन उनकी दलील बिलकुल अछूती छोड़ दी गई है। यह पत्र छपानेके इरादेसे नहीं लिखा गया था। इसे मेरे वेल्लोरमें दिये गये भाषणके तुरन्त बाद लिखा गया था। लेकिन चूँकि यह वास्तवमें बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसलिए मैंने कुमारी पीटर्सनसे इसे छापनेकी अनुमति माँगी, और उन्होंने सहर्ष अनुमति दे दी।

इसे छापते हुए मुझे इस कारणसे और अधिक प्रसन्नता हो रही है कि इसके आधारपर मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि असहयोग आन्दोलन न ईसाइयतके विरुद्ध है, न अंग्रेजोंके विरुद्ध है और न यूरोपीयोंके। यह तो धर्म और अधर्म, प्रकाश और अन्धकारका संघर्ष है।

मेरा यह दृढ़ विचार है कि आजके यूरोपका आचरण ईसाइयतकी भावनाका द्योतक नहीं बल्कि शैतानियतका द्योतक है। और जब शैतान अपने ओठोंपर ईश्वर-का नाम लेकर सामने आता है उस समय वह सबसे अधिक सफल होता है। यूरोप आज केवल नाममात्रका ही ईसाई है। वास्तवमें वह पार्थिव समृद्धिके पीछे पागल है। ईसा मसीहने स्वयं कहा था: "किसी ऊँटके लिए सूईके छेदमें से पार हो जाना आसान है, लेकिन किसी धनी आदमीके लिए ईश्वरके साम्राज्यमें प्रवेश पाना असम्भव है।" आज उनके तथाकथित अनुयायी अपनी नैतिक प्रगतिका अन्दाजा अपनी पार्थिव सम्पत्ति-से लगाते हैं। इंग्लैंडका राष्ट्रगान ही ईसाइयतके विरुद्ध पड़ता है। जिस ईसा मसीहने अपने अनुगामियोंको अपने दुश्मनोंसे भी प्यार करनेका सन्देश दिया था, वे अपने दुश्मनोंके बारेमें कभी ऐसा नहीं कह सकते थे: "उसके शत्रुओंका मान-मर्दन हो, उनकी कूट योजनाएँ विफल हों।" डा० वैलेसने अपनी अन्तिम पुस्तकमें अपना यह सुविचारित विश्वास प्रस्तुत किया है कि विज्ञानकी जिस प्रगतिपर इतना अधिक गर्व किया जाता है उसने यूरोपका नैतिक स्तर ऊपर उठानेमें रंच-मात्र भी सहयोग नहीं दिया है। लेकिन पिछले महायुद्धने, यूरोपमें जिस सभ्यताका बोलबाला है, उसके शैतानी स्वरूपको इतना स्पष्ट कर दिया है जितना स्पष्ट वह पहले कभी नहीं हुआ था। विजेताओंने नैतिकताके सारे बन्धन तोड़ डाले हैं। घोरसे-घोर असत्य बोलनेसे भी वे बाज नहीं आये हैं। हर अपराधके पीछे उनका उद्देश्य धार्मिक अथवा आध्यात्मिक नहीं बल्कि भयंकर रूपसे भौतिक रहा है। लेकिन जो मुसलमान और हिन्दू सरकारके विरुद्ध संघर्ष कर रहे

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

है उनका उद्देश्य धर्म और सम्मानकी रक्षा करना है। अभी हालमें देशको स्तब्ध कर देनेवाली जो भयंकर हत्या हुई है उसके पीछे भी धार्मिक उद्देश्य ही बताया जाता है। नि.सन्देह धर्मको उसकी विकृतियोसे मुक्त करना आवश्यक है, लेकिन नैतिक उपलब्धिकी तुलनामे पार्थिव समृद्धिको प्राथमिकता देनेवाले लोगोके झूठे नैतिक दावोका खोखलापन दिखा देना भी उतना ही जरूरी है। किसी अज्ञानी धर्मान्ध व्यक्तिको गलत रास्तेसे विमुख करना आसान है, लेकिन पक्के बदमाशको बदमाशीसे हटाना आसान नही है।

लेकिन हम व्यक्तियो अथवा राष्ट्रोपर आरोप नही लगा रहे हैं। व्यक्तिगत तौरपर यूरोपमे भी हजारो लोग अपने परिवेशसे ऊपर उठ रहे है। मै तो यूरोपकी उस प्रवृत्तिके बारेमे लिख रहा हूँ जो उसके वर्तमान नेताओमे दिखाई देती है। इग्लैंड अपने नेताओ द्वारा भारतकी धार्मिक और राष्ट्रीय भावनाओको अपने पैरो तले कुचले जा रहा है। वह आत्मनिर्णयके बहाने मैसोपोटामियाके तेल-क्षेत्रोसे नाजायज फायदा उठानेकी कोशिश कर रहा है, हालाँकि अब शायद उसे वहाँसे हटना ही पड़े, क्योकि उसके सामने और कोई विकल्प नही रह गया है। और फ्रासके नेतागण फ्रांसके नामपर आदमखोरोको सिपाहियोके रूपमे प्रशिक्षित कर रहे है और फ्रास उनका हाथ नही रोकता। वह संरक्षक शक्तिके रूपमे अपने दायित्वकी बड़ी ही निर्लज्जताके साथ अवहेलना करता हुआ सीरियाके उत्साहको तोड़नेकी कोशिश कर रहा है। राष्ट्रपति विलसनने[1] अपनी मूल्यवान चौदह-सूत्री योजनाको कूड़के ढेरपर फेक दिया है।

भारत अहिंसक असहयोगके जरिये दरअसल बुराईकी इन्ही सम्मिलित शक्तियोके खिलाफ लड रहा है। और कोई चाहे ईसाई हो या यूरोपीय, अगर वह कुमारी पीटर्सनकी तरह यह महसूस करता है कि इस अन्यायको दूर करना ही है, तो वह असहयोग आन्दोलनमे शामिल होकर ऐसा कर सकता है। इस्लामकी प्रतिष्ठाके साथ धर्मकी रक्षाका सवाल जुड़ा हुआ है और भारतके सम्मानके साथ ऐसे प्रत्येक राष्ट्रका सम्मान जुड़ा हुआ है जो कमजोर है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-९-१९२०

१. टॉमस वुड्रो विल्सन (१८५६-१९२४), संयुक्त राज्य अमरीकाके २८ वें राष्ट्रपति।

१३९. साम्राज्यके अछूत

गुजरातके अविस्मरणीय सम्मेलनने[1] प्रवासी भारतीयोके दर्जेसे सम्वन्धित अपने प्रस्तावमे यह विचार व्यक्त किया है कि यह सवाल भी असहयोग करनेका एक और कारण बन सकता है। और वास्तवमें ऐसा हो सकता है। केनिया उपनिवेशने वहाँ-के भारतीयोको उनके समस्त अधिकारोसे वंचित कर देनेका निर्णय किया है, और वहाँ-के गवर्नरने इस निर्लज्जतापूर्ण निर्णयकी घोषणा की है। इस तरह खुले आम न्याय और औचित्यके नियमोका गला घोटे जाते तो और कही नही देखा गया। लॉर्ड मिलनर[2] और श्री मॉण्टेग्युने इस निर्णयका समर्थन किया है। और उनके भारतीय सहयोगी इस निर्णयसे सन्तुष्ट है। पूर्व आफ्रिकाका निर्माण भारतीयोने किया, वहाँ उनकी संख्या अंग्रेजोसे अधिक है, लेकिन तब भी वे कौसिलमे प्रतिनिधित्वके अधिकारसे लगभग वचित है। अव उनका निवास ऐसे स्थानोतक सीमित किय जानेको है जहाँ अंग्रेज लोग नही रह सकते। उन्हें न कोई राजनीतिक सुविधा होगी और न भौतिक सुख-सुविधा ही। अपने परिश्रम, धन और बुद्धिसे उन्होंने जिस देशका निर्माण किया, उसी देशमे वे "अछूत" वन जानेवाले हैं। वाइसरायने बस इतना कहकर सन्तोष मान लिया कि उन्हे यह रवैया पसन्द नही है और न्यायकी प्रतिष्ठाके लिए उन्हें कौनसे कदम उठाने चाहिए, इसपर वे विचार कर रहे हैं। यह स्थिति उनके लिए कोई नई नही है। पूर्व आफ्रिकाके भारतीयोने उन्हे भावी सकटकी चेतावनी दे दी थी। और अगर परमश्रेष्ठ अवतक राहत देनेका कोई उपाय नही ढूंढ पाये है तो वे भविष्यमे ढूंढ़ लेंगे, ऐसी कोई सम्भावना दिखाई नही देती। मै उनके भारतीय सहयोगियोसे पूछना चाहता हूँ कि क्या वे अपने देशभाइयोके अधिकारोंका यह अपहरण वरदाश्त कर सकते हैं।

दक्षिण आफ्रिकामें भी स्थिति इससे कम चिन्ताजनक नही है। मेरी आशकाएँ सत्य सिद्ध हो रही है और भारतीयोके स्वदेश लौटनेकी वातके ऐच्छिक रहनेके बजाय अनिवार्य हो जानेकी ही अधिक सम्भावना है। यह एशियाई विरोधी आन्दोलनका परिणाम है, क्षुब्ध भारतीयों को राहत देनेके लिए उठाया गया कदम नही। यह बहुत-कुछ असावधान भारतीयोको फँसानेके लिए फैलाये गये जालके समान दिखता है। सघ-सरकार एक राहत देनेवाले कानूनके एक खण्डसे गैरकानूनी लाभ उठाती जान पड़ती है। इस कानूनका उद्देश्य, अव जिस उद्देश्यको इसके साथ जोड़ दिया गया है, उससे विलकुल भिन्न था।

और जहाँतक फीजीकी बात है, स्पष्ट है कि वहाँ मानवताके प्रति जो घोर अपराध किया गया है, उसे दबा दिया जायेगा। मुझे आशा है कि जबतक फीजीमे सैनिक शासनकी कार्रवाइयोकी जाँच नही कराई जाती तबतक कोई भी भारतीय वहाँ

१. अहमदाबादमें आयोजित गुजरात राजनीतिक परिषद् ।

२. उपनिवेश मन्त्री, देखिए खण्ड ३ ।

जानेको तैयार नही होगा। लगता है भारत सरकारने ऐसा वचन दे दिया है कि जो आयोग मौकेपर पहुँचकर स्थितिकी जाँच करनेके लिए जानेवाला था, उसकी रिपोर्ट अगर अनुकूल हुई तो भारतसे फीजीको मजदूर भेजे जायेंगे।

ब्रिटिश गियानाके सम्बन्धमे वहाँसे प्राप्त अखबारोसे मालूम होता है कि वहाँ जो मिशन गया था, वह अभीसे यह घोषणा कर रहा है कि भारतसे मजदूर आयेंगे। मुझे तो दुनियाके उस हिस्सेमे भारतीयोके लिए कुछ कर सकनेकी कोई सच्ची सम्भावना दिखाई नही देती। ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भी हिस्सेमें हमारी कोई जरूरत नही है। अगर जरूरत है तो सिर्फ अछूतो — अन्त्यजो — के रूपमें, ताकि हम वहाँके यूरोपीय उपनिवेशियोके लिए मेहतरोका काम किया करे।

स्थिति स्पष्ट है। हम अपने ही घरमे अछूत बने हुए है। हमें वही चीज मिलती है जो सरकार देना चाहती है; वह नही मिलती जो हम माँगते है और जो माँगनेका हमें अधिकार है। हमे पूरी रोटी कभी नही मिल सकती, जूठे टुकडे भले मिल जाये। मैंने तरह-तरहके व्यंजनोसे सजी मेजसे ऐसे बड़े-बडे और मन-लुभावने टुकड़े फेंके जाते देखे है और मैंने देखा है कि अपनी टोकरीमें इन बड़े-बड़े टुकडोको गिरते देखकर हमारे अछूत भाइयोकी — हिन्दुत्वपर कलंक लगानेवाले इन लोगोकी — आँखोमे चमक आ गई है। लेकिन जो उच्चतर श्रेणीके हिन्दू है, वे अपनी टोकरियाँ एक खासी दूरीसे ही भरते है, और जानते है कि ये टुकडे उनके उपयोगके लायक नही है। इसी तरह अपनी बारी आने पर हमें गवर्नरी आदिके ऐसे बडे-बडे पद भी मिल सकते है, जिनकी असली शासकोंको कोई जरूरत नही रह गई है या यो कहे कि जिन्हे अब वे अपने भौतिक हितोकी सुरक्षाकी दृष्टिसे — भारतपर अपना राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व कायम रखनेके लिए — अपने पास नही रख सकते। वह घडी आन पहुँची है जब हमें अपनी सही स्थितिका एहसास होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-९-१९२०

१४०. स्वदेशी

स्वदेशीका प्रचार कमोबेश संगठित रूपसे पिछले अठारह महीनोसे चल रहा है। इसके कुछ परिणाम तो बडे आश्चर्यजनक और सन्तोषप्रद है। पजाब, मद्रास और बम्बईमे इसकी जड़े काफी जम गई है। देशके इन हिस्सोमे हाथसे कताई और बुनाईका काम धीरे-धीरे निरन्तर बढता ही जा रहा है। जिन घरोकी स्त्रियाँ कभी कोई काम नही करती थी, उन घरोकी स्त्रियोने भी इसके बलपर हजारो रुपये अर्जित किये है। और अगर इस ढंगका काम अभी इतना ही हो पाया है तो उसका कारण है कार्यकर्त्ताओकी कमी।

लेकिन इस लेखका उद्देश्य इस प्रकारके उज्ज्वल पक्षको प्रस्तुत करनेके बजाय अतीतकी भूलोको सामने रखना है। मैंने जो-कुछ देखा है उससे मै इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि यद्यपि इन तीन व्रतोंके[1] समारम्भ और स्वदेशी भण्डारोंके उद्घाटनके परिणामस्वरूप स्वदेशीकी भावनाको बड़ा उत्तेजन मिला है, लेकिन यदि उसका व्यावहारिक परिणाम इतना ही होता है कि उससे देशी मिलोके कपडेकी बिक्री बढती है तब तो इन तीनोमे से कोई भी व्रत लेने या स्वदेशी भण्डार खोलनेकी हिमायत करना अब सम्भव नही रहा। इस प्रचारका परिणाम यह हुआ है कि सूत और कपडेका उत्पादन बढनेके बजाय कीमते ही बढती गई है। स्पष्ट है कि जबतक सूत और कपडेके उत्पादनमे वृद्धि नही होती तबतक स्वदेशीका उद्देश्य पूरा नही होगा। इसलिए जो लाभ हुआ है वह आर्थिक नही, नैतिक ही है। लोग यह समझने लगे है कि अगर देशके असली हितोको आगे बढाना है तो सिर्फ स्वदेशी वस्त्र पहनना ही वाछनीय है।

लेकिन यह स्पष्ट है कि हमे स्वदेशी वस्त्रोकी बढती हुई माँगको पूरा करनेके लिए व्यावहारिक कदम उठाने है। बेशक, इसका एक तरीका है मिलोकी सख्यामे वृद्धि करना। लेकिन यह भी साफ है कि पूंजीपतियोको जनताके प्रोत्साहनकी जरूरत नही है। वे जानते है कि हमारी मिले जितना कपडा तैयार करती है, भारतको उससे बहुत अधिक कपडेकी जरूरत है। लेकिन मिले झाड-पातकी तरह बहुत आसानीसे नही उग आती। मजदूर प्राप्त करनेमे होनेवाली कठिनाईकी बात तो जाने दीजिये, इसमे बाहरसे मशीने मँगवानेकी बात भी है। और आखिरकार भारत आर्थिक दृष्टिसे और वास्तविक दृष्टिसे तबतक तो स्वतन्त्र नही हो सकता जबतक कि अपनी जरूरतका कपडा तैयार करनेके लिए उसे बाहरसे मशीने मँगवाते रहना पडे।

इसलिए स्वदेशीका विशुद्धतम और लोकप्रिय रूप है हाथ-कताई और बुनाईको बढावा देना और इस तरह तैयार किये गये सूत और कपड़ेके समुचित वितरणका प्रबन्ध करना। थोडी-सी बुद्धिमानी और मेहनतसे यह काम किया जा सकता है। जिस तरह लोग बिना किसी कठिनाईके अपने घरमे ही अपना भोजन तैयार कर लेते है, उसी तरह वे अपने कपडे भी अपने घरमे ही तैयार कर सकते है। और जैसे हर घरका अपना अलग रसोईघर होनेके बावजूद उपाहारगृह वगैरह मजेमे चल रहे है, वैसे ही हमारी अतिरिक्त आवश्यकताओकी पूर्ति मिले करती रहेगी। लेकिन जैसे दैवयोगसे सारे उपाहारगृहोके बन्द हो जानेपर अपने घरेलू रसोईघरकी बदौलत हमे भूखो नही रहना पडेगा, वैसे ही पश्चिमी दुनियाकी नाकेबन्दीके परिणामस्वरूप अगर हमारी एक-एक मिल बन्द हो जाये, तो भी हम अपनी घरेलू कताई-बुनाईकी बदौलत कभी नगे नही रहेगे। अभी बहुत समय नही बीता जब हम अपनी आर्थिक स्वतन्त्रताके इस रहस्यको समझते थे, और हम अब भी अगर थोडीसी मेहनत करे, थोडी सगठन-क्षमताका परिचय दे और जरा-सा त्याग करे तो यह स्वतन्त्रता पुन प्राप्त कर सकते है।

१. देखिए खण्ड १५।

इसलिए सच्ची स्वदेशी इस बातमें निहित है कि प्रत्येक घरमे चरखेका प्रवेश हो और प्रत्येक परिवार अपना कपडा खुद तैयार करे। आज बहुत-सी पजाबी स्त्रियाँ ऐसा कर रही है। और भले ही हम अपनी कपडेकी आवश्यकता सम्पूर्णत पूरी न कर सके, लेकिन इस तरह हम प्रति वर्ष करोडो रुपये बचायेगे। जो भी हो, एकमात्र स्वदेशी यही है कि हाथसे कताई और बुनाई करके कपडेका अधिक उत्पादन किया जाये। चाहे हम हाथसे कताई और बुनाईका काम करे या न करे, कमसे-कम इतना समझ लेना जरूरी है कि सच्ची स्वदेशी क्या है।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–९–१९२०

१४१. लोकशाही बनाम भीड़शाही

अगर ऊपरसे देखे तो भीडशाही और लोकशाहीके बीच भेदकी रेखा बहुत क्षीण है। फिर भी, यह भेद सर्वथा पूर्ण है और सदा बना रहेगा।

आज भारत बडी तेजीसे भीडशाहीकी अवस्थासे गुजर रहा है। यहाँ मैने जिस क्रियाविशेषणका प्रयोग किया है, वह मेरी आशाका परिचायक है। दुर्भाग्यवश ऐसा भी हो सकता है कि हमे इस अवस्थासे बहुत धीरे-धीरे छुटकारा मिले। लेकिन बुद्धिमानी इसीमे है कि हम हर सम्भव उपायका सहारा लेकर इस अवस्थासे जल्दीसे-जल्दी छुटकारा पा ले।

हममे भीडके शासन-प्रवाहमे बह जानेकी प्रवृत्ति बहुत अधिक है। १० अप्रैल, १९१९ को अमृतसरमें भीडका ही शासन था। और वह दुर्भाग्यपूर्ण दिन अहमदाबादमें भी भीडके ही शासनका दिन था। यह शासन अनुशासनहीन विध्वसलीलाके रूपमे प्रकट हुआ, और इसलिए वह विवेकशून्य, लाभ-रहित, दुष्टतापूर्ण और हानिकर था। युद्ध योजनाबद्ध विध्वस है, और इसमे जितना रक्तपात होता है उतना रक्तपात आजतक किसी भीडने नही किया होगा। किन्तु फिर भी हम युद्धकी चाहना करते है, क्योकि कुछ युद्धोके जो अस्थायी किन्तु चमत्कृत कर देनेवाले परिणाम निकले है उनको देखकर हम धोखेमे आ गये है। इसलिए अगर भारतको हिंसा द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है तो यह अनुशासित और (अगर हिंसाके साथ भी प्रतिष्ठा जोडी जा सकती हो तो) प्रतिष्ठित हिंसा अर्थात् युद्धके द्वारा ही प्राप्त करनी होगी। उस हालतमे यह भीड-शाही नही, लोकशाहीका काम माना जायेगा।

लेकिन आज मेरा उद्देश्य अहमदाबादके नमूनेकी भीडशाहीके बारेमे लिखना नही है। मै तो उस ढगकी भीडशाहीके सम्बन्धमे लिखना चाहता हूँ जिससे मेरा अधिक परिचय है। काग्रेस भीडके प्रदर्शनका माध्यम है, और हालाँकि इसका सगठन विचार-वान् स्त्री-पुरुष करते है फिर भी इसे उस अर्थमें, और केवल उसी अर्थमे, भीडका प्रदर्शन कहा जा सकता है। हमारे सार्वजनिक प्रदर्शन भी निर्विवाद रूपसे भीडकी

भावनाओके ही प्रदर्शन होते हैं। खिलाफतके सवालको लेकर मैंने पजाव, सिन्ध और मद्रासकी जो अविस्मरणीय यात्राकी उसमें मुझे ऐसे प्रदर्शनोको देखनका वहुत अनुभव हुआ। रेलवे स्टेशनोपर मुझे अक्सर यह देखकर लज्जा आई है कि प्रदर्शनकारियोने अपने नेताओके प्रति आदरके जोशमें हर चीज और हर एकको भूला दिया और अविचारके कारण, हालाँकि अनजाने ही, यात्रियोके सामान आदिको वरवाद कर डाला। ये प्रदर्शनकारी बेसुरी और कर्कश आवाज करते है, जिससे इनके नेताओको वडी परेशानी होती है। वे एक-दूसरेको रौद डालते है। सभी एक ही साथ शान्ति और व्यवस्थाके पवित्र नामपर शोर मचाने लगते है। दस स्वयसेवकोको एक साथ एक ही आदेश देते सुना गया है। स्वयसेवक जनताके रक्षक वने रहनेके वजाय, प्राय स्वय ही प्रदर्शनकारी वन जाते है। सभाओमे स्वयसेवकोकी शृखला जहाँ-तहाँसे टूट जाती है, और उन टूटी शृखलाओके बीचसे होकर, सभा-मचसे अपने लिए लाई गई गाडीतक नेताओको पहुँचानेका काम अक्सर खतरनाक होता है, और असुविधाजनक तो खैर सदैव ही होता है। इस काममे उन्हे पाँच मिनटसे अधिकका समय नही लगना चाहिए। लेकिन अक्सर ऐसा हुआ है कि एक-एक घटा लग गया है। भीड पीछे खिसककर रास्ता देनेके बजाय अपने प्यारे नेताओकी ओर ही जाती है, और इसलिए उनकी सुरक्षाकी व्यवस्था करनी पड़ती है। नेताओके लिए लाई गई गाडीपर जो चाहता है, वही चढ जाता है, और यह अपराध सबसे अधिक स्वयसेवक लोग ही करते है। नेताओको और गाडीपर बैठनेके अधिकारी अन्य व्यक्तियोको इस प्रकार चढे हुए लोगोको समझाना पडता है कि उन्हे लापरवाहीसे गाडीके पायदानपर नही चढना चाहिए। प्रदर्शनकारी लोग गाडीके हुडको जैसे-तैसे पकड लेते है जिससे उसको नुकसान पहुँचता है। ऐसे बहुत कम अवसर आये है, जब मैंने देखा हो कि भीड़ने गाडीके हुडको सही-सलामत रहने दिया हो। रास्तेमे भीड सडकके दोनो ओर कतार बाँधकर खड़ी होनेके बजाय गाडीके पीछे-पीछे चलने लगती है। परिणामत. वडी हुल्लडबाजी मच जाती है, हर क्षण दुर्घटनाकी आशका रहती है और अगर ऐसे प्रदर्शनोमे कोई दुर्घटना नही होती तो उसका कारण सयोजकोका कौशल नही वल्कि यह है कि भीड सारे धक्कमधक्के वरदाश्त करके पूरी तरह प्रसन्न रहनेको कृतसकल्प होती है। हर व्यक्ति दूसरोको धक्के देता है, लेकिन कोई भी अपनी बगलमे खडे किसी व्यक्तिको परेशान नही करना चाहता। और अन्तमे आता है सभाका दृश्य, जो वरावर अधिकाधिक चिन्ताका कारण वनता जा रहा है। वहाँ आपको जो-कुछ देखने और झेलनेको मिलता है वह है अव्यवस्था, कोलाहल, धक्कमधक्का, चीख-पुकार। आखिरको जब कोई अच्छा वक्ता बोलने लगता है तब अलवत्ता ऐसी शान्ति कायम हो जाती है कि आप सूई गिरनेकी आवाज भी सुन सकते है।

लेकिन जो भी हो यह है भीड़शाही ही। आप भीडकी दयापर निर्भर होते है। जबतक आपके और भीडके वीच परस्पर सहानुभूतिका भाव है तबतक सब-कुछ ठीक-ठीक चलता है। लेकिन जहाँ यह सहानुभूतिकी डोर टूटी कि स्थिति भयकर हो जाती है। अहमदाबादके ढगकी जो दुर्घटनाएँ जब-तब होती रहती है, उनसे आप भीडकी प्रवृत्तियाँ समझ सकते है।

तो हमें अव्यवस्थामे से व्यवस्थाका निर्माण करना है। और मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही कि इसका सबसे अच्छा और त्वरित उपाय है भीडके शासनके स्थानपर जनताका शासन लागू करना।

इस मार्गमें एक बाधा यह है कि हमने सगीतकी उपेक्षा कर दी है। सगीतका मतलब है लय, व्यवस्था। इसका असर बिजलीके समान होता है। यह मनके उद्वेलनको तुरन्त शान्त करता है। यूरोपीय देशोमे देखा है कि कोई-कोई सूझ-बूझवाला पुलिस सुपरिटेडेट कोई लोकप्रिय धुन बजवाना शुरू करके भीड़की शरारती प्रवृत्तिपर बहुत आसानीसे काबू पा लेता है।[1] दुर्भाग्यवश हमारे शास्त्रोकी तरह ही सगीत कुछ विशेष लोगोकी सम्पत्ति बन गया है। उससे या तो वेश्याएँ अपनी रोजी कमाती है या फिर उच्च कोटिके भक्तजन भगवद्भजनके लिए उसका उपयोग करते है। आधुनिक अर्थोमे कभी भी इसका राष्ट्रीयकरण नही हुआ है। अगर स्वयसेवको, बालचरो और सेवा समिति आदि संगठनोपर मेरा कोई बस चले तो मैं समवेत स्वरमे राष्ट्रीय गीतोका तालबद्ध गायन अनिवार्य कर दूँ। और इस उद्देश्यसे मै हर कांग्रेस या सम्मेलनमे बडे-बड़े सगीतज्ञोको बुलाकर लोगोको समूह-गानकी शिक्षा दिलाऊँ।

स्वयंसेवकोसे बहुत अधिक अनुशासन, तौर-तरीके और ज्ञानकी अपेक्षा की जानी चाहिए, जिस-तिस अवकचरे व्यक्तिको स्वयसेवकका पूरा दर्जा नही दे देना चाहिए। ऐसे स्वयसेवक सहायक होनेके बजाय बाधक ही सिद्ध होते हैं। आप एक ही अप्रशिक्षित सैनिकके किसी युद्ध-सेनामें प्रवेश पा जानेके परिणामकी कल्पना कीजिए। वह क्षण-भरमे सारी सेनामे अव्यवस्था पैदा कर सकता है। मुझे असहयोगके सम्बन्धमे जो सबसे बडी चिन्ता है उसका कारण इसके प्रति नेताओके उत्साहकी कमी नही; सद्भावना अथवा दुर्भावनासे प्रेरित आलोचना तो कदापि नही, और असहयोग आन्दोलनका दमन होनेकी, चाहे वह दमन कितना भी कठोर हो, तो कतई चिन्ता नही है। यह आन्दोलन इन बाधाओंपर तो विजय पा ही लेगा, बल्कि इनसे उसे बल भी मिलेगा। लेकिन सबसे बडी बाधा यह है कि हम अबतक भीडशाहीकी अवस्थासे नही निकल पाये है। और मेरे सन्तोषका कारण यह है कि भीडको प्रशिक्षित करनेसे ज्यादा आसान काम और कोई नही है। कारण सिर्फ इतना ही है कि भीड विचारशील नही होती और वह किसी विषयपर पहलेसे ही कोई धारणा नही बनाये रहती। वह तो आवेशके अतिरेकमे कोई काम कर गुजरती है, और जल्दी ही पश्चात्ताप भी करने लगती है। अलबत्ता हमारी सुसगठित सरकार पश्चात्ताप नही करती — जलियाँवाला, लाहौर, कसूर, अकालगढ, रामनगर आदि स्थानोपर किये गये अपने दुष्टतापूर्ण अपराधोके लिए खेद प्रकट नही करती। लेकिन गुजराँवालाकी पश्चात्ताप करती हुई भीडकी आँखोमे मैंने आँसू ला दिये है और अन्यत्र भी मैं जहाँ-कही गया, वहाँ अप्रैलके उस घटनापूर्ण महीनेमे भीडमे शामिल होकर शरारत करनेवाले लोगोसे मैंने खुलेआम पश्चात्ताप करवाया है। इसलिए अब मैं असहयोगका उपयोग लोकतन्त्रके

१. पुलिस सुपरिटेंडेंट अलेक्जेंडरने इसी प्रकार १८९७ में डर्बनकी भीड़से गांधीजीकी रक्षा की थी। देखिए आत्मकथा, भाग ३, अध्याय ३।

विकासके लिए कर रहा हूँ। और मैं सभी शकालु नेताओंसे सादर अनुरोध करता हूँ कि पहलेसे ही वे राष्ट्रीय शुद्धीकरण, प्रशिक्षण और बलिदानकी प्रक्रियाकी भर्त्सनासे अलग रहकर इस काममे सहायता दे।

अगले सप्ताह मैं इस बातके कुछ दृष्टान्त[1] दूँगा कि किस प्रकार भीडकी अव्यवस्थाके भीतरसे व्यवस्था कायम कर दी गई। जनतापर मुझे अगाध विश्वास है, उसके स्वभावमे आश्चर्यजनक सवेदनशीलता होती है। नेतागण उसमे अविश्वास न करे। असहयोगकी इस सामूहिक भर्त्सनाका अगर हम विश्लेषण करे तो उसका अर्थ यही होगा कि ये लोग जनताकी अपने-आपको नियन्त्रित रखनेकी क्षमतामे अविश्वास कर रहे है। यह लेख कुछ लम्बा हो गया है। इसलिए फिलहाल तो मैं मार्गदर्शनके लिए और तत्काल आचरण करनेके लिए कुछ नियम सुझाकर इसे समाप्त करूँगा।

१ प्रदर्शनोके लिए अधकचरे स्वयंसेवक नियुक्त न किये जाये। इसलिए उनका सरगना उसीको बनाना चाहिए जो सबसे अधिक अनुभवी हो।

२ प्रत्येक स्वयसेवकके पास हिदायतोकी एक पुस्तिका होनी चाहिए।

३ प्रदर्शनोके समय स्वयसेवकोंका मुआयना होना चाहिए और उन अवसरोपर उन्हे विशेष हिदायते देनी चाहिए।

४. स्टेशनोपर स्वयसेवकोको एक ही स्थानपर, अर्थात् जहाँ स्वागत-समितिके सदस्य खड़े हों वही, केन्द्रित नही रहना चाहिए। उन्हे भीड़मे अलग-अलग स्थानोपर तैनात करना चाहिए।

५. स्टेशनके भीतर बहुत ज्यादा लोगोको प्रवेश नही करना चाहिए। उनके प्रवेश करनेका यही परिणाम होगा कि लोगोको आने-जानेमे असुविधा होगी। उनके बाहर रुके रहनेमे भी उतना ही सम्मान है जितना भीतर प्रवेश करनेमे।

६. स्वयसेवकोका पहला कर्त्तव्य इस बातका ध्यान रखना होना चाहिए कि दूसरे यात्रियोका सामान न रौदा जाये।

७ प्रदर्शनकारियोको ट्रेन आनेके सूचित समयसे बहुत पहले ही स्टेशनके भीतर प्रवेश नही करना चाहिए।

८ गाड़ीके सामने यात्रियोके लिए समुचित रास्ता छोड देना चाहिए।

९ अगर सम्भव हो तो अपने प्यारे नेताके गुजरनेके लिए प्रदर्शनकारियोके ठीक बीचो-बीच एक और रास्ता होना चाहिए।

१० स्वयसेवकोको शृंखलाबद्ध रूपमे खडे नही रहना चाहिए। यह चीज अपमानजनक है।

११ प्रदर्शनकारियोको तबतक एक स्थानपर खडे रहना चाहिए जबतक सम्मानित नेता अपनी गाडीके पास न पहुँच जाये, या जबतक किसी प्राधिकृत स्वयसेवक द्वारा पहलेसे ही निर्धारित किया गया सकेत उन्हे न मिल जाये।

१२. राष्ट्रीय नारे निश्चित कर लेने चाहिए, और नारे जैसे-तैसे, जब-तब या हमेशा नही लगाने चाहिए। उनका घोष ट्रेनके आनेपर, सम्मानित नेताओंके अपनी

१. देखिए "कुछ उदाहरण", २२-९-१९२०।

गाड़ीके पास पहुँचनेपर और रास्तेमें काफी अन्तराल देकर करना चाहिए। किसीको इस आधारपर आपत्ति करनेकी जरूरत नही कि इस तरह तो प्रदर्शन बिलकुल यन्त्र-वत् हो जायेगा और उसका स्वयंस्फूर्त रूप समाप्त हो जायेगा। प्रदर्शन कितना स्वयं-स्फूर्त है, यह बार-बार और जोरोसे तरह-तरहके नारे लगानेपर नही बल्कि इस बात-पर निर्भर करेगा कि प्रदर्शनमे कितने लोग शामिल है और उनके चेहरेपर कैसा भाव है। किसी भी राष्ट्रके प्रदर्शनका स्वरूप वैसा ही होता है जिस ढंगका उसे प्रशिक्षण दिया जाता है। मसजिदमें चुपचाप इबादत करनेवाले मुसलमानको देखनेवाले के मनपर उससे कुछ कम प्रभाव नही पड़ता जितना प्रभाव मन्दिरमें जाकर अपनी आवाजसे या घंटी बजाकर अथवा दोनो तरहसे बहुत ही शोर मचाकर पूजा करनेवाले हिन्दूका पड़ता है।

१३. सड़कपर भीडको कतार बाँधकर खड़े रहना चाहिए और नेताओकी गाड़ियोके पीछे-पीछे नही चल पड़ना चाहिए। अगर आगे बढते हुए जुलूसमे पैदल चलनेवाले लोग शामिल हों तो उन्हें चुपचाप सुव्यवस्थित ढगसे अपने-अपने स्थान ले लेने चाहिए और ऐसा नही करना चाहिए कि जब मर्जी हुई जुलूसमें शामिल हो गये और जब मर्जी हुई उससे निकल गये।

१४. भीडको अपने सम्मान्य नेताओंकी ओर नही बढते जाना चाहिए बल्कि उन्हें स्थान देनेके लिए उनसे जरा अलग हट जाना चाहिए।

१५. जो लोग भीडके किनारेपर हों उन्हें आगेकी ओर ठेलना नही चाहिए बल्कि जब उनकी ओर दबाव पड़े तो उन्हीको पीछे हटना चाहिए।

१६. अगर भीड़में स्त्रियाँ हों तो उनकी विशेष रूपसे रक्षा की जानी चाहिए।

१७ छोटे बच्चोको भीडके बीच कभी नही लाना चाहिए।

१८ सभाओंमें स्वयंसेवकोको भीड़के बीच यत्र-तत्र खड़ा कर देना चाहिए। उन्हें झंडे तथा बिगुलके संकेत सीख लेने चाहिए, ताकि जब आवाज देकर एकके लिए कोई हिदायत दूसरेतक पहुँचाना असम्भव हो जाये तो वह इन संकेतोके द्वारा ऐसा कर सके।

१९ व्यवस्था बनाये रखना श्रोताओका काम नही है। वे तो अपनी जगहपर चुपचाप बैठे रहकर ही व्यवस्था बनाये रखनेमें मदद दे सकते है।

२०. और सबसे बड़ी बात यह है कि हर व्यक्तिको बिना कोई सवाल-जवाब किये स्वयसेवकोंकी हिदायतें मान लेनी चाहिए।

यह कोई सब दृष्टिसे पूर्ण सूची नही है। यह तो मात्र उदाहरणस्वरूप पेश कर दी गई है, और इसका उद्देश्य लोगोंको सोचने और आपसमे विचार-विमर्श करने-की प्रेरणा देना है। आशा है देशी भाषाओके सभी अखबार इस लेखका अनुवाद प्रस्तुत करेगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–९–१९२०

१४२. तीन राष्ट्रीय नारे

मद्रासके दौरेके सिलसिलेमें बेजवाडामे मैंने राष्ट्रीय नारोके सम्बन्धमे कुछ बातें कही थी और लोगोको सुझाव दिया था कि व्यक्ति विशेषकी अपेक्षा आदर्शोंकी जयके नारे लगाना ज्यादा अच्छा होगा। मैंने श्रोताओसे "महात्मा गाधीकी जय" और "मुहम्मद अली शौकत अलीकी जय"के बदले "हिन्दू-मुसलमानोंकी जय"का नारा लगानेको कहा था। मेरे बाद भाई शौकत अली बोले थे। उन्होने तो इस सम्बन्धमे नियम ही निश्चित कर दिया। उन्होने कहा कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके बावजूद मैं देखता हूँ कि अगर हिन्दू "वन्देमातरम्"का नारा लगाते हैं तो मुसलमान "अल्लाह ओ अकबर"की आवाज बुलन्द करते हैं और इसी तरह अगर मुसलमान "अल्लाह ओ अकबर" कहते है तो हिन्दू "वन्देमातरम्"की आवाज लगाते हैं। भाई अलीने ठीक ही कहा कि यह चीज कानोको बहुत कडवी लगती है और इससे प्रकट होता है कि लोग अब भी एक मनसे काम नही कर रहे हैं। इसलिए केवल तीन ही नारे स्वीकार किये जाने चाहिए। एक तो "अल्लाह ओ अकबर" का नारा हिन्दू और मुसलमान दोनोंको उल्लासके साथ लगाना चाहिए और इस तरह अपना यह विश्वास प्रकट करना चाहिए कि ईश्वर ही महान् है और कोई नही। दूसरा नारा होना चाहिए "वन्देमातरम्" या "भारतमाताकी जय"। तीसरा होना चाहिए "हिन्दू-मुसलमान-की जय", जिसके बिना भारतको जय नही मिल सकती और न लोग अपने इस विश्वासको सच्ची अभिव्यक्ति ही दे सकते हैं कि ईश्वर सबसे महान् है। बेशक मैं चाहता हूँ कि अखबारों और सार्वजनिक कार्य करनेवाले लोग मौलाना साहबका सुझाव अपनायें और जनताको केवल ये तीन नारे लगानेकी प्रेरणा दे। इन तीनोमे बहुत अर्थ भरा हुआ है। पहला नारा एक प्रार्थना, और अपनी लघुताकी आत्म-स्वीकृति है और इस तरह यह विनयशीलताका द्योतक है। यह नारा सभी हिन्दुओ और मुसलमानोको श्रद्धा और भक्तिसे लगाना चाहिए। हिन्दुओको ऐसे अरबी शब्दोका प्रयोग करनेसे कतरानेकी जरूरत नही जिनमे न केवल आपत्तिके लायक कोई बात नही है बल्कि जो हमे ऊपर उठानेवाले हैं। ऐसी बात नही है कि ईश्वरको कोई खास जबान ज्यादा पसन्द है। "वन्देमातरम्" के साथ जिन अद्भुत बातोकी स्मृति जुडी हुई है वह तो है ही, इसके अलावा यह एक राष्ट्रीय आकाक्षा, अर्थात् भारत पूरी ऊँचाईतक उठे, की अभिव्यक्ति है। और मैं "भारतमाताकी जय" की अपेक्षा "वन्देमातरम्" को ज्यादा पसन्द करूँगा, क्योकि यह उदारतापूर्वक बगालकी बौद्धिक और भावात्मक उच्चताको स्वीकार करना होगा। चूँकि हिन्दुओ और मुसलमानोके हृदयोके मिलनके बिना भारत कुछ रह नही जाता, इसलिए "हिन्दू-मुसलमानकी जय" एक ऐसा नारा है जिसे हमे कभी भूलना नही चाहिए।

इन नारोके सम्बन्धमे कोई विवाद नही होना चाहिए। जैसे ही कोई व्यक्ति इनमेसे कोई नारा शुरू करे, सभी लोगोको अपना-अपना प्रिय नारा बुलन्द करनेके

बजाय उसी नारेको दुहराना चाहिए। जो इसमें शामिल न होना चाहें वे इससे अलग रह सकते हैं, लेकिन उन्हें समझना चाहिए कि जब एक नारा शुरू किया जा चुका हो तब बीचमें ही अपना नारा उठाना शिष्टाचारका उल्लंघन करना है। अगर तीनों नारे, जिस क्रममें उन्हें रखा गया है, उसी क्रममें लगाये जायें तो ज्यादा अच्छा होगा। साथ ही नारे लगातार बहुत देरतक नहीं लगाने चाहिए। जब कोई प्रिय नेता किसी स्टेशनसे गुजरता है तो अक्सर लोगोंको बहुत देरतक नारे लगाते सुना जाता है। मुझे तो नहीं लगता कि इस तरह लगातार चीखनेसे राष्ट्रका तनिक भी हित होता है, अलबत्ता चीखनेवालोंके फेफड़ोंकी अनजाने ही कुछ कसरत जरूर हो जाती है। इसके अलावा हम जिसके प्रति अपने मनका उद्गार व्यक्त करनेके लिए इस तरह लगातार चीखते जाते हैं, उसके धैर्य और समयका भी हमें खयाल रखना चाहिए। यह राष्ट्रीय शक्तिका अपव्यय है कि अपने नेताकी प्रशंसामें या किसी और बातपर पूरे तीस-तीस मिनटतक नारे लगाते रहें और इस तरह उस व्यक्तिके लिए भी इसके अलावा और कोई रास्ता न छोड़ें कि वह भीड़को चुपचाप ताकता रहे। हमें उचित-अनुचितका ध्यान रखना सीखना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-९-१९२०

१४३. भाषण: कलकत्तेकी विशेष कांग्रेसमें[1]

८ सितम्बर, १९२०

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस महान् सम्मेलनके समक्ष यह प्रस्ताव रखनेका जो अवसर मुझे दिया गया है उससे मेरे कंधोंपर कितनी गम्भीर जिम्मेदारी आ पड़ी है। मैं यह भी समझता हूँ कि आप यह प्रस्ताव मंजूर कर लेंगे तो मेरी अपनी और आपकी भी मुश्किलोंमें कितनी वृद्धि हो जायेगी। मेरा प्रस्ताव आप मंजूर करें, इसका यही अर्थ होगा कि अबतक जनता अपने हक और सम्मानकी रक्षाके लिए जो नीति अपनाती रही, उसे हम बिलकुल बदल रहे हैं। मैं पूरी तरह जानता हूँ कि हमारे बहुतसे नेता इसके विरुद्ध हैं — ऐसे नेता जिन्होंने मातृभूमिकी सेवामें मेरी अपेक्षा कहीं अधिक समय और शक्ति लगाई है। चाहे जिस कीमतपर भी सरकारकी शासन-नीतिमें क्रान्ति कर डालनेको कहनेवाली इस नीतिका विरोध करना उन्हें अपना कर्त्तव्य प्रतीत होता है। यह सब पूरी तरह समझकर मैं आपके सामने खड़ा हूँ। मैं यह प्रस्ताव परमेश्वरसे डरते हुए और स्वदेशके प्रति अपने धर्मके भानसे प्रेरित होकर पेश कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप उसका स्वागत करें।

१. गांधीजीने असहयोग सम्बन्धी अपना प्रस्ताव इस भाषणके साथ पेश किया था। इसका मिलान यंग इंडिया, १५-९-२० में प्रकाशित विवरणसे भी कर लिया गया है।

गांधीका खयाल छोड़ दो

आप घड़ी-भरके लिए मुझे भूल जाइये, मुझपर ये आरोप है कि मैं बडा 'महात्मा' हूँ और तानाशाही चलाना चाहता हूँ। मैं साहसपूर्वक कहता हूँ कि मैं आपके पास 'महात्मा' बनकर नही आया और न हुकूमत करनेकी आकाक्षासे आया हूँ। मैं तो आपके सामने अपने अनेक वर्षोंके आचरणमें असहयोगका जो अनुभव मुझे हुआ, उसे उपस्थित करने खडा हुआ हूँ। मैं इस बातको माननेसे इनकार करता हूँ कि असहयोग देशके लिए बिलकुल नयी चीज है। हजारोकी भीडवाली सैकडो सभाओंने असहयोगको स्वीकार किया है और मुसलमानोने तो पहली अगस्तसे उसे आचरणमे लाने लायक स्वरूप भी दे दिया है। निश्चित किये हुए कार्यक्रमकी अधिकाश बाते थोडे-बहुत जोशके साथ अमलमे आती जा रही है। मैं फिर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस महत्त्वके प्रश्नपर विचार करनेमे आदमियोकी बात मत सोचिए, परन्तु धीरज और शान्तिसे प्रस्तावके गुण-दोषोंपर अपना मत निश्चित कीजिये।

सहनशक्तिकी तालीम

लेकिन प्रस्तावको महज मजूर कर लेनेसे आप छूट नही जायेगे। प्रत्येकपर प्रस्तावकी जो-जो धारा लागू होती हो, उस हदतक उसपर अमल शुरू कर देना पडेगा। मेरा अनुरोध है कि आप धीरज रखकर मेरा कहना सुन लीजिये। तालियाँ भी न बजाइये और आवाजकशी भी मत कीजिये। मेरे अपने लिए तो आप ऐसा करे, तो भी मुझपर बहुत असर नही होगा। परन्तु तालियोसे विचारोका प्रवाह रुकता है और आवाजकशी करनेसे बोलने और सुननेवालोके बीच जुडा हुआ तार टूट जाता है। इसलिए आपका अपना रवैया कुछ भी हो, फिर भी किसी वक्ताका मजाक उडाकर आप उसे बिठा न दीजिये। असहयोगमे तो अनुशासन और त्यागकी साधनाकी बात है और विरोधी पक्षके मतको धीरज और शान्तिसे समझ लेना असहयोगका लक्षण है। बिलकुल ही विरुद्ध विचारोको भी आपसमे सह लेनेकी वृत्ति जबतक हम पैदा नही कर लेगे, तबतक असहयोग असम्भव है। क्रोधके वातावरणमे असहयोग चल ही नही सकता। मै कडवे अनुभवसे एक बहुत महत्त्वका पाठ सीखा हूँ कि क्रोधको दवा दिया जाये। जैसे दबाकर रखी गई उष्णतामे से शक्ति उत्पन्न होती है वैसे ही सयममे रखे गये क्रोधसे भी ऐसा बल पैदा किया जा सकता है कि सारे ससारमे हलचल मचा दे। काग्रेसमे आनेवालो से मै एक ही सेनाके सैनिक-मित्रके नाते पूछता हूँ कि हम मत-विरोधके बावजूद एक-दूसरेको सहन करना सीख ले तो इससे अधिक अनुशासन और क्या हो सकता है?

कांग्रेस और अल्पमत

मुझसे कहा गया है कि मै तो बस विनाशका ही कार्य करता रहता हूँ; अपने प्रस्तावसे मैं देशके राजनैतिक जीवनमे दरार डाल रहा हूँ। काग्रेस किसी खास दलकी सस्था नही है। प्रत्येक मत-मतान्तरके लिए काग्रेसका मच खुला होना चाहिए। उसकी

सख्या थोडी है, इसीलिए किसी दलको काग्रेस छोडकर चले जानेकी जरूरत नही। उन्हे समय पाकर देशके लिए अपना मत रुचिकर बनाकर अपना ही बहुमत बना लेनेकी आशा रखनी चाहिए। हाँ, काग्रेस द्वारा निन्दित किसी भी नीतिको काग्रेसके नामसे कोई अख्तियार नही कर सकता। आप मेरा ढग नापसन्द करेगे तो मै कोई काग्रेस छोडकर नही चला जाऊँगा। आज मेरे विचारोका अल्पमत हो, तो जबतक वह बदल-कर बहुमत नही बन जायेगा, तबतक मै काग्रेसको समझाता ही रहूँगा।

एकमात्र उपाय — असहयोग

खिलाफतके सम्बन्धमें अन्याय हुआ है, इस बारेमे दो मत है ही नही। जो भी कुर्बानी करनी पडे उसे करके यदि मुसलमान इस समय अपनी इज्जतकी रक्षा नही करेगे तो वे इज्जतके साथ रह नही सकेगे और अपने हजरत पैगम्बरके धर्मका पालन नही कर सकेंगे। पजाबपर सितम ढाये गये, और यह समझ लीजिये कि जिस दिन एक भी पजाबीको पेटके बल चलना पडा, उस दिन सारा भारत पेटके बल चला। यदि हम भारतकी योग्य सन्तान है तो हमे यह कलकका टीका मिटा ही डालना होगा। इन दो जुल्मोका न्याय करानेके लिए हम महीनोसे जूझ रहे है, परन्तु अभी-तक हम ब्रिटिश सरकारको रास्तेपर नही ला सके। क्या लोग अबतक, इतना सब-कुछ करनेके बाद, इतना जोश और लगाव प्रकट करनेके बाद केवल अपनी क्रोधकी भावनाका थोथा प्रदर्शन करके ही बैठ रहना पसन्द करेगे। अध्यक्ष महोदयने अपने अध्यक्षीय भाषणमे पजाबके जुल्मोकी जो भर्त्सना की है उससे जोरदार भर्त्सना आपने शायद ही सुनी हो। अगर काग्रेस अनिच्छुक अधिकारियोको न्याय करनेके लिए विवश नही कर पाती तो फिर वह अपने अस्तित्वकी सार्थकता कैसे सिद्ध करेगी? अपने सम्मानकी रक्षा कैसे करेगी? और उनके खूनसे सने हुए हाथोसे कोई मेहरबानी स्वीकार करनेसे पहले यदि वह उनसे अपने कियेपर पश्चात्ताप नही प्रकट करा पाती तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उसने न्याय प्राप्त कर लिया या अपने सम्मानकी रक्षा कर ली?

असहयोगकी सर्वोत्तम योजना

इसी कारण मै अपनी असहयोगकी योजना आपके सामने रख रहा हूँ और आपसे आग्रह कर रहा हूँ कि इसकी जगह किसी भी दूसरी योजनाको आप मजूर न करे। मै आपसे यह इसलिए नही कहता कि मुझे अपनी योजनाका आग्रह है। मेरे कहने-का मतलब यह है कि आप मेरी योजनाको तभी मजूर कीजिये जब खूब विचार करके देख लेनेपर और कोई योजना इससे बढकर मालूम न हो। मै यह दावा करता हूँ कि इस योजनाको लोगोकी ओरसे काफी मात्रामे समर्थन मिला है और मै आपसे फिर यह कहनेकी हिम्मत करता हूँ कि इसपर आप अमल करे तो एक ही वर्षमे स्वराज्य ले सकते है। यह विराट् समाज इस प्रस्तावको केवल पास कर दे, इतना ही काफी नही, परन्तु लोग देशकी मौजूदा हालतको ध्यानमें रखकर दिन-दिन अधिक जोशके साथ उसपर अमल करे, तभी वह फलदायी हो सकता है।

त्याग और अनुशासनकी शिक्षा

असहयोगके सिवा एक और मार्ग लोगोके सामने था और वह था तलवार उठानेका। परन्तु भारतके पास इस समय तलवार नही है। यदि उसके पास तलवार होती तो मै जानता हूँ कि वह असहयोगकी इस सलाहको सुनता तक नही, परन्तु मै तो आपको यह बता देना चाहता हूँ कि आप अनिच्छुक शासकोके हाथो रक्तपातके मार्ग द्वारा जबरन न्याय प्राप्त करना चाहते हों, तो उस मार्गमे भी आवश्यक अनुशासन और त्यागके बिना आपका काम नही चलेगा। मैने आजतक नही सुना कि जिसमें कोई तालमेल न हो ऐसी किसी भीड़ने कभी लडाई जीती हो। परन्तु कवायदी सेनाको लडाई जीतते मैने और आपने भी देखा है। आपको ब्रिटिश सरकार या यूरोपकी सम्मिलित ताकतसे लोहा लेना हो तो हमे अनुशासन और त्याग पैदा करना ही होगा। मै लोगोको उस अनुशासन और त्यागकी स्थितिमे पहुँचा हुआ देखनेको उत्सुक हूँ। उस स्थितिको देखनेको मै उतावला हूँ। बुद्धिबलमे हम पिछडे हुए नही है। परन्तु मै देखता हूँ कि राष्ट्रीय पैमानेपर अभीतक हममे त्याग और अनुशासन नही आया है। कौटुम्बिक क्षेत्रमे तो हमने अनुशासन और त्यागका जितना विकास किया है उतना ससारके और किसी राष्ट्रने नही किया। उसी वृत्तिको राष्ट्रीय व्यवहारमे भी दिखानेका इस समय मै आपसे अनुरोध कर रहा हूँ।

विजयके मूलाक्षर

मै भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक इसी बातका पता लगाता घूम रहा हूँ कि लोगोंमें सच्ची राष्ट्रीय भावना आई या नही, लोग राष्ट्रकी वेदीपर अपना धन, अपनी सन्तान और अपना सर्वस्व बलिदान करनेको तैयार है या नही? और यदि लोग कुछ भी बाकी रखे बगैर अपना सब-कुछ होम देनेको आज तैयार हो तो इसी क्षण मै स्वराज्य आपके हाथमे रखवा देनेको तैयार हूँ। इतना त्याग करनेको लोग तैयार है? पदवीधारी अपनी पदवियाँ और सम्मानके पदोको छोड देनेको तैयार है? माँ-बाप देशकी लडाई लडनेके लिए अपने बच्चोकी किताबी शिक्षाका बलिदान करनेको तैयार है? मै तो कहता हूँ कि जबतक हम यह मानते रहेंगे कि जो स्कूल-कालेज सरकारके लिए क्लर्क बनानेके कारखाने मात्र है, उनमे बच्चोको न भेजनेसे हम बच्चोकी शिक्षाका बलिदान करते है, तबतक स्वराज्य हमसे सैकडो कोस दूर है। अन्य राष्ट्रोके हाथो दबी हुई कोई भी जनता एक तरफ उसकी मेहरबानी स्वीकार करती रहे और दूसरी ओर शासक जनतापर जो बोझ और जिम्मेदारी डाले उन्हे वह हटाती रहे, यह नही हो सकता। विजेताओकी तरफसे होनेवाली कोई मेहरबानी विजित जातिके कल्याणके लिए नही परन्तु शासकोके लाभके लिए ही होती है, यह बात जिस क्षण किसी भी पराधीन जातिको सूझ जाती है, उसी क्षणसे वह जाति शासकोको हर प्रकारकी स्वेच्छापूर्ण सहायता देना बन्द कर देती है और उस प्रकारकी सहायता लेनेसे साफ इनकार कर देती है। हमारी आजादीकी लडाईकी जीतके ये मूलाक्षर है। फिर भले ही वह आजादी साम्राज्यके भीतर हो या बाहर।

इज्जत-आबरूके लिए

मै चाहता हूँ कि मेरे देशबन्धु मेरी यह बात अच्छी तरह समझ ले; और यदि यह बात उनके गले न उतरी हो तो मेरा प्रस्ताव नामंजूर कर देना ही उनका कर्त्तव्य होगा। हिन्दू-मुसलमानके बीच सच्ची एकताको मै ब्रिटिश सम्बन्धसे हजारो गुना अधिक मूल्यवान् मानता हूँ और यदि उस सम्बन्ध और हिन्दू-मुस्लिम एकता, इन दोनोमें से किसी एकको ही चुननेकी नौबत आ जाये, तो मै हिन्दू-मुस्लिम एकताको ही पसन्द करूँगा और ब्रिटिश सम्बन्धको छोड दूंगा। इसी प्रकार एक तरफ पजाब और सारे भारतकी इज्जत और दूसरी ओर भारतमें कुछ समयतक अन्धेर, लडकोंकी शिक्षाकी बर्बादी, अदालतो और धारा सभाओकी बन्दी और ब्रिटिश सम्बन्धका त्याग — इनके बीच चुनाव करना पडे, तो भी पजाब और भारतका सम्मान और उसके साथ आनेवाली अराजकता और स्कूलो, अदालतो वगैरहके बन्द होने और इनके साथ जुडी हुई तमाम अव्यवस्थाका जरा भी आनाकानी किये बिना स्वागत करूँगा। आपका जी भी उतना ही जल रहा हो, आप भी इस्लामकी इज्जत अक्षुण्ण रखनेको मेरे जितने ही उत्सुक हो, पजाबकी इज्जत निष्कलक करनेको तडप रहे हों तो बिना सकोचके आपको यह प्रस्ताव मजूर कर लेना चाहिए।

धारा सभाओंका बहिष्कार

परन्तु इतना ही काफी नही है। मुद्देकी असल बातपर तो अभीतक मै आया ही नही। वह बात यह है कि धारा सभाओका, उम्मीदवार तथा मतदाता पूर्ण बहिष्कार करे। इस समय यही मुद्देका प्रश्न हो गया है, और मै जानता हूँ कि अन्य छोटी-मोटी बातोमे समझौता हो जायेगा, यदि इस सभाका मत-विभाजन होगा तो वह इसी बातपर होगा। धारा सभाओ द्वारा स्वराज्य मिलेगा या धारा सभाओका त्याग करके? क्या सचमुच धारा सभाओ द्वारा स्वराज्य लेनेकी बातमे लोगोको विश्वास है? इस सम्बन्धमे मै इस समय अधिक बहस नही करूँगा। धारा सभाओका बहिष्कार न करनेके पक्षमे जो-जो दलीलें पेश होगी, उनका जवाब मै बाद मे दूंगा। अभी तो इतना ही कहूँगा कि यदि ब्रिटिश सरकार और उसके मौजूदा अधिकारियोपर से हमारा विश्वास बिलकुल ही उठ गया हो, यदि हम यह मानते हो कि ब्रिटिश सरकारको अपने दुष्कृत्योके लिए किसी भी तरहका पश्चात्ताप नही हुआ तो आप यह मान ही कैसे सकते है कि इन सुधारोके जरिये अन्तमें स्वराज्य मिल जायेगा?

स्वदेशी

मै यह अवश्य चाहता हूँ कि लोग विदेशी मालका बहिष्कार करे परन्तु मै यह भी जानता हूँ कि इस समय यह बात नही हो सकती। जबतक हमे सूई-कांटेके लिए भी विदेशोका मुँह ताकना पडता है, तबतक विदेशी मालका बहिष्कार असम्भव है। परन्तु यदि आप लक्ष्यतक पहुँचनेको अधीर हो गये हो और कोई भी कुर्बानी करनेको तैयार हो, तो मै स्वीकार करता हूँ कि विदेशी मालका बहिष्कार करते ही पलक मारते भारत अपनी आजादी प्राप्त कर सकता है। इसलिए मैंने आनाकानी

किये बिना अपने प्रस्तावमें किया गया संशोधन स्वीकार कर लिया। इतनी ही बात है कि वह मेरे प्रस्तावकी सुन्दरताको जरा बिगाड़ देता है। मेरे नम्र मतानुसार प्रस्ताव-के बहिष्कार सम्बन्धी वे शब्द कार्यक्रमके सन्तुलनको अवश्य बिगाड़ते हैं। परन्तु यहाँ मैं साँचेमें ढले हुए कार्यक्रमकी वकालत करने खड़ा नहीं हुआ हूँ। मुझे तो लोगोंके आगे व्यावहारिक कार्यक्रम रखना है और मैं सहज ही स्वीकार कर लेता हूँ कि यदि हमसे विदेशी मालका बहिष्कार हो सके तो वह जबरदस्त चीज है। ऐसा बहिष्कार और स्वराज्य दोनों आपको पसन्द हों तो प्रस्तावके अन्तिम पैरेमें उनका उल्लेख है।

परिश्रमपूर्वक तैयार किया हुआ कार्यक्रम

अन्तमें मैं आपसे इस मामलेपर खूब गहरा विचार करके मत देनेका अनुरोध करता हूँ। उसमें आप मेरा खयाल न करें। मैंने देशकी सेवाएँ की हों तो उनका खयाल बीचमें न आने दीजिये। यहाँ उनका मूल्य नहीं हो सकता। मेरा यह जरा भी दावा नहीं है कि मैं जो कार्यक्रम देशके सामने रखूँ, वह भूल-रहित ही होगा। मैं इतना ही दावा करता हूँ कि मैंने यह कार्यक्रम तैयार करनेमें बहुत ही मेहनत की है, खूब विचार किया है और इसी निश्चयपर पहुँचा हूँ कि जो व्यावहारिक हो वही कार्यक्रम तैयार किया जाये। इन दो बातोंका आप अवश्य ध्यान रखें। आपके पास काम करनेवाली संस्था भी मौजूद है। फिलहाल यह तरीका तय करते हुए, विचार करनेके लिए ही सही, कार्यक्रमको प्रत्यक्ष स्वीकार करनेवाले हजारों अनुयायी आपके साथ खड़े हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-९-१९२०

१४४. भाषण: असहयोग प्रस्तावकी आलोचनाके उत्तरमें[1]

८ सितम्बर, १९२०

मैं जानता हूँ कि मुझे आपके प्रति अपना एक कर्तव्य निभाना है; असहयोग प्रस्तावके मुद्दोंपर जो आपत्तियाँ उठाई गई हैं, उनमें से कुछका उत्तर देना है। आपने अबतक एकके अलावा और सभी भाषण पूरे सम्मान और मनोयोगके साथ सुने हैं। मुझे इस बातका बड़ा दुःख है कि आपने श्री जमनादास द्वारकादासका[2] भाषण सुनने-से इनकार कर दिया। आपने पण्डित मालवीय, श्री जिन्ना और श्रीमती बेसेंटके भाषण सुने — और ये तीन व्यक्ति ही अपने महत्त्वके कारण हजारके बराबर हैं।

१. उक्त असहयोग प्रस्ताव कांग्रेसके कलकत्ता अधिवेशनमें पेश किया गया था। विरोधियों द्वारा प्रस्तावकी आलोचनाका उत्तर देते हुए गांधीजीने यह भाषण दिया था।

२. होमरूल लीगके एक प्रमुख सदस्य।

आपने श्रीमती बेसेंट और अन्य अनेक वक्ताओंकी दलीलें सुनी। इन सबने देशकी बडी सेवा की है। वे वर्षोंसे कांग्रेसका नेतृत्व कर रहे हैं, और उन्होंने अपनी शक्ति-भर आपकी सेवा की है। मैं जानता हूँ कि आप मेरे प्रस्तावके विरुद्ध पेश की गई उनकी दलीलोंपर पूरा ध्यान देंगे, और वे इस लायक हैं भी। लेकिन साथ ही, यहाँ मैं आपसे यह भी कह देना चाहूँगा कि मैं इस बातके लिए बहुत उत्सुक था कि ये लोग मुझे समझा दें कि मैंने निर्णय करनेमें कहाँ भूल की या अन्य कोई भूल हुई है। लेकिन अपने भाषणोंसे वे मुझे ऐसा-कुछ नहीं समझा पाये।

श्री दास और श्री जिन्नाका कहना है कि यह कार्य अव्यावहारिक है। क्या इसे कार्यान्वित नहीं किया जा सकता? मैं तो आपसे कहूँगा कि इस कार्यक्रमकी जो बात जिस व्यक्तिसे सम्बन्धित है, उसको वह व्यक्ति आज ही कार्यरूप दे सकता है। प्रस्तावमें एक क्रियाविशेषणका प्रयोग किया गया है — "धीरे-धीरे"। श्री दासने इस शब्दपर काफी जोर दिया है और उनका जोर देना बिलकुल ठीक ही था। इसमें उनका मंशा यह दिखाना था कि इस तरह कमसे-कम — स्कूलों और अदालतोंके — दो मामलोंमें कार्यक्रमकी अव्यावहारिकता स्वीकार की गई है। मैं नम्रतापूर्वक उनसे असहमति प्रकट करता हूँ। इस क्रियाविशेषणको स्थान देनेका मतलब है अपनी कमजोरीके लिए गुंजाइश रखना और इस बातको स्वीकार करना कि हम अभी पूरी तरहसे तैयार नहीं हैं। मैं मानता हूँ कि इसके कारण ये दो विषय बिलकुल ठप हो जा सकते हैं। यह बात बहुत हदतक इसपर निर्भर करेगी कि राष्ट्रके भीतर सचमुच कितनी क्षोभकी भावना जगी है, और उससे भी अधिक इसपर कि सच्चे कार्यकर्त्ता इस कार्यक्रमके लिए कितना काम करते हैं। लेकिन आप इतना तो समझ ही रखिए कि जबतक केन्द्रीय खिलाफत समिति द्वारा स्थापित असहयोग समितिका अस्तित्व बना हुआ है, तबतक ये और ऐसे ही अन्य बहुत-से विषय आपकी स्वीकृतिके लिए आपके सामने रखे जाते रहेंगे, आपको आर्थिक नहीं बल्कि राष्ट्र-हित, केवल राष्ट्र-हितसे सम्बन्धित, हर तरहके प्रलोभन दिये जाते रहेंगे; और आपकी देशभक्तिको झकझोरने के लिए हर तरहकी कोशिशें जारी रहेंगी, ताकि आपको कर्मके लिए प्रेरणा मिले। अपने सिर्फ डेढ महीनेके ही अनुभवके बाद मुझे इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं रह गया है कि हमें देशका पूरा सहयोग मिलेगा। मैं मानता हूँ कि यह कार्य-क्रम अव्यावहारिक नहीं है, क्योंकि जो कोई भी इसमें निहित बातों को कार्यान्वित करना चाहेगा, आज ही कर सकता है। ऐसा नहीं कि यह बात बिलकुल असम्भव है, क्योंकि अगर कोई विदेशी मालका पूरा बहिष्कार करना चाहे तो वह ऐसा कर सकता है।

लेकिन मेरी नम्र सम्मतिमें, अन्य विषयोंसे भिन्न, यह विषय लगभग असम्भव अवश्य है। वैसे यह चीज सिद्धान्ततः बिलकुल सही है, लेकिन मैंने अपने कार्यक्रममें इस विषयको शामिल करनेके कारण आपको बता दिये हैं। मेरी बडी इच्छा थी कि मैं राष्ट्रके सामने केवल वे ही विषय रखूं जिन्हें, अगर राष्ट्र चाहे और इसके लिए वह तैयार हो तो, आज ही व्यावहारिक रूप दिया जा सके।

एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात है, जिसे आपके सामने स्पष्ट कर देना चाहिए। मेरा कहना है कि मैंने असहयोगका जैसा कार्यक्रम तैयार किया है अगर आप उसे कार्यान्वित करना चाहते हो तो आपसे अपेक्षा की जाती है कि यदि तनिक भी सम्भव हो तो आप कल ही अपने बच्चोको स्कूलोसे हटा ले और वकील लोग कलसे ही अपनी वकालत बन्द कर दे। आप हमारे अभियानके क्रममे देखेंगे कि हम यह अनुरोध आपसे बार-बार करेंगे — यह आवाज आपके कानोतक बार-बार पहुँचायेंगे। लेकिन जैसा मैंने कहा है, अगर आप इस कामके लिए तत्काल तैयार न हो तो मैंने प्रस्तावमे जिस क्रियाविशेषणका प्रयोग किया है उसके अनुसार आपको सोचनेके लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। श्रोताओमे से कुछ लोगोने इन दो बातोका जो अर्थ लगाया है, उसे मैं स्वीकार नही करता। उनका कहना है कि क्या यह ठीक नही होगा कि बच्चोको राष्ट्रीय शालाओकी स्थापनाके बाद ही स्कूलोसे हटाया जाये और वकील पचायती अदालते कायम होनेके बाद ही वकालत बन्द करे। यह तो मेरे विचारसे, बिना बुनियादके इमारत खडी करने-जैसी बात है। जबतक हमे राष्ट्रीय शालाओमे पढनेके लिए पर्याप्त विद्यार्थी नही मिल जाते तबतक मै स्कूली-इमारतोकी सुन्दर कतार या फूसकी कुटिया तक खड़ी नही कर सकता। जब कोई देश युद्ध-रत रहता है — चाहे वह युद्ध हिंसात्मक हो या अहिंसात्मक — तो उसके लिए यह एक अनिवार्य स्थिति होती है कि वह अपने स्कूल और अदालते बन्द कर दे। मैंने दो युद्ध तो स्वय ही झेले हैं। इन दोनो युद्धोके दौरान सम्बन्धित देशोके सभी स्कूल बन्द रहे और यही बात अदालतोके सम्बन्धमे भी हुई। कारण शायद यही था कि वादियो-प्रतिवादियोके पास अपने निजी झगडोके बारेमे सोचनेका समय नही था और बच्चोके माता-पिता इस निष्कर्षपर पहुँचे कि राष्ट्रके इतिहासके इस नाजुक दौरमे उनके लिए उत्तम शिक्षा यही होगी कि उस सकट-कालमे शिक्षा जारी रखनेकी बुराईके बजाय कुछ समयतक वह स्थगित रहे। ये दोनो बाते इस सम्बन्धमे हमारी भावनाकी तीव्रता की कसौटी है, और अगर राष्ट्रकी भावना तीव्र है तो वह इन दोनोको अवश्य ही कार्यान्वित करेगा।

इस बातपर बहुत ज्यादा जोर दिया गया है कि यह कार्यक्रम प्रारम्भ करनेके लिए सूचना बहुत कम समय की दी गई है। अगर तथ्य वैसे ही होते जैसा लोग मानते है, तो मेरे खयालसे यह दलील बहुत ठोस होती। लेकिन यह बात श्री पाल और श्री जिन्नाके ध्यानसे भी शायद उतर गई है कि पूर्व-सूचनाका सवाल तो, दरअसल कार्यक्रममे कुछ नई बाते — अर्थात् स्वराज्यकी माँग आदि — शामिल करनेसे ही उठा है। अगर हम स्वराज्यकी नई माँग करते तो यह दलील निर्णायक होती। एक सम्माननीय और शालीन राष्ट्रके नाते हमे ब्रिटिश लोगोको बहुत स्पष्ट और जोरदार शब्दोमें इस बातकी सूचना पहले ही दे देनी चाहिए, लेकिन मेरे कार्यक्रममे यह बात इस रूपमें नही रखी गई है। मैंने यह कहा है कि स्वराज्यके बिना पजाबके ढगके अन्यायोकी पुनरावृत्ति रोक पाना असम्भव है, इसलिए इस कार्यक्रममे स्वराज्यकी माँग कोई स्वतन्त्र माँग नही है। यह माँग इसलिए की गई है कि कांग्रेसके विचारसे, भविष्यमें

एसी परिस्थितियोसे वचनेके लिए स्वराज्य आवश्यक है। मेरी नम्र सम्मतिमे इसमें कोई बुराई नही है। लेकिन मैं इससे भी आगे कहूँगा कि श्री जिन्ना और श्री मालवीय, दोनोने श्री पालका कार्यक्रम स्वीकार किया है। उसमे आप देखेंगे कि कुछ वातोको तो कलसे ही कार्यान्वित करना है, और संशोधनमें यह कहा गया है कि दूसरी वातोको वादमे कार्य-रूप दिया जायेगा, और जव हमारा दल[1] अपना काम कर रहा है, इस वीच भारतकी जनताको असहयोग कार्यक्रमकी कुछ वातोपर अमल करना है। मेरा खयाल है कि कांग्रेस इस पूर्व-सूचनाको, समस्त राष्ट्रकी प्रतिष्ठामे किसी तरहका वट्टा लगाये विना, अपने उद्देश्यके लिए वखूवी समझ सकती है; और ये दोनो शब्द-पद अर्थात् कांग्रेसका उद्देश्य और राष्ट्रकी प्रतिष्ठा परस्पर पर्यायवाची हैं।

अव मैं अपने कार्यक्रमके अन्तिम महत्त्वपूर्ण मुद्दे अर्थात् कौंसिलोंके वहिष्कार-पर आता हूँ। इस सम्वन्धमे सवसे पहले तो यह स्वीकार करना चाहिए कि अवतक मैंने कौंसिलोमे प्रवेश करनेके पक्षमे एक भी दलील नही सुनी है। इसके पक्षमे जो-कुछ कहा गया है वह वस इतना ही कि गत ३५ वर्षोंमे हमने इन कौंसिलोंके माध्यम-से थोडा-वहुत काम किया है; नई कौंसिले दरअसल हमारे आन्दोलनके परिणामस्वरूप ही वनाई गई हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि वात ऐसी ही है। और चूँकि मतदाताओं-को प्रभावित करके हम कौंसिलोमे वहुमत प्राप्त कर सकते हैं इसलिए अव रोध-अवरोध-की नीतिके लिए ज्यादा गुंजाइश है — और मैं इस वातसे भी सहमत हूँ। अत उनका कहना है कि अब हम कौंसिलोमें जाकर सरकार अथवा प्रशासनको — जब जैसा प्रसग हो — ठप कर दे सकते हैं। मैं इन लोगोसे नम्रतापूर्वक कहूँगा कि इंग्लैंडके इतिहासका मैंने जो अध्ययन किया है, उससे मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि हर सस्था रोध-अवरोधके वलपर ही फूलती-फलती है, और अंग्रेजोंके सार्वजनिक जीवनमे तो यह वात एक व्यावहारिक सूत्र-सी वन गई है। आप निश्चित मानिए कि जव हम कौंसिलोके लिए चुनाव लडेंगे तो राष्ट्रवादियोके कौंसिलोमे प्रवेश न पानेसे सर-कारको हर्ष नही होगा। सरकार आज राष्ट्रवादियोके कौंसिलोमे प्रवेशके लिए वहुत उत्सुक है। मैं आपके सामने जो साक्ष्य पेश करने जा रहा हूँ, उसे आप उतना ही महत्त्व दीजिए जितने महत्त्वके लायक वह है। हो सकता है यह कोई ठीक साक्ष्य न हो लेकिन जैसा भी है, सामने है। मेरा यह निश्चित मत है कि लोकसेवी जन जो भी सेवा करना चाहते हैं, वह कौंसिलोंमें प्रवेश करनेके वजाय कौंसिलसे वाहर रहकर भी कर सकते हैं, और इस तरह वे जो सेवा करेंगे, वह उस सेवासे वहुत अधिक मूल्यवान होगी जो वे कौंसिलोमे रहकर करेंगे। देशके एकमात्र लोकमान्य व्यक्ति स्वर्गीय तिलककी महान् शक्तिका रहस्य क्या था? क्या आप मानते हैं कि अगर वे कौंसिलोंमें जाते तो भारतके करोड़ो लोगोंके हृदयोपर उन्होंने जैसा अद्वितीय प्रभाव डाला, वैसा प्रभाव डाल सकते?

लोगोने आपके सामने उनके विचारके सम्वन्धमे साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं। लेकिन मुझे वड़ा दु ख है कि आपके सामने इस सम्वन्धमें कोई साक्ष्य नही पेश किया गया

१. खिलाफत समितिका।

कि इस कार्यक्रमके बारेमें वे क्या सोचते थे। लेकिन चूंकि मामला आपके सामने पेश कर दिया गया है, इसलिए मुझे इस कष्टकर कर्त्तव्यका पालन करना ही पड़ेगा कि मेरे पास भी जो साक्ष्य हैं, वे आपके सामने पेश कर दूँ। उनकी इच्छाके अनुसार उनके स्वर्गवाससे पन्द्रह दिन पहले मैं श्री शौकत अलीके साथ उनसे मिलने गया था। उस अवसरपर उन्होंने कहा था कि "व्यक्तिश मैं तो मानता हूँ कि कौंसिलोंमें जाकर जहाँ जरूरी लगे वहाँ प्रतिरोध पैदा करना और जहाँ जरूरी लगे वहाँ सहयोग करना अच्छा रहेगा।" लेकिन जब श्री शौकत अलीने उनसे कहा कि "लेकिन तब दिल्लीमें मुसलमानोको आपने जो वचन दिया था उसका क्या होगा?" दिल्लीमे उक्त अवसरपर मैं भी मौजूद था। श्री तिलकने श्री शौकत अलीकी बात सुनते ही कहा, "अरे, हाँ! अगर मुसलमान यह काम करते है तो!" वे अपने वाक्यपर बहुत जोर देकर बोले, उन्होंने सिर्फ कौसिलोके बहिष्कारकी ही चर्चा नही की। उन्होंने कहा "मै आपको वचन देता हूँ कि उस हालतमे मेरी पार्टी आपके साथ होगी।" मैं नही चाहता कि आप इस साक्ष्यके महत्त्वको बहुत बढा-चढाकर आँके। मै जानता हूँ कि उनका नाम सुनते ही लोग मन्त्र-मुग्ध से रह जाते है, और हममें से बहुत लोग मानते है कि स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए वे जिस तरह अनवरत प्रयत्न करते रहे, वह बेजोड है और जो ऐसा मानते है उनके लिए उनके विचारका बहुत अधिक महत्त्व होगा ही। इन बातोको देखते हुए, जिस विचारको उनका विचार बताकर पेश किया जायेगा उससे लोगोका बहुत अधिक प्रभावित होना स्वाभाविक है।

इन कौसिलोका मतलब क्या है? मै आपके और नेताओके सामने भी एक सीधी-सी कसौटी रखता हूँ कि हम जिन दो अन्यायोपर विचार करनेके लिए यहाँ एकत्र हुए है, वे है खिलाफत और पजाबके सम्बन्धमे किये गये अन्याय। क्या आप यह मानते है कि कौसिलोमे जाकर बहस-मुबाहसा करके आप ब्रिटिश मन्त्रियोपर कोई सीधा प्रभाव डाल सकते है और टर्कीके बारेमे हुई सन्धिकी शर्तोमे परिवर्तन और पजाबके मामलेपर पश्चात्ताप करनेके लिए उन्हे मजबूर कर सकते है? हमारे आदरणीय भाई और नेता पण्डित मालवीयजीने कहा है कि काग्रेस उप-समितिने जो माँगे की है, वे सब अब शीघ्र ही स्वीकार कर ली जायेगी, क्योकि कुछ या अधिकाश अधिकारी जा चुके है या जल्द ही चले जायेगे और अप्रैलमे वाइसराय भी चले जायेगे। मै नम्रतापूर्वक कहना चाहूँगा कि जब मै वह रिपोर्ट लिखने बैठा तो उसमे कमसे-कम मेरा तो ऐसा कोई मंशा नही था। मैने स्पष्ट कहा, और हमारे बीच जो बहस हुई उसके दौरान भी कहा, कि अधिकारियोंकी बरखास्तगी उनका कार्यकाल समाप्त होनेके कारण नही, बल्कि वे जिस अयोग्यता और बर्बरताके अपराधी पाये गये है, उसके कारण होनी चाहिए; और वाइसराय अगर अपने पदकी अवधिसे पूर्व त्यागपत्र नही देते तो उन्हें पेंशन लेनेपर मजबूर कर दिया जाये। वाइसरायके अपना कार्यकाल समाप्त हो जानेके कारण जानेसे मेरा उद्देश्य पूरा नही होता; और यही बात अधिकारियोपर भी लागू होती है और अगर अधिकारियोको जबरन पेंशन लेनेपर मजबूर भी कर दिया जाता है, लेकिन इन विशेष कारणोंके आधारपर नही, तो भी मेरा

उद्देश्य पूरा नही होगा। मै चाहता हूँ कि सरकार पश्चात्ताप करके अपना हृदय शुद्ध करे, उसका हृदय परिवर्तन हो, लेकिन मुझे पश्चात्तापका, हृदय परिवर्तनका और मैत्री-भावका कोई लक्षण दिखाई नही देता। अमृतसर काग्रेसके समय मैने सोचा था कि सरकारने हमारे प्रति मैत्रीका हाथ बढाया है, और यही कारण था कि मैने उस समय सरकारसे सहयोग करनेका सुझाव दिया था, लेकिन बादमे जब खिलाफत और पजाब-सम्बन्धी अन्यायोके बारेमें कोई राहत मिलती नही देखी तब यह दु खद बात मेरी समझमे आई कि ब्रिटिश मन्त्रियो और भारत सरकारका मशा भारतीय जनताके प्रति कभी भी सदाशयतापूर्ण नही रहा है। पश्चात्ताप करनेके बदले भारतको एक चुनौती दी गई है कि अगर आपको ब्रिटिश शासनके अधीन रहना है तो उसकी कीमत है आतकवाद। इसलिए मैं इस आतंकवादी शासकदलसे कह देना चाहता हूँ कि आपकी अदालतें आपको मुबारक हो और अगर हम अपने बच्चोको राष्ट्रीय स्कूलोमें नही ला सकते तो आपने उनकी शिक्षाकी जो व्यवस्था की है, वह भी आपको मुबारक हो।

लेकिन निश्चय ही मै इन स्कूलोंकी स्थापनाके लिए प्रतीक्षा करनेको तैयार नही हूँ। आवश्यकता आविष्कारकी जननी है। जब हमारे बच्चोंके लिए कोई स्कूल नही रह जायेगा तो मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारे सम्माननीय नेता पण्डित मालवीयजी स्वयं ही जगह-जगह जाकर राष्ट्रीय स्कूलोके लिए चन्दा करेगे। मै भारतीयोको मानसिक तौरपर भूखा नही रखना चाहता। मै चाहता हूँ कि हर भारतीयको उचित शिक्षा दी जाये, अपने राष्ट्रकी गरिमाको पहचानने और यह समझनेकी शिक्षा दी जाये कि जो शिक्षा उसे दासताका पाठ पढ़ाती है, वैसी शिक्षा वह न ले।

बहुत-सी दूसरी बातें भी है, लेकिन मै दो बाते फिरसे कहना चाहूँगा। हम जो सूक्ष्म भेद करते है, जनता उसे नही समझ पायेगी। वह तो यही समझेगी कि असहयोगका श्रीगणेश चोटीसे अर्थात् नई कौसिलके बहिष्कारसे हो, जिसे गलतीसे प्रातिनिधिक संस्था कहा गया है; और अगर देशके सबसे अधिक समझदार और विचारशील व्यक्ति सरकारके साथ सहयोग करना बन्द कर देंगे तो मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सरकारकी आँखें खुल जायेगी। शर्त यही है कि जो सहयोग करना बन्द करें वे चादर तानकर सो न जाये, बल्कि देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक घूम-घूमकर हर शिकायतकी ओर सरकारका नही बल्कि जनताका ध्यान आकृष्ट करे। मेरा विश्वास है कि अगर मेरे कार्यक्रमको कार्यान्वित किया जाता है तो कांग्रेस वर्ष-प्रतिवर्ष विकसित होती चली जायेगी और उन शिकायतोंकी सार्वजनिक अभिव्यक्तिका असली मंच बन जायेगी। इस तरह सरकारके अधिकाधिक अन्याय जनताके सामने आते जायेंगे और इन अन्यायोकी ठीक अनुभूति होनेपर इस महान् राष्ट्रका मानस प्रज्वलित हो उठेगा। अपने क्षोभको इस तरह केन्द्रीभूत और सयमित करके राष्ट्र उससे ऐसी शक्ति उत्पन्न कर सकेगा, जो अदम्य होगी।

कृपया इस बुनियादी और निश्चित तथ्यकी ओर ध्यान दीजिए कि मुस्लिम लीगने प्रस्ताव पास किया है[2] कि व कौसिलोका पूरा बहिष्कार करेगी। क्या आप

यह ठीक मानते है कि हमारे शरीरका एक चौथाई हिस्सा एक ओरको शक्ति लगाये और तीन चौथाई दूसरी ओरको? अगर वे समानान्तर चलें तो मै इसे तो समझ सकता हूँ, लेकिन यहाँ तो वे एक-दूसरेकी विपरीत दिशाओमे जोर लगायेंगे और क्या यह ठीक होगा कि वे ऐसा करे? अगर मुसलमान लोग कौसिलोको पाप मानकर उससे अलग रहें तो क्या हिन्दू रोध-अवरोधकी नीतिसे भी कुछ पा सकते है? इस्लाममें धर्मकी स्थिति यही है। वे मानते है कि कौसिलोंमे जाकर वफादारीकी शपथ लेना पाप है। भारतके व्यावहारिक लोगों और राजनीतिज्ञोको इस निश्चित तथ्यकी ओरसे अपनी आँखे बन्द नही कर लेनी चाहिए। अगर वे सोचते हो कि वे मुसलमानोके दिमागको बदल देंगे और मुसलमानोंके ये सकल्प एक सदेच्छा-मात्र है तब तो निश्चय ही मेरी इन दलीलोंमे कोई दम नही है। लेकिन अगर आप मानते हो कि मुसलमान यह सब कर गुजरनेको व्यग्र है, वे इस अन्यायका अनुभव करते है, और जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा, इस अन्यायका असर मिटने और इसे भुला दिये जानेके बजाय यह प्रति दिन और भी तीव्र होता चला जायेगा, तो आप समझ जायेंगे कि समयके साथ-साथ मुसलमानोकी शक्ति बढती चली जायेगी — चाहे हिन्दू उनकी मदद करे या न करे। अब यही वह सवाल है, जिसपर काग्रेसको निर्णय करना है। इसलिए मेरा नम्र निवेदन है कि मैंने ये कदम पूरी तरह विचार करके ही उठाये है, और मेरे लिए यह कोई आनन्द और प्रसन्नताकी बात नही है कि मै — एक मामूली और अकेला व्यक्ति जिससे हर क्षण भूल होनेकी सम्भावना है — देशके अच्छेसे-अच्छे नेताओंके विरुद्ध खड़ा होऊँ। लेकिन यहाँ सवाल कर्त्तव्य-पालनका है। मै स्पष्ट देख रहा हूँ अगर हम हिन्दुओं और मुसलमानोके सम्बन्ध सुदृढ और स्थायी बनाना चाहते है तो जबतक वे सही मार्गपर हों, जबतक वे शुद्ध तथा सच्चे साधनोका सहारा लेकर चल रहे हो, जबतक वे ऐसी माँगे न कर रहे हो जो उनके बूतेके बाहर हो, और जबतक वे हिंसापर उतारू न हों तबतक उनके साथ पूरा सहयोग करनेके अलावा और कोई रास्ता नही है।

और भी बहुत-सी बाते कही गई है, जिनका जवाब मै दे सकता था। लेकिन अबतक आपके धैर्यकी बहुत ज्यादा परीक्षा ले चुका हूँ इस प्रस्तावके पक्ष-पोषकके रूपमे नही, बल्कि मैंने सर्वथा निरपेक्ष भावसे आपके सामने एक-एक दलील पेश कर दी है, और यही मेरा कर्त्तव्य समाप्त हो जाता है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ मैंने आपके सामने एक निर्णायककी तरह सारी दलील बहुत ही सीधे और सही ढगसे पेश करनेकी कोशिश की है, और अगर मेरे लिए एक निर्णायककी निरपेक्षतासे बोलना तनिक भी सम्भव हो पाया है तो उसके लिए मै पण्डित मालवीयका बहुत ऋणी हूँ। उनके साथ मेरा जो सम्बन्ध है, वह देशको मालूम नही है। उन्हे सन्तुष्ट करनेके लिए, उन्हे प्रसन्न करनेके लिए मै अपने प्राणतक उत्सर्ग कर सकता हूँ और उनका अनुगमन करूँगा। लेकिन जब सवाल पवित्र कर्त्तव्य और विश्वासका हो जाता है तो मै अन्य सभी दायित्वोसे मुक्त हो जाता हूँ। सच तो यह है कि ऐसी स्थितिमें स्वय वे ही मुझे अपना अनुगमन करनेके दायित्वसे मुक्त कर देते है, और अपने इस पूज्य

पुरुषसे भिन्न मार्ग अपनाते हुए जब मैं आपसे यह कहता हूँ कि आप स्वयं अपनी विवेक-बुद्धिसे काम लीजिए और अपने मनमें मेरे व्यक्तित्वका तनिक भी खयाल न रखिए तो आप विश्वास करें कि मैं यह बात पूरी गम्भीरता और ईमानदारीके साथ कह रहा हूँ। अन्तमें मैं आपसे कहूँगा कि अगर आप यह प्रस्ताव पास करते हैं तो स्वयं ही सोच-समझकर वैसा कीजिए। अगर आप सोचते हो कि आपमें से प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रके नामपर, राष्ट्रके नामके लिए और मुसलमानोंकी स्थायी मैत्री प्राप्त करनेके लिए यह थोड़ा-सा बलिदान कर सकता है तो आप यह प्रस्ताव स्वीकार करनेमें तनिक भी नहीं हिचकिचायेंगे; लेकिन अगर आप ये शर्तें पूरी नहीं कर सकते तो इसे अस्वीकार करनेमें भी कोई संकोच-विकोच नहीं दिखायेंगे। (हर्ष-ध्वनि)

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ११-९-१९२०

१४५. भेंट: प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नपर

[९ सितम्बर, १९२०][1]

श्री गांधीने प्रवासी भारतीयोंके सवालोंपर भेंट देते हुए अपने विचार बहुत स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि फीजीके गवर्नरका खरीता एकपक्षीय है और उसका उद्देश्य सरकारी अपराधोंकी लीपा-पोती करना है। उन्होंने कहा कि मजदूरोंकी स्थितिका अध्ययन करनेके लिए फीजीको कोई ऐसा आयोग भेजनेका विचार मुझे नापसन्द है, जिसे अशान्तिके कारणोंकी जाँच करनेका अधिकार न हो। फीजी प्रवासके किसी भी प्रयत्नका मैं विरोध करूँगा और फीजीके भारतीयोंको भारत वापस चले जानेकी सलाह देना चाहूँगा।

पूर्व आफ्रिकाके सम्बन्धमें श्री गांधीने कहा कि वहाँकी सरकारमें पूर्वग्रह है, वह गोरोंकी पक्षपाती और एशियाइयोंकी विरोधी है। पूर्व आफ्रिकामें भारतीयोंकी संख्या काफी है और वे प्रभावशाली भी हैं। उन्हें संगठित होना चाहिए। उनमें गोरे निवासियोंका प्रभाव रोकनेकी पर्याप्त सामर्थ्य है।

श्री गांधीने बताया कि मैं अब एक भी भारतीय मजदूरके ब्रिटिश गियाना जानेके पक्षमें नहीं हूँ। यह पूछनेपर कि अब जब कि आपने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया है, प्रवासी भारतीयोंके लिए आप किस तरह काम करनेकी बात सोचते हैं, उन्होंने कहा कि ब्रिटिश राजनयिकोंमें मेरा विश्वास समाप्त हो गया है। जबतक हम पूर्ण उत्तरदायी सरकार नहीं प्राप्त कर लेते तबतक हम भारतीय जनताके सामने उसके प्रवासी भाइयोंकी शिकायतें पहलेसे भी अधिक उभारकर पेश करते रहेंगे, और

१. देखिए "फीजीमें आतंक", २२-९-१९२०।

इस तरह देशमें क्षोभकी भावना इतनी तीव्र हो जायेगी कि उसके दबावको सरकार झेल नहीं पायेगी, और उसे इस सम्बन्धमें कोई कारगर कदम उठाना ही पड़ेगा, क्योंकि जनताके ध्यानमें जो भी अन्याय लाया जायेगा, उससे असहयोगकी गति तेज हो उठेगी और उसी हदतक — आज भारत सरकार और साम्राज्य सरकारमें अराजकता, अन्याय और शोषणकी जिन ताकतोंका बोलबाला है — वे ताकतें बिखर जायेंगी। हम सार्वजनिक सभाएँ बुलाकर विरोध करना जारी रखेंगे,[1] परन्तु यह सब अपने-आपको ऐसी ताकतसे लैस करनेके लिए होगा जो सरकारको यह कर्त्तव्य करनेके लिए बाधित करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-९-१९२०

१४६. भाषण: अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें[2]

९ सितम्बर, १९२०

बैठककी कार्रवाई समाप्त करते हुए पण्डित मालवीयने कहा... कि यद्यपि मेरे मनमें श्री गांधीके प्रति अत्यन्त आदर और प्रेम है, फिर भी मुझे कर्त्तव्यवश बड़े दुःखके साथ कांग्रेसके असहयोग-सम्बन्धी प्रस्तावके बारेमें उनसे अपना पूर्ण मतभेद प्रकट करना पड़ रहा है... इसलिए मैंने निश्चय कर लिया है कि... मैं कांग्रेस द्वारा ग्रहण किये हुए मार्गसे भिन्न मार्ग अपनाऊँगा... कांग्रेसमें भी रहूँगा और साथ ही विधान परिषद्के लिए चुनाव भी लड़ूँगा।

श्री कस्तूरी रंगा आयंगरने कहा कि मुझे पण्डितजीका वक्तव्य सुनकर सान्त्वना मिली है, क्योंकि कुछ कांग्रेसी मित्रोंको, जो कौंसिलोंके उम्मीदवार हैं, इस सम्बन्धमें सन्देह था कि वे चुनाव लड़ते हुए कांग्रेसके सदस्य रह सकते हैं या नहीं।... पण्डितजीका आचरण उनके लिए उदाहरणस्वरूप होगा और इस प्रस्तावके सम्बन्धमें जिन अन्य लोगोंकी स्थिति ऐसी ही है, वे उनके उदाहरणका अनुकरण कर सकते हैं।... सदस्यगण इस मामलेमें श्री गांधीके विचार सुनना चाहेंगे।

श्री गांधीने कहा, जैसा कि मैं अखबारोंमें, विषय-समितिमें और अन्य स्थानोंमें भी बता चुका हूँ, आपसे फिर कहूँगा कि अल्पसंख्यक पक्षके सदस्योंको कांग्रेसका सदस्य बने रहनेका पूरा अधिकार है और वे अपने विश्वास और अन्तरात्माके आदेशके अनुसार इस प्रस्तावके मुताबिक आचरण करने या न करनेको स्वतन्त्र हैं। इस मामलेमें श्री मालवीयजीने जो रुख अपनाया है, उससे मैं सहमत हूँ।

१. इसके बादके शब्द १३-९-१९२० के हिन्दूसे हैं।

२. कलकत्तामें।

श्रीमती बेसेंटने कहा, चूंकि मैं असहयोगके बिलकुल विरुद्ध हूँ, इसलिए कांग्रेस महासमितिकी सदस्याके रूपमें यह अनुभव करती हूँ कि मुझे समितिमें रहकर कार्य न करना चाहिए और मैं महासमितिकी अगली बैठकोंमें अगले कांग्रेस अधिवेशनतक सम्मिलित नहीं होऊँगी।

लेकिन श्री मालवीयने कहा कि समितिके पदेन सदस्यके रूपमें मैं समितिकी बैठकमें तबतक भाग लेता रहूँगा जबतक कि मुझे उसे छोड़नेके लिए मजबूर न कर दिया जाये। . . .

अन्तमें श्री मालवीयने सभी उपस्थित लोगोंसे प्रार्थना की कि वे उतावलीमें कोई कदम न उठायें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १४–९–१९२०

१४७. भेंट : मोतीलाल घोषसे[1]

१० सितम्बर, १९२०

महात्मा गांधीके साथ बाबू गिरधारीलाल,[2] श्री जवाहरलाल नेहरू और श्रीमती सरलादेवी थीं। परस्पर अभिवादनके बाद महात्मा गांधीने बातचीत इस प्रश्नसे शुरू की कि क्या यह सच है कि बाबू मोतीलालने विशेष कांग्रेसके अध्यक्षको कौंसिलोंके बहिष्कारका विरोध करते हुए पत्र लिखा।

मोतीबाबू : यह सच नहीं है। मैंने कांग्रेस और उसकी विषय-समितिको अध्यक्षकी मार्फत केवल एक सन्देश भेजा था, जिसमें सुझाव दिया था कि असहयोग प्रस्तावपर जल्दबाजीमें निर्णय न लिया जाये, बल्कि नागपुर कांग्रेसतक इसपर विचार करना मुल्तवी रखा जाये।

महात्मा : कौंसिलोंके बहिष्कारके सम्बन्धमें तथा कांग्रेसने जो प्रस्ताव पास किया उसकी अन्य बातोंके बारेमें आपकी क्या राय है?

मैं पिछले पचास वर्षोंसे असहयोगी रहा हूँ। कौंसिलोंको मैंने हमेशा एक ढकोसला, एक धोखा और जाल माना है। मैंने स्वयं इनमें से किसीमें प्रवेश करनेकी कोशिश नहीं की है और अपने नेताओंको भी हमेशा ऐसा ही करनेकी सलाह देता रहा। परन्तु मैं इतना अवश्य कहूँगा कि इस बातका तथा प्रस्तावकी अन्य बातोंका सम्बन्ध बहुत ही थोड़े लोगोंसे है। मुट्ठी-भर खिताबयाफ्ता लोग अपने खिताब छोड़ें या न छोड़ें,

१. कलकत्ताकी *अमृतबाजार पत्रिका*के सम्पादक।

२. लाला गिरधारीलाल; पंजाब वाणिज्य मण्डलके उपाध्यक्ष; अमृतसर फ्लोर ऐंड जनरल मिल्सके प्रबन्ध निदेशक।

या थोड़े-से लोग, जो कौंसिल जाते हैं, जायें या न जायें — इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि जनसाधारणको कैसे जगाया जाये। आपको ऐसी आवाज बुलन्द करनी चाहिए जिसे जनता समझ सके।

क्या आप यह बात जरा और स्पष्ट रूपसे समझानेकी कृपा करेंगे?

मैं दो दृष्टान्त देकर अपनी स्थिति स्पष्ट करूँगा। सन् १८६६ में बंगालसे बागान-मालिकोंको भागनेके लिए यहाँके किसानोंके उस जबरदस्त संगठनके बारेमें तो आपने सुना ही होगा?

हाँ, जरूर।

और क्या आप जानते हैं कि यह सब, छः महीनेमें छः लाख लोगोंका एका, संगठन, जिसकी कोई मिसाल संसारके किसी भी देशके इतिहासमें प्राप्त नहीं है, कैसे किया गया? यह सिर्फ उस अन्यायके विरुद्ध एक जबरदस्त आवाज उठाकर किया गया, जिस अन्यायको एक-एक किसान समान रूपसे महसूस कर रहा था। जैसे ही यह आवाज उठाई गई, वह सीधे सभी लोगोंके दिलोंमें जाकर बैठ गई।

हाँ, मैंने उसके बारेमे सुना है।

यह सब इस तरह हुआ। बागान-मालिकोंके अत्याचारसे किसान लोग कराह रहे थे। उन्होंने देखा कि उनका निस्तार नीलकी खेती न करनेमें ही है। इसलिए उनमें से कुछ बुद्धिमान लोगोंने किसी पवित्र स्थानपर शपथ ली कि नीलकी खेतीसे वे कुछ भी सरोकार नहीं रखेंगे। उसके बाद उन्होंने और लोगोंको भी वही शपथ लेनेको राजी किया। उनका नारा था "कोई भी किसान नीलको हाथ नहीं लगाये — भले ही उसे इतनी यातना दी जाये कि उसकी मृत्यु हो जाये।" और यद्यपि उनपर साहबोंने अत्यन्त पाशविक अत्याचार किये, किन्तु वे झुके नहीं। जब साहब लोग हार गये, तो अधिकारियोंने हस्तक्षेप किया और उन्हें डरा-धमकाकर और आरजू-मिन्नत करके भी दबानेकी कोशिश की। वे चट्टानकी तरह दृढ़ रहे; क्या — "साहब, आप कहते हैं कि आप हमें जेलमें डाल देंगे। डाल दीजिए, किन्तु ये हाथ अब नील नहीं छुएँगे।" — "केवल इस फसल-भर बुवाई कर लो और उसके बाद तुम जो-कुछ करना चाहो करनेको स्वतन्त्र रहोगे।" — "साहब, हमने भगवान्के नामपर कसम खाई है। हम इसे कभी नहीं तोड़ सकते।" यह था दलित और अनपढ़ किसानोंका साहस और दिलेरीसे भरा जवाब।

मोतीबाबूने इसके बाद आयरलैंडके "जमीन" के नारेका उल्लेख किया, जो आइरिश लोगोंमें एकता पैदा करनेके लिए बुलन्द किया गया था। उन्होने कहा — "आप जानते ही हैं कि आइरिश नेता जनताको जगानेमें तबतक असफल रहे जबतक कि पार्नेलने 'जमीन' का वह नारा नहीं बुलन्द किया जिसने प्रत्येक आइरिशपर असर डाला। आइरिश लोगोंने उसे समझा, क्योंकि जमीनकी शिकायत सभीकी शिकायत

थी। परिणामस्वरूप 'लैंड लीग' का संगठन हुआ, जो आइरिश राष्ट्रीयताका उद्गम-केन्द्र बन गया।"

मोतीबाबूने महात्माजीको सम्बोधित करते हुए कहा — "तो मेरे भाई, आपको जनसाधारणके लिए एक सामान्य नारेके बारेमें सोचना चाहिए, जो उनके दिलपर सीधा असर कर सके। मुझे लगता है कि दो चीजें हैं, जिन्होंने आम जनता तथा शिक्षित-वर्ग, दोनोंको एक भयानक दुःस्वप्नकी तरह त्रस्त कर रखा है। एक तो है पुलिसका जुल्म, और दूसरा है इस अपराधी प्रशासनका निष्ठुरतापूर्ण स्वरूप। क्या इन दोनों बातोंको लेकर सबको प्रभावित करनेवाले एक नारेको जन्म नहीं दिया जा सकता?" महात्मा गांधीने कहा कि मैं इस मामलेपर विचार करूँगा।

इसके बाद महात्मा गांधीने कौंसिलोंके बहिष्कारपर अपने विचार स्पष्ट किये? उन्होंने कहा कि जो लोग कौंसिलोंमें जाते हैं उनमें से अधिकांशका नैतिक बल टूट जाता है। हमारे ये प्रतिनिधि लोग जितनी सेवा कौंसिलोंमें रहकर कर सकते हैं, उससे कहीं अधिक सेवा वे कौंसिलोंसे बाहर रहकर कर सकते हैं। मोतीबाबू इस बातसे सहमत थे।

इसके बाद ब्रिटिश न्यायालयोंके बहिष्कारका प्रश्न आया। महात्मा गांधीने कहा कि ये न्यायालय हमारे देशवासियोंको नैतिक और बौद्धिक दासतामें रखनेके उतने ही बड़े साधन हैं, जितने बड़े साधन कौंसिलें हैं। हमें इन बुराइयोंसे हर हालतमें छुटकारा पाना है।

मोतीबाबूका उत्तर था कि मैं आपकी बातसे सहमत हूँ, परन्तु चोट तो बुराईकी जड़पर करनी चाहिए। अधिकांश वकील अपनी वकालत नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि इसीके बलपर तो वे मोटरगाड़ियाँ आदि रख पाते हैं और अन्य ऐश कर सकते हैं। आप जनताके बीच जाकर उसे समझाइए कि लोग मुकदमेबाजी छोड़ दें। महात्मा गांधीने जवाब दिया कि मैं ऐसे बहुत-से वकीलोंको जानता हूँ जो अपनी वकालत छोड़नेको तैयार हैं। मोतीबाबूने कहा कि इसपर विश्वास करना मेरे लिए बड़ा कठिन है। तथापि यदि कुछ वकील ऐसा करनेको राजी भी हों, तो अधिकांश तो राजी नहीं ही होंगे। हमें बुराईकी जड़पर ही प्रहार करना चाहिए।

बच्चोंको स्कूलोंसे हटानेके प्रश्नपर महात्मा गांधीने कहा कि बच्चोंकी मानसिक वृत्तियाँ स्कूलोंमें ही ढलती हैं। जब महात्मा गांधीसे यह बतानेका आग्रह किया गया कि यदि बच्चे स्कूलोंसे हटा लिये जाते हैं तो वे क्या करेंगे, तब उन्होंने कहा कि उस हालतमें नये स्कूल खोले जायेंगे। जबतक देशके भविष्यके निर्माता ये बच्चे अपने बौद्धिक पोषणके लिए इन स्कूलोंपर निर्भर रहेंगे तबतक इस देशकी किस्मत सुधरनेकी कोई आशा नहीं है।

बाबू मोतीलालने जवाब दिया कि वर्तमान स्कूल और कालेज चूँकि हमारे पैसेसे चलाये जा रहे हैं, न कि इंग्लैंडके पैसेसे, इसलिए मैं नहीं समझता कि हमारे बच्चे

उन संस्थाओंमें दी जानेवाली शिक्षाका लाभ तबतक क्यों न उठायें जबतक कि हम अपनी राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाएँ स्थापित न कर लें। हाँ, हमें यह सावधानी जरूर बरतनी चाहिए कि सरकारी स्कूलों और कालेजोंमें हमारे बच्चोंके नैतिक बलपर कोई आँच न आये।

चर्चाका अन्तिम विषय था बाबू विपिनचन्द्र पालके संशोधनके उस अंशका हटाया जाना, जिसमें उन्होंने लोकमान्य तिलकके नामपर एक कोष संग्रह करनेकी बात कही थी। बाबू मोतीलालने इस बातपर दुःख प्रकट किया कि यह अंश हटा दिया गया और श्री गांधीके प्रस्तावमें जोड़ा नहीं गया। उन्होंने कहा कि अब हम सबसे पहले जो बात चाहते है वह यह है कि सिर्फ इसी देशमें नहीं, बल्कि इंग्लैंड और अमरीकामें भी हमारा प्रचार हो। हमें राष्ट्रीय स्कूल और कालेज तथा पंचायती अदालतें स्थापित करनेके लिए पैसेकी भी जरूरत है। बाबू मोतीलालने महात्माजीसे अपील की कि वे ऐसा एक कोष नागपुर कांग्रेसमें प्रारम्भ करें।

भेंटके अन्तमें मोतीबाबूने श्री गांधीका आलिंगन किया और उन्हें आशीर्वाद दिया।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १७–९–१९२०

१४८. कांग्रेस

लाला लाजपतरायकी अध्यक्षतामे हुए विशेष अधिवेशनमे कांग्रेसको जैसे महत्त्वपूर्ण सवालपर निर्णय लेना पडा, वैसे महत्त्वपूर्ण सवालपर निर्णय लेनेका अवसर उसके सामने पहले कभी नही आया था। जैसे तीव्र विरोधका सामना उसे असहयोगके प्रस्तावपर करना पड़ा, वैसे विरोधका सामना पहले कभी नही करना पडा था। और तब भी कांग्रेसका मेरा जो अनुभव है उसमे मैंने उसके एक निश्चित बहुमतको अल्पमतकी बातको इतने ध्यानसे सुनते और इतना महत्त्व देते कभी नही देखा है जितने ध्यानसे उसने पिछले अधिवेशनमे उसकी बात सुनी और जितना महत्त्व उसकी बातको दिया। फिर विषय-समितिके किसी प्रस्तावका जननेताओ द्वारा इतना सगठित विरोध किये जाते भी मैंने कभी नही देखा।

श्रीमती बेसेंटने भारतकी बडी शानदार सेवा की है। और पण्डित मदनमोहन मालवीय—यह नाम ही ऐसा है कि जिसे सुनकर मन विस्मय-विभोर हो उठता है। वे वर्षोंसे निरन्तर देशकी शानदार सेवा करते आये हैं और उनका चरित्र सर्वथा निष्कलंक, उज्ज्वल है। श्री दास एक ऐसे दलके नेता हैं जिसका प्रभाव और शक्ति उत्तरोत्तर बढती ही जा रही है। इस अवसरपर मुझे स्वर्गीय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलककी अनुपस्थिति बहुत खटकी। श्री बैप्टिस्टा दक्षिणका नेतृत्व कर रहे थे।

"हिन्दू" के प्रतिभाशाली सम्पादक श्री कस्तूरी रगा आयंगर मद्रासके राष्ट्रवादी दलका नेतृत्व कर रहे थे। अन्य अनेक नेताओके साथ इन सबने असहयोगके प्रस्तावका बड़ा जबरदस्त विरोध किया। वहाँ जो विशाल श्रोतृसमूह उपस्थित था उसे मैंने आगाह कर दिया कि जबतक आप कष्ट-सहनके लिए तैयार नही होते और आपको इस बातकी पूरी प्रतीति न हो जाये कि सच्चा असहयोग मेरे द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमके अनुसार चलनेपर ही सम्भव है, तबतक आप मेरा प्रस्ताव स्वीकार न करे। लेकिन श्रोतृसमूह तो कर्मके लिए उद्यत था, वह कष्ट-सहन करना चाहता था। मतदानकी क्रिया सांगोपाग सम्पन्न कराई गई। काग्रेस पंडालको मतदानके लिए बिलकुल खाली करा दिया गया। लाला लाजपतरायने स्वयं अपने निरीक्षणमे मतदान करवाया। मतदानकी कार्यवाहीमे छ. घंटे लगे। मध्य प्रान्त और बरारके अलावा अन्य सभी प्रान्तोने प्रस्तावके पक्षमे मत दिये। मध्य प्रान्तने मेरे प्रस्तावके पक्षमें ३० मत दिये, जब कि बाबू विपिनचन्द्र पालके प्रस्तावके पक्षमें ३३। मै आँकड़े नीचे दे रहा हूँ:

	प्रस्तावके पक्षमें	संशोधनके पक्षमें
बम्बई	२४३	९३
मद्रास	१६१	१३५
बगाल	५५१	३९५
संयुक्त प्रान्त	२५९	२८
पंजाब	२५४	९२
आन्ध्र	५९	१२
सिन्ध	३६	१६
दिल्ली	५९	९
बिहार	१८४	२८
बर्मा	१४	४
मध्य प्रान्त	३०	३३
बरार	५	२८
	१,८५५	८७३

मेरे प्रस्तावमे सम्पूर्ण खिलाफत कार्यक्रमके आधारभूत सिद्धान्तको, यहाँ तक कि कर-बन्दीको भी, स्वीकार किया गया और उसमे खिताबो और अवैतनिक पदो, न्यायालयो, स्कूलो और कालेजो तथा नई कौसिलोके बहिष्कारके कार्यक्रमको तत्काल स्वीकार कर लेनेकी सलाह दी गई थी। बाबू विपिनचन्द्र पालने यह सुझाव रखा कि हमारी माँगें प्रस्तुत करनेके लिए एक प्रतिनिधिमण्डल इंग्लैंड भेजा जाये और इस बीच राष्ट्रीय स्कूलोकी स्थापना की जाये, पचायती अदालतें गठित की जायें और नई कौसिलोका बहिष्कार न किया जाये। उनके प्रस्तावका मतलब परिणामस्वरूपमे यह होता कि कौसिलोंके लिए चुनाव लड़ा जाये और फिर शायद कौसिलोमे प्रवेश करके रोध-अव-

रोधकी नीति अपनाई जाये। इसका मतलब था असली सघर्षको अगले आम चुनाव तकके लिए लगभग स्थगित कर देना। इसलिए विरोधियोने मुख्यत. कौंसिलोके वहिष्कारपर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया। और काग्रेसने एक वहुत वडे वहुमतसे तय किया है कि कौसिले छोड देनी चाहिए। आशा है जो लोग यह नही मानते कि कौसिलोका बहिष्कार करनेसे स्वराज्य जल्दी आनेकी जगह और दूर चला जायेगा, वे वढानेके उद्देश्यको आगे वढानेके लिए पूरी शक्तिसे काम करेंगे।

मतोका विश्लेषण करनेसे पता चलता है कि देश असहयोग चाहता है। श्रीमती बेसेंट बहुत ही निर्भीक और खुले तौरपर लगातार इसका विरोध करती रही हैं, लेकिन उनके अनुगामी बहुत कम हैं। मै अभी इस सवालके गुण-दोषोका विवेचन नही करना चाहता। कौसिलों, स्कूलो और न्यायालयोके बहिष्कारके पक्षमें मेरी जो दलीलें है, वे देशके सामने हैं। मैंने काग्रेसके मंचपर जो-कुछ सुना उसमे से कोई भी चीज मेरे इस विश्वासको हिला नही पाई है कि यह कदम जरूरी है और प्रभावकारी भी सिद्ध होगा; लेकिन मै बहुमत और अल्पमतसे आदरपूर्वक दो शब्द कहना चाहूँगा।

बहुमतसे मेरा कहना है कि सबसे बडी विजयकी घड़ी सबसे अधिक विनयशीलताकी भी घडी होती है। बहुमतने अपने सिर एक बहुत भारी जिम्मेदारी ली है। मेरे प्रस्तावके पक्षमे मत देनेवाला हर व्यक्ति, अगर वह अभिभावक है तो, नि.सन्देह, ऐसे स्कूल-कालेजोसे अपने बच्चे हटा लेनेके लिए बँधा हुआ है, जो किसी भी प्रकारसे सरकारी नियन्त्रणके अधीन हों। ऐसा हर मतदाता जो वकील है, जल्दीसे-जल्दी अपनी वकालत बन्द कर देने और आपसी विवादोको निजी पंच-फैसलेके द्वारा निबटानेका प्रवन्ध करनेके लिए वँधा हुआ है। बहुमतके साथ मतदान करनेवाले कौसिलोंके हर उम्मीदवारका यह धर्म है कि वह अपनी उम्मीदवारी वापस ले ले, और कौसिलोके प्रत्येक मतदाताका कर्त्तव्य है कि वह चुनावमे मतदान न करे। बहुमतके साथ मतदान करनेवाले हर प्रतिनिधिपर यह दायित्व है कि वह हाथसे कताई और बुनाईके कामको बढावा दे और स्वय हाथसे कते सूतसे हाथके ही वुने कपडेका उपयोग करे। चूँकि बहुमतमे से हर व्यक्तिने असहयोगके सम्वन्धमे हिंसा, आत्म-बलिदान और अनुशासनके सिद्धान्तको स्वीकार किया है, इसलिए वह अल्पमतके साथ पूरे आदर और ईमानदारीसे व्यवहार करनेको बँधा हुआ है। हमें न तो कर्मसे और न वचनसे ही उन्हें किसी तरह चोट पहुँचानी चाहिए। प्रस्तावमें जो-कुछ कहा गया है, हमे उसपर पूरी तरह आचरण करके और प्रामाणिक तथा शुद्ध उपायो द्वारा उन्हे अपने रास्तेपर लानेकी कोशिश करनी चाहिए। जिन लोगोने असहयोगके विरुद्ध मत दिया है वे या तो कमजोर थे या असहयोगके लिए तैयार नही थे। उदाहरणके लिए कुछ लोगोंको बच्चोको स्कूलोसे हटा लेनेके औचित्यमे सन्देह था। लेकिन जव वे देखेंगे कि स्कूल खाली किये जा रहे हैं, राष्ट्रीय स्कूल स्थापित किये जा रहे हैं, वकील लोग अपनी वकालत बन्द करके भी भूखो नही मर रहे है और कमसे-कम उत्तम राष्ट्रवादी लोग कौसिलोका त्याग कर रहे है तो वे शीघ्र ही इस कार्यक्रममें विश्वास करने लगेंगे, अपनी कमजोरीपर विजय पा लेंगे और इस कार्यक्रमको

अपनानेके लिए स्वय तैयार हो जायेगे। इसलिए हमे सिर्फ इस कारण अल्पमतके प्रति अधैर्य दिखानेकी जरूरत नही कि वह अभी हमारी बातोसे सहमत नही है।

अल्पमतसे मै यह कहूँगा कि उन लोगोंने एक खरी लडाईमें हार खाई है। इसलिए अगर यह बात उनकी अन्तरात्माके विरुद्ध न हो तो उन्हें असहयोगके कार्यक्रम-पर पूरे जोरसे अमल करनेके लिए आगे आना चाहिए। जो लोग ऐसा मानते है कि बहुमतने बहुत बडी भूल की है, उन्हे नि.सन्देह यह अधिकार है कि वे बहुमतसे अपनी बात स्वीकार करानेके लिए, उन्हें समझाने-बुझानेका काम शुरू करे। लेकिन अल्पमत-वालोमे से बहुत ज्यादा लोगोंने निजी पचायती अदालतें और राष्ट्रीय स्कूल स्थापित करनेकी बात स्वीकार कर ली है। वे सिर्फ कौसिलोंके बहिष्कारके सम्बन्धमे विचार करना स्थगित रखना चाहते थे। मै उन्हें सुझाव दूंगा कि अब चूंकि बहुमत शीघ्रता करनेके पक्षमें निर्णय ले चुका है, इसलिए अल्पमतको उसका निर्णय स्वीकार करके इस कार्यक्रमको सफल बनानेमें सहायता देनी चाहिए।

मेरे प्रस्तावमें विदेशी मालके बहिष्कारको भी स्थान मिल गया। मुझे इसके लिए दु.ख है। मै यह नही बताऊँगा कि इसे मेरे प्रस्तावमें कैसे स्थान मिल गया। लेकिन चूंकि यह चीज मेरी अन्तरात्माके विरुद्ध नही थी और मै यह दिखाना चाहता था कि किसी भी बातपर मै कोई दुराग्रह नही रखता, इसीलिए मैने यह प्रस्ताव पेश करनेका जिम्मा ले लिया, हालाँकि एक गलत स्वरके कारण इसकी लयमें कुछ गडबडी पैदा हो गई थी। स्वदेशीमें विदेशी कपड़ोका बहिष्कार शामिल है। दूसरे सभी विदेशी मालोका बहिष्कार करना एक निरर्थक चीज है — भले ही उसका कारण सिर्फ यही हो कि यह चीज लगभग असम्भव है। लेकिन अगर इस परिशिष्टको प्रस्तावमे शामिल कर देनेसे हमें अपनी विलासिताकी आदतो और बेकारकी चीजोंके प्रति मोहसे छुटकारा पानेकी प्रेरणा मिलती है, तो इससे एक सदुद्देश्यकी सिद्धि होगी। नि सन्देह हमें यह अधिकार है, हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम गैर-जरूरी विदेशी चीजोका, और ऐसी जरूरी विदेशी चीजोका भी, जिन्हे हम अपने देशमे ही पैदा या तैयार कर सकते है, बहिष्कार करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५–९–१९२०

१४९. पत्र : एन० सी० सिन्हाको[1]

बोलपुर
[१७ सितम्बर, १९२० के पूर्व][2]

प्रिय श्री सिन्हा,[3]

आपने वकीलोंके बारेमे लिखा, इस बातसे बडी प्रसन्नता हुई। हम कोई खतरा उठाये बिना और सामान्य जीवनमे थोड़ा-बहुत व्यतिक्रम उत्पन्न किये बिना स्वराज्य नही प्राप्त कर पायेंगे। मै आपकी इस बातसे सहमत हूँ कि हम वकील लोग मजिस्ट्रेटोकी आँखकी किरकिरी रहे है; लेकिन ऐसा तब था जब हम उनकी रायमें उन्हे सबसे ज्यादा परेशान करते थे। लेकिन आप देखेगे कि जब हम खुद ही अदालतोका त्याग कर देंगे तो नौकरशाही इस चीजको पसन्द नही करेगी। वकीलोने अभी हालमें संथाल परगना और अन्य जिलोको जो सहायता देनी शुरू की है, उससे अगर वे फिलहाल वचित भी हो जाते है तो उससे क्या बने-बिगडेगा? और वैसे भी, मुझे उनकी सहायता करनेके सैकड़ों तरीके दिखाई देते है, इसलिए पूर्वग्रहसे ग्रस्त या मूढ मजिस्ट्रेटोके सामने उनके मामलेकी वकालत किये बिना भी काम चल सकता है। आज वकील ही जनमतका दिशा-निर्देश और राजनीतिक गति-विधियोका सचालन करते है। और यह काम वे टेनिस और बिलियर्ड खेलनेके बाद जो थोडा समय उन्हें मिलता है, उसीके दौरान करते है। मै तो ऐसी अपेक्षा नही रखता कि वकील लोग इस तरह अपने अवकाशका समय बिलियर्ड और राजनीतिमे लगाकर हमें स्वराज्य दिलानेमे कोई खास मदद कर सकेगे। मै चाहता हूँ कि उनमे जो लोक-सेवी लोग हो, कमसे-कम वे अपना पूरा समय लोक-कार्यमे ही लगाये, और जब ऐसा दिन आयेगा कि वे वैसा करने लगेंगे तो मै विश्वास दिलाता हूँ कि देशका भविष्य कुछ और ही होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २९-९-१९२०

१. श्री सिन्हाने वकीलोंके वकालत बन्द करनेके सवालपर एक पत्र लिखा था। यह उसीके उत्तरमें लिखा गया था।

२. गांधीजी १३ से १७ सितम्बर, १९२० तक शान्तिनिकेतनमें ठहरे थे।

३. पटना उच्च-न्यायालयके एक वकील।

१५०. भाषण : शान्तिनिकेतनमें

[१७ सितम्बर, १९२०]

भाइयो और बहनो,

आपके साथ थोड़े दिनके सहवासका जो आनन्दका मिला, वह तो अवर्णनीय है। मैं अपनी गिरी हुई तन्दुरुस्ती सुधारने यहाँ आया था और आपको यह जानकर आनन्द होगा कि मैं बिलकुल स्वस्थ होकर नही, तो भी पहलेसे काफी अच्छी सेहत लेकर जरूर जाऊँगा।

मुझे यह बुरा लग रहा है कि आपके साथ बँगलामे बात नही कर सकता। मेरे खयालसे किसी दिन आपके साथ बँगलामे बात करनेकी मेरी आशा चाहे पूरी न हो, तो भी मेरी यह आशा तो हरगिज अनुचित नही कि आप मेरी हिन्दुस्तानी समझ सकेगे। जबतक आपके स्कूलमें हिन्दुस्तानी अनिवार्य विषय न हो जाये और आप उसे सीख न ले, तबतक आपकी शिक्षा सम्पूर्ण नही कही जा सकती। और एक बात मै आपसे छिपाना नही चाहता कि मै आपकी पाठशालाको, धीरे-धीरे ही सही, अत्यन्त उद्यमी मधुमक्षिकाओसे भरा हुआ सुन्दर छत्ता बना हुआ देखनेकी आशा रखता हूँ। जबतक हमारे हृदयके साथ हमारे हाथोंका सुन्दर सहयोग न हो तबतक हमारा जीवन सच्चा जीवन नही बनेगा।

मुझे लगता है कि मै अभीतक जिस काममें लगा रहा हूँ, उसका रहस्य छोटे बच्चोके सामने भी रखा जा सकता है। फिर भी मै जो कहनेवाला हूँ, वह केवल बालकोके लिए नही है। मैने अपने बच्चोसे और दक्षिण आफ्रिकामें जिन्हे मैने अपने ही बच्चे मान लिया था उनसे कभी कोई बात छिपा नही रखी।

मेरे लिए तो केवल एक धर्म है। वह है हिन्दू धर्म। मै अपनेको हिन्दू कहता हूँ और उसमें गर्वका अनुभव करता हूँ, मगर मै कोई कट्टर कर्मकाण्डी हिन्दू नही हूँ। मै हिन्दू धर्मको जिस प्रकार समझता हूँ, तदनुसार वह अत्यन्त व्यापक है। उसमे अन्य सब धर्मोंके लिए समभाव है, आदर है। इसलिए मै अपने धर्मकी रक्षाके लिए जितने उत्साह और वेगसे प्रयत्न करूँगा, उतने ही उत्साह और वेगसे इस्लामकी रक्षा करते हुए आप मुझे देखते है। इस्लामका बचाव करनेमें मुझे बेहद प्रसन्नता होती है, क्योकि मुझे लगता है कि ऐसा करके मै अपने धर्मका बचाव करनेकी योग्यता प्राप्त कर रहा हूँ। पशुबलपर आधार रखनेवाले यूरोपके शक्तिशाली देशोका खतरा जितना इस्लामपर मँडरा रहा है, उतना ही हिन्दू धर्मपर मँडरा रहा है। आज इस्लामकी बारी है, कल हिन्दू धर्मकी बारी आ सकती है। मेरे विचारसे हिन्दू धर्मपर खतरा तो तभीसे है जबसे ब्रिटिश हुकूमत इस मुल्कमे आई है। यह खतरा बहुत सूक्ष्म रूपमें रहा है। मैने देखा है कि हमारे विचारोकी जड़ें पाश्चात्य प्रभावसे हिल उठी है। पाश्चात्य सभ्यता शैतानकी रचना है। अनेक वर्षोसे हम [उसकी] अजीब मायाके भुलावेमें पड़े हुए है।

मेरी आँखें तो दरअसल पिछले साल ही खुली। मित्र-राष्ट्र युद्धमें शरीक हुए, तब उनका प्रगट उद्देश्य तो निर्बल राष्ट्रोंकी रक्षा करना था, परन्तु इस उद्देश्यकी आड़में उन्होंने अनेक छल-कपटके प्रयोग किये। फिर भी पिछली अमृतसर-कांग्रेसके समय सरकारके साथ सहयोग करनेके लिए मैंने देशसे अत्यन्त आग्रहपूर्वक और सच्चे दिलसे अनुरोध किया, क्योंकि मुझे उस वक्ततक भरोसा था कि ब्रिटिश प्रजा अपने पापोंके लिए पश्चात्ताप करेगी और ब्रिटिश [प्रधान] मन्त्री अपने वचनोंका पालन करेंगे। परन्तु पंजाबके काण्डको जिस तरह निपटाया गया, उसे देखकर और टर्कीकी सुलह-की शर्तें प्रकट होनेपर मेरा वह सारा विश्वास जाता रहा। मैं इस नतीजेपर पहुँचा कि मनुष्यके जीवनमें एक बार ऐसा अवसर अवश्य आता है, जब उसे खुदा या शैतान दोनोंमें से एकको चुनना पड़ता है। ब्रिटिश राजसत्ताके साथ इतने वर्षोंके सहयोगके परिणामस्वरूप मैंने यह देखा कि इन सत्ताधारियोंके साथ जिसका पाला पड़ता है, उसकी अवनति होती है। मुझे निश्चित प्रतीति हो गई है कि जबतक भारत अपना आदर्श समझ न जाये और हमारी सारी जनताको यह भान न हो जाये कि इंग्लैंडके लोगोंके साथ उनका नाता बराबरीका है तबतक ब्रिटिश सम्बन्ध जारी रहनेसे हमारी अवनति होती ही रहेगी। मैंने यह भी देखा है कि मुसलमानोंके साथ हमारी एकता बनाये रखना ब्रिटिश सम्बन्ध कायम रखनेकी अपेक्षा कई गुना अधिक कीमती है और यदि मुसलमानोंको हम उनके इस नाजुक समयमें मदद न दें, तो यह एकता टिकाये रखना मुश्किल है। इसके सिवा, यदि राष्ट्र-शरीरका चौथाई भाग इस तरह पंगु हो जाये तो जनतामें स्वदेशाभिमानका विकास होना अशक्य है।

इसलिए मैंने शौकत अलीके साथ दोस्ती की और उन्हें अपना भाई बनाया। उनके साथका अपना सम्पर्क मेरे लिए आनन्द और अभिमानकी बात है। कुछ बातोंमें मेरा उनका मतभेद है। मैं अहिंसा-धर्मको माननेवाला हूँ। वे हिंसा-धर्मको मानते मालूम होते हैं। वे यह मानते हैं कि कुछ परिस्थितियोंमें मनुष्य-मनुष्यका शत्रु हो सकता है, और दुश्मनोंको कत्ल किया जा सकता है। परन्तु फिर भी मैं उनके साथ काम कर रहा हूँ, तो उसका कारण यह है कि मैंने उनमें कुछ भव्य गुण देखे। वे वचनके पक्के हैं, अत्यन्त वफादार मित्र हैं, अत्यन्त शूरवीर हैं। उन्हें ईश्वरपर भारी श्रद्धा है। मुझे तुरन्त लगा कि इतने गुण तो धार्मिक मनुष्यमें ही हो सकते हैं। उनकी धर्म-निष्ठापर मुग्ध होकर ही मैंने उनका साथ किया और मैंने तो सदा ही विश्वास रखा है कि मेरे अहिंसाके सफल प्रयोगसे वे अहिंसाकी खूबी समझ सकेंगे।

अंग्रेजी शब्द 'इनोसेंस' में अहिंसा शब्दके जितने भाव आते हैं, उतने किसी अन्य शब्दमें नहीं आते। इसलिए अहिंसा और 'इनोसेंस' शब्द लगभग समानार्थी कहे जा सकते हैं। मेरा विश्वास है कि अहिंसाके मार्गपर चलनेवाले की सभी तरह कुशल है। अहिंसाके मार्गपर चलनेवालेको जो शस्त्र प्राप्य हैं, वे हिंसामार्गीको मिल सकनेवाले शस्त्रोंसे अधिक जोरदार हैं। हिंसाकी योजनाको मैं एक जंगली योजना कह सकता हूँ। उसमें पाशविकता अवश्य रहती है। अहिंसा-धर्मका सम्पूर्ण पालन करनेवाला ही पूरी मर्दानगी दिखा सकता है। एक आदमी भी पूरी तरह अहिंसामय जीवन बितानेको

तैयार हो, तो संसारको वशमें कर सकेगा। मैं नम्रतासे कहूँगा कि आज अपने इस जर्जर शरीरसे भी इतनी भारी लड़ाई छेड़नेकी मुझमें जो शक्ति है, तो वह मेरे अहिंसा-धर्मके पालनके कारण ही है। और हिन्दू अपना धर्म पहचानकर उसका पालन करें तो दुनियापर अपना असर जरूर डाल सकेंगे। जिस दिन भारत हिंसा-धर्मको प्रधानता देगा, उसी दिन मेरा जीवन शून्यरूप हो जायेगा।

परन्तु मेरा विश्वास अब भी अडिग है। और यदि आप हिन्दू माता-पिताकी सन्तान यह समझ लें कि हिन्दूके नाते विश्वके प्रति आपका कर्त्तव्य क्या है, तो आप कभी अन्यायी और दुर्जनके साथ सहयोग नहीं करेंगे। दुर्जनोंका संग न करनेके बारेमें तुलसीदासजीने जो अमर दोहे लिखे हैं उनके सौन्दर्यकी तुलना नहीं हो सकती। ब्रिटिश राज्य इस समय जिस प्रकारका है, उससे भारतको किसी शुभकी आशा रखना ऐसा ही है जैसा आकाशको बाहुपाशमें बाँधनेकी कोशिश करना। मैंने तो इस राज्यके साथ कई वर्षतक घनिष्ठ सहयोग किया है और उस सहयोगके अन्तमें मुझे कुछ जबरदस्त अनुभव हुए हैं। उन अनुभवोंके परिणामस्वरूप ही मैंने यह भयंकर किन्तु उदात्त और तेजस्वी युद्ध छेड़ा है और आप सबको उसमें सम्मिलित करनेके लिए खप रहा हूँ। इस धर्म-मन्दिरमें मैं आपसे इतना ही माँगता हूँ कि आप यह प्रार्थना करें कि आत्म-विकासके इस युद्धमें ईश्वर मुझे आरोग्य और सन्मति दे और दोष तथा कातरतासे सदा ही दूर रखे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६–९–१९२०

१५१. शुद्ध स्वदेशी

दिन-प्रतिदिन मुझे विश्वास होता जाता है कि स्वदेशीका अर्थ एक ही हो सकता है। मैंने स्वदेशी-भण्डारोंका उद्‌घाटन किया है; स्वदेशी-व्रतोंकी रचना की है; इससे भले ही थोड़ा-बहुत लाभ हुआ हो, स्वदेशी-भावनाको प्रोत्साहन मिला हो लेकिन मैं मानता हूँ कि इससे हिन्दुस्तानको कुछ आर्थिक प्राप्ति नहीं हुई। स्वदेशीकी प्रवृत्तिको उतना ही लाभ हुआ है जितना कि हाथसे कते-बुने सूतके कपड़ेके प्रचारका हुआ है।

मिलोंको बढ़ावा देनेकी जरूरत नहीं है। मिलें अपना सब माल बेच सकती हैं। मिलें अपनी आवश्यकताका सूत कदाचित् ही कात सकती हैं। ऐसी स्थितिमें मिलोंके सूतसे हाथसे कपड़ा बुननेमें देशको लाभ नहीं है बल्कि उससे गरीबोंपर बोझ बढ़ता है। इससे एक नुकसान तो यह है कि इस तरह सूत तथा कपड़ेका दाम बढ़ता है और दूसरा नुकसान यह है कि गरीब लोग, जो फिलहाल हमारी मिलोंमें तैयार हुए कपड़ेको पहनकर सन्तोष मानते हैं, विदेशी कपड़ा पहनने लगेंगे। यह चीज अधिक नुकसानदेह है क्योंकि यदि एक बार गरीबोंको विदेशी कपड़े पहननेकी आदत पड़

गई तो बादमें स्वदेशी कपड़े पहननेकी आदत डालनेमें मुश्किल पड़ेगी। फलत मैं यहाँ स्वदेशी-आन्दोलनके कुछ नियमो तथा तत्त्वोको प्रस्तुत कर रहा हूँ:

१. हाथसे कते-बुने कपड़ेको ही इस्तेमाल करे।
२. हाथसे सूत कतवाने और उसे बुनवानेका जबरदस्त प्रयत्न करे।
३. सूत कातने और हथबुनाईके यन्त्रोमें जितना बन सके उतना सुधार करवायें।
४. इस समय हाथसे कहाँ-कहाँ कताई-बुनाई होती है, इसकी खोजबीन करे।
५ उससे तैयार किया गया कपड़ा ही खादी है, उसका प्रचार करे।
६. ऐसे उपायोकी योजना करे जिससे लोगोमे सादगीकी रुचि बढे।
७ और हाथसे कते सूत तथा उससे बुने कपड़ोको बेचनेके लिए भण्डार खोले।

अपनी यात्राके दौरान मैंने देखा है कि अनेक स्थानोंपर शान्तिके साथ दृढता-पूर्वक इस तरह स्वदेशीका प्रचार होता रहता है। मद्रासके एक गाँवमे भारत सेवक समाजवाले श्री हनुमन्तराव मित्रोकी मददसे बहुत काम कर रहे हैं। एक विधवा महिला पैसे और परिश्रमसे उनकी मदद कर रही है; उनकी पत्नी भी इस प्रयासमें उनके साथ हैं। मछलीपट्टममें जो कलाशाला है वहाँ भी वह काम चालू है। मैंने कुछ सूत देखा, और वह मुझे गुजरातमे तैयार होनेवाले सूतकी अपेक्षा बहुत अधिक बारीक लगा; बुनाई भी सुन्दर जान पडी। बारीक सूत तो धनिक स्त्रियोने शौकसे काता था। उसकी बनी हुई धोतियाँ भी मैंने देखी। स्वदेशी रगका भी ठीक उपयोग किया जाता है। इस तरह देशके एक कोनेमें बिना किसी पूंजीके यह उपक्रम चल रहा है।

खादी भण्डार प्रारम्भ करनेमे कदाचित् पाँच सौ रुपयेसे काम चल जाता है। इसके लिए एक ही व्यक्ति, यदि वह परिश्रमी हो तो, पर्याप्त होता है। वह स्वय जितना माल लेकर रख सके उसीके अनुसार छोटी दुकान रखे। जबतक दुकानपर आकर खरीदनेवालोकी सख्या काफी न हो जाये तबतक वह फेरी लगाकर खादी बेचे। इस तरह थोड़ी-सी पूंजीसे बहुतसे व्यक्तियोका निर्वाह हो सकता है और शुद्ध स्वदेशीका प्रचार हो सकता है। लेकिन इस लेखका मुख्य उद्देश्य तो मिलका कपडा पहननेका व्रत लेनेवालो तथा उक्त कपडेकी दुकान खोलनेवाले व्यक्तियोको चेतावनी देना है। मिलके कपड़ेकी वर्तमान दुकानोको बन्द करना आवश्यक नही है; आवश्यकता इस बातकी है कि वे धीरे-धीरे अपनी दुकानमें उसकी जगह खादी रखते चले जायें। यदि वे अपनी दुकानमे कपडेके अतिरिक्त अन्य स्वदेशी वस्तुएँ रखनेमें भी पूंजी लगाना चाहते हो तो लगाये। लेकिन यह बात स्पष्ट है कि मिलोका अथवा मिलोके सूतसे हाथका बुना कपड़ा इकट्ठा करनेसे देशको कोई लाभ नही होगा।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १९-९-१९२०

१५२. टिप्पणियाँ

रेलोंमें होनेवाली चोरियाँ

मुझे गरीब व्यक्तियोंकी ओरसे शिकायतें मिलती रहती हैं कि रेलों द्वारा भेजा गया उनका माल प्रायः चोरी हो जाता है। किसीने सूत भेजा वह चुरा लिया गया। फलोंकी चोरियोंकी तो कोई सीमा ही नही है। इसमें किसका दोष है? सरकारका तो नही ही है। हममे ईमानदारीके प्रति कोई लगाव नही है, और न बेईमानीके प्रति तिरस्कारका भाव ही है। मै नही जानता कि रेलवेके नौकरोमें 'नवजीवन' का कितना प्रचार है। तथापि जो पढते हे उनसे मेरी प्रार्थना है कि दूसरोको यह लेख अवश्य पढ़वायें। रेल-कर्मचारी जनताके नौकर हे — ऐसा उन्हे समझना चाहिए। उन्हें चोरी करनी ही नही चाहिए। यदि उन्हे पेट भरने योग्य वेतन नही मिलता तो उन्हे वेतन बढवानेके प्रयत्न करने चाहिए, लेकिन चोरी कदापि नही करनी चाहिए।

रेल-कर्मचारियोके अपने सघ हे। उनके नेताओंको मै सुझाव देता हूँ कि उनका जितना कर्त्तव्य वेतनके सम्बन्धमे हलचल करनेका है उतना ही आन्तरिक सुधार करनेका भी है। यदि हम केवल अधिकारोकी ही माँग करेगे तथा अपने कर्त्तव्यका पालन नही करेगे तो हम प्राप्त अधिकारोको भी खो बैठेंगे। यहाँ प्रामाणिकताके सूक्ष्म सिद्धान्तका प्रश्न नही है। सामान्य व्यावहारिक प्रामाणिकतासे भी यदि हम वचित रहें तो जनताका कारोबार ही न चले। मैं रेल-कर्मचारियोके सम्मुख एक अत्यन्त सरल विचार प्रस्तुत करता हूँ, आप भी राष्ट्रके आन्दोलनमे दिलचस्पी लेते है, आप भी अग्रेजी राज्यके अन्यायके विरुद्ध आवाज उठाते हैं; यदि आप ही जनताके मालकी चोरी करेगे तो उसके अन्यायके विरुद्ध कौन आवाज उठायेगा? क्या अन्यायीको न्याय माँगनेका हक हो सकता है? जिस हदतक आप बेईमान बनेगे उस हदतक आप अग्रेजी सत्ताकी जड़ें अधिक मजबूत करेंगे। आप [अर्थात् अपने देश भाइयो] परसे लोगोका विश्वास उठ जायेगा और आप अपने आचरणसे उन्हे यह कहनेको विवश करेगे कि "अग्रेजी शासन-व्यवस्था कैसी भी क्यों न हो, अच्छी है।" पराधीन लोग जबतक अपने शासकोसे नैतिक बलमे आगे नही बढ़ते तबतक वे गुलामीके बन्धनसे मुक्त नही हो सकते। इसलिये यदि रेल-कर्मचारी अपना और जनताका भला चाहते हो तो उन्हे चोरी रूपी अनीतिको तुरन्त छोड देनेका निश्चय कर लेना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-९-१९२०

१५३. तार : शौकत अलीको[1]

[२१ सितम्बर, १९२० या उसके बाद]

जफर अली खाँ वकील द्वारा कतई बचाव न करें। वे केवल वक्तव्य दे सकते हैं। मेरा दृढ मत है कि वकील द्वारा बचाव की कोई गुंजाइश नहीं।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७२६२) की फोटो-नकलसे।

१५४. तार : आगा सफदरको

[२१ सितम्बर, १९२० या उसके बाद][2]

आगा सफदर
मार्फत — 'जमींदार'
लाहौर

वहाँ मैं तुरन्त आना अनावश्यक मानता हूँ। मेरा दृढ मत है कि जफर अली खाँ जो आरोप सच्चे हैं उन्हें स्वीकार करते हुए एक स्पष्ट वक्तव्य दें और खुशी-खुशी सजा भोग लें। किसी भी वकीलकी उपस्थिति आवश्यक नहीं।[3]

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७२६३) की फोटो-नकलसे।

१५५. एक सालमें स्वराज्य

मैंने कलकत्ताके कांग्रेस अधिवेशनमें कहा था कि यदि मेरे असहयोग कार्यक्रमके प्रति लोगोंने अच्छा उत्साह दिखाया तो एक सालमें स्वराज्य प्राप्त हो जायेगा। इस बातके लिए मेरा बड़ा मजाक उड़ाया गया है। कुछ लोगोंने इस कारणसे मेरी शर्तकी उपेक्षा कर दी है और मुझपर हँसे हैं कि एक सालके अन्दर किसी भी तरहसे स्वराज्य असम्भव है। कुछ दूसरे लोगोंने "यदि" पर बहुत ज्यादा जोर दिया है और कहा है कि अगर दलीलमें इस तरहसे "यदि" को शामिल किया जाये तब तो किसी भी

१. शौकत अलीने एक तार भेजा था जिसमें बताया था कि जमींदारके सम्पादक जफर अली खाँके मुकदमेकी सुनवाई २७ तारीखको होगी। उन्होंने गांधीजीसे बचावके सम्बन्धमें भी सलाह माँगी थी। यह तार उसीके उत्तरमें भेजा गया था।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. मसविदा गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है।

बकवासको एक सम्भव बात सिद्ध किया जा सकता है। किन्तु मेरी मान्यता गणितके हिसाबपर आधारित है। और मै कहूँगा कि मेरी शर्तोपर सही अमल किये बिना सच्चा स्वराज्य लगभग असम्भव है। स्वराज्यका मतलब है ऐसी स्थिति जिसमें हम अग्रेजोकी उपस्थितिके बिना अपना पृथक अस्तित्व कायम रख सके। यदि साझेदारी होनी हो तो स्वेच्छा-प्रेरित साझेदारी हो। जबतक हम अग्रेजोकी बराबरीका दर्जा नही पा लेते और अपने-आपको उनके बराबर नही मानते तबतक स्वराज्य हो ही नही सकता। आज हम महसूस करते है कि अपनी आन्तरिक और बाह्य सुरक्षाके लिए, हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच शस्त्र-बलपर आधारित शान्तिके लिए, अपनी शिक्षाके लिए, और रोज-ब-रोजकी जरूरते पूरी करनेके लिए ही नही बल्कि अपने धार्मिक बखेडे सुलझानेके लिए भी अंग्रेजोके आश्रित है। राजा लोग अपनी शक्तिके लिए और लखपती लोग अपने लाखो रुपयोके लिए अंग्रेजोपर निर्भर है। अग्रेज हमारी असहायावस्था जानते है और सर टॉमस हॉलैंडका असहयोगियोका मजाक उडाना वाजिब ही है। तो स्वराज्य पानेका मतलब है अपनी असहायावस्थासे मुक्ति पाना। समस्या निस्सन्देह बहुत बडी है, और हमारी स्थिति ठीक उस शेर-जैसी है जिसका पालन-पोषण बकरियोके बीच हुआ हो और इसी कारण उसके लिए यह समझ पाना कठिन हो गया है कि वह वास्तवमे बकरी नही, शेर है। जैसा कि टॉल्स्टॉयने कहा था, आदमी बहुधा सम्मोहनके वशीभूत होकर काम करता है। इसके जादूके असरसे हम बराबर असहायावस्था महसूस करते है। स्वय अग्रेजोसे ऐसी आशा नही की जा सकती कि वे हमें इससे छुटकारा पानेमे मदद देंगे। इसके विपरीत, वे बराबर हमारे कानोमे यही आवाज पहुँचाते रहते है कि हम धीरे-धीरे प्रशिक्षणकी विधि द्वारा ही स्वशासनके योग्य बन सकते है। 'टाइम्स'का कहना है कि यदि हम कौंसिलोका बहिष्कार करेगे तो हम स्वराज्यके लिए प्रशिक्षणका एक अवसर खो देंगे। मुझे जरा भी सन्देह नही कि बहुतसे लोग 'टाइम्स'ने जैसा कहा है, वैसा मानते है। उसने तो एक झूठका भी सहारा लिया है। वह बेधडक कहता है कि लॉर्ड मिलनरके मिशनने मिस्रवासियोकी बात तभी सुनी जब वे मिस्री कौंसिलोका बहिष्कार बन्द कर देनेको तैयार हो गये। मेरे विचारसे स्वराज्यके सम्बन्धमे हमे केवल एक ही बातका प्रशिक्षण लेनेकी आवश्यकता है; अर्थात् इस बातका कि हम पूरे ससारके विरुद्ध अपनी रक्षा कर सके और पूरी स्वतन्त्रताके साथ अपना स्वाभाविक जीवन जी सकें, चाहे उस जीवनमे कितने भी दोष हो। अच्छा शासन स्व-शासनका स्थान नही ले सकता। अफगानोकी सरकार बुरी है, परन्तु उनकी अपनी है। मुझे उनके भाग्यसे ईर्ष्या है। जापानियोंने स्वशासनकी कला खूनकी नदियाँ बहाकर सीखी। और यदि आज हम पशुबलमे अग्रेजोसे बढे-चढे होते और उन्हें उसके सहारे यहाँसे निकाल बाहर कर देते तो हम उनसे श्रेष्ठ गिने जाते और कौंसिलोकी मेजपर बहस करने या शासकीय पदोकी जिम्मेदारी निभानेका कोई अनुभव न होनेके बावजूद हम स्वशासनके योग्य माने जाते। कारण यह है कि पाश्चात्य संसारने अबतक केवल पशुबलकी कसौटीको ही स्वीकारा है। जर्मन लोग यदि पराजित हुए तो इसलिए नही कि वे निश्चित रूपसे गलतीपर

थे, वरन् इसलिए कि मित्र-राष्ट्र पशुवलमें जर्मन गुटसे श्रेष्ठ सावित हुए। तो अन्तमें निष्कर्ष यही निकलता है कि भारत या तो युद्ध-कला सीखे, और यह कला अग्रेज उसे नही सिखायेगे, या फिर वह असहयोग द्वारा अनुशासन और आत्म-वलिदानके अपने मार्गका अनुसरण करे। यह वात जितनी अपमानजनक है उतनी ही आश्चर्यजनक भी कि एक लाखसे भी कम अग्रेज साढे इकत्तीस करोड भारतीयोपर शासन करे। निस्सन्देह वे ऐसा उसी हदतक ताकतके वलसे करते है, परन्तु इससे ज्यादा हजारो तरहसे हमारा सहयोग प्राप्त करके और जैसे-जैसे समय वीतता जाता है हमे अधिकाधिक असहाय और अपने ऊपर निर्भर वनाकर करते है। हमे नई कौसिलो, अधिक अदालतो वल्कि गवर्नरी तककी भेटको भी भ्रमवश सच्ची स्वतन्त्रता या शक्ति नही समझ बैठना चाहिए। वे तो हमें केवल पुसत्वहीन बनानेके गूढतर उपाय है। अंग्रेज लोग केवल पशुवलसे हमपर शासन नही कर सकते। और इसलिए वे भारतपर अपना प्रभुत्व वनाये रखनेके लिए अच्छे-बुरे सभी उपायोका सहारा लेते है। वे अपनी साम्राज्यवादी वुभुक्षा मिटानेके लिए भारतसे सोना-चाँदी और जनशक्ति प्राप्त करते रहना चाहते है। यदि हम उन्हे धन-जन मुहैया करनेसे इनकार कर दे तो उसका मतलव होगा कि हमने अपना लक्ष्य अथवा स्वराज्य, समानता और पुसंत्व प्राप्त कर लिया।

वाइसरायकी कौसिलकी बैठकमे अन्तिम दृश्योमे जो-कुछ हुआ उसने हमारे अपमानका प्याला भर दिया। उस समय श्री शास्त्री पजावपर अपना प्रस्ताव नही पेश कर सके। जलियाँवालाकी वर्वरताके शिकार भारतीयोको सिर्फ १,२५० रुपये मिले, जव कि भीड़की उत्तेजनाके शिकार अग्रेजोको लाखो मिले। अफसर लोग जनताके सेवक होते है। लेकिन जिन अधिकारियोंने अपनी स्वामिनी, अर्थात् जनताके विरुद्ध अपराध किया था, उन्हे डाँट-फटकार वताकर ही वख्श दिया गया। और कौसिलके सदस्य इतनेसे ही सन्तुष्ट हो गये। यदि भारत सशक्त होता तो वह अपने घावपर इस तरह नमक छिडका जाना वरदाश्त न करता।

मै अग्रेजोको दोष नही देता। यदि हम उनकी तरह संख्यामें कम होते तो हम भी उन्ही उपायोंका सहारा लेते जिनका सहारा आज वे ले रहे है। आतंक और छल, वलवानके नही कमजोरके अस्त्र है। अग्रेज सख्यामे कम है, हम अपनी भारी सख्याके बावजूद कमजोर है। परिणाम यह है कि दोनो एक-दूसरेको गिरानेकी कोशिश कर रहे है। ऐसा आम तौरपर देखा गया है कि अंग्रेज भारतमे रहनेके वाद चरित्रसे कमजोर हो जाते है और भारतीय लोग अग्रेजोके सम्पर्कसे साहस और पौरुष खो देते है। यह कमजोर होते जानेका सिलसिला न हम दोनो राष्ट्रोके लिए अच्छा है और न ससारके लिए ही।

परन्तु यदि हम भारतीय अपना खयाल स्वयं करे तो अंग्रेज और शेप ससार भी अपना खयाल स्वय करेगा। इसलिए ससारकी प्रगतिमे हमारा सच्चा योगदान यही होगा कि हम अपना घर दुरुस्त करे।

फिलहाल शस्त्रोका प्रशिक्षण लेनेका सवाल नही उठता। मै एक कदम आगे वढकर सोचता हूँ कि भारतको ससारको एक उच्चतर सन्देश देना है। उसमें यह दिखा

देनेकी क्षमता है कि वह शुद्ध आत्म-बलिदान अर्थात् आत्मशुद्धि द्वारा अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। यह केवल असहयोग द्वारा किया जा सकता है और असहयोग तभी सभव है जब वे लोग, जिन्होने सहयोग देना शुरू किया था, सहयोग देना बन्द करने लगें। अगर हम सिर्फ सरकारकी तिहरी माया — अर्थात सरकारके नियन्त्रणमें चलनेवाले स्कूलों, सरकारी अदालतों और विधान परिषदों — से छुटकारा पा लें और सच्चे अर्थोमे अपनी शिक्षाको अपने नियन्त्रणमें ले ले, अपने झगडोका निपटारा आप करने लगे और सरकारके कानूनोके प्रति उदासीन हो जाये तो समझना चाहिए कि हम स्वशासनके लायक हो गये हैं। और इस सबके बाद ही हम सरकारी नौकरोसे — चाहे वे असैनिक सेवामे हों या सैनिक सेवामे — त्यागपत्र देनेको और करदाताओसे कर-बन्दी करनेको कह सकते हैं।

और अगर हम अपेक्षा करे कि माता-पिता अपने बच्चोको सरकारी स्कूलो और कालेजोसे निकालकर स्वय अपनी शिक्षण-सस्थाएँ स्थापित करे, या अगर हम वकीलोसे कहें कि वे जहाँ जरूरी हो वहाँ जीवन-निर्वाहके लिए पैसे लेकर, वे अपना पूरा समय और ध्यान राष्ट्रसेवामें लगाये, या अगर कौंसिलोके उम्मीदवारोसे कहे कि वे कौंसिलोमे प्रवेश न करे और जिस विधायक-यत्रके माध्यमसे सरकार अपने नियन्त्रणका प्रयोग करती है, उस यंत्रके संचालनमें सक्रिय या निष्क्रिय, किसी तरहकी सहायता न करे तो क्या यह सब बहुत ज्यादा माना जायेगा? असहयोग आन्दोलन और कुछ नही, शासकोके पशुबलको, जिन आकर्षक आवरणोसे वह ढका हुआ है, हटाकर सुस्पष्ट कर देनेका और यह सिद्ध कर देनेका ही एक प्रयास है कि उसके जरिये अंग्रेज लोग भारतपर एक क्षण भी अपना प्रभुत्व कायम नही रख सकेगे।

परन्तु मैं स्पष्टतः स्वीकार करता हूँ कि जबतक मेरी कही तीनो शर्तें पूरी नही होती, तबतक स्वराज्य नही होगा। ऐसा तो नही हो सकता कि एक ओर तो हम कालेजकी डिग्रियाँ लेते जाये, मुवक्किलोसे ऐसे मामलोके लिए जिन्हें पाँच मिनटमें निबटाया जा सकता है, हजारो रुपये महीना लेते रहे और कौसिल-भवनमें खुशी-खुशी राष्ट्रके समयका दुरुपयोग करे, और दूसरी ओर राष्ट्रीय आत्म-सम्मान प्राप्त करनेकी भी आशा करें।

इस मायाके अन्तिम किन्तु महत्त्वपूर्ण हिस्सेपर विचार करना अभी शेष है। इस हिस्सेका सम्बन्ध स्वदेशीसे है। यदि हमने स्वदेशीका त्याग न किया होता तो आज हमारी इतनी अधोगति न होती। यदि हम आर्थिक गुलामीसे मुक्ति पाना चाहते हों तो हमें अपनी जरूरत-भर कपड़ेका उत्पादन खुद करना चाहिए। और फिलहाल यह काम केवल हाथसे कताई और बुनाई करके ही किया जा सकता है।

इस सबका मतलब है अनुशासन, आत्म-त्याग, आत्म-बलिदान, सगठनशक्ति, आत्म-विश्वास और साहस। समाजमे आज जिन वर्गोका प्रभाव और महत्त्व है, वे वर्ग अगर इन सारे गुणोका परिचय एक सालमे ही दें और इस तरह जनमतका निर्माण करे तो निश्चय ही हमें एक ही सालमें स्वराज्य मिल जायेगा। और यदि मुझसे यह कहा जाये कि हम जो भारतका नेतृत्व करते हैं, उनमे भी ये गुण नही हैं, तो भारतको

कभी स्वराज्य नही मिलेगा; लेकिन तब हमें अंग्रेजोंको, वे जो-कुछ कर रहे हैं, उसके लिए दोष देनेका कोई अधिकार नही होगा। हमारी मुक्ति और उसका समय पूरी तरह हमपर निर्भर करता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-९-१९२०

१५६. कुछ उदाहरण

अपने "लोकशाही बनाम भीडशाही"[1] शीर्षक लेखमें मैंने अपना आशय समझानेके लिए अपने अनुभवसे कुछ दृष्टान्त देनेका वादा किया था। पिछले सप्ताह कांग्रेसकी लम्बी कार्यवाहीमें व्यस्त रहनेके कारण वे दृष्टान्त नही दे पाया। अब दे रहा हूँ। जब हम मद्रास पहुँचे, उस समय एक विशाल भीड़ स्टेशनपर हमारी प्रतीक्षा कर रही थी। हमारा डिब्बा काट दिया गया और सौभाग्यसे वह एक आरक्षित प्लेटफार्मके सामने लगा दिया गया। यदि हमें अन्य यात्रियोंके साथ उतरना पड़ता तो क्या होता, यह कल्पना करनेकी ही चीज है। परन्तु आरक्षित प्लेटफार्मपर भी हम कुछ समयतक उतर नही सके। स्वयंसेवक रास्तेमें खड़े थे। स्वयं भीडमें यत्र-तत्र खड़े होकर उसे पीछे रखनेके बजाय, जैसा उनका खयाल था, वे हमारा सम्मान करनेके लिए एक स्थानपर एकत्र हो गये थे। परिणाम यह हुआ कि भीड़का सारा दबाव जहाँ वे स्वयंसेवक और हम खड़े थे, उस ओर ही हो गया। और "घेरा बना लो" — यह तो एक आम आदेश-वाक्य हो गया है। यह घेरा बनानेका दृश्य बड़ा अपमानजनक लगता है, फिर भी यह एक ऐसा रिवाज बन गया है कि जब स्वयंसेवकोंके अलावा और कोई नही होता तब भी जिस नेताका "सम्मान" करना होता है, उसके चारों ओर "घेरा" बना लिया जाता है।

हाँ, तो मैं कह रहा था कि भीड़ बहुत अधिक थी, वह इतना ज्यादा शोर मचा रही थी कि स्वयंसेवकों द्वारा दिये गये निर्देश बिलकुल सुनाई नही देते थे। सर्वत्र अव्यवस्था ही अव्यवस्था थी। मेरे पंजोंके कुचलकर भुरता हो जानेका खतरा बराबर बना रहा। जो स्वयंसेवक मेरी रक्षाकी कोशिश कर रहे थे, उन्हींके धक्कोंसे कई बार मैं गिरने-गिरनेको हो गया। वे बहुत सावधानीसे मेरा बचाव कर रहे थे और दीर्घकाय मौलाना शौकत अली उनकी मदद कर रहे थे। अगर यह-सब न होता तो मेरी स्थिति और भी बुरी होती। वातावरण दम घोटनेवाला था। इस तरह धक्कम-धक्केके बीचसे गुजरते हुए मोटर गाड़ीतक पहुँचनेमें हमें पौन घंटा लग गया, जब कि साधारण तौरपर स्टेशनसे पोर्चतक चलकर पहुँचनेमें तीन मिनट भी नही लगने चाहिए थे। गाड़ीके पास पहुँचकर भी उसमें घुस पाना आसान काम नही था। मुझे ढकेलकर ही गाड़ीके भीतर पहुँचाया गया, हालाँकि इस काममें उन्होंने अधिकसे-

१. ८ सितम्बर, १९२० के लेखमें।

अधिक सावधानी बरती। निश्चय ही जब मैंने अपनेको कारके अन्दर पाया तो चैनकी साँस ली और सोचा कि मौलाना और मैं, दोनों जिस खतरनाक कसरतसे गुजरे हैं, उसके बाद भीड़का जय-जयकार करना उचित ही है — हम उसके असली पात्र हैं। पहलेसे ही तनिक सोच-विचारसे काम लिया जाता तो इस भीड़शाहीको — यह सचमुच भीड़शाही ही थी — एक बहुतही शानदार, व्यवस्थित और शिक्षाप्रद प्रदर्शनका रूप दिया जा सकता था, और उसमें किसीकी जानको कोई खतरा नहीं रह जाता। मद्रासका अनुभव अन्य अनेक अनुभवों-जैसा ही था। सेलम जाते हुए एरोडमें हमें एक असाधारण अनुभव हुआ। मैं काफी थका हुआ था। मेरी आवाज ज्यादा बोलनेके कारण फट-सी गई थी। अन्य अनेक स्टेशनोंकी तरह ही यहाँ भी भीड़ उमड़ी पड़ रही थी। वह पूरी तरह अव्यवस्थित थी, हालाँकि अन्य स्थानोंकी तरह ही संपूर्णतः प्रसन्न और श्रद्धायुक्त थी। मैंने उनसे कहा, आप लोग तरह-तरहकी बेसुरी आवाजें न करें, और चूंकि आप हमें देख चुके हैं इसलिए अब शान्तिपूर्वक चले जाइए। मैंने उनसे यह भी कहा कि यदि आप खिलाफत और पंजाब-सम्बन्धी संघर्षमें अपना हिस्सा अदा करना चाहते हैं तो आपसे अनुशासन सीखनेकी अपेक्षा की जाती है। उनमें से सबसे समझदार लोगोंको मैं अपनी बात समझा सका। मैंने सुझाव दिया कि वे धीरेसे उठें, स्टेशनके प्रवेश-द्वारकी ओर मुड़ें और बिना शोरगुल किये वापस चले जायें। उन्होंने मेरी बात मान ली और बाकी लोगोंने उनका अनुगमन किया। स्टेशन दो मिनटमें खाली हो गया। जिन दोस्तोंने मेरी बात मान ली, वे अगर बक-झक और आपत्ति करने लगते, वहाँ रुके रहते और शोरगुल करनेका आग्रह करते तो पूरी भीड़ वैसा ही करती और जबतक ट्रेन वहाँ रुकी रहती, तबतक वहाँ चिल्ल-पों और अव्यवस्था बनी रहती।

मैं इस विवरणको जालारपेटका अपना अनुभव बताकर समाप्त करूँगा, जो उक्त अनुभवसे ठीक उलटा था। हम बंगलौरसे रातकी गाड़ीसे मद्रास जा रहे थे। दिनमें हम सेलममें सभाएँ करते रहे थे, फिर सेलमसे मोटर द्वारा १२५ मील दूर बंगलौर गये थे और वहाँपर मूसलाधार वर्षामें एक सभा की थी और इसके बाद हमें ट्रेन पकड़नी पड़ी थी। हमें रातमें आरामकी जरूरत थी, परन्तु यह हमारे नसीबमें नहीं था। लगभग प्रत्येक बड़े स्टेशनपर हमारा स्वागत करनेके लिए भारी भीड़ जमा थी। आधी रातके करीब हम जालारपेट जंकशन पहुँचे। ट्रेनको वहाँ लगभग ४० मिनट रुकना था या शायद हमारे दुर्भाग्यसे वह वहाँ इतनी देरतक रुकी रही। मौलाना शौकत अलीने, भीड़से चले जानेका अनुरोध किया। परन्तु वे जितना ही आग्रह करते थे, उतना ही भीड़ चिल्लाती जाती थी — "मौलाना शौकत अलीकी जय।" स्पष्ट ही लोगोंका खयाल था कि मौलाना जो-कुछ कह रहे हैं, उनका अभिप्राय ठीक वह नहीं है। वे बीस मीलकी दूरीसे आये थे, वहाँ घंटों पहलेसे इन्तजार कर रहे थे और अपने मनको पूरी तरह तुष्ट किये बिना वहाँसे टलनेवाले नहीं थे। आखिर मौलानाने भी हारकर सोनेका बहाना किया। इसपर मौलानाके स्नेही भक्तगण उनके दर्शन पानेके लिए डिब्बेके पायदानपर चढ़ गये। चूंकि हमारे डिब्बेकी रोशनी बुझा दी गई थी,

इसलिए वे लालटेनें ले आये। आखिरकार मैंने सोचा कि मैं ही कोशिश करूँ। मैं उठकर दरवाजेके पास गया। मेरा दरवाजेके पास जाना था कि लोग प्रचण्ड हर्षनाद कर उठे। इस आवाजसे मेरा तो सिर भन्ना गया। इतना थका हुआ था मैं। अन्तमें मेरी सारी अनुनय-विनय व्यर्थ गई। वे एक क्षणको रुकते और फिर हर्षनाद कर उठते। मैंने खिडकियाँ बन्द कर ली। परन्तु भीड विचलित होनेवाली नही थी। उसने बाहरसे खिडकियाँ खोलनेका प्रयत्न किया। वह तो हम दोनोको देखकर ही माननेवाली थी। यह कशमकश इसी तरह चलती रही, और आखिर मेरा लड़का बीचमे पड़ा। उसने उनके सामने जोरदार तकरीर की, अन्य यात्रियोकी सुविधाके नामपर उसने आरजू-मिन्नत की। उसका कुछ असर हुआ और शोर कुछ कम हो गया। फिर भी डिब्बेमें झाँकना अन्तिम क्षणतक जारी रहा। लोग यह सब अच्छे इरादेसे ही कर रहे थे, यह उनके असीम स्नेहका प्रदर्शन था, फिर भी कितना निर्मम, कितना असंगत। यह एक विचारहीन भीड थी। उसमे कोई भी प्रभावशाली, समझदार आदमी नही था और इसलिए किसीने किसीकी नही सुनी।

सच्ची प्रगति करनेके लिए हमें इन जन-समुदायोको प्रशिक्षित करना होगा। इनका दिल सोनेका होता है, ये देशके लिए सोचते हैं, ये आपसे कुछ सीखनेको उत्सुक हैं, आपका नेतृत्व चाहते हैं। आवश्यकता सिर्फ थोडेसे समझदार और ईमानदार स्थानीय कार्यकर्त्ताओंकी है। अगर ऐसे कार्यकर्त्ता मिल जाये तो सारा राष्ट्र इस तरह सगठित किया जा सकता है कि वह समझदारीसे काम कर सके और भीडशाहीमे से लोकशाही विकसित की जा सकती है। यह विकास वास्तवमे सफल राष्ट्रीय असहयोगका प्रथम चरण है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-९-१९२०

१५७. स्वदेशी भण्डार

पहलेके एक अंकमें[1] मैंने यह दिखानेकी कोशिश की थी कि किस तरह मिलके उत्पादनोकी बिक्रीके लिए खोले गये भण्डारोसे स्वदेशीको किसी भी रूपमें बढावा नही मिलता, वरन् इसके विपरीत इससे कपड़ेकी कीमत बढ जाती है। मै इस लेखमें यह दिखाना चाहता हूँ कि किस तरह छोटी पूंजीसे सच्ची स्वदेशीको आगे बढ़ाया जा सकता है और सादा जीवन बिताने लायक कमाई भी की जा सकती है।

मान लीजिए कि एक कुटुम्ब है, जिसमे पति, पत्नी और दो बच्चे हैं — बच्चोमें से एककी उम्र दस वर्ष है और दूसरेकी पाँच वर्ष। यदि उनके पास ५०० रुपयेकी पूंजी है तो वे छोटे पैमानेपर एक खद्दर भण्डार चला सकते हैं। उदाहरणके तौरपर वे २०,००० की आबादीवाले छोटे-से स्थानमे १० रुपये महीने किरायेपर एक दुकान ले

१. देखिए "स्वदेशी", ८-९-१९२०।

सकते हैं, जिसमे रिहायशी कमरे साथमे हो। यदि वे सारा माल १० प्रतिशत मुनाफे-पर बेच दे तो वे ५० रुपये प्रति मास कमा सकते हैं। उनके कोई नौकर नही है। बीवी-बच्चे अपने फालतू समयमे दुकानकी सफाईमे मदद कर सकते हैं, और जब पति बाहर हो तो वे उसकी देखभाल भी कर सकते हैं। बीवी-बच्चे अपना फालतू समय कताईमे भी लगा सकते हैं।

शुरू-शुरूमे खद्दर शायद दुकानपर न बिके। वैसी हालतमे पतिको द्वार-द्वार-पर खद्दरकी फेरी लगानी होगी और उसे लोकप्रिय बनाना होगा। शीघ्र ही उसको ग्राहक मिल जायेंगे।

पाठक मेरे दस प्रतिशतके मुनाफेके सुझावपर आश्चर्य न करे। खद्दर भडार सबसे गरीब वर्गके लोगोके लिए नही बने हैं। खद्दरका प्रयोग कपड़ेपर होनेवाले खर्चका कमसे-कम आधा हिस्सा तो बचा ही देता है। इसका कारण सिर्फ यही नही है कि खद्दर अधिक टिकाऊ होता है (यद्यपि वह अधिक टिकाऊ तो होता ही है), वरन् यह कि उसका प्रयोग हमारी रुचियोंको बिलकुल बदल देता है। मैं ही जानता हूँ कि खद्दरके उपयोगके कारण मैं कितना पैसा बचा सका हूँ। जो लोग मात्र देशभक्तिसे प्रेरित होकर खद्दर खरीदते हैं, वे खद्दरपर १० प्रतिशत मुनाफा आसानीसे दे सकते हैं। अन्तिम बात यह कि खद्दरको लोकप्रिय बनानेके लिए बहुत सावधानी, लगन और श्रमकी जरूरत है। और भडारका मालिक किसी थोक विक्रेतासे खद्दर नही खरीदता, वरन् सबसे अच्छा खद्दर पानेके लिए उसे घूम-घूमकर स्थानीय बुनकरोसे मिलना पड़ता है और उन्हे हाथके कते धागेसे वस्त्र बुननेको प्रोत्साहित करना पडता है। उसे खुद अपने जिलेमे वहाँकी औरतोंमें हाथसे कताईका प्रचार करना पडता है। उसे धुनियोके सम्पर्कमे भी आना पडता है और उनसे रुई धुनवानी पडती है। इस सबके लिए बहुत समझदारी, संगठनशक्ति और योग्यताकी जरूरत होती है। जो आदमी इतने गुणोका प्रदर्शन कर सकता है, वह १० प्रतिशत मुनाफा लेनेका हकदार है। और इस ढगसे चलाया जानेवाला स्वदेशी भंडार स्वदेशी-सम्बन्धी गति-विधियोका सच्चा केन्द्र बन जाता है। जो स्वदेशी भण्डार पहलेसे ही चल रहे हैं उनके प्रबन्धकोका ध्यान मैं इन बातोकी ओर आकृष्ट करता हूँ। वे चाहे अपने तरीकोंमें तुरन्त आमूल परिवर्तन न करे, परन्तु मुझे जरा भी सन्देह नही कि जितनी खादी वे बेचेंगे उस हदतक वे स्वदेशीको आगे बढायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२–९–१९२०

१५८. पुरीमें संकट

मै पाठकोंका ध्यान पुरीके सकटकी सबसे ताजा रिपोर्टकी ओर दिलाता हूँ। अबतक लोगोने इसके प्रति जो उत्साह दिखाया है, वह काफी अच्छा रहा है, फिर भी इतना अच्छा नही कि सकटका पूरा-पूरा मुकाबला किया जा सके। सकटके लम्बे खिचते जानेके कारण स्वयसेवकोकी कमी होती जा रही है। उनके स्थानपर अब वेतनभोगी कार्यकर्त्ताओकी नियुक्ति करनी है। कोषके अभावमे समितिको[1] राहत पानेवालोकी सख्या कम करनेको मजबूर हो जाना पडा, और बिहार तथा उडीसा-की सरकार आर्थिक सकट दूर करनेको तैयार नही है। समितिको कमसे-कम ५०,००० रुपयेकी जरूरत है। मुझे विश्वास है कि जो उदार पाठकगण इस अपीलको पढेंगे, वे मदद देनेमें देर नही करेंगे। एक आदमीने, जो इत्तफाकसे कलकत्तासे पुरी गया हुआ था, मुझे बताया कि उसने अपनी आँखोके सामने एक आदमीको भूखसे तडप-तड़पकर मरते देखा। जहाँ इन अकाल-पीडितोको भोजन देनेकी व्यवस्था की गई थी, वहाँतक वह पैदल चलकर गया था। वह इतना पस्त हो चुका था कि राहतकी इस व्यवस्थाका लाभ उठानेको भी जीवित नही रह सका। अभी पिछले ही दिन एक उडियाको इस कारण आत्महत्याकी कोशिश करते देखा गया कि वह भूखकी व्यथा नही सह सका। उसपर आत्महत्याके प्रयत्नका अभियोग लगाया गया। उस अदालतकी अध्यक्षता करनेवाले मजिस्ट्रेटने उसे लगभग रिहा कर दिया और निर्धन कोषसे २० रुपये दिये।

ये घटनाएँ हमे क्या शिक्षा देती है? यह सकट देशमे बहुत समयसे चला आ रहा है। पुरीके इस सकटके बारेमें जो-कुछ खबरे सुनते है वह इसलिए कि वहाँ इसने बहुत उग्र रूप धारण कर लिया है। परन्तु भारतमें भोज-समारोहों और शादीकी दावतोपर, तमाशों और अन्य एशो-आरामपर पैसे खर्च करना तबतक अपराध माना जाना चाहिए जबतक कि लाखो लोग भूखे मर रहे है। यदि किसी परिवार-का एक सदस्य भूखसे मरनेकी स्थितिमे हो तो उस परिवारके लोग दावत तो नही करेंगे। यदि भारत भी एक परिवार है तो उसके प्रति भी हममे वही भावना होनी चाहिए जो निजी परिवारके प्रति होती है। परन्तु हम प्रत्येक भारतीयके साथ आमतौर पर अपने परिवारके सदस्य-जैसा नाता रखे या न रखे, मै यह आशा जरूर करूँगा कि प्रत्येक व्यक्ति पुरीमे जो गम्भीर संकट विद्यमान है, उसे दूर करनेमें सहायता देगा।

मै यह भी आशा करता हूँ कि श्री कृष्णचन्द्र नायककी सर्प-दशसे मृत्यु-जैसी घटनाओसे स्वयसेवकोंका इस काममे मदद देनेका उत्साह कम नही होगा। नायकने कर्त्तव्यपालन करते हुए श्रेयस्कर मृत्यु पाई है। ऐसी मृत्यु रुग्ण होकर मरनेसे तो

१. लोक अकाल पीड़ित सहायता समिति, पुरी।

अच्छी है। भारतमे नितान्त अज्ञानी व्यक्तिके लिए भी यह एक धार्मिक विश्वासकी बात है कि शरीरके साथ आत्माका नाश नही होता और वह कर्मके अनुसार पुन अपने लिए अच्छा या बुरा चोला प्राप्त कर लेती है, इसलिए मृत्युकी इतनी चिन्ता नही करनी चाहिए जितनी कि लोग करते जान पडते है। श्री नायक अपना यह कर्त्तव्य पूरा करनेके लिए और भी अच्छा चोला धारण करके पुनः धरतीपर आयेंगे। और इस विश्वासको हृदयमे रखते हुए हमे उनकी मृत्युपर शोक नही करना चाहिए बल्कि आनन्द मनाना चाहिए कि उन्हे अपने मानव-भाइयोका सकट दूर करनेका कर्त्तव्य पूरा करते हुए मरनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-९-१९२०

१५९. फीजीमें आतंक[1]

मैंने जो उत्तर दिया, वह उत्तर देते समय मेरे ध्यानमे तीनो विकल्प थे। हमें आशा रखनी चाहिए कि भावी प्रवासकी सम्भावनाओकी जाँच करनेवाले इस प्रस्तावित आयोगका सदस्य बनकर कोई भी स्वाभिमानी भारतीय वहाँ नही जायेगा। अगर हम वहाँके भारतीयोकी शिकायतोकी जाँचके लिए अपनी ओरसे कोई स्वतन्त्र आयोग भेजे तो उसे काम नही करने दिया जायेगा। फीजीमे स्वय कुछ गोरोने श्री एन्ड्रयूजके साथ कैसा व्यवहार किया था? हम पुस्तिकाएँ छपवा सकते है, और भारतमें उन्हे प्रचारित कर सकते है; लेकिन उससे उन लोगोकी वर्तमान समस्या तो हल नही हो जायेगी जो फीजीमें है, और जो जेलमे हैं या जेल भेजे जा रहे हैं। यहाँ मामला तो साफ-साफ यह है कि फीजीके वर्तमान भारतीय बाशिन्दोको आतकित किया जा रहा है ताकि वे गोरे शोषकोकी गुलामी स्वीकार कर ले। पत्रलेखक महाशय यह भूल

१. यह **यंग इंडियाके** सम्पादकके नाम लिखे एक पत्रके उत्तरमें लिखा गया था। पत्रके सम्बन्धित अंश इस प्रकार थे: "आपने कलकत्तेमें ९ सितम्बरको मुझे जो भेंट देनेकी कृपा की थी, उसमें कहा था कि अगर फीजीके भारतीयोंको वहाँ अपनी सारी जायदाद बेच देनी पड़े तब भी आप उन्हें भारत लौट आनेकी ही सलाह देंगे. . .वहाँ उन्होने अपने घर बनवाये है। हजारोंका जन्म ही फीजीमें हुआ है. . .निश्चय ही आप उन सभीसे भारत लौट आनेको नही कहेंगे।. . .हम उन ५० हजार भारतीयोंके लिए कौन-सी व्यवस्था करेंगे. . .मैं आपसे तीन बातोंपर विचार करनेका अनुरोध करूँगा: (१) हमें यहाँकी जनताके सामने यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि जब भारत सरकारसे फीजीकी दुःखद घटनाओंकी स्वतन्त्र जाँच करवानेको कहा गया तब तो उसने इनकार कर दिया, और अब वह फीजीमें मजदूरोंकी स्थितिका अध्ययन करनेके लिए वहाँ एक आयोग भेजने जा रही है। यह जलेपर नमक छिड़कने-जैसा है। किसी भी स्वदेशाभिमानी भारतीयको भारत सरकारके इस आयोगकी सदस्यता स्वीकार नही करनी चाहिए। (२) हमें फीजीके हालके उपद्रवोंके कारणो और परिणामोंकी जाँच करनेके लिए अपनी ओरसे एक आयोग भेजना चाहिए। (३) हमें फीजीकी दुःखद घटनाओंके बारेमें भारतीय भाषाओंमें, विशेषकर हिन्दी और तमिलमें कुछ पर्चे छपवाकर देशमें बाँटने चाहिए।"

गये है कि ये लोग फीजीमे बन्द करके रखे गये है। उन्हे भारत वापस आनेकी कोई सुविधा नही है। मै यह स्मरण दिला दूँ कि दक्षिण आफ्रिका या पूर्व आफ्रिकाकी तरह गोरे लोग भारतीयोको फीजीसे निकाल बाहर नही करना चाहते। फीजीके गोरे, अभी वहाँ जो भारतीय है, उन्हे वही रखना चाहते है तथा और भी भारतीयोको वहाँ बुलाना चाहते है। इसलिए स्पष्ट ही हमारा पहला कर्त्तव्य यह है कि इन थके-हारे और भारसे दबे लोगोको बता दे कि वे अपने खर्चसे भारत लौट आनेको स्वतन्त्र है, क्योंकि स्वय मणिलाल डाक्टरने भी यही निराकरण सुझाया है। फीजीसे मुझे जो तार मिले है, उनमें भी यही कहा गया है। हम जो कमसे-कम कर सकते है वह यह कि उनके लिए भारत लौटनेकी सुविधाओका प्रबन्ध करे।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-९-१९२०

१६०. कांग्रेस-संगठनोंके लिए हिदायतोंके मसविदेपर रिपोर्ट[1]

२२ सितम्बर, १९२०

काग्रेस सगठनोके लिए तथा जिन्हें विशेप काग्रेसके असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार हो उनके लिए दी गई हिदायतोके मसविदेपर अखिल भारतीय काग्रेस द्वारा नियुक्त उप-समितिकी रिपोर्ट।

काग्रेसने सलाह दी है:

(क) खिताबो और अवैतनिक पदोका बहिष्कार किया जाये,

(ख) दावत, राजकीय समारोहो, दरबार आदि सरकारी जलसोका बहिष्कार किया जाये,

(ग) सरकारी या सरकार-नियन्त्रित स्कूलो और कालेजोंका धीरे-धीरे बहिष्कार और राष्ट्रीय स्कूलो और कालेजोकी स्थापना की जाये,

(घ) वकील और मुकदमा लडनेवाले लोग धीरे-धीरे अदालतोका बहिष्कार करे, और ऐसे वकीलोकी सहायतासे पचायती अदालते स्थापित की जाये,

(ङ) उम्मीदवार और मतदाता नई कौसिलोका बहिष्कार करे,

(च) युद्ध-पूर्वके मैसोपोटामिया (अर्थात् टर्की साम्राज्यके प्रदेशो) में काम करनेके लिए सिपाहियो, क्लर्को और मजदूरोके रूपमे की जानेवाली भरतीका बहिष्कार किया जाये,

(छ) विदेशी वस्तुओका बहिष्कार किया जाये,

(ज) हाथके कते सूत और उस सूतसे हाथके बुने कपड़ेके उत्पादन और वितरण-को बढावा देकर स्वदेशीको आगे बढाया जाये।

१. टाइप किये हुए मूल मसविदेमें गांधीजीने अपने हाथसे सशोधन किये हैं।

काग्रेसने श्री गांधीके क्रमिक अहिंसात्मक असहयोगके पूरे कार्यक्रमको स्वीकार कर लिया है, किन्तु तत्काल प्रयोगके लिए उपर्युक्त बातोको हाथमे लिया है।

सवाल यह है कि इन मुद्दोको कैसे अमलमे लाया जाये।

खिताबोंका बहिष्कार

कार्यक्रमका यह सबसे कठिन भाग है, परन्तु साथ ही यह सबसे जरूरी भी है। यह कठिन इसलिए है कि यह उन लोगोपर लागू होता है जिन्होने अबतक सक्रिय सार्वजनिक जीवनमे सामूहिक रूपसे कोई हिस्सा नही लिया है और अपने खिताबो अथवा सम्मानको वे प्राणोकी तरह मूल्यवान मानते रहे है। और असहयोग कार्यक्रममें यह बात जरूरी इसलिए है कि इस वर्गका भी भ्रम दूर करना है, और इसे सिखाना है कि अन्यायी सरकारसे तोहफे लेना एक ऐसी अपमानजनक बात है जिससे निष्ठापूर्वक बचना चाहिए।

अतएव प्रत्येक शहर, ताल्लुके और जिलेमे कार्यकर्त्ताओको ऐसे खिताबयाफ्ता और अवैतनिक पदाधिकारी लोगोकी एक सूची तैयार कर लेनी चाहिए और प्रमुख असहयोगियोके एक छोटेसे शिष्टमण्डलको उनसे मिलकर पूरी विनयशीलता और नम्रतासे उन्हें समझाना चाहिए कि देशकी भलाईके लिए खिताब और अवैतनिक पद छोड देना उनके लिए कितना जरूरी है। किसी भी तरहका अनुचित दबाव न डाला जाये। वाणीकी हिंसासे बहुत सावधानीसे बचना चाहिए और जिन लोगोने अपने खिताब और अवैतनिक पद छोडनेसे इनकार कर दिया हो उनकी सूची प्रान्तीय सदर मुकाममे प्रकाशनार्थ भेज देनी चाहिए। जो लोग स्वय अपने खिताब और अवैतनिक पद छोड़ चुके हो, उनसे और लोगोको भी वैसा करनेके लिए प्रोत्साहित करनेकी अपेक्षा की जायेगी। जिन्हें ऐसे खिताब या पद प्राप्त है, अगर उन लोगोने असहयोगके पक्षमें मत दिया हो, तो उनसे अपने खिताब और पद तुरन्त छोड़ देनेकी अपेक्षा करना स्वाभाविक ही है। ऐसा करते हुए उन्हे उसका कारण भी बता देना चाहिए, अर्थात् यह कि वे काग्रेसके प्रस्तावके कारण अपने खिताब और पद छोड़ रहे है।

सरकारी या सरकार-नियन्त्रित स्कूलों और कालेजोंका बहिष्कार

यह कदम सचमुच ही सबसे अधिक आसान होना चाहिए, क्योकि शिक्षा प्राप्त कर रहे बच्चोके माता-पिताओ तथा वयस्क छात्र-छात्राओने देशकी राजनीतिमे बहुत रुचि ली है। फिर भी इस कदमको बहुतेरे लोगोने असम्भव माना है, क्योकि इन स्कूलो और कालेजोके पक्षमे उनके मनमे पूर्वग्रह जमा हुआ है। तथापि जो लोग एक निश्चित समयके भीतर स्वराज्य पानेको उत्सुक है, उन्हे यह स्पष्ट दिखाई देगा कि कालेजोकी सनदोसे जिन सरकारी नौकरियोकी आशा बँधती है, जबतक हम उन नौकरियोका मोह छोडनेमे समर्थ नही होते तबतक हम अगली कई पीढियोतक अपने लक्ष्यतक नही पहुँच सकते। सरकारकी चाकरीसे छुटकारा पाने और सच्ची राष्ट्रीय सस्कृतिको विकसित करनेका एकमात्र उपाय यही है कि हम अपने बच्चोको छूँछी शिक्षा देनेवाले, झूठा इतिहास पढ़ानेवाले और हमारी राष्ट्रीय जरूरतोपर कोई ध्यान

न देनेवाले वर्तमान सरकारी स्कूलोको खाली करके राष्ट्रीय स्कूलोकी आवश्यकताका निर्माण करें। हम स्कूलो और कालेजोंसे लड़के-लडकियोको धीरे-धीरे हटानेकी सलाह देते हैं। इस बीच उनकी शिक्षाके लिए निजी व्यवस्थापर निर्भर रहा जाये और जहाँ साधनोके अभावमे वह भी सम्भव न हो वहाँ बच्चोंको देशप्रेमी व्यापारियो या कारीगरोके यहाँ उन धन्धोंका प्रशिक्षण दिया जाये। [इसके लिए] जोरदार प्रचारकी व्यवस्था करनी चाहिए और माता-पिताओं, स्कूल-मास्टरो और १७ वर्षसे अधिक उम्रके बच्चोके बीच प्रचार करना चाहिए। स्वयसेवी शिक्षक तैयार करनेके लिए प्रचार करना चाहिए और सरकारके प्रत्यक्ष नियन्त्रणमें चलनेवाले स्कूलोके अलावा जिन अन्य स्कूलोके शिक्षक और उनमे पढनेवाले बच्चोके माता-पिता सहमत हों, वे स्कूल तुरन्त सरकारको नोटिस दे दे कि निरीक्षणके रूपमे या अन्यथा हमपर तुम्हारा जो-कुछ भी नियन्त्रण है या हमे जो-कुछ सहायता मिलती है वह हमे कबूल नही है। इन स्कूलोकी शिक्षा-प्रणालीमे स्थानीय परिस्थितिके अनुसार जैसा परिवर्तन करना जरूरी हो वैसा परिवर्तन करके उन्हें राष्ट्रीय शालाओंकी तरह चलाया जाये। अगर सुशिक्षित लोग हमारी शिक्षाको सचमुच राष्ट्रीय स्वरूप देनेके इस आन्दोलनमे दिलचस्पी ले तो निरीक्षण और मार्ग-दर्शनके लिए स्थानीय समितियाँ बनाई जा सकती है, जो अन्ततोगत्वा प्रान्तीय या जिला स्तरके विश्वविद्यालयोंका रूप ले सकती है। प्रस्तावमे स्कूलोसे सम्बन्धित हिस्सेमे "धीरे-धीरे" क्रियाविशेषणके प्रयोगका मतलब केवल यह है कि तत्काल परिणामोंकी आशा नही है, क्योकि अभी सरकारी स्कूलोके प्रति लोगोमे बहुत मोह है। इसका मतलब यह नही कि प्रचार इस तरह किया जाये कि स्कूलो और कालेजोसे लड़के-लड़कियोको धीरे-धीरे ही हटाया जा सके। जिन अभिभावकोने अपने बच्चे स्कूलोंसे हटा लिये हो, जो लडके स्वय स्कूलोसे हट गये हों, जिन स्कूल-मास्टरोने इस्तीफा दे दिया हो, जो स्थानीय स्कूल स्थापित किये गये हो, उन सबकी तथा स्वयसेवी शिक्षकोकी सूचियाँ तैयार करके प्रान्तीय सदर मुकामको भेज दी जानी चाहिए और उन्हें प्रकाशित करना चाहिए।

अदालतोंका बहिष्कार

यह एक जानी-मानी बात है कि मुकदमेबाजी बहुत बढ गई है। यह भी एक सुविदित बात है कि वकीलोकी सख्यामे वृद्धिके साथ-साथ मुकदमेबाजी भी बढती जाती है। यह भी उतना ही सच है कि किसी भी सरकारके लिए उसकी अदालते और दण्ड-व्यवस्था शक्तिका बहुत बडा स्रोत है। जब जनसाधारणमे सच्ची राष्ट्रीय चेतना जागृत होती है तो उसकी झलक अपराधों और दीवानी मुकदमोकी सख्यामें भी अवश्य मिलेगी। जो राष्ट्र आत्म-निर्णयके लिए सन्नद्ध हो गया हो, उसके पास दीवानी या फौजदारीके आपसी झगड़ोंके लिए समय ही नही रहता, और मुकदमेबाजी न हो, ऐसी स्थिति पैदा करना प्रत्येक व्यक्तिका और विशेष रूपसे कानूनके माहिर लोगोंका कर्त्तव्य होना चाहिए। इसके अलावा अभीतक वकील लोग देशमें जन-आन्दोलनका नियन्त्रण करते आये हैं (और बहुत अच्छी तरहसे नियन्त्रण करते आये है)। यदि वे अपना पूरा समय और ध्यान तत्काल स्वराज प्राप्त करनेमें नहीं लगाते और

अपने अवकाशके समयका एक हिस्सा-भर सार्वजनिक कार्योंमे लगाते हैं, तो यह मानते हुए कि जन-आन्दोलनोका नेतृत्व वकीलोके ही हाथोमे रहना है, स्वराज-प्राप्ति अनिश्चित कालके लिए टल जायेगी। इसलिए निकट भविष्यमे अपने लक्ष्यतक पहुँचनेके लिए यह बिलकुल जरूरी है कि वकील अपनी वकालत छोड दे। जो वकील ऐसा करते हैं, लेकिन साथ ही जिन्हें अपनी जीविकाके लिए सहायताकी भी जरूरत है, राष्ट्र-को उन्हें ऐसी सहायता देनी चाहिए। यह सहायता राष्ट्रीय स्कूलो या आपसी झगडोके निपटारेमे या प्रचार-कार्यमे उनकी सेवाका उपयोग करके दी जा सकती है। जैसे शिष्टमण्डलका सुझाव खिताबयाफ्ता आदि लोगोके सम्बन्धमे दिया गया है, वैसे ही शिष्टमण्डलोको वकीलोसे मिलकर उनकी इच्छाएँ जाननेकी कोशिश करनी चाहिए। प्रत्येक शहर या जिलेमें वकीलोकी सूची तैयार की जानी चाहिए। इस सूचीमे शामिल जो वकील वकालत छोड़ दे, उनके नामपर निशान लगाकर सूचीको प्रकाशनार्थ प्रान्तीय सदर मुकामको भेज देना चाहिए।

वकीलोको चाहिए कि वे सम्बन्धित पक्षोको न केवल अपने नये मुकदमे पच फैसलेके सुपुर्द करनेको प्रोत्साहित करे वरन् ब्रिटिश अदालतोमे उनके जो मुकदमे पहलेसे ही चल रहे हो, उन्हें भी वापस लेकर राष्ट्रीय पचायती अदालतोंको सौपनेकी प्रेरणा दें। जिला समितिको पचायती अदालतोकी अध्यक्षता करनेवाले वकीलो और जनताके विश्वासपात्र अन्य प्रमुख नागरिकोकी सूची बनानी चाहिए। चूँकि अभी पचायती अदालतोके आदेशोंपर अमल करानेवाला कोई तन्त्र नही है, इसलिए जो पक्ष ऐसे आदेशोंका पालन न करे, उनका किसी प्रकारका सामाजिक बहिष्कार करना चाहिए।

ऐसा बताया गया है कि कुछ वकील, जो अपनी वकालत क्षण-भरकी भी देर किये बिना छोड़ देनेको तैयार और उत्सुक हैं, इस कारण अपनी वकालत पूरी तरह बन्द नही कर पा रहे हैं क्यो कि पहलेसे ही कुछ मामले उनके हाथोमे है, और इन्हे वे ईमानदारीके नाते अपने मुवक्किलोंकी अनुमति लिये बिना छोड नही सकते। इन मामलोमे वकीलोसे अपेक्षा की जायेगी कि वे केवल ऐसी ही जिम्मेदारियोकी चिन्ता करेंगे, और जल्दीसे-जल्दी अपनी वकालत पूरी तरह बन्द कर देनेकी कोशिश करेगे।

कौंसिलें

कौंसिलोका बहिष्कार सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है और इसपर सबसे अधिक शक्ति लगानेकी भी जरूरत है। यदि सबसे अच्छे कार्यकर्त्ता कौंसिलोकी सदस्यताके लिए चुनाव लडे तो आम लोग असहयोगका अर्थ नही समझ सकेंगे। सुधार अधि-नियम ऐसा नही बनाया गया है कि तुरन्त स्वराज्य दे दिया जाये। जब कभी स्व-राज्य मिलेगा तो वह इस कारणसे नही कि अंग्रेज हमे स्वेच्छासे वह चीज दे देंगे वल्कि इस कारणसे मिलेगा कि वे हमारी माँग अस्वीकार नही कर सकेंगे। और हम मानते हैं कि कोई हमारी माँग अस्वीकार न कर सके, ऐसी अदम्य शक्ति हमे नई कौंसिलोके भवनोमें प्राप्त नही हो सकती। यह शक्ति तो हमे मतदाताओको, और

जो मतदाता नही है उन्हें भी, निरन्तर शिक्षा देते रहनेसे ही मिल सकती है। जो उम्मीदवार सामने आ चुके है शिष्टमण्डलोको उनसे मिलना चाहिए और अपनी उम्मीदवारी वापस ले लेनेकी प्रार्थना करनी चाहिए। निर्वाचकोसे मिलकर उनसे निम्नलिखित पत्रपर हस्ताक्षर लेने चाहिए:

> राष्ट्रीय काग्रेसके विशेष अधिवेशन और अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके प्रस्तावको ध्यानमे रखते हुए हम, नई कौसिलोके चुनावके लिए निश्चित . . . के . . . निर्वाचन-क्षेत्रके मतदाता, लिखित रूपमे अपनी यह इच्छा व्यक्त करते है कि हम नही चाहते कि प्रान्तीय विधान परिषद् (या विधान सभा अथवा केन्द्रीय विधान परिषद्) मे कोई भी हमारा प्रतिनिधित्व करे और इसके द्वारा हम सभी उम्मीदवारोको सूचित कर देते है कि अगर वे हमारी इस इच्छाके बावजूद चुनाव लड़ते है तो वे हमारे प्रतिनिधि नही होगे। हम नई कौसिलोमे तवतक अपना कोई प्रतिनिधित्व नही चाहते जबतक कि खिलाफत और पंजावके मामलोमे न्याय नही किया जाता और भारतको स्वराज्य नही दे दिया जाता।

अगर किसी भी क्षेत्रमे आधेसे अधिक मतदाताओको इस प्रपत्रपर दस्तखत करनेको राजी कर लिया जाये तो हमारा खयाल है कि कोई भी उम्मीदवार इतनी जोरदार घोषणाके बाद चुनावमें खडा नही रह सकेगा। जिन उम्मीदवारोने अपने नाम वापस ले लिये हो और जो इसके लिए तैयार न हों, उन दोनोके नामोकी सूचियाँ लेकर मतदाताओको पहले पक्ष-विपक्षकी बातें समझानी चाहिए और तब उनसे उपर्युक्त प्रपत्रपर हस्ताक्षर करनेको कहना चाहिए। मतदाताओकी सुविधाके लिए देशी भाषामे प्रपत्रका अनुवाद करा लेना भी जरूरी है।

मैसोपोटामियाके लिए मजदूरों आदिकी भरती

जो राष्ट्र खिलाफत और पजावके निर्मम अन्यायको महसूस करता हो उस राष्ट्रके लोग कमसे-कम इतना तो कर ही सकते है कि मैसोपोटामियामें तथा युद्ध छिडनेके समय जो अन्य प्रदेश टर्की साम्राज्यके हिस्से थे, उनमे सरकारकी सेवा करनेके लिए सिपाहियो, क्लर्कों और मजदूरोके रूपमे भरती होनेसे इनकार कर दे। जिन-जिन लोगोके ऐसी सेवाके लिए भरती होनेकी सम्भावना हो उनके बीच कार्य-कर्त्ताओको प्रचार करना चाहिए, जिसका तरीका यह हो कि वे उनके सामने सच्ची स्थिति स्पष्ट कर दें और फिर उन्हे स्वय ही फैसला करने दें।

विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार

दुर्भाग्यसे यह खण्ड कुछ गलतफहमीके कारण जोड दिया गया है।[1] प्रत्येक असह-योगीका यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी जरूरते सीमित रखे और जिस ऐशो-आरामके लिए उसे विदेशी मालका मोहताज होना पड़े, ऐसे सभी ऐशो-आराम छोड दे।

१. यह वाक्य बॉम्बे क्रॉनिकल, २८-९-१९२० से लिया गया है।

स्वदेशी

प्रस्तावके इस अंशमें वह सब कुछ है जो विदेशी वस्त्रके बहिष्कारके लिए तत्काल किया जा सकता है। विदेशी वस्त्रने, वह चाहे लंकाशायरका हो या जापानका या फ्रांसका, करोड़ोंके मुँहसे रोटी छीन ली है और घरमें कताईकी उस प्राचीन कलाको लगभग समाप्त ही कर दिया है, जो करोड़ों कृषकोंकी कमाईमें योग देनेका एक साधन थी और अकालकी स्थितिमें एक तरहसे बीमेका काम करती थी। इसने हजारों बुनकरोंका सम्मानजनक और काफी आमदनीवाला धन्धा छीन लिया है। हमारी मिलें हमारी जरूरतें पूरी करनेकी दृष्टिसे काफी उत्पादन नहीं करतीं। जो लोग विदेशी कपड़ा पहननेके आदी हैं वे यदि मिलोंपर और बोझ डालेंगे तो उसका एक ही परिणाम होगा कि मूल्यमें वृद्धि होगी और इस तरह गरीब लोग आज जो कपड़ा खरीद पाते हैं वह भी नहीं खरीद पायेंगे। इतनेपर भी इससे स्वदेशीको किसी प्रकारका उत्तेजन नहीं मिलेगा। इसलिए आज हाथकी कताई और हाथकी बुनाई राष्ट्रीय आवश्यकता है और इसे एक खास हदतक सर्वप्रिय बनानेके लिए अनुशासन, त्याग और संगठन-क्षमताकी जरूरत होगी, और ये सभी गुण तो स्वराज पानेके लिए भी जरूरी हैं ही। हाथसे कताई हो, हाथसे बुनाई हो और इस तरह तैयार किये गये कपड़ेके वितरणके रूपमें हम स्वदेशीके पुनरुत्थानको बहुत महत्त्व देते हैं। इस कामके लिए हजारों कार्यकर्त्ताओंको विशेष प्रशिक्षण देनेकी जरूरत है। उच्च-वर्गकी महिलाओंको हाथसे कताई शुरू करने और सिर्फ वही कपड़ा, जो हाथसे कते सूतसे बुना हो, इस्तेमाल करनेके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। गली-गलीमें इसके प्रशिक्षणके लिए शालाएँ खोलनी चाहिए। नमूनेको सामने रखकर कोई भी साधारण बढ़ई चरखा बना सकता है। जो लोग यह काम अपने हाथोंमें लेना चाहें उन्हें व्यवस्थापक, सत्याग्रहाश्रम, साबरमती (अहमदाबादके पास) के पतेपर पत्र लिखना चाहिए।

स्वराज्य-कोष

कांग्रेसके प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके लिए एक राष्ट्रीय कोषकी स्थापना करना बहुत ही जरूरी है। प्रचार-कार्यके लिए, स्वदेशीको उत्तेजन देनेके लिए, राष्ट्रीय स्कूलोंकी स्थापनाके लिए और जिन वकीलोंने अपनी वकालत छोड़ दी हो और अपना भरण-पोषण करनेमें असमर्थ हों उनको मदद देनेके लिए एक कोषकी जरूरत होगी। इसलिए प्रान्तीय संगठनोंको जिला संगठनोंकी सहायतासे कोष-संग्रह करनेका हर प्रयत्न करना चाहिए और आय-व्ययकी मासिक रिपोर्ट पेश करनी चाहिए।

स्वयंसेवक दल

लोगोंको अनुशासन सिखाने और व्यवस्था कायम रखनेके लिए प्रान्त, जिला और नगर, तीनों स्तरोंके संगठनोंको स्वयंसेवक-दल तैयार करने चाहिए।

अन्तमें हम सलाह देंगे कि जहाँ कार्यकर्त्ता पर्याप्त संख्यामें हों, वहाँ एक-एक दलको एक-एक अलग काममें विशिष्टता प्राप्त करनी चाहिए ताकि वह उस विशेष

कामको सफल बना सके। जहाँ कार्यकर्त्ता पर्याप्त सख्यामें न हो, वहाँ कौसिलोंके बहिष्कारको प्राथमिकता देनी चाहिए, क्योंकि असहयोगके इस हिस्सेके सम्बन्धमे आगामी दिसम्बरके मध्यसे पहले ही कुछ कर दिखाना है।

पण्डित मोतीलाल नेहरू
मो० क० गांधी
व० झ० पटेल
(एक अलग टिप्पणीकी शर्त सहित)[1]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७२६६) की फोटो-नकलसे।

१६१. तार: शौकत अलीको[2]

[२३ सितम्बर, १९२० या उसके बाद]

खुद तो जाना नही चाहता। यदि आप समझते है कि उद्देश्यको लाभ पहुँचेगा तो जानेको राजी हूँ। महीनेके अंततक मुझे विश्रामकी आवश्यकता है।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७२६८) की फोटो-नकलसे।

१६२. होमरूल लीगकी शाखाओंको परिपत्र

अखिल भारतीय होमरूल लीग
३०५/०९, मसजिद बंदर रोड
माण्डवी
बम्बई
[२५ सितम्बर, १९२० के पूर्व]

सेवामे
अध्यक्ष एव मन्त्रिगण
होमरूल लीग शाखा

प्रिय महोदय,

अखिल भारतीय होमरूल लीग द्वारा कलकत्तेकी अपनी आम बैठकमें पास किये गये प्रस्तावके अनुसार हम काग्रेसके विशेष अधिवेशनमें पास किये गये असह-योग प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके लिए निम्नलिखित हिदायतें भेज रहे है:

१. देखिए परिशिष्ट १।

२. यह शौकत अली द्वारा २३ सितम्बर, १९२०को बम्बईसे भेजे गये तारके जवाबमें था। शौकत अलीने अपने तारमें कहा था: "२७ तारीखको जफर अली खाँके मामलेकी सुनवाई है, इसलिए पंजाब खिलाफत समिति चाहती है कि आप तत्काल वहाँ पहुँच जायें। . . ."

अखिल भारतीय होमरूल लीगकी सभी शाखाओसे अनुरोध है कि वे लीगके उद्देश्यको ध्यानमे रखते हुए काग्रेसके विशेष अधिवेशनके असहयोग-सम्बन्धी प्रस्तावको उस हदतक कार्यान्वित करें जिस हदतक उसमे जनताको कार्रवाई करनेकी सलाह दी गई है। और कारगर कार्रवाईके खयालसे सभी शाखाओसे फिलहाल प्रार्थना है कि वे अगले दो महीनेतक मुख्यत नई कौसिलोके पूर्ण बहिष्कारकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित करे। इस उद्देश्यसे सभी शाखाओसे अनुरोध है कि वे मतदाताओसे निम्नलिखित प्रपत्रपर हस्ताक्षर करायें :

राष्ट्रीय काग्रेसके विशेष अधिवेशन और अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके प्रस्तावको ध्यानमे रखते हुए हम, नई कौसिलोके चुनावके लिए निश्चित . . . के . . . निर्वाचन-क्षेत्रके मतदाता, लिखित रूपमें अपनी यह इच्छा व्यक्त करते हैं कि हम नही चाहते कि प्रान्तीय विधान परिषद् (या विधान सभा अथवा केन्द्रीय विधान परिषद्) में कोई भी हमारा प्रतिनिधित्व करे और इसके द्वारा हम सभी उम्मीदवारोको सूचित कर देते हैं कि अगर वे हमारी इस इच्छाके बावजूद चुनाव लड़ते हैं तो वे हमारे प्रतिनिधि नही होगे। हम नई कौसिलोमे तबतक अपना कोई प्रतिनिधित्व नही चाहते जबतक कि खिलाफत और पजाबके मामलोंमे न्याय नही किया जाता और भारतको स्वराज्य नही दे दिया जाता।

इस बातपर जितना जोर दिया जाये, कम होगा कि हस्ताक्षर लेनेसे पूर्व मतदाताओको साफ-साफ समझा देना चाहिए कि वे क्या कर रहे है। उनपर किसी तरहका दबाव नही डालना चाहिए। उम्मीदवारोसे भी अनुरोध करना चाहिए कि जहाँ-कही आधेसे अधिक मतदाताओने लिखित रूपमे अपनी इच्छा व्यक्त कर दी हो, वहाँ उनकी इच्छाका खयाल रखते हुए वे अपनी उम्मीदवारी वापस ले ले।

काग्रेसने तत्काल अमल करनेके लिए अपने कार्यक्रममें जो अन्य बाते शामिल की है, उनके सम्बन्धमे निर्देश यथा समय भेज दिये जायेगे।

मो० क० गांधी
अध्यक्ष
उमर सोबानी[1]
जवाहरलाल नेहरू
चक्रवर्ती राजगोपालाचारी[2]
महा मन्त्रिगण

[*अंग्रेजीसे*]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २५-९-१९२०

१. एक समय काग्रेसके कोषाध्यक्ष; १९२६ में देहान्त हुआ।
२. १८७९- ; प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और लेखक; स्वतन्त्र भारतके प्रथम भारतीय गवर्नर-जनरल।

१६३. पत्र : मतदाताओंको[1]

अखिल भारतीय होमरूल लीग
मसजिद बन्दर रोड
माण्डवी
बम्बई
[२५ सितम्बर, १९२० के पूर्व]

कांग्रेसके विशेष अधिवेशनने बहुत बड़े बहुमतसे नई कौंसिलोंके पूर्ण बहिष्कार-का निर्णय किया है। इसलिए नई कौंसिलोंके निर्वाचनमें किसी भी उम्मीदवारको मत न देना आपका कर्त्तव्य है। फिर भी यदि कोई उम्मीदवार आपके नामपर खड़ा होना चाहे तो उसके लिए यह जान लेना जरूरी है कि आप नहीं चाहते कि वह या कोई अन्य व्यक्ति कौंसिलोंमें आपका प्रतिनिधित्व करे। इस उद्देश्यसे आपको उस प्रपत्र[2]-पर हस्ताक्षर करने चाहिए जो तदर्थ तैयार किया गया है। अपने आस-पासके मतदाताओंको भी यह बता देना आपका कर्त्तव्य है कि उन्हें क्या करना चाहिए।

आप जानते हैं कि कौंसिलोंमें प्रवेश करना क्यों गलत है। सरकारने पंजाबके साथ न्याय करनेसे इनकार कर दिया है। ब्रिटिश मन्त्रियोंने खिलाफतके बारेमें मुसलमानोंको शपथपूर्वक दिये गये वचन तोड डाले हैं और इस सम्बन्धमें अन्य प्रकारसे भी उनकी गहरी भावनाओंकी उपेक्षा कर दी है।

हमें इन अन्यायोंका निराकरण करना है, और ऐसा अन्याय या विश्वासघात फिर न किया जाये, इसलिए हमें स्वराज्य प्राप्त करना है और इस हीनताके कलंकसे छुटकारा पाना है। हम यह सब कौंसिलोंमें जाकर नहीं कर सकते, और न वहाँ जाकर स्वराज्य ही प्राप्त कर सकते हैं। इसके विपरीत, यद्यपि हमारे प्रतिनिधि सरकारके अन्यायपूर्ण कानूनोंके खिलाफ मत दे सकते हैं, फिर भी वे उन [सरकारी] कानूनोंके निर्माता माने जायेंगे और इस तरह अनिच्छापूर्वक अन्यायके साधन बनेंगे। इसलिए अपने सम्मान की रक्षा करने, शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त करने और इन अन्यायोंका निराकरण करनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि मतदाता अपना कोई भी प्रतिनिधि कौंसिलोंमें न भेजे।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २५-९-१९२०

१. बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२० के अनुसार यह गांधीजी द्वारा एक पर्चेके रूपमें जारी किया गया था और लोगोंके बीच काफी बड़ी तादादमें वितरित किया गया था।

२. देखिए पृष्ठ ३०५।

१६४. तार: जमनालाल बजाजको

अहमदाबाद
२५ सितम्बर, १९२०

जमनालाल,[1]
बच्छराज
वर्धागंज

अरविन्द घोषको[2] तार दिया।[3] स्वास्थ्य बहुत कुछ बेहतर।

गांधी

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

१६५. पत्र: अ० भा० कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षको[4]

२५ सितम्बर, १९२०

अध्यक्ष
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी
कलकत्ता

महोदय,

पिछली २ जनवरीको अमृतसरमें हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनमें एक प्रस्ताव द्वारा, कांग्रेस-संविधान तथा नियमावलीमें किये जानेवाले संशोधनोंका मसविदा तैयार करनेके लिए, निम्न हस्ताक्षरकर्त्ताओंकी एक समिति नियुक्त की गई थी। इस समितिको ३० जून अथवा उससे पूर्व अपनी रिपोर्ट पेश कर देनी थी। हमें खेद है कि कुछ अप्रत्याशित कठिनाइयोंके कारण हम समयपर अपनी रिपोर्टको अन्तिम रूप नहीं दे सके।

संविधानका अन्तिम मसविदा अब इस पत्रके साथ भेजा जा रहा है।

१. १८८९–१९४२; प्रसिद्ध गांधीवादी उद्योगपति, जिन्होंने गांधीजीकी रचनात्मक योजनाओंमें भरपूर सहयोग दिया। गांधीजीके निकटतम साथियों और सलाहकारोंमें से एक।

२. अरविन्द घोष (१८७२–१९५०); योगी, कवि और दार्शनिक; १९१० से पाण्डिचेरीमें स्थायी रूपसे रहने लगे थे।

३. नागपुर कांग्रेस अधिवेशनकी अध्यक्षता स्वीकार करनेके लिए।

४. मूल मसविदा गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें है।

इस सम्बन्धमें हम लोग कहीं मिलकर परस्पर बातचीत नहीं कर पाये। हमें एक-दूसरेसे पत्रों द्वारा ही सलाह-मशविरा करना पड़ा है।

विभिन्न स्थानोंसे प्राप्त समस्त सुझावोंपर सावधानीसे विचार करके ही हम अपने निष्कर्षोंपर पहुँचे हैं।

कांग्रेसमें प्रतिनिधियोंकी संख्या निश्चित करनेकी बातपर हम लोग सहमत नहीं हो सके हैं। यह सुझाव श्री गांधीका ही है। हममें से ज्यादातर लोगोंकी समझमें, प्रतिनिधियोंकी संख्या सीमित कर दिये जानेसे कांग्रेस अपने प्रदर्शनात्मक स्वरूप और प्रभावोत्पादकताको खो बैठेगी। हममें से ज्यादातर लोग यह तो स्वीकार करते हैं कि आजकल कांग्रेसके जो अधिवेशन आदि होते हैं, प्रतिनिधियोंकी अधिकताके कारण उनकी ठीकसे व्यवस्था नहीं हो पाती। लेकिन उनकी राय है कि प्रतिनिधियोंकी संख्या-पर कोई प्रतिबन्ध न रखनेका लाभ उससे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयोंकी तुलनामें बहुत अधिक है। इसके विपरीत श्री गांधीका खयाल है कि अगर कांग्रेसको सचमुच प्रातिनिधिक रूप देना है और उसे ठीक विचार-विमर्श करने योग्य संस्था बनाना है तो संख्याको सीमित करना आवश्यक है। वे यह भी मानते हैं कि जब कांग्रेस व्यवस्थित रूपसे भारतकी सारी जनताका प्रतिनिधित्व करने लगेगी और उसकी कार्रवाईमें इस तरह जब सारी जनताकी आवाजका प्रभावकारी और समुचित सन्निवेश होगा और उसके प्रत्येक प्रस्तावपर बारीकीके साथ पूरी तरह सोच-विचार किया जायेगा तब इसकी माँगोंको अस्वीकार करना असम्भव हो जायेगा। उनका खयाल है कि दर्शकों और अतिथियोंके निर्बाध प्रवेशसे ही कांग्रेसके प्रदर्शनात्मक स्वरूपमें कोई कमी नहीं आने पायेगी। संलग्न मसविदेमें श्री गांधीके सुझाव शामिल किये गये हैं। अतएव यदि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी श्री गांधीके सुझावको स्वीकार नहीं करती तो प्रति-निधियोंकी संख्याको सीमित करनेवाले खण्डोंको निकाल देना पड़ेगा। यदि समिति श्री गांधीके संख्याको सीमित करनेके प्रस्तावको स्वीकार कर लेती है तो हम आनु-पातिक प्रतिनिधित्वके उस आधारका अनुमोदन करते हैं जो एकल संक्रमणीय मत (सिंगल ट्रान्सफरेबल वोट) के नामसे ज्ञात है।

हम अखिल भारतीय कांग्रेस समितिका ध्यान उसकी नीतिमें किये गये परिवर्तनों-की ओर भी आकर्षित करना चाहते हैं। हमने जो सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन सुझाया है वह है अपनाये जानेवाले तरीकोंके सन्दर्भमें 'संवैधानिक' विशेषणके स्थानपर 'वैध और सम्मान्य' विशेषण रखना। हमारे विचारसे 'संवैधानिक' का दोहरा — लोक-प्रचलित और कानूनी — अर्थ असमंजसमें डालनेवाला है। कांग्रेसने सुधारोंके सम्बन्धमें अभी हालमें ही जो प्रस्ताव पास किया है; उसको देखते हुए हमने सम्बन्धित अनुच्छेदसे ये शब्द निकाल दिये हैं — "प्रशासनकी वर्तमान प्रणालीमें निरन्तर सुनिश्चित सुधार।"

हमने जो एक और उल्लेखनीय परिवर्तन किया है वह है भाषाके आधारपर प्रान्तोंका पुनर्गठन। हमारा विश्वास है कि प्रान्तोंका जो गठन विजेताओंने समय-समयपर अपनी जरूरतोंको देखते हुए किया वह ठीक नहीं है तथा यह बात साधा-

रणतया अलग-अलग भाषा बोलनेवाले विभिन्न समुदायोकी राजनीतिक और सामाजिक उन्नतिमे और इस प्रकार पूरे भारतकी उन्नतिमे भी बाधक है। इसलिए हम महसूस करते है कि जहाँतक काग्रेसका सवाल है, हमे भारतको पुन. भाषावार प्रान्तोके रूपमें विभाजित करना चाहिए। सरकारसे प्रान्तोका भाषावार पुनर्गठन करवानेके सम्बन्धमें जो आन्दोलन चलाया जा रहा है, इससे उसको बल मिलेगा।

हमने काग्रेसमे मुसलमानोके प्रतिनिधित्वके लिए कोई विशेष व्यवस्था नही की है। इन दोनो जातियोके बीच वर्तमान सौहार्दपूर्ण सम्बन्धोको ध्यानमे रखते हुए हम उनके अलग प्रतिनिधित्वकी कोई आवश्यकता नही समझते। लेकिन हम यह कहना चाहेंगे कि यदि मुसलमान विशेष व्यवस्था अथवा सरक्षणकी इच्छा व्यक्त करे तो उनकी इस इच्छाकी पूर्तिके लिए ऐसा कर देना चाहिए। जहाँतक उर्दू भाषाको स्वीकार करनेका सवाल है, हमने सामान्य शब्द हिन्दुस्तानीका प्रयोग किया है, जिसमें हिन्दी और उर्दू दोनो ही भाषाएँ आ जाती है। और हमने देवनागरी तथा फारसी दोनो ही लिपियोको स्वीकार किया है।

हम नियमोका अलग मसविदा नही दे रहे है। हमारा खयाल है कि सविधानमे, जहाँ किन्ही विपरीत नियमोका विधान न हो, वहाँ काग्रेस तथा उसकी प्रशाखाओं-जैसी सस्थाओके सम्बन्धमें सामान्य रूपसे स्वीकृत कार्यविधि ही लागू मानी जानी चाहिए।

हम हैं,
आपके

अग्रेजी प्रति (जी० एन० ८२२८) की फोटो-नकलसे।

१६६. एक विचित्र परिपत्र

शिक्षा विभागकी ओरसे एक परिपत्र जारी किया गया है; उसका अनुवाद निम्नलिखित है.[1]

इस परिपत्रको जारी करनेके उद्देश्यको समझना कोई कठिन बात नही है। इस परिपत्रपर पहली सितम्बरकी तारीख पडी है। जब एक पक्ष असहकारकी बात करता है तो वहाँ पशुबल काम नही आता, बन्दूक भी व्यर्थ जाती है, यह बात बन्दूकका प्रयोग करनेवालो को माननी ही पड़ेगी। जब हम असहकार कर सकेंगे तब बन्दूकोपर धूल जमने लगेगी, उनपर घास उग आयेगी और हमारे बच्चे उसपर खेलेंगे।

जब असहयोग चलता है तब विरोधीके सामने सहयोगकी बात करनेके अलावा और कोई चारा ही नही रह जाता। साम्राज्यका आधार परस्पर मैत्री — सहकार — पर ही है, इसमे कोई सन्देह नही। यह मैत्री जब मुझे मिथ्या जान पडी — बलवान और

१. परिपत्रके मजमूनके लिए देखिए "साम्राज्यका अर्थ", २९-९-१९२०।

निर्वलकी दोस्ती लगी — तभी मैंने असहयोगका सुझाव रखा। मित्रता वरावरके लोगोके वीच ही होती है और हम समस्त ससारके साथ मित्रता रखना चाहते हैं इसीसे उनकी वरावरीकी हैसियत प्राप्त करना चाहते हैं, उनके प्रति निर्भय रहना चाहते हैं, उनके पशुवलपर नैतिक वलसे विजय प्राप्त करना चाहते हैं।

हमारा असहयोग ही हमारी मित्रताकी नीव है। उपर्युक्त परिपत्र सिर्फ दम्भ है, ढोग है। यह प्रयत्न रेतकी दीवार उठानेका प्रयत्न करनेके समान निरर्थक है। यदि सरकारकी नीयत सचमुच हमें मित्र माननेकी हो तो उसे अन्याय दूर करना चाहिए, उसके व्यवहारमें अन्तर आना चाहिए, उसका हृदय द्रवित होना चाहिए। यदि उसका हृदय द्रवित हो उठे तो वह अनेक पापोका प्रायश्चित्त करे। पजावको न्याय दे; मुसलमानोके जख्मको भरे; तिलक महाराजको अपना शत्रु माननेके वदले उन्हें साम्राज्यका स्तम्भ माने; वाइसरायने उनका नामतक न लेनेका जो अपराध किया है, वे अपने अपराधके लिए क्षमा-याचना करे। तिलक महाराजका सवसे-वड़ा अपराध यही तो है कि उन्होने अपनी दूरदृष्टिसे देखा कि जवतक अग्रेज अधिकारी हमें तुच्छ मानते हैं तबतक उनका ससर्ग हमारे लिए हानिकारक है। इसीसे अंग्रेज अधिकारियोको लगता है कि यदि वे उनका नाम लेंगे तो अपवित्र हो जायेंगे।

जवतक उनके मनमें हमारे प्रति तिरस्कारका भाव है तवतक मैत्री वढानेके ये परिपत्र झूठे प्रलोभन हैं। लेकिन अधिकारियोंका हृदय बदलवानेकी उम्मीद रखनेका अधिकार हमे तभी प्राप्त होगा जब हम स्वय अपने चारित्र्य वलसे उनके द्वेपभावको जीत लेंगे। हम स्वय ही उन्हें अपनी अपेक्षा अधिक बलवान मानते हैं। हम उनके जैसा होना चाहते हैं। तथ्य तो यह है कि साम्राज्य प्राप्त करनेमे कोई उत्कर्षकी वात नही है। साम्राज्य प्राप्त करनेमें पशुवल, साम, दाम, दण्ड, भेद आदि शक्तियोका प्रयोग होता है। इसमे नीतिमत्ताके मापदण्डको स्थान नही है। नीति ही तो उत्तमताका माप-दण्ड है और नीतिकी पृष्ठभूमिपर प्रतिष्ठित साम्राज्य ही सच्चा साम्राज्य है। हिन्दुस्तानने इस साम्राज्यको प्राप्त करनेके लिए असहयोगके मार्गको अपनाया है। उपर्युक्त परिपत्र तो हमे इतना ही सिखाता है, हमारा प्रतिपक्षी भी इस बातको स्वीकार करता है कि हमारा रास्ता सच्चा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६–९–१९२०

१६७. गुजरातका कर्त्तव्य

अब गुजरात क्या करेगा — यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है। गुजरातने तो कांग्रेसका अधिवेशन होनेसे पूर्व ही इस बातका निश्चय कर लिया था कि वह विधान परिषदो, स्कूलो और अदालतोका बहिष्कार करेगा; उसके इस निश्चयको कांग्रेसने बहाल रखा है। इस तरह गुजरातका दोहरा कर्त्तव्य हो जाता है।

तथापि गुजरातने इस दिशामे कुछ विशेष कार्य किया हो, सो बात दिखाई नही देती।

ऐसा प्रतीत होता है कि विधान परिषदोका अधिकागत· बहिष्कार किया जायेगा लेकिन इतना ही काफी नही होगा।

हमने कितने स्कूल खाली कर दिये है? कितने वकीलोने अपनी वकालत बन्द कर दी है? कितने लोगोने विदेशी मालका सर्वथा त्याग कर दिया है? कितनोने हाथसे कातना-बुनना आरम्भ किया अथवा करवाया है?

ये प्रश्न कोई साधारण प्रश्न नही है। इनका सही उत्तर ही हमारे खरेपनकी कसौटी होगा। विधान परिषदोंमें जाकर हमारे हाथ उठानेसे न स्वराज मिल सकता है, न पजावको न्याय और न उससे इस्लामका मान-भग ही रुक सकता है।

वाइसराय महोदयने अपने कामसे एक बार फिर यह दिखा दिया है कि हमें न्यायकी आशा नही रखनी चाहिए। अधिकारियोको डाँटा अवश्य गया है; किन्तु हिन्दुस्तानने अपराधी अधिकारियोंको डाँटने-भरकी ही माँग नही की थी। उसने उन्हे बरखास्त करने तथा उचित दण्ड देनेकी माँग की थी। लेकिन ऐसा कुछ नही किया गया।

फीजीमे निर्दोष और असहाय भारतीयोपर अमृतसर-जैसा कहर बरपा किया गया। न्यूजीलैंडमे भारतीयोके साथ जैसा असभ्य व्यवहार किया जाता है, गुजरातियोने उसके बारेमे अवश्य पढा होगा। आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीयोके अधिकारोंपर भी आक्रमण जारी है। दक्षिण आफ्रिकासे बडी कुशलतापूर्वक भारतीयोको भगाया जा रहा है। जहाँ ऐसी राजनीति विद्यमान है वहाँ सहयोग कैसा?

इस राजनीतिको बदलने, अग्रेजोके समकक्ष होने, स्वाभिमानको बनाये रखने, देशको कंगाल होनेसे बचानेका और यदि हमारी अपनी कोई सभ्यता है तो उसे अभिव्यक्त करनेका कर्त्तव्य हमने अपने सिरपर उठा लिया है।

यह सब हम सभाओं अथवा प्रार्थनापत्रो द्वारा नही कर पायेंगे — ऐसा कांग्रेसने निश्चयपूर्वक कहा है। गुजरातियोने तो उससे पहले ही यह कहा था।

तब हम यह कार्य किस तरह कर सकते है? हमारा उत्तर है कि वैसा हम "असहकार" से कर पायेंगे। अग्रेजी राज्यसे असहयोगका अर्थ है, हममे परस्पर सहयोग; और यह स्वार्थ-त्याग, दृढता, कार्यदक्षता, योजना तथा शिक्षाके बिना कदापि नही हो सकता।

अपनी शिक्षाके लिए, अपने झगड़ोंको निपटानेके लिए, अपने कानूनके लिए, अपनी पोशाकके लिए यदि हमें अंग्रेज सरकारका मुंह जोहना पडे तो हम किस तरहसे असहयोग कर सकते है?

अनीतिमें निमज्जित रहकर भी यदि कोई पिता अपने वच्चोको शिक्षा देता हो, उनके झगडोको निपटाता हो, उनके भविष्यके लिए नियमोकी रचना करता हो तो क्या उस पिताके साथ वे वच्चे असहकार कर सकते है? और क्या तव असहकारका पहला कदम इन तीनों वस्तुओके त्यागसे आरम्भ नही होगा? और जव वच्चे उसकी इन मेहरवानियोंको एकाएक छोड देंगे तव पिताके मनपर क्या वीतेगी? क्या पिता तुरन्त ही अपने आचरणको वदलकर वच्चोको मनानेका प्रयत्न नही करेगा?

लेकिन यदि वच्चे यह मानते हो कि शिक्षासे प्राप्त होनेवाले लाभको खोना नही चाहिए, पिताजी हमारे झगड़ोका निपटारा कर देते है — यह एक अच्छी वात है, और फिर भविष्यके लिए नियमोका विधान भी पिता ही कर सकता है, इन सव सुविधाओको छोडकर असहकार किस लिए? यदि वे ऐसा सोचें तो वे पिताकी अनीतिको दूर नही कर सकते, इतना ही नही अपितु उसके भागीदार वन अन्तत. स्वयं भी वैसी ही अनीति करने लगते है।

ठीक यही वात सरकार और हमारे वारेमें चरितार्थ होती है। यदि स्थूल लाभोके प्रलोभनमे पडकर हम उससे समझौता कर ले तो स्वराज्य हमसे दूर खिसक जायेगा, क्यो कि हमे यही लगेगा कि स्कूल और अदालते आदि तो सरकार ही चला सकती है। जिस तरह हमेशा गाडीमें वैठनेवाला व्यक्ति अपने चलने-फिरनेकी क्षमताको खो वैठता है उसी तरह पराधीनावस्थामे शिक्षा आदि प्राप्त करनेवाले व्यक्ति कभी स्वावलम्वी नही वन सकते।

जव हम स्वय अपने वालकोको शिक्षा दे सकेंगे, स्वय अपने झगड़ोको निपटा सकेंगे तव हममें नया वल आयेगा और हमे स्वतन्त्रताकी वात सूझेगी।

आगरामे हिन्दू-मुसलमानोके वीच झगडा हुआ। एक अग्रेज अधिकारीने कहा, "अव वुलाओ अपने मौलाना शौकत अली और गाधीको।" ऐसा कहकर उसने हमारा उपकार किया। मौलाना अथवा गाधीको वहाँ जानेकी जरूरत ही नही पडी; दिल्लीसे प्रख्यात हकीम अजमलखाँ और दूसरे लोग पहुँच गये तथा उन्होने दोनो कौमोके वीच समझौता करवा दिया। प्रजाको विश्वास हो गया कि सिपाहियो और अधिकारियोके विना भी काम चल सकता है। इस हदतक जनताने तरक्की की, वह स्वतन्त्र हुई और स्वराज्यके योग्य वनी।

इस तरह जनता जैसे-जैसे अपने कारोवारको स्वयं सँभालने लगेगी वैसे-वैसे वह स्वतन्त्र होती जायेगी।

असहयोग आन्दोलनका मन्शा ही उसके द्वारा जनताको उसकी अपनी शक्तिसे परिचित कराना है। जनताको इस वातकी प्रतीति होनी चाहिए कि उसकी सम्मतिके विना, उसके सहयोगके विना राज्यतन्त्र चल ही नही सकता। इस प्रतीतिमें ही स्व-राज्यका मूल निहित है। जनता जवतक लालच, अज्ञान अथवा डरके कारण सरकारसे

सहयोग कर रही है तभीतक वह परतन्त्र है। मान-अपमानके जजालसे, सरकार द्वारा स्थापित स्कूलोसे ही ज्ञान-प्राप्ति हो सकती है — ऐसी भ्रान्तिसे तथा सरकारके पशु-बलके भयसे मुक्त होनेपर ही जनता स्वतन्त्र होगी।

यह स्पष्ट बात सब गुजरातियोंको समझ लेनी चाहिए और सबको अपना कर्त्तव्य जान लेना चाहिए।

[हमारे पास] मुख्यतया कार्यकर्त्ताओका अभाव है। यदि हमें ईमानदार, सदाचारी, जागृत और असहयोगके प्रत्येक कदमपर अविचलित श्रद्धा रखनेवाले कार्यकर्त्ता मिल जाये तो जनताको तैयार होनेमे तनिक भी देर नही लगेगी। मुझे उम्मीद है कि प्रत्येक गाँवसे ऐसे कार्यकर्त्ता मिलेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-९-१९२०

१६८. उड़ीसाका अकाल

उडीसामे अकाल-जनित दुख और क्षोभ कम होनेकी बजाय बढते ही जाते है। 'नवजीवन' के पाठकोने अकालपीडितोकी बहुत सहायता की है, लेकिन उतना ही पर्याप्त नही है। भाई अमृतलाल ठक्करने ५०,००० रुपयेकी माँग की है, यदि वह माँग पूरी न हुई तो कितने ही व्यक्ति भूखो मर जायेगे।

कोई भी व्यक्ति स्वयं जाकर वहाँकी हालत देख सकता है। थोडे समय पहले एक सज्जन वहाँ गये थे, उन्होने अपनी आँखोंके सामने एक व्यक्तिको भूखसे प्राण छोडते देखा। वह व्यक्ति वहाँ, जहाँ अकालपीडितोको अनाज बाँटा जाता है, अनाज लेनेके लिये आया था, लेकिन लेनेके पहले ही चल बसा।

इसी तरह अकालपीडित एक अन्य व्यक्ति अत्यन्त दुखी होकर आत्महत्या करने जा रहा था, किन्तु आत्महत्या अपराध है, इसलिए पुलिसने उसे गिरफ्तार कर लिया। मजिस्ट्रेटने उसे नाममात्रकी सजा सुनाकर छोड दिया और उसे दान-पेटीसे बीस रुपये भी दिये गये।

पुरीमे इस समय स्वयसेवकोकी कमी है। जो स्वयसेवक वहाँ है वे थक गये है, फलत वैतनिक कर्मचारी रखने पडे है, अर्थात् यह फाजिल खर्च होने लगा है। इस खर्चको पूरा करना हमारा धर्म है।

जबतक भारतमे करोड़ों व्यक्ति अकालका शिकार होकर भूखो मर रहे है तबतक हमें चाय-पार्टियों, रात्रिभोजों, आडम्बरपूर्ण वाद-विवाद करवाने तथा भोग-विलासके साधनोपर पैसा खर्च करनेका कोई अधिकार नही है। स्वयं उत्तम पकवान आदि खाना भी अनुचित है।

यह बात तो मैंने एक लम्बे अरसेसे गरीबीके शिकार भारतीयोके प्रति हमारा कर्तव्य सूचित करनेके लिए कही है। आप उसे स्वीकार करे अथवा न करे लेकिन

पुरीमे इस समय जो भूखमरी है उसके निवारणके विना हमारा छुटकारा नही होगा। इसलिए मुझे उम्मीद है कि उस निमित्त प्रारम्भ किये गये दान-कोषमें सभी लोग यथाशक्ति दान देगे।

इसके अतिरिक्त भाई अमृतलाल ठक्कर द्वारा सूचित एक दूसरे तथ्यकी ओर भी मै पाठकोका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। वे लिखते है कि कृष्णचन्द्र नामक एक नवयुवककी कार्य करते हुए साँपके काटनेसे मृत्यु हो गई। इस भाईके परिवारके प्रति हमे अपनी समवेदना व्यक्त करनी चाहिए लेकिन [सच पूछो तो] मेरा मन तो उन्हे बधाई देनेको करता है।

मुझे दस्त लगे और उनसे मेरी मृत्यु हो जाये, इसकी अपेक्षा मै भूखसे मरते किसी व्यक्तिकी भूखको मिटानेके प्रयत्नमे साँपके काटनेसे होनेवाली मृत्युको अधिक पसन्द करूँगा। दस्त मुझे मेरे पापोके परिणामस्वरूप लगेगे, साँपने भी कदाचित् मेरे पापोंके कारण ही काटा हो तथापि अच्छा काम करते हुए अनायास ऐसी मृत्यु आ जाये तो इससे सद्गति ही मिलेगी; फलत मै अपनेको भाग्यशाली मानूंगा।

मेरी कामना है कि कोई भी व्यक्ति भाई नायककी मृत्युसे भयभीत न होकर हर्षका अनुभव करे और ऐसा कोई भी कार्य करनेमे सकोचका अनुभव न करे।

हिन्दुस्तानमे, जहाँ मौतका भय सबसे कम होना चाहिए, लोग विशेष रूपसे इससे त्रस्त दिखाई देते है। हम आत्माको अजर-अमर मानते है, शरीरको क्षणभंगुर समझते है। आत्मा अपने कर्मानुसार नवीन देह धारण करता है। तो फिर मरणका भय वा शोक ही क्यो करे? बालक भी मरे तो हम यह समझकर कि वह अपना कर्ज चुकाकर चला गया, उसकी मृत्युसे दुखी न हों। किन्तु ऐसा क्यों नही होता? बालककी मृत्यु अकाल मृत्यु मानी जाती है, क्या यह मिथ्या धारणा नही है? सबकी मृत्यु समयपर ही होती है, क्या ऐसा मानना हमारा धर्म नही है? मृत्युकी भावनाके पीछे जो मिथ्या भ्रान्तियाँ है उनसे हमे निसन्देह मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए।

इसका अर्थ यह कदापि नही है कि इसमे व्यक्तिके प्रयत्नको अवकाश नही। मृत्यु आज आये या कल, उसका भय किये विना हम अपने कर्त्तव्यका पालन करे, अपना धर्म निभायें — इसीमे शुद्ध पुरुषार्थ है, क्योकि इस तरह कर्त्तव्यका पालन करते हुए हम अधीरताके दोषसे अछूते रहकर अनेक पापोसे बच जाते है और धर्मका पालन करनेमें आलस्य नही किया जा सकता, ऐसा समझकर मृत्युके भयको भुलाकर हम सतत कार्यशील रहते है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-९-१९२०

१६९. तार: जमनालाल बजाजको

अहमदाबाद
२७ सितम्बर, १९२०

जमनालाल
बच्छराज
वर्धागंज

यदि शुक्लजी[1] स्वीकार नहीं करते आप करें[2]।

गांधी

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

१७०. तार: बिहारीलाल अनन्तानीको[3]

[२७ सितम्बर, १९२० को या उसके बाद]

वर्तमान सरकारसे किसी प्रकार न्यायकी आशा नहीं। हमारे दक्षिण आफ्रिकी देशवासी असहयोग द्वारा अपना संरक्षण करनेमें स्वयं समर्थ। किसी भी हालतमें यहाँकी घटनाओंके परिणामस्वरूप अन्तत उनकी स्थिति सुधरेगी ही।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७२७७)की फोटो-नकलसे।

१. पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल।

२. नागपुर कांग्रेसकी स्वागत समितिकी अध्यक्षता।

३. एक पूर्व आफ्रिकावासी भारतीय; जिन्होंने २७ सितम्बरको गांधीजीको यह तार दिया था: "बुधवारको पूर्वी आफ्रिकाके लिए रवाना हो रहा हूँ। . . . . पूर्व आफ्रिकावासी देशभाइयोंके लिए तार द्वारा सन्देश दें कि मौजूदा हालतमें उन्हें क्या करना चाहिए।"

१७१. भाषण : विद्यार्थियोंकी सभा, अहमदाबादमे[1]

२८ सितम्बर, १९२०

पजाबमे विद्यार्थियोको १६–१७ मील पैदल ले जाया गया, कुछ-एक बालकोको कोडे लगाये गये। सिर्फ इतना ही अपमान किया हो सो बात नही, विद्यार्थियोसे यूनियन जैकका अभिवादन करनेके लिए भी कहा गया। यदि लोगोसे इस तरह जोर-जबरदस्ती यूनियन जैक अथवा खुद परमेश्वरका ही अभिवादन करवाया जाये तो लोगो तथा खुद परमेश्वरपर इसका क्या असर होगा। मै चाहता हूँ कि स्वय विद्यार्थी इस बातपर विचार करे। इसके अतिरिक्त कितने ही विद्यार्थियोको कालेजोसे निकाल दिया गया था और उनमे से अनेकोने मुझे पत्र भी लिखे थे। उन्हे स्वय तो ऐसा ही प्रतीत होता था कि वे असहाय हो गये है और अपना सर्वस्व खो बैठे है।

विद्यार्थियोको पजाबके उपद्रवोसे अगर कुछ सीखना हो तो वह यह कि उन्हें कालेजके प्रति अपने मोहका त्याग कर देना चाहिए और अपनी इस मान्यतासे छुटकारा पा लेना चाहिए कि वहाँ न जानेपर उन्हे भूखे पेट रहना पडेगा।

जब मै लाहौर गया तब मैने विद्यार्थियोके चेहरोपर उल्लासके दर्शन किये और मैने महसूस किया कि कालेजोके प्रति उनका मोह कुछ कम हो गया है। अगर मै भी विद्यार्थियोके समान ही घबरा जाता और झूठी आशका अभिव्यक्त करता; अगर मै भी कहता कि यदि वे लोग कालेजोमे नही जायेगे तो वे मनुष्य नही बन सकेगे तो इससे उनका मोह और बढ जाता। यदि ये विद्यार्थी सरकारी कालेजोमे न होते तो सरकार उनका क्या कर सकती थी? उस हालतमे सरकार उनका कुछ भी न बिगाड पाती। उस हालतमे वह उन्हे यूनियन जैकका अभिवादन करनेके लिए विवश नही कर सकती थी। विद्यार्थियोको सबसे बडा भय यह था कि अगर वे यूनियन जैकका अभिवादन करनेके लिए नही जायेगे तो उन्हे मौतके घाट उतार दिया जायेगा। यदि ये विद्यार्थी ऐसे स्वतन्त्र स्कूलोमे पढते होते, जिनका सरकारके साथ कोई भी सम्बन्ध न होता तो उन्हे इस प्रकारका कोई भय न होता। लेकिन सरकारी स्कूलोमे होनेके कारण सरकार उनपर विशेष अकुश रख सकी और इस प्रकार उसने जनताकी नाक काट ली। विद्यार्थियोके बलपर ही हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते है और उन्हीकी कमजोरीके कारण हम गुलामीके बन्धनमे बँधे रह सकते है। यह बात सच है कि मैने विधान परिषदोके बहिष्कारकी बातपर बहुत जोर दिया है। मानव-मात्र मूर्ति-पूजक है, इसलिए जो प्रतिनिधि बननेके सर्वथा योग्य है ऐसे लोग जब विधान परिषदोका त्याग कर देगे तब, मै जानता हूँ, इस बातका तात्कालिक प्रभाव बहुत जबरदस्त होगा। यह काम ऐसा है जो अभी और इसी समय किया जा सकता है, इसलिए तुरन्त किया जाना चाहिए। इसका प्रभाव भी जबरदस्त होगा। तथापि मै

१. गुजरात कालेजके विद्यार्थियोंकी सभामें, जिसकी अध्यक्षता बी० जे० पटेलने की थी।

यह कहना चाहूँगा कि यदि सरकारके अधीन रहनेवाले सभी स्कूल विद्यार्थियोसे खाली हो जायें तो आप एक महीनेके अन्दर-अन्दर हिन्दुस्तानका चेहरा बदला हुआ पायेंगे। यदि सब विद्यार्थी कल ही से एकाएक स्कूलोमे जाना छोड़ दे तो इस बातका जनता और राज्याधिकारियोपर जितना असर होगा उतना किसी और बातका नही होगा। जितना असर उनके स्कूल छोडनेसे होगा उतना असर तो वकीलोंके वकालत छोडनेपर भी न होगा। जब विद्यार्थी सरकारी स्कूलोसे निकल जायेंगे तब सरकारको ऐसा लगेगा कि उनका तिनसा वाटर वर्क्स[1] — दूर क्यो जायें, दूधेश्वर वाटर वर्क्स[2] — बन्द हो गया है। विद्यार्थियोपर ही हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता निर्भर करती है, क्योकि उनकी रगोंमे नया खून दौड़ता है। वकील अपने व्यवसायके कारण सयाने माने जाते हैं। लेकिन विद्यार्थियोंका जीवन [दुनियादारीसे] अछूता होता है। वकीलोके सम्मुख अपना [भरण-पोषण करनेका] स्वार्थ होता है इसलिए उनका धन्धा छोडना कठिन है। लेकिन विद्यार्थियोके सामने जीविकाका स्वार्थ नही रहता, इस कारण अगर उनसे सिर्फ सरकारी स्कूलोको छोड़नेके लिए कहा जाये तो यह कार्य उनके लिए सहल है।

प्रश्न हो सकता है कि विद्यार्थी ऐसा क्यो करे, किसलिए वे स्कूलोका परित्याग करे? मेरे इस आन्दोलनके विरुद्ध हमारे महान्, धर्म-धुरन्धर, निरन्तर जन-सेवामें निरत पण्डित मदनमोहन मालवीयजी, हिन्दुस्तानमें गहन विचार-शक्तिके धनी श्री शास्त्रियर और हमारे अन्य नेताओ, लाला लाजपतराय तकका यह कहना है कि विद्यार्थियोसे स्कूलोका त्याग करनेके लिए कहना बहुत खतरनाक कदम उठाना है। इन नेताओके विचारोका आपपर कुछ भी असर न हो, मैं यह अपेक्षा कर ही नही सकता। मेरा तो विद्यार्थियोसे इतना ही अनुरोध है कि आप हमारे इन अनन्य देशभक्त नेताओके कथनपर भली-भाँति विचार करे, और इस तरह विचार करनेके बावजूद अगर आपको यह लगे कि मैं जो कह रहा हूँ वही उचित है तो स्कूलोका परित्याग करे।

कोई कह सकता है कि हम जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं क्या वह सिर्फ आज ही विष-जैसी हो गई है? सरकार चाहे कितनी ही खराब क्यो न हो, लेकिन हम जिन स्कूलोमे पढने जाते है उनमे अगर सुव्यवस्था है, अच्छे प्रोफेसर हैं, अच्छे शिक्षक है तो हमें किसलिए उनका त्याग करना चाहिए? यह प्रश्न प्रत्येक विद्यार्थीके मनमे उठेगा।

पंजाब और खिलाफतके मसले उठनेतक सरकारकी नीति सह्य थी। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि जब मैं वहाँ था तब मुझे पूरा-पूरा विश्वास था कि हमे न्याय अवश्य मिलेगा। मुसलमान भाइयोसे भी मैं यही कहता था कि ब्रिटिश प्रधान मन्त्री लॉयड जॉर्जने आपको जितना देनेका वचन दिया है उतना तो आपको मिलकर रहेगा। तथापि पजाबके मामलेमें हमे बहुत जबरदस्त धक्का लगा है और उस अन्यायपर पर्दा

१ बम्बईके लिए जल-वितरणका प्रबन्ध।

२. अहमदाबादके लिए जल-वितरणका प्रबन्ध।

डालनेके लिए तरह-तरहके छल-प्रपचसे काम लिया गया है। खिलाफतके सम्बन्धमें कुछ इस तरहसे वचन-भग किया गया है कि एक बच्चा भी उसे समझ सकता है।

पजाबमे जिन व्यक्तियोपर अत्याचार किया गया वे कोई सामान्य व्यक्ति नही थ। वे सरकारी शिक्षा-प्राप्त शिक्षित-वर्गके ही व्यक्ति थे और उनपर जितने भी अत्याचार किये जा सकते थे, उतने किये गये।

सरकारने हिन्दुस्तानके स्वत्वका अपहरण किया है। यदि कोई लुटेरा हमारे घरको लूट ले जाये और हमसे आकर कहे कि "मै तुम्हारा धन ले गया हूँ, इस धनसे स्थापित स्कूलोमे तुम लोग आकर पढो", तो मुझे विश्वास है कि आप लुटेरो-को यही उत्तर देंगे कि "हमें तुम्हारी शिक्षा नही चाहिए।" कोई लुटेरा मेरा घर लूटकर ले जाये तो मै यह बात सहन कर सकता हूँ; लेकिन अगर वह हमारा मान-भंग करे, हमारे पुरुषत्व और स्त्रीत्वपर आक्रमण करे तो इन्हे पुन: प्राप्त कैसे किया जा सकता है? मै कैसे अपनी नाक कटते देख सकता हूँ? काठियावाडके लुटेरे मुसाफिरोकी नाक काट देते थे और एक डाक्टर ऐसा था कि कटी नाकको जोड़ देता था। लेकिन हिन्दुस्तानकी जो नाक कट गई है और उसकी जो आकृति विकृत हो गई है उसे फिर स्वरूप देनेवाला कोई डाक्टर है ही नही। इस लाछनको अगर कोई धो सकता है तो हम लोग ही धो सकते है। शुद्धसे-शुद्ध दूधमे विष पड़ने से जैसे हम उसका त्याग कर देगे वैसे ही हमें यह मानना चाहिए कि अच्छीसे-अच्छी शिक्षा भी [मान-भंगका] विष घुलनेसे त्याज्य हो जाती है। मुझे नि.सन्देह ऐसी आशका होती है कि इन दो विषयोको लेकर मेरे मनको जो ठेस पहुँची है, मुझे जितना दु ख हुआ है उतना दु.ख पडित मालवीयजी तथा श्री शास्त्रियरको कदाचित् हो ही नही सकता। यदि उन्हे भी ऐसा जान पडे कि सरकारने जिस राजनीतिका परिचय दिया है, उससे दूधके समान वस्तुएँ भी विषके समान हो गई है तो वे भी वही कहेंगे जो मैंने कहा है। मै तो कहूँगा कि सरकारी शिक्षामे जो विष घुल गया है उसे हमारे महापुरुष नही पहचान पाये है।

ऐसी विषम परिस्थितिमे यदि हम हाथपर-हाथ धरकर बैठे रहेंगे और कुछ नही करेगे तो सदाके लिए हमारी नाक कट जायेगी और बहुत समयतक भारतीय जनता अपने स्वत्वको जगत्के सम्मुख प्रस्तुत करनेमे असमर्थ हो जायेगी। आप विद्यार्थी लोग अभीतक बच्चे ही है, ऐसा नही कहा जा सकता। इसलिए आप माता-पिता आदि अपने गुरुजनोंको सम्मान सहित समझा-बुझाकर कल ही स्कूल जाना छोड़ दें। लेकिन मेरी आकाक्षा है कि सोलह वर्षसे ऊपरकी आयुवाले लडके-लड़कियोके लिए स्वतन्त्रताका उपभोग करनेकी जो अनिवार्य शर्ते है उन्हे आप अच्छी तरहसे समझ लेंगे।

जो विद्यार्थी — मानसिक और हार्दिक रूपसे — दु खी हो गये है और जो मानते है कि अब एक पलके लिए भी इस सरकारकी सत्ता सहन नही की जा सकती, जो मानते है कि जिस सत्तामे अन्यायका जहर व्याप्त हो गया है उस सत्ताके अधीन रहना शोचनीय है, सिर्फ ऐसे विद्यार्थियोको ही स्कूल छोड़नेका अधिकार है। जो लुटेरा हमारा सर्वस्व हरकर ले जाये उसके हाथका दान भी हमे स्वीकार्य नही है, ठीक

वैसे ही सरकारकी ओरसे मिलनेवाली शिक्षा हमें नहीं लेनी चाहिए। इस निश्चयमें ही माता-पिता और नेताओंके प्रति हमारी विनयशीलता, हमारी आज्ञाकारिता समाहित है। जिस व्यक्तिके हृदयसे यह आवाज आये कि "मुझे यह काम अवश्य करना चाहिए" उसे वैसा करनेका अधिकार है। यदि आपको ऐसी प्रतीति हो रही हो तो मैं चाहूँगा कि आप कलसे ही स्कूलों और कालेजोंमें जाना छोड़ दें।

अन्य स्कूल कहाँ हैं? यदि यह प्रश्न पूछा जाये तो मेरा उत्तर यह है कि जो ऐसा पूछते हैं उन्हें अभी बाट जोहनी चाहिए; उन्हें माँ-बापके साथ सलाह-मशविरा करनेकी जरूरत है, क्यों कि वे अभी शंकित हैं। जिस कोठरीमें सर्प हो उस कोठरीसे निकल जानेमें मनमें शंका क्यों होनी चाहिए? राष्ट्रीय कांग्रेसने जो प्रस्ताव पास किया है उसके अर्थपर यदि आप लोग विचार करना चाहेंगे तो मैं कहूँगा कि इस प्रस्तावमें नये स्कूलोंकी व्यवस्था करनेकी कोई शर्त नही है। हमें नये स्कूल मिलें अथवा न मिलें, लेकिन जो स्कूल हमारे लिए विषके समान हो गये हैं उनका त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है।

इससे कोई यह न समझ ले कि मैं शिक्षाके विरुद्ध हूँ अथवा शिक्षाके सम्बन्धमें मेरे जो विचार हैं उनका प्रचार करना चाहता हूँ। उन विचारोंका प्रचार व प्रसार मैं राष्ट्रीय स्कूलकी मार्फत कर रहा हूँ और जिस समय इस शिक्षाके प्रसारमें मुझे वृद्धि करनी होगी उस समय मैं अपने साधन भी स्वयं खोज लूँगा। लेकिन इस समय तो एक सिपाहीकी हैसियतसे स्कूलोंका त्याग करवाना चाहता हूँ। जिस समय युद्ध शुरू हो जाता है उस समय विद्यार्थी स्कूल जाना छोड़ देते हैं, अदालतें खाली हो जाती हैं और जेलें भी रिक्तहो जाती हैं। वे लोग भी जिन्होंने जेलको अपना घर बना लिया है, अपने स्वभावको त्यागकर युद्धमें जूझ जाते हैं। उसी तरह हमारे लिए भी यह युद्ध-काल है। यदि हमारी जनता शस्त्र उठानेवाली होती तो हिन्दुस्तानमें कब की असंख्य तलवारें चमक उठी होतीं। लेकिन हिन्दुस्तानमें इस समय यह बात असम्भव-सी जान पड़ती है। अभी तो सामान्य और लौकिक दृष्टिसे ही मैं इस प्रश्नको जनताके सामने रख रहा हूँ कि जिस सरकारने हमारे आत्म-सम्मानको इतनी ठेस पहुँचाई है उससे हम दान नहीं ले सकते, मदद नहीं ले सकते। इसलिए यदि आपको यह बात मान्य हो तो स्कूलोंकी व्यवस्था हो अथवा न हो, इसका प्रश्न ही नहीं उठता; अर्थात् आपको तो इस दृष्टिसे विचार करना है कि विद्यार्थियोंका तात्कालिक कर्त्तव्य इस समय स्कूलोंको छोड़ना है अथवा नहीं। स्कूल छोड़कर विद्यार्थी क्या करें? संक्रांति कालमें जो विद्यार्थी निठल्ले हो जायें वे क्या करें? ये सब प्रश्न पूछे जा सकते हैं; सिद्धान्त वही है जिसका मैंने निरूपण किया है। इससे जो उप-सिद्धान्त निकलते हैं उन्हें तो मैं आपके सामने रख नहीं रहा हूँ। मुख्य सिद्धान्तका अनुसरण करते हुए हम अपने दिलमें जो निर्णय करें हमें उसीके अनुरूप दृढ़तापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। लेकिन आपसे यह कहना मेरा कर्त्तव्य है कि आपकी शंकाका समाधान होनेके उपरान्त दुर्बलतावश किसी भी विद्यार्थीको कालेज अथवा स्कूल जानेका अधिकार नहीं है। आज जनताके लिए यह समय दुर्बलता दिखलानेका नहीं है।

तत्पश्चात् कालेज छोड़नेवाले विद्यार्थियोंके नाम पढ़े गये और विद्यार्थियोंकी ओरसे प्रश्न पूछे जानेपर गांधीजीने जो उत्तर दिये वे निम्नलिखित हैं :

प्र० — महात्माजी, नागपुरमें जो कांग्रेस अधिवेशन होनेवाला है अगर उसमें इस प्रस्तावको मुल्तवी रखा गया तो हमें क्या करना चाहिए ?

उ० — मेरे मतानुसार नागपुर अधिवेशनमे इस प्रस्तावको मुल्तवी रखनेकी बात ही नही हो सकती। तथापि जिन व्यक्तियोने यहाँ प्रस्तुत सिद्धान्तको समझ लिया है उनके लिए, नागपुर काग्रेस क्या प्रस्ताव पास करती है और क्या नही, यह बात कोई महत्त्व ही नही रखती। गुजरातके विद्यार्थियोमें जो चेतना आई है उसे देखते हुए नागपुर काग्रेसके लिए ऐसा प्रस्ताव पास न करना असम्भव हो जायेगा।

महात्माजी, आप विद्यार्थियोंसे आत्मघातकी अपेक्षा करते हैं अथवा स्वार्थ-त्यागकी ?

मैं विद्यार्थियोंसे स्वार्थ-त्याग करवाना चाहता हूँ और स्वार्थ-त्यागसे [उन्हे] आत्म-रक्षाके लिए तत्पर करना चाहता हूँ।

गुजरात कालेजकी स्थापना तो गुजराती जनता द्वारा दी गई दान-राशिसे की गई है। सरकार तो सिर्फ उसकी व्यवस्था करती है। क्या हमें अपनी ही इस सम्पत्तिका त्याग कर देना चाहिए अथवा हमारा सरकारसे उसकी व्यवस्था वापस ले लेना उचित होगा ?

यदि हम किसी व्यक्तिको विश्वासपूर्वक कोई वस्तु सौपते है और वह उसका दुरुपयोग करता है तो कानूनके अनुसार भी ऐसा व्यक्ति विश्वासघाती कहलायेगा। एक धोबीको हमने अपने कपडे धोनेके लिए दिये और वह उनका कुछ और ही उपयोग करे तो उसपर चोरीका आरोप लगाया जाता है। ठीक उसी तरह मै सरकारपर चोरी-का, विश्वासघातका आरोप लगा रहा हूँ कि "तुम्हें जब कालेजका कार्य-भार सौपा था तब हमे इस बातकी कोई खबर न थी कि तुम पंजाब और खिलाफतके प्रश्नको लेकर अन्याय करोगे।" इसके अतिरिक्त जैसा कि अध्यक्ष महोदयने कहा है, गुजरात कालेजमे भरती कोई जानवरोकी नही होगी। यह कालेज अन्तत. हमारा ही है। अपनी सम्पत्तिपर, जो इस समय सरकारके हाथमे है, पूरा-पूरा और सच्चे अर्थोंमे अधिकार प्राप्त करनेके लिए उसके दुरुपयोगमे हिस्सा लेना छोड देना चाहिए। हमारे अपने घरमे महामारी फैलती है तो हम उसका त्याग कर देते है। ठीक उसी तरह चूंकि इस कालेजपर से हमारा अधिकार उठ गया है इसलिए हमे इसे छोड देना चाहिए। यदि किसी व्यक्तिका हाथ गल रहा हो तो डाक्टर कानुगा उसे काट डालेगे क्योकि इस हाथमे, शरीरको गलानेवाले कीटाणुओने घर कर लिया है। जहाजके लोग तूफानके समय अपने सामानको समुद्रमे फेंक देते है; यह कोई आत्मघात करना नही है। उसी तरह इस समय हमे अपनी मिल्कियत होनेके बावजूद ऐसे स्कूलोंका त्याग करना चाहिए और इस तरहके त्यागसे ही हम अपनी मिल्कियतको वापस पा सकेंगे।

महात्माजी, जो स्कूल सरकारी न होकर प्राइवेट हों क्या हमें उनका भी परि-त्याग कर देना चाहिए ?

जो स्कूल सरकारसे सम्बद्ध हों उन्हें छोड़ देना चाहिए, क्योंकि इन स्कूलोंपर सरकारका प्रभाव है, वे सरकारकी नीतिके अधीन है। मेरे खयालसे तो उन सभी स्कूलोंको छोड़ देना चाहिए जहाँ सरकारी प्रभावकी थोड़ी-सी भी गन्ध मौजूद हो।

थोड़े-से विद्यार्थियोंके स्कूल छोड़ देनेसे सरकारपर क्या असर होनेवाला है?

इसमे प्रभावका सवाल नही है; सवाल तो यह है कि हमे अन्यायीके हाथो दी गई वस्तु लेनी चाहिए अथवा नही। अपने आत्म-सम्मानको बनाये रखना हमारा धर्म है। जिस भाई अथवा बहनने स्कूल छोड़ दिया उस हदतक उसने अपना फर्ज अदा किया और ससारकी भी सेवा की। त्याग तो एक व्यक्तिका भी प्रभावित कर सकता है।

मेरे मतानुसार तो सरकारकी नीयत पहलेसे ही हमें शिक्षा प्रदान करने की नहीं थी; कालेजों आदिका त्याग करके हम क्या सरकारकी मदद ही नहीं करते?

म तो यह नही मानता कि सरकार हमसे कालेज छुडवाना चाहती है। सरकारने तो इस सम्बन्धमे परिपत्र भी जारी किया है। सरकारको तो यह आशंका है कि "यदि कालेज और स्कूल खाली हो जायेंगे तो जनतापर हमारा जो अधिकार है उसे हम खो बैठेंगे।" सरकार चाहे या न चाहे हमे उचित कार्य करना चाहिए।

क्या हमें उन स्कूलोंका भी त्याग करना चाहिए जो राष्ट्रीय स्कूल बनने जा रहे हैं?

आपको इन स्कूलोके व्यवस्थापकोको यह पत्र लिख भेजना चाहिए कि आपने अपने स्कूलको राष्ट्रीय स्कूलमे परिवर्तित करनेका जो विचार किया है इसके लिए हम आपको बधाई देते है और विनती करते है कि आप तुरन्त ही सरकारको नोटिस दे दें ताकि हम निर्भय हो जायें।

माँ-बाप हमारी बात स्वीकार न करें तो हमें क्या करना चाहिए?

आप माता-पिताको समझायें। हमे अपने माता-पिताका आदर-सम्मान करना चाहिए उनके प्रति विनय-भाव रखना चाहिए। उनके प्रति अपनी आज्ञाकारिताके भावको नही भूलना चाहिए। लेकिन जहाँ हमे उनका कहना अनुचित जान पडे वहाँ हम विनयपूर्वक उस कथनकी अवमानना कर सकते है।

यदि राष्ट्रीय स्कूलोंको राजद्रोहात्मक मानकर उनपर प्रतिबन्ध लगा दिया जाये तो हमें क्या करना चाहिए?

तो प्रत्येक सरकारी स्कूलसे विद्यार्थी निकल पडें। ऐसेमे भी यदि जनता सरकारी स्कूलोके पक्षमे बनी रहे तो वह सदा गुलाम बनी रहेगी। जनताकी राष्ट्रीय शिक्षाको सरकार नही रोक सकती, वह घर-घर जाकर पढानेवाले अध्यापको और स्वयसेवकोको नही रोक सकती।

महात्मा गांधीजी, आपने जो यह कहा कि स्कूल छोड़ देनेसे सरकारका दूधेश्वर वाटर वर्क्स बन्द हो जायेगा सो कैसे?

हम सरकारको कर्मचारियोके रूपमे जल वितरित करते हैं और इन्ही कर्मचारियो-के बलपर ही सरकारकी तृषा शान्त होती है। इसलिए यदि यह नल बन्द हो जाये

तो सरकारको प्यासा मरना पड़े। लॉर्ड मैकॉलेने भी कहा है कि स्कूलो द्वारा ही सरकारको कर्मचारी मिल सकते हैं।

कुछ लोग यह मानते हैं कि बंग-भंग आन्दोलनके बुदबुदेके समान यह आन्दोलन भी खत्म हो जायेगा; इस सम्बन्धमें आपका क्या कहना है?

जनसमुद्रमें ऐसे बुदबुदे हमेशा उठा करते हैं जो उठकर शान्त हो जाते हैं। माँ जितने बच्चोको जन्म देती है, वे सबके-सब जीवित नही रह पाते। यह कार्य अपनी भूलोको ध्यानमे रखकर ही हमें करना चाहिए। बग-भग आन्दोलनमे दो त्रुटियाँ थी: (१) सरकारी स्कूलोसे बच्चोको न उठा लेने तथा (२) नेताओ द्वारा अपने बच्चोको सरकारी स्कूलोंमे बनाये रखनेकी। इन दोनो त्रुटियोको जिस हदतक रोका जा सकता है उस हदतक रोकनेकी कोशिश की गई है। अगर मुझे विद्यार्थियोका शाप लगेगा तो उसके लिए मै पूर्णतया तैयार हूँ। जिस व्यक्तिको जनताकी सेवा करनी हो उस व्यक्तिको शापको तो पहलेसे ही स्वीकार कर लेना चाहिए। इसका जो परिणाम निकले वह मुझे और जनताको सहन करना चाहिए। इसीसे आनेवाली पीढी उन्नत हो सकेगी।

क्या इस आन्दोलनपर युद्धकी सारी शर्तें लागू होती है?

इस आन्दोलनमे युद्धकी सभी बाते आ जाती है और सच पूछिए तो यह युद्ध ही है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-१०-१९२०

१७२. कच्चागढ़ीकी घटना

३७वी डोगरा पल्टनके लेफ्टिनेन्ट ह्यूविटने २८ जुलाईके अंकमें प्रकाशित "गोलीके शिकार 'मुहाजरीन' के बारेमे कुछ और" शीर्षक लेखके कुछ वक्तव्योंकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है। उपर्युक्त रिपोर्ट[1] कच्चागढीमे हुई घटनासे सम्बन्धित है, और जैसा कि आरम्भिक शब्दोसे पता चलेगा, इसकी सूचना एच० जे० मुहम्मदने दी थी। लेफ्टिनेन्ट ह्यूविट रिपोर्टमें कही गई बहुत-सी बातोको सच नही मानते और विशेष रूपसे निम्नलिखित विशिष्ट आरोपोके प्रति अपना असन्तोष प्रकट करते हैं; ये आरोप उनके विचारसे मिथ्या और द्वेषपूर्ण हैं.

> **अधिकारी उसके शरीरपर झुक गया और उसने उसकी गर्दनपर गहरा वार किया;**
>
> **"वे (अर्थात् ब्रिटिश सैनिक और अधिकारी) तो बस हत्या, केवल नृशंस हत्यापर तुले हुए थे, क्योकि उनकी रक्तपिपासा इसी तरह बुझ सकती थी, उनका क्रोध इसी प्रकार शान्त हो सकता था।"**

१. यह रिपोर्ट यहाँ उद्धृत नहीं की गई।

लेफ्टिनेन्ट ह्यविट मुझे इत्तिला देते है कि विवरणमे रेल-यात्राका जो उल्लेख है, उसमे उनके अलावा और कोई अधिकारी न तो यात्रा कर रहा था और न विवरणमें बताये गये अवसरपर वहाँ मौजूद ही था। उनका कहना है कि इन आरोपोमे, जो स्पष्टत: उन्हीके विरुद्ध लगाये गये है, कुछ भी तथ्य नही है। 'यंग इंडिया'के उसी अंकके दूसरे पृष्ठपर मेरा अपना लेख[1] भी प्रकाशित हुआ था, जिसमे मैंने कहा था, "मगर इस बयानमे कही गई बाते सच्ची हो तो यह उन तथाकथित सिपाहियोके लिए बहुत लज्जाका विषय है जिन्होने महिलाओंके सम्मानकी रक्षाका प्रयत्न करने-वाले एक व्यक्तिकी हत्या करनेमे पाशविक सुखका अनुभव किया।" लेकिन साथ ही मैंने अपने पाठकोंको यह सलाह देनेकी भी सावधानी बरती थी कि जबतक उनके सामने सरकारका बयान नही आ जाता तबतक वे इस सम्बन्धमे अपना कोई निश्चित मत न बनाये।

मै लेफ्टिनेन्ट ह्यविट द्वारा भेजा गया खण्डन सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। इस तरह मूल वक्तव्य और सम्बन्धित अधिकारी द्वारा किया गया खण्डन, दोनो ही जनताके सम्मुख प्रस्तुत है। अतएव अब यह और भी जरूरी हो जाता है कि जनता जाँचका परिणाम सामने आनेतक इसपर अपना कोई मत कायम न करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-९-१९२०

१७३. पंजाबमें दमन

लाहौरसे प्रकाशित 'जमीदार' नामक पत्रके सम्पादक और मालिक श्री जफर-अली[2] खाँपर मुकदमा चल रहा है। जबतक यह लेख प्रकाशित होगा तबतक, सम्भवत: उनके भाग्यका निपटारा हो चुके। पाठकगण श्री जफर अली खाँपर लगाये गये आरोपोंपर ध्यान दे। राजनीतिक दृष्टिकोणसे यह आरोप-पत्र अध्ययन करने लायक है, कानूनी दृष्टिसे तो मामला अभी न्यायाधीशोंके विचाराधीन ही है और उसे उन्हींके विचाराधीन रहने देना चाहिए। श्री जफर अली खाँपर आरोप लगाया गया है कि उन्होंने ऐसी बाते कही जो ब्रिटिश भारतमे कानून द्वारा प्रतिष्ठापित सरकारके विरुद्ध जनतामे असन्तोषकी भावना पैदा करने तथा महामहिमके विभिन्न वर्गोंके बीच आपसमे शत्रुताका भाव फैलानेकी कोशिश करनेके बराबर है।

श्री जफर अली खाँको जो बाते कहनेके लिये जिम्मेदार ठहराया गया है, वे बातें अगर उन्होंने सचमुच कही हो और उनमे कोई सचाई न हो तब तो नि.सन्देह उन्होंने अपराध किया है। लेकिन ध्यान रहे कि ऐसी बाते अपराध तभी मानी

१. देखिए "गोलीके शिकार "मुहाजरीन"के बारेमें कुछ और", २८-७-१९२०।

२. उनपर हजरोमें अगस्त १९२० में खिलाफत तथा अन्य समस्याओंके सम्बन्धमें सरकारके विरुद्ध वक्तव्य देनेका आरोप लगाया गया था; देखिए यंग इंडिया, २९-९-१९२०।

जायेगी जब वे सच्ची न हो; क्योकि तथ्योका विवरण-भर प्रस्तुत करनेका यह मतलब कदापि नही हो सकता कि सम्बन्धित व्यक्तिने प्रजाजनोमे असन्तोपका भाव उत्पन्न करने या उनके विभिन्न वर्गोके बीच शत्रुताकी भावना फैलानेकी कोशिश की। जनरल डायरके कृत्यो, श्री लॉयड जॉर्जके वचन-भंग और वाइसराय तथा श्री मॉण्टेग्यु द्वारा ओ'डायरशाहीका बचाव करनेकी चर्चा करना, सत्य बोलना ही है; फिर भी इस सबसे ऐसी सरकारके प्रति जो अपने अधिकारियोके अपराधपूर्ण कार्योके दरगुजर कर देने अथवा सोच-समझकर दिये गये वचनोके भग करनेकी दोषी है, असन्तोपके अलावा और कौन-सी भावना पैदा हो सकती है? यदि सच बोलना अपराध है तो असन्तोप फैलाना कर्त्तव्य है, उत्तम गुण है। इसी तरह यदि सच बोलनेसे विभिन्न वर्गोके बीच शत्रुताकी भावनाका प्रसार होता है तो भी अगर हम सत्यका बलिदान न करना चाहते हो तो यह खतरा उठाना ही पडेगा। जो नुकसान पहुँचा सकते है लेकिन जिनमे सार है ऐसे तथ्योंको दबानेसे मित्रताकी भावनाको बढावा नही मिल सकता, बल्कि इस दुरावके कारण सम्बन्ध और भी बिगड जाते है।

जहाँतक मुझे मालूम है श्री जफर अली खाँके मामलेमे दो बाते ऐसी है जिनकी सबूतोंके आधारपर पुष्टि नही की जा सकती। मक्कामे कभी आग नही लगाई गई, और इस कथनका भी कोई आधार नहीं दिखाई देता कि बगदादमे कुमारी लड़कियोका शील-भग किया गया। मुझे पता नही कि श्री जफर अली खाँपर जो ये दोनों बाते कहनेका आरोप लगाया गया है सो उन्होने सचमुच कही थी या नही। अगर उन्होने ऐसा कहा हो तो मुझे सचमुच बहुत दुख होगा। खिलाफत कार्य-कर्त्ताओको विशेष रूपसे तथा सामान्य रूपसे सब कार्यकर्त्ताओको अतिशयोक्तियोसे बचनेके लिए अधिकसे-अधिक आगाह किया जाना चाहिए। मनगढन्त बातोकी अपेक्षा सही बातोमे हमेशा अधिक बल होता है। मनगढन्त बाते अन्ततः उद्देश्यको नुकसान पहुँचाती है और इससे बोलनेवाले की बदनामी भी होती है। सरकारके विरुद्ध निर्विवाद तथ्योके आधारपर कही गई बाते अकाट्य होती है। और जब ऐसी स्थिति पैदा हो जायेगी कि हमारे कार्यकर्त्ताओके विरुद्ध लगाया गया अतिशयोक्तिका कोई भी आरोप सच्चा सिद्ध नही हो पायेगा तो जन-आन्दोलनको बडा बल मिलेगा।

लेकिन श्री खाँ जिन अभियोगोंको स्वीकार करेंगे, और जो उन्हे अवश्य करने चाहिए, वे अभियोग सरकारके विचारसे बहुत गम्भीर है, तथापि श्री खाँके समान मै भी ऐसे अभियोगोके लिये अपराधी हूँ। उदाहरणस्वरूप युवराजके आगमनपर किये जानेवाले स्वागत-समारोहोमे भाग लेनेके लिए श्री खाँने जो शर्तें रखी है, वैसी शर्तें मै भी रखना चाहूँगा। यह भी सच है कि जो शर्तें रखी गई है यदि उन्हें पूरा नही किया जाता तो यह साम्राज्य ध्वस्त हो जायेगा।

अभीतक सरकारने उन भाषणोंकी ओर कोई ध्यान नही दिया है जिनमें लोगो-को असहयोगकी सलाह दी गई है और ऐसी माँग की गई है जैसी माँग करने या सलाह देनेकी बात श्री जफर अली खाँके बारेमे कही जाती है। इस कारण मै सोचने लगा था कि जबतक आन्दोलन हिंसात्मक रूप धारण न कर ले

तबतक सरकार उसे चलने देनेकी स्वस्थ पद्धति अपना रही है। मैं समझ रहा था कि सरकारने किसी भी व्यक्तिको अपने विचार व्यक्त करनेके लिए, फिर चाहे वे कितने ही उग्र क्यों न हों लेकिन अगर उनसे जनतामें उत्तेजना नहीं फैलती तो, दण्ड देना बन्द कर दिया है।

लेकिन अब स्पष्ट ही यह नीति बदली जा रही है। जान पड़ता है श्री जफर अली खाँके भाषणसे सरकार तिलमिला गई। जिस जिलेमे काफी तादादमे लोग भरती हो सकते थे, उन्होने उस जिलेमे लोगोको सेनामे भरती न होनेकी सलाह दी किन्तु यदि ऐसी सलाह देना गलत है तो स्वयं कांग्रेसने ऐसी ही सलाह देनेकी भूल की है। प्रत्येक नागरिकको निःसन्देह यह अधिकार है कि वह लोगोको ऐसा कोई भी धन्धा, जिससे उनके आत्म-सम्मान अथवा धार्मिक भावनाको चोट पहुँचती हो, अपनानेके विरुद्ध चेतावनी दे।

'सियासत' के श्री हबीब शाहकी जमानत भी मेरे खयालसे कुछ इन्ही कारणोसे जब्त कर ली गई है। ज्यों-ज्यो असहयोग आन्दोलन अपना प्रभाव दिखलाने लगेगा हमें यही आशा रखनी चाहिए कि त्यो-त्यो इस प्रकारका दमनचक्र तेज होगा। यह स्पष्ट है कि हमारी सफलता वक्ताओपर मुकदमे चलाकर तथा अखबारोको दबाकर किये जानेवाले दमनके बावजूद पूर्णत. हमारे संघर्ष चलानेकी योग्यतापर निर्भर करती है। ऐसे दमन-चक्रसे हमे और अधिक कार्य करनेका बल मिलना चाहिए तथा हमारी उचित माँगें एक नहीं हजारो व्यक्तियो द्वारा दुहराई जानी चाहिए। अगर सरकार पत्रकारोकी प्रवृत्तियोपर रोक लगाये तो इससे उन्हे घबराना नही चाहिए। अगर घर-घर जाकर प्रचार-कार्य किया जाये, हाथसे गश्ती पत्र लिख-लिखकर उनको कई गुना करने-की विधिसे अर्थात् एक स्वयसेवक अमुक सख्यामें ऐसे पत्र लिखकर विभिन्न स्वयसेवकोंके बीच बाँटे और फिर उन स्वयसेवकोमे से प्रत्येक स्वयसेवक उतनी ही सख्यामे पत्र लिख-कर दूसरोको दे और इसी तरह काम बढता जाये तो यह काम समाचारपत्रोकी अपेक्षा अधिक ठोस ढगसे किया जा सकेगा। जब सघर्ष एक प्रभावकारी रूप धारण कर लेगा तब देशमे पूर्णतया शान्ति होनेके बावजूद हमे मुकदमो, नजरबन्दी तथा इस तरहकी अन्य बातोके लिए तैयार रहना होगा। और जब सघर्ष दमनकी इस अवस्थाको पार कर जायेगा तब असहयोग आन्दोलन लोगोमें पहलेकी अपेक्षा अधिक प्रसिद्धि पा लेगा और विजय निश्चय ही हमारी होगी। क्योकि उस हालतमे वह आन्दोलन एक ऐसी सरकारके विरुद्ध असहयोग करनेकी आवश्यकताका निश्चित प्रमाण बन जायेगा, जो लोगोकी उचित आकाक्षाओ और तथ्योंके विधिसम्मत और यथार्थ निरूपणका भी दमन करती है, भले ही लोगोकी ये आकाक्षाएँ और इस प्रकारके तथ्योंका निरूपण सरकारके लिए कितना ही अरुचिकर क्यो न हो?

किन्तु हमें अधीर नही होना चाहिए। मै नीचे जो वाक्य दे रहा हूँ वे हमारी अधीरताके परिचायक हैं:

> मैंने सुना है कि बगदादमें, भारतीय सेनामें एक पिता और पुत्र थे। वे तुर्कोंके विरुद्ध लड़ रहे थे। पुत्र एक मुठभेड़में मारा गया, उसका पिता उसके

शवको बगदाद ले गया। रास्तेमें उसने देखा कि उसके पुत्रका चेहरा सूअरकी शक्लमें बदल गया है।

बताया जाता है कि ये वाक्य श्री खाँ ने कहे हैं। यह तो लोगोंके अन्धविश्वास-का नाजायज फायदा उठाना है। मुझे आशा है कि श्री जफर अली खाँने अपने श्रोताओंके अन्ध-विश्वासका लाभ उठानेका प्रयत्न नहीं किया है। खिलाफत आन्दोलन एक धार्मिक आन्दोलन है। इसे असत्य, अतिरंजना, वाचा अथवा कर्मणा हिंसा तथा अन्धविश्वास या पूर्वग्रहोंसे मुक्त रहना चाहिए। जब उद्देश्य अपने-आपमें यथार्थ और सत्य है और जब इसके प्रतिपादनमें आत्मत्याग और साहससे काम लिया जाये तब फल प्राप्तिमें कोई देर नहीं लगती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-९-१९२०

१७४. स्कूलों और कालेजोंका व्यामोह

सरकारी नियन्त्रणमें चलनेवाले स्कूलों और कालेजोंके प्रस्तावित बहिष्कारके विरुद्ध बहुत-कुछ कहा और लिखा जा रहा है। इस प्रस्तावको "शरारतभरा", "हानिकर", "देशके उच्चतम हितोंके विरुद्ध" आदि कहा गया है। पंडित मदन-मोहन मालवीय इसके कट्टर विरोधियोंमें से हैं।

मैंने अपने तईं यह पता चलानेकी पूरी कोशिश की है कि मैंने कहाँ गलती की है। लेकिन इस कोशिशका परिणाम यही हुआ है कि मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है कि वर्तमान सरकारके नियन्त्रणमें किसी तरहकी शिक्षा प्राप्त करना —चाहे उस शिक्षामें कितनी ही अच्छाई हो—उसी तरह घातक है जिस तरह अधिकसे-अधिक पौष्टिक तत्त्वोंसे युक्त होनेपर भी विष-मिला दूध पीना।

मैं अपने-आपसे पूछता हूँ, ऐसा क्यों है कि कुछ लोग तो इस बातमें निहित सचाईको साफ देख रहे हैं, जब कि कुछ दूसरे लोग—हमारे मान्य नेतागण—इसे एक गलत चीज मानकर इसकी भर्त्सना करते हैं। मैं इसका जो उत्तर ढूंढ पाया हूँ वह यह है कि जहाँ पहले वर्गके लोग वर्तमान शासन-पद्धतिको एक खालिस बुराई मानते हैं वहाँ दूसरे वर्गके लोग ऐसा नहीं मानते। दूसरे शब्दोंमें, मेरे सुझावके विरोधी लोग पंजाब और खिलाफत-सम्बन्धी अन्यायोंकी गम्भीरताका पर्याप्त अनुभव नहीं करते। अन्य लोगोंकी भाँति वे ऐसा नहीं मानते कि ये अन्याय अन्तिम रूपसे सिद्ध कर देते हैं कि मौजूदा सरकारकी गति-विधियाँ कुल मिलाकर राष्ट्रीय विकासके लिए घातक हैं। मैं जानता हूँ कि मैं जो-कुछ कह रहा हूँ, वह एक बहुत ही गम्भीर बात है। यह सोचा भी नहीं जा सकता कि मालवीयजी और शास्त्रियर इन अन्यायोंको मेरी तरह महसूस नहीं कर सकते। लेकिन मेरे कहनेका तात्पर्य बिलकुल यही है। मेरा यह निश्चित विश्वास है कि वे अपने बच्चोंको किसी ऐसे स्कूलमें नहीं पढ़ायेंगे जहाँ उनके

उत्थानके वजाय पतनकी सम्भावना हो; और उतनी ही दृढ़ताके साथ मै यह भी मानता हूँ कि वे अपने बच्चोको एक ऐसे लुटेरेके प्रवन्ध, नियन्त्रण या प्रभावमे चलनेवाले स्कूलमें नहीं भेजेंगे, जिसने उनका सव-कुछ छीन लिया है। मै मानता हूँ कि सरकारी स्कूलोमें राष्ट्रके बच्चोका पतन ही होता है। मेरे विचारमे ये स्कूल और कालेज एक ऐसी सरकारके प्रभावमें है जिसने जान-बूझकर राष्ट्रके सम्मानपर हाथ डाला है, और इसलिए इन स्कूलोसे अपने बच्चे हटा लेना राष्ट्रका कर्त्तव्य है। सम्भव है, इन स्कूलोमे भी कुछ पढ़नेवाले लोग पतनकी प्रवृत्तिको रोक सकते हों। लेकिन सिर्फ इसी कारणसे कि कुछ गिने-चुने लोग अपने परिवेशसे मुक्त होकर ऊपर उठ पाये है, इन स्कूलोंमें राष्ट्रीय अपमानका जो सिलसिला जारी है, उसका समर्थन नहीं किया जा सकता। मेरे विचारसे यह वात स्वयंसिद्ध है कि आज राष्ट्रके सम्मान्य नेता यह अनुभव नहीं करते कि सरकारी नियन्त्रणमें चलनेवाले स्कूल, मैंने जैसा वताया है, उस रूपमें दूषित है।

कोई कह सकता है कि ये स्कूल पंजावके साथ अन्याय किये जाने और खिलाफतके सम्बन्धमें वादा-खिलाफी होनेसे पहले जितने वुरे थे, आज उससे अधिक वुरे तो नहीं है, और हम इन दो वारदातोंसे पहलेतक तो इनको सहन करते ही आये थे। मै यह स्वीकार करता हूँ कि ये स्कूल जितने वुरे पहले थे, उससे वहुत अधिक वुरे आज नहीं है। लेकिन जहाँतक मेरी वात है, पजाव तथा खिलाफतके सम्वन्धमे जो धोखेवाजियाँ की गई, उनके कारण वर्तमान शासन-प्रणालीके विपयमें मेरे विचारोंमे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। इस प्रणालीकी सहज कमियोकी जवतक मुझे जानकारी नहीं थी तवतक यह मेरे लिए इस हदतक सह्य अवश्य रही कि मैंने इन स्कूलोंके खिलाफ आवाज नहीं उठाई। और ठीक इसी कारणसे मुझे आशंका होती है कि जो लोग इन स्कूलोंको हानिकारक न मानकर इनके वहिष्कारका विरोध करते है वे पजाव और खिलाफत-सम्बन्धी अन्यायोको उतना महत्त्व नहीं देते जितना मै देता हूँ।

और इसलिए सर्वश्री एस० वी० तिलक, पटेल, त्रिपाठी और अन्य लोगोको मै वधाई देता हूँ कि उन्होने अपने-अपने कालेज छोड़ दिये और सो भी ऐसे समय जब वे अपना शिक्षण समाप्त करने ही वाले थे। यही कारण है कि मै कुमारी देसाई और कुमारी पटेलको भी हाई स्कूल छोड़ देनेके लिए वधाई देता हूँ। लोग शायद यह न जानते हों कि इन उत्साही लड़कियोंने नौजवानोकी तरह ही स्वेच्छासे स्कूल छोडे है।

मै निःसंकोच भावसे यह कामना करता हूँ कि भारतके युवासमुदाय — लड़के और लडकियाँ दोनों — ने यदि पजावमें की गई वर्वरताके अपमानजनक दशका अनुभव अपने व्यक्तिगत अपमानकी तरह किया हो या अगर वे खिलाफत-सम्बन्धी वचन-भंग-का मतलव समझते हों तो सरकारी नियन्त्रणमे चलनेवाले स्कूलो और कालेजोको खाली कर देंगे। यह कदम उठाकर वे क्षण-भरमे जो नैतिक शिक्षा प्राप्त करेंगे उसका पलड़ा उस क्षतिसे कही भारी पड़ेगा जो उन्हे अस्थायी तौरपर किताबी शिक्षा वन्द रखनेसे होगी। कारण, जिस दिन लड़के और लड़कियाँ सरकारी नियन्त्रण मे चलने-

वाले स्कूलोका परित्याग कर देंगे, वह दिन हमारे लक्ष्यकी ओर एक निश्चित प्रगति-का दिन होगा, उस दिन राष्ट्रीय चिन्तनमे एक क्रान्तिका सूत्रपात होगा, वह दिन स्कूलो और कालेजोके इस व्यामोहसे हमारी मुक्तिका दिन होगा। क्या इस राष्ट्रमें इतनी क्षमता नही है कि यह सरकारी हस्तक्षेप, सरक्षण, परामर्श या सहायताके विना अपनी शिक्षाकी व्यवस्था आप कर सके? वर्तमान स्कूलोका परित्याग कर देनेका मतलव है, अपनी इस क्षमताको पहचान लेना कि हम वडीसे-वडी कठिनाईके वावजूद अपनी शिक्षाकी व्यवस्था आप ही कर सकते है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९–९–१९२०

१७५. साम्राज्यका अर्थ

शिक्षा-विभागकी ओरसे निम्नलिखित परिपत्र जारी किया गया है·

> **इस प्रान्तके शिक्षकों और शिक्षा-अधिकारियोसे कहा जाये कि वे लोगोको साम्राज्यका सही अर्थ समझने और उनके मनसे यह धारणा दूर करनेमें कि यह साम्राज्य सैन्यवादपर आधारित है, सहयोग करें। इसके लिए वे सम्बन्धित पक्षो-को प्रोत्साहित करें कि वे उदार उद्देश्योंको आगे बढ़ाने तथा परस्पर मैत्री-भाव और सहानुभूतिकी भावना उत्पन्न करनेके प्रयासमें एक-दूसरेको भाई-भाई समझें। विशेष रूपसे भारतमें यह-सव जरूरी है, क्योकि आज यहाँ उपर्युक्त भावनाओसे ठीक विपरीत ढंगकी भावनाएँ जोर पकड़ती जा रही हैं।**

यह परिपत्र इसी महीनेकी १ तारीखको पूनासे जारी किया गया है।

यह परिपत्र मेरे विचारसे असहयोगकी विजय है। हमे अधिकृत तौरपर अकसर यह बताया गया है कि साम्राज्य अन्तत सैनिक बलपर ही आधारित है। आज जब कि हम इस ताकतसे अपने सारे नाते-रिश्ते तोडकर, इसे एकाकी बना देनेकी कोशिश कर रहे है, और इसके विरुद्ध अपनी ओरसे शक्तिका प्रयोग किये विना यह दिखा देनेका प्रयत्न कर रहे है कि यदि इस ताकतको जनताके जाने-अनजाने सहयोगका वल प्राप्त न हो तो यह विलकुल बेकार है, तव हमारे सामने एक ऐसा परिपत्र आया है जिसमे शिक्षकोसे यह दिखानेमे सहयोग देनेके लिए कहा गया है कि यह साम्राज्य शक्ति अथवा सैन्यवादके आधारपर नही बल्कि पारस्परिक मैत्रीभावके आधारपर खडा है। इसे मै असहयोगकी विजय समझता हूँ, क्योकि इसके कारण सैन्यवलको पीछे हट जाना पडा है। सर माइकेल ओ'डायरने अभिमानमे चूर होकर सारे राष्ट्रको अपनी क्रूर शक्तिकी आगमे झोक दिया और कुछ देरके लिए आतंकका शासन कायम हो गया। लेकिन उसका कुछ असर न हुआ और अव उसे नरम शब्दोका जामा पहनानेकी कोशिश हो रही है। लेकिन यह भी विफल होकर रहेगी।

यह परिपत्र छलसे भरा हुआ है। अत्याचारियो और उनके अत्याचारके शिकार निरीह लोगोके वीच परस्पर मैत्री और सहानुभूतिकी वात करना अत्याचारके साथ

धोखेबाजीको मिलाकर काम करना है। हमे असहयोग ही इससे छुटकारा दिला सकेगा।

झूठी बाते कहकर मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करनेका प्रयत्न करना निरर्थक है। जनताकी सच्ची मैत्री प्राप्त करनेका और उन्हें यह दिखानेका कि साम्राज्य शक्ति तथा सैन्यवादपर आधारित नही है, सबसे अच्छा और एकमात्र मार्ग यही है कि सरकार लोगोपर विश्वास करके, साम्राज्यके खो देनेका खतरा उठाकर भी इस देशसे अनावश्यक सेना हटा ले और आम तौरपर अग्रेज लोग हमे मन व कर्मसे हर तरह अपनी बराबरीका माने। यह तभी सम्भव होगा जब वह मुसलमानोकी भावनाओका खयाल करते हुए खिलाफतके प्रश्नका सन्तोषजनक हल ढूँढ़ निकाले तथा पंजाबके प्रति किये गये अन्यायका पूरा निराकरण करे।

लेकिन सामान्य अग्रेजोके लिए ऐसा करना असम्भव जान पडता है। उन्हे तो कुछ इस तरहकी शिक्षा दी गई है कि वे हमारे साथ मनुष्यवत् व्यवहार कर ही नही सकते; मानो हम मनुष्य न होकर ईंट-पत्थर हों। मै पाठकोका ध्यान उस विवरणकी ओर आकर्षित करना चाहूँगा, जिसमे न्यूजीलैंडमे हमारे देशभाइयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारकी चर्चा की गई है। न्यूजीलैंडके गोरोके कृत्योसे अधिक मनमानी नृशंसताकी मै कल्पना तक नही कर सकता। उपनिवेशवादी, दुरात्मा लोग है सो बात नही है। अपने क्षेत्रमें वे वीर, उदार, दानशील और सुसंस्कृत लोग है। लेकिन हमारे सम्पर्कमे आते ही वे अपना सन्तुलन खो बैठते है। हम लोग उनके सहज शिकार है; उनकी सास्कृतिक चेतना हमारे साथ दुर्व्यवहार करनेमें उसी प्रकार आड़े नही आती जैसे साँपको मारनेमे मानव समाजके अधिकाश लोगोके आड़े नही आती। मैंने यह कोई बेमेल उदाहरण नही दिया है। हजारो लोग इस विचारको भी सहन नही कर सकते कि कोई भारतीय उनके साथ समभावसे रहे अथवा वैसी माँग करे। गोरोंका अपनेको अन्य लोगोसे उच्च समझना, जैसा कि श्री एन्ड्रयूजने बताया है, एक धर्म बन गया है। राष्ट्रपति क्रूगर[1] कहा करते थे कि ईश्वरने एशियाइयोको श्वेत लोगोका गुलाम बननेके लिए ही रचा है। उन्होने अपने इस विचारको विधि-पुस्तकमे भी स्थान दिया। इस सम्बन्धमे उनका रवैया बिलकुल साफ था और वे उक्त बातको स्वीकार करते थे। अन्य लोग इसमे विश्वास करते है, तदनुसार आचरण करते है, लेकिन सम्भव हो तो वे सौम्य-शब्दावलीका प्रयोग करके और सम्भव न हो तो किसी बुरे तरीकेसे उसके तीखेपनको कम करनेकी नीयत रखते है।

हमारे गलेमे हीनताका जो पट्टा बँधा है, उसके लिए हम अपने अलावा और किसीको दोष नही दे सकते और इसे दूर भी स्वय ही कर सकते है, इसके लिए हमे अथक परिश्रम करना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९–९–१९२०

१. स्टीफन्स जोहानिस पाल्स क्रूगर (१८२५–१९०४); बोअर-नेता तथा दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके राष्ट्रपति।

१७६. श्री पैनिंगटनकी आपत्तियोंका उत्तर

मै बडे हर्षके साथ श्री पैनिंगटनका[1] पत्र और उसके साथ नत्थी लेख[2] छाप रहा हूँ। स्पष्ट ही श्री पैनिंगटन 'यग इडिया' के नियमित पाठक नही है, अगर होते तो देखा होता कि भीड़की ज्यादतियोकी जितनी भर्त्सना मैने की है उतनी और किसीने नही की। लगता है उनका ऐसा खयाल है कि मैने जनरल डायरपर बस एक वही लेख[3] लिखा है जिसपर उन्होने आपत्ति की है। उन्हे शायद यह मालूम नही कि मैने जलियाँवाला बागके नरसहारका अधिकसे-अधिक निष्पक्षताके साथ विवेचन किया है। और वे जिस दिन चाहे, उस नरसहारके सम्बन्धमे हमारे निष्कर्षोके समर्थनमें मेरे और मेरे साथी सदस्यो द्वारा जुटाये गये प्रमाण देख सकते है। 'यग इडिया' के साधारण पाठक सभी तथ्योसे अवगत थे, इसलिए यह अनावश्यक ही था कि मै अपनी बातोंके समर्थनमे और कुछ लिखता। लेकिन दुर्भाग्यवश हमारे सामने श्री पैनिंगटनका जो रूप उभरता है वह एक ठेठ अग्रेजका रूप है, जो किसी भी चीजके साथ अन्याय नही करना चाहता, फिर भी विश्वकी घटनाओको समझनेमे वह शायद ही न्याय करता हो, क्योकि उसके पास उन घटनाओके अध्ययन करनेका समय ही नही है। वह बस ऊपर-ऊपरसे उनका हवाला पढ लेता है और सो भी ऐसे अखबारो द्वारा प्रस्तुत किया गया हवाला, जिनका उद्देश्य सिर्फ दलगत विचारोको उभारना है। इसलिए एक सामान्य अग्रेज, बहुत सकुचित और स्थानीय महत्त्वके मामलोको छोडकर, अन्य सभी बातोकी शायद सबसे कम जानकारी रखता है, हालाँकि वह दावा यही करता है कि उसे हर तरहके मामलेकी पूरी जानकारी है। इस प्रकार श्री पैनिंगटनका अज्ञान अन्य अंग्रेजोके अज्ञानका ही एक नमूना है, और यह अज्ञान इस बातका सबसे बड़ा कारण प्रस्तुत करता है कि अब हमे अपने सारे कारबारके सचालनका भार अपने हाथोमें ले लेना चाहिए। शासन करनेकी योग्यता तो काम करते-करते ही आयेगी। अगर हम उन लोगोसे बराबर शिक्षा पानेकी प्रतीक्षा करते रहे जिनका स्वाभाविक हित इस शिक्षण-कालको अधिकसे-अधिक लम्बा खीचते जानेमें ही है, तो हममें योग्यता कहाँसे आयेगी?

लेकिन अब जरा श्री पैनिंगटनके पत्रपर विचार करे। उनकी शिकायत है कि "किसी भी व्यक्तिके मामलेकी समुचित जाँच नही की गई"। लेकिन इसमे हमारा क्या दोष? भारत तो बराबर आग्रहपूर्वक यह माँग करता रहा है कि पजाबके प्रति किये गये अपराधसे सम्बद्ध सभी अधिकारियोके मामलोकी जाँच की जाये।

१. जे० आर० पैनिंगटन, अवकाश प्राप्त एक आई० सी० एस० अफसर, जिन्होंने गांधीजीको लिखे अपने एक पत्रमें जनरल डायरका बचाव किया था।

२. जिसमें जनरल डायरकी पैरवी की गई थं और जिसका शीर्षक था "इज इंडिया वर्थ कीपिंग?"।

३. देखिए "जनरल डायर", १४-७-१९२०।

उनकी दूसरी शिकायत यह है कि मेरी भाषा बहुत "कडवी" है। अगर सत्य कडवा हो तो मैं अपना यह अपराध स्वीकार करता हूँ कि मैंने कडवी भाषाका प्रयोग किया। लेकिन जनरल डायरके कृत्योका वर्णन करनेके लिए किसी और भाषाका उपयोग मैं सत्यके साथ अन्याय किये बिना नही कर सकता था। स्वय जनरल डायर या विरोधी गवाहोकी बातोसे सिद्ध हो चुका है कि:

(१) भीड निहत्थी थी।

(२) उसमे बच्चे भी शामिल थे।

(३) १३ तारीखको बैसाखीका मेला लगा था।

(४) हजारो लोग उस मेलेमे आये थे।

(५) वहाँ कोई विद्रोह नही हुआ था।

(६) मेलेकी तारीख और जिस दिन हत्याकांड हुआ, बीचके इन दो दिनोमे अमृतसरमे शान्ति थी।

(७) सभाकी घोषणा उसी दिन की गई जिस दिन जनरल डायरकी घोषणा हुई थी।

(८) जनरल डायरकी घोषणामे सभाओपर नही बल्कि प्रदर्शन और सडकों-पर चारसे अधिक आदमियोके एकत्र होनेपर प्रतिबन्ध लगाया गया था, और उक्त प्रतिबन्ध भी सडकोतक ही सीमित था, निजी स्थानो या सार्वजनिक स्थानोपर यह लागू नही होता था।

(९) जनरल डायरको न तो नगरके बाहर कोई खतरा था और न नगरके भीतर।

(१०) उन्होने खुद स्वीकार किया कि भीड़मे शामिल बहुत-से लोगोको उनकी घोषणाकी कोई जानकारी नही थी।

(११) उन्होंने भीडको चेतावनी दिये बिना गोलियाँ चलाई और जब भीड तितर-बितर होने लगी तब भी वे गोलियाँ चलाते रहे। उन्होने भागते हुए लोगोपर पीछेसे गोलियाँ चलाईं।

(१२) लोगोको एक अहातेमे लगभग घेरकर बन्द कर दिया गया था।

इन तथ्योको ध्यानमे रखते हुए मैं जनरल डायरके इस कामको "नरसहार" ही कहता हूँ। यह काम "निर्णयकी भूल" नही था, यह तो "काल्पनिक खतरोसे सामना पड़ जानेपर निर्णय-बुद्धिको लकवा मार जाने" का उदाहरण है।

मुझे दु:खके साथ कहना पडता है कि श्री पैनिंगटनकी टिप्पणियाँ भी, जिन्हे पाठक अन्यत्र प्रकाशित देखेंगे, वैसे ही अज्ञानसे भरी हुई हैं जैसे अज्ञानका परिचय उनके पत्रसे मिलता है।

'कैनिंगके समयमे जो-कुछ भी कागजपर स्वीकार किया गया, उसे कभी पूरी तरह कार्यान्वित नही किया गया। एक प्रतिक्रियावादी वाइसरायने कहा था "जो वादे किये गये, लोग उनके पूरे किये जानेकी आशा ही लगाये रह गये।" कैनिंगके समयसे सैनिक-व्यय अब बहुत अधिक बढ गया है।

जनरल डायरके पक्षमे प्रदर्शन होनेकी जो बात कही गई है वह तो लगभग एक कपोल-कल्पना ही है।

डंडा फौजका, जिसे श्री पैनिंगटनने 'ब्लजन आर्मी' की गौरवास्पद सज्ञा दी है, कही नाम-निशानतक नही देखा गया। अमृतसरमें कोई विद्रोह नही हुआ था। जिस भीडने भयकर मारकाट और आगजनी की, उसमे एक ही समुदायके लोग शामिल नही थे। परचा सिर्फ लाहौरमे ही चिपकाया गया था, अमृतसरमे नही। उसके अलावा श्री पैनिंगटनको अबतक इतनी जानकारी तो हो जानी चाहिए थी कि १३ तारीख-को जो सभा हुई, उसका उद्देश्य अन्य बातोंके साथ-साथ भीडकी ज्यादतियोंकी भर्त्सना करना भी था। यह बात अमृतसरके मुकदमेके दौरान सिद्ध हो चुकी है। जो लोग जनरल डायरके इर्द-गिर्द खडे थे वे उन्हे रोक नही पाये। जनरल डायरका कहना है कि उन्होने बस एक क्षणमे ही गोली चलानेका निश्चय कर लिया। उन्होने किसीसे सलाह नही की। पत्र-लेखक [श्री पैनिंगटन] महोदय कहते है कि सैनिकोंने उस कार्रवाईमे "जिसे उस स्थितिमे 'नरसहार' कहना अनुचित नही होगा" भाग लेनेपर आपत्ति की होती। इससे तो यही प्रकट होता है, मानो वे भारतमे कभी रहे ही न हो। कितना अच्छा होता, अगर भारतीय सैनिकोने सर्वथा निर्दोप, निहत्थे और वेतहाशा भागते हुए लोगोपर गोली चलानेसे इनकार करके नैतिक साहसका परिचय दिया होता। लेकिन भारतीय सैनिकोको तो ऐसे दासत्वके वातावरणमे शिक्षा-दीक्षा दी गई है कि वे ऐसा कोई सही काम करनेका साहस ही नही कर सकते।

आशा है श्री पैनिंगटन केवल इसी कारणसे मुझपर फिर अपुष्ट बाते कहनेका आरोप नही लगायेंगे कि मैने उनके सम्बन्धमे पुस्तकोसे उद्धरण नही दिये है। प्रमाण तो है ही — उनका लाभ उठाना न उठाना उनकी मर्जीपर निर्भर करता है। मै तो उन्हें सिर्फ इतना भरोसा दिला सकता हूँ कि मेरी सारी बाते अधिकाशत सरकारी सूत्रोसे प्राप्त निश्चित प्रमाणोपर आधारित है।

श्री पैनिंगटन कहते है कि १० तारीखको जो-कुछ हुआ, मै उसका बिलकुल सही विवरण प्रकाशित करूँ। यह विवरण उन्हे रिपोर्टमे मिल जायेगा और अगर वे धैर्य-के साथ रिपोर्टका अध्ययन करेंगे तो देखेंगे कि सर माइकेल ओ'डायर और उनके अधीनस्थ अधिकारियोने लोगोको भडकाकर बिलकुल उन्मत्त बना दिया था, और जैसा कि मै पहले ही कह चुका हूँ, इस उन्मत्तताकी जितनी तीव्र भर्त्सना मैने की है उतनी और किसीने नही की। दूसरे दिनका हाल तो बस इतनेसे ही स्पष्ट हो जाता है अर्थात् भीड बिलकुल शान्त थी और इस "शान्ति" मे बाधा पहुँचानवाली अगर कोई चीज थी तो वह थी — अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियाँ, कत्ले-आम और अधिकारियो द्वारा बादमें लगातार किये गये अपराध।

मै श्री पैनिंगटनकी सराहना करता हूँ कि उन्होने सत्यकी खोज करनेकी कोशिश की है। लेकिन उन्होने सत्यकी खोज करनेके लिए सही मार्गका अनुसरण नही किया है। मै उन्हे हंटर समिति और काग्रेस समितिके सामने दिये गये बयानोको पढनेका सुझाव देता हूँ। उन्हे रिपोर्ट पढनेकी जरूरत नही। लेकिन बयान पढकर उन्हे यह प्रतीति हो जायेगी कि मैने जनरल डायरके विरुद्ध मामलेको बढा-चढाकर नही, घटाकर ही पेश किया है।

किन्तु जब मै उस विवरणको पढता हूँ जिसमें उन्होंने स्वयं अपना परिचय दिया है तो मुझे कोई आशा नही रह जाती कि वे कभी सत्यकी खोज कर पायेंगे; क्योकि उन्होने अपने बारेमे कहा है कि "जब सरकारी अधिकारियोकी हत्या और अन्य तरीकोसे सुधार प्राप्त करना फैशन नही हुआ था उस समय वे १२ वर्षतक दक्षिण भारतके विभिन्न जिलोमे चीफ मजिस्ट्रेट रह चुके थे।" कोई भी आवेश या पूर्वग्रहसे ग्रस्त व्यक्ति कभी सत्यको नही पा सकता और स्पष्ट है कि श्री पैनिंगटन आवेशमें भी है और पूर्वग्रहसे भी ग्रस्त है। "जब सरकारी अधिकारियोकी हत्या और अन्य तरीकोसे सुधार प्राप्त करना फैशन नही हुआ था"—इन शब्दोसे उनका क्या मतलब है? सौभाग्यवश हत्या द्वारा सुधार प्राप्त करनेमे विश्वास रखनेवाली विचारधारा जब यहाँ मर चुकी है, ऐसे समय हत्याकी बात करना उन्हे शोभा नही देता। जबतक अग्रेज लोग उद्धततापूर्वक अपने-आपको दूसरोसे श्रेष्ठ मानते रहेंगे या अज्ञानवश ऐसा मानते रहगे कि उनसे कोई गलती हो ही नही सकती, तबतक उनकी दृष्टिपर से कोहरा नही हटेगा और इस हालतमें वे कभी भी सत्यको नही देख सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-९-१९२०

१७७. भाषण : शिक्षकोंकी सभा, अहमदाबादमें

२९ सितम्बर, १९२०

किसी समय मै खुद भी शिक्षक था और अब भी यह दावा किया जा सकता है कि शिक्षक ही हूँ। मुझे शिक्षाका अनुभव है। मैंने उसके प्रयोग करके देखे हैं। यह काम करते-करते मुझे ऐसा लगा कि जिस जातिके शिक्षक पुरुषत्व खो बैठते है, वह जाति कभी उठ नही सकती।

हमारे शिक्षक अपना पुरुषत्व जरूर गँवा बैठे हैं। जो वे करना नही चाहते, वही उन्हें मजबूरन करना पडता है। मार-पीटकर उनसे कोई कुछ नही कराता, लेकिन सूक्ष्म बलात्कार तो उनपर होता ही है। अपने बड़े अफसरोकी धमकियो, वेतनके नुकसान या वेतन न बढ सकनेकी धमकियो या सूचनाओसे शिक्षक घबरा जाते हैं।

अब हमारे सामने ऐसा मौका आ खडा हुआ है, जब शिक्षक और शिक्षिकाएँ अपनी जान, अपना माल और अपना वेतन, सब-कुछ जोखिममे डालकर भी साहसके साथ सच्ची बात विद्यार्थियोके सामने रख दे। अगर वे ऐसा नही कर सकते तो अपनी आजीविकाका साधन उन्हें छोड देना चाहिए। इतना अगर आज मैं शिक्षकोको बता दूं, तो मेरा आजका काम निपट गया। मेरे खिलाफ शास्त्रीजी जैसे महान् शिक्षक है। हिन्दू विश्वविद्यालय-जैसी सस्थाके सस्थापक पडित मालवीयजी भी मानते हैं कि मै जनताको उलटे रास्ते ले जा रहा हूँ। जो राष्ट्रवादी दलके हैं, उन्हे भी शंका है। फिर भी मुझे लगता है कि मै सही रास्तेपर हूँ।

वगदादसे आये हुए एक सज्जनने मुझे वहाँका अपना अनुभव सुनाया, जिससे मैं चकित हो गया हूँ। मैं कहता हूँ कि हिन्दुस्तानमे रहना मेरे लिए मुश्किल हो गया है। अगर मैं चौवीसो घंटे असहयोगका ही विचार न करता रहूँ — सोते वक्त भी मेरा मन इसी विचारसे शान्त होता है — तो मेरे लिए हिन्दुस्तानमें रहना असम्भव हो जाये। मैं मानता हूँ कि वगदादके अपढ अरव हमसे सैकडो दरजे आगे वढे हुए हैं। ये सज्जन कोई मामूली आदमी नही हैं। वे वगदादमें सरकारी नौकरीमे वडे ओहदेपर थे। वे अग्रेज सरकारके दुश्मन नही हैं। उन्होने मुझसे वही कहा है, जो उन्हें अनुभव हुआ। गगावेनने[1] उनसे पूछा, "क्या वहाँ अग्रेजोका राज्य कायम रहेगा?" उन्होने कहा, "वह क्या हिन्दुस्तान है?" जवतक एक भी अग्रेज मैसोपोटामियामें रहेगा, तवतक अरब चैनसे नही बैठेंगे। अरबोंके पास गोला-बारूद या तलवार वगैरा नही है — होगा भी तो निकम्मा। किन्तु एक सामग्री उनके पास जरूर है। वे मानते हैं कि "यह देश हमारा है। अपने इस देशमें, जिसे हम न रहने दें, वह एक पल भी नही रह सकता।"

अग्रेज सरकारने वहाँ जितने सिख भेजे, उन सवको उन्होने काट डाला। मैं हिन्दुस्तानको यह सीख नही देता। मैं तो उलटे इस तरफ जानेसे लोगोको रोकता हूँ। अरवोंका सिखोसे कोई विरोध नही था। हमे तो यही देखना है कि अरवोका मकसद क्या था। अग्रेजोने उन्हें बडी-बडी आशाएँ बँधाईं। वगदादमें इतनी गरमी पडती है कि आप सब जैसे यहाँ बैठे हैं, वैसे वहाँकी रेतमे नही बैठ सकते। वहाँकी रेत इतनी तप जाती है कि उसपर खाना पकाया जा सकता है। अंग्रेज सरकारने कहा कि हम तुम्हारे लिए पक्की सडके बनायेंगे, रेल लायेंगे और जिनसे तुम्हे सुख मिले वे सब सहूलियतें कर देंगे। तुम्हे शिक्षा देंगे। मोटर भी अरवोंने पहले-पहल अभी-अभी देखी। किन्तु अरव तो एक ही बात जानते थे। उन्होने कहा, "तुम हमारा मुल्क लेने आये हो।" यहाँके मुसलमानोसे पहले ही मैसोपोटामियाके मुसलमान अंग्रेजोको अपने देशसे निकाल रहे हैं।

अंग्रेजोके हवाई जहाज उन्हें डरा नही सकते। हवाई जहाज हो या और कुछ हो, अरबोको इससे क्या? वे तो प्राणोको हथेलीपर लिये फिरते हैं। उनके पास है क्या, जो कोई ले लेगा? वे अपने खुदके लिए नही लड़ते। उनके कपडे चमडेके होते हैं। वे तम्बूमे रहनेवाले ठहरे। अपने देशको — भले ही वह रेतीला हो — उन्हे वचाना है। वगदाद शरीफमे, जो पाक जमीन है और जहाँ कई पीर हो चुके हैं, विना इजाजतके कौन जा सकता है? वहाँ अग्रेज, सिख या उनके भाई-बन्धु कोई नही रह सकता।

अरब हमसे कही ज्यादा वढे-चढे हैं। "यह हमारा देश है, इसपर कोई अँगुली उठाये तो हम उसकी अँगुली काट डालेंगे, तीसरेको यहाँ रहने न देंगे।" — यह जोश जिनमे है वे ही वास्तवमे सुखी हैं। यदि हम मानते हो कि अरव जगली हैं और हम सभ्य हैं, तो हम उनके और खुद अपने साथ बेइन्साफी करते हैं। हमे गुलाम होनेपर

१. एक विधवा महिला जो बादमें साबरमती आश्रममें रहने लगी। उन्होंने गांधीजीके अनुरोधपर बीजापुरमें चरखेकी खोज की थी।

भी थोड़े-बहुत सुख और भोग मिलते हैं। जबतक इस तरहके भोग-विलासकी इच्छा हम रखते हैं तबतक हम अरबोंसे घटिया ही हैं।

हमारे बाप-दादा कह गये हैं, वेदों और उपनिषदोंमें कहा गया है कि पवित्र भूमिको अपवित्र न होने दो। दूसरे लोग तुम्हारी धरतीपर पैर रखें तो मेहमान बनकर ही रख सकते हैं। जिसने आजादीको खो दिया, उसने सब-कुछ खो दिया; अपना धर्म भी खो दिया।

मैं यह नहीं मानता कि अंग्रेजी राज्यमें हम अपना धर्म शान्तिसे पाल सकते हैं और मुसलमानी राज्यमें नहीं पाल सकते थे। मैं जानता हूँ कि मुसलमानी राज्य पीडक था, उसमें घमण्ड था। आजका अंग्रेजी राज्य तो नास्तिक है, धर्मसे विमुख है। इस राज्यमें हमारा धर्म जोखिममें पड़ गया है।

हमारे आसपासके मुल्कोंमें पठानों, ईरानियों और अरबोंकी हालत हमसे अच्छी है। हमारी-जैसी शिक्षा उन्हें नहीं मिलती, फिर भी वे हमसे बढ़कर हैं।

इस तरह अपनी दीन दशाका चित्र खींचनेके बाद मैं शिक्षकोंके सामने अपना मामला पेश करता हूँ। जबतक हम अपनी शिक्षाको कुरबान करनेके लिए तैयार न होंगे, तबतक हम देशको स्वतंत्र नहीं कर सकेंगे।

आजकल बहुतसे विद्यार्थी मेरे पास आकर अपनी बात इस ढंगसे कहते हैं कि दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। फिर भी मैं देखता हूँ कि वे घबराये हुए हैं। वे ऐसे सवाल करते हैं कि आज हम स्कूल छोड़ दें तो कल ही दूसरा स्कूल मिलेगा या नहीं। यह शिक्षाका मोह है। यह कोई नहीं कह सकता कि मैं शिक्षाका विरोधी हूँ। मैं पलभर भी पढ़े या विचार किये बगैर नहीं रहता। लेकिन जब चारों तरफ आग लगी हो तो हम डिकन्स[1] या 'बाइबिल' लेकर पढ़ने नहीं बैठ सकते। इस वक्त देशमें दावानल सुलगा हुआ है। इस समय शिक्षाका मोह हमें हरगिज न रखना चाहिए।

अगर आप निश्चित रूपसे यह मानते हों कि अंग्रेजोंने पंजाब और खिलाफतके मामलेमें हिन्दुस्तानपर जुल्म किया है, उसे दगा दी है, तो जबतक इस जुल्मका वे पूरा प्रायश्चित्त न करें, अपना मैला दिल पूरी तरह साफ न कर लें तबतक उनसे किसी तरहका दान, वेतन या शिक्षा लेना बड़ा भारी पाप है। हम राक्षससे शिक्षा नहीं ले सकते। मैले हाथोंसे दिया जानेवाला शुद्धसे-शुद्ध शिक्षण भी मैला ही है। अंग्रेज तो अपनी गंदगीको भी सफाई कहकर बताते हैं।

इस वक्त हममें जो दीनता है, पामरता है और हम जिस भ्रममें पड़े हुए हैं, वह अंग्रेजी शिक्षाका ही प्रताप है। यह कहना सरासर झूठ है कि हमें अंग्रेजी शिक्षा न मिली होती तो हम इस वक्त कोई हलचल न करते होते।

देशके लिए मर मिटनेकी जो वृत्ति अरबोंमें है, वह हममें नहीं है। मैं भविष्य-वाणी करता हूँ कि जबतक हम ऐसी गिरी हुई हालतसे बाहर नहीं निकलेंगे, तबतक हिन्दुस्तान आजाद नहीं हो सकेगा।

१. चार्ल्स डिकन्स (१८१२–१८७०); १९ वीं शताब्दीके सर्वाधिक लोकप्रिय अंग्रेज उपन्यासकार।

शिक्षकों और प्रोफेसरोसे मैं हिम्मतके साथ कहता हूँ कि प्रजामे उमंग और उत्साह भरना हो, तो आप कल ही इस्तीफा दे दें। इस्तीफा देनेवाला शिक्षक विद्यार्थियोंको बडेसे-बडा सबक सिखायेगा।

अगर शिक्षकोमे वीरता या बहादुरी आ जाये, उनकी समझमे आ जाये कि जो सल्तनत इन्साफ नही करती और अपने, अन्यायका प्रायश्चित्त नही करती, उससे वेतन नही लिया जा सकता, तो गुजरातमे आज ही स्वराज्य हो जाये। शिक्षक अगर हिम्मत करके कहे कि हम भीख माँगकर भी सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा ही देंगे, तो आकाशमे देवता भी देखने आयेंगे और रुपयोकी वर्षा करेंगे।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ३–१०–१९२०

१७८. दृढ़ता और वीरताकी आवश्यकता

आज जो युद्ध चल रहा है, बहुत कम लोग उसके महत्त्वको जानते होंगे। एक सज्जनने मुझसे पूछा है कि "हम जो कार्य कर रहे हैं क्या उसे युद्धकी संज्ञा दी जा सकती है?" मैंने तो तुरन्त उत्तर दिया, "हमारी लड़ाईमें युद्धके सब लक्षण विद्यमान है।" हमे जो चीज चाहिए, अर्थात् स्वराज्य, वह युद्धके बिना कदापि नही मिल सकती; इसलिए साधन भी युद्धके होने चाहिए अर्थात् हमें सामान्य व्यवहारको बन्द करके आपद्-धर्मका आचरण करना चाहिए। युद्धमें और इसमें सिर्फ इतना अथवा भारी भेद यही है कि हमारे युद्धमे पशुबलको, शस्त्रबलको अवकाश नही है। इतना ही नही बल्कि शरीर-बलका उपयोग करना हमारी हार है। इस युद्धमे अन्य लक्षण सामान्य युद्धके समान ही है। इसमें सामान्य युद्धके समान ही आत्मत्याग, प्रशिक्षण और योजना आदिकी आवश्यकता है। सामान्य युद्धके समय अधिकाशतया जनता अपनी चालू प्रवृत्तियोको त्याग देती है। वह सार्वजनिक सकटके समय अपने व्यक्तिगत दु खोको बिसरा देती है। अनीतिपर चलनेवाला नीतिका मार्ग ग्रहण करता है, लुटेरा लूटनेका धन्धा छोड़ देता है, व्यभिचारी व्यभिचारको त्याग देता है और चोर चोरी करना बन्द कर देता है। सब लोग देशकी स्वतन्त्रताका जाप करते है। ऐसे समय लोगोंके पास अदालतोमे जानेका समय नही होता; विद्यार्थी देशकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिमे भाग लेते है और उसीको विद्याभ्यास मानते है।

लेकिन ऐसे समय सबसे शोभनीय गुण तो दृढता और वीरता होते है। इनकी सबसे अधिक जरूरत दिखाई देती है। एक बार निश्चय कर लेनेपर, उससे न हटना यह हुई दृढता। आज सरकारी स्कूलको छोड़ना फिर कल उसपर पश्चात्ताप करना और तीसरे दिन पुन उसी स्कूलमे दाखिल होनेके लिये प्रयत्न करना दृढता नही है। ऐसी दुर्बलताके कारण देशका पतन होता है, वह कभी उन्नत नही हो सकता। आज अगर एक अध्यापक त्यागपत्र देता है और कल उसे वापस ले लेता है तो वह

जितना नुकसान करता है उतना नुकसान तो त्यागपत्र न देनेवाला अध्यापक भी नही करता। भले ही आपदाएँ आयें, सकटोका सामना करना पड़े, उनको झेलते हुए अपना कार्य करते रहना वीरताका सूचक है। युद्धके समय वणिक-वृत्तिकी अपेक्षा वीरताका भाव अधिक होता है। शान्तिकालमे वणिक-वृत्तिकी आवश्यकता होती है और अशान्तिके समय वीरताकी। गुजरात वणिक-वृत्तिके लिए प्रख्यात है। वणिकोमे वीरताका अभाव बिलकुल स्वाभाविक है, यह धारणा ठीक नही। जैसे समष्टि किसी एक ही वृत्तिको आधार बनाकर टिकी नही रह सकती वैसे ही व्यक्तिका पोषण भी एक ही वृत्तिसे नही होता। अतएव प्रत्येक व्यक्तिमें वीरताका गुण होता अवश्य है, मात्र उसका उपयोग करनेका कोई अवसर न मिलनेके कारण हमें ऐसा आभास होने लगता है कि हममे उक्त गुणका अभाव है। आज गुजरातके लिए, समस्त भारतवर्षके लिए वीरताका परिचय देनेका समय आ गया है।

'जहाँ पशुबलका प्रयोग नही करना है, वहाँ वीरता कैसी?' मुझे उम्मीद है कि कोई भी व्यक्ति ऐसी कुशंकाका शिकार नही बनेगा। वस्तुत: देखा जाये तो पशु-बलका प्रयोग करनेमे वीरता नही है। हाथी चीटियोको रौदता चला जाये तो यह कोई वीरता नही हुई, लेकिन सिंहके साथ जूझकर हाथी वीरताका परिचय देता है, क्योकि इसमे वह अपनी जानको खतरेमें डालता है। गधेका कान उमेठनेसे कुम्हार वीर नही बनता, लेकिन लुटेरोंका सामना करते हुए वह नरकेसरी अपनी वीरता दिखा सकता है। क्योकि उस समय वह अपने प्राणोंको स्पष्टतया सकटकी आगमे झोंकता है। जो पशुबलका प्रयोग न करके भी अविजित रहकर सघर्ष करता है वह परिपूर्ण वीरता प्रदर्शित करता है। यहाँ वीरताका क्या अर्थ है? हिन्दुस्तानके लिए इस नि.शस्त्र युद्धमे पूर्ण वीरता दिखानेका अवसर उपस्थित हुआ है। मेरी शिक्षाका कल क्या परिणाम होगा, इसका विचार किये बिना जो स्कूलका परित्याग करता है वह विद्यार्थी वीरता दिखाता है, जो दूसरे स्कूलका प्रबन्ध होनेपर ही पहले स्कूलका परित्याग करता है वह विद्यार्थी वणिक-वृत्तिका परिचय देता है। रोजी मिले या न मिले, इसकी परवाह किये बिना अदालतमें न जानेवाला वकील वीरताका प्रदर्शन करता है; रोजीका बन्दोबस्त करनेके बाद ही अदालतका त्याग करनेवाले वकीलने दुनियादारीसे काम भले ही लिया हो, लेकिन उस कामको वीरताका नाम तो नही ही दिया जा सकता। परिणामका भय किये बिना विश्वासपूर्वक जूझना ही वीरता है। जहाँ भीरुता हो वहाँ वीरता कदापि नही हो सकती। हमारी जनता भीरु है। भीरु बने रहकर स्वतन्त्रता-प्राप्ति परस्पर विरोधी बात है। [हमें] पग-पगपर साहसकी आवश्यकता पड़ेगी। रणमे सकटोंका सामना करना होता है और अनिच्छा-पूर्वक वैसा करना पडता है। यहाँ हम इच्छापूर्वक संकटोका आह्वान करते है और इच्छापूर्वक थोड़ेसे संकटको झेलनेसे ही हमें बडे-बडे परिणामोकी उपलब्धि हो सकती है।

आज हम असहयोगकी दिशामे जो कदम उठाने जा रहे है उसमे थोडा-बहुत जोखिम तो है ही। तथापि अगर जनता उसमें पूरी तरह भाग ले तो मुझे विश्वास है

कि हम थोडेही अरसेमें स्वराज्यका उपभोग करने लगेंगे। फिर भी जनता निस्सन्देह शिक्षित-वर्गसे इस बातकी अपेक्षा करती है कि वह यह कदम उठानेमे दृढ़ता और वीरताका परिचय देगा।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ३–१०–१९२०

१७९. सत्य और खिलाफत

सभी धर्मोकी चरम परिणति सत्यमें होती है। सत्य ही परमेश्वर है। सत्यसे परे कोई धर्म नही है। इसमें सन्देह नही कि सत्यका पालन करना अत्यन्त कठिन है। मनसा-वाचा सत्यका पालन करनवाले व्यक्तिको अन्य किसी वस्तुकी आवश्यकता ही नही होती। उससे उसे सब-कुछ मिलता रहता है। सत्यका मार्ग शूरोंके लिए ही है। सत्य सरल शब्द है; उसपर आचरण न कर सकनेपर मनुष्य अपनी कुलीनता खो बैठता है, उसकी साख चली जाती है। जैसे दूधमे कचरा पड़ जानेपर सारा दूध दूषित हो जाता है उसी तरह अन्यथा निर्दोष वचनोमे असत्यका मिश्रण हो जानेसे वे निर्दोप वचन अपना महत्त्व खो देते हैं। इसलिए बुरे वचनोके लिए ही सजा भोगनी पड़ती हो, सो बात नही, बल्कि निर्दोप वचन भी दूषित वचनोसे मिलकर दूषित कहलाते हैं।

मौलाना जफर अली खाँका मामला इसका स्पष्ट उदाहरण है। उनपर जिन वचनोको कहनेका अभियोग लगाया है वे उन्होने कहे हैं या नही, सो हमे नही मालूम। मेरा उद्देश्य तो सिर्फ इतना ही बतलाना है कि उनपर अभियोग लगानेमे चतुराई-से काम लिया गया है। जिन बातोका मामलेके साथ कोई सीधा सम्बन्ध नही है, उनका होना कदाचित् मामला साबित भी नही कर सकता, वैसी बातोका समावेश करके मौलाना जफर अली खाँके विरुद्ध जोरदार मामला बनाया गया है।

इस सारे अभियोगका कानूनकी दृष्टिसे कुछ भी अर्थ क्यों न हो, मेरा सम्बन्ध तो केवल इसके राजनीतिक फलितार्थोसे ही है।

इस अभियोग पत्रके दो भाग हैं। इनमेंसे पहले भागमे लगाया गया गम्भीर आरोप यदि सच है तो भी उससे मुख्य अभियोग सिद्ध नही होता और अगर दूसरे भागसे, जिसमे दरअसल कोई अपराधपूर्ण आरोप नही लगाया गया है, दोप सिद्ध होता है तो यह अभियुक्तके लिये प्रतिष्ठाकी बात है। मौलाना जफर अली खाँपर अभियोग है कि उन्होने अपने भाषणमे यह कहा, "यदि सरकार चाहती है कि जनता युवराजके आगमन-पर उनका स्वागत करे तो सरकारको कुछ शर्तें पूरी करनी ही चाहिए, जैसे टर्की साम्राज्यको बनाये रखना, मुसलमानोको सन्तुष्ट करना, रौलट अधिनियम रद करना तथा यह वचन देना कि वह अब फिरसे मार्शल लॉ लागू नही करेगी। यदि सरकार यह-सब नही करेगी तो [ब्रिटिश] साम्राज्यका नाश हो जायेगा।" यह कथन जोरदार है, लेकिन बिलकुल निर्दोप है। यदि ऐसा कहना-करना अपराध है तो ऐसा अपराध

मे लगभग हमेशा करता हूँ। यह बात सच्ची है और सच बात कहनेमे कोई अपराध नही होता।

लेकिन सरकारका कहना है कि ऐसे कथनसे जनताके दिलमे उसके प्रति प्रेमभाव कम होता है। उसका यह कहना सच भी है। लेकिन अगर सरकार कोई अपकार्य करे और उसका वर्णन करनेसे उसके प्रति प्रेममे कमी आती हो तो इसमे दोष सरकारका है, बुरे कार्यका सच्चा विवरण पेश करनेवाले का नही। और यदि सच्चा विवरण पेश करना कानूनी अपराध है तो ऐसा अपराध पुण्यकर्म हो जाता है।

अभियोग पत्रके दूसरे भागमें कहा गया है कि अपने इसी भाषणमे मौलाना जफर अली खाँने मुसलमानोंको लक्ष्य करके कहा कि अंग्रेजोने ही मक्का शरीफपर गोलाबारी की। एक मुसलमानने अपने पुत्रके चेहरेको, जो सरकारी पक्षकी ओरसे अरबोके साथ युद्ध करता हुआ मारा गया था, सूअर-जैसा [विकृत] होते हुए देखा और बगदादमे ब्रिटिश लश्करने कुमारी कन्याओकी इज्जत लूटी। अब इन बातोमे से पहले और अन्तिम कथनोका कोई प्रमाण नही है और दूसरा कथन असम्भव है। फिर भी ये जनताकी अन्धविश्वासपूर्ण भावनाओको भड़कानेवाले हैं। मुझे तो अब भी यह उम्मीद है कि मौलाना जफर अलीने ऐसी बातें नही कही होगी और यदि कही है, तो यह खेदजनक है। अतिरंजनासे हमारे कार्यको धक्का पहुँचता है। इस लेखका उद्देश्य यह बताना है कि कार्यकर्त्ताओंको ऐसे अतिरजित भाषणोसे बचनेकी बड़ी आवश्यकता है। सरकारकी ओरसे मिलनेवाले प्रमाणोंसे ही साम्राज्यके विरुद्ध मामला सिद्ध हो जाता है। अतिशयोक्तिसे मामला क्षीण होता है।

सम्भव है कि मौलाना जफर अलीपर यदि अतिशयोक्तिका आरोप न लगाया जाता तो उनके अन्य वचनोको लेकर कोई अभियोग न चलाया जाता अथवा चलाना मुश्किल होता।

इससे प्रत्येक खिलाफत और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताको यह सार ग्रहण करना चाहिए कि उन्हे कदापि सत्यके मार्गसे नही हटना है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३–१०–१९२०

१८०. स्त्रियोंका असहयोग

"हम असहयोगमें क्या मदद कर सकते है?" शान्तिनिकेतनमे रहनेवाली बहनोने अत्यन्त गम्भीरतासे उपर्युक्त प्रश्न किया था। यही सवाल एक भाईने भी बहनोकी ओरसे किया है। शान्तिनिकेतनकी बहनोको मैंने जो उत्तर दिया मैं उसीके अभिप्रायको थोड़ेसे परिवर्तनके साथ यहाँ प्रस्तुत करना चाहता हूँ। जबतक इस कार्यमे स्त्रियाँ पूरी तरहसे सहयोग नही करती तबतक स्वराज्यकी आशा रखना व्यर्थ है। स्त्रियाँ जितनी सूक्ष्मतासे ऐसी बातोका पालन करती हैं उतनी सूक्ष्मतासे पुरुष नही करते। यदि स्त्रियाँ इस बातको नही समझती अथवा स्वीकार नही करती कि राष्ट्रकी स्वतन्त्रता-

को बनाये रखना, स्वतन्त्रता छिन गई हो तो उसे प्राप्त करना, उनका धर्म है तो राष्ट्रकी सुरक्षा असम्भव है।

अपनी आस्थामे उत्तरोत्तर वृद्धि करनेके लिए देव-दर्शन करना मैं महत्त्वपूर्ण चीज समझता हूँ, लेकिन यदि स्त्रियाँ यह माने कि देव-दर्शनमें ही सम्पूर्ण धर्मका समावेश हो जाता है तो यह धारणा अन्धविश्वासका स्वरूप धारण कर लेती है और इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रका नुकसान होता है। देव-दर्शन आत्मज्ञानका एक साधन है, इस बातको जाननेवाली स्त्री यह समझ जायेगी कि राष्ट्रकी स्वतन्त्रताकी ध्वनि मन्दिरोंमे भी गुजरित होनी चाहिए, क्योकि स्वतन्त्रताके बिना धर्मकी रक्षा करना असम्भव है। अमृतसरमे जब जनरल डायरने कहर बरपा किया था उस समय लोग धर्मकी कितनी रक्षा कर सके थे? तब भी स्त्रियाँ मन्दिरोंमे जाती थी, थोडे-बहुत पुरुष भी जाते थे। उनके वहाँ जानेका क्या फल निकला?

यदि स्त्रियाँ यह जानती होती कि इस व्यक्ति, अर्थात् जनरल डायर, के अत्याचारसे मुक्ति प्राप्त करना जनताका सर्वोपरि कर्त्तव्य है तो वे अपने पतियो तथा पुत्रोको शूरता-का पाठ पढाती तथा उन्हे भीरुताका परित्याग करके स्वाभिमान की रक्षा करनेके लिए सन्नद्ध करती। लेकिन आज तो इस देशकी स्त्रियाँ राष्ट्र-कल्याणकी सच्ची बातोसे अनभिज्ञ रहती है, इससे हमे उनसे बहुत कम मदद मिलती है।

पहले यह बात नही थी। सीताजीने रामक साथ वनगमन किया। उनसे रामचन्द्रके काम बिलकुल छिपे हुए नही थे। द्रौपदी पाडवोकी सहचरी बनी और उनके साथ जंगलोंमे भटकी तथा जब उसकी लाज लुटनेका प्रसग आया तब उसने जगत्के सम्मुख यह बात सिद्ध कर दी कि वह आत्मबलसे अपनी रक्षा करनेमे समर्थ है। दमयन्ती नलकी समस्त प्रवृत्तियोंमें उसके साथ कन्धेसे-कन्धा मिलाकर चलती रही इतना ही नही बल्कि नलकी मूर्च्छितावस्थामे उसने उसकी रक्षा की।

आज सामान्य रूपसे हम कह सकते है कि स्त्री-पुरुष विरोधी दशामे जाते दिखाई देते है। स्त्रीके किसी भी कार्यमे पुरुष हस्तक्षेप नही करता, फलस्वरूप उनके अन्ध-विश्वासमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है, यद्यपि उनकी आस्था अभी डिगी नही है। पुरुष भी जो उसे अच्छा लगता है सो करता है, उसमे स्त्री दखल नही देती।

इसलिए प्रथम सुधार तो यह होना चाहिए कि स्त्रियोको स्वतन्त्रताके महामन्त्र-को जानकर, उसे धर्म समझकर उसका पालन करना चाहिए। जो स्त्री इस बातको मान गई है उसे चाहिए कि वह अन्य बहनोको इसका ज्ञान दे। स्त्री-समाजमे महान् कार्य तो स्त्री ही करेगी। पुरुषकी शक्तिकी सीमा है। वह स्त्रियोके हृदयकी अन्तर-तम गहराइयोंमें कदापि नही पैठ सकता।

स्त्री अपने बाल-बच्चोके शरीरका पोषण करती है। उसे उसी प्रमाणमे उनके हृदयोंमे स्वतन्त्रता, निर्भयता और दृढता आदि गुण प्रतिष्ठित करने चाहिए। आजी-विकाका क्या होगा—इसकी चिन्ता न करे तथा यह समझे कि अगर वह स्वय और उसके बच्चे काम करनेके लिए तत्पर रहे तो आजीविका सहल बात हो जाएगी।

स्त्रियोंका तात्कालिक धर्म तो यह है कि यदि उनके बच्चे सरकारी स्कूलोंमें पढ़ने जाते है तो उन्हें उन स्कूलोसे हटा लें।

लेकिन सबसे महान् कार्य — हमेशाके लिए करनेका कार्य — तो स्वदेशी है। स्वदेशीके बिना राष्ट्रीय-जीवनको जागृत नहीं रखा जा सकता। आज हमारा देश अन्न और वस्त्रके अभावसे पीड़ित है, उसका मुख्य कारण यह है कि राष्ट्रके पास धनका अभाव है। देश अपनी जरूरतका कपड़ा बनानेमें समर्थ होनेपर भी, बनानेके बदले विदेशोंसे मँगवाकर पहनता है, इससे प्रतिवर्ष राष्ट्रका शोषण होता है। यह दोष स्त्रियोंके साहसके बिना दूर होनेवाला नहीं है। इस देशकी स्त्रियाँ अनादिकालसे कातनेका कार्य करती आ रही हैं। जबसे उन्होंने सूत कातना बन्द कर दिया है तबसे हिन्दुस्तानकी आर्थिक और आत्मिक स्थिति गिरती चली गई है। हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता सूतके धागोंपर निर्भर करती है, यदि ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। यदि हिन्दुस्तान अपनी आवश्यकताका सारा सूत अपनी झोंपड़ियोंमें कतवा सके और घरोंमें ही उसका कपड़ा बुनवा सके तो उसे इतनी शक्ति प्राप्त हो जायेगी कि इसी शक्तिसे उसे पूर्ण स्वतन्त्रताकी उपलब्धि हो सकेगी और स्वतन्त्र हिन्दुस्तान खिलाफत और पंजाबके मामलोंपर भी न्याय प्राप्त कर सकेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३–१०–१९२०

१८१. न्यायालयोंका व्यामोह

अगर हमपर वकीलों और अदालतोंका जादू न चढ़ा होता और अगर हमें फुसलाकर न्यायालयोंके दलदलमें फँसा देनेवाले और हमारी अधमसे-अधम भावनाओंको उभारनेवाले दलाल न होते तो हमारा जीवन आजकी अपेक्षा बहुत सुखी होता। अदालतोंके इर्द-गिर्द मँडराते रहनेवाले — बल्कि इस कोटिके अच्छेसे-अच्छे लोग भी — इस बातकी साखी भरेंगे कि वहाँका वातावरण बहुत दूषित होता है। दोनों तरफसे झूठे गवाह पेश किये जाते हैं, जो पैसे या मित्रताके लिए अपनी आत्मातक बेच देनेको तैयार रहते हैं। लेकिन यह इन अदालतोंकी कोई सबसे बड़ी बुराई नहीं है। उनकी सबसे बडी बुराई तो यह है कि ये सरकारकी सत्ताको बल देती हैं। इन्हें न्याय देनेवाली संस्था माना जाता है और इसलिए न्यायालयोंको राष्ट्रकी स्वतन्त्रताका अभिरक्षक कहा जाता है। लेकिन जब ये किसी अन्यायी सरकारकी सत्ताका समर्थन करती हैं तो स्वतन्त्रताकी अभिरक्षक नहीं, बल्कि किसी राष्ट्रकी आत्माको दलित करनेवाली संस्थाएँ बन जाती हैं। ऐसी ही थीं पंजाबकी सैनिक शासन अदालतें और समरी अदालतें। हमने उन्हें पूरी तरह उनके नग्न रूपमें देखा और उनका यही रूप सामान्य समयमें भी होता है, यदि सवाल एक उच्चतर जाति और उसके गुलामोंकी तरह जिन्दगी बितानेवाले लोगोंके बीच न्याय करनेका हो। सारी दुनियामें उनका यही रूप देखनेको मिलता है। जरा उस अंग्रेज अधिकारीपर चलाये गये मुकदमे और उस नाममात्रकी सजापर गौर कीजिए जो उसे नैरोबीके निरीह नीग्रो लोगोंपर जान-बूझकर अत्याचार करनेके लिए दी गई थी। भारतमें अंग्रेजोंने जो नृशंस हत्याएँ

की है उसके लिए क्या एक भी अंग्रेजको कानूनमें विहित कड़ीसे-कडी सजा या उससे मिलती-जुलती कोई भी सजा दी गई है? कोई ऐसा न सोचे कि अंग्रेजोंके वदले भारतीय न्यायाधीश या सरकारी वकील होने लगेंगे तो स्थिति वदल जायेगी। अंग्रेज लोग स्वभावसे भ्रष्टाचारी नही है और न ऐसा ही है कि हर भारतीय फरिश्ता है। अपने-अपने परिवेशका प्रभाव दोनोपर पडता है। सैनिक शासनके दौरान भारतीय न्यायाधीश भी थे और सरकारी वकील भी, लेकिन इन लोगोने भी वही सव किया जिसके अपराधी अंग्रेज है। अगर मनियाँवालाकी स्त्रियोका अपमान किसी वॉसवर्थ स्मिथने किया तो अमृतसरमें निरीह स्त्रियोपर अत्याचार करनेवाले लोग भारतीय ही थे। मै जिस चीजकी आलोचना कर रहा हूँ वह तो एक प्रणाली है। वैसे अंग्रेजोके साथ मेरा कोई झगड़ा नही है। मै आज भी व्यक्तिके रूपमे अंग्रेजोका सम्मान उसी तरह करता हूँ जैसे पहले करता था, जव कि मुझे इस वातका पता नही था कि अंग्रेमान प्रणालीमे कोई सुधार हो ही नही सकता। अगर श्री एन्ड्रयूज और मेरे अन्य परिचित अंग्रेजोंके साथ मेरे सम्वन्धमें आज कोई अन्तर पडा है तो केवल यह कि वे लोग मेरे और भी निकट आ गये है। लेकिन अगर वे, जो मेरे लिए सगे भाईसे भी वढकर है, भारतके वाइसराय वन जाये तो मै उन्हे अपनी श्रद्धा नही दे पाऊँगा। अगर वे यह पद स्वीकार कर ले तो मुझे यह भरोसा नही रह जायेगा कि वे ईमानदार रह सकते है। उस हालतमे उन्हें एक ऐसी प्रणालीका संचालन करना पडेगा जो सहज ही भ्रष्टाचारी है और जिसका आधार ही यह मान्यता है कि हम भारतीय लोग निम्नतर जातिके है। अपने उद्देश्योंको लोगोंके लिए सम्माननीय वनानेके लिए शैतान अधिकाशतः अपेक्षाकृत नीति-समर्थित साधनों और नैतिकताकी भाषाका ही प्रयोग करता है।

मैंने यह दिखानेके लिए थोडा विषयान्तर कर दिया है कि इस सरकारमे अगर सभी लोग भारतीय हो लेकिन इसका संचालन उसी तरह किया जाये जिस तरह आज किया जाता है तो इस परिवर्तनके वावजूद वह आजकी ही तरह असह्य होगी। यही कारण है कि यह जानकर मुझे कोई सन्तोप नही हुआ कि लॉर्ड सिन्हा एक वहुत ऊँचे पदपर[1] नियुक्त किये गये हैं। हमे सिद्धान्तत. और व्यवहारतः भी, पूरी समानता मिलनी चाहिए और हममे यह क्षमता होनी चाहिए कि अगर हम ब्रिटेनसे अपने सम्वन्ध तोड़ लेना चाहे तो ऐसा कर सके।

लेकिन अव असली सवाल अर्थात् वकीलों और न्यायालयोकी वात लें। हम तव-तक यह वांछित दर्जा प्राप्त नही कर सकते जवतक हम इन तथाकथित न्याय-मंदिरोके प्रति अन्ध-श्रद्धा रखते है और उन्हें विस्मयविमुग्ध दृष्टिसे देखते है। जो लोग इन न्यायालयोके सहारे अपने लालच या प्रतिशोधकी भावनाकी तुष्टि करते है या अपने न्याय-सम्मत दावे स्वीकार करा लेते है उन्हें इन न्यायालयोके अन्तिम लक्ष्यकी ओरसे आँखे वन्द नही कर लेनी चाहिए, और न्यायालयोका अन्तिम लक्ष्य, ये न्यायालय जिस सरकारका प्रतिनिधित्व करते है, उस सरकारकी सत्ताको स्थायित्व प्रदान करना है। अपने न्यायालयोके विना यह सरकार एक दिनमें समाप्त हो जायेगी। मै यह स्वीकार

१. विहार और उड़ीसाके गवर्नर-पदपर।

करता हूँ कि मेरी योजनाके अन्तर्गत जब प्रत्येक भारतीय वकील अपनी वकालत बन्द कर देगा और न्यायालयोमे कोई भी दीवानी मुकदमा पेश नही किया जायेगा, तब भी न्यायालयोके जरिये लोगोको अपने अधीन रखनेकी शक्ति सरकारमे रहेगी ही। लेकिन तब ये न्यायालय हमे धोखा तो नही दे सकेंगे। उनकी नैतिक प्रतिष्ठा समाप्त हो जायेगी और उनके साथ सम्माननीयताका जो एक भाव जुडा हुआ है, वह भी नही रह जायेगा। यह बात कुछ विचित्र तो लगती है फिर भी है सत्य कि जबतक हम धीरे-धीरे अग्रेजोके हाथसे भारतीयोके हाथमे शक्ति देनेकी अच्छाईमे विश्वास करते रहेंगे तबतक न्यायालयोमे भारतीयोंकी ऊँचे पदोंपर नियुक्तिको वरदान माना जाता रहेगा। लेकिन अब चूँकि हम ऐसा मानते है कि इस पद्धतिको क्रमिक रूपसे सुधारना असम्भव है, इसलिए ऐसी हर नियुक्तिको, उसके पीछे जो धोखेबाजी छिपी हुई है, उसे दृष्टिमे रखते हुए बुरा ही मानना चाहिए। इसलिए अपनी वकालत बन्द करनेवाला हर वकील उस हदतक न्यायालयोकी प्रतिष्ठाकी जड़को कमजोर करता है और उस हदतक यह कार्रवाई स्वय उस व्यक्तिके लिए भी लाभदायक है और राष्ट्रके लिए भी।

और न्यायालयोके कारण लोगोको जो आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है, उसपर तो कोई विचार किया ही नही गया है। लेकिन यह कोई छोटी-मोटी बात नही है। वर्तमान प्रणालीके अधीन जितनी भी सस्थाएँ चल रही है, सबपर बहुत ज्यादा खर्च किया जा रहा है और कदाचित् सबसे ज्यादा खर्च न्यायालयोपर किया जाता है। इनपर इग्लैडमे कितना खर्च किया जाता है, इसकी मुझे थोडी-सी जानकारी है, भारतके सम्बन्धमें खासी जानकारी है, और दक्षिण आफ्रिकाके बारेमे तो बहुत ही निकटकी जानकारी है। और इस सबके आधारपर मै निसकोच कह सकता हूँ कि भारतीय न्यायालयोपर तुलनात्मक दृष्टिसे सबसे ज्यादा खर्च किया जाता है। इस खर्चका लोगोंकी सामान्य आर्थिक स्थितिसे कोई मेल नही है। दक्षिण आफ्रिकाका अच्छेसे-अच्छा वकील भी — और वहाँ भी इस कोटिके वकील वास्तवमे बहुत योग्य होते है — भारतीय वकीलो-जितनी फीस लेनेका साहस नही करता। कानूनी सलाह देनेके लिए वहाँ १५ गिनी लगभग ऊँचीसे-ऊँची फीस है। लेकिन हम जानते है भारतमे तो हजारो रुपये लिये जाते है। जिस प्रणालीके अधीन एक वकील महीने-भरमे पचास हजारसे एक लाख रुपयेतक कमाये, उस प्रणालीमे अवश्य ही कोई बहुत बडी खामी होगी। कानूनी पेशा कोई सट्टेबाजी-जैसा धन्धा नही है और न उसे ऐसा होना चाहिए। गरीबसे-गरीब लोगोको वाजिब फीसपर अच्छेसे-अच्छे वकीलोकी सेवा प्राप्त होनी चाहिए। लेकिन हमने तो अंग्रेज वकीलोंका अनुकरण किया है और इसमे उनसे भी आगे बढ गये है। अग्रेजोके लिए भारतकी आबोहवा बहुत कष्टकर होती है। और कडी सर्दीके अभ्यस्त होनेके कारण वे अक्सर पहाड़ोपर और अपने वतनको आते-जाते रहते है, और अपने बच्चोको वे एक बिलकुल अलग ढगकी अभिजातवर्गीय शिक्षा देते है, इसलिए ये खर्चे पूरे करनेकी गरजसे स्वभावत· उनकी फीस बहुत ऊँची हुआ करती है। लेकिन भारत इस तरह अपना धन बहानेकी स्थितिमे नही है। हम सोचते है कि अपने-आपको इन अंग्रेज वकीलोंकी बराबरीके दर्जेका मान सकें, इसके लिए हमे भी उनकी तरह

ही जानलेवा फीस लेनी चाहिए। वह दिन भारतके लिए बहुत बुरा होगा जब उसे अपने मानदण्ड और रुचियोंके लिए अंग्रेजोंके मानदण्ड और रुचियोंका अनुकरण करना पड़ेगा, क्योंकि उनका मानदण्ड और उनकी रुचियाँ भारतीय मिट्टीके लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं। यदि कोई वकील न्यायालयों और अपने धन्धेको उस दृष्टिकोणसे देखे जो दृष्टिकोण मैंने प्रस्तुत किया है और यदि वह सचमुच अपनी योग्यता-भर राष्ट्रकी सेवा करना चाहता हो तो उसका निष्कर्ष यही होगा कि उसे सबसे पहले अपनी वकालत बन्द कर देनी चाहिये। उसका निष्कर्ष इससे भिन्न तभी हो सकता है जब वह, मैंने जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं, उन्हें गलत सिद्ध कर दे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६–१०–१९२०

१८२. वाइसराय अपने दायित्वका निर्वाह कैसे कर रहे हैं

हम अन्यत्र श्री मॉण्टेग्युके नाम भेजा गया वाइसराय महोदयका तार प्रकाशित कर रहे हैं, जिसमें उन्होंने सैनिक शासनके दौरान पंजाबकी स्त्रियोंके साथ किये गये दुर्व्यवहारसे सम्बन्धित श्रीमती सरोजिनी नायडूके[1] आरोपोंका खण्डन किया है। श्रीमती नायडूने उसका जो जोरदार उत्तर दिया है, वह भी प्रकाशित किया जा रहा है। परमश्रेष्ठ द्वारा कही गई हर बातसे सिर्फ जनताकी इसी धारणाको बल मिलता जान पड़ता है कि उन्हें [वाइसराय महोदयको] जो भारी जिम्मेदारी सौंपी गई है, वे उसके सर्वथा अनुपयुक्त हैं। श्रीमती नायडूने वाइसराय महोदयके रवैयेकी भर्त्सना करते हुए जो-कुछ कहा है उससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहना चाहता; लेकिन मैं पाठकोंका ध्यान इस बातकी ओर आकृष्ट करना चाहूँगा कि श्रीमती नायडू द्वारा लगाये गये कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण आरोपोंकी वाइसरायने किस तरह उपेक्षा कर दी है। उन्होंने वेश्याओंके बयानको अस्वीकार कर दिया है, क्योंकि दुर्भाग्यसे वे एक खोटे पेशेमें लगी हुई हैं। अगर हम इसे उचित भी मान लें तो परमश्रेष्ठ मनियाँवालाकी उन स्त्रियोंके बयानके बारेमें क्या कहेंगे जिनके चरित्रपर, जहाँतक मैं जानता हूँ, किसीने अँगुली नहीं उठाई है। मैं यहाँ मंगल जाटकी विधवा, गुरदेवीका बयान ज्योंका-त्यों दे रहा हूँ। इस कथनकी पुष्टि अन्य बहुत-सी स्त्रियोंने भी की है। यह है वह बयान:

> मार्शल लॉके दौरान एक दिन श्री बॉसवर्थ स्मिथने हमारे गाँवके आठ सालसे ऊपरकी अवस्थाके सभी आदमियोंको, जो जाँच चल रही थी उसके सिलसिलेमें, बँगलेपर इकट्ठा किया। लोग जिस वक्त बँगलेपर इकट्ठे थे, श्री बॉसवर्थ उसी बीच हमारे गाँव आये और अपने मर्दोंके लिए खाना लेकर बँगलेकी ओर जाती हुई औरतोंको रास्तेसे लौटा लाये। गाँव पहुँचकर वे गली-गलीमें जाकर सभी औरतोंको घरसे बाहर निकल आनेका आदेश देते हुए

1. १८७९–१९४९; कवयित्री, देशभक्त, कांग्रेसकी नेता और गांधीजीकी निकट-सहयोगिनी।

> घूमने लगे। वे खुद भी अपनी छड़ीसे कोंच-कोंचकर औरतोंको बाहर निकाल रहे थे। उन्होंने हम सबको गाँवके दायरेके निकट लाकर खड़ा करवाया। औरतोंने उनके सामने हाथ जोड़ लिये। उन्होंने कुछ औरतोंको छड़ीसे पीटा, उनपर थूका और गन्दीसे-गन्दी गालियाँ दीं जो जबानपर नहीं लाई जा सकतीं। उन्होंने मुझे दो बार छड़ी मारी और मेरे मुँहपर थूका। उन्होंने जबरन सभी औरतोंके चेहरे बेपर्दा कर दिये, अपनी छड़ीसे उनके बुरके हटा दिये।
>
> उन्होंने हमें "गधी, कुतिया, मक्खी, सूअर" इत्यादि कहा और बोले, "तुम अपने खाविन्दोंके साथ एक ही बिस्तरपर लेटी थीं, फिर तुमने उनको शरारतके लिए जानेसे क्यों नहीं रोका? अब पुलिसके सिपाही तुम्हारे सुत्थनोंकी जाँच करेंगे।" उन्होंने मुझे एक लात भी मारी, और हमसे मुर्गी बननेको कहा।
>
> हमारे साथ यह दुर्व्यवहार, जब हमारे मर्द बँगलेपर थे, उस समय उनकी अनुपस्थितिमें किया गया।

अगर ऊपर बताये गये तथ्य सही हो तो इससे अधिक क्रूरतापूर्ण और घृणास्पद व्यवहार और क्या होगा? और इतनेपर भी जिस व्यक्तिने यह अपराध किया है, उसे शायद सरकारी खजानेसे पेंशन मिलेगी। जिज्ञासु पाठकोको, जो बयान इकट्ठे किये गये है, उनमें सम्बन्धित अधिकारियोके दुराचारके प्रमाणस्वरूप बहुत सामग्री मिल जायेगी। ये बयान पहले श्री एन्ड्रयूज द्वारा इकट्ठे किये गये थे। बैरिस्टर श्री लाभसिंह, एम० ए०, को मनियाँवालाकी स्त्रियोसे मिलकर इन बयानोकी पुष्टि करनेके लिए खासतौरपर नियुक्त किया गया। उन्होने एक प्रकारसे सार्वजनिक जाँच की ही व्यवस्था कर डाली, जिसमे कोई भी व्यक्ति शरीक हो सकता था।

जब श्री मॉण्टेग्युका ध्यान इन बयानोकी ओर आकृष्ट किया गया तो उन्होने बडी फुर्तीसे श्रीमती सरोजिनी नायडूको उनकी तथाकथित गैरजिम्मेदाराना बातके लिए फटकार बता दी, और इसी कारण श्री मॉण्टेग्युने शानमे आकर जाँचका आदेश दे डाला। लेकिन लगता है, वाइसराय महोदयने चुपचाप उनके आदेशोको अनसुना कर दिया है और कोई जाँच नही करवाई है। उन्होने गवाहीका एक नया ही सिद्धान्त स्थापित किया है, जिसके बारेमे आजतक कभी कुछ नही सुना गया, और इसी सिद्धान्तके आधारपर उन्होने यह नियम ही बना दिया है कि वेश्याओकी गवाहीका विश्वास नही किया जा सकता। दूसरे शब्दोमें, वाइसरायके कथनसे जो स्वाभाविक निष्कर्ष निकाला जा सकता है वह यही कि जबतक वेश्याओके दावोका समर्थन किसी औरकी गवाहीके द्वारा नही किया जाता तबतक उन्हे न्याय नही मिल सकता। जो भी हो, स्पष्ट ही श्री मॉण्टेग्युने वाइसरायका स्पष्टीकरण स्वीकार कर लिया है और इस तरह असहयोगको बल प्रदान किया है। क्या भारत क्षण-भरको भी किसी ऐसी सरकारके साथ सहयोग कर सकता है जो अपने अधिकारियो द्वारा भारतीय जनताके प्रति किये गये ऐसे बर्बर व्यवहारको भी क्षमा कर दे?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६–१०–१९२०

१८३. हिन्दू-मुस्लिम एकता

इसमे सन्देह नही कि असहयोगकी सफलता जितनी अहिंसापर निर्भर करती है उतनी ही हिन्दू-मुस्लिम एकतापर। इस सघर्षमे इन दोनोकी बड़ी कड़ी कसौटी होगी और अगर वह उसमे टिकी रही तो विजय निश्चित है।

आगरामे उसकी कठिन परीक्षा हुई और कहा जाता है कि जब दोनो दल न्यायके लिए अधिकारियोके पास गये तो उन्होने उनसे शौकत अली और मेरे पास जानेको कहा। सौभाग्यसे उन्हें पास ही मे इस कामके लिए हम दोनोसे भी ज्यादा उपयुक्त आदमी मिल गया। हकीम अजमलखाँ धार्मिक मुसलमान है और उनपर दोनो ही पक्षोका विश्वास है। हिन्दू और मुसलमान, दोनो ही उनका आदर करते है। वे अपने सहायक कार्यकर्त्ताओके साथ शीघ्र ही आगरा पहुँचे। उन्होने झगडा निपटा दिया और दोनो पक्षोमे फिर पहलेसे भी प्रगाढ मैत्री हो गई। ऐसी ही घटना दिल्लीके पास भी हो गई थी, वहाँ भी हकीमजीका सत्प्रभाव काम आया और वह घटना जो बढकर भयकर उत्पातका कारण हो सकती थी, वही शान्त हो गई।

लेकिन हकीम अजमलखाँ साहब शान्तिके देवदूतकी तरह ठीक समयपर हर जगह तो नही पहुँच सकते। न शौकत अली या मैं ही। और इस बातकी जरूरत तो है कि इन दोनोंमे फूट डालनेकी जो भी कोशिशे की जायें, उनके बावजूद उनके बीच पूरी शान्ति रहे।

सवाल यह है कि आगरामे अधिकारियोसे सहायताकी प्रार्थना की ही क्यो गई? अगर हम लोग असहयोगको तनिक भी सफल बनाना चाहते है तो जब हम आपसमे लड़ते है उस समय हमें इस बातकी जरूरत नही होनी चाहिए कि हम सरकारसे रक्षा करनेके लिए कहे। यदि हम अपने झगड़ोके निपटारेके लिए या अपराधियोको दण्डित करनेके लिए अन्तमे ब्रिटिश सरकारपर ही भरोसा रखते है तो असहयोगकी यह सारी योजना ही विफल हो जायेगी। हरएक गाँवमें, छोटेसे-छोटे गाँवमे भी, कमसे-कम एक हिन्दू और एक मुसलमान ऐसा अवश्य होना चाहिए जिनका मुख्य कार्य हिन्दू-मुसलमानोमे झगड़े न होने देना हो। लेकिन कभी-कभी तो सगे भाइयोमे भी मारपीटकी नौबत आ जाती है। आरम्भिक अवस्थामे, जहाँ-तहाँ हम भी ऐसा ही करेगे। दुर्भाग्यवश, सार्वजनिक सेवाका कार्य करनेवाले हम लोगोने अपनी जनताके मानसको समझने और उसपर अभीष्ट प्रभाव डालनेका बहुत कम प्रयत्न किया है। और उनमें भी जो ज्यादा झगडालू किस्मके है, उनपर तो ध्यान ही नही दिया है। जबतक हम लोग जनताका आदर नही प्राप्त कर लेते और जबतक उद्दण्डोको अपने वशमें नही कर लेते तबतक इस तरहकी बदमिजाजीकी घटनाएँ कभी-कभी अवश्य हुआ करेंगी। पर ऐसी घटनाओके हो जानेपर हमे सरकारका मुँह ताकना छोड देना चाहिए। हकीमजीने हमे प्रत्यक्ष दिखला दिया कि यह कैसे किया जा सकता है।

जिस एकताके लिए हम लोग चेष्टा कर रहे हैं वह एकता बनावटी नही दिली होनी चाहिए, उन्हे यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जबतक हिन्दू और मुसलमान एक ग्रन्थिमे सदाके लिए बँध नही जाते, तबतक जिस स्वराज्यका सुखस्वप्न देखा जा रहा है वह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नही हो सकता। अस्थायी सन्धिसे यह काम नही सिद्ध हो सकता। पारस्परिक भय भी उसका आधार नही हो सकता। यह मेल दो बराबरकी हैसियत रखनेवालोका मेल होना चाहिए जिसमें दोनों बराबरीकी हैसियतसे मिलते हैं और एक-दूसरेके धार्मिक भावोंका समुचित आदर करते हैं।

यदि 'कुरान' मे मुसलमानोसे कही यह कहा गया होता कि वे हिन्दुओको अपना सहज बरी समझें या हिन्दुओके धर्मशास्त्रमे ऐसी कोई बात होती जिसके कारण हिन्दू लोग मुसलमानोंको अपना चिरकालिक दुश्मन मानते तो मैं इस तरहके मेलको सर्वथा असम्भव समझता और इस ओरसे सर्वथा निराश हो जाता।

यदि हम लोगोकी यही धारणा है कि हम तो अतीत कालसे आपसमे लडते आये हैं, इसलिए भविष्यमे भी लड़ते ही रहेंगे और हमारी यह लड़ाई तभी बन्द हो सकती है जब ब्रिटेन-जैसी कोई शक्तिशाली सत्ता हमारे बीचमे पड़े और हमे बलपूर्वक एक-दूसरेका गला काटनेसे रोके तो हमे यही कहना पडेगा कि हम लोगोने अपने इतिहासका ठीक तरहसे मनन नही किया है। किन्तु हिन्दू या मुस्लिम धर्ममे ऐसी कोई बात नही, जिसके आधारपर हम इस तरहकी धारणा बना ले। यह सच है कि स्वार्थी पुरोहितो या मुल्लाओंने उन्हें एक-दूसरेसे लडनेके लिए उभारा है। यह भी सच है कि ईसाई राजाओंकी तरह मुसलमान बादशाहोंने भी इस्लाम धर्मके प्रचारके लिए तलवारकी सहायता ली थी। पर अब वह समय नही रहा। यद्यपि वर्तमान युगके माथेपर तरह-तरह तरहकी बुराइयोका टीका लगा है तो भी जैसे वह आज जबरदस्ती लादी गई गुलामी सहन करनेके लिए तैयार नही होगा, उसी प्रकार धर्म-प्रचारमे इस तरहका बलात्कार सहन करनेके लिए भी तैयार नही होगा। आजका युग विज्ञानका युग है और इस वैज्ञानिक दृष्टिसे हमने जो-कुछ पाया है उसका शायद सबसे प्रभावकारी लाभ यही है। विज्ञानकी इस भावनाने ईसाई तथा इस्लाम धर्मकी अनेक भ्रामक धारणाओको बिलकुल ही बदल डाला है। इस युगमे एक भी ऐसा मुसलमान नही दिखाई देता जो धर्म-प्रचारके हेतु किसी तरहकी ज्यादती या बलात्कारका समर्थन करता हो। इस समय जिन बातोका प्रभाव मनुष्य-हृदयपर पड़ सकता है उसके मुकाबले तलवारका प्रभाव कुछ नही है।

यद्यपि पश्चिममे लोग रक्तपात, धोखेबाजी, दगाबाजी आदिके प्रयोगमे अब भी प्रवीण हैं और उसका धड़ाधड़ प्रयोग करते हैं तो भी समस्त मानव-समाज धीरे-धीरे उन्नतिके पथपर आगे बढता जा रहा है। और यदि भारत आज हिन्दू-मुस्लिम एकताका प्रश्न हल करके अहिंसात्मक असहयोग द्वारा यानी विशुद्ध आत्म-त्यागके सहारे अपनी स्वतन्त्रता स्थापित कर लेगा तो वह संसारको वर्तमान अँधेरेसे एक नया मार्ग दिखला देगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-१०-१९२०

१८४. एक व्रत

बम्बई
६ अक्तूबर, १९२०

मेंने कइ महिनेके आगे जन्मपर्यंत शुद्ध खादी पहरनेका व्रत लीया है

मोहनदास गांधी

मूल प्रति (जी० एन० २५१३) की फोटो-नकलसे।

१८५. भाषण : सूरतमें[1]

६ अक्तूबर, १९२०

अहमदाबादमे विद्यार्थियोके बीच दिये गये भाषणका सार आपने पढा होगा। उसमे से कितनी ही बाते मै आपसे भी कहना चाहता हूँ। आपके गुरुजनोसे मै शामको[2] बात करूँगा। मै जहाँ जाता हूँ वहाँ विशेषरूपसे विद्यार्थियोके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेकी कोशिश करता हूँ। मै स्वयं भी चार लडकोका पिता हूँ, इसलिए माँ-बापके प्रति पुत्रके कर्त्तव्यको समझ सकता हूँ। कभी मै स्वय पुत्र था और जिन्हे बडा मानकर पूजता हूँ मेरे ऐसे बुजुर्ग आज भी जीवित है। इसलिए मै पिताके प्रति पुत्रोके कर्त्तव्यको भी अच्छी तरह समझता हूँ। पुत्रको ऐसी सलाह दी जा सकती है कि समय पडनेपर वह पिताका भी विरोध कर सके। इसलिए मेरी सलाह परस्पर विरोधी सलाह प्रतीत हो सकती है। मै आपसे जो-कुछ कहने जा रहा हूँ, वह मै अपने पुत्रोसे भी कह चुका हूँ। मेरे अनेक पुत्र है और अनेक बच्चे ऐसे है जो बचपनसे ही मुझे सौप दिये गये थे और मैंने जिनका लालन-पालन किया है। अभी कल ही एक ढेढ़ माता-पिताने अपनी बच्चीको[3] मुझे सौपनेकी इच्छा व्यक्त की है। यह बच्ची पहले [कुछ समयके लिए] मेरे साथ रह भी चुकी है। मैंने उसके पितासे कहा कि बहन लक्ष्मीपर से अपना पूरा दावा उठा लेनेपर ही तुम उसको मेरे पास छोड सकते हो। मुझे सौपे गये सब बच्चोके माता-पिताओके साथ मैंने ऐसी शर्त नही रखी थी, तथापि मैंने जिनका लालन-पालन किया है उन्हे मै अपनी ही सन्तान-जैसा समझता हूँ। मै आज विद्यार्थियोको जो कडवी सलाह दे रहा हूँ वैसी कडवी सलाह मैंने अपने पुत्रोंको भी दी है। आप लोग उचित अवसरपर मेरा, अपने माता-पिता तथा समस्त

१. 'सार्वजनिक शिक्षा-संस्था' द्वारा संचालित स्कूल और कालेजके विद्यार्थियोंके सम्मुख।

२. इस बातचीत अथवा भाषणकी कोई रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है।

३. देखिए "पत्र : मगनलाल गांधीको", ९-१०-१९२०।

जगत्का विरोध कर सकते हैं। यदि मैं ऐसा न कहूँ तो मैं धर्मके जिस स्वरूपको समझता हूँ वह लुप्त हो जायेगा। यदि आप धर्मका विकास करना चाहते हो तो जिस समय हृदगत भावनाएँ स्फुरित हो उठे उस समय इस यज्ञमे माँ-बाप, सगे-सम्बन्धियो आदि सब लोगोका बलिदान करना पडे तो करे, जैसे प्रह्लादने अपने पिताका बलिदान दिया। यद्यपि प्रह्लादने अपने पिताके विरुद्ध अँगुलीतक नही उठाई तथापि उसने हिरण्यकशिपुके विष्णुका भजन न करनेके उस आदेशको, अपनी अन्तरात्माका विरोधी होनेके कारण, माननेसे इनकार कर दिया और कहा: "इस समय तो मैं जो आपका भी पिता है बल्कि आपके पितामहका भी पितामह है, उसके आदेशको सिरपर चढाऊँगा।"

आपके माँ-बाप आपसे स्कूल न छोड़नेके लिए कहते है जब कि मै आपको स्कूल छोड़नेकी सलाह देता हूँ। मैं आपसे जो कह रहा हूँ यदि उसे आप अपने धर्मके रूपमें पहचान सके तो आप अपने माता-पितासे विनयपूर्वक कहें कि हम इन स्कूलोमे नही जा सकते। यदि आपकी भावनाएँ सचमुच उद्वेलित हो उठी है तो यह आपका कर्त्तव्य हो जाता है। मै ऐसी सलाह किसलिए दे रहा हूँ? मैं जो कह रहा हूँ वह दस-बारह वर्षके विद्यार्थियोपर लागू नही होता। उन्हे अभी स्वतन्त्र रूपसे विचार करनेका अधिकार प्राप्त नही हो सकता। उन्हे तो माता-पिताके आदेशानुसार ही चलना चाहिए। हमारे शास्त्रोका कथन है कि पाँच वर्षतक बालकको लाड-प्यारसे रखा जाये, दस वर्षतक उसकी ताडना की जाये, ताडनाका अर्थ लकडीसे मारना नही, ज्ञान सहित उसे समझाना-बुझाना है। और फिर सोलह वर्षका हो चुकनेपर पुत्रको अपना मित्र समझा जाये। मै नवयुवकोको ऐसी सलाह किस लिए देता हूँ? अनेक वर्षोसे मैं सरकारके साथ, ब्रिटिश साम्राज्यके साथ सहयोग करता आया हूँ। मुझसे अधिक अच्छा सहयोग किसीने नही किया होगा, क्योकि उससे अधिक सहयोग देना लगभग असम्भव था। मेरे इस सहयोगमे कुछ भी स्वार्थ न था। मुझे अपने भाई अथवा अपने पुत्रोंको नौकरी नही दिलवानी थी, मुझे किसी तरहकी सम्मानित पदवी अथवा ओहदा प्राप्त करनेकी कोई अभिलाषा न थी। इसलिए सरकारके साथ मेरा सम्बन्ध बिलकुल निर्मल था। मै सहकार धर्मको अपना कर्त्तव्य समझकर निभाता था। मै इस सरकारका सदैवसे सम्मान करता आया हूँ सो उसकी दण्ड देनेकी शक्तिसे भयभीत होकर नही; बल्कि यह समझकर कि शासनका सम्मान करना मेरा कर्त्तव्य है। इसका एक उदाहरण मैं आपके सामने प्रस्तुत करूँगा।

जिस समय मेरे यहाँ तीसरे बच्चेका जन्म हुआ उस समय चेचकका टीका लगानेका सवाल उठा। मै मानता हूँ कि चेचकका टीका लगवाना ठीक नही है; तथापि १८९७ मे मैंने बच्चेको चेचकका टीका लगवाया। यदि बालकको अमुक समयतक टीका न लगवाया जाये तो दण्ड दिया जाता है। यह कानून तो केवल विधि-पुस्तकमे ही है। इसे जितनी मान्यता दी जानी चाहिए जनता उतनी मान्यता प्रदान नही करती। मुझे लगा कि या तो मुझे इस कानूनका सम्मान करना चाहिए अथवा सरकारसे फैसला कर लेना चाहिए अर्थात् इसकी सादर अवज्ञा करनी चाहिए, क्योकि यह

कानून जिस लोकमतको अभिव्यक्त करता है वह मुझे मान्य नहीं है। लेकिन जबतक इसमें संशोधन नहीं किया जाता तबतक उसके अधीन रहना ही मुझे उचित जान पड़ा और इसलिए मैंने बालकको टीका लगवाया। लेकिन बादमें इसी टीकेका विरोध करनेका प्रसंग आया। दक्षिण आफ्रिकामें हम जेल गये, जेलके कानूनके मुताबिक हमें टीका लगवाना ही चाहिए। तब हमने असहयोग किया, सादर अवज्ञा की। हमने सरकारसे कहा कि वह चाहे तो हमें ज्यादा समयतक जेलमें रख सकती है लेकिन हम टीका नहीं लगवायेंगे। सरकारको आखिरकार यह आदेश देना पड़ा कि यदि हमें इसमें धर्मके आधारपर कुछ आपत्ति है तो हम चाहें तो टीका न लगवायें।

मैंने किस हदतक सहयोग किया है? सरकारकी ओरसे प्रस्तुतकी जानेवाली छोटी-छोटी असुविधाओंको दरगुजर करने और निभा लेनेको मैं सुन्दर धर्म मानता हूँ। मैं न तो इतना भोला हूँ और न इतना पाखण्डी ही जो यह कहूँ कि स्वराज्य-प्राप्तिके बाद सतयुगका प्रादुर्भाव होगा। हमारे स्वराज्य प्राप्त कर लेनेके बाद भी पाखण्ड, चोरी और डायरशाहीका दबदबा रहेगा। यह स्वराज्य सतयुगका नहीं बल्कि कलियुगका ही होगा, यह अंग्रेजों और अरबों-जैसा होगा, लेकिन उस समयकी डायरशाही सह्य होगी। सत्ता हमारे हाथमें होगी; इसलिए हममें से ही अधिकांश इसका दुरुपयोग करेंगे अथवा करने देंगे। लेकिन आज जो बात हुई है वह ऐसी बात नहीं है। यह हमारी इच्छाके विरुद्ध किया गया है। वाइसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड अथवा लॉर्ड सिन्हाको अगर हमने नियुक्त किया होता तो वह एक अलग बात होती। हमारा विरोध उनके रंगसे नहीं बल्कि काम करनेके ढंगसे है, जिस तरह मेरे साथी दयालजी अथवा कल्याणजी अन्याय करें तो मैं उनका विरोध करूँगा, यहाँतक कि उनके हाथसे दूधतक नहीं लूँगा। भाई एन्ड्रयूज, मुहम्मद अली और शौकत अली मेरे सहोदर हैं, लेकिन अगर सरकार उन्हें भी वाइसरायके रूपमें नियुक्त करे तो यह मुझे स्वीकार्य नहीं होगा, सिर्फ इसलिए कि वे सरकार द्वारा नियुक्त किये जायेंगे। सत्ता हमारी तब हो जब हमें विश्वास हो कि हम लॉर्ड चेम्सफोर्डको भी वाइसराय नियुक्त कर सकते हैं, और विश्वास उठ जानेपर उन्हें हटा भी सकते हैं। आज समस्त हिन्दुस्तान लॉर्ड चेम्सफोर्डको त्यागपत्र देनेके लिए कह रहा है, तथापि वे उस पदपर बने हुए हैं। मैं तो, जिस तरहकी सरकारका मैंने वर्णन किया है, उसीसे सहयोग करना चाहूँगा। इस समय ऐसी सरकार न होनेके कारण मैं उससे असहयोग करना चाहता हूँ।

मैंने सरकारी शासनका लेन-देनका खाता देखा तो यह समझमें आया कि उसने लिया ही लिया है, दिया बहुत कम है। सुधारोंमें भी कुछ दिया नहीं गया, छीना ही गया है। सरकारकी सत्ता मशीनगनपर नहीं बल्कि उसके प्रति हमारे मोहपर टिकी हुई है। ये मोह तीन प्रकारका है। द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरने[1] जिन्हें 'माया-मृग' कहा है वे हैं: विधान परिषदोंका मोह, अदालतोंका मोह और शिक्षाका मोह। सम्मानित ओहदों और पदवियों आदिकी बातको तो मैं बिलकुल ही नहीं उठाता, क्योंकि इनको पानेवाले व्यक्ति बहुत ही कम हैं। लेकिन इन तीन प्रकारके मोहोंमें तो हममें

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बड़े भाई जिन्हें 'बड़ो दादा' कहा जाता था।

से बहुत सारे लोग पड़े हुए हैं। हमारे विद्वान् नेता श्रद्धेय लाला लाजपतराय भी इस मोहसे ग्रस्त हैं। सदैव पूजनीय मदनमोहन मालवीय भी यह मानते हैं कि मेरी मति फिर गई है और मैं सबको गलत रास्तेपर ले जा रहा हूँ। उनकी धारणा है कि विधान परिषदोंमें जाना धर्म है, और स्कूलोंमें जाना भी धर्म है। मेरे मतानुसार विधान परिषदों और अदालतोंमें जाना पाप है, स्कूलोंमें जाना तो महापाप है।

मैं वकीलोंको नहीं समझा सकता, इसका कारण है। मायाके प्रति उनके मोहसे मैं भली-भाँति परिचित हूँ। बाल-बच्चों, आरामकुर्सियों और मोटरकारका त्याग मुश्किल है; लेकिन विद्यार्थीके लिए ऐसी कोई बात नहीं है। हम उसे जिस ओर मोड़ना चाहें मोड़ सकते हैं। यदि विद्यार्थी गुलामीकी शिक्षा ले और नौकरीके लिए स्कूलोंमें जाते ही रहे और मैं इन्हें न रोकूँ तो साम्राज्य निर्मूल नहीं होगा। मैं उसकी जड़ काटना चाहता हूँ। विद्यार्थियोंकी मार्फत साम्राज्यकी जड़ोंको पानी मिलता है; यह जल नायगरा फाल्स — गंगा, जमुना और ब्रह्मपुत्रके एकत्रित जलके समान है। आप संकेत-मात्रसे समझ जायेंगे कि यह भ्रामक शिक्षा, गुलामीकी विद्या हमें नहीं चाहिए। हम जबतक गुलामीसे मुक्त होनेके इस ककहरेको नहीं सीखते तब-तक सब व्यर्थ है। मलिन पात्रमें दूध उँड़ेलनेसे पात्र तो साफ नहीं ही होगा, दूध भी मलिन हो जायेगा। जबतक हम गुलामीके मैले पात्र बने हुए हैं तबतक हमारी सारी शिक्षा बेकार है। आकाशमें अगर देवता बैठे हुए हों और वे देखें कि हिन्दुस्तान का पात्र मैला है, तो वे भी शिक्षाकी बरसातको वृथा मानेंगे। इसलिए पहले साफ बनो। यदि आप कानून अथवा चिकित्सा-शास्त्रकी शिक्षा प्राप्त नहीं करते तो इससे हिन्दुस्तान रसातलको नहीं चला जायेगा। गुलामीसे वह रसातलको चला जायेगा और तब भारतको मनुष्योंका नहीं, जानवरोंका देश माना जायेगा। अगर कोई व्यक्ति किसीके भयसे, बड़े साम्राज्यके भय अथवा दबावसे, अपने मनोगत भावोंको अभि-व्यक्त न कर सके तो इसे ही गुलामी कहते हैं। इससे छुटकारा पाना हमारा पहला सबक है। जलियाँवाला हत्याकाण्ड और इस्लामके अपमानसे मुझे जो धक्का लगा है, मैं चाहता हूँ वैसा धक्का सबको लगे।

आज हिन्दुओंको दो तरहके संकटोंका सामना करना है। यदि मुसलमान गुलाम बन जायेंगे तो उनकी मार्फत हिन्दुओंको गुलाम बनाया जायेगा। यह एक त्रैराशिकका उदाहरण है। मुझे हिन्दू धर्मका रक्षण करना हो, उसकी छायामें बैठकर ईश-भजन करना हो तो मुसलमानोंकी मदद करना मेरा कर्त्तव्य है। मुसलमान यदि भविष्यमें अत्याचार करें तो मैं उनसे कहूँगा, "भाई, पहलेके दिनोंको याद करो।" आप भी कह सकते हैं हममें से गांधी नामका एक व्यक्ति — चाहे वह कैसा भी था — हमारे लिए कुछ कर गया। तथापि इससे भी बात न बने तो आप लोग लड़ लेना। मैं तो मर्द बननेके लिए कहता हूँ। जो व्यक्ति लाठी उठाकर लड़ते हुए मरना चाहता है उसकी अपेक्षा लाठी छोड़कर मरनेको तैयार व्यक्तिमें अधिक मर्दानगी है। लाठीके सहारे अथवा डोलीमें बैठकर हिमालय चढ़नेवाले मनुष्यकी बनिस्बत इन चीजोंका सहारा लिए बिना ही हिमालयपर चढ़नेवाले व्यक्तिके फेफड़े कितने मजबूत होने

चाहिए। हिमालयपर चढ़नेके बाद वह भारतवर्षकी ओर मुँह करके खिलखिला उठेगा। मेरे पास बैठे मेरे भाई (मुहम्मद अली) इसे दुर्बलताका अस्त्र मानते हैं। उनकी धारणा सही हो अथवा गलत लेकिन मेरे विचारानुसार तो तलवारके न्यायका पदार्थ-पाठ भी इसीसे पढा जा सकता है। मैंने भाई शौकत अलीसे कहा कि मुसलमानोमे कुरबानी देनेकी ताकत नही है। मरनेकी ताकत आनेपर ही वे देख सकेंगे कि तलवारकी जरूरत नही है। तथापि जब आवश्यक जान पडे तब आप प्रसन्नतासे तलवार निकाल सकते हैं। जिस साम्राज्यने इस्लामके साथ विश्वासघात किया है, जिसने भारतको पेटके बल रेंगनेको विवश किया है, भले ही एक ही व्यक्तिको इस तरह रेगना पडा हो, जिसने भारतीय स्त्रियोके बुरकोको खीचा — पजाबमे ऐसा ही हुआ — उस सरकारके साथ सहयोग हो ही कैसे सकता है? देश-भरमें चाहे कितनी ही पक्की सड़के क्यो न बन जाये, देशमे चाहे कितनी ही शान्ति क्यो न हो, हम उनकी अपेक्षा खूनकी नदियाँ पसन्द करेगे। भले ही रेलें न रहे, स्टीमर भी न रहें, सब तरहकी व्यवस्था खत्म हो जाये — मेरे लेखे तो ये सब वर्तमान स्थितिसे बेहतर है। मेरी भावनाओको जितनी ठेस पहुँची है, अगर उतनी ही आपको भी पहुँची है तो माँ-बापके असहमत होनेपर भी विद्यार्थी स्कूलोंका परित्याग कर सकते है। एक विद्यार्थीके पिताने कहा कि राष्ट्रीय स्कूलकी स्थापना की गई है, वह कैसे चलता है — यह देखनेके बाद ही वे अपने बच्चेको वहाँ भेजेगे। राष्ट्रीय स्कूलकी इस तरह परीक्षा करनेके बाद बच्चोको सरकारी स्कूलोसे उठा लेनेवाले माता-पिता देशकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिमें सहायक सिद्ध नही होगे। विद्या मिले अथवा न मिले, उसकी परवाह नही होनी चाहिए। किसी व्यक्तिको उसकी पराधीनावस्थामे आजादीकी बात सिखाई तो जा सकती है लेकिन उसे प्राप्त करनेकी विद्या कदापि नही सिखाई जा सकती। मै जो-कुछ कह रहा हूँ, उसे अगर आप ठीक-ठीक समझ लेते है तो आपको सब-कुछ छोड देना चाहिए, बादमें सब-कुछ मिल जायेगा। यह विधिका विधान है कि जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक भक्ति करता है, उसे सब-कुछ मिल जाता है।

अगर सब विद्यार्थी सूरतके स्कूलोंसे निकल आये तो उसका परिणाम कितना शुभ हो? उस समय तो प्रोफेसर और शिक्षक आपसे पूछने आयेंगे कि आप किन शर्तोंपर स्कूलोंमें आना चाहते हैं? आप कहना कि सरकारके साथ सम्बन्ध छोड़कर और उससे प्राप्त होनेवाली मदद न लेकर हम भिक्षा माँगकर भी स्कूलके खर्चेकी व्यवस्था करेगे। यह असली न्याय है। प्राचीन कालमें विद्यार्थी गुरुके पास समिधा लेकर जाया करते थे। गुरुसे कहते थे कि हम आपके लिए जगलसे लकडियाँ लायेंगे, आपके पशुओकी देखभाल करेंगे, आप हमे दीक्षा दीजिए। पूनामें विद्यार्थिगण ऐसा एक अनाथ विद्यार्थी-आश्रम भिक्षा-वृत्तिसे चलाते है। आप भी ऐसा करे, लेकिन आजकलके अपने स्कूलोमें जाकर अपना मनुष्यत्व न खो बैठे। आपसे तो बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

यहाँ सूरतमे ही इस तरहकी दो महान् सस्थाएँ है। उनमें पढनेवाले विद्यार्थी बहुत सुन्दर काम कर सकते हैं। सूरत अब बदसूरत बन गया है। मै सूरतसे आत्म-सम्मान-

की आशा रखता हूँ, "हम विद्या बिना रहेंगे अथवा अपनी शर्तोंके अनुसार पढ़ेंगे।" यदि समस्त विद्यार्थी इतने आत्मबलका परिचय दे तो एक महीनेके भीतर मनोनुकूल फलकी प्राप्ति हो। तथापि अगर दो-चार विद्यार्थियोको ही मेरा यह सुझाव जँचे तो कमसे-कम वे लोग आज ही से स्कूल जाना छोड़ दे। उनसे मै कहूँगा कि आपने स्वराज्य-प्राप्तिकी दिशामे एक कदम उठाया है और यह आपके देशप्रेमकी एक अत्यन्त मुखर अभिव्यक्ति है। आपको घरसे मदद न मिले तो मजदूरी करे, हाथ-पैर हिलाना न सीखा हो तो हिलाना सीखें लेकिन गुलामीके बन्धनमे न पड़े। विद्यार्थियो! अगर आप भारतके लिए स्वराज्य चाहते है तो आपको स्कूलो, अदालतो और विधान परिषदोके मोहका परित्याग करना चाहिए। स्वराज्य-प्राप्तिकी दिशामे सबसे पहला और अन्तिम काम अपने आपको निर्मल बनाना है। जिसको दाँत दिये गये है उसको चावल देनेवाली शक्ति सरकार नही है, बल्कि वह तो सरकारोकी भी सरकार है। यह हमारा पहला पाठ है, इसे हम भूल गये है। मै तो सेठ अथवा सरकारके चावलको स्वीकार नही करता। सरकारका अस्तित्व होते हुए भी उडीसामे हजारो अकाल-पीडित काल-कवलित हो गये। भारतमें अनेक सेठोके बावजूद हजारो अकाल-ग्रस्त लोग हरिशरण गये। आप ईश्वरका नाम लेकर, धैर्यपूर्वक, किसी भी चीजकी परवाह किये बिना — कोई भी हिसाब-किताब किये बिना — गुरु और माता-पिताको नोटिस भेजिए कि हमसे स्कूल नही जाया जाता। चूँकि मैने कहा है सिर्फ इसीसे उत्तेजित होकर नही; मै तो आपके हृदय और बुद्धिको सतेज कर रहा हूँ। यदि आपकी बुद्धि और हृदय इस बातको स्वीकार नही करते तो किसी भी विद्यार्थीको यह अधिकार नही कि वह अपने गुरुजनोकी अवमानना करे। ऐसा तो सिर्फ वही विद्यार्थी कर सकता है जिसका हृदय मेरी तरह ही धधक रहा हो। शराबी माँ-बापसे शराबकी लत छुडवानेके लिए बालकको उनकी विरासतका, घर-बारका, उनके स्नेही-आँचलका त्याग कर देना चाहिए। यदि आपको लगे कि आपको जो शिक्षा मिल रही है सो गुलामीकी छायामें मिल रही है तो माँ-बापकी आज्ञाके विरुद्ध जाकर कलसे ही आप इस यज्ञमे अपनी आहुति दे।

प्रश्न: महात्माजी, क्या आप मानते है कि आपके गिरफ्तार होने अथवा आपको देशनिकाला दिये जानेपर देशमें शान्ति बनी रहेगी?

उत्तर हाँ, और शान्ति न रही तो समझूँगा कि हम नालायक है। मैने तलवार छोड़ी सो इस कारण नही कि मुझे वह चलानी नही आती अथवा मै शक्तिहीन हूँ। आज भी मै तलवारको तोडनेकी शक्ति रखता हूँ। नुकीली कटारको अगर किसी व्यक्तिके पेटमे भोकना चाहूँ तो भोक सकता हूँ। तथापि मैने इसे त्याग दिया है, क्योकि इससे कुछ लाभ नही है। मेरे भाई शौकत अली अथवा भाई मुहम्मद अलीके गिरफ्तार कर लिये जानेपर देशमे शान्तिका वातावरण न रहे तो मै तो यही मानूँगा कि हिन्दुस्तानके लोग अबतक अहिंसाको नही समझे है। ऐसी अशान्ति आयरलैंडमे हो सकती है, अरब देशमे हो सकती है। वहाँ सबको तलवार रखनेका अधिकार है और सब लोग उसका प्रयोग करना जानते है। मै अगर उन लोगोंके

बीचमें होऊँ और सरकार मुझे गिरफ्तार करना चाहती हो तो वे सरकारसे कहेंगे कि बने तो लडकर ले जाओ। लेकिन यहाँ ऐसा कुछ नही है। यहाँ शान्ति स्थापित न हो तो मुझे हिमालय जाना पडे। मेरे लिए हिंसा नही होने देनी चाहिए। लेकिन ऐसी शक्ति हिन्दुओंमें नही है, मुसलमानोमे भी नही है। मैंने इलाहाबादमें मुसलमान भाइयोसे कहा था कि मैंने आज आपके सामने जो विचार रखे है वे नये नही है। सारे शास्त्रोंमें इनका उल्लेख पाया जाता है लेकिन आजतक हम उन्हे भूले हुए थे। अगर आपको ऐसा लगता हो कि आप आज ही तलवारसे इस्लामकी रक्षा कर सकते है तो आप तलवार खीच सकते है। आप चाहें तो वाइसरायकी चुपचाप हत्या कर सकते है अथवा करवा सकते हैं, लेकिन इससे इस्लामकी रक्षा नही होनेवाली; इससे तो मार्शल लॉ लागू हो जायेगा। इसकी भी कोई चिन्ता नही लेकिन इससे हिन्दुस्तान बिलकुल दब जायेगा। मैं इस समय हिन्दुस्तानको जिस मार्गपर चलनेके लिए कह रहा हूँ वह बलवानोंका नही अपितु दुर्बल व्यक्तियोका ही मार्ग है। यदि मुसलमानोमें वैसा बल होता तो वे मुझसे कहते कि हमें तलवार चलानेसे रोकनेवाला तू कौन होता है? हमें तो कुरान शरीफकी ओरसे ऐसा ही आदेश मिला हुआ है। हिन्दुओंमे भी मेरी बातको न माननेवाले व्यक्ति पड़े हुए है। तथापि यह बात ध्यान देने लायक है कि हिन्दुस्तानने मेरी बातको स्वीकार कर लिया है। जलियाँवाला बागमे जो लोग मारे गये वे शहीद होनेके इच्छुक अथवा वीर न थे। ऐसा होता तो जब डायरने उद्धततापूर्ण व्यवहार किया तब या तो वे तलवार खीच लेते अथवा अन्य किसी उपायसे उसका सामना करते; या छाती तानकर खड़े-खडे प्राण देते; भागते नही। इमाम हुजरत जो कर गुजरे वैसा काम करनेवाले हिन्दुस्तानमें इस समय न तो सिख है, न गोरखे ही। बनिये तो हो ही नही सकते। और जहाँतक राजपूतो-का सवाल है वे भी अब बनिये हो गये है। फलतः मेरे गिरफ्तार किये जानेपर हिन्दुस्तानमे अशान्ति हो तो मैं कहूँगा कि आप हार गये क्योकि [शान्ति बनाये रखनेकी] आपमे ताकत नही है। अगर आप लोग आजसे स्कूल जाना नही छोड सकते तो जिस दिन मैं पकडा जाऊँ उस दिनसे छोड़ दीजियेगा। वकील वकालत करना, सिपाही सिपाहीगिरी और सेना अपने हथियार छोड़ दे; इस सबके अतिरिक्त मैं एक किसान हूँ, किसान उस दिनसे कहें कि वे कर नही देंगे। जिन दिन ऐसा होगा उसी दिन हमारा उद्धार होगा।

कदाचित् हम तीनोंको एक साथ ही घसीटा जायेगा। अबतक मैं भगवान्से यह प्रार्थना करता था कि इन दोनोको एक साथ ही पकड़ा जाये, अब तीनोके लिए प्रार्थना करता हूँ। इसी कारण मैंने शौकत अलीको अकेले दिल्ली जानेसे मना किया क्योकि मेरी अभिलाषा तो यही है कि अगर हम पकड़े जायें तो एक साथ ही पकडे जायें। सरकारके सिरपर अगर पागलपन सवार होगा तो वह हम तीनोंको एक साथ अथवा हम तीनोमें से जो उसे अधिक गुनहगार लगेगा, उसे गिरफ्तार करेगी।

सरकार हमें तलवारसे दबा नही सकती। मुझे सरकारसे यह कहनेका अधि-कार होना चाहिए कि अगर वह गैरकानूनी ढगसे शासन करेगी तो हम उसका

बोरिया-बिस्तर उठाकर बाहर फेंक देंगे। आजतक मनमें कुछ और मंचपर कुछ तथा शान्ति कहकर अशान्ति उत्पन्न करनेकी नीतिका अनुसरण किया जाता था; वह बात अब खत्म हो गई है। इन दोनो भाइयोके प्रति मेरे मनमे इतनी श्रद्धा तो है ही कि जिस दिन वे अशान्ति पैदा करना चाहेंगे उस दिन पहलेसे ही नोटिस दे देंगे कि आजसे किसी भी अंग्रेजकी जानकी खैर नही। इस विषयमे आप इन दोनो भाइयोसे पूछ लेना; आप चाहें तो इनसे अलग-अलग पूछ सकते है और मुझसे भी। तीनोंका उत्तर एक ही हो तो उसे स्वीकार कर लेना और हमारे गिरफ्तार किये जानेपर आप सब स्वयसेवक बनकर शान्ति स्थापित करनेके लिए अपने-अपने घरोसे निकल पडना, नही तो मार्शल लॉ लागू हो जायेगा। उसकी तो कोई चिन्ता नही है; चिन्ता तो इस बातकी है, हममें संघर्षको इतनी देरतक टिकाये रखनेकी शक्ति है अथवा नही कि सरकारको मजबूरन मार्शल लॉ जारी रखना पडे।

महात्माजी, आप अंग्रेजी स्कूलोंसे बच्चोंको उठा लेनेकी बात करते हैं लेकिन नगरपालिकाकी प्राथमिक पाठशालाओंसे बच्चोंको उठा लेनेकी सलाह क्यों नहीं देते?

नगरपालिकाएँ भी सरकारके अनुदानको छोडकर और उससे सम्बन्ध तोड़कर स्वतन्त्र हो सकती हैं। नडियादकी नगरपालिका ऐसा ही कदम उठानेवाली है।

आप जब सरकारी स्कूलों आदिको छोड़नेकी बात करते हैं तब रेलगाड़ी और पानीके नल आदिके लाभको त्याग देनेके लिए क्यों नहीं कहते?

मै प्रेक्टिकल आइडियेलिस्ट[1] हूँ, इसलिए जनताके सामने सिर्फ वही बात रखता हूँ जो सम्भव हो। मेरे असहकारके सम्बन्धमें श्रीमती बेसेंटने जब यह सुझाव दिया कि सरकारको गांधी और शौकत अलीकी डाक बन्द कर देनी चाहिए, उन्हे रेलगाडीके टिकट जारी नही किये जाने चाहिए आदि-आदि, तब अपने भाईको मैने बधाई दी। मेरे आसपास जो भाई बैठे हुए थे उनसे मैने कहा कि अगर ऐसा प्रसग आया तो वह नि:सन्देह एक शुभ दिन होगा। इससे खिलाफत अथवा असहयोगके काममे कोई रुकावट नही आयेगी।

महात्माजी, चूंकि हमारे यहाँ प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य है, हम किसीसे स्कूल छोड़नेके लिए कैसे कह सकते हैं?

शिक्षा अनिवार्य है लेकिन स्कूल अनिवार्य नहीं है।

असहयोगके सम्बन्धमें देशी राज्योंमें क्या करना चाहिए?

देशी राज्यमें रहनेवाले लोग तो गुलामोके गुलाम है। फिलहाल तो सीधे गुलामोकी ही बात करे। तथापि वहाँ कोई अपने-आप ही स्कूल अथवा कालेज जाना छोड दे तो यह एक भिन्न बात है। वहाँ आन्दोलन करने मैं नही जाऊँगा; इससे देशी राज्योकी विषम स्थिति हो जायेगी। लेकिन अगर बडौदाके गायकवाडको यह लगे कि अपनी मुसलमान जनताके धर्मकी रक्षाके लिए मेरा राजपाट छोड़ना उचित है तो यह अलहदा बात है।

१. व्यवहारनिष्ठ आदर्शवादी। मूलमें अंग्रेजी शब्द ही है।

सरकार अगर राष्ट्रीय स्कूलको बन्द करवा दे तो लोगोंको क्या करना चाहिए ?

यह सरकार चतुर सरकार है, इसलिए ऐसा कदम नही उठायेगी और अगर उठायेगी तो इससे राष्ट्रीय शिक्षणमे कोई रुकावट नही आयेगी। इसके विपरीत जो विद्यार्थी और शिक्षक आज सरकारी स्कूलोंका त्याग नही कर रहे हैं, वे लोग भी उसी दिनसे उनका त्याग कर देंगे और शिक्षक घर-घर जाकर विद्यार्थियोको पढायेंगे। कोई भी सरकार इसे नही रोक सकती और अगर रोके तो इसका अर्थ होगा कि हिन्दुओंको 'गीता' नही पढनी चाहिए क्योकि उसमें युद्धकी चर्चा की गई है तथा मुसलमानोको 'कुरान' नही पढनी चाहिए। सरकार कदापि ऐसा कदम नही उठा सकती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-१०-१९२०

१८६. भाषण : रोहतकमें

८ अक्तूबर, १९२०

मुझे याद है कि कलकत्तेमें गिरफ्तार किये गये मौलवियोमें से एक मौलवी मुझसे मिले थे और उन्होंने बताया था कि उनके विरुद्ध मुकदमा चलाया जानेवाला है। उन्होंने मुझसे और शौकत अलीसे अनुरोध किया था कि जब उन्हे गिरफ्तार किया जाये तब मैं और शौकत अली पानीपत आयें। सो अपने वादेके अनुसार मै शौकत अलीके साथ यहाँ आ गया हूँ। जहाँतक मौलवियोके विरुद्ध लगाये गये आरोपोका सम्बन्ध है, कहते हैं कि उनमेंसे किसीने अंग्रेजोको "पाजी" कहा है। किसीको इस तरह गाली देना बुरी बात है और मुझे तो ऐसे शब्द मुँहसे निकालते हुए भी लज्जा आती है। मैं नही जानता कि यह बात सच है या झूठ, लेकिन यह बुरी बात है। मुझे इस तरह गालियाँ देना पसन्द नही। उनके विरुद्ध दूसरा आरोप यह है कि उन्होंने सरकारको बेईमान कहा; मै कहूँगा कि सरकारने सचमुच ही भारतीयो और तुर्कोको धोखा दिया और श्री लॉयड जॉर्जने ऐसा किया। इसलिए सरकार बेईमान तो है। सरकारने भारतीयोंसे वादा किया था कि महायुद्धके पश्चात् वह उन्हे कुछ नये और खास अधिकार देगी और तुर्क साम्राज्यको सुरक्षित रखेगी। सरकारने अमृतसर और पंजाबके अन्य भागोंमें जो मेहरबानियाँ की हैं, उन सबसे आप भली-भाँति परिचित हैं। आप जबतक बलिदान देनेके लिए तैयार नही हो जाते तबतक स्वशासन कभी नही प्राप्त कर सकते। जबतक आप अपने क्रोधपर विजय प्राप्त नही कर लेते और आपमें एकता नही आ जाती तबतक आपको स्वतन्त्रता नही मिल सकती। सच्ची स्वतन्त्रता जेल जानेमे है। सत्यकी खोजमें आप सबको जेल जाना है और मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि तीस करोड़ लोगोको कैद कर रखने योग्य जगह ही नही है। परिणाम-स्वरूप आप हिन्दुस्तान-भरमें स्वतन्त्र होकर रह सकेंगे। स्वराज्य तभी प्राप्त हो सकता

है, खिलाफतके प्रश्नपर हमारी विजय तभी हो सकती है जब आप एक हो जायेंगे। आप अंग्रेजोके साथ सहयोग करना छोड दे। मेरे कहनेका अभिप्राय यह नही है कि आप किसी अंग्रेजकी हत्या करे; क्योकि तब तो एक-एक अंग्रेजके लिए एक-एक हजार भारतीयोंकी जाने जायेंगी। जनरल डायर और सर माइकेल ओ'डायरने अमृतसरमें यही सिद्ध कर दिखाया है। मै एक अंग्रेजके जीवनके बदले १,००० भारतीयोकी बलि देनेके लिए तैयार हूँ, लेकिन इतना भारी मूल्य चुकाना भी उचित नही है। सरकारी नौकरियोमें जितने भी भारतीय हैं तथा सेनामे जितने भी भारतीय सिपाही हैं, वे सब हमारे भाई हैं। प्रतिमाह दस रुपये पानेके लिए ही हमारे भारतीय सिपाही अपने भाइयोकी हत्या करे! मुझे दु खके साथ कहना पड़ता है कि यह काम ठीक नही है। मैने ३५ वर्षोंतक अंग्रेजोके साथ सहयोग किया है, लेकिन अब मैंने यह बन्द कर दिया है। किसी भी व्यक्तिको विधान परिषदोके चुनावमे खडा नही होना चाहिए और न किसीको वोट देने चाहिए, क्योकि यह सिर्फ धोखेकी टट्टी है। किसी-को भी सरकारकी नौकरियाँ नही करनी चाहिए और हमे अपने बच्चोको सरकारी स्कूलोंमें नही भेजना चाहिए। अपने झगडोको निबटानेके लिए आप पंचायत बुलाये। जो मौलवी गिरफ्तार कर लिये गये है वे छूट जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया: होम: पोलिटिकल· दिसम्बर १९२०: सं० १८३–८६ और के० डब्ल्यू० ए०

१८७. सन्देश: भारतीय महिलाओंको

बम्बई
[९ अक्तूबर, १९२०]

भगिनी समाजने शनिवारको सांयकाल मारवाड़ी विद्यालयके भवनमें श्री मो० क० गांधीके ५२ वें जन्म-दिवसका उत्सव मनाया। उत्सवमें महिलाएँ बड़ी संख्यामें सम्मिलित हुई थीं। उसकी अध्यक्षता श्रीमती जाईजीबाई पेटिटने की।

प्रारम्भमें कुछ महिलाओंने ईशवन्दना की। उसके बाद श्रीमती पेटिटने गुजरातीमें लिखा हुआ श्री गांधीका सन्देश पढ़ा। सन्देशमें उन्होंने कहा था, मैं नहीं समझता कि मेरे जन्म-दिवससे महिलाओंका क्या सम्बन्ध है और भारतीय स्त्रियाँ मेरे किस गुणके कारण मुझे मानती हैं। इस सम्बन्धमें विचार करनेपर मैं अनुभव करता हूँ कि वे मेरे प्रेमके कारण ही मुझे मानती हैं। वे जानती हैं कि मैं हृदयसे उनके आत्मसम्मानकी रक्षा करना चाहता हूँ और उसकी रक्षाका सबसे आसान तरीका जो मैंने उन्हें बताया है, वह है स्वदेशी। स्वदेशीका प्रचार करनेमें स्त्रियाँ जितनी सहायक हो सकती हैं, उतने पुरुष नहीं। जब भारतकी पुत्रियाँ सूत काता करती थीं और उससे बने कपड़ोंसे अपना और दूसरोंका तन ढका करती थीं उस समय भारत गरीब तो था, लेकिन

इतना नहीं जितना वह आज है। उस समय भारतकी स्त्रियाँ अपने शीलकी रक्षा करती थीं; लेकिन मैं देखता हूँ कि वे आज नहीं करतीं। इसलिए मैं स्त्रियोंमें इसी बातका प्रचार करता हूँ। उन्हें मेरी यही सलाह है कि वे सब एक घंटा रोज सूत कातनेमें खर्च करें। आप सबको सादा जीवन बिताना अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए, और अपनी कन्याओंके काते हुए सूतसे बने वस्त्रोंको पवित्र मानकर उन्हींका व्यवहार करना चाहिए। मेरी समझसे भारतको स्वराज्य केवल इसीसे मिल सकता है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १३-१०-१९२०

१८८. पत्र : मगनलाल गांधीको

[९ अक्तूबर, १९२०][1]

यह पत्र शुक्रवारकी साँझको आरम्भ किया और शनिवारको सुबह ३-१५ पर समाप्त किया।

चि० मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। लक्ष्मी जबतक हमारे साथ रहे तबतक वह हमारी है। दूदाभाई[2] ले जाये तो ले जा सकते हैं। मेरे लिए वह पुत्रीकी तरह है। वह सुसंस्कृत नही है लेकिन हमें उसे सहन करना है। दुःख इतना ही है कि भार मैंने उठाया था लेकिन ढोना पड़ा तुम्हें। यह तो मेरी आदत ही रही है और तुम्हे उसे सहन करना ही है। इसीमें तुम्हारी तालीम है। यह कठिन है, फिर भी तुमने इसे स्वीकार किया है।

हरिलालके बच्चोंके सम्बन्धमें मैं क्या कर रहा हूँ? हरिलाल जबतक रहने देगा तबतक रखूँगा। वह ले जाना चाहे तो कौन 'न' कह सकता है? क्या उनके हितोंकी हानि नहीं हुई है? क्या इसके लिए हम अपनेको उत्तरदायी ठहरायेंगे? मैं तो सब-कुछ ईश्वरपर छोड़ता हूँ। जवाबदार और हकदार वही है। हम तो निमित्त-मात्र हैं। यदि हम अपने अहम्का त्याग कर दें [तो समझो कि] हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया। इस लड़कीको दूदाभाईने मुझे सौंपा। उस समय मेरी कसौटी हुई, उसमें मैं अनुत्तीर्ण कैसे होता? अब हमसे उसके लिए जो बन सके, वही करना हमारा कर्त्तव्य है। दूदाभाई इसमें बहुत हस्तक्षेप करना चाहें तो उन्हे करने दें अर्थात् या तो वे हमारे पास लड़कीको रहने दें अथवा ले जायें। यही नियम मैंने हरिलाल-पर भी लागू किया है। मेरी ऐसी आकांक्षा है कि यह लड़की मीराबाई बने। लेकिन उसके बदले वह वेश्या निकले तो भी क्या किया जा सकता है? हम उसे वैसा

१. दूदाभाईने अपनी बेटी लक्ष्मीको ५ अक्तूबर, १९२० को गांधीजीको सौंपा था। देखिए "भाषण: सूरतमें", ६-१०-१९२०। यह पत्र उसके बादके शुक्रवारको लिखना शुरू किया गया था।

२. एक आश्रमवासी।

बननेमे मदद न करेंगे, इतना हमारे लिए काफी है। इससे भी यदि सब-कुछ समझमें न आ सके तो फिर पूछना। [मेरे लिए] जैसी रुखी अथवा मनु वैसी ही लक्ष्मी है; इसमे सब-कुछ आ गया है।

इमाम साहबसे कहना कि मै खिलाफतके सम्बन्धमें निरन्तर विचार करता रहता हूँ। मैने हस्तक्षेप करनेकी थोडी कोशिश की थी। और अधिक मै नही कह सकता। इसके अलावा दोनो भाई[1] [भी] दूर है। उनसे कहना कि चिन्ता न करे। बहुत-सी घटनाएँ होती है जिन्हे हम समझ नही सकते। उन्हे कोई रोक सके, सो नही। सबकी रक्षा ईश्वर किया करता है। इसलिए अन्तमे सब-कुछ ठीक ही होगा। क्या अमीना कुछ पढती है?

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७६८) से।
सौजन्य: राधाबेन चौधरी

१८९. दैनन्दिनी

जो व्यापारी हर रोज हिसाब किये बिना सो जाता है उसका अवश्य किसी-न-किसी दिन दिवाला निकल जाता है, जो व्यक्ति ईश-भजन, सध्या-स्नानादि किये बिना अपना दिन बिताता है वह प्रभुके प्रति अपराधी बनता है और उसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति कदापि नही हो पाती। इसी न्यायसे जो स्वराज्यवादी असहयोगको स्वराज्य-प्राप्तिका साधन मानता है उसे हमेशा हिसाब लगाकर अपने मनसे निम्नलिखित प्रश्न करने चाहिए:

१. आज मैंने सम्मानित ओहदो और पदवियोपर प्रतिष्ठित कितने व्यक्तियोसे उन्हें छोड देनेका अनुरोध किया?

२. मैंने अपने बच्चोको कालेज अथवा स्कूलोसे उठा लेनेमे इतनी देर क्यो की है?

३. मैंने अन्य कितने व्यक्तियोको ऐसा करनेकी प्रेरणा दी है?

४. मैंने अभीतक वकालत क्यों नही छोड़ी है? अथवा मैंने अन्य कितने वकीलोसे वकालत छोड देनेकी प्रार्थना की है?

५. मैंने कितने लोगोको सेनामें भरती न होनेकी सलाह दी है?

६. मैंने किन-किन लोगोको विधान परिषदोमे जानेसे रोका है? कितनोको मत न देनेके लिए समझाया है?

७. मैंने स्वय विदेशी मालका कितना बहिष्कार किया है? कितनोसे ऐसा करवाया है?

८ मैंने स्वयं कितना सूत काता है? कितना दूसरोसे कतवाया है? कितने बुनकरोंको प्रोत्साहन दिया है?

१. अली-बन्धु।

मैं यह मानता हूँ कि आत्म-त्याग और स्वार्थ-त्यागकी तालीमके बिना स्वराज्य असम्भव है; और [आज] मैंने कितना स्वार्थ-त्याग किया है? मैंने इस आन्दोलनको चलानेके लिए अपने ही गाँवमे, अपने मुहल्लेमे कितने लोगोंको प्रेरित किया? इस कार्यमे मैंने अपना कितना समय लगाया और कितना धन व्यय किया?

प्रत्येक स्वराज्यवादीको अपने मनसे निरन्तर उपर्युक्त प्रश्न पूछने चाहिए सन्तोष-जनक उत्तर न मिलनेपर वह उसका प्रायश्चित्त करे और अगले दिन और भी अधिक प्रयत्न करे। ऐसा करते हुए निरन्तर जागृत रहकर ही हम आगे बढेंगे और स्वराज्यकी स्थापना करेंगे। यदि करोड़ो व्यक्ति आजसे ही इस प्रवृत्तिमे जुट जायें तो आज ही हमारा छुटकारा हो जाये। एक वर्ष तो बहुत दूरकी बात है। करोडो व्यक्तियोंके पास स्वराज्यका सन्देश-मात्र पहुँचानेके लिए हमें हजारों स्वयसेवकोंकी जरूरत है। वे अप्रकट रहकर भी अपना कार्य सुचारु रूपसे कर सकते हैं, उन्हें किसी भी सीखकी आवश्यकता नही। अपनेसे आरम्भ करके वे पडोसमें कार्य आरम्भ कर सकते हैं। हिन्दुस्तानके किसी स्त्री-पुरुषको इस प्रवृत्तिसे बेखबर नही रहना चाहिए, बादमें उनकी बुद्धि इसे स्वीकार न करे तो भले ही वे इस प्रवृत्तिमे भाग न लें। यदि हम हिन्दुस्तानकी समस्त जनताके पास इस सन्देशको पहुँचा सकें तो समझिए कि हमारा आधा कार्य समाप्त हो गया।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-१०-१९२०

१९०. स्कूल

गुजरातके सरकारी स्कूल खाली होते जा रहे हैं; गुजरात कालेजके दो प्रोफेसर अपना पद त्यागकर राष्ट्रीय शिक्षणके कार्यमे आ जुटे हैं; उन्हें मैं बधाई देता हूँ। मुझे उम्मीद है कि अन्य प्रोफेसर भी इन दोनोंके उदाहरणका अनुकरण करके इस राष्ट्रीय आन्दोलनमे शामिल हो जायेंगे।

लेकिन मुझे अधिक आशा तो विद्यार्थी-वर्गसे है। जब वे लोग स्कूल तथा विद्या-पीठोंको खाली कर देंगे, तब अध्यापकों और शिक्षकोंका अपने-आप निकलना सम्भव हो जायेगा। इनके सामने तो इस समय रोटी-रोजीका प्रश्न है; विद्यार्थियोंको तो सिर्फ मोहसे छुटकारा पाना है।

ग्रांट मेडिकल कालेजके दो विद्यार्थियोंने जो अन्तिम वर्षकी परीक्षा देनेवाले थे, परीक्षा नही दी। अन्य दो विद्यार्थी स्नातकोत्तर शिक्षाके अध्ययनमे जुटे हुए थे और उन्हें पचास रुपयेकी छात्रवृत्ति मिलती थी; उसको त्यागकर वे मुक्त हो गये हैं और अब राष्ट्रीय शिक्षामें संलग्न हैं। इन विद्यार्थियोंपर मुझे दया नही आती, बल्कि मैं यह मानकर कि उन्होंने ऐसा करके उचित ही किया है, उन्हें भी बधाई देता हूँ। अन्य अनेक विद्यार्थियोंने गुजरात कालेज छोड दिया है, वह कालेज बिलकुल खाली हो जाये—ऐसी मेरी कामना है। हमारा सबसे पहला पाठ तो यह है कि हम मनुष्य

बने। आज तो पुरुष अपना पुरुषत्व और स्त्रियाँ अपना स्त्रीत्व खो बैठी हैं। यदि सारी जनता एक स्वरसे कहे कि हमे पराधीनता नही चाहिए तो इसमे स्वराज्यकी कुंजी है। यह ज्ञान कोई धीरे-धीरे आनेवाला ज्ञान नही है। जिसे आना है, तुरन्त आयेगा। इसे तो नया जन्म ही समझिए। अपनी पराधीन अवस्थाका भान होना और यह समझना कि हम आजसे स्वराज्य प्राप्त करनेके योग्य हैं, इसीमें स्वतन्त्रता निहित है। हम कौटुम्बिक स्वराज्यसे तो परिचित हैं, लेकिन जब हमे राष्ट्रीय स्वराज्यकी भावनाकी प्रतीति होगी, तब उसी क्षण हमे उसकी उपलब्धि हो जायेगी।

विद्यार्थी-वर्गमे इस भावनाका प्रसार होनेपर ही इस देशकी जजीरे टूटेंगी। फिलहाल तो विद्यार्थियोका पहला पाठ होता है साम्राज्यकी शक्तिको पहचानना और यह सीखना कि साम्राज्यके कारण ही हमारा अस्तित्व है। यह ठीक भी है, साम्राज्य अपने स्कूलोमें कुछ और शिक्षा दे भी कैसे सकता है?

विद्यार्थियोंसे स्कूलो और कालेजोंका परित्याग करनेके लिए कहकर मै उनको इस परिस्थितिसे बच निकलनेका प्रथम पाठ पढ़ाता हूँ और माता-पिताओसे अपने इस कार्यमें मदद देनेका अनुरोध करता हूँ। भले ही विद्यार्थिगण शिक्षाविहीन रहे अथवा अल्पशिक्षा प्राप्त करे, किन्तु जब उन्हें आत्मसम्मानकी प्रतीति हो जायेगी तब खुद-ब-खुद सब-कुछ मिल जायेगा। सच तो यह है कि यदि केवल दो-चार विद्यार्थी कालेज आदि छोडेंगे तो उनके सम्मुख नि.सन्देह यह एक समस्या होगी। लेकिन जब विद्यार्थी हजारोंकी तादादमे स्कूल आदि जाना छोड़ देंगे तब उनके लिए राष्ट्रीय शिक्षाका प्रबन्ध अपने आप हो जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-१०-१९२०

१९१. सूरतकी प्रतिक्रिया

सूरत, नडियाद और अहमदाबादके बीच होड़ चल रही है। इनमें सर्व प्रथम कौन आयेगा यह तो भविष्य ही बतायेगा। भाई शौकत अली, भाई मुहम्मद अली और मै जब सूरत गये थे तब वहाँ अपरिमित उत्साह था। गाँवोसे भी सैकडों आदमी आये थे। मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय शालाका उद्घाटन करना था। सूरतमे अनेक संस्थाएँ हैं, उनमे भी अनाविल और पाटीदार छात्रालय प्रमुख हैं। दोनोंमे अच्छी संख्यामें विद्यार्थी पढने आते हैं। प्रश्न यह था कि जिन विद्यार्थियोने सरकारी स्कूलोमें जाना छोड दिया था वे क्या करे। प्रमुख कार्यकर्त्ताओंको लगा कि इन तथा ऐसे अन्य विद्यार्थियोके लिए स्कूल खोले जाने चाहिए, फलस्वरूप उन्होने तुरन्त ही इसका बन्दोबस्त किया। श्री नरमावाला नामक एक मुसलमान सज्जनने इस उद्देश्यके निमित्त किराया लिये बिना अपना विशाल भवन दे दिया। कुछ-एक शिक्षकोने मुफ्त कार्य करनेका निश्चय किया। अन्य अनेक शिक्षक वेतन लेकर कार्य करेंगे। कार्यकर्त्ता उद्यमी और ईमानदार होगे तो यह सस्था सुन्दर स्वरूप धारण करेगी। उनके उद्यम और ईमानदारीके बारेमे मुझे तनिक भी शंका नही है; अत. [आशा है कि] यह संस्था अवश्य चलेगी।

इसकी देखभाल करनेकी व्यवस्था भी सुन्दर ही है। कपासके व्यापारियोंने प्रति मन चार आने देना तय किया है और दूसरे व्यापारी भी देंगे। इस तरह सूरतमें शिक्षा-कार्यक्रमके स्वावलम्बी बन जानेकी सम्भावना है।

यहाँ वर्तमान स्कूलों और कालेजों आदिको खाली करवानेका आन्दोलन चल रहा है, इसमें भी सफलता मिलनेकी उम्मीद है।

आन्दोलनके इस तरह सन्तोषजनक ढंगसे जारी रहनेके बावजूद मुझे दो बातोंसे निराशा हुई है। एक तो सभामें, थोड़े समयके लिए ही सही किन्तु, अशान्ति रही। सभा चाहे कितनी ही विशाल क्यों न हो, उसे शान्तिपूर्ण ढंगसे चलानेकी क्षमता हममें आनी ही चाहिए। यह तालीमकी, सभ्यताकी, समझदारी और एकताकी निशानी है। सभामें अशान्तिके लिए किसीका कोई विशेष दोष नहीं है, बल्कि इससे यह पता चलता है कि इस दिशामें अभी ठीक तरहसे कार्य करना हमारे लिए शेष है।

दूसरी घटना इससे भी दुःखद थी। हम सूरतसे दिल्लीकी ट्रेनमें सवार हुए; स्टेशन-पर हमें विदा करनेके लिए आये व्यक्तियोंकी अच्छी भीड़ थी। उनमेंसे कितने ही व्यक्तियोंने ट्रेनमें बैठे गोरोंका, हालाँकि उन्होंने भीड़की भावनाओंको उकसानेका कोई काम नहीं किया था, "धुत-धुत" करके तिरस्कार और अपमान किया। ऐसे ही कामोंसे हिंसा होनेका भय रहता है। ब्रिटिश साम्राज्यके साथ हमारा चाहे कितना ही विरोध क्यों न हो तथापि व्यक्ति विशेषसे विरोध प्रकट करनेका हमें कोई अधिकार नहीं है। इन भावनाओंपर अधिकार प्राप्त करनेमें ही हमारी विजय सन्निहित है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-१०-१९२०

१९२. प्राथमिक स्कूलोंके अध्यापकोंसे

मुझे तो यह विश्वास है कि प्राथमिक स्कूलोंके शिक्षकोंका वेतन बहुत ही कम है लेकिन इस समय मैं उन्हें अधिक वेतनके लिए आन्दोलन करनेकी सलाह नहीं दे सकता। पूरा-पूरा वेतन मिलनेके बावजूद सरकारी सत्ताके अधीन चलनेवाले समस्त स्कूलोंको शिक्षक और विद्यार्थिवर्ग द्वारा विषके समान त्याज्य समझता हूँ। इस-लिए प्राथमिक स्कूलोंके शिक्षकोंमें यदि जागृति आ गई है और उनमें यदि पर्याप्त बल है तो उन्हें ऐसे स्कूलोंका परित्याग कर देना चाहिए जहाँ विद्यार्थियोंको मुख्य-रूपसे गुलामीकी शिक्षा दी जाती है फिर चाहे इसके लिए उन्हें कितना ही कष्ट क्यों न झेलना पड़े। वे प्राचीन कालके शिक्षकोंकी तरह आज भी भिक्षा-वृत्तिपर निर्भर रहकर विद्यार्थियोंको शिक्षा दें। वैसे मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि यदि शिक्षक आस्थापूर्वक, ईमानदारीसे सरकारी नौकरी छोड़ दें तो जनता अवश्यमेव उनके भरण-पोषणकी व्यवस्था कर देगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-१०-१९२०

१९३. भाषण: संयुक्त प्रान्त सम्मेलन, मुरादाबादमें

११ अक्तूबर, १९२०

महात्मा गांधीने कहा कि मुझे अपने भाई पण्डित मदनमोहन मालवीयसे भिन्न मत रखनेपर बहुत गहरा दुःख है। मैं चाहता हूँ कि आप सब यह बात ध्यानमें रखते हुए कि पण्डितजी निरन्तर निष्ठापूर्वक देशकी सेवा करते रहे हैं, उनके दृष्टिकोणपर बहुत सम्मानपूर्वक विचार करें। आप अपना निर्णय देते समय अपने मनमें मेरा खयाल न रखें। मेरे विचार अब भी वही हैं जो कलकत्तेमें थे, बहुत गम्भीर चिन्तनके बाद भी मैं यही मानता हूँ कि देशकी स्वतन्त्रताका एकमात्र रास्ता असहयोग ही है और कलकत्तेमें स्वीकार किया गया कार्यक्रम सबसे अच्छा है। मुझसे पूछा गया है कि क्या मैं साम्राज्यसे भारतका सम्बन्ध तोड़ लेनेके पक्षमें हूँ। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि असहयोगके कार्यक्रममें ब्रिटिश साम्राज्यसे सम्बन्ध तोड़ लेनेकी बात है लेकिन यह ध्यानमें रखना है कि मेरा लक्ष्य भारतको स्वतन्त्रता दिलाना है। यदि वर्तमान सरकार अपने दोषोंको दूर कर देती है और लोग अपनेको अवसरके अनुकूल सिद्ध करते हैं तथा सरकार और उसके अधिकारी भारतीयोंको बराबरीका दर्जा देते हैं तो ब्रिटिश साम्राज्यसे सम्बन्ध बना भी रह सकता है। लेकिन यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि जनता मालिक है और सरकार उसकी सेवक। यदि लोगोंके साथ बराबरी और साझेदारका व्यवहार किया जाता है तो ठीक है। लेकिन अगर सरकार और अंग्रेज जाति मालिक होनेका दावा करती है तो मैं क्षण-भरको भी इसे बरदाश्त न करूँगा और न उन्हें भारतकी एक इंच भूमिपर ही टिकने दूंगा। भारतको आजादी दिलानेके लिए दो बातें आवश्यक हैं। पहली तो यह कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता हो। मेरा अनुरोध है कि आप दोनों समुदायोंके लोग एक-दूसरेके प्रति सहिष्णुता बरतें। लेकिन हिन्दू होनेके नाते मैं हिन्दुओंसे अधिक खुलकर अनुरोध कर सकता हूँ। आप मुसलमानोंको प्यार करें, उनका विश्वास करें और ऐसा आप अपने धर्मका दृढ़तासे पालन करते हुए भी कर सकते हैं। दूसरी शर्त है असहयोग आन्दोलनको सफल बनाना। [वर्तमान बुराइयोंको दूर करनेका] यही सबसे अच्छा और एकमात्र उपाय है। मैं हिंसामें विश्वास नहीं करता। हिंसासे मौजूदा बुराइयाँ दूर नहीं होंगी बल्कि उससे उन्हें उत्तेजन ही मिलेगा। सरकार खिलाफतके सम्बन्धमें अपने वादोंसे मुकर गई है। उसने पंजाबपर कहर बरपा किया है। इस अपराधपर उसने पश्चात्ताप भी प्रकट नहीं किया। वर्तमान प्रणालीके अन्तर्गत जनता लोगोंको [फौजमें भरती होकर] मैसोपोटामिया जाने और छोटे-छोटे देशोंकी स्वतन्त्रता छीननेसे नहीं रोक सकती। ऐसी सरकारसे सम्बन्ध बनाये रखना अपराध है। इसी सरकारने रौलट अधिनियम बनाया है, इसी सरकारने खिलाफतके सम्बन्धमें अपना वचन-भंग किया है, इसी सरकारने कुख्यात फौजी अदालतोंकी स्थापना की और इसी सरकारने आपके बच्चोंको ब्रिटिश झंडेके सामने सिर

झुकानेको मजबूर किया। मेरे विचारसे ऐसी सरकारके साथ सहयोग करना, इसकी विधान परिषदोंमें बैठना या अपने बच्चोंको इसके स्कूलोंमें भेजना हराम है।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १७-१०-१९२०

१९४. अलीगढ़के एक आलोचकको उत्तर[1]

१२ अक्तूबर, १९२०

यह काम 'डिस्ट्रक्शन' (खण्डन)का अवश्य है, लेकिन फिलहाल जो खराब घास उग आई है उसे जड़मूलसे उखाड़नेकी ही जरूरत है जिससे कि अच्छे अनाजकी बुवाई की जा सके।

× × ×

जहाँ आपको घड़ी-भरके लिए भी यूनियन जैकको स्वीकार करना पड़ता है, जहाँ किसी भी गवर्नर अथवा किसी अन्य उच्चाधिकारीके आनेपर आपको यह कहनेके लिए विवश होना पडता है कि आप उसके प्रति वफादार हे जब कि आप वफादार नही हे, वहाँ आप पल-भरके लिए भी कैसे रुक सकते हे?

× × ×

जो कालेज स्वतन्त्र हो गया है उसके लिए तो ज्यादासे-ज्यादा पैसा आयेगा। और फिर जहाँ मुहम्मद अली और शौकत अली-जैसे श्रीमत हैं वहाँ पैसेकी क्या चिन्ता हो सकती है?[2]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४-१०-१९२०

१९५. निजी तौरपर

मुझे ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमे इतने पत्र प्राप्त होते रहते हैं और इस विषयमे मेरे विचार इतने दृढ हे कि अब मेरे लिए तत्सम्बन्धी विचारो और अनुभवोके परिणामोको 'यंग इंडिया' के पाठकोके सम्मुख प्रस्तुत करना आवश्यक हो गया है। आज राष्ट्र जिस नाजुक दौरसे गुजर रहा है उसे देखते हुए तो यह और भी जरूरी लगता है।

१. शौकत अली और मुहम्मद अलीके साथ गांधीजी यूनियन हॉलमें विद्यार्थियोंसे मिले। उपर्युक्त बातें उन्होने किसी व्यक्ति द्वारा आलोचनाके प्रत्युत्तरमें कही थी।

२. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित।

'ब्रह्मचर्य' शब्द संस्कृतका है और यह अंग्रेजीके 'सेलीबेसी' शब्दकी अपेक्षा बहुत अधिक व्यापक है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है सम्पूर्ण मनोविकारो और इन्द्रियोपर पूर्ण नियन्त्रण। पूर्ण ब्रह्मचारीके लिए कुछ भी असम्भव नही है। लेकिन यह एक आदर्श और अत्यन्त दुर्लभ स्थिति है। यह लगभग ज्यामिति-शास्त्री यूक्लिडकी उस रेखाके समान है, जिसका अस्तित्व केवल कल्पनामे है तथा जिसे कभी मूर्तरूप प्रदान नही किया जा सकता; तथापि यह ज्यामिति-शास्त्रका एक बहुत बडा सिद्धान्त है और इससे बड़े-बड़े परिणामोंकी उपलब्धि हुई है। इसलिए भले ही पूर्ण ब्रह्मचारीका अस्तित्व कल्पनामे ही हो, लेकिन यदि हम उसे निरन्तर अपने मानस-चक्षुके सामने न रखे तो हमारी स्थिति बिना पतवारकी नौकाकी-सी हो जायेगी। [हम] उस काल्पनिक स्थितिके जितने निकट पहुँचेगे, उतने ही पूर्ण बनेगे।

लेकिन फिलहाल तो मै 'ब्रह्मचर्य' के उसी अर्थतक सीमित रहूँगा जिस अर्थका बोध अंग्रेजीके 'सेलीबेसी' शब्दसे होता है। मेरे विचारसे सम्पूर्ण आध्यात्मिक उपलब्धिके लिए मनसा, वाचा, कर्मणा संयमका पालन करना आवश्यक है और जिस राष्ट्रमे ऐसे लोग नही है वह राष्ट्र उस हदतक रक है। लेकिन यह-सब कहनेका मेरा उद्देश्य तो सिर्फ इतना ही है कि राष्ट्रके विकासकी वर्तमान स्थितिमे ब्रह्मचर्यका एक अस्थायी आवश्यकताके रूपमे पालन किया जाना चाहिए।

हमारे यहाँ लोगोंमे अपेक्षाकृत बीमारी, अकाल तथा गरीबी बहुत ज्यादा है, यहाँतक कि करोड़ों लोगोको पेटभर खानेको नही मिलता। हमे ऐसी चतुराईसे गुलामीकी चक्कीमे पीसा जा रहा है कि हममे से कुछ लोग तो इस तथ्यको स्वीकार करनेसे भी इनकार करते है तथा आर्थिक, मानसिक व नैतिक अवनतिके त्रिविध अभिशापोके बावजूद अपनी स्थितिको उत्तरोत्तर स्वतन्त्रताकी ओर अग्रसर होता हुआ मानते है। निरन्तर बढता हुआ सैनिक-व्यय तथा जान-बूझकर लंकाशायर और अन्य ब्रिटिश हितोको लाभ पहुँचानेके लिए बनाई गई वित्तीय नीति और विभिन्न राजकीय विभागोके सचालनका फिजूलखर्च तरीका — इन सबके परिणामस्वरूप भारतपर इतना ज्यादा बोझ पड़ गया है कि वह पहलेसे बहुत अधिक गरीब हो गया है और उसमे इन रोगोका मुकाबला करनेकी क्षमता नही बच रही। श्री गोखलेके शब्दोमे, शासन-प्रबन्धके इस तरीकेने राष्ट्रीय विकासको इतना "बौना" बना रखा है कि "हमारे ऊँचेसे-ऊँचे व्यक्तित्वोको भी झुकना पडता है।" अमृतसरमें भारतीयोको, और इस तरह भारतको, पेटके बल रेंगना पडा, पजाबका जान-बूझकर अपमान किया गया तथा भारतीय मुसलमानोको दिये गये वचनको उद्धतताके साथ भंग करनेके लिए क्षमा माँगने तकसे इनकार कर दिया गया — ये दोनो बाते शासनके नैतिक दिवालियेपनके ताजा उदाहरण है। ये आघात हमारी अन्तरात्मापर ही किये गये है। यदि हम इन दोनो अन्यायोके आगे आत्मसमर्पण कर देते है तो समझ लीजिए, सरकार हमे पूरी तरहसे पुंसत्वहीन बनानेमे सफल हो गई।

जिस अपमानास्पद वातावरणकी मैने चर्चा की है क्या उसे समझनेवाले व्यक्तियोका बच्चे पैदा करना उचित है? जब हम रोग व अकालसे ग्रस्त हो और अपने-आपको

असहाय महसूस करते हो, और असहाय हैं भी, हमारा प्रजननकी क्रियाको जारी रखना सिर्फ गुलाम और दुर्बल लोगोकी सख्यामें वृद्धि करना ही होगा। जबतक भारत स्वतन्त्र नही हो जाता; उसमे भुखमरीको दूर करनेकी क्षमता उत्पन्न नही होती, अकालके दिनोमें अपने लिए भोजन जुटा पानेकी योग्यता नही आती, वह मलेरिया, हैजा, इन्फ्लुएन्जा तथा अन्य महामारियोका सामना करने योग्य ज्ञान प्राप्त नही करता तबतक हमे बच्चे पैदा करनेका अधिकार नही है। मुझे जब कभी किसीके यहाँ बच्चा पैदा होनेका समाचार मिलता है उस समय जो दु खानुभूति होती है उसे मुझे पाठकोसे छिपाना नही चाहिए। मुझे यह बता देना चाहिए कि मैंने स्वेच्छापूर्वक आत्मनिग्रह द्वारा सतानोत्पत्ति बन्द रखनेकी सम्भावनापर वर्षोतक चिन्तन किया है और मेरा निष्कर्ष सन्तोषकारक रहा है। भारत आज अपनी वर्तमान जनसख्याकी ही सार-सँभाल करनेके लिए पूरी तरह तैयार नही है, सो भी इसलिए नही कि उसकी जनसख्या बहुत अधिक है अपितु इसलिए कि वह विदेशी शासनके शिकजेमे पड़ गया है। ऐसा विदेशी शासन जिसका धर्म ही यह है कि वह यहाँ प्राप्त होनेवाले साधनोसे जितना अधिक लाभ उठा सकता है, उठाये।

सन्तानोत्पत्तिको कैसे रोका जाये? यूरोपमें प्रयुक्त अनैतिक व कृत्रिम साधनो द्वारा नही अपितु सयम और अनुशासनपूर्ण जीवन द्वारा! माता-पिताओको अपने बच्चोंको ब्रह्मचर्यका पालन करना सिखाना चाहिए। हिन्दू शास्त्रोके अनुसार लडकोकी विवाहावस्था कमसे-कम पच्चीस वर्ष है। अगर हिन्दुस्तानकी माताएँ ऐसा मानने लगें कि लडके और लड़कियोको वैवाहिक जीवनके लिए तैयार करना पाप है तो हिन्दुस्तानमे आधी शादियाँ स्वत बन्द हो जायें। हमे इस भ्रममे भी नही पड़े रहना चाहिए कि हमारे देशकी गर्म आबोहवाके कारण लड़कियाँ कम उम्रमे ही यौवनावस्थाको प्राप्त हो जाती हैं। इससे अधिक भयकर किसी अन्धविश्वासकी बात मैंने कभी नही सुनी। मैं यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि जल्दी यौवनावस्थाको प्राप्त होनेकी बातका आबोहवासे कोई सरोकार नही है। लड़कियोके शीघ्र जवान होनेका कारण वह मानसिक और नैतिक वातावरण है जो हमारे पारिवारिक जीवनमे व्याप्त है। माताएँ और परिवारकी अन्य महिलाएँ निर्दोष बच्चोको यह सिखाना अपना धर्म मान लेती हैं कि अमुक अवस्थाके बाद उनका विवाह होना है। बाल्यावस्था, बल्कि कभी-कभी शैशवावस्था, में ही उनकी सगाई कर दी जाती है। बच्चोको जो पोशाक पहनाई जाती है और उन्हे जो भोजन खिलाया जाता है वह भी वासनाको उकसानेवाला होता है। हम बच्चोको उनके लिए नही बल्कि अपने आनन्द और मिथ्याभिमानके लिए गुड्डे-गुडियोकी तरह सजाते हैं। मैंने बीसो बच्चोका लालन-पालन किया है। उन्हे जो-कुछ पहनाया जाता था उसे वे बिना किसी झझटके पहन लेते थे और उसीमें आनन्द मानते थे। हम उन्हे हर प्रकारके गर्म और उद्दीपक भोजन खानेको देते हैं। उनके प्रति अपने मोहके कारण अन्धे होकर हम उनकी क्षमताकी ओर ध्यान ही नही देते। इसका परिणाम यह होता है कि वे जल्दी ही वयको प्राप्त हो जाते हैं, असमयमे सन्तान पैदा करते है और जल्दी ही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। माता-पिता

उनके लिए पदार्थ-पाठ बने रहते हैं और वे उसे आसानीसे ग्रहण कर लेते हैं। ये लोग अपनी वासनाओकी अन्धाधुन्ध तुष्टिमे लगे रहकर अपने बच्चोके सामने निर्बाध स्वैरताका उदाहरण पेश करते हैं। इस तरह असमय पैदा होनेवाले प्रत्येक बच्चेके जन्मपर परिवारमे आनन्द मनाया जाता है और दावत होती है। आश्चर्य तो यह है कि अपने इस परिवेशके बावजूद हममे जो थोडा-बहुत सयम है वह कैसे है! मुझे इस बारेमे तनिक भी सन्देह नही कि विवाहित लोगोको चाहिए कि अगर वे देशका हित चाहते हैं तथा भारतको सशक्त, सुन्दर और सुडौल स्त्री-पुरुषोसे युक्त राष्ट्रके रूपमे देखना चाहते हैं तो उन्हें कुछ समयके लिए पूर्ण इन्द्रिय-निग्रहका पालन करके सन्तानोत्पत्ति बन्द कर देनी चाहिए। मै नव-दम्पतियोको भी यही सलाह दूँगा। किसी चीजको करनेके बाद छोडनेकी अपेक्षा उसे शुरू ही न करना अधिक आसान है, ठीक वैसे ही जैसे पियक्कड़ अथवा यदा-कदा शराब पीनेवाले व्यक्तिकी अपेक्षा अत्यन्त शुद्ध जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्तिके लिए शराबसे दूर रहना अधिक आसान होता है। गिरकर उठनेसे, सीधे खडे रहना निश्चय ही ज्यादा आसान है। यह कहना गलत है कि सयमकी शिक्षा निरापद होकर तो परितुष्टोको ही दी जा सकती है। इसके अलावा जो व्यक्ति भोग करके बिल्कुल अशक्त बन चुका है उसे संयमका पाठ पढानेका कोई अर्थ भी नही हो सकता। मेरा कहना यह है कि हम चाहे युवा हो अथवा वृद्ध, तृप्त हों चाहे अतृप्त फिलहाल हमारा कर्त्तव्य यह है कि हम अपनी गुलामीके उत्तराधिकारियोको जन्म न दे।

मै माता-पितासे कहना चाहूँगा कि वे 'पति-पत्नीके अधिकार' के तर्क-जालमे न पड़े। यह एक स्पष्ट सत्य है कि स्वीकृतिकी आवश्यकता विषय-भोगके लिए होती है, सयमके लिए नही।

आज, जब हम एक शक्तिशाली सरकारके मृत्यु-पाशसे छुटकारा पानेकी कोशिश कर रहे हैं, हमे शारीरिक, आर्थिक, नैतिक, भौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकारकी शक्तिकी आवश्यकता होगी। यह शक्ति हममे तबतक नही आ सकती जबतक हम एक निश्चित ध्येय अपने मनमे प्रतिष्ठित न कर ले और उसे सब वस्तुओसे ऊपर न माने। इस तरहके व्यक्तिगत शुद्ध जीवनके बिना हमारा देश सदा गुलाम बना रहेगा। यदि हम यह सोचे कि वर्तमान शासन-व्यवस्था भ्रष्ट है इसलिए जातिगत गुणोमे भी अंग्रेज हमसे हीन हैं तो यह हमारा भ्रम ही होगा। वे लोग बुनियादी अच्छाइयोको आध्यात्मिकताका कोई बाना पहनाये बिना कमसे-कम शारीरिक रूपसे उनपर प्रचुर मात्रामे आचरण करते हैं। अपने देशकी राजनीतिमे व्यस्त अंग्रेजोमें, हमारे यहाँसे कही अधिक अविवाहित स्त्री-पुरुष हैं। हममें भिक्षुणियोको छोडकर अविवाहित स्त्रियाँ तो लगभग नहीके बराबर हैं और ये भिक्षुणियाँ देशके राजनीतिक जीवनको किसी भी रूपमें प्रभावित नही करती। लेकिन यूरोपमे हजारो स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्यको एक साधारण गुण मानते हैं।

अब मै पाठकोके सामने कुछ सरल नियम रख रहा हूँ। इनका आधार केवल मेरा ही अनुभव नही है, मेरे अनेक सहयोगियोका भी ऐसा ही अनुभव है।

१ लड़के और लड़कियोंका लालन-पालन इस विश्वासके साथ सीधे-सादे ढंगसे होना चाहिए कि वे निर्दोष है तथा निर्दोष रह सकते हैं।

२. चटपटे, स्निग्ध, तले हुए, मिठाई आदि व्यंजनो और गर्म तथा उद्दीपक भोजनसे परहेज रखना चाहिए।

३ पति और पत्नीको अलग-अलग कमरोमे रहना चाहिए और एकान्तमें नही मिलना चाहिए।

४ मन व शरीर, दोनोंको निरन्तर किसी सत्कार्यमें निरत रखना चाहिए।

५. 'जल्दी सोना, जल्दी उठना' इस नियमका दृढ़तासे पालन किया जाना चाहिए।

६. हर प्रकारके असद् साहित्यसे दूर रहना चाहिए। अच्छे विचारोसे बुरे विचारोका नाश होता है।

७ वासनाओको भड़कानेवाले थियेटर, सिनेमा आदिका बिल्कुल त्याग कर देना चाहिए।

८. नैश स्वप्नोसे चिंतित होनेकी कोई आवश्यकता नही। ऐसे मामलोमें मामूली स्वस्थ व्यक्तिके लिए प्रतिदिन ठंडे पानीसे स्नान करना बहुत अच्छा है। यह कहना गलत है कि यदा-कदा विषय-भोग कर लेनेसे बुरे स्वप्नोसे बचा जा सकता है।

९ यह कदापि नही समझना चाहिए कि पति-पत्नीके लिए सयमका पालन करना लगभग असम्भव ही होता है। इसके विपरीत समझना यह चाहिए कि आत्म-सयम साधारण और सहज जीवन व्यतीत करनेका एक साधन है।

१०. आत्मशुद्धिके लिए प्रतिदिन अन्तर्मनसे प्रार्थना करे। इससे मन उत्तरोत्तर शुद्ध होता चला जाता है।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-१०-१९२०

१९६. भाषण: असहयोगपर[1]

१४ अक्तूबर, १९२०

श्री गांधीने कहा कि यूरोपकी सबसे बड़ी ताकतसे हमारी यह लड़ाई चल रही है। ऐसी लड़ाईमें अगर हम विजय चाहते है तो हमें उसकी आवश्यक शर्तें समझ लेनी चाहिए। इनमें से एक शर्त है—संगठनकी क्षमता। अंग्रेजो-जैसी संगठनकी क्षमताके बिना हम अपना कामकाज चला भी नहीं सकते। अपने एक पुराने अनुभवकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि एक बार मुझे दस हजार आदमियोकी एक सैनिक टुकड़ीके साथ सुबहके पहले पहरमें चलनेका मौका आया था। सारे सैनिक पूर्ण अनुशासनका पालन कर रहे थे। लेकिन वह सैनिक ताकतसे जीती जानेवाली लड़ाई

१. परेड मैदान, कानपुरमें आयोजित सभामें।

थी। हम इस लड़ाईमें असहयोगके हथियारका उपयोग करके जीतना चाहते हैं। यहाँ अनुशासनकी और भी अधिक आवश्यकता है। दूसरी शर्त है — हिन्दू-मुस्लिम एकता। यह एकता जबानी जमा-खर्चकी नहीं बल्कि हृदयोंकी एकता होनी चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंकी समझमें ज्यों ही यह बात आ जायेगी कि उनके सहयोगके बिना ब्रिटिश शासन असम्भव है, और ज्यों ही वे उन्हें अपना सहयोग देना बन्द कर देंगे, त्यों ही विजय हमारे हाथमें होगी। वे अपनी शक्तिका परिचय खून-खराबी या आगजनीके कामोंके द्वारा नहीं करा सकते। अपनी शक्तिका परिचय तो वे आत्मोत्सर्ग और समर्पणके कार्यों द्वारा ही दे सकते हैं। वक्ताने कहा, मेरा दृढ़ विश्वास है कि बलिदान ही सचाईकी सच्ची कसौटी है और सचाई तबतक विजयी नहीं होती जबतक उसके पीछे बलिदानकी सच्ची भावना न हो। अपने भाषणमें वक्ताने लोगोंसे मार्मिक अपील करते हुए कहा कि वे अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंसे निकाल लें, अदालतों और कौंसिलोंके चुनावोंका बहिष्कार करें तथा विलासिताका जीवन छोड़कर स्वदेशीको अपनायें।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २१-१०-१९२०

१९७. भेंट: लखनऊमें समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंको

१५ अक्तूबर, १९२०

सर्वश्री गांधी, मुहम्मद अली और शौकत अली बम्बई मेलसे आज सवेरे यहाँ पहुँचे।... एक पत्र-प्रतिनिधि द्वारा यह पूछे जानेपर कि वे सुधारोंका समर्थन करनेवालोंका नेतृत्व तथा सरकारके साथ सहयोग क्यों नहीं करते, श्री गांधीने उत्तर दिया:
वह मेरे लिए बहुत भयकर बात होगी। मै तो इस जनसमूहका ही नेतृत्व करना पसन्द करूँगा। मैंने पिछले तीस वर्षोंसे लगातार सरकारसे सहयोग करनेका प्रयत्न किया है, लेकिन अब मैं ऐसा नही कर सकता। यह सरकार दुष्ट है और शैतानीसे भरपूर है, जिसने अपना वचन तोडा है। अगर मुझे लॉयड जॉर्जसे बात करनेका अवसर मिले तो मैं उनके मुँहपर यह बात कहूँ।

यह पूछे जानेपर कि वे अंग्रेजी भाषा तथा डाक व तारका क्यों प्रयोग करते हैं, श्री गांधीने कहा कि वे अंग्रेजी भाषाका प्रयोग इसलिए करते हैं कि हिन्दीमें उनके अभिप्रायको नहीं समझा जायेगा। डाक और तारके सम्बन्धमें जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि वे सरकारी विभागोंको अपनी निजी सम्पत्ति मानते हैं; अगर सरकार उनसे ये दोनों सुविधाएँ छीन ले तो उन्हे प्रसन्नता ही होगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-१०-१९२०

१९८. भाषण : लखनऊमें[1]

१५ अक्तूबर, १९२०

हमें तो बड़ी राष्ट्रीय सेना बनानी है। जबरदस्त अनुशासनके बिना वैसी सेना नहीं बना सकेंगे।

× × ×

ब्रिटिश हुकूमत इस समय शैतानकी प्रतिमूर्ति है। और जो खुदाके बन्दे हैं, वे शैतानियतके साथ मुहब्बत नहीं रख सकते।

× × ×

तुमने तलवार न उठानेकी प्रतिज्ञा ली है, तो इस तरह छिटपुट हत्याओंका होना अनुशासनका गम्भीर उल्लंघन सूचित करता है। मैं नहीं मानता कि इस्लाम धर्ममें भी ऐसे अनुशासन-भंगकी इजाजत है। जबतक मुसलमान हिंसारहित असहयोगसे बँधे हुए हैं, तबतक उन्हें यह विचारतक नहीं आना चाहिए कि तलवार उठानेसे अच्छा काम होगा। इस हुकूमतने बुराई की है, परन्तु बेगुनाह आदमियोंको मारकर तो हम सरकारकी दमन और आतंककी नीतिको ही प्रोत्साहन देंगे। इस्लाममें तलवारके उपयोगकी इजाजत जरूर है परन्तु मेरा विश्वास है कि इस प्रकार सिर उडानेकी बात तो इस्लाममें भी नहीं होगी और मैं मानता हूँ कि उलेमा भी मेरे खयालकी ताईद करेंगे। आप (यानी मुसलमान) जिस दिन हिंसारहित असहयोगका सिद्धान्त छोडकर तलवार उठानेका निश्चय करें, उस दिन अवश्य ही प्रत्येक यूरोपीय स्त्री, पुरुष और बच्चेको चेतावनी दे सकते हैं कि उनकी जिन्दगी जोखिममें है। परन्तु मैं ऐसी आशा रखूँगा कि आपको ऐसा निश्चय करनेकी नौबत नहीं आयेगी।

× × ×

जफरुलमुल्क तो अत्यन्त प्रामाणिक और निडर आदमी हैं, इसलिए उन्हें तो जेल जाकर ही शान्ति मिलनेवाली है। वे किस लिए जेलमें हैं? उन्होंने एक भाषणमें कहा था कि यह हुकूमत मिट्टीमें मिलेगी इसलिए सरकारकी रंगरूटीमें जाना दोजखका रास्ता अपनाना है।

× × ×

इस हुकूमतने इतने घोर अत्याचार किये हैं कि यह खुदा और हिन्दुस्तानके आगे तोबा न करे, तो जरूर मिट्टीमें मिल जायेगी। मैं तो यहाँतक कहूँगा कि जबतक वह तोबा न करे, तबतक उसे मिटाना हर भारतीयका कर्त्तव्य है। सरकारकी रंगरूटीमें जाना नर्कमें जानेके समान है — यह कहना यदि अपराध हो तो अवश्य ही यह अपराध करके पवित्र बनना प्रत्येक व्यक्तिका फर्ज है।

× × ×

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित ।

हम ऐसी [मौ० जफरुलमुल्कका मुकदमा सार्वजनिक रूपमें चलानेकी] माँग कर ही नहीं सकते। ऐसी माँग करना यह बताता है कि जेलमें जानेकी हमारी नीयत नहीं है। समझमें नहीं आता कि हम ऐसा क्यों करते हैं। खुद जफरुलमुल्कके लिए जेल महलके समान है। हमें तो ऐसा काम करना चाहिए, जिससे सरकार त्राहि-त्राहि पुकारे और हमारा माँगा हुआ दे दे अथवा हमें समुद्रमें डाल दे। गुलामीमें रहनेसे समुद्रमें डूबना बेहतर है।

मैं सरकारकी तुलना डाकूसे करता रहा हूँ। कोई डाकू हमारी जायदाद लूट ले जाये और बादमें हमें आधी वापस देना चाहे तो क्या हम उसे ले सकते हैं? परन्तु यह सरकार तो डाकूसे भी बुरी है। सरकारने हमारा सब छीन लिया है। इतना ही नहीं, वह तो हमारी आत्मापर भी अधिकार करना चाहती है। सरकार हमें गुलाम बनाना चाहती है। तो हमें उससे इतना-भर कह देना है कि जबतक हमारा वित्तमात्र ही नहीं, बल्कि हमारी इज्जत, हमारी आजादी वापस नहीं मिलती, तबतक तुमसे मुहब्बत रखना हराम है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ३१–१०–१९२०

१९९. "मेरे अनुयायी"

यह पत्र[1] विधान परिषद्का चुनाव लड़नेवाले एक उम्मीदवारको मिला है। उसने इस पत्रकी हूबहू नकल मुझे भेजी है। लेखककी भाषा दोषपूर्ण है। या तो लेखकने स्वयं जान-बूझकर ऐसा लिखा है अन्यथा उसे बहुत सरल व्यक्ति होना चाहिए। उसने अपना नाम नहीं दिया। ऐसे पत्र लिखनेवाले व्यक्तियोंमें अपना नाम देनेकी हिम्मत नहीं होती।

गुजरातमें जबतक ऐसे लोग पड़े हैं तबतक हमें लज्जित होते रहना पड़ेगा। अपने आपको बोलशेविक उपनाम देकर वे 'बोलशेविज्म' को बदनाम करते हैं। बोलशेविज्मको मैं जिस रूपमें पहचान सका हूँ उसके उस रूपपर मुझे कोई मोह नहीं है। लेकिन बोलशेविक नामर्द तो कतई नहीं होते। उपर्युक्त पत्र नामर्दगीका सूचक है। जो उम्मीदवार अच्छी नीयतसे विधान परिषदमें जाना चाहता है; उसके प्रति द्वेष किस लिए? उसका क्या अपराध है? यदि हम लोगोंके दिलोंपर प्रतिबन्ध लगाना चाहेंगे तो ऐसा करके हम बिलकुल वही करेंगे जो सरकार करती है अर्थात् हम भी सरकारकी तरह ही अमानवीय कृत्य करनेवाले कहलायेंगे।

विधान परिषद्में जानेवाले उम्मीदवारको हमें तर्कसे हराकर, लोकमतकी प्रबलताको जताकर तथा प्रेमपूर्वक समझा-बुझाकर विधान परिषद्में जानेसे रोकना चाहिए। जोर-जबरदस्तीसे रोकेंगे तो उससे हमें कोई लाभ नहीं होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। इससे तो नुकसान ही होगा।

१. उक्त पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया। इसमें उम्मीदवारको अपना नाम वापस न लेनेकी हालतमें मौतकी धमकी दी गई थी।

उपर्युक्त पत्र-लेखक अहमदावाद और वीरमगाँवमें हुई हत्याओंकी[1] याद दिलाता है। हजारो व्यक्तियोने मिलकर एक गोरेकी हत्या की। एक भारतीय अमलदारको मारकर उसकी लाशको जला डाला, इसमें क्या मर्दानगी थी? शूरवीर इस तरह नही लडते। आजतक मारनेवाले लोग पकडे नही जा सके है। इस तरह गुप्त रूपसे मारकर भाग जाना तो हत्यारेकी तरह व्यवहार करना है। इसमे न तो मर्दानगी है, न हिम्मत है, न देशभक्ति, न आत्म-त्याग अथवा न कोई अनुकरण करने योग्य दृष्टान्त ही है। ऐसे अघोर कृत्य करनेवाले व्यक्ति देशका नुकसान ही करते है। जवतक ऐसे व्यक्ति गुजरातमें है तवतक असहयोग आन्दोलन पूरे वेगसे नही चल सकता। चलाना चाहे तो भी नही चल सकता। जिस तरह अन्धकार प्रकाशको घेर लेता है उसी तरह उपर्युक्त आदर्श भी, नि सन्देह, स्वार्थ-त्यागमय असहकारकी गतिको अवरुद्ध करते है, असहकारकी तालीममें वाधा उपस्थित करते है। असहकार आन्दोलनकर्त्ताओका यह कर्त्तव्य है कि वे वोलशे-विज्मके विचारवाले व्यक्तियोको प्रेमसे रोके, तर्कसे समझाएँ और उन्हे पुरुषत्वहीनतासे विरत करे।

जिस सज्जनको उपर्युक्त पत्र मिला है वे मुझे लिखते है "मेरा विचार है कि इस पत्रको पढ़कर आपका मन दु खी हुए विना न रहेगा। आप शान्त और विना जोर-जवरदस्तीके असहकारकी सलाह देते है और प्रत्येककी हृदगत भावनाओ और मान्यताओको सम्मान देनेकी बात करते है; तथापि आपके अनुयायी बलात्कार किये जानेका भय वताकर किस हदतक जनताको असहयोग अपनानेके लिए विवश करते है, यह आपको इस पत्रसे मालूम होगा और फिर यह तो अभी शुरुआत ही है। असहकार-के परिणामस्वरूप होनेवाले वल-प्रयोगसे अनर्थ होगा, जिन लोगोकी ऐसी मान्यता है अगर वे उससे दूर ही रहना चाहें तो इसमे अचरजकी कोई वात नही।" लेखकका पत्र इससे लम्बा है, मैंने तो केवल आवश्यक वाक्याशोंको ही उद्धृत किया है। 'वोलशे-विज्म' में विश्वास रखनेवाले लोगोको मेरा अनुयायी मानकर लेखकने मेरे प्रति अन्याय किया है। यदि सिर्फ मेरे साथ ही अन्याय किया होता तो मैं वाद-विवादमें न उल-झता, लेकिन यह कहकर तो लेखकने असहयोगके साथ अन्याय किया है। मैं तो किसीको भी अपना अनुयायी नही मानता। मेरे विचार जिस व्यक्तिको पसन्द आते है वह व्यक्ति मेरे उन विचारोंका अनुयायी है [न कि मेरा अपना] मेरे विचारोके विरुद्ध आचरण करनेवाले व्यक्ति न तो मेरे अनुयायी है और न मेरे विचारोके।

जैसे किसी व्यक्तिको किसी अच्छी प्रवृत्तिके अर्थका अनर्थ करनेसे नही रोका जा सकता उसी तरह असहकार-जैसी आवश्यक प्रवृत्तिको दुरुपयोगके भयसे नही रोका जा सकता। अनेक व्यक्ति 'गीता' के अर्थका अनर्थ करते है लेकिन इससे जनता 'गीता' की निन्दा नही करती और न ही 'गीता' को पढना छोड़ देती है। ईसाई धर्मकी दुहाई देकर अपने आपको ईसाई कहलानेवाले लोग लूट-पाट करते है तो इसमे न तो उनके धर्मका कोई दोप है और न उस धर्मके प्रवर्त्तकका ही।

१. १९१९ में।

सरकारके दोष-दर्शन करानेसे जनताके मनमें उसके प्रति द्वेषभाव बढ़ेगा, इस भयसे दोषको छिपाया नहीं जा सकता। निर्दोषके प्रति द्वेषभाव न रखना — अद्वेष-गुणका परिचायक नहीं है, दोषीसे भी द्वेष न करे उसीमें अद्वेषगुणकी शोभा है। यही कारण है कि मैं ब्रिटिश साम्राज्यके बड़े-बड़े दोषोंको बताते हुए भी उनके प्रति उत्पन्न होनेवाले द्वेषभाव, हिंसाको रोककर उनके साथ असहयोग करके उनका हृदय-परिवर्तन करवाने अथवा उनसे हिन्दुस्तानको खाली करवानेके राजमार्गकी ओर इंगित कर रहा हूँ।

इससे कुछ समयके लिए लोगोंके दिलोंमें द्वेष बढ़ेगा, 'बोलशेविक'-जैसे पागल व्यक्तियोंका उपद्रव भी होगा और मैं इनको रोकनेका प्रयत्न भी करूँगा; लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य अपने वर्तमान स्वरूपमें हमेशा बना रहे यह बात मुझे सहन नहीं है। इसकी अपेक्षा तो मैं उपर्युक्त उपद्रवोंको ही अधिक पसन्द करूँगा। अंग्रेजोंने जिस बोल-शेविज्मकी प्रतिष्ठा कर रखी है उसकी अपेक्षा इस तरहके बोलशेविज्मको दूर करना अधिक सहल है, ऐसी मेरी मान्यता है। यदि जनमत 'बोलशेविक'-जैसे मूर्खसे असहयोग करे तो यह पागलपन एक ही फूँकमें ताशके पत्तोंसे बने महलके समान ढह जायेगा।

लेखकने अपने पत्रमें गुस्सेसे भरे हुए कुछ-एक वाक्य भी लिखे हैं, मैं उनसे क्रोधका त्याग करनेका अनुरोध करता हूँ। विधान परिषद्में जानेकी बातको यदि वे धर्म समझते हैं तो भले ही जायें, लेकिन यदि वे "बोलशेविक" के पत्रसे आवेशमें आकर विधान परिषद्में जाते हैं तो यह भी एक प्रकारका बोलशेविज्म ही माना जायेगा। क्रोधवश क्या देशके हितको नुकसान पहुँचाना ठीक होगा?

लोकमतके विरुद्ध विधान परिषदोंमें जाना अभी तो उचित नहीं जान पड़ता। जिन मतदाताओंके मतके बलपर उम्मीदवार विधान परिषदोंमें जाते हैं, वे उन्हीं मतदाताओंके मना करनेपर भी यदि जानेका आग्रह करें तो इस आग्रहको हम कौन-सा विशेषण देंगे?

हमारे पास एक ही राजमार्ग है। ऐसे व्यक्ति जो विधान परिषदोंको स्वतन्त्रताका द्वार मानते हैं और मेरे-जैसे व्यक्ति जो विधान परिषदोंको हिन्दुस्तानके लिए मृत्युपाश समझते हैं — दोनों ही मतदाताओंको अत्यन्त धैर्यपूर्वक इनके गुणदोष समझायें और फिर उनके अर्थात् मतदाताओंके कथनानुसार आचरण करें। [समझानेके बावजूद] अगर मत-दाता किसीको विधान परिषदोंमें भेजना चाहते हों तो मेरे-जैसे लोग उन्हें रोकेंगे नहीं और यदि मतदाता उम्मीदवारोंके सम्मुख विधान परिषदोंमें जानेकी बातपर स्पष्ट रूपसे विरोध करते हैं तो विधान परिषदोंमें न जाना उम्मीदवारोंका धर्म है। यदि विधान परिषदोंका विरोध करनेवाले व्यक्ति जोर-जबरदस्ती करेंगे तो वह पाप होगा और यदि उम्मीदवार जबरदस्ती विधान परिषदोंमें जायेंगे, तो वह भी महापाप होगा। इसमें उम्मीदवारोंके लिए कोई धर्म-संकट नहीं क्योंकि उनका धर्म ही यह है कि उनके क्षेत्रके मतदाताओंकी इच्छा होनेपर ही वे विधान परिषदोंमें जायें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७–१०–१९२०

२००. भाषण : बरेलीमें[1]

१७ अक्तूबर, १९२०

चूँकि आप लोग अब इतने निडर हो गये हैं अतः मैं आपसे यही आशा करूँगा कि आप ऐसे ही बने रहें। अमृतसरमें नगरपालिकासे सरकारने बहुत नीच कृत्य करवाये हैं; यहाँतक कि लोगोंको जल देना बन्द करवा दिया है। इससे घोर कृत्य और क्या हो सकता है? चाहे आपपर कितने ही अत्याचार क्यों न किये जायें, आप अपनी स्वतन्त्रताको बनाये रखनेका प्रयत्न करें, दबावमें न आयें, अमृतसरकी नगरपालिका-जैसा व्यवहार न करें। दूसरी बात मैं यह कहता हूँ कि अगर आप में शक्ति हो तो आप अपने स्कूलोंकी स्वतन्त्रताको बनाये रखें। अगर आप सरकारकी ओरसे मिलनेवाला अनुदान [लेना] बन्द कर दें तो आपके स्कूल स्वतन्त्र हो जायेंगे। मेरी कामना है कि इन दोनों बातोंपर आप खूब विचार करें।[2]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३१-१०-१९२०

२०१. भाषण : अमृतसरमें

१८ अक्तूबर, १९२०

श्री गांधीने अल्लाह-हो-अकबर और सत श्री अकालके नारोंके बीच हिन्दीमें अपना भाषण[3] प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा इंग्लैंडमें आजकल जो घटनाएँ घट रही हैं श्री मुहम्मद अलीने हमें उनके बारेमें बताया है। वहाँ इस विषयपर विचार किया जा रहा है कि किस तरह उन सभी देशोंको जिनसे होकर भारतमें पहुँचा जा सकता है, वशमें किया जाये अर्थात् यदि सरकार फारस और ईरानपर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहती है तो वह भारतकी गुलामीको स्थायी बनानेके विचारसे किया जा रहा है। कोई भी व्यक्ति एक साथ दो मालिकोंकी सेवा नहीं कर सकता; यदि भारतीय अंग्रेजोंको अपने स्वामीके रूपमें स्वीकार करते हैं तो उसका अर्थ यह होगा कि वे अपने उस सर्वोपरि स्वामीको भूल गये हैं जिसके प्रति उन्होंने जन्मसे ही निष्ठाकी शपथ ली है। आपके सामने अब एक ही विकल्प है, या तो आप अपने भगवान्को छोड़ दें या फिर सरकारका त्याग करें। स्वराज्य प्राप्त करनेके दो ही रास्ते हैं,

१. बरेली नगरपालिका द्वारा दिये गये अभिनन्दनके उत्तरमें।

२. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित।

३. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

तलवारका अथवा असहयोगका। हिन्दू और मुसलमान दूसरे रास्ते अर्थात् असहयोगको अपना चुके हैं। हालाँकि कुछ लोग तलवार द्वारा स्वराज्य-प्राप्तिमें विश्वास रखते हैं लेकिन मुझे उस बातपर विश्वास नहीं है। आगजनी और हत्याओंसे भारतको स्वतन्त्र नहीं किया जा सकता। स्वराज्य-प्राप्तिकी दो अनिवार्य शर्तें हैं, पूर्ण एकता और बलिदान। बलिदान तभी सम्भव होगा जब लोग सरकारसे असहयोग करनेका निश्चय करेंगे। यदि हमने असहयोग किया तो हम एक वर्षके भीतर-भीतर स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे। हममें अनुशासनका अभाव है; इसका विकास किया जाना चाहिए। जबतक शहरों और गाँवोंमें अनुशासन नहीं, तबतक स्वाधीनता असम्भव है। हममे [परस्पर] ऐक्य और विश्वास होना चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि भय और गुलामी तो एक साथ रह सकते हैं लेकिन भय तथा प्रेम नहीं। ईश्वर हमसे शुद्ध बलिदान चाहता है। हमें शुद्ध होना चाहिए। हमें सरकारी अदालतों, स्कूलों, सरकारी नौकरियो, विधान परिषदों तथा उपाधियोंका त्याग करना चाहिए और हाथका कता-बुना खद्दर पहनना चाहिए। मैं यहाँके वकीलोंसे पूछना चाहूँगा कि आप अब किस मुँहसे उन अदालतोंमें जाकर वकालतका धन्धा करते हैं जिन्होने मार्शल लॉके दिनोंमें आप लोगोंको इतना अपमानित और लज्जित किया है। जबतक वे अपनी वकालत नही छोड़ देते तबतक भारतकी मुक्तिमे उनका हाथ होना असम्भव है। क्या हम अपने बच्चोंको उन्हीं स्कूलोंमे भेज सकते हैं, जहाँ उन्हें सजाके तौरपर दिन-भरमें सोलह मील पैदल चलनेपर विवश किया गया था? स्वाधीनताका पहला पाठ यह है कि हम अपने बच्चोंको बतायें कि यद्यपि हम गुलाम हैं लेकिन हम यह नहीं चाहते हैं कि तुम भी गुलाम बने रहो। ये भवन, अध्यापक और सारी सम्पत्ति हमारी है। हमें सरकारी अनुदान तथा मान्यताको स्वीकार नहीं करना चाहिए। यह नई पीढ़ीके लिये गुलामीकी शृंखलाओंको तोड़ देनेकी दिशामें पहला पाठ होगा। अमृतसरवासियोंने विधान परिषदोंका त्याग करके एक अच्छा काम किया है। ये विधान परिषदें और कुछ न होकर हमारी स्वतन्त्रताका अपहरण करनेका साधन-मात्र हैं। हम भारत रक्षा अधिनियम और रौलट अधिनियम-जैसे कानूनोंको रद कर सकते हैं। और फिर भरतीमें जो अन्याय बरता गया है उससे आप सब लोग परिचित हैं। पंजाबने उस निश्चयसे कितना कष्ट उठाया है। क्या हम अब भी रंगरूटोंके भरती होनेमें सहयोग दे सकते हैं?

क्या आप अरब आदि देशोंकी स्वतन्त्रताको नहीं बनाये रखना चाहते? आपको राष्ट्रीय सेना बनानी चाहिए और लोगोंको सरकारी सेनामें भरती न होनेकी सलाह देनी चाहिए।

यह कहा जाता है कि यदि लोग सेनामें भरती न होंगे तो वे लुटेरे और डाकू बन जायेंगे। मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि क्या आप तलवार छोड़कर हलको हाथमें नहीं थाम सकते? पंजाब भारतकी पराधीनताका [सबसे बड़ा] कारण है क्योंकि वहाँसे

बहुत अधिक लोग सेनामें जाते रहे हैं। पंजाबके भूतपूर्व लेफ्टिनेंट गवर्नर बड़े गर्वसे कहा करते थे कि भारतके अन्य सब प्रान्तोंने कुछ मिलाकर जितने रंगरूट दिये उतने अकेले पंजाबने दिये हैं। अब भी आप लोग अगर सेनामें भरती होना बन्द नहीं करेंगे तो भारतका स्वाधीन होना असम्भव है। आपको स्वदेशी अपनाना चाहिए। महिलाओंको चरखा चलाना चाहिए। आपको यह समझ लेना चाहिए कि अकेले कपड़ेके कारण ही प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया विदेशोंको चला जाता है। अगर आप यह-सब नहीं कर सकते तो हम गुलामीके बन्धनसे मुक्ति नहीं पा सकते।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, २०-१०-१९२०

२०२. अमृतसरमें खालसा कालेजके विद्यार्थियोंसे बातचीत[1]

१८ अक्तूबर, १९२०

मेरे भाई मुहम्मद अलीने 'च्वाइस ऑफ टर्क्स' नामक लेख लिखा था, जो जब्त हो गया। मैं तुमसे आज कहता हूँ कि आज "च्वाइस ऑफ दि बिलीवर्स आफ् इन्डिया[2]" भारतके धर्मनिष्ठ लोगोंके लिए यह निर्णय करनेका समय आ गया है कि वे क्या पसन्द करें। सिख विद्यार्थियोंसे मैं यह पूछने आया हूँ कि तुम हुकूमतके वफादार रहना चाहते हो या गुरु नानकके? जिन अरबोंने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा और जो एक बड़ी स्वतन्त्र जाति हैं, उसे अधीन बनानेके लिए तुम्हारे सजातियोंको भेजा जाता है। सरकार तुम्हारे ऐरणकी चोरी करके सूईका दान कर रही है। सरदार गौहरसिंहपर जो सितम गुजरा, उसके बाद कोई सिख सरकारके पक्षमें तलवार उठा ही कैसे सकता है? जलियाँवालामें बॉसवर्थ स्मिथने जो अत्याचार किये, उनके बाद इस सरकारसे प्रेम कैसे रखा जा सकता है? पंजाबके लिए जितना दु:ख मुझे हुआ है, उतना आपको होता हो, तो खालसा कालेजकी ग्रान्ट छुड़वाकर, म्युनिसिपैलिटीसे उसका सम्बन्ध तुड़वाकर तुम उसे सचमुच खालसा [विशुद्ध] बना सकते हो। ऐसा न हो सके, तो उसे छोड़कर तुम स्वयं खालसा बन सकते हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३१-१०-१९२०

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित।

२. मूलमें अंग्रेजी शब्द ही हैं।

२०३. भाषण: लाहौरमें असहयोगपर[1]

१९ अक्तूबर, १९२०

महात्मा गांधीने भाषण आरम्भ करते हुए कहा कि मुझे जफर अलीके जेल भेजे जानेसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है, क्योंकि मेरे खयालसे वे जेल जाकर दरअसल स्वतन्त्र हो गये हैं। जो लोग जनता और सरकारके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करते हैं उनके लिए जेल ही एकमात्र स्थान है। मैंने जफर अलीके विरुद्ध लगाये गये आरोप [आपको] पढ़कर सुनाये। जफर अलीने कहा था कि यदि सरकार खिलाफतके सम्बन्धमें हमें न्याय प्रदान नहीं करती तो वह नष्ट हो जायेगी और उन्होंने सभामें उपस्थित लोगोंसे इस बातको दोहरानेको कहा था। जफर अलीके विरुद्ध मुख्य आरोप यही था। मैं इससे भी आगे बढ़कर उपस्थित लोगोंसे न केवल इस बातको दोहरानेके लिए कहूँगा कि अगर सरकार खिलाफतके प्रश्नपर न्याय प्रदान नहीं करेगी तो वह नष्ट हो जायेगी बल्कि यह दोहरानेको भी कहूँगा कि ऐसी सरकारको नष्ट करना हम अपना कर्त्तव्य समझेंगे। (सभामें उपस्थित लोगोंने इसे दोहराया।) जफर अलीको मुक्त करवानेका [सबसे अच्छा] उपाय यह है कि हमें जनताके प्रति पूरी ईमानदारीके साथ अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए तथा असहयोगके प्रचारको गति प्रदान करनी चाहिए। तब फिर सरकार हमारे नेताओंमें से किसीको भी जेल नहीं भेज सकेगी। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि मुकदमेके दिनोंमें भी उनको अस्वस्थ होनेके बावजूद अँधेरी तंग कोठरीमें रखा जाता था और जेलका भोजन दिया जाता था। मगर इसके बावजूद सरकार उन्हें तोड़ नहीं सकी और उन्होंने क्षमा-याचना नहीं की। लोगोंको सरकारसे जफर अलीको रिहा करनेकी प्रार्थना नहीं करनी चाहिए; ऐसा करना पाप होगा। हम सरकारसे अनुग्रहकी भीख नहीं माँग सकते।

वक्ताने बादमें महायुद्धके दौरान सिखोंने जिस वीरताका परिचय दिया उसकी चर्चा की और कहा कि उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यको बचाया है तथा अपने मालिकके निर्देशपर तुर्कों, अरबों और मिस्रवासियोंके सिर काट दिये, लेकिन इसका उन्हें क्या फल मिला? यह हमें शेखूपुराके गौहरसिंह तथा मनियाँवालाकी सिख महिलाओंसे पूछना चाहिए।

वक्ताने जोरदार शब्दोंमें घोषणा की कि हमें हिंसाको बढ़ावा नहीं देना है। श्री मुहम्मद अलीके इस कथनका कि भविष्यमें हमें सम्भवतः तलवारका सहारा लेना पड़ेगा और [सरकारके विरुद्ध] जिहाद बोलना पड़ेगा, जिस उत्साहके साथ स्वागत

१. इसका संक्षिप्त विवरण २४-११-१९२०के यंग इंडियामें भी प्रकाशित हुआ था।

किया गया है उसे देखकर मुझे दुःख हुआ है। तलवारका [तो] हमें बिलकुल त्याग कर देना चाहिए। हिंसा द्वारा पंजाब अथवा खिलाफतके अन्यायका निराकरण होना सम्भव नहीं है। हमें हिंसाके माध्यमसे स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं करनी है। मेरे लिए तो अहिंसात्मक असहयोग ही आरम्भ है और वही इति है।

वक्ताने आगे कहा कि कुछ लोगोंने मुझे बताया है कि पंजाबमें ऐसे प्रमुख नेता नहीं हैं जो असहयोग आन्दोलनका नेतृत्व करनेको तैयार हों। लेकिन लोगोंको स्कूलों व कालेजोंका बहिष्कार करनेके लिए नेताओंकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए; क्योंकि नेताओंके बिना भी अपने बच्चोंको सरकारी अथवा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों व कालेजोंसे उठाया जा सकता है। यह जाननेके लिए भी किसी नेताकी जरूरत नहीं है कि लेफ्टिनेंट कर्नल फ्रेंक जॉन्सनने लाहौर कालेजके विद्यार्थियोंको गर्मियोंकी तपती दोपहरीमें प्रतिदिन सोलह मील पैदल चलाया; कोई भी व्यक्ति अपने बच्चोंको ऐसी सरकारी संस्थाओंमें भेजकर, जहाँका वातावरण उनके मनुष्यत्वका अपमान करता हो और उन्हें हीन बनाता हो, इस प्रदेशकी भावी पीढ़ीको गुलाम नहीं बनाना चाहेगा। अदालतोंका बहिष्कार करनेके सम्बन्धमें भी यही बात लागू होती है। अपने कर्जदारोंसे कर्ज वापस लेनेके लिए आप अदालतोंका आश्रय न लें। दो विरोधी दल किसी ऐसे तीसरे व्यक्तिके पास जायें जिसपर दोनोंको विश्वास हो और उससे अपने झगड़ोंका निपटारा करा लें। अगर ऐसा नहीं हो सकता तो महाजनको अन्तिम उपायके रूपमें सरकारी अदालतोंका सहारा न लेकर अपनी रकमको वापस लेनेका प्रयत्न छोड़ देना चाहिए। जिन अदालतोंने अन्यायपूर्वक आपके नेताओंको स्वतन्त्रताका उपभोग करनेसे वंचित रखा है, वे अदालतें, न्याय दिलानेवाली अदालतें कहलानेकी अधिकारी नहीं हैं। इसी तरह स्वदेशीका सिद्धान्त ही एक ऐसा साधन है जिससे हम लंकाशायरके मतदाताओंको प्रभावित कर सकते हैं।

असहयोग आन्दोलनकी सफलताके लिए शुद्ध आचार और दृढ़ चरित्र सबसे प्रमुख शर्तें हैं। अमृतसरकी महिलाओंने मुझे आन्दोलनकी सफलताके लिए दो बातोंका होना जरूरी बताया है। वे हैं (१) सत्य और (२) स्त्री-पुरुषोंका जितेन्द्रिय होना। जितेन्द्रियका अर्थ उस व्यक्तिसे है जिसने अपनी इन्द्रियोंपर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया है। जिस व्यक्तिको अपनी इन्द्रियों तथा वासनाओंपर पूरा अधिकार है तथा जिसने अपनी इच्छाओं और तृष्णाओंपर विजय प्राप्त कर ली है, वही शुद्ध-हृदय व्यक्ति है। ऐसा व्यक्ति ही एकचित्त होकर निडर भावसे भक्तिपूर्वक देशकी सेवा कर सकता है। वह केवल ईश्वरसे डरेगा, सत्यसे प्रेम करेगा तथा संसारके किसी भी मोहका उसपर कोई असर नहीं पड़ सकेगा। जो व्यक्ति शुद्ध जीवनयापन नहीं कर सकता वह असहयोगके योग्य नहीं है।

हिन्दू, मुसलमान और सिख सबको एक होकर विकासशील अहिंसामय असहयोग द्वारा सरकारके हाथों न्याय प्राप्त करनेके लिए लड़ना चाहिए। या तो हम

सबको जेल जाना चाहिए, अथवा हमें अपने निर्दोष भाइयोंको रिहा करवाना चाहिए जो बिना किसी अपराधके जेलोंमें पड़े सड़ रहे हैं। हमारे सामने यही एकमात्र रास्ता रह गया है। इसी मार्गसे हमारे उद्देश्यकी पूर्ति होगी तथा हम अपने अन्तिम लक्ष्यको प्राप्त कर सकेंगे; और वह लक्ष्य है सम्पूर्ण स्वराज्य। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। आइये, हम समय रहते अपनी इस यात्राको आरम्भ कर दें।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, २२-१०-१९२०

२०४. उपहाससे . . . की ओर?

यह बात सभीको स्वीकार करनी पड़ेगी कि असहयोग अब उपहासास्पद तो नही रहा। देखना यह है कि अब उसका दमन किया जाना है या सम्मान। हम लिख[1] चुके हैं कि किसी बातका मजाक उड़ाना उसका विरोध करनेकी एक सुसस्कृत पद्धति है। यद्यपि वाइसरायने अनावश्यक रूपसे कठोर शब्दोंमे इसका मजाक उड़ाया, तो भी वह था इसी पद्धतिके अन्तर्गत।

कसौटीका समय आ गया है। जब किसी सभ्य देशमे कोई आन्दोलन उपहासके बावजूद बल पकड़ लेता है, तब वह ससम्भ्रम देखा जाने लगता है। प्रतिद्वन्द्वी उसका मुकाबला सम्मानपूर्ण सुसंगत तर्को द्वारा करते हैं और प्रतिद्वन्द्वी दलोंका पारस्परिक व्यवहार कभी हिंसाका रूप धारण नही करता। प्रत्येक दल शुद्ध तर्को द्वारा ही एक दूसरेको अथवा उन लोगोंको जो अभी ढुल-मुल हैं, अपने दलमें शामिल करना चाहता है।

अब इस बातमे बहुत थोड़ा सन्देह रह गया है कि परिषदोका पूर्णरूपसे बहिष्कार भले न हो वह व्यापक अवश्य होगा। विद्यार्थी क्षुब्ध हैं। किसी भी दिन महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ सच्चे अर्थोमे राष्ट्रीय संस्थाओका रूप धारण कर सकती हैं। पं० मोतीलाल नेहरूने अपनी वकालत छोड़ दी है। उनकी वकालत देशके किसी भी वकीलसे कम नही थी; इसलिए यह एक महान् त्याग है। अकेली यही एक घटना ऐसी है जो उपहास-को सम्मानमे परिवर्तित कर दे सकती है। लोगोंको इसी घटनाके कारण अपन रुख-पर गम्भीर विचार करना चाहिए। पण्डित मोतीलाल नेहरूने ऐसा किया, इसका अर्थ ही यह है कि हमारी सरकारमे कोई बहुत बड़ी खराबी है। स्नातकोत्तर विद्यार्थियोने अपनी फैलोशिप छोड़ दी है और चिकित्सा-शास्त्रके विद्यार्थियोंने अपनी अन्तिम परीक्षा देनेसे इनकार कर दिया है। ऐसी परिस्थितिमे असहयोगको मूर्खतापूर्ण आन्दोलन नही कहा जा सकता।

लोगोकी इच्छा असहयोगके माध्यमसे बड़े स्पष्ट रूपमे परिलक्षित हो रही है; सरकारको या तो उस इच्छाके आगे झुकना पड़ेगा या उनके आन्दोलनको दमनके द्वारा कुचलनेकी कोशिश करनी पड़ेगी।

१. देखिए "दमनके बदले उपहास", १-९-१९२०।

सभी हालतोमे सरकार द्वारा किये गये वल-प्रयोगको दमन नही कहा जा सकता। यदि अदालतमे किसी व्यक्तिपर हिंसात्मक पद्धतिके प्रचारके अभियोगमे मुकदमा चलाया जाये, तो यह दमन नही है। हरएक राष्ट्रको अधिकार है कि वह वल-प्रयोग द्वारा हिंसाको दवाये। किन्तु श्री जफर अली खाँ और पानीपतके दो मौलवियोपर चलाये गये मुकदमोसे यह प्रकट होता है कि सरकार हिंसाको रोकने या दवानेकी कोशिश नही कर रही है; वल्कि वह तो लोगोके मतकी अभिव्यक्तिको दवाना चाहती है, क्योकि उसे उससे असन्तोप फैलनेका भय है। इसका नाम है दमन। मुकदमोका चलाया जाना इस दमनका प्रारम्भ है। अभी दमन जोरपर नही आया है, किन्तु यदि इन मुकदमोसे भी प्रचार नही रुका, तो वहुत सम्भव है कि सरकार कठोर दमनका सहारा ले।

प्रजामे असन्तोष न फैलने देनेका दूसरा उपाय केवल असन्तोषके कारणोको समाप्त कर देना है और उसका अर्थ होगा कि जिस असहयोग आन्दोलनमे देश दिनोदिन अधिकाधिक हाथ वँटाता जा रहा है, उसका सम्मान करना। सफलता और शक्तिके मदमे चूर सरकारसे पश्चात्ताप या विनयकी अपेक्षा रखना एक वड़ी आशा करना है।

इसलिए हमे यही मानना चाहिए कि जैसे-जैसे असहयोगकी शक्ति वढेगी, सरकार उसी अनुपातमे हिंसात्मक तत्त्वको अधिकाधिक अपने दमनमे दाखिल करती चली जायेगी। सरकारके कार्यक्रमका यह दूसरा दौर होगा। यदि दमनके वावजूद आन्दोलन जीवित वना रहा, तो समझना चाहिए कि सत्यकी विजयका दिन समीप है। हमे उस समय मुकदमो, सजाओ और देश-निकालेतक के लिए तैयार रहना चाहिए। हमे ऐसे सामर्थ्यका भी विकास करना चाहिए कि नेताओकी अनुपस्थितिमे भी हम कार्यक्रमको आगे वढ़ाते चले जाये। ससारमें ऐसी तो कोई भी सरकार नही है जो पूरे राष्ट्रके-राष्ट्रको जेलखानेमे डाल दे। उसे लोगोकी माँगोके आगे या तो झुकना पडता है या उन्हें राष्ट्रके योग्य शासन-सत्ता सौपकर स्वय हट जाना पडता है।

यह तो स्पष्ट ही है कि हम अपने इस उद्देश्यको हिंसासे दूर रहकर अपने कार्यक्रमके अनुसार चलते हुए ही प्राप्त कर सकते है।

सरकारके सामने विकल्प यही है कि या तो वह हमारे आन्दोलनको तसलीम करे या वर्वरतापूर्ण पद्धतिसे उसे दवाये। हमारे सामने भी यही विकल्प है कि या तो हम दमनके सामने झुक जायें या फिर उसके वावजूद अपना काम करते रहे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-१०-१९२०

२०५. अनुशासनकी आवश्यकता

मद्रासमे व्यवस्था और अनुशासन सम्बन्धी अपने अनुभवोके विषयमें मैं लिख ही चुका हूँ। रुहेलखण्डके दौरेमें मैं भी व्यवस्थाका वैसा ही अभाव देख रहा हूँ। हर जगह अव्यवस्था और गडबडी होती रहती है। इसका कारण आदमियोकी कमी नही, प्रशिक्षित स्वयसेवकोकी कमी है। उन्हे अभूतपूर्व परिस्थितिमें अभूतपूर्व भीडभाडको व्यवस्थित रखना पड़ता है और फल होता है काम कम, हलचल और शोर अधिक।

मौलाना शौकत अली सगठनके मामलेमें कभी हार नही मानते। वे सभी दलोको सन्तुष्ट करना चाहते है और इसलिए जो भी कार्यक्रम बनाते है, वह जरूरतसे ज्यादा ठसा हुआ बन जाता है। एक उदाहरण दे रहा हूँ। उन्होने एक ही दिनमे अलीगढसे हाथरस, हाथरससे एटा और एटासे कासगज मोटरसे और इसके बाद कासगजसे कानपुर रातमे रेलसे जाना मजूर किया। पहले मोटरमे बैठकर हम लोग ९० मीलतक गये और बहुत सुबह कार्यकर्त्ताओके बीच बैठक हुई। वह बहुत थकानेवाली बैठक सिद्ध हुई। वहाँसे सवेरे ९–४५ पर हम लोग मोटरमे सवार हुए और ११ बजे हाथरस पहुँचे। तबतक धूप बहुत सख्त हो गई थी। हर जगहकी तरह वहाँ भी जुलूस तैयार था और शोर मचा हुआ था। जुलूसके बाद जबरदस्त सभा हुई, उसमे इतनी जोरसे बोलना पडा कि आवाजवाले वक्ताओके कण्ठ भी हार मान गये। हमारे इस सब परिश्रमका फल कमसे-कम इतना अवश्य हुआ कि तीन अवैतनिक न्यायाधीशोने अपने पदोसे त्यागपत्र दे दिये। हाथरससे मोटर द्वारा हम लोग एटा पहुँचे। हाथरसके मुकाबले यहाँ व्यवस्था कुछ अच्छी थी। एटामे काम समाप्त करके हम लोग मोटरसे कासगज रवाना हुए। रास्तेमें दुर्घटना हुई, गाडियाँ खराब हो गईं और जैसे-तैसे हम लोग कासगज पहुँचे। मौलाना शौकत अली और उनके साथी तो गाडीके वक्ततक आ ही नही पाये। एटामें अनेक लोगोंने त्यागपत्र दिये। कासगजकी सभाका आकार-प्रकार देखते हुए कहा जा सकता है कि उसकी व्यवस्था काफी ठीक थी, किन्तु उस व्यवस्थाको बनाये रखना सहज नही था। पाँव छूनेका तमाशा काबूके बाहर हो गया। उसमें बहुत वक्त खराब हुआ। कोई जबरदस्त भीड इस कामको शुरू कर दे तो उसमे खतरा पैदा हो जाता है।

लेकिन कासगंजसे कानपुर तककी रातकी यात्रा तो बहुत ही खराब रही हर स्टेशन पर भीड इकट्ठी हो जाती थी। इससे सारी यात्रा अत्यन्त असुविधाजनक हो गई। भीड हर जगह आग्रह करके हम लोगोको देखना चाहती थी। मुझे जगानेके लिए जो शोर मचाया जाता था; वह कर्कश और हृदय-बेधक होता था। मै थका हुआ था। मेरा सिर चकरा रहा था और मुझे आरामकी बहुत जरूरत थी। श्रीमती गाधी और दूसरे लोग भीडसे इल्तजा करते थे कि वे चुप रहें और संयम बरते, मगर इसका कोई असर नही होता था। श्रीमती गाधी और जनतामें मानो रस्साकसी होती थी। वे रोशनी बन्द करती या खिडकी बन्द करती थी तो लोग रोशनी करते थे और खिडकियाँ खोलते थे। जब उनसे कहा जाता कि गाधीजी आराम कर रहे है, क्या आप लोग यह

चाहते हैं कि उनकी अकाल मृत्यु हो जाये, तो जवाव मिलता था, हम दर्शन करनेके लिए मीलो चलकर आये हैं और दर्शन करके ही जायेंगे। मैंने अपना दिल कड़ा कर लिया था और सुवह होनेतक उठा ही नही। लेकिन पूरी रात एक क्षण भी सो नही पाया। प्यार वुद्धि खोकर कैसा पागलपन कर सकता है, इसका उदाहरण उस रात देखनेको मिला। दारिद्र्य और अपमानके वोझसे दवी, कराहती हुई जनता कुछ इतनी आशा और विश्वास लेकर आती थी कि मानो मेरे पास सुखद भविष्यका कोई सन्देश पड़ा हुआ है। मुझे देखनेके लिए वे चारो तरफसे पैदल चलकर आते थे।

विश्वास तो मुझे भी है कि मैं उन्हे कुछ सन्देश दे सकता हूँ और कुछ राहत भी, लेकिन . . . ?

हाँ, वहुत वड़ा 'लेकिन' इसके साथ जुड़ा हुआ है। आत्मसयम, अनुशासन और वलिदानके विना राहत या मुक्तिकी आशा नही की जा सकती। अनुशासन-हीन वलिदानसे भी काम नही चलेगा। सवाल है, खूनमें समायी हुई इस अनुशासन-हीनताको अनुशासनमे कैसे परिर्वातत करें। अग्रेजी संगीनोका डर या उनका पाखण्ड हममे अनुशासन उत्पन्न नही कर सकता। व्रिटिश अधिकारियोको शान्त और शान्तिप्रिय, हमारी जनताके स्नेह और स्नेह-प्रदर्शनके प्रति कोई प्रेम नही है। अगर उनसे वने तो इस 'जगली' ढगके प्रदर्शनको वे उसी तरह शस्त्र-वलसे दवा दे, जिस तरह सर माइकेल ओ'डायरने दवानेकी कोशिश की थी और जिसमें उन्हे लज्जाजनक असफलता प्राप्त हुई थी।

यह प्रदर्शन शस्त्र-वलसे नही दवाया जा सकता; किन्तु यदि राष्ट्रके कल्याणकी दृष्टिसे इसका नियमन और नियन्त्रण नही किया जा सका तो यह स्वराज्य-प्राप्तिमे भी सहायक नही हो सकता। इसमें सफलता और आत्मनाश, दोनो ही वातोंके तमाम तत्त्व निहित है। यदि राष्ट्र उस समय जव कि उसके सेवकोको आरामकी आवश्यकता हो, अत्यधिक प्रेमप्रदर्शन द्वारा उसमें व्याघात उत्पन्न करे तो इससे उनकी शक्तिका अपव्यय होगा और हमने जिस उद्देश्यकी प्राप्तिका वचन दिया है, उसे भी नही पा सकेंगे। इसलिए हमें रातको किये जानेवाले प्रदर्शन समाप्त कर देने चाहिए। हमारे लिए अपने छोटेसे-छोटे साथीकी भावनाका ध्यान रखना भी आवश्यक है। हमे यात्रियोसे भरी हुई पूरी गाड़ीके लोगोंके आराममे वाधा नही डालनी चाहिए। हमे अपने प्रिय नेताओंके प्रति स्नेह प्रकट करना चाहिए — सार्थक कार्यों और अथक शक्तिके द्वारा। जो प्यार अपने प्रियके चरण छूने और उसके पास पहुँचकर शोर मचानेसे सन्तुष्ट हो जाता है, भय है कि वह धीरे-धीरे उसके लिए जानलेवा भी हो सकता है। ऐसे प्यारमें गुण नही वच रहता, वल्कि कुछ समयके वाद वह एक व्यसन ही वन जाता है और इसलिए दुर्गुण वन वैठता है। यदि प्रदर्शनोंको सार्थक उद्देश्योकी पूर्ति करनेका साधन वनाना हो तो देशको चाहिए कि वह उन्हे अनुशासित करे। यह एक वहुत वड़ा काम राष्ट्रके सामने है। असहयोगका मन्शा घृणा उत्पन्न करना नही है, वल्कि राष्ट्रको इस हदतक पवित्र वनाना है कि वह किसी भी वाहरी या भीतरी हमलेके आगे झुकने न पाये।

असहयोग आन्दोलन प्रभावशाली तभी हो सकता है कि जब हमारी इस प्राचीन और महान् देशकी जनताके विभिन्न वर्गोंमें सहयोग स्थापित हो जाये। सहयोगका यह कार्यक्रम हम अपने प्रियजनोंसे प्रारम्भ करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-१०-१९२०

२०६. ब्रिटिश कांग्रेस कमेटी और 'इंडिया'

कुमारी नॉर्मेन्टनने[१] मुझे एक खुली चिट्ठी भेजी है, जिसे मैं दूसरे स्तम्भमें दे रहा हूँ। उक्त महिला जब 'इंडिया' की सम्पादिका थीं, तब मैं उनके लेख आदि पढ़ता था; मेरा उनका इतना ही परिचय है। असहयोगपर उनके विचार प्रबल हैं; वे शक्तिशाली और शक्तिदायी हैं। सुधारोंके बाद भी कौंसिलोंके बहिष्कारका समर्थन उन्होंने जिस तरह खुलकर किया है, उससे उन लोगोंको शक्ति मिलनी चाहिए जो आगा-पीछा कर रहे हैं तथापि बहिष्कारका अंग्रेज प्रजा या 'लीग ऑफ नेशन्स' पर जो असर पड़ सकता है, उसे बढ़ा-चढ़ाकर न देखनेकी प्रार्थना मैं पाठकोंसे अवश्य करूँगा। हमारे कामसे, बाहरके लोगोंकी जो राय बनती है उसका खयाल किये बिना, हमें अपने कर्त्तव्यपर ध्यान देते रहना चाहिए; यही हमारे लिए अच्छा है। हमारे कामका अंग्रेज जनताके मनपर जो असर हुआ है, उसे हमने बढ़ा-चढ़ाकर आँका है और इससे प्रायः ही राष्ट्रके हितोंकी हानि हुई है। साथ ही मुझे यह अवश्य लगता है कि कुमारी नॉर्मेन्टनके तर्क अपनी जगह बिलकुल ठोस हैं।

फिर भी ब्रिटिश समितिके विषयमें उन्होंने जो विचार रखे हैं, कदाचित् जनताको उनमें ज्यादा दिलचस्पी जान पड़ेगी। उन्होंने जिस विवादकी चर्चा की है, उसके पक्ष-विपक्षमें मुझे कुछ मालूम नहीं है। फिर भी समितिके विधानपर उनके विचार मौलिक जान पड़ते हैं। उनकी इस बातसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ कि अगर किसी समितिका नाम ब्रिटिश समिति हो, तो फिर उसके सब सदस्य और उसकी नीति ब्रिटिश ही होनी चाहिए और तब यह ब्रिटिश जनतापर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव डाल सकेगी।

तब हमें निश्चय ही इसका सही-सही पता चल जायेगा कि ब्रिटिश लोग भारतीय मामलोंमें कितनी दिलचस्पी लेते हैं। 'इंडिया' नामक समाचारपत्रके विषयमें भी कुमारी नॉर्मेन्टनके विचारोंका मैं समर्थन करता हूँ। वह जितना काम करता है, उसके अनुपातमें उसपर बहुत अधिक खर्च होता है। अंग्रेज जनतापर उसका प्रभाव भी लगभग नहींके बराबर है। और हिन्दुस्तानके लोगोंको भी पूरी तरह ब्रिटिश जनताकी रायसे अवगत रखनेमें उसे बहुत दिलचस्पी नहीं है। इसलिए

१. कुमारी हेलेना नॉर्मेन्टन, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके मुखपत्र इंडियाकी भूतपूर्व सम्पादिका। गांधीजीको लिखे १५ सितम्बर, १९२० के अपने पत्रमें उन्होंने असहयोगकी नीतिका समर्थन किया था।

उसका इतना ही उपयोग बच रहता है कि वह पार्लियामेन्टके विवरण देता है जिन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस समिति बहुत कम खर्चपर प्राप्त करके लोगोंमें बँटवा सकती है। यह काम तो कोई भी साहसी समाचारपत्र किसी भी दिन हाथमें ले सकता है और आर्थिक लाभ भी उठा सकता है। हम लोग चूंकि अब असहयोग आरम्भ कर चुके हैं और चूंकि हमने आत्मनिर्भर बननेका सकल्प कर लिया है, हमारे लिए यही समीचीन होगा कि हम ब्रिटिश समितिको समाप्त कर दें और 'इंडिया' को बन्द करवा दें। इससे जनताके पैसेका अपव्यय बचेगा और हम अपनी ओर अधिक ध्यान दे सकेंगे।

कुमारी नॉर्मेन्टनने एक विकल्प सुझाया है कि हम किसी प्रकारकी सलाहकार समिति या सलाहकार रेजिडेंट लन्दनमें रखें जो समय-समयपर प्रस्तावित ब्रिटिश समितिको सुझाव दे। मुझे इस सुझावका समर्थन करना कठिन जान पडता है। मैं तो यह चाहता हूँ कि भारतके सर्वश्रेष्ठ काम कर सकनेवाले लोग भारतमें रहकर ही काम करें और सारा ध्यान यहीं लगायें। बडी कीमती फसल खडी है और काटने-वाले बहुत थोडे हैं। हम अपना एक भी आदमी विदेशोंमें काम करनेके लिए नहीं भेज सकते। पर्याप्त और ठोस कामके द्वारा भारतमें कोई स्थायी असर पैदा कर चुकनेके बाद ही विदेशोंमें अपने प्रतिनिधि भेजनेके औचित्यपर विचार करनेका समय आयेगा।

('इंडिया' की असन्तोषजनक हालतको लेकर लन्दनके एक अन्य प्रतिष्ठित सवाद-दाताने भी तथ्य लिखकर भेजे हैं। तदनुसार केवल ५०० (!) लोगोंके पास 'इंडिया' भेजा जाता है, जिनमें २२० ग्रेट ब्रिटेनमें और शेष भारतमें हैं। पिछले वर्षकी आमदनी पौ० ४–१७–० (!!) थी और इस साल उसपर होनेवाला खर्च ३,३०० पौण्ड आँका गया है। इस तथ्यको हमारे सवाददाताने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

'इंडिया'को चलाते रहनेके लिए हम अर्थात् भारतके गरीब लोग १,८०० पौंड हरसाल खर्च करते हैं। इनमें से ५५० पौंड श्री सैयद हुसैनको सम्पादक और सचिवकी हैसियतसे अक्तूबरसे शुरू करके साल-भरमें मिल जाते हैं। श्री फैनर ब्रॉकवेको संयुक्त सम्पादक और सचिवकी हैसियतसे ५५० पौंड, श्री जी० पी० ब्लिजेन्डको सचिवकी हैसियतसे १०० पौंड, टाइपिस्टको १५० पौंड और क्लर्कको १५० पौंड मिल जाते हैं।

पत्रकी जिन्दगीमें उतार-चढाव आते रहे हैं; किन्तु प्रचारकी दृष्टिसे तो यह कभी सफल नहीं रहा। इसकी कोई रचनात्मक नीति नहीं रही। जिस साप्ताहिकके कुल ५०० पाठक हों, ऐसे तीसरे दर्जेके साप्ताहिकपर १,८०० पौंड खर्च कर डालना और उसीकी अन्य व्यवस्थापर अतिरिक्त १,५०० पौंड — इस तरह कुल मिलाकर ३,३०० पौंड खर्च करना हमें एक जबरदस्त अपव्यय लगता है। — सम्पादक, 'यंग इंडिया')

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०–१०–१९२०

२०७. लाहौरमें कालेजके विद्यार्थियोंसे बातचीत[1]

२० अक्तूबर, १९२०

जिस पंजाबके लिए सारा देश यह लडाई लड़नेको तैयार हो गया, क्या वह पंजाब सोता ही रहेगा? तुम कदाचित् खिलाफतको भूल जाओ, परन्तु पजाबको नही भूल सकते। जलियाँवालासे हम बहादुर बने, परन्तु जब पेटके बल रेगनेका अवसर आया तब कायर बन गये; जलियाँवालासे भारत ऊँचा उठा है, परन्तु पेटके बल रेगनेसे भारत नीचे गिरा है। विद्यार्थियोंसे यूनियन जैकको सलाम कराना तो इससे भी अधिक कड़वा था। कर्नल जॉन्सनने तुम्हारी नाक काटी और तुमने कटवाई। मेरा सत्याग्रह कभी इज्जत गँवानेको नही कहता। पजाबमें मारे गये लड़कोंकी आत्मा यहाँ आकर पुकार रही है कि तुम क्या करना चाहते हो? तुम सर माइकेलको फाँसीपर चढाना चाहते हो, तो तुम्हें भी फाँसीपर चढ़नेके लिए तैयार रहना चाहिए।

× × ×

जब [ट्रान्सवालमें] बोअर युद्ध हो रहा था, तब स्मट्स[2] और हर्टजोग[3]-जैसे नामी वकील वकालत छोडकर लड़ाईमे कूद पड़े थे। बोअर स्त्रियाँ लड़कोको सिखाती थी कि एक भी शब्द अग्रेजीका न बोले। तब यहाँ स्त्री-पुरुष — उदाहरणार्थ पण्डित रामभजदत्त चौधरी और सरलादेवी — एक-दूसरेके साथ अग्रेजीमें पत्र-व्यवहार करते है। इसमे मुझे नामर्दी दिखाई देती है। ट्रान्सवालकी स्त्रियाँ तो झाँसीकी रानियाँ थी। हमारी स्त्रियोमे ऐसी बहादुरी कब आयेगी? मै अग्रेजी भाषापर मोहित हूँ। 'न्यू टेस्टामेन्ट' पर मै फिदा हूँ। टॉल्स्टॉय और 'कुरान' को मैंने अग्रेजीके माध्यमसे ही पढा है। परन्तु भारतीयोके बीच आपसमे अग्रेजी भाषाका काममें लिया जाना मै हरगिज बरदाश्त नही कर सकता। मै तो मानता हूँ कि हिन्दुस्तानका जो पिता अपने पुत्रके साथ, जो पति अपनी पत्नीके साथ अग्रेजीमे पत्र-व्यवहार करता है वह नामर्द है। जब मै अग्रेजका समकक्ष हो जाऊँगा, तभी उसकी कोई चीज काममे ले सकूँगा। बोअर लोगोकी दूसरी कुर्बानी वेरीनिगिंगकी सन्धिके बाद की थी। स्मट्स और बोथाने इग्लैंडके दिये हुए सुधारोको ठुकरा दिया, सब जगह असहयोग हुआ और वह तभी बन्द हुआ जब लोगोको वाछित स्वतन्त्रताका सविधान मिला।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३१-१०-१९२०

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे सकलित। यह बातचीत रामभजदत्त चौधरीके घर हुई थी, जहाँ गाधीजी उस समय ठहरे हुए थे।

२. जनरल स्मट्स (१८७०-१९५०); दक्षिण आफ्रिकी राजनीतिज्ञ; प्रधान मन्त्री (१९१९-२४ और १९३९-४८)।

३. १८६६-१९४२; दक्षिण आफ्रिकी राष्ट्रवादी नेता और राजनीतिज्ञ; दक्षिण आफ्रिका संघके प्रधान मंत्री १९२४-३९।

२०८. भाषण : भिवानी सम्मेलनमें

२२ अक्तूबर, १९२०

महात्माजीने कहा कि भगवान्‌को माननेवाले लोगोंके लिए ऐसी सरकारको सहयोग देना सम्भव नहीं। स्वराज्य प्राप्त करनेके केवल दो मार्ग है — एक शक्ति-का, दूसरा शान्तिपूर्ण असहयोगका। हिन्दू और मुसलमान, दोनोंने असहयोगका मार्ग स्वीकार कर लिया है। स्वराज्य प्राप्त करनेके पहले दो बातें पूरी हो ही जानी चाहिए। एक तो जनतामें पूरी-पूरी एकता और दूसरी सरकारसे असहयोग। महात्माजीने कहा कि असहयोगके कार्यक्रममें मेरा प्रबल विश्वास है। वह भारतीयोको आजाद कर सकता है और साल-भरके भीतर स्वराज्य दिला सकता है। ईश्वर स्वार्थ-हीन बलिदान चाहता है। भारतीयोंको सरकारी अदालतों, सरकारी स्कूलों, सरकारी नौकरियों, पदवियों और कौंसिलोंका बहिष्कार कर देना चाहिए। उन्हे चाहिए कि वे हाथका कता-बुना खद्दर पहनें, स्वयं अपनी पंचायतें कायम करें और दूसरी चीजोका ध्यान छोड़ दें। हिन्दू और मुसलमानोंकी पूर्ण एकता भारतको स्वतन्त्रता और मुस्लिम भाइयोंको खिलाफतकी समस्यामें मदद देनेवाली सिद्ध होगी।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, २७-१०-१९२०

२०९. स्वराज्य सभा

'अखिल भारतीय होमरूल लीग' को अब 'स्वराज्य सभा' के नामसे पुकारा जायेगा। इसके सविधानको बदल दिया गया है। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि 'होमरूल' नाम मुझे सदैव अटपटा लगता था। यदि हम अपने अन्यतम आदर्शको भी विदेशी नामसे पुकारते है तो क्यों न हम स्वयं विदेशी बननेके आदर्शको अपने संग लेकर चलें? मै कितने ही शिक्षित भारतीयोंको जानता हूँ जो यह मानते है कि हिन्दुस्तानका उद्धार पाश्चात्य पद्धति और पाश्चात्य आदर्शोंका अनुकरण करनेसे ही सम्भव है। ऐसे सज्जनोंमे एक श्री चिन्तामणि[1] है। उनके प्रति मेरे मनमें आदर-भाव है। उनके मनमे भी हिन्दुस्तानके प्रति कोई कम प्रेमभाव नही है और वे स्वार्थबुद्धि-से ही प्रेरित होकर अधिकाशतया अंग्रेजी रीति-रिवाजोको पसन्द करते हो सो बात भी नही है। अपितु उन्हे ऐसा महसूस होता है कि हम अग्रेज बनकर ही अग्रेजोका मुकाबला कर सकेंगे। कुछ-एक भारतीय, जिन्होने ईसाई धर्मको अगीकार कर लिया

१. चिरावुरी यज्ञेश्वर चिन्तामणि (१८८०-१९४१); इलाहाबादके प्रसिद्ध दैनिक लीडरके सम्पादक।

है, यही मानते है कि जबतक हिन्दू-मुस्लिम दोनो ईसाई नही बन जाते तवतक हिन्दुस्तानका उद्धार असम्भव है।

लेकिन जैसे जनताको अग्रेज अथवा ईसाई बननेके आदर्श पसन्द नही आ सकते वैसे ही मुझे 'होमरूल' शब्दका प्रयोग करना बिलकुल पसन्द न था। 'स्वराज्य' में जो अर्थ है, जो बल है वह 'होमरूल' मे नही है। स्वराज्य शब्दका अर्थ हिन्दू, मुसलमान और अनपढ भी समझ सकते है, 'होमरूल' का अर्थ उनकी समझसे बाहर है। इसी कारण होमरूल शब्दका त्याग करके हमने स्वराज्य शब्दको उसका उचित स्थान प्रदान किया है।

इसके उपरान्त हमने जो अन्य महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये है वे भी जानने और विचार करने योग्य है। पहले हमारा आदर्श ब्रिटिश साम्राज्यकी छत्रछायामे ही रहकर उपनिवेशोंकी तरह होमरूलका उपयोग करना था। इस आदर्शके बदले अब यह परिवर्तन किया गया है कि भारतीय प्रजा जिस तरहका स्वराज्य चाहेगी, हम उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करेगे। प्राप्त साधनोके सम्बन्धमे आजतक झगड़ा होता रहता है; इसलिए साधनोमें जो प्रभावकारी और नि शस्त्र हों, शान्तिपूर्ण हो, ऐसे समस्त साधनोको स्थान प्रदान किया गया है। परिणामस्वरूप हमारा वर्तमान आदर्श यह है कि हमें तलवारका प्रयोग किये बिना स्वराज्य प्राप्त करना है।

जनताकी आवाज ही काग्रेसकी आवाज है। होमरूल लीग हमेशा काग्रेसकी सहायक सस्था रही है और स्वराज्य सभा भी उसकी सहायक सस्था रहना चाहती है। इसलिए काग्रेसके सविधानमे स्वराज्यका जो अर्थ किया गया है इसमें भी फिलहाल वही रखा गया है, तथापि इसका अभिप्राय यह है कि स्वराज्य सभा काग्रेसके सविधानमे फेरफार करानेका सतत् प्रयत्न करेगी।

इन सुधारोको मैं निर्दोष और आवश्यक मानता हूँ। इनका हेतु स्पष्ट है। ये सुधार बहुत विचार-विमर्श करनेके बाद किये गये है। उचित सविधानकी रचनाके लिए श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री राजगोपालाचारी, श्री उमर सोबानी तथा बम्बई शाखाके प्रमुख श्री जिन्ना और श्री जयकरकी[1] समिति नियुक्त की गई थी। सविधानपर — एक बार कलकत्तामे और एक बार बम्बईमे — सभाओमे विचार-विमर्श किये जानेके बाद प्रस्ताव बहुमतसे पास हो गया।

तथापि वकील-वर्ग और दूसरे अनेक भाइयोने स्वराज्य सभासे त्यागपत्र दे दिया है। त्यागपत्रपर आजतक के अनेक नामाकित पुरुषोके हस्ताक्षर है। मुझे इन त्यागपत्रोंसे दु ख हुआ है। इसमे जो कारण दिये गये है उन्हें पढकर मुझे विशेष दु ख हुआ। स्वराज्य सभाके लिए इन भाइयोकी सहायता मूल्यवान थी। तथापि जहाँ आदर्शोंकी बात आती है वहाँ प्रियसे-प्रियजनोंके वियोगको भी सहन करना पडता है और उसीमें आनन्द मनाना पड़ता है।

आइये अब तनिक त्यागपत्रपर विचार करे।

१. मुकुन्दराव रामराव जयकर (१८७३-१९५९); बम्बईके वकील और उदार दलीय नेता; पूना विश्वविद्यालयके उप-कुलपति ।

सबसे पहले मुझपर लगाये गये आरोपकी जाँच करें। श्री जिन्नाने यह तर्क दिया है कि जबतक तीन चौथाई मतोसे सशोधनको स्वीकार नही किया जाता तवतक वह सशोधन बाकायदा नही माना जायेगा। इसका कारण उन्होंने यह बताया कि होमरूल लीग परिषद्के प्राचीन सविधानके अनुसार किसी भी सशोधनको तीन चौथाई मतोके बिना स्वीकार नही किया जा सकता। उसपर मैंने यह व्यवस्था दी कि होमरूल लीग परिषद्की आम समितिने परिषद्पर जो रोक लगाई है वह रोक स्वय आम समितिपर लागू नही होती। आम समितिको बहुमतसे निर्णय करनेका सामान्य अधिकार है और वह परिषद्पर लगाई गई रोकसे रद नही होता। अपने इस कथनपर मैं अब भी कायम हूँ। मेरे द्वारा दी गई इस व्यवस्थाके सम्बन्धमे श्री जिन्ना और उनके साथियोने जिस विशेषणका प्रयोग किया है उसके सम्बन्धमे मैं वाद-विवादमे पडनेकी जरूरत नही समझता।

लेकिन मैंने यह सोचकर कि श्री जिन्ना-जैसे व्यक्तिने जो विचार प्रकट किये हैं, और श्री जयकर-जैसे व्यक्तिने जिनका अनुमोदन किया है उनके सम्बन्धमें मुझे खूब सोच-विचार करना चाहिए, मैंने दूसरे वकीलोसे सलाह-मशविरा किया। उन्होने भी मेरे कथनका समर्थन किया और कहा कि इसके अतिरिक्त मैं कुछ और कह ही नही सकता था। यदि कोई दूसरी बात कहता तो स्वेच्छाचारी कहलाता।

त्यागपत्र देनेका दूसरा कारण उन्होने यह बताया कि स्वराज्य सभाने काग्रेसके सविधानकी अवमानना की है। यह बात ठीक नही है, क्योकि मैं पहले कह आया हूँ कि जबतक काग्रेसके सविधानमे परिवर्तन नही किया जाता तबतक कांग्रेसने स्वराज्यका जो अर्थ किया है हम उसे ही मान्य रखेंगे।

तीसरा आरोप कुछ गम्भीर है। श्री जिन्ना और उनके साथी लिखते हैं कि स्वराज्य प्राप्त करनेके उपायोसे सम्बन्धित खण्डसे यही अर्थ निकलता है कि स्वराज्य सभा कानून विरोधी आन्दोलन भी चला सकती है। यह अर्थ कुछ हदतक सही है, क्योकि उपायोंमे सविनय अवज्ञाका समावेश हो सकता है, ऐसी मेरी मान्यता है। इसलिए इस बातका अवकाश रखना मैं उचित समझता हूँ। सविधान अथवा कानूनके अन्तर्गत कौन-कौनसी बाते आती हैं, यह बताना हमेशा ही आसान नही होता। कोई कहता है कि असहकार गैरकानूनी है। किसीका कहना है कि सविनय अवज्ञा कानूनके विरुद्ध है। इस तरहके धर्मसकटमे न पडनेकी वजहसे उपायोसे सम्बन्धित खण्डमे छूट रखी गई है। लेकिन इसका कदापि यह अर्थ नही कि स्वराज्य सभा कानूनकी मनमानी अवज्ञा करनेके तत्वको उत्तेजन देगी। शान्तिपूर्ण उपायोंका ही सहारा लिया जा सकता है। सम्बन्धित खण्डमें की गई इस व्यवस्थाके अनुसार सब तरहकी अविनयपर प्रतिबन्धकी बात आ जाती है। उपर्युक्त खण्डका उद्देश्य यह है कि वे सभ्य तरीकोका परित्याग न करते हुए जो-जो उपाय उचित जान पडे उन्हें अपनानेमे हमारे सामने कोई दिक्कत न आये।

स्वराज्य सभाके सविधानमे कुछ भी अनुचित नही है—यह बात मैं पहले ही बता चुका हूँ। तथापि इन सब नेताओने सभाका क्यो त्याग किया है? इसका सीधा-

सादा उत्तर तो यह है कि देश इस समय इतनी तीव्र गतिके साथ आगे बढ रहा है कि हमारे नेता उसकी गतिको सहन नही कर सकते। ऐसी परिस्थितिमे दु:खकी अनुभूति होनेके बावजूद आगे कदम बढाये बगैर हमारा छुटकारा नही है। हिन्दुस्तानके सम्मुख ऐसा समय फिर सौ वर्षोतक नही आयेगा। इस अवसरको हम छोड नही सकते। हम केवल इतनी ही उम्मीद करते है कि नेतागण जब जन-प्रवाहके वेगको समझेगे तब वे भी इस प्रवाहमें बहे बिना रह नही सकेंगे। इस बीच हमारा कर्त्तव्य यह है कि हम विनयपूर्वक अपने मार्गपर चलते रहे, अपने नेताओके मतभेदको सहन करे, उनके प्रति आदर-भाव रखे लेकिन उनके मतभेदसे घबराये बिना हमे दृढता, शान्ति और नीतिपूर्वक आगे बढ जाना चाहिए। साँचको आँच आ ही नही सकती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४-१०-१९२०

२१०. पत्र: अलीगढ़ कालेजके ट्रस्टियोंको

२४ अक्तूबर, १९२०

सज्जनो,

आप भारतके सभी मुसलमान विश्वके एक अत्यन्त नाजुक विषयपर अपना निर्णय देनेके लिए इकट्ठे होने जा रहे है। मैंने सुना है कि आपने अपनी बैठकके अवसरपर सरकार और पुलिसकी मदद माँगी है। यह अफवाह सच हो तो आप निश्चित समझिये कि ऐसा करके आप बहुत बडी भूल करेगे। अपने सर्वथा घरेलू मामलेमे आपको न तो सरकारी हस्तक्षेपकी आवश्यकता है और न पुलिसके सरक्षण की। अलीभाई या मैं, दोनोंमे से कोई भी पशुबलकी लडाईमे थोडे ही लगे है। हमारी छेडी हुई लड़ाईमे एकमात्र हथियार जनमत है और यदि हम जनताको अपने पक्षमें न रख सके, तो हम अपनी हार स्वीकार कर लेगे। [हमारे बीचके] इस झगड़ेमे भी लोकमतकी परीक्षा आपको बहुमत मिलनेसे ही होगी। इसीलिए इस मामलेकी पूरी चर्चा कर लेनेके बाद भी आप बहुमतसे इस नतीजेपर पहुँचे कि यदि कालेज या स्कूलके छात्र संस्थाको सरकारसे असम्बद्ध करने और सरकारी सहायता अस्वीकृत करनेके विषयमे अपना आग्रह नही छोड़ देते तो उन्हे छात्रावासमे रहने या केवल कालेजमें आकर पढते रहनेका अधिकार नही है, तो वे शान्तिपूर्वक चले जायेगे। उस हालतमें यथासम्भव अलीगढ़मे और न हो सके तो अन्यत्र, हमने उनकी शिक्षा जारी रखनेका विचार किया है। इच्छा तो यह है कि उनका धर्मनिरपेक्ष शिक्षण जितना बिलकुल जरूरी है उससे अधिक एक क्षणके लिए भी न रुके परन्तु यह शिक्षा इस्लामके कानून और भारतकी इज्जतके अनुसार देनेकी हमारी दिली ख्वाहिश है। मैंने इस बारेमें मशहूर उलेमाओकी राय ले ली है और उनका यह मत है कि जिस सरकारने पवित्र

खिलाफतको नष्ट करने या जजीरत-उल-अरवके[1] इस्लामी अधिकारमें हस्तक्षेप करनेके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रयत्न किये हैं, उससे कोई धर्मनिष्ठ मुसलमान सहायता नहीं ले सकता। यह तो आप भी हमारे जितना ही जानते हैं कि इस हुकूमतने भारतकी इज्जतको किस प्रकार इरादतन मिट्टीमें मिलाया है। इन कारणोंसे, लोगोंका जोश कावूमें रखनेकी सावधानीके साथ, जनता सरकारके साथका सारा स्वेच्छापूर्ण सम्बन्ध तोड़ रही है। ऐसी हालतमें मेरा खयाल है कि आपको कमसे-कम इतना तो करना ही चाहिए कि आइन्दा सरकारी मदद लेनेसे इनकार कर दे, अपनी महान् सस्थाको सरकारसे स्वतन्त्र वना ले और मुस्लिम विश्वविद्यालयके लिए मिला हुआ चार्टर (अधिकारपत्र) लौटा दे। और यदि आप इस्लाम और भारतकी पुकार अनसुनी कर दें, तो अलीगढ़-संस्थाके छात्रोको, जिस सरकारने इस्लाम और भारतकी वफादारीका सारा हक खो दिया है उसकी छत्रछाया स्वीकार करनेवाली, आपकी सस्थाकी परछाई-तक छोड़ देनी चाहिए। तव उन्हे इस अलीगढके स्थानपर अधिक विशाल, अधिक उदात्त और अधिक निर्मल अलीगढ़ — उसके महान् संस्थापकके हृदयकी आकाक्षाओको पूरा करनेवाला अलीगढ — खड़ा करना चाहिए। मेरी तो कल्पनामें भी नही आ सकता कि स्वनामधन्य स्वर्गवासी सर सैयद अहमद[2] अपनी महान् सस्थाको मौजूदा सरकारके अधिकार या प्रभावमें एक क्षण भी रहने देते।

चूँकि मैं अलीगढ संस्थाको सरकारी नियन्त्रण और सरकारी सहायतासे अलग करानेके विचारका जन्मदाता हूँ, इसलिए मेरा खयाल है कि आपकी चर्चाओंके समय यदि मैं आपकी वैठकमे उपस्थित रहूँ, तो शायद सहायक सिद्ध हो सकता हूँ। इसलिए यदि मुझे उपस्थित रहनेकी आज्ञा देंगे, तो मैं आनन्दसे अपनी सेवाएँ अर्पण करनेको तैयार हूँ। इस समय मैं वम्बई जा रहा हूँ और वहाँ आपके उत्तरकी प्रतीक्षा करूँगा।

परन्तु आप मुझे सभामें वुलायें या न वुलायें, फिर भी कृपा करके इस साफ घरेलू मामलेके वीच सरकारको हरगिज न डालिये।

और आपकी मार्फत मुझे इस सरकारको भी थोडा-सा कह लेने दीजिये। आजकल मेरे और अली भाइयोके वारेमे सरकारके इरादोके सम्वन्धमे अफवाहें उड़ती रहती हैं। मैं आशा रखता हूँ कि सरकार लड़ाईको अपने मार्गपर शान्तिपूर्वक अग्रसर होने देगी और, ऐसा हो सके, इसलिए हमारी स्वतन्त्रतापर अकुश नही लगायेगी। हम अपनी वातका प्रचार अत्यन्त वैधानिक रीतिसे करनेकी कोशिश कर रहे हैं। हम प्रयत्न कर रहे हैं कि सरकारको लोगोकी इच्छाके सामने झुकायें और ऐसा करनेको वह तैयार न हो, तो पशुवलका आश्रय लेकर नही, परन्तु शुद्ध लोकमतके जोरसे उसे उलट दें। हम मानते हैं कि सरकारकी शैतानियतका पर्दाफाश करना और लोगोंकी अपनी इच्छा शब्दोमें नही वल्कि कार्यके द्वारा, यानी सरकारसे अपना सारा सम्वन्ध

१. हेजाजके पवित्र स्थान। २९ मार्च, १९२०को भारत सरकारने इस वातकी पुष्टि की कि ये स्थान स्वतन्त्र मुस्लिम सत्ताके ही अधीन रहेंगे।

२. १८१७–१८९८; शिक्षा-शास्त्री एवं सुधारवादी; मोहम्मडन ऐंग्लो ओरिएण्टल कालेज, अलीगढ़के संस्थापक।

तोड़कर, व्यक्त करनेके लिए कहना सर्वथा वैध, न्यायपूर्ण और अच्छा काम है। और लोगोसे सरकारके साथ असहयोगकी बात हम उनकी पशु-वृत्तियोको उकसाकर नही बल्कि उनकी बुद्धि और उनके हृदयको जगाकर ही कहते है। फिर भी, यदि सरकार-का इरादा विचार-स्वातन्त्र्य और शान्तिपूर्ण कार्यतक को दबा देनेका हो, तो मै आशा रखूँगा कि वह हमारे विरुद्ध नजरबन्दी या किसी खास प्रान्तमे ही रहने या किसी विशेष स्थानपर न जाने आदिका कोई हुक्म जारी न करके हमे सीधा कैद ही कर लेगी। कारण, हमारी हार्दिक इच्छा है कि इस घडी हमारे अपने ही हाथो कानूनका सविनय भग न हो। परन्तु यदि हमारी घूमने-फिरनेकी स्वतन्त्रतापर अकुश रखनेका कोई हुक्म हमपर लगाया जायेगा, तो लाचार होकर उसका सविनय अनादर करना हमारा फर्ज हो जायेगा। क्योकि जबतक हमारी घूमने-फिरनेकी आजादीपर प्रत्यक्ष बन्धन न लगा दिये जाये, तबतक अपने कार्यके हितमे उसका उपयोग करते रहनेके लिए हम कृतसकल्प है।

कष्टके लिए सविनय क्षमाप्रार्थी।

आपका सच्चा सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २७-१०-१९२०

२११. पत्र: मुहम्मद अली जिन्नाको

लैबर्नम रोड
बम्बई
२५ अक्तूबर, १९२०

प्रिय श्री जिन्ना,

मै अभी एक लम्बे दौरेसे लौटा हूँ। आपका और आपके १९ अन्य साथियो द्वारा मेरे नाम लिखा गया वह पत्र मुझे मिल गया है जिसमे आप लोगोने स्वराज्य सभा-की सदस्यतासे त्यागपत्र दिया है — स्वराज्य सभा जो अभीतक अखिल भारतीय होमरूल लीगके नामसे जानी जाती थी।

मुझे इस बातका बहुत अफसोस है कि आप और आपके साथ हस्ताक्षर करनेवाले अन्य सज्जनोने यह गम्भीर कदम उठाना उचित समझा।

त्यागपत्र देनेका कारण बताते हुए आपने कहा है कि जिस बैठकमे उक्त परिवर्तन किया गया और उसमे जो कार्य-विधि अपनाई गई थी वह "लीगके नियमो और विनियमोके विरुद्ध" थी और मैने उस कार्य-विधिको उचित बताते हुए जो निर्णय दिया वह गलत भी था और मनमाना भी।

मेरा ऐसा खयाल है कि बैठकमें जो कार्य-विधि अपनाई गई थी वह नियमों और विनियमोंके अनुकूल थी और मेरा निर्णय (रूलिंग) भी बिलकुल सही था। आपने यह मुद्दा उठाया था कि तीन चौथाई बहुमत नही हुआ है। आपने जिन विनियमोंकी चर्चा की थी, उनका सम्बन्ध लीगकी कौंसिल द्वारा विधानमें परिवर्तन करनेसे था और उसके अनुसार तीन चौथाई मत मिलनेपर ही वह वैध हो सकता था। सम्बन्धित बैठक, जिसमें मतदान हुआ, लीगकी कौंसिलकी बैठक नहीं थी, बल्कि वह लीगकी सामान्य सभा थी। और मैंने यह निर्णय दिया था कि ऐसा कोई नियम नही है जिसके द्वारा तीन चौथाई मत प्राप्त किये बिना विधानमें परिवर्तन न करनेके लिए लीगने अपनेको बाध्य माना हो। इसलिए लीग अपने विधानमें किसी भी बहुमतसे परिवर्तन कर सकती है और वैसा परिवर्तन करना उचित हो सकता है। यदि मैंने नियमोंकी आपकी व्याख्या या निष्कर्षको स्वीकार कर लिया होता तो मेरा खयाल है कि उक्त निर्णय अवैध अथवा मनमाना हो जाता। चूँकि कार्य-विधिको चुनौती आपने दी थी और चूँकि कानूनकी आपकी जानकारीके बारेमें मेरी बड़ी ऊँची राय है, इसलिए मैंने उक्त बैठकके बाद अपने निर्णयकी बारीकीसे जाँच की और जिस वकीलसे भी मैंने इस विषयमें सलाह ली, उसने मुझे यही बताया कि जो निर्णय मैंने दिया उसके सिवाय कोई अन्य निर्णय देना मेरे लिए सम्भव ही नही था।

आपकी दूसरी आपत्ति यह है कि नये विधानमें आपने "ब्रिटिश सम्बन्धों" का उल्लेख ही छोड दिया है तथा "अवैधानिक और गैर-कानूनी कार्रवाइयों" की भी इसमें इजाजत दी गई है।

जहाँतक ब्रिटिश सम्बन्धोंका खयाल है, मेरी समझमें आपका कहना बिलकुल गलत है। क्योंकि नये विधान द्वारा स्वराज्य शब्दका अर्थ जान-बूझकर सीमित किया गया है और उसमें मन्शा यही है कि सभाको कांग्रेसके सिद्धान्तके प्रति पूरी तरह वफादार रखा जाये। इस महत्त्वपूर्ण परिवर्तनको स्वीकार करनेके पहले जो बहस हुई थी, मैं आपको उसकी याद दिलाना चाहता हूँ। एकके-बाद-एक वक्ताने इस बातको स्पष्ट किया कि व्याख्या सम्बन्धी धारा जान-बूझकर इस विचारसे डाली गई है कि कांग्रेससे सभाकी सम्बद्धता साफ, पक्की और सन्देहसे परे रहे।

मेरी रायमें आपको इस बातकी कोई जरूरत नही है कि वक्ताओंने, जिनमें मैं भी शामिल हूँ, जो विचार प्रकट किये हैं उन्हें आप भी मान लें। यदि सम्भव होता, तो जिस तरह मैंने अपने भाषणोंमें साफ तौरसे कहा है उसी तरह मैं निश्चय ही किसी भी सिद्धान्तके लिए साफ तौरसे इस बातकी जरूर घोषणा करता कि अपने देशके लिए स्वराज्य हमारा उद्देश्य है, फिर चाहे वह ब्रिटिश सम्बन्धोंके साथ प्राप्त हो, चाहे उनसे अलग होकर। मैं वैसे इस सम्बन्धके खिलाफ नही हूँ, किन्तु मैं उसे बहुत अहमियत भी नही देना चाहता। उस सम्बन्धकी खातिर एक क्षणके लिए भी मैं भारतको दासताकी बेड़ी पहने नही रहने देना चाहता। किन्तु मैंने और अन्य लोगोंने, जो मेरी ही तरह सोचते हैं, अपनी महत्त्वाकांक्षाको इस दृष्टिसे मर्यादित कर लिया है कि हम कांग्रेसको अपने साथ लेकर चल सकें और इस प्रकार उस संस्थासे सम्बन्धित रहनेके

योग्य बने रहें। मैं कहना चाहता हूँ कि आपने जो सशोधन पेश किया था और सभाने जिस मौलिक प्रस्तावको स्वीकार किया है, उन दोनोमे कोई बडा अन्तर नही है। अन्तर इतना ही है कि मूल प्रस्ताव देशके सामने शुद्ध स्वराज्यके आदर्शकी दिशामें काम करनेकी बात सामने रखता है। इसलिए मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि परिवर्तन सम्बन्धी आपकी यह आपत्ति (अगर आप उठाना ही चाहे) तो इतनी महत्त्वपूर्ण नही है कि आपको सस्था छोडनी पडे।

अब बच जाती है पद्धति-सम्बन्धी आपकी आपत्ति। आपने उक्त धारा २ का यह अर्थ लगाया है कि उसके द्वारा "अवैधानिक और गैर-कानूनी कार्रवाइयो" की छूट दी गई है। मै इस अर्थको बिलकुल स्वीकार नही करता। आप यह तो मानेंगे ही कि "अवैधानिक" और "गैर-कानूनी" बिलकुल पारिभाषिक शब्द है। मद्रासके एक भूतपूर्व एडवोकेट जनरल असहयोगको "अवैधानिक" मानते है। और अगर मै आपकी बात ठीक-ठीक समझा हूँ, तो आप उसे पूरी तरह "वैधानिक" मानते है। कांग्रेसके विशेष अधिवेशनके अध्यक्षने सोच-समझकर निर्णय दिया कि मेरा प्रस्ताव अवैधानिक नही था। मैने भी लगातार २० वर्षोतक खासी वकालत की है और मेरे लिए ब्रिटिश विधानके अन्तर्गत हिंसात्मक आन्दोलनके अतिरिक्त किसी अन्य अवैधानिक उदाहरणकी कल्पना कर सकना कठिन है। सभाके विधानको असंदिग्ध शब्दोमे हिंसासे बरी रखा गया है।

यही बात "गैर-कानूनी" शब्दके बारेमे भी लागू है। विधिके ज्ञाता उसकी व्याख्याके सम्बन्ध मे एकमत नही है। डाक्टरको लानेके लिए अगर कोई साइकिल-सवार बिना रोशनी लगाये निकल पड़े तो यह कानूनके खिलाफ तो होगा; लेकिन यह नही कहा जा सकता कि वह "गैर-कानूनी" हलचलमे लगा हुआ है। वह बड़ी खुशीसे जुरमाना अदा कर देता है और इस तरह कानूनको मानता है। किसी अत्याचारपूर्ण आदेशकी अवज्ञा करना कानूनके खिलाफ हो सकता है, किन्तु मेरी रायमे वह "गैर-कानूनी हलचल" नही है। ऐसा व्याख्यान देना भी गैरकानूनी हलचल नही है, जो किसी जल्दी चिढ जानेवाले न्यायाधीशकी रायमे विद्रोहात्मक है।

मैंने आपके सामने ये जो रोजमर्राके उदाहरण पेश किये है, उनसे मेरा तात्पर्य यह दिखाना है कि जो देश अपने जीवन, सम्मान और धर्मकी रक्षाके लिए लड रहा हो, उसका अपने-आपको पेचीदे पारिभाषिक शब्दोमे बाँध रखना बहुत ही खतरनाक बात है। यह तो ठीक ही है कि सभी सार्वजनिक संस्थाएँ देशकी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी पद्धतियोके विषयमे अलग-अलग सोचे। मै स्वयं अवैधानिक और गैर-कानूनी ढगोको बहुत नापसन्द करता हूँ, किन्तु मै इनको बहुत बढा-चढाकर भी नही देखना चाहता और न ब्रिटिश सम्बन्धको ही बढा-चढाकर देखना चाहता हूँ।

इसलिए मै आपसे और आपके मित्रोसे इस बातपर पुनर्विचार करनेकी प्रार्थना करता हूँ कि आप लोगोने एक ऐसी सस्थासे, जिसे आप परिश्रम और स्नेहके साथ पोषित करते रहे है, जल्दीमें अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है। देशके सामने नई जिन्दगीका जो मैदान खुल गया है, यदि आप उसमें हाथ बँटाना चाहते है और देशको

अपने अनुभव और मार्गदर्शनका लाभ पहुँचाना चाहते हैं और यदि इसमें आपको गैर्म कोई बात नहीं दिखाई देती जो आपकी अन्तरात्माके बिलकुल विरुद्ध हो, तो मैं आपसे और आपके साथ हस्ताक्षर करनेवाले सज्जनोंसे इन त्यागपत्रोंपर पुनर्विचार करनेकी प्रार्थना करता हूँ। किन्तु यदि दुर्भाग्यसे आप अपने निर्णयको बदलना असम्भव मानें, तो भी आप सभाको अनियमित कार्रवाई करने और गैरकानूनी या मनमाना ढंग अपनानेके लांछनसे मुक्त कर देंगे। और इस पत्रमें आपने अपने निर्णयके जो कारण सूचित किये हैं, उनसे भिन्न किन्हीं अन्य आधारोंपर निर्णय लेनेकी कृपा करेंगे।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २६–१०–१९२०

२१२. पत्र : भारतके अंग्रेजोंके नाम

प्रिय मित्र,

मैं चाहता हूँ कि भारतमें प्रत्येक अंग्रेज इस पत्रको देखे और इसपर अच्छी तरह विचार करे।

सबसे पहले तो मैं आपको अपना परिचय दे दूँ। मेरी नम्र रायके अनुसार ब्रिटिश सरकारके साथ अबतक जितना सहयोग मैंने किया है, उतना और किसी भारतीयने नहीं किया होगा। किसी भी मनुष्यको विद्रोह या बगावत करनेकी प्रेरणा देनेवाली कठिन परिस्थितियोंमें रहकर मैंने २९ सालतक लगातार आपके साम्राज्यकी सेवा की है। विश्वास रखिये कि वह सेवा मैंने आपके कानूनों द्वारा नियोजित सजाओंके डरसे या और किसी भी स्वार्थके हेतुसे नहीं की। वह सहयोग स्वतन्त्र और स्वेच्छापूर्ण था और इसी विश्वाससे प्रेरित होकर किया गया था कि ब्रिटिश सरकार जो-कुछ कर रही है वह कुल मिलाकर भारतके हितमें ही है। इसी विश्वासके कारण मैंने साम्राज्यकी खातिर अपने-आपको चार बार जोखिममें डाला . (१) बोअर-युद्धके समय। उस समय मैं एक आहत-सहायक टुकड़ीका नायक था, इस टुकड़ीकी सेवाओंके बारेमें जनरल बुलरने अपने खरीतेमें विशेष उल्लेख किया था; (२) नेटालमें उठे जुलू-विद्रोहके समय। उस समय भी मेरे अधीन वैसी ही आहत-सहायक टोली थी, (३) पिछले महायुद्धके प्रारम्भमें। उस वक्त भी मैंने ऐसा ही एक दल खड़ा किया था। उसके सिलसिलेमें ली गयी अत्यन्त श्रमपूर्ण तालीमके परिणामस्वरूप मुझे सख्त प्लुरिसीका रोग हो गया था; और अन्तमें (४) दिल्लीमें हुई युद्ध-परिषद्के समय। मैंने लॉर्ड चेम्सफोर्डको सैनिक भरतीमें मदद देनेके बारेमें दिये गये वचनका जी-जानसे पालन करके इस कामके लिए खेड़ा जिलेमें रहकर और लम्बी-लम्बी यात्राएँ करके इतना परिश्रम किया कि उससे मुझे घातक पेचिश हो गई और मरते-मरते मुश्किलसे बचा।

ये सारी सेवाएँ मैंने इसी विश्वासके बलपर की थी कि मेरे इन कामोसे साम्राज्यमे मेरे देशको समान पद मिलेगा। अभी पिछले दिसम्बरतक सरकारपर भरोसा रखकर सहयोग करनेके लिए मैंने अपने देश-बन्धुओसे अनुरोध किया। मुझे तबतक यह आशा थी कि श्री लॉयड जॉर्ज मुसलमानोको दिये गये अपने वचनोका पालन करेगे और सरकार द्वारा पंजाबमे किये गये अत्याचारोकी जो तसवीर प्रकाशमे आयी है उससे उन्हें पजाबियोकी हानिकी पूरी भरपाई करनेकी प्रेरणा मिलेगी। परन्तु श्री लॉयड जॉर्ज द्वारा किये गये विश्वासघात, और आपने जिस ढगसे उनके व्यवहारकी सराहना की, तथा पजाबमें किये गये अत्याचारोपर पर्दा डालनेकी कोशिशके कारण सरकार और उस राष्ट्रकी नेकनीयतीपर से, जो ऐसी सरकारका समर्थन कर रहा है, मेरा सारा एतबार उठ गया है।

यद्यपि आपके शुभ हेतुओपर से मेरा विश्वास उठ गया है, तो भी आपकी बहादुरीको मै पहचानता हूँ और जानता हूँ कि आप जो चीज न्याय और तर्कके सामने झुककर देनेको तैयार नही होते, उसे वीरताके आगे झुककर देनेको रजामन्द हो जायेगे।

साम्राज्यका भारतके लिए क्या अर्थ है, सो देखिये:

ब्रिटेनके लाभके लिए भारतकी सम्पत्तिका शोषण;

रोज बढता हुआ सैनिक खर्च और संसारके किसी भी देशकी अपेक्षा अधिक महँगे प्रशासनिक अधिकारी,

भारतकी दरिद्रताका रत्ती-भर खयाल न कर अपव्ययपूर्ण ढगसे सचालित सारे सरकारी विभाग;

हम लोगोके बीच रहनेवाले मुट्ठी-भर अग्रेजोकी जान कही जोखिममे न पड़ जाये, इस डरसे सभी लोगोके हथियार छीन लेना और उसके परिणामस्वरूप लोगोमें उत्पन्न नपुसकता;

ऐसी अत्यन्त खर्चीली सरकारको चलानेके लिए शराब, अफीम आदि मादक पदार्थोका व्यापार करना;

जनताके उद्वेगको प्रकट करनेके लिए रोज-ब-रोज बढ़ते हुए आन्दोलनको दबा देनेकी खातिर आये दिन दमन और सख्त कानून;

आपके उपनिवेशोमे रहनेवाले भारतीयोके प्रति किया जानेवाला शर्मनाक बरताव और

हमारी भावनाओंकी उपेक्षा करके पंजाबके शासनको दिया गया प्रशसाका प्रमाण-पत्र और मुसलमानोकी भावनाओंका तिरस्कार।

मै जानता हूँ कि यदि हम लड़कर आपके हाथोसे अपना राज्य छीन सके, तो आप इसपर एतराज नही करेगे। आप जानते है कि ऐसा करनेकी हममे ताकत नही है, क्योकि आपने ऐसी खुली और सम्मानित लड़ाई लड़नेकी हमारी स्थिति नही रहने दी। इस प्रकार लडाईके मैदानमे अपनी वीरता साबित करनेके द्वार हमारे लिए बन्द है। आत्माका शौर्य दिखानेका मार्ग अब भी हमारे लिए खुला है। मै जानता हूँ कि

आप इस शौर्यके आगे भी झुकेगे। मै इस समय अपने लोगोमे उसी शौर्यको जगानेका काम कर रहा हूँ। असहयोगका अर्थ है, त्यागकी शिक्षा। जब हमने देख लिया कि इस देशके आपके शासनमे हम दिन-दिन अधिक गुलामीमें फँसते जा रहे है, तब हम आपके साथ और सहयोग किस लिए करे? आज लोग मेरी सलाह मान रहे है, सो मेरे नामके कारण नही। इस मामलेपर विचार करते समय आप मेरे या अली भाइयोके नामको अलग रखें। मै यदि आज लोगोको मुसलमानोका विरोध करनेकी सलाह देनेकी मूर्खता करूँ या अली भाई उस प्रकार मुसलमानोको हिन्दुओके विरुद्ध भड़कानेमें अपने जादुई बलको काममे ले, तो मुझे और उन्हे दोनोको जनता तुरन्त ठुकरा देगी। आज लोग बडी सख्यामे हमे सुननेको इसलिए चले आते है कि हम आपके जुल्मसे कराहते हुए लोगोकी आन्तरिक भावनाओको वाणी देते हैं। अली भाई भी कलतक आपके मित्र थे, जैसा कि मैं था और अब भी हूँ। मेरा धर्म आपके प्रति मेरे अन्तरमे किसी भी प्रकारकी कटुता रखनेकी मनाही करता है। मेरी कलाईमे जोर हो, तो भी मैं अपना हाथ आपके खिलाफ नही उठाऊँगा। मै अपने कष्टसहनसे ही आपको जीतनेकी आकाक्षा रखता हूँ। अली भाई जरूर, उनसे हो सके तो, अपने दीन और देशकी खातिर तलवार उठा लेगे। परन्तु लोगोकी भावनाएँ प्रकट करने और उनके दु:खोका इलाज ढूंढ़नेके काममे उन्होने और मैंने लोगोके साथ साझा किया है।

आप लोक-भावनाके इस चढते हुए ज्वारको दबा देनेके उपायकी तलाशमें है। मै आपको बता दूं कि इसका एक ही उपाय है और वह यह कि रोगके कारणोको ही ढूंढकर दूर कर दिया जाये। अब भी बाजी आपके हाथमें है। भारतके साथ किये गये घोर अन्यायोंके लिए आप प्रायश्चित्त कर सकते है। आप मि० लॉयड जॉर्जसे उनके वचनका पालन करा सकते है। मै आपको यकीन दिलाता हूँ कि उन्होने जो-कुछ किया है, उससे निकलनेकी कितनी ही खिड़कियाँ उन्होने स्वय ही रख ली है। आप वाइस-राय महोदयको अपने पदसे निवृत्त हो जानेको मजबूर कर सकते है और वह जगह योग्य आदमीको दी जा सकती है। आप सर माइकेल ओ'डायर और जनरल डायर दोनोके सम्बन्धमे अपने विचार भी बदल सकते है। लोगोके माने हुए और उनके द्वारा चुने हुए सब मतोके नेताओकी एक परिषद् बुलवाकर भारतवासियोकी इच्छानुसार स्वराज्य प्रदान करनेका रास्ता निकालनेके लिए सरकारको विवश कर सकते है।

परन्तु जबतक आप यह न समझ ले कि प्रत्येक भारतीय सचमुच आपकी बरा-बरीका और आपका भाई है, तबतक आपसे यह नही होगा। मैं आपसे मेहरबानीकी याचना नही करता, मै तो केवल मित्रके नाते एक कठिन प्रश्नका सम्मानित हल आपको सुझा रहा हूँ। दमन और कठोरताका दूसरा रास्ता तो आपके लिए खुला ही है। मैं आपको चेतावनी देता हूँ कि यह उपाय बेकार साबित होगा। उसका आरम्भ तो हो चुका है। सरकारने पानीपतके दो बहादुर आदमियोको स्वतन्त्र मत रखने और प्रकट करनेपर कैद कर लिया है। एक अन्य व्यक्तिपर लाहौरमें मुकदमा चल रहा है। अयोध्यामे एक और आदमी कैद हुआ है। तीसरेका फैसला होनेवाला है। आपको देखना चाहिए कि आपके आसपास क्या हो रहा है।

हमारा आन्दोलन तो दमन और सख्तीकी आशा रखकर ही शुरू हुआ है। मैं आदरपूर्वक आपसे दोनोंमें से अच्छा रास्ता अपनाने और जिस भारतका आप नमक खा रहे हैं, उसके लोगोंका पक्ष लेनेका अनुरोध करता हूँ। उनकी आकांक्षाओंको दबानेका प्रयत्न करना इस देशसे बेवफाई करनेके बराबर है।

आपका विश्वस्त मित्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २७-१०-१९२०

२१३. "दलित" जातियाँ

स्वामी विवेकानन्द 'पंचमों'को[1] "दलित जातियाँ" कहा करते थे। स्वामी विवेकानन्द द्वारा दिया गया यह विशेषण अन्य विशेषणोंकी अपेक्षा निस्सन्देह अधिक सटीक है। हमने उनका दलन किया है और परिणामतः स्वयं ही पतनके गर्तमें जा गिरे। आज जो "इस साम्राज्यमें हमारी स्थिति अछूतों-जैसी हो गई है" सो गोखलेके शब्दोंमें, बदलेमें हमारे प्रति न्यायी ईश्वर द्वारा किया गया न्याय ही है। एक व्यक्तिने[2] मुझे एक बड़ा करुण पत्र लिखा है जो अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें उसने क्षुब्ध होकर मुझसे पूछा है कि मैं उन लोगोंके लिए क्या कर रहा हूँ। मैंने उक्त पत्र, पत्र-लेखक द्वारा दिये गये शीर्षकसे ही प्रकाशित किया है। हम अंग्रेजोंसे अपने खूनसे रँगे हाथ धोनेको कहें, उससे पहले क्या हम हिन्दुओंका यह कर्त्तव्य नहीं है कि स्वयं अपने दामनके दाग मिटा लें? यह समयपर पूछा गया एक सम्यक् प्रश्न है। और अगर किसी गुलाम देशके किसी व्यक्तिके लिए अपने-आपको गुलामीसे छुटकारा दिलाये बिना दलित जातियोंके लोगोंको उनकी गुलामीसे छुटकारा दिलाना सम्भव होता तो मैं आज ही यह काम कर गुजरता। लेकिन यह असम्भव है। गुलामको तो सही काम करनेकी भी छूट नहीं होती। उदाहरणार्थ, विदेशी मालका आयात बन्द कर देना मेरे लिए उचित काम है, लेकिन मुझे वैसा करनेका अधिकार नहीं है। इसी तरह मौलाना मुहम्मद अलीके लिए टर्की जाकर तुर्कोंसे व्यक्तिशः यह कहना बिलकुल सही था कि उनके न्यायसम्मत संघर्षमें भारत उनके साथ है। लेकिन उन्हें ऐसा करनेकी छूट नहीं थी। अगर हमारी कोई सच्ची राष्ट्रीय विधान सभा होती तो मैं [सवर्ण] हिन्दुओंकी धृष्टताका उत्तर अवश्य देता — इस तरह कि केवल दलित जातियोंके उपयोगके लिए ही खास कुएँ खुदवाता जो आजके कुओंसे बेहतर होते और विशेष रूपसे उन्हींके

१. अछूत जातियाँ।
२. एस० एम० माइकेल; देखिए "सत्याग्रह और दलित जातियाँ", १७-११-१९२०।

लिए अपेक्षाकृत अच्छे और इतने अधिक स्कूल खुलवा देता कि दलित जातियोंमें ऐसा एक भी व्यक्ति न बचता जिसके बच्चोकी पढाई-लिखाईके लिए स्कूल न होते। लेकिन अभी तो मुझे उस शुभ दिनके लिए प्रतीक्षा ही करनी है।

लेकिन इस बीच क्या इन लोगोको अपनी शक्ति और साधनोके भरोसे ही छोड देना है? नही, ऐसा कुछ नही है। मैंने अपने विनम्र तरीकेसे अपने 'पचम' भाइयोके लिए जो-कुछ कर सकता हूँ, किया है और आगे भी करता रहूँगा।

राष्ट्रके इन दलित लोगोके लिए तीन रास्ते खुले है। अगर उनका धीरज छूट रहा हो तो वे इसके लिए दूसरोको गुलाम बनाकर रखनेवाली सरकारसे सहायता माँग सकते है। उन्हें यह सहायता मिल भी जायेगी, लेकिन यह ताडसे छूटकर भाडमें गिरनेके समान होगा। आज 'पचम' लोग गुलामोके भी गुलाम है। अगर उन्होने सरकारसे सहायता माँगी तो उनका उपयोग उनके अपने ही भाई-बन्दोको दबानके लिए किया जायेगा। आज उनके प्रति अपराध किया जा रहा है, लेकिन अगर वे सरकारकी सहायता लेगे तो वे स्वय ही दूसरोके प्रति अपराध करनेवाले बन जायेगे। मुसलमानोने यह नुस्खा आजमाकर देखा, लेकिन वे विफल रहे। उन्होने देखा कि उनकी हालत तो पहलेसे भी बदतर हो गई है। सिखोने अनजाने यही काम किया, लेकिन वे असफल रहे। आज भारतमे कोई भी समुदाय उतना असन्तुष्ट नही है जितने कि सिख है। इसलिए सरकारी सहायता इस समस्याका कोई समाधान नही है।

दूसरा रास्ता है हिन्दुत्वका परित्याग करके सामूहिक रूपसे इस्लाम या ईसाइयतको अंगीकार कर लेना, और अगर पार्थिव समृद्धिके लिए अपना धर्म बदलना सही होता तो मै बेहिचक उन्हे ऐसा करनेकी सलाह दे देता। लेकिन धर्म तो हृदयकी चीज है, कोई भी भौतिक सुख-सुविधा ऐसी नही है जिसके कारण अपना धर्म छोडा जा सकता हो। अगर 'पचम' समाजके साथ अमानवीय व्यवहार करना हिन्दुत्वका अग होता तो हिन्दू धर्मका परित्याग कर देना उनका भी परम कर्त्तव्य होता और साथ ही मुझ-जैसे लोगोंका भी, जो धर्मको भी अन्ध-श्रद्धाका विषय नही बनाना चाहेगे और धर्मके पवित्र नामपर हर बुराईको बरदाश्त नही कर लेगे। लेकिन मेरे विचारसे, अस्पृश्यता हिन्दुत्वका अग नही है। यह तो हिन्दुत्वके शरीरपर निकला हुआ एक अतिरिक्त मास-पिंड है, जिसे हर सम्भव कोशिश करके काट फेंकना चाहिए। और ऐसे हिन्दू सुधारकोंकी बहुत बड़ी संख्या इस देशमे है जो पूरी लगनसे हिन्दुत्वको इस कलकसे मुक्त करनेके लिए प्रयत्नशील है। इसलिए मेरे विचारसे धर्मपरिवर्तन भी इसका कोई उपाय नही है।

और तब अन्तमे रह जाता है आत्म-सहायता और आत्म-निर्भरताके साथ-साथ ऐसे पचमेतर हिन्दुओकी मदद लेनेका रास्ता जो कर्त्तव्य मानकर स्वेच्छासे मदद दें और यह न समझे कि वे कोई कृपाका कार्य कर रहे है। और यही असहयोगके प्रयोगकी बात आती है। श्री राजगोपालाचारी और श्री हनुमन्तरावने पत्र-लेखकको ठीक ही बताया कि मै इस जानी-मानी बुराईको दूर करनेके लिए सुनियमित असहयोगका तरीका पसन्द करूँगा। लेकिन असहयोगका मतलब है दूसरोकी सहायतापर निर्भर

न करके, स्वय ही प्रयत्न करना। निषिद्ध स्थानोमे प्रवेश करनेका आग्रह करना असहयोग नही माना जायेगा। अगर शान्तिपूर्वक ऐसा किया जाये तो अलबत्ता यह सविनय अवज्ञा माना जा सकता है। लेकिन मैने स्वय बहुत बड़ी कीमत चुकाकर यह रहस्य जाना है कि सविनय अवज्ञाके लिए बहुत अधिक प्रारम्भिक प्रशिक्षण और आत्म-संयमकी आवश्यकता होती है। असहयोग सभी कर सकते है, लेकिन सविनय अवज्ञा बहुत कम लोग कर सकते है। अत हिन्दुत्वके प्रति विरोध प्रकट करनेके लिए पचम लोग, जबतक उनकी खास शिकायतें वनी रहती है तबतक के लिए, बेशक अन्य हिन्दू-वर्गोसे सारे सम्पर्क और सम्बन्ध तोड़ ले सकते है। लेकिन इसके लिए सगठित रूपसे समझदारीके साथ प्रयत्न करनेकी जरूरत होगी। और जहाँतक मुझे दिखाई देता है, पचमोके बीच ऐसा कोई नेता नही है जो उन्हें असहयोगके माध्यमसे विजय दिला सकता हो।

इसलिए पचमोके लिए इससे अच्छा रास्ता शायद यह है कि वे वर्तमान सरकारकी गुलामीका जुआ उतार फेकनेके लिए आज जो महान् राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा है, उसमें हृदयसे शामिल हो जाये। हमारे पचम भाई यह आसानीसे देख सकते है कि इस बुरी सरकारके विरुद्ध असहयोग करनेकी पहली शर्त यह है कि भारतीय राष्ट्रके विभिन्न अगोके बीच परस्पर सहयोग हो। हिन्दुओको यह समझना चाहिए कि अगर वे सरकारके विरुद्ध सफलतापूर्वक असहयोग करना चाहते है तो जैसे उन्होने मुसलमानोकी समस्याको अपना बना लिया वैसे ही उन्हे पचमोके दु खको भी अपना बना लेना चाहिए। अगर असहयोगमे हिंसा न हो तो यह तत्त्वत एक गहरी आत्म-शुद्धिका आन्दोलन है। यह प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है और पचम लोग चाहे जान-बूझकर इसमे शामिल हो या नही, शेष हिन्दू समाज यदि उनकी उपेक्षा करेगा तो उसकी अपनी ही प्रगतिका मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा। इसलिए यद्यपि मुझे पचमोकी समस्याका समाधान ढूँढनेकी उतनी ही चिन्ता है, जितनी अपने प्राणोकी रक्षा करनेकी, फिर भी मै अपना सारा ध्यान राष्ट्रीय असहयोगपर ही केन्द्रित करके सन्तुष्ट हूँ, क्योकि मेरा यह निश्चित विश्वास है कि इस बृहत्तर समस्यामे वह लघुतर समस्या भी सम्मिलित है।

इसी समस्यासे सम्बद्ध है अब्राह्मणोकी समस्या। मेरी बडी अभिलाषा है कि इस समस्याका अध्ययन मै और भी अधिक गहराईसे कर पाता। मद्रासमे एक निजी ढगकी बैठकमे मैने एक भाषण दिया था। उसके एक हिस्सेको सन्दर्भसे अलग करके पेश किया गया है और इस तरह उसका दुरुपयोग तथाकथित ब्राह्मणो और अब्राह्मणोके पारस्परिक विरोधको बढानेके लिए किया गया है। मैने उस बैठकमे जो-कुछ कहा, उसका एक भी शब्द मै वापस नही लेना चाहता। उस बैठकमे मैने उन लोगोसे कुछ अनुरोध किया था जो ब्राह्मण माने जाते है। मैने उनसे कहा कि मेरे विचारसे अब्राह्मणोके प्रति ब्राह्मणोका व्यवहार उतना ही शैतानियतभरा है जितना शैतानियत-भरा हमारे प्रति ब्रिटेनका व्यवहार। मैने आगे कहा कि विना-किसी बखेडे और सौदेबाजीके अब्राह्मणोको तुष्ट करना चाहिए। लेकिन मैने जो-कुछ कहा, उसका उद्देश्य

यह कभी भी नही था कि महाराष्ट्र या मद्रासकी शक्तिशाली ब्राह्मणेतर जातियो या उनके बीच जो शरारती लोग है उन्हे इस बातका प्रोत्साहन दूं कि तथाकथित ब्राह्मणोको डराएँ-धमकाएँ। मै "तथाकथित" शब्दका प्रयोग जान-बूझकर कर रहा हूँ। कारण, जिन ब्राह्मणोने अन्धविश्वास जनित रूढिवादितासे मुक्ति पा ली है, उनका न केवल अब्राह्मणोसे कोई झगडा नही है, बल्कि अब्राह्मण लोग जिन बातोमें पिछडे हुए है उन बातोमे उन्हे आगे बढानेके लिए भी वे हर तरहसे तत्पर रहते है। अपने देशसे प्रेम करनेवाला कोई भी व्यक्ति अगर अपने देशभाइयोके तुच्छसे-तुच्छ वर्गकी भी उपेक्षा करता है तो वह अपने देशको सर्वसामान्य रूपसे आगे नही बढा सकता। इसलिए ब्राह्मणेतर जातियोके जो लोग सरकारको रिझानेकी कोशिश कर रहे है, वे अपने-आपको और अपने राष्ट्रको सरकारके हाथो बेच रहे है। जिन लोगोको सरकारमें विश्वास है वे बेशक उसे कायम रखनेके लिए जो सहायता देना चाहे दे, लेकिन जिस भारतीयको अपनी मातृभूमिपर गर्व होगा वह असगुनके लिए कभी भी अपनी नाक नही कटायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-१०-१९२०

२१४. अलीगढ़

अलीगढ विश्वविद्यालय एक पुरानी — पैंतालीस साल पुरानी — सस्था है। इसकी अपनी विशिष्ट परम्पराएँ है। इसकी उपलब्धियोका इतिहास बडा गौरवमय है। इसने भारतको अली बन्धुओ-जैसी विभूतियाँ दी। यह भारतमें इस्लामी सस्कृतिका बहुत ही जाना-माना केन्द्र है।

फिर मै इसके वर्तमान स्वरूपको ध्वस्त क्यो करना चाहता हूँ? कुछ मुसलमान बहुत आसानीसे ऐसा सोच लेते है कि मै अलीगढके कल्याणके बहाने वास्तवमे इसका अकल्याण ही चाहता हूँ। उन्हे शायद यह मालूम नही कि मै अलीगढ विश्वविद्यालयमे जो-कुछ करनेकी माँग उसके न्यासियोसे कर रहा हूँ वही सब हिन्दू विश्वविद्यालयके सम्बन्धमे करनेका अनुरोध मै पडितजीसे[1] भी कर रहा हूँ। और मै निश्चय ही बनारसके विद्यार्थियोको भी वही बाते समझानेवाला हूँ जो बातें मैने अलीगढके विद्यार्थियोको समझानेकी कोशिश की है। मैने खालसा कालेजके सम्बन्धमें भी यही किया है। यह कालेज सिख सस्कृतिका एकमात्र केन्द्र है।

मेरी यह उत्कट इच्छा है कि इन स्वतन्त्र सस्थाओके वर्तमान स्वरूपको नष्ट कर दूं, और फिर मै इनके स्थानपर आजकी अपेक्षा कही शुद्ध और सच्ची सस्थाएँ खडी करनेका प्रयत्न करूँगा।

१. पडित मदनमोहन मालवीय।

मैं यह माननेसे इनकार करता हूँ कि ये संस्थाएँ किसी भी तरहसे अपनी-अपनी संस्कृतियोंकी सच्ची प्रतिनिधि हैं। और अंग्रेजोंके हाथसे आज जितना खतरा इस्लामको है उतना ही खतरा हिन्दुओं और सिखोंको भी है। मैंने अलीगढ़के एक प्राध्यापकसे पूछा कि क्या जरूरत पड़नेपर आप ऐसा प्रचार कर सकते हैं कि पूर्ण स्वतन्त्रता भारतका अन्तिम लक्ष्य है, अथवा क्या विश्वविद्यालय गवर्नरका ब्रिटिश शासककी हैसियतसे अपने यहाँ स्वागत करनेसे इनकार कर सकता है। उन्होंने स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया कि ऐसा सम्भव नहीं। और फिर भी मैं कहूँगा कि भारतके अधिकांश विद्यार्थियोंके मनमें ब्रिटिश शासनके लिए प्रतिष्ठा या सम्मानका कोई भाव नहीं है। इस शासनसे वे बिलकुल ऊब चुके हैं। निश्चय ही इसके प्रति उनके मनमें कोई सद्भाव नहीं रह गया है। मैं तो कहूँगा कि लड़कोंको इस कृत्रिम वातावरणमें रखना उन्हें अपने धर्मसे विमुख होनेकी सीख देना है, और उन्हें वहाँ रखकर हम उनकी अपनी-अपनी संस्कृतिका बहुत बड़ा अपकार कर रहे हैं। हम यह नहीं चाहेंगे कि हमारा राष्ट्र दम्भियों और मिथ्याचारियोंका राष्ट्र बन जाये।

ब्रिटिश सरकारके क्या इरादे हैं, हम जानते हैं। इस हालतमें अगर हम जलियाँवालाके निर्दोष रक्तसे रँगे हाथों द्वारा दिये गये पैसोंमें से छोटी-सी रकम भी स्वीकार करते हैं, जो पैसा दरअसल हमारा ही है, तो यह हमारी पुंसत्वहीनता और अभारतीयताका सूचक होगा। अगर हम ऐसा करते हैं तब तो जिस डाकूने हमारी सारी सम्पत्ति लूट ली हो, हम उसके हाथोंसे भी निश्चय ही दान स्वीकार कर सकते हैं। इस सरकारने हमसे हमारा सम्मान छीना है और हमारे एक धर्मको खतरेमें डाल दिया है। मेरी नम्र सम्मतिमें ऐसे स्कूलोंमें शिक्षा प्राप्त करना पाप है, जिनका खर्च सरकार उठाती हो या जो सरकारके प्रभावमें हों।

इसलिए मैं वस्तुतः यह सलाह दे रहा हूँ कि इन सारी संस्थाओंको, किसी भी कीमतपर, शीघ्र ही नष्ट कर देना चाहिए। लेकिन अगर इन संस्थाओंके न्यासी, शिक्षक और माता-पिता या बच्चे एक होकर काम करेंगे तो हमें कुछ भी गँवाना नहीं पड़ेगा बल्कि प्राप्त बहुत-कुछ होगा।

मैं तो इन संस्थाओंका ढाँचा बदलनेको, आत्मा बदलनेको कह रहा हूँ; आत्मा बदलनेकी कोशिश नहीं कर रहा हूँ। जिस प्रकार हम पुराने पड़ गये शरीरका त्याग कर देते हैं उसी प्रकार जो संस्थाएँ पुरानी पड़ गई हैं, हमारी आवश्यकता पूरी करने लायक नहीं रह गई हैं, उन संस्थाओंको भी छोड़ देना चाहिए, और उनके बदले ऐसी नई संस्थाएँ स्थापित करनी चाहिए जो हमारी आवश्यकताएँ पूरी करनेकी दृष्टिसे ज्यादा उपयुक्त हों। जब राष्ट्र अपना कदम आगे बढ़ा रहा है तब अध्ययन व अध्यापनका काम करनेवाली संस्थाएँ, जो राष्ट्रके युवक-समुदायका प्रतिनिधित्व करती हैं, पीछे कैसे रह सकती हैं। गुजरातमें ऐसे बहुत-से हाई स्कूलोंने, जिनकी उपलब्धियोंका इतिहास न्यूनाधिक गौरवमय ही है, सरकारी अनुदान और सरकारी शिक्षा-व्यवस्थासे जुड़े रहनेके मोहसे छुटकारा पा लिया है। और इससे उनका कुछ घाटा नहीं हुआ, बल्कि उनका स्वरूप हर दृष्टिसे अधिक निर्मल हो गया है। अब वहाँके न्यासी और

प्रधानाध्यापक अपने स्कूलोंके विद्यार्थियोंको अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र वातावरणमें शिक्षा दे सकते हैं।

आर्थिक कारण तो उन्ही लोगोंके मार्गमें बाधक होता है जो काम नही करना चाहते। हमारी संस्थाएँ उस हालतमे नही चल सकेंगी, जब शिक्षक और न्यासी लोग अपने न्यासके प्रति ईमानदार नही होंगे या अगर राष्ट्र सचमुच ऐसी संस्थाको नही चाहेगा। असहयोगका कार्यक्रम इस विश्वासपर आधारित है कि राष्ट्र वर्तमान सरकारसे ऊब गया है और इसे हिंसाका सहारा लिये बिना बदलना चाहता है। अबतक का अनुभव यही बताता है कि राष्ट्र निश्चित रूपसे परिवर्तन चाहता है। अगर इसमें असफलता मिलती है या विलम्ब होता है तो उसका कारण कार्यकर्त्ताओंका अभाव होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७–१०–१९२०

२१५. हमारा पिछला दौरा

हरएक यात्रामे मुझे इतने अधिक अनुभव हो रहे हैं कि उनकी चर्चा करके पाठकोंको उनके परिणामोंसे अवगत कराना मेरे लिए कठिन हो रहा है। इसलिए मैं अबतक जो कह चुका हूँ, उसके साथ अनुशासन और संघटनकी आवश्यकतापर अतिरिक्त जोर देकर ही मुझे सन्तुष्ट होना पड़ेगा। मैं कानपुर तककी अपनी यात्राके विषयमें लिख चुका हूँ। मैं डर रहा था कि कानपुर — मौलाना हसरत मोहानी और डा० मुरारीलालके[1] कानपुरमें — पहुँचकर क्या होगा? दोनों ही बहुत बड़े कार्यकर्त्ता हैं। स्टेशनपर जैसी व्यवस्था होनी चाहिए, वैसी ही थी। जबरदस्त भीड़ हमारी प्रतीक्षा कर रही थी, किन्तु वह इतनी अनुशासित रही कि हम लोग जनताकी दो घनी पंक्तियोंके बीचसे आसानीके साथ बढ़ते चले गये और जबतक मोटरगाड़ियोंमें जाकर अपनी-अपनी जगह नही बैठ गये, एक भी व्यक्ति टससे-मस नही हुआ। जिस काममें फिजूल ही ३० मिनट चले जाते, उसमें पाँच मिनट भी नही लगे। जलूसका कार्यक्रम छोड दिया गया था, इससे खुशी हुई। कार्यक्रम भी स्टेशन ही की तरह व्यवस्थित और कामसे-काम रखनेवाला था। हम लोग [डेरेपर] करीब ८ बजे पहुँचे। एक ही दिन वहाँ रुका जा सकता था, किन्तु उतने ही समयमे कार्यकर्त्ताओंके साथ बैठक, 'शिकागो ट्रिब्यून' के श्री फ्रेजर हंटको निजी भेंट, विधवा आश्रम देखना, राष्ट्रीय गुजराती शालाका उद्घाटन, गुजराती महिलाओंकी एक सभा (जिसमें महिलाएँ बडी संख्यामे उपस्थित थीं), राष्ट्रीय समझौता अदालतका उद्घाटन, सार्वजनिक सभा और अन्तमें मुलाकातियोंसे बातचीत की। ये सारे ही काम बिना-किसी अतिरिक्त भाग-दौड और परेशानीके निपट गये। सार्वजनिक सभाके समय प्रारम्भमे थोडीसी गडबड़ी हुई। यह जान पडा

१. इन्होंने रायसाहबकी उपाधि छोड दी थी और संयुक्त प्रांतकी सरकारको तमगा और सनद वापस कर दी थी।

कि स्वयसेवकोंको पहलेसे कुछ हिदायते नही दी गई है, किन्तु थोडे ही प्रयत्नके वाद वहाँ भी पूरी शान्ति हो गई अत: लोगोने लम्वे-लम्वे भाषण पूरी तरह शान्त रहकर सुने। मेरा विश्वास है कि जैसे ही हम सगठित हुए और हममे अनुशासन आया वैसे ही हमें स्वराज्य मिल जायेगा। यदि हम सव एक होकर किसी भी विदेशी शक्ति द्वारा शासित होनेसे इनकार कर दे, तो हमारे-जैसे देशको इससे अधिक और कुछ करनेकी जरूरत नही है। लखनऊमे इससे विलकुल उलटा रहा। स्टेशनपर यहाँसे वहाँतक गड़बड़ी-ही-गड़बड़ी थी और लोग उमड़ते चले आ रहे थे। वह अनुशासनहीन स्नेहका प्रदर्शन ही था। सव हम लोगोतक पहुँचनेके लिए एक-दूसरेको ढकेलते हुए चले आ रहे थे और यह किसी की भी समझमे नही आ रहा था कि इस तरह हमतक पहुँचना असम्भव है। अन्तमें मैंने कह दिया कि मै यहाँसे उस क्षणतक हिलूँगा भी नही जवतक भीड अपने-आपको संयमित नही कर लेती। भीड़ जल्दी ही मेरी वात समझ गई और उसने हमारे निकलनेके लिए रास्ता छोड दिया। उसके वाद जलूस निकला — परेशान कर देनेवाला जलूस। मौलाना अब्दुल वारीके यहाँ हम लोग ठहराये गये। हमारे दलमे जो हिन्दू शामिल थे उनके लिए उन्होने एक ब्राह्मण रसोइएका विशेष प्रवन्ध कर रखा था। पाठकोको याद होगा कि इसी जगह मौलाना जफरुल्मुल्क गिरफ्तार किये गये थे। मौलाना साहव निष्कलक चरित्रके एक सुसंस्कृत मुसलमान है। श्री विलोवीकी हत्या भी लखनऊसे थोड़ी ही दूरपर हुई थी, इसीलिए रातकी सभामे बहुत वड़ी संख्यामें लोग उपस्थित हुए। व्याख्यान वहुत शान्त भावसे सुने गये। अच्छा होता, यदि मेरे पास भाषणोका साराश देनेका समय और स्थान होता। हम सवने खीरीकी हत्याकी[1] वातको स्पष्ट किया कि खिलाफत समितिकी सतर्कताके वावजूद ऐसा किस तरह हो गया; और यह भी वताया कि इससे लोगोमें अनावश्यक आतक फैला, स्थानीय समितिपर लाँछन लगा तथा इस तरह खिलाफतके उद्देश्यको हानि पहुँची। मुझे इस वातका दुख है कि सभामे नेताओमे से कोई नही आया था, इसलिए सवका ध्यान इस वातकी ओर गया। वे समझते है कि असहयोग आन्दोलन हानिकर है। यह तो समय ही वतलायेगा। हमे उनके प्रति निराश नही होना चाहिए। वे राष्ट्रके है और जिस दिन उनके मनका अविश्वास दूर हो जायेगा, वे भी देशके साथ कदम मिलाकर वढेंगे।

अमृतसर और लाहौरकी अभिभूत कर देनेवाली घटनाएँ मुझे मन मारकर छोड़नी पडी है। अव मै भिवानीकी वात करूँगा। अमृतसरमें भी स्टेशनपर वहुत अधिक भीड़ थी, किन्तु वह अनुशासित नही थी। हम दूसरे प्लेटफार्मपर उतरे और उसकी आँख वचाकर निकल गये। लाहौरकी भीड़से हम मोटरमे यात्रा करके वचे।

भिवानीतक रातमे जो यात्रा हुई, उसमे आराम नामको भी नही मिला। लोग जगह-जगह दर्शनका आग्रह करते रहे। एक आदमीने कहा कि महात्माको आरामकी जरूरत नही होती; उनका कर्त्तव्य है कि वे लोगोको दर्शन दे। जब हम लोगोने दृढता-पूर्वक विस्तर छोडकर वाहर आनेसे इनकार कर दिया, तो कुछ लोगोको सचमुच ही वड़ी निराशा हुई। एकने कहा कि लोगोकी इच्छाकी परवाह किये विना दर्शन न देना इस

१. विलोवीकी हत्या।

बातका सूचक है कि हम लोग जनताको कुछ नही समझते। इसी तरह जागते और हैरान होते हुए हम लोग भिवानी पहुँचे। आसपासके गाँवोसे कोई ५० हजार आदमी इकट्ठे थे और मुझे लगता था कि हम लोग उसमें पिस ही जायेंगे। किन्तु जब मैंने वहाँ परिपूर्ण व्यवस्था देखी, तो मुझे ताज्जुब हुआ और बहुत अच्छा लगा। स्टेशन-पर न भाग-दौड़ थी और न शोर-गुल। सब अपनी-अपनी जगह खड़े रहे। जबरदस्त भीड़के बावजूद जलूसकी आसानीसे व्यवस्था होती रही। सभा मण्डपकी व्यवस्था तो और भी ध्यान देने योग्य थी। बहुत बड़ा कलापूर्ण किन्तु आडम्बरहीन एक मण्डप, जिसमे एक भी कुर्सी नही, अध्यक्षके लिए भी नही; पण्डालके बीच एक लम्बा ऊँचा मंच जिसपर सम्भ्रान्त अतिथियोके बैठनेकी व्यवस्था। पण्डालमें कोई १२ हजार लोग बैठे थे और फिर भी पण्डाल ठसा-ठस नही था। फाटक चौडे-चौडे थे और मैदानका उतार मध्यकी ओर रखा गया था, ताकि सब आसानीसे मध्यमे रखा हुआ मच देख सकें। मै इतना ही सुझाना चाहता हूँ कि अर्द्धवृत्ताकार मण्डप ज्यादा अच्छा होता है। मचके पीछे बैठनेका इन्तजाम नही होना चाहिए। सिन्धके इन्तजामकी हम इन स्तम्भोमे चर्चा कर चुके है। अग्रेजी अक्षर उलटी [टी] 'L' की तरह बैठनेका प्रबन्ध था, इसलिए सुननेकी हदतक यह प्रबन्ध बेहतर था।

आनेवाले काग्रेसके अधिवेशनमे भिवानी और हैदराबाद (सिन्ध) का उदाहरण सामने रखना चाहिए। स्वागत समितिको इस तरह कुछ सहस्र मुद्राओ और जगहकी बचत हो जायेगी। अलबत्ता उन्हे मचपर या उसके नीचे, कुर्सियोका बहिष्कार करना पड़ेगा। हमे अधिकसे-अधिक जनता और जननेताओको आकर्पित करनेकी कोशिश करनी चाहिए। हम थोडेसे पढे-लिखे लोग जनताको उसके अपने नेताओके द्वारा ही नियन्त्रित रखनेकी आशा कर सकते है, क्योकि जनताकी तरह ही उसके नेता भी भोले-भाले और सरल है। कुछ लोग ही कुर्सियाँ चाहते है, इसलिए अगर उन ज्यादातर आदमियोपर कुर्सियाँ थोपे, जिन्हें उनकी जरूरत महसूस नही होती, तो यह एक प्रकारकी क्रूरता है। मै यह भी आशा करता हूँ कि नागपुरके स्वयसेवकोको अभीसे प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया जायेगा। उन्हे उनके विभिन्न सेवा-कार्य अभीसे सिखाये जाने चाहिए, ताकि छोटीसे-छोटी बातका भी अच्छेसे-अच्छा इन्तजाम हो सके।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-१०-१९२०

२१६. मालवीयजी और शास्त्रियरके बचावमें

सेवामें
सम्पादक
'यंग इंडिया'

महोदय,

"स्कूलों और कालेजोंका व्यामोह"[1] शीर्षक अपने लेखमें महात्मा गांधीने विद्यार्थियोंके स्कूल और कालेज छोड़ देनेके सम्बन्धमें असहयोग कार्यक्रमकी चर्चा की है। यह स्वीकार करते हुए कि इस प्रस्तावको "हानिकर" और "देशके उच्चतम हितोंके विरुद्ध" बताया गया है, वे कहते हैं कि पण्डित मदनमोहन मालवीय इसके सबसे कट्टर विरोधी हैं। इसके बाद वे पण्डितजीके इस रुखका कारण ढूँढ़नेकी कोशिश करते हैं। और महात्मा गांधीके ही शब्दोंमें, "मैं इसका जो उत्तर ढूँढ़ पाया हूँ वह यह है कि जहाँ पहले वर्गके लोग वर्तमान शासन-पद्धतिको एक खालिस बुराई मानते हैं, वहाँ दूसरे वर्गके लोग ऐसा नहीं मानते हैं। दूसरे शब्दोंमें, मेरे सुझावके विरोधी लोग पंजाब और खिलाफत सम्बन्धी अन्यायोंकी गम्भीरताका पर्याप्त अनुभव नहीं करते।" और वे आगे कहते हैं, "यह सोचा भी नहीं जा सकता कि मालवीयजी और शास्त्रियर इन अन्यायोंको मेरी तरह महसूस नहीं कर सकते। लेकिन मेरे कहनेका तात्पर्य बिलकुल यही है।" हम महात्मा गांधीको विश्वास दिलाते हैं कि उनके प्रति हमारे मनमें अपरिमित और उत्कट सम्मान है, लेकिन इसी कारणसे हम दूसरोंकी ईमान-दारीकी ओरसे अपनी आँखें बन्द नहीं कर ले सकते। हम सर्वश्री मालवीयजी और शास्त्रियरकी वकालत नहीं कर रहे हैं। वे स्वयं बहुत समर्थ हैं। पण्डितजी द्वारा कौंसिलमें दिया गया ओजस्वी भाषण, जलियाँवाला बाग-स्मारकके लिए चन्देकी मर्मस्पर्शी अपील, और अभी हालमें बम्बई-स्थित एम्पायर थियेटरमें दिया गया उनका जोशीला भाषण इन सबसे महात्मा गांधीने, निस्सन्देह अनजाने ही, जो बातें उनके विरुद्ध कही हैं, उनका खण्डन हो जाता है। श्री शास्त्रियरने 'सर्वेंट ऑफ इंडिया'[2] में जो लेख लिखे हैं और पंजाबकी शोकजनक घटनापर जो भाषण दिये हैं, वे उनकी ज्वलन्त देशभक्तिके प्रमाण हैं। हाँ, यह जरूर है कि श्री गोखलेके इन योग्य उत्तराधिकारीके निष्पक्ष दृष्टिकोणके कारण इनकी देश-भक्तिका रूप कुछ सौम्य हो जाता है। इन दोनों महापुरुषोंने खिलाफतके सम्बन्धमें भी अपनी गहरी भावनाको पर्याप्त अभिव्यक्ति दी है।

१. तारीख २९-९-१९२० ।
२. भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी), पूनाका मुख-पत्र ।

महात्मा गांधी स्वयं ही व्यक्तिकी स्वतन्त्रताके सवालपर और अपनी अन्तरात्माकी आवाजके अनुसार चलनेके महत्त्वपर इतना कुछ कह चुके हैं कि हमें यह विश्वास नहीं होता कि अपने किसी भी कामसे वे उस स्वतन्त्रता-पर प्रतिवन्ध लगानेकी कोशिश करेंगे या उस आवाजको वन्द कर देनेका प्रयत्न करेंगे। लेकिन वास्तवमें इस लेखमें अप्रत्यक्ष रूपसे, ठीक ऐसा ही करनेकी कोशिश की गई है, यह बात तो समझमें आ सकती है कि लक्ष्यतक पहुँचनेके उपायके बारेमें मतभेद होनेकी काफी गुंजाइश है, लेकिन यह बात समझमें नहीं आती कि कोई महात्मा गांधी-जैसा जवरदस्त व्यक्तिवादी स्वप्नमें भी भिन्न मत प्रकट करनेपर रोक लगानेकी कोशिश कैसे कर सकता है।

अन्तमें, हम महात्मा गांधीसे अनुरोध करते हैं कि वे ऐसी गोलमोल बातें न कहा करें। हम आधुनिक बुद्धसे अनुरोध करते हैं कि वे इस तरह लोगोकी भावना न उभारें, और जो-कुछ कहें, तर्कके आधारपर ही कहें। हमें विश्वास है कि उन्होंने जो-कुछ कहा है, वे उसके अनौचित्यको समझेंगे और उसका प्रतिकार करनेमें शीघ्रता करेंगे। हमें भरोसा है कि महात्मा गांधी यह स्वीकार करेंगे कि जैसे सदाशयतापूर्ण उनके विश्वास होते हैं वैसे ही सदाशयतापूर्ण हमारे विश्वास भी हो सकते हैं, और जो विचार-स्वातन्त्र्य वे अपने लिए चाहते हैं वही विचार-स्वातन्त्र्य हमें भी देंगे, यद्यपि दुर्भाग्यवश हमें उनसे भिन्न मत रखना पड़ रहा है।

आपके,
"स्वदेशी"

मुझे इस पत्रको प्रकाशित करते हुए बडी खुशी हो रही है। इस पत्रके लेखकगण मेरे सम्मानके पात्र हैं क्योकि उन्होने इन दो महान् देशभक्तोंका बचाव करनेकी कोशिश की है। बड़ा अच्छा होता अगर उन्होने मुझे अपने नाम भी प्रकाशित करनेकी अनुमति दी होती। फिर भी, मैं पाठकोको इतना सूचित कर दूँ कि ये सब गुजराती हैं। और यह मेरे लिए गर्वकी बात है कि अन्य लोगोकी तरह ही गुजराती लोग भी मालवीयजी या शास्त्रियरजीकी देशभक्तिपर आक्षेप करना बरदाश्त नही कर सकते। लेकिन सबसे पहले मैं इन मित्रोको आश्वस्त कर दूँ कि इन दो देशभक्तोका सम्मान वे मुझसे अधिक नही कर सकते। फिलहाल, कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण मामलोंमें हमारे बीच मतभेद हैं। मैंने इस मतभेदका कारण ढूंढनेकी ईमानदारीसे कोशिश की है और इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि खिलाफत और पंजावके सम्बन्धमें किये गये अन्यायोको वे उतनी तीव्रतासे अनुभव नही कर सकते जितनी तीव्रतासे उन्हें मैं अनुभव करता हूँ। अनुभूतिका मापदण्ड कर्म है, शब्द नही। उनका निदान मेरे निदानसे भिन्न है। इन दोनो अन्यायोसे मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि इस सरकारसे मुझे किसी भी अच्छाई-की अपेक्षा नही रखनी चाहिए। वे ऐसा नही मानते, अत. उनके लिए सरकारके साथ सम्बन्ध रखना सम्भव है। लेकिन मेरे लिए, जबतक सरकार अपने कियेपर

पश्चात्ताप नही करती तबतक, उससे कोई सम्बन्ध रखना असम्भव है। सम्भव है, दो सर्जन किसी रोग-विशेषका निदान एक ही करे, और फिर भी एक उसके लिए सिर्फ मरहम और दूसरा उसके लिए गम्भीर आपरेशनका सहारा ले किन्तु इस कारण जो डाक्टर आपरेशन करता है उसके प्रति मनमे आदरका अभाव आ जाना जरूरी नही है। और अगर दूसरा सर्जन इलाजके तरीकोमे इस फर्कका कारण ढूंढने बैठे तो उसे यह कहनेका अधिकार है और उसका यह कहना उचित होगा कि जिसने मरहम लगानेको कहा वह रोगकी गम्भीरताको अनुभव नही कर पाया, हालाँकि उसने भी उस रोगको उसी नामसे बताया जिस नामसे दूसरे सर्जनने बताया। मै पत्रलेखकोको यह भरोसा भी दिलाना चाहता हूँ कि मैने इस मामलेमे कोई गोलमोल बात नही कही। मै किसीकी स्वतन्त्रतापर अंकुश भी नही लगाना चाहता, किसीकी अन्तरात्माकी आवाज भी बन्द नही करना चाहता, और इन दो देशभक्तोके सम्बन्धमे तो और भी नही। इसके विपरीत, मुझमे इतनी विनय है कि मै कह सकूं कि यद्यपि मुझे पूरा विश्वास है कि मेरा निदान और उपचार, दोनो सही है, फिर भी वे गलत हो सकते है। और जब मै देखूंगा कि वे गलत है तो मै अपनी गलती स्वीकार करनेमें क्षण-भरकी भी देर नही करूँगा। और अन्तमे मै अपने इन मित्रोको विश्वास दिलाता हूँ कि किसीकी भावनाको न उभारकर, किसीके जोशको न जगाकर, दुर्बोधसे-दुर्बोध सत्यको सादेसे-सादे शब्दोमे — इतने सीधे-सादे शब्दोमे कि वह अशिक्षित जनसाधारणकी समझमे भी आ जाये — प्रस्तुत करना मैने अपने जीवनका उद्देश्य बना लिया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया २७-१०-१९२०

२१७. भाषण : डाकोरमें

२७ अक्तूबर, १९२०

आप सब और मै इस यात्रा-स्थानपर इकट्ठे हुए है, परन्तु इस समय भारतकी ऐसी विषम स्थिति है, ऐसी दीन दशा है कि हम यात्रा-स्थलपर पहुँचकर भी पवित्रताका अनुभव नही कर पाते। और मै तो इस पवित्र स्थानपर रणछोड़जीके दर्शनोके लिए नही आया हूँ। इस समय रणछोड़रायमें[1] ऋणसे मुक्त करनेकी ताकत नही रही। इसका कारण यह है कि हम, जो उनके पुजारी है वे, सच्चे पुजारी नही रहे; हम अपनी श्रद्धा खो बैठे है। यात्रा-स्थान पवित्रताके बजाय पाखण्डके घर बन गये है, यह मै आँखो देख रहा हूँ। इस आपत्तिसे, इस पापसे ईश्वर हमे कब छुडायेगा?

मैने कई बार सुना है कि डाकोरजीमे आनेवाले बहुतसे लोग अच्छे चाल-चलनसे नही रहते। यहाँ आते-जाते कुछ स्थानोपर वे अभद्र व्यवहार करते है। मुझे पता नही

१. 'रणछोड़राय' के 'रण' शब्दको 'ऋण' का अपभ्रंश मानकर गुजरातमें वैष्णव-भक्त उसका अर्थ 'ऋणसे छुड़ानेवाला' करते हैं।

यह बात सही है या गलत। परन्तु यदि हमारा धर्म — हिन्दुओंका धर्म और मुसलमानोंका धर्म — हमे कुछ सिखाता है, तो पहली चीज वह यह सिखाता है कि हमे अपनी विषय-वासनाको, अपनी इन्द्रियोको काबूमे रखना चाहिए। सभी धर्म हमें सिखाते हैं कि संसारमे जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब, बडी उम्रवाली हमारी माता-समान हैं, बराबरकी उम्रवाली बहनके समान और छोटी पुत्रीके समान हैं। मैंने सुना और माना भी है कि डाकोरमें आनेवाले धर्मके इस पहले नियमका उल्लघन करते हैं। फिर भी वे मानते हैं कि गोमतीमें स्नान करके वे पवित्र हो जायेंगे। यह किस कामका? मै यह भी नही मानता कि स्नान करके उनका इरादा पवित्र होनेका होगा। सत्यका पालन, ब्रह्मचर्यका पालन साधारण धर्म है। गृहस्थोके लिए भी ब्रह्मचर्य-पालन धर्म है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है कान, आँख, नाक, जीभ और त्वचा सभी इन्द्रियोका सयम। यह धर्म केवल सन्यासियोके लिए नही, सद्गृहस्थोके लिए भी है। यह सादा नियम जो न पालता हो, वह सद्गृहस्थ ही नही। इस ससारमे, हिन्दू समाज और मुस्लिम समाजमें भी, यदि हमे ठीक ढगसे रहना हो, स्वतन्त्र होकर रहना हो, किसीके गुलाम न बनना हो, तो यह हमारा सबसे पहला कर्त्तव्य है।

मुझसे किसीने कहा कि इस जलसेमें बहुतसे धाराला[1] भाई होगे, उन्हे दो शब्द कहिये। उनसे मैं क्या कहूँ? परन्तु इतना तो मुझे उनसे कहना ही चाहिए कि यदि आप धर्मको समझते हो, तो वह धर्म यह नही कहता कि आप दूसरोको लूटें। लूटकर जीनेसे तो आत्महत्या कर लेना अच्छा है। दूसरोको लूटकर खानेसे भूखो मरना बेहतर है। दूसरोंको लूटकर कपडे पहननेसे नगी हालतमे रहना ज्यादा अच्छा है।

आज मैं सारे भारतसे विनती कर रहा हूँ। वह सिर्फ बनिये, ब्राह्मणोंसे नही करता, परन्तु भारतमे ढेढ, भंगी, धाराला जो भी हैं — मुसलमान, ईसाई, पारसी — सबसे मै विनती कर रहा हूँ कि अगर आपकी इच्छा भारतको सुखी बनाने की हो, तो आपका पहला धर्म यह है कि भिन्न-भिन्न धर्मोके साथ आपको एकदिल होकर रहना चाहिए। यह पडोसीका धर्म है। भाई शौकत अलीको कामके सिलसिलेमे बम्बईसे बाहर न जाना पड़ा होता, तो आप उन्हे हिन्दुओके इस तीर्थ-स्थानमे मेरे साथ देखते। मैं जहाँ जाता हूँ, वहाँ उन्हें — और अब तो इन दोनो भाइयोको — अपने साथ ही दौरेपर ले जाता हूँ। मै सबसे कहता हूँ कि मेरे दो सगे भाई गुजर गये हैं, परन्तु इन दो भाइयोके प्रति मेरा भाव सगे भाईसे जरा भी कम नही है। मै सनातनी हिन्दू होनेका दावा करता हूँ और इन दो मुसलमानोके साथ भाईचारा रखकर भी अपना हिन्दू धर्म पूरी तरह पाल रहा हूँ। इसमे मेरा स्वार्थ है। यदि मै हिन्दू होते हुए इस्लामके लिए मर सकूँ, तो समय आनेपर हिन्दू धर्मके लिए भी मर सकूँगा। इसमें मेरी अपनी और देशकी परीक्षा है।

सात करोड मुसलमान भाइयोपर महान् धर्म-सकट आ पडा है। एक विकराल हुकूमत उनके धर्मको छिन्न-भिन्न कर देनेपर तुली हुई है। जैसे इस समय आकाशमे चन्द्रमाको ग्रहण लगा हुआ है, वैसे ही इस्लामको इस सल्तनतके ग्रहणने ग्रस लिया है। उसे

1. गुजरातकी एक जाति।

आप मुक्त कराइये। चन्द्रमाका ग्रहण तो स्थूल ग्रहण है। उससे मुक्त होना हमारे हाथमे भी नही। मुझे यह चन्द्रग्रहण जरा भी नही डराता, मुझसे वह उपवास नही करा सकता। परन्तु हमारी आत्माको जो ग्रहण लग गया है, हमारे हृदयको जिस ग्रहणने ग्रस लिया है, उससे मै काँपता हूँ। उस ग्रहणसे मुक्त होनेका उपाय उपवास हो, तो मै ईश्वरसे माँगता हूँ कि वह मुझे उपवास करनेकी शक्ति दे। इस ग्रहणसे मुक्त होनेका इलाज आत्महत्या हो, तो परमेश्वर मुझे आत्महत्या करनेकी शक्ति दे। भारतका सुन्दर चन्द्र इग्लैडके कलकसे मलिन है। इसका एक कारण मै बता चुका हूँ। इस्लामपर हुकूमतकी तलवार लटक रही है। आज वह इस्लामपर लटक रही है, कल हिन्दुओकी बारी आयेगी। जिस हुकूमतने इस्लामको दगा दिया है, जिस हुकूमतने पंजाबके द्वारा सारे भारतको पेटके बल चलाया है, जिसने पंजाबके जरिये छोटे-बडे बच्चोको जबरन् सलामी देनेको मजबूर किया है और ऐसा करते हुए जिस हुकूमतके हाथो छ-सात वर्षके दो बालकोके प्राण चले गये, जिस हुकूमतके अधीन एक या डेढ़ हजार निर्दोष मनुष्योकी हत्या हुई है, वह हुकूमत कैसी होगी? हमपर किस हदतक इस हुकूमतका ग्रहण लगा है, इसका मै अन्दाज नही लगा सकता।

मौजूदा शासन रामराज्य नही; रावणराज्य है। इस रावणराज्यमे हम पीडित है और पाखण्ड सीखते है। ऐसे रावणराज्यमे हम मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकते है? क्या पाखण्डियोके साथ पाखण्डी बनकर? शठके साथ शठतासे मुकाबला करके? पाखण्डमे हम उनकी बराबरी कैसे कर सकेंगे? इस सल्तनतकी चालाकियोका मुकाबला हम कैसे कर सकेगे? जिस सल्तनतने छल-कपटमे प्रवीण यूरोपको भी अपने छल-कपटसे मात कर दिया है, उसके सामने यहाँके कूटनीतिज्ञ क्या कर सकते है? हिन्दू-मुसलमानोको पाखण्ड करना हो, तो भी हमारे पास यह पाखण्डकी विद्या नही है। रावणको पाखण्डसे मारना हो, तो उसके जैसे दस सिर और बीस भुजाएँ चाहिए, सो कहाँसे लाये? उसे मारनेका काम राम-जैसा पाखण्डी ही कर सकता है। रामके पास क्या पाखण्ड था? उसने ब्रह्मचर्यका पालन किया था; उसे ईश्वरका डर था, उसकी सेना बन्दरोकी थी। बन्दरोने कभी हथियार उठाये है? आज भी हम दिवाली मनाते है, सो रामकी रावणपर विजय मनाते है। परन्तु यह विजय हम तभी मना सकते है जब हम इस दस नही, किन्तु दस हजार सिरोवाले रावणको छिन्न-भिन्न कर सके। जबतक हम यह न कर सके, तबतक हमारे लिए वनवास ही रहेगा। आप सीताजी-जैसी सतियोपर कुदृष्टि न डाले, तभी इस सल्तनतको मात दे सकेंगे। शैतानको ईश्वर ही मात दे सका है। उसीने शैतानको पैदा किया और वही उसे मार सकता है। इन्सानकी ताकतसे वह नही हारता। अकेले ईश्वरकी ही गुलामी करनेवाले मनुष्यके हाथसे ईश्वर ही उसे हराता है।

हमें इतनी जबरदस्त हुकूमतसे मुकाबला करना है। उसकी तरफसे आनेवाले दु खोंका रोना मै नही रोना चाहता। मै तो उलटे भारतसे यह माँगता हूँ कि उसकी बुराई करनेका अधिकार आप लोग मुझ अकेलेको ही दे दे। मै जब सरकारके साथ सहयोग करता था, तब आपके मुँहसे इस सरकारके बारेमे मैने अगारे झरते

देखे हैं। आपके मुँहसे सरकार की निन्दा भी शोभा नही देती। मैंने जो कड़वे घूँट पिये हैं, वे आपने कभी नही पिये। वे कड़वे घूँट पीकर मैंने जो शक्ति प्राप्त की है उसकी शतांश भी आपने प्राप्त नही की। उससे नाराज होनेके बहुतसे कारण मुझे मिले, परन्तु अपना गुस्सा मैं पी गया। इस अवसरपर भी मैं क्रोधमें आकर एक भी शब्द नही बोल रहा, परन्तु अपनी आत्माके ही शब्दोको दुहरा रहा हूँ। मैं नही चाहता कि आप अंग्रेजी राज्यके प्रति क्रोधमें एक वाक्य भी बोलें। अग्रेजोकी बुराई देखनेके बजाय आप अपनी ही बुराई देखिये और उसे निकाल दीजिये। तब आप स्वतन्त्र हो जायेंगे — मुक्त हो जायेंगे। मैं अग्रेजी हुकूमतके ऐब बता रहा हूँ, सो प्रत्यक्षदर्शीके रूपमे ही बता रहा हूँ। इस हुकूमतकी तीस साल सच्चे दिलसे सेवा करनेके बाद मुझे इतमीनान हो गया है कि यह रामराज्य नही, रावणराज्य है। इस समय यह हुकूमत मुझे बुरी लग रही है, इसलिए नही कि मुझे कोई अग्रेजोके प्रति नफरत है, मुझे नफरत तो हुकूमतके प्रति है। जबतक अग्रेज सरकार पश्चात्ताप नही करती, भारतके स्त्री-पुरुषोसे माफी नही माँगती और यह नही कहती कि 'हम तुम्हारे नौकर हैं और नौकर बनाकर रखो तो रहना चाहते हैं', तबतक मैं इस हुकूमतके हवाई जहाजो और मशीनगनोका सामना करनेको तैयार हूँ। इसके हवाई जहाज और मशीनगन मुझे डरा नही सकते।

इस हुकूमतका सामना करनेमे मुझे धर्मकी बिलकुल हानि होती दिखाई नही देती। मौका पडे तो जैसे मै लडकेके विरुद्ध असहयोग कर सकता हूँ, वैसे ही हुकूमतके विरुद्ध भी करूँगा। यह भी धर्म है। मनुष्य मात्र भूलोसे भरा है, पापी है। मै स्वीकार करता हूँ कि मै सयम-धर्म पालता हूँ, फिर भी पूर्ण नही हूँ। मुझमें पाप और अपूर्णता भरी है। तो भी मै पापसे डरता हूँ। मुझमें त्रुटियाँ हैं और उन्हे निकालनेकी मै कोशिश करता हूँ। मै उनका गुलाम नही हूँ। यह हुकूमत तो पापको ही धर्म मानती है। यह हुकूमत दूसरे देशोको कुचलकर अपने देशको खुशहाल बनाती है। यह अत्याचार है। मै दूसरे देशोको कुचलकर, मिट्टीमें मिलाकर भारतको खुशहाल बनाना नही चाहता। दूसरोके धर्मको मिटाकर मै भारतको उठाना नही चाहता। परन्तु यह सल्तनत तो कहती है कि हम बादशाहतके लिए चाहे-जो अत्याचार करेंगे। सल्तनत ऐसा कहती ही नही, करके दिखाती है। पजाबमे उसने करके दिखा दिया। मै कृष्णका पुजारी आप सबसे कहता हूँ कि ऐसी हुकूमतके स्कूल-कालेजो और उसकी अदालतोको ठुकरा दीजिये। मुझे अपने शरीरके लिए किसीका डर नही है। अपना शरीर तो मै इस हुकूमतको सौंपकर ही यहाँ बैठा हुआ हूँ। अपने हृदयका नेतृत्व आप ईश्वरको ही सौंप दीजिये। उस समय आपकी बेड़ियाँ टूट जायेंगी।

असहयोग सोने-जैसा शस्त्र है, दिव्य शस्त्र है। हिन्दुओंको वह श्रीकृष्णसे मिला है; मुसलमानोको मुहम्मद पैगम्बरने दिया है, पारसियोको 'जेन्द अवेस्ता' से मिला है। जहाँ तुम अन्याय देखो; किसी मनुष्यमें अन्यायको मूर्तिमान् देखो, तो उस मनुष्यका त्याग कर दो। तुलसीदासजीने बहुत ही मृदु भाषामे कहा है कि असन्तसे दूर भागो, असन्त अपने समागमसे पीड़ित करते हैं। जैसे दावानलसे दूर भागते

हो, वैसे ही असन्तसे — अन्यायसे भागो। भागनेका ही अर्थ असहयोग है। असहयोग द्वेष या वैर नही है। यह तो धर्मात्माका धर्माचरण है। असहयोग बाप-बेटेमे उचित है, स्त्री-पुरुषके बीच कर्त्तव्य है, सगे-सम्बन्धियोमे फर्ज है। मेरा लडका मद्य-मास खाकर आये और मै उसका वैष्णव बाप उसे अपने घरमे क्षणभर भी रखूं, तो फिर मुझे रौरव नरकमे ही जाना पडे। इस असहयोगका रहस्य मैं आपको न समझा सकूं, तो फिर स्वराज्य एक असम्भव वस्तु है। स्वराज्य लेना हो, तो एक ही उपाय है और वह असहयोग है।

हाँ, तलवार भी जरूर एक उपाय है। परन्तु तलवारके लिए आपने कभी तपस्या की है? तलवारके लिए सयम किया है? इस्लामियोको तो तुमसे ज्यादा तलवार चलानी आती है। उन्होने भी जान लिया है कि यह काम तलवारसे नही होगा। क्या दो-चार आदमियोको मार देनेसे यह सल्तनत डरकर स्वराज्य दे देगी? जो सल्तनत हजारो अग्रेजो-की लाशोपर बनी है, जिसने हजारों अंग्रेज, सिख और पठानोके खूनकी नदियाँ बहायी हे, वह सल्तनत क्या पाँच-दस हत्याओंसे डर जायेगी? हरगिज नही। मै अग्रेजी सल्तनत की निन्दा करता हूँ, परन्तु उसे बहादुर भी बताता हूँ। उसे स्वदेश प्यारा है। उसमें जो राक्षसी भावना है, वह त्याज्य है। मै तो रावणकी बहादुरीकी भी तारीफ करनेवाला हूँ। तुलसीदासजीने कहा है कि दुश्मन मिले तो रावण-जैसा मिले। लक्ष्मणके साथ लडनेवाला तो इन्द्रजित्-जैसा होना चाहिए। ऐसी हुकूमतसे लडो, तो बहादुरीसे, मैदानमे उतरकर, तलवार निकालकर लडो। परन्तु वह चीज ताकतसे बाहर की है। मै हिन्दू धर्मको जैसा समझा हूँ, उसके अनुसार हिन्दूको बिना तलवारके ही लडना चाहिए, दूसरेका सिर काटनेके बजाय अपना ही सिर उडा देना चाहिए। मै स्वय भारतका बडेसे-बडा क्षत्रिय होनेका दावा करता हूँ। क्या मै रिवाल्वरसे पाँच गोलियाँ नही चला सकता? क्या मै किसीको जहर नही पिला सकता? मुझे कोई वायुयानमें ले जाये, तो वहाँसे क्या मै बम नही फेक सकता? परन्तु मैंने इन वस्तुओका ज्ञानपूर्वक त्याग कर दिया है। मुझे ईश्वरने एक खटमल-तक भी पैदा करनेकी शक्ति नही दी, तो फिर किसीको मारनेका काम भी मेरा नही है। मेरा काम तो मरनेका है। मै अपनी, अपनी स्त्री और अपने देशकी रक्षा करनेमें सिर दे दूँ, तब मै शुद्ध क्षत्रिय हूँ। अशक्तसे-अशक्त मनुष्य — स्त्रियाँ भी — अपने अन्दर क्षत्रियका स्वभाव पैदा कर सकते हैं; अर्थात् शत्रुसे कह सकते हैं कि हम तो अटल खड़े रहेंगे, तुमसे जो हो सो कर लो। नही तो हत्यारा भी क्षत्रिय माना जायेगा, स्त्रीपर हाथ उठानेवाला पुरुष भी क्षत्रियोमे गिना जायेगा। इसीलिए मै भारत [के लोगो]से पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ कि जो-कुछ करो सो शुद्ध क्षत्रिय-वृत्तिसे करो। मुसलमानोको गालियाँ देने, मुसल-मानोका तिरस्कार करनेसे तो हमारा धर्म लज्जित ही होता है। घडी-भरको मान लो कि मुसलमान तुम्हे धोखा देते हैं, तो जो शक्ति तुम इस हुकूमतसे असहयोग करनेमें इस्तेमाल करो, वही शक्ति तुम मुसलमानोसे असहयोग करनेमें काममें लेना। आजतक तुमने मुसलमानोसे सहयोग किया ही कहाँ है। एक बार उनसे सहयोग करके देखो। तुमने सरकारसे तो खूब सहयोग किया है; और इतनेपर भी हम दु.खी है। इसलिए

मैं तुमसे कहता हूँ कि सरकारसे असहयोग करो और मुसलमान भाइयोंके साथ सहयोग करो। असहयोग करानेके लिए तुम्हे मारकाट नही करनी है। जिसे उसमें शरीक न होना हो, उसे तुम मार-मारकर हकीम नही बना सकोगे। उससे तुम्हे नम्रता और विनयका व्यवहार करना चाहिए। वह तुम्हे लात मारे तो सहन कर लेना, तभी तुम असहयोग करा सकोगे। तुममें सचाई होगी, नम्रता होगी, तुम एकदिल होगे, तुम बहादुर बनोगे तो तुम्हें छोडकर सरकारका साथ कौन दे सकेगा? ऐसे लोगोंको समझानेके लिए खुद बहादुर बनो और त्याग करो।

एक लाख गोरे तीस करोड़ लोगोंपर कैसे हुकूमत चला सकते हैं? कारण यह है कि हम गुलाम बन गये हैं। यदि हम यह कह दे कि भाई, आजसे हम गुलाम नही रहेंगे तब या तो वे चले जायेंगे या हमारे नौकर बनकर रहेंगे। परन्तु ऐसा कहनेकी शक्ति प्राप्त करनेकी पहली सीढी यह है कि हम धारालो, भीलो, मुसलमानोके साथ, ढेढ़ो और भंगियो, सभी जातियोके साथ भाईचारा रखें, उन्हे भाई समझें उनका तिरस्कार न करे। मुसलमान गायको मारते हैं, इससे तुम्हे क्रोध आता है, परन्तु क्या हिन्दू गायको नही मारते? गायका दूध सूख जानेपर भी उसका खून खीच लेना, गायकी सन्तानके आर भोकना भी गायकी हत्याके बराबर ही है। सदा ऐसी गोहत्या करनेवाले हिन्दू किस मुँहसे मुसलमान भाइयोके पास जाकर यह कह सकते हैं कि हमारी गायको तुम क्यो मारते हो? गायको बचाना हो, तो हिन्दुओको स्वय अपनी शराफत दिखानी चाहिए। मुझे तो मुसलमानसे ऐसी याचना करने जाते शर्म आती है। और तुम्हारी गायको अंग्रेज तो रोज खाते हैं। अंग्रेज सिपाहियोका 'बीफ'—गोमास—के बिना तो घडीभर भी नहीं चलता। तुम मुसलमानोका तिरस्कार क्यो करते हो? मुसलमानोमें तो ईश्वरका डर भी है। तुम थोड़े दिन अली भाइयोंके साथ रहो, तो तुम्हे पता चले कि वे ईश्वरसे कितना डरते हैं। मुसलमानोके साथ एकदिल हो जाओ तो स्वराज्य मिलना थोडे ही समयकी बात है।

अपने लडकोको पाठशालाओसे हटा लो, धारा सभाओमे प्रतिनिधि मत भेजो, चरखेपर सूत कातो और खादीके कपडे पहनो।

अन्तमे यही कहना है कि हमे लडकोको शिक्षा देनी है, नई अदालते चलानी हैं, उनके लिए रुपया चाहिए। तुम यथाशक्ति रुपया दो। तुमसे रुपया लेना मुझे कठिन लगता है। मै ऐसे बहुत-से नौजवान नही देखता, जिनके हाथोमे रुपया सौंपकर निर्भय रह सकूँ। तुम्हे असहयोगमे मदद करनी हो तो अभी जो स्वयसेवक घूमेंगे, उन्हे एक पैसेसे लगाकर तुम्हे जितना देना हो, उतना देना। असहयोगके लिए एक-एक पैसा तो कमसे-कम हरएक दे ही सकता है। और कुछ नही तो प्रत्येक मनुष्य कमसे-कम कताई-बुनाई तो कर ही सकता है। यदि तुम यह मानते हो कि मिलका कपडा पहनकर स्वदेशीका पालन होता है, तो यह भूल है। मिले भारतके लिए पूरा कपडा नही बना सकती। खादीमे ही सौन्दर्य है। बारीक मलमल गुलामीकी निशानी है, इसलिए खादी मुझे हल्की, फूल-सी लगती है और पतली मलमल भारी लगती है। तुम अपने लडकोंको घर ही बिठा दो। वे कुछ समय न पढें, तो हर्ज नही। घर बैठे उन्हे भगवानका भजन करने दो।

तुम यदि असहयोगको पसन्द करते हो, इस राक्षसी राज्यके जुएसे निकलना चाहते हो, तो जब स्वयंसेवक आये तब उठकर चले न जाना, बल्कि यथाशक्ति उन्हे कुछ-न-कुछ देकर जाना। मेरा या वल्लभभाईका नाम लेकर या स्वराज्य सभाका काम लेकर कोई तुमसे कुछ माँगे, तो बिलकुल मत देना। तुम उन्हें पहचानते हो, तो उनके हाथमे रुपया देना। इस समय जिसके पास रुपया-पैसा न हो, वह अहमदाबाद भेज सकता है। आजसे ईश्वर तुम्हे साहसी बनाये, बलिदानकी शक्ति दे; ईश्वर तुम्हें सचाई और नम्रता दे और तुम केवल ईश्वरसे ही डरो और वह तुममे से मनुष्य-मात्रका डर निकाल दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३–११–१९२०

२१८. भाषण: स्त्रियोंकी सभा, डाकोरमें

२७ अक्तूबर, १९२०

बहनो,

आप सब शान्तिसे मेरी बात सुनना। मुझे जो कहना है, मैं थोड़े ही शब्दोंमें कह दूँगा। आपमे से कुछ बहने डाकोरकी ही होगी और कुछ बाहरसे यहाँ आई होगी। मुझे विश्वास है कि इतनी सारी बहनोंमें शायद ही किसीको पता होगा कि इस समय भारतकी क्या दशा है? आज हिन्दुस्तानकी जैसी हालत है, उसमे हमारा कर्त्तव्य क्या है, हमारा धर्म क्या है? आप सब इस तीर्थस्थानमे पवित्र भावसे आई है। आपको लगता होगा कि डाकोरजीके दर्शन किये कि सब पाप नष्ट हो गये। गोमतीमे स्नान कर लेने-मात्रसे सर्वस्व मिल गया। कुछ बहनोंका यह भी खयाल होगा कि गांधी-जैसे महात्माके दर्शन करके कृतार्थ हो गये। यह बात बिलकुल गलत है। गोमतीजीमें स्नान करो और मनको पवित्र न बनाओ, तो उलटे आप गोमतीजीको गंदा बनाती है। डाकोरजीके दर्शन करने जाये और वहाँ केवल पैरोंका मैल छोड़ आयें, तो वह दर्शन कोई काम नही आता। मनको पवित्र करे, हृदयमे अच्छे भाव उत्पन्न करें, अपने बारेमे ज्ञान प्राप्त करें, तभी डाकोरनाथका दर्शन सफल होगा। यह तो आप खुद ही कहेंगी कि मेरे-जैसे अश्रद्धालु या किसी ईसाईको दर्शनसे क्या लाभ होगा। मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि जबतक हमारा मन शुद्ध नही, दिल जबतक साफ नही हुआ तबतक गोमतीका स्नान या रणछोड़रायके दर्शनका कुछ भी फल नही हो सकता।

अब सब बहनोसे मेरा पहला अनुरोध यह है कि आप यह समझ ले कि सच्चा धर्म किस बातमे है। जबतक आप यह न समझे कि सच्चा धर्म किस बातमे है, जब-तक नही समझेंगी कि भारतकी क्या दशा है, आप जबतक यह मानती हैं कि सरकार तो माँ-बाप है, उसके राज्यमें हम शान्तिसे रहती है, तबतक आप गुलामीसे नही छूट सकतीं। मैं मानता हूँ कि सरकारने हमे गुलाम बनाया है। तीस वर्षतक मैं मानता था

कि हम अंग्रेजी राज्यकी छायामें सुखी हैं। परन्तु अब मुझे विश्वास हो गया है कि हम इस सरकारकी छायाके नीचे नहीं बैठे हैं, बल्कि धूपमें झुलस रहे हैं। हमारा धर्म हमसे छूटा जा रहा है। मैंने रास्तेमें इस आशयकी तख्तियाँ लटकी हुई देखीं कि होटलमें जानेसे हम अपना धर्म खो आते हैं। यह सच है, परन्तु अर्द्धसत्य है। ये होटल कब आरम्भ हुए? इस सरकारके राज्यमें। और क्यों हुए? इसलिए कि इस सरकारने हमें ऐश-आराम करना सिखा दिया। अब हम घर छोड़कर बाजारमें स्वाद लेना सीख गये हैं, वैष्णवोंके मर्यादा-धर्मका हमने उल्लंघन कर दिया है। यह सरकार ऐसी है, जो शराब और अफीमका व्यापार करके लाखों रुपये पैदा करती है। शास्त्रमें कहा है कि जो राजा व्यापार करे वह मध्यम है, प्रजाकी रक्षा कर सकनेके लिए ही जो उससे थोड़ा-सा ले वह उत्तम, और जो प्रजाको व्यसनी बनाकर और मद्यपान सिखाकर रुपया पैदा करे वह राजा अधम है। आजकल हमपर ऐसा अधम शासन है, यह मैं तुम बहनोंको सिखाने यहाँ आया हूँ।

'भगवद्गीता' में हमें सिखाया गया है कि हम सबको समान समझें। हिन्दू-मुसलमान तो देशकी आँखोंके समान हैं। उनमें वैरभाव नहीं हो सकता। परन्तु हम इन मुसलमानोंसे नफरत — असहयोग करते हैं, उनसे वैर करते हैं। यह सरकार आज इन मुसलमानोंका धर्म मिटानेपर तुली हुई है। आज वह उनका धर्म मिटाती है, तो कल हमारा धर्म भी मिटा सकती है।

दूसरी बात पंजाबकी है। पंजाबका नाम भी शायद तुमने नहीं सुना होगा। परन्तु हमारे ऋषियोंने पंजाबसे ही भारतमें प्रवेश किया था। पंजाब वह भूमि है, जहाँ बैठकर ऋषियोंने सारे शास्त्र लिखे थे। उसी पंजाबमें सरकारने स्त्रियों और पुरुषोंका अपमान किया है, उसी पंजाबके बच्चोंको कोड़े लगाये हैं, उसी पंजाबके आदमियोंको साँपकी तरह पेटके बल चलाया है। ऐसी सरकारकी प्रभुता स्वीकार करना अधर्म है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमें इस रावणराज्यको बदलकर रामराज्य स्थापित करना चाहिए।

मेरा दूसरा अनुरोध आपसे यह है कि आप स्वदेशी धर्मका पालन करने लग जायें। इस सरकारने हमें पाखण्ड सिखाया है। हम यह मानना सीखे हैं कि विलायती कपड़ेसे शरीरकी शोभा बढ़ती है। यहाँ आई हुई बहनें जो कपड़ा पहने हुए हैं, उनमें भी विदेशीपनकी बू है। मिलोंका कपड़ा भी स्वदेशी नहीं है। जितना कपड़ा मिलोंमें बनता है, वह भारतके लिए काफी नहीं। आप कोई भिखारी नहीं हैं। मैंने आपसे भी अधिक गरीब देखे हैं। मैंने ऐसे पुरुष देखे हैं जिन्हें केवल एक लँगोटी ही मिलती है और ऐसी बहनें जिन्हें मात्र जीर्ण-शीर्ण लहँगा मिलता है। आज हिन्दुस्तान स्वदेशी धर्मको अंगीकार कर ले, 'सुन्दर चरखा' सभी बहनें चलाने लगें, खुद कात सकें उतने ही कपड़े पहनें, तो हम आज ही गुलामीसे छूट जायें। पहलेकी स्त्रियाँ गुणोंको ही खूबसूरती मानती थीं। विदेशी कपड़े पहननेवाली तो कुबड़ी हैं। कपड़े पहनकर सुन्दरताका प्रदर्शन तो वेश्याओंकी मनोवृत्ति है। हम कैसी सीताजी और दमयन्तीको पूजते हैं? क्या बारीक कपड़े पहननेवाली दमयन्ती या बारीक कपड़े पहननेवाली सीताजीको? नहीं,

आधे वस्त्रोमे वन-वन घूमनेवाली दमयन्तीको, चौदह वर्ष वनवासमे बितानेवाली सीताजीको हम पूजते है। हरिश्चन्द्रकी रानीने दासत्व किया था, सो क्या वह बारीक कपड़े पहनती होगी? उस समय तो पत्तोसे लाज ढकते थे। ऊपरी टीम-टामसे सुन्दरताका प्रदर्शन करना वेश्याका लक्षण है। आप अपना धर्म पालना चाहती है, तो पहली सीढी यह है कि आप स्वदेशी धर्म समझ ले। अपने ही हाथका कता हुआ सूत और अपने ही घरके पुरुषोका गाते-गाते बुना हुआ कपडा काममे लेनेका नाम ही स्वदेशी धर्म है। मै स्वय सचमुच खूबसूरत हूँ, क्योकि मेरे पहने हुए कपडोमे बहनोके हाथका कता हुआ और पुरुषो द्वारा प्रेमसे बुना हुआ सूत है। यदि तुम्हे रावणराज्यसे स्वतन्त्र होकर रामराज्य स्थापित करना हो, तो तुम स्वदेशी धर्म अगीकार करो, चरखको घरमे जारी करो। चरखा सिखानेवाली अब तो तुम्हे बहुत मिल जायेगी। प्रत्येक बहन ईश्वर-भजन करती-करती कमसे-कम एक घटा तो काते ही। उस सूतसे तुम कपडा बुनवा लेना।

विदेशी मलमल छोड़कर हाथका बुना हुआ कपडा पहनना पहले तुम्हे भारी तो अवश्य पडेगा। बम्बईकी कुछ बहनोने मेरे सामने शिकायत की कि हमारी साड़ी पहले चालीस तोलेसे कम होती थी, सो अब सत्तर तोलेसे बढ जाती है। मैने उन्हे जरा आलकारिक भाषामे उत्तर दिया कि कपड़ोका भार घटाकर तुमने आजतक अपना भार हलका किया है। स्त्रियाँ नौ मासतक गर्भका भार आनन्दके साथ उठाती है, प्रसव-कालकी भारी वेदना सहर्ष सहन करती है। आज तो भारतवर्षका प्रसव-काल है। इस नव भारतके प्रसव-कालमे तुम मोटे कपडका भार उठानेको भी तैयार नही होगी? यह बोझा उठा लोगी, तभी तुम भारतको स्वतन्त्र बना सकोगी। भारतको नया जन्म देना हो, तो प्रत्येक स्त्रीको नौ महीने तो क्या, नौ वर्ष भी भारी खादीका भार उठाना पड़ेगा।

दूसरे, तुम जानती हो कि तुम अपने बच्चोको कहाँ पढने भेजती हो? तुम उन्हे रावणराज्यकी पाठशालाओमे भेजती हो। धार्मिक वैष्णव कभी अपने बालकोको अधर्मी राज्यकी पाठशालाओमे भेजेगा? क्या मै कभी किसी पाखण्डीसे 'गीता' या 'भागवत' पढने जाऊँगा? आजकलके स्कूल पाखण्डी राज्यके है। जबतक ये स्कूल हमारे न हो जाये, तबतक के लिए तुम अपने बच्चोको उनमे से निकाल लो। उन्हे 'रामरक्षा' सिखाओ, ईश्वरके भजन सिखाओ अथवा अपने गाँवके समझदार लोगोसे जाकर कहो कि 'हमारे बच्चोको पढाओ', परन्तु इन स्कूलोमे तो तुम अपने बच्चोको हरगिज मत भेजो।

आज एक बहन मेरे सामने पाँच रुपये रख गई। अबतक मैने इस ढगसे दान नही लिया। जितना मुझे चाहिए उतना मित्रोसे ही ले लेता हूँ। परन्तु अब तो मुझे स्वराज्य स्थापित करना है और अनेक पाठशालाएँ चलानी है, वे इस तरह मित्रोसे रुपया लेकर तो चलाई नही जा सकती। तुम्हे रामका राज्य चाहिए, तो उसके लिए प्रयास करना ही चाहिए। जितनी शक्ति हो उतना दान तुम देना, उसका उपयोग मै स्वदेशीके लिए, तुम्हारे बच्चोके लिए पाठशालाएँ खोलनेमे करूँगा। इस समय तो डाकोरनाथजीको लेकर हममे से कुछ पाखण्डी लोग अदालतोमें पहुँचे है! क्या देवताओ-

से सम्बन्धित अपने झगडे हम अदालतमें ले जाते हैं? यह पाखण्ड है। वकीलोंको घर बिठानेके लिए हमे उन्हे थोडा-बहुत देना पड़ेगा। मेरी और मेरे साथियोंकी दलील सही हो, तो विश्वास रखो तुम्हारे एक पैसेके तुम्हे दो पैसे मिलेंगे। इन रुपयेसे तुम्हारा ही स्वदेशी आन्दोलन, तुम्हारी ही अदालते चलेगी। आज देवस्थानोमे हम जो रुपये देते हैं, वे पाखण्डियोके हाथो लुट जाते हैं।

यदि तुम्हें सीताजीकी तरह पवित्र बनना हो, मैंने समझाया वैसा अनेक प्रकारका सूक्ष्म मानसिक व्यभिचार छोडना हो और अपनी दूसरी बहनोसे छुड़वाना हो; पाखण्डमें से पवित्र धर्म सीखना हो तो तुम्हे स्वराज्यके इस आन्दोलनमें पूरा भाग लेना चाहिए। पाखण्ड क्या है और धर्म क्या है, इसकी परीक्षा करना तो प्रत्येकको आना ही चाहिए। तुम्हारे पास बहुत-से पाखण्डी भी रुपया माँगने आयेंगे। मै यह नही कहता कि तुम उन सबको दो। जब मुझे विश्वास हो गया कि तुम्हें मुझपर विश्वास है, तभी मै आज तुम्हारे आगे हाथ पसार रहा हूँ। अपने काममे रुपयेके मलिन तत्त्वको शामिल करते हुए मैं काँप रहा हूँ। मेरा इतना तप हो कि रुपयेके बिना काम चला सकूं, मुझमें इतनी तदबीर हो तो मै निश्चय ही न माँगूं। परन्तु वैसा तप या तदबीर मुझमे नही है। मैं स्वय भी कलियुगका ही आदमी हूँ, मुझमे अनेक त्रुटियाँ है। परन्तु मुझे विश्वास है कि मैं अपनी त्रुटियाँ दूर करनेका सतत प्रयत्न करता रहता हूँ। इसलिए आपको विश्वास हो तो एक पैसेसे लेकर जितना हो सके, उतना दान दो। इस सारे पैसेके खर्चकी व्यवस्थाका कार्य स्वराज्य सभा करेगी।

अन्तमें आप सब बहनोसे मेरा अनुरोध है कि आपसे जो दो-चार बाते मैंने कही है, उन्हे एक कानसे सुनकर दूसरे कानसे निकाल मत देना। स्वदेशी धर्मके पालनसे पोशाकके खर्चसे कुछ रुपये बचेगें, उनसे अपने बच्चोको घी-दूध दे सकेंगी। इस समय घी-दूधका रुपया आप ऐश-आराममे खर्च कर डालती है। और इस बचतमें से मैं भी थोडा-सा माँगता हूँ। तुम्हारी खुशी हो तभी पैसा देना। पैसा न दो, तो भी चरखेका जो धर्म मैंने आपके सामने रखा है, उसे तो स्वीकार कर ही लेना। आज हमें ग्रहणके अशौचका प्रक्षालन करना है। अपने दिलका मैल निकाल देना ही ग्रहणका सच्चा प्रक्षालन है। सब बहने सच्चे हृदयसे राम-नाम लेगी, यह प्रार्थना करेगी कि रावणराज्यके बजाय रामराज्य मिले, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि राम निर्बलका बल अवश्य बनेंगे। परमेश्वर आप सबके दिलोका शासक बने और दूसरी तरहकी गुलामीसे आपको छुडाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-११-१९२०

२१९. पत्र : रॉबर्टसनको

[२८ अक्तूबर, १९२०][1]

प्रिय श्री रॉबर्टसन[2],

अभी दौरेसे लौटकर मैंने आपका कृपापत्र देखा। आपने जो पत्रिका भेजी है, निस्सन्देह मैं उसे पढ़ूंगा और जब मैं दिसम्बरमें अहमदाबाद आऊँगा, तब आपसे बातचीत करनेमें मुझे खुशी होगी।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७३०८)की फोटो-नकलसे।

२२०. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम
[२८ अक्तूबर, १९२०]

चि० देवदास,

हम ग्यारह बजे यहाँ पहुँचे। मैंने तुम्हें कल जो पत्र लिखा था, उम्मीद है कि वह तुम्हें मिल गया होगा। तुम्हारी तबीयतकी खबर मथुरादासने दी है। मैं मानता हूँ कि इस सम्बन्धमें वह मुझे नियमित रूपसे लिखता रहेगा। तुम्हारी तबीयतके बारेमें मैं चिन्ता न करनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

बलीबेन आ गई है। वापस लौटते समय वह बच्चोंको ले जायेगी। दीपक भी छुट्टियाँ बितानेके लिए लाहौर जा रहा है। श्री एन्ड्रचूज यहीं हैं। कल जायेंगे। जिनविजयजी[3] भी मेरे साथ आये हैं।

बा राजी-खुशी होगी। सोमवारको सबेरे मैं यहाँसे मेहमदाबाद जाऊँगा और वहाँसे उसी दिन दोपहरको नडियादके लिए रवाना हो जाऊँगा। मंगलवारको नडियादसे चलूँगा और बुधवारको सबेरे वहाँ पहुँचूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ७१७२)की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजी २८ अक्तूबर, १९२० को संयुक्त प्रान्त और पंजाबके दौरेसे लौटकर अहमदाबाद पहुँचे थे।
२. इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस, पूना।
३. जैन विद्वान् व साधु जो उन दिनों गुजरात पुरातत्त्व मन्दिरके कर्मचारी थे।

२२१. पत्र : रघुनाथसहायको

आश्रम
सावरमती
३० अक्तूबर, १९२०

प्रिय महोदय,

आपका पत्र मिला; उसके लिए धन्यवाद। आपने जिस दृश्यका वर्णन किया है, मैं मानता हूँ कि वह वहुत शर्मनाक है। मैं इस मामलेकी छानवीन कर रहा हूँ। यदि आपको उपद्रवोके सम्बन्धमे कुछ और तथ्य मिल जाये, तो कृपया मुझे फिरसे लिखिए। मैं अपने साथियोसे वातचीत करनेके वाद आपके साथ पत्र-व्यवहार करनेकी आशा रखता हूँ।

इसमे तो शक नही कि इस तरहकी दुर्घटनाएँ वीच-वीचमे होती रहेंगी। ऐसी हिंसात्मक प्रवृत्तियोको रोकना हम सवका काम होगा। किन्तु मैं यह वात उचित नही मानता कि कुछ विद्यार्थियोके अति उत्साह-दोपसे हम एक वडा आन्दोलन वन्द कर दे।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७३१३) की फोटो-नकलसे।

२२२. पत्र : अखबारोंको

[३१ अक्तूबर, १९२० के पूर्व]

मैं देखता हूँ कि कुछ लोग चायकी दुकाने जवरदस्ती वन्द करवाते हैं[2] और इसमे मेरे नामका दुरुपयोग करते है। एक दुकानदारने, जिसकी दुकान और जिसके आदमियोपर [इस सिलसिलेमें] पत्थर फेंके गये थे, मुझे इस सम्वन्धमे पत्र भी लिखा है। यह जानकर मुझे वहुत दुख हुआ है। मुझे यह विलकुल पसन्द नही है। यह ठीक

१. हेड मास्टर, दयालसिंह हाई स्कूल, लाहौर। २५ अक्तूबर, १९२० के अपने पत्रमें उन्होंने गांधीजीको लिखा था : "सैकड़ों लड़के मेरे स्कूलमें घुस आये; खिड़कियाँ और वचें तोड़ डालीं; कई विद्यार्थियोंको मारा और वहुत-सी किताबें उठा ले गये। शरारत करनेमें विद्यार्थियोंके साथ कुछ 'वदमाश' भी शामिल हो गये थे। मेहरवानी करके इस तरहके असहयोगके परिणामपर विचार कीजिए। यह आपके विचारोंके अनुरूप अहिंसात्मक नहीं रह सकता. . .।"

२. देखिए "चायकी दुकानें", ३१-१०-१९२०।

है कि चायकी दुकाने भी मुझे पसन्द नही है लेकिन मैंने उन्हें बन्द करवानेकी कोई हलचल न तो खुद शुरू की है और न किसीसे वैसा करनेको कहा है। सच तो यह है कि यदि कोई चायकी दुकाने जबरदस्ती बन्द करवाना चाहे तो मै दुकानदारोकी रक्षा करूँगा। जो लोग चायकी दुकाने बन्द करवानेकी इस हलचलमे हिस्सा ले रहे है उन्हें यह काम करना ही हो तो शान्तिसे करना चाहिए। लोगोको उसके लिए समझाना चाहिए, उसमें पशुबलका उपयोग कदापि नही करना चाहिए और न मेरे नामका दुरुपयोग करना चाहिए। स्वयसेवकोंको चाहिए कि वे निर्दोष दुकानदारोको ऐसे हमलोसे बचाये।

मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]
गुजराती, ३१-१०-१९२०

२२३. दीवाली कैसे मनायें

अगर हम ऐसा कहें कि इस कलियुगमे हमे ठाठ-बाटके साथ दीवाली मनानेका कोई अधिकार नही है, तो अतिशयोक्ति न होगी। दीवाली मनानेका अर्थ यह हुआ कि हम रामराज्यमें रहनेकी कल्पना कर रहे है। क्या आज हिन्दुस्तानमे रामराज्य है?

जो राजा प्रजाकी बात सुननेको तैयार ही नही है, जिस राजाकी प्रजाके लिए पीनेको दूध नही, खानेको भोजन नही, पहननेको वस्त्र नही, जो राजा बिना किसी सकोचके लोगोकी हत्या करता है, जो राजा अफीम, शराब और गाँजेका व्यापार करता है, जो राजा सूअरका मास खाकर मुसलमानोका और गायका मांस खाकर हिन्दुओंका मन दु.खाता है, जो राजा इस्लामको जोखिममे डालता है, जो राजा घुडदौडमे दाव लगाता है उस राजाकी प्रजा दीवाली कैसे मना सकती है?

इस वर्णनमें किसीको अतिशयोक्तिकी आशका नही होनी चाहिए; अथवा जिन्हें ऐसा भय है उन्हे मै नम्रतापूर्वक समझानेके लिए आतुर हूँ। यदि मै अग्रेजोके प्रति तनिक भी अन्याय करता होऊँ तो मै अपनी भूल स्वीकार करनेके लिए तैयार हूँ। उस भूलके लिए क्षमा माँगना भी मै अपना धर्म समझूंगा।

जिस कसौटीपर मै ब्रिटिश राज्यको कसना चाहता हूँ उसी कसौटीपर किसी भी भारतीय राजाको कसना चाहूँगा। इतना ही नही अपितु भारतीय राजाको मै और भी कठिन कसौटीपर कसना चाहूँगा। कसौटीपर थोडा-सा कसते ही मुझे अग्रेजी राज्य असह्य प्रतीत होता है। इस राज्य-सत्ताके प्रति मेरा समस्त मोह नष्ट हो चुका है।

अंग्रेज जनताकी शूरवीरताके प्रति मेरे मनमे बहुत अधिक सम्मान है। उनकी संघशक्ति, योजनाशक्ति सुन्दर है। उनके साहित्यके कितने ही अंश अवर्णनीय है। उनकी 'बाइबिल' को पढ़कर मुझे आत्म-सन्तोष मिलता है। लेकिन उनकी स्वार्थ-परता उनके गुणोंको ढक देती है। उनकी इस प्रवृत्तिसे हिन्दुस्तानको नुकसान ही हुआ है।

हिन्दुस्तानके लोग पतित और कायर हो गये हैं। हिन्दुस्तानके लोगोंमें आज जिन कायरताके दर्शन होते हैं ऐसी कायरता मुगलों अथवा किसी भी राजाके शासन-कालमें नहीं थी, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। यह कायरता अनायास ही नहीं आई है; बल्कि वह जान-बूझकर लोगोंके दिलोंमें पैदा की गई है। इसी कारण इस राज्यको मैं रावणराज्य मानता हूँ। हमे जैसा राज्य चाहिए उसे मैं रामराज्य कहता हूं। ऐसा रामराज्य तो स्वराज्य ही हो सकता है।

इस राज्यकी कैसे स्थापना की जा सकती है?

प्राचीन कालमें जब जनता कष्टमें होती थी तब वह तपश्चर्या करती थी। प्रजा मानती थी कि पापी राजा उसे अपने पापोंके कारण ही मिलता है, इसलिए स्वयं पवित्र होनेका प्रयत्न करती थी। इस दिशामें पहला कदम यह होता था कि राक्षसको पहचानकर वह उससे दूर रहती, उससे असहयोग करती थी। असहयोग करनेकी हिम्मत होनी चाहिए; उसे प्राप्त करनेके लिए सुखोपभोगका परित्याग किया जाना चाहिए। राक्षसी राज्यमे रहकर शिक्षा प्राप्त करना, उसके हाथों सम्मानित पदवियोंको ग्रहण करना, उससे अपने झगडोंका निर्णय करवाना, उसको कानून रचनेमें मदद करना, उसे सिपाही प्रदान करना, उसके द्वारा तैयार किये गये वस्त्र पहनना और इसके साथ-साथ उस राज्यके नष्ट होनेकी कामना करना तो जिस डालपर बैठे हों उसीको काटनेके समान है। यह तो पाप माना जायेगा और ऐसे राज्यका नाश भी नहीं होगा। तब हम किस तरह दीपावलीका त्योहार मनायें?

१. अगर हमारे बच्चे सरकारी स्कूलोंमे जाते हों तो उन्हे उठा ले।

२. उनके बदले दूसरे स्कूलोंकी स्थापना करे।

३. हम अपने झगड़ोंको अपनी पंचायतोंके जरिये सुलझायें।

४. वकील वकालत छोड़ दे।

५. मतदाता स्वयं मत न देनेका निश्चय करे और दूसरोंसे भी वैसा ही करनेकी प्रार्थना करें। अपने ही मुहल्लेमे अगर कोई उम्मीदवार हो तो दीवालीका अभिनन्दनपत्र भेजते हुए उससे अपना नाम वापस लेनेके लिए कहे।

६. अपने घरोंमें पवित्र चरखोंको प्रतिष्ठापित करे।

७ हाथसे कते हुए सूतका ही कपडा तैयार करे और उसके बने वस्त्र पहनकर देशकी खातिर अतिरिक्त भार वहन करे।

इन सब कार्योंके लिए पैसेकी जरूरत तो होती ही है, इसलिए हम यथाशक्ति दान दे, दूसरोंसे धन इकट्ठा करे। यदि जनता मेरी सलाह माने तो इस दीवाली-पर मैं उससे केवल स्वराज्यके लिए ही काम करवाऊँ।

दीवालीपर हम इतना तो कदापि न करे.

१. ठाठ-बाट न करे।

२. जुआ न खेले।

३. तरह-तरहके पकवान न बनायें।

४. पटाखे न छुडायें। इन सबसे बचनेवाली रकम हम स्वराज्य-कार्यमें दें।

यह आपद्-धर्म है। जब हम अपने मनोनुकूल राज्यकी स्थापना करनेमें समर्थ हो जायेंगे तब हम नि सन्देह कुछ निर्दोष आनन्दोंका उपभोग कर सकेंगे। लेकिन इस समय तो जनता शोकमें डूबी हुई है, यह प्रजाका वैधव्य-काल है। ऐसे समय जनता रागरंगमें कदापि नहीं डूब सकती।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ३१–१०–१९२०

२२४. चायकी दुकानें

गुजरातमें चायकी दुकानें बन्द हो गई हैं; यह परिवर्तन साधारण परिवर्तन नहीं है। जिन लोगोंने इस कार्यको हाथमें लेकर पूरा किया उन्हें मैं बधाई देता हूँ। मुझे उम्मीद है कि यह [आत्म-]त्याग कायम रहेगा।

एक जमाना ऐसा था जब हम अपना खान-पान घरमें ही करते थे। और बादमें बाहर खाने-पीनेकी कोई जरूरत ही नहीं रहती थी। अब तो हम खान-पान अधिकतर बाहर ही करते हैं इसलिए हमें अच्छी खुराक नहीं मिल पाती और जो मिलती भी है वह महँगी होती है। यह तरीका गरीबोंके लिए तो बहुत ही मँहगा पड़ता है।

चायमें मुझे तो कोई विशेष गुण नजर नहीं आया, और फिर बाजारमें मिलनेवाली चाय अधिक उबाले जानेके कारण हानिकारक होती है। लेकिन इस आन्दोलनका सबसे अच्छा परिणाम तो यह निकला कि इससे दूधकी बचत हुई है और उसके दाम गिर गये हैं। अगर जनता बराबर ध्यान रखे तो दूधके दामोंको नियन्त्रित रखा जा सकेगा और दूध, घी आदि वस्तुएँ जो गरीबोंके लिए स्वप्नवत् हो गई थीं, सम्भवत. उन्हें मिलने लगेंगी।

लेकिन चायकी दुकानोंको लोकमतके बलपर बन्द करवाना एक बात है और पशु-बलसे बन्द करवाना दूसरी बात। बम्बईमें इन्हें बलात् बन्द करवानेके प्रयत्न किये जा रहे हैं जो मेरे विचारसे एक भयंकर बात है। इस सम्बन्धमें मैंने वहाँके समाचारपत्रोंको पत्र[1] भी लिखा है। मैं उस ओर भी पाठकोंका ध्यान आकर्षित करता हूँ। जोर-जबरदस्तीसे चायकी दुकानें बन्द की जायें इसकी अपेक्षा मैं उनका खुला रहना अधिक पसन्द करूँगा। चायकी दुकानें बन्द करवानेका रास्ता यह नहीं कि चाय-विक्रेताओंपर जुल्म किया जाये। इसकी बजाय वहाँ जानेवाले ग्राहकोंको समझाना चाहिए। जब ऐसी प्रवृत्तिमें मेरा नाम जोड़ दिया जाता है तब मुझे और भी दु ख होता है। किसी भी तरहकी जोर-जबरदस्तीमें मेरी सहमति हो ही नहीं सकती। मैं जोर-जबरदस्तीको अधर्म मानता हूँ। अच्छेसे-अच्छे कार्यके लिए भी मैं जोर-जबरदस्ती नहीं करना चाहता। स्वराज्य-तक मैं बलपूर्वक नहीं लेना चाहता, तो फिर चायकी दुकानोंको जोर-जबरदस्तीसे बन्द करवानेकी इच्छा मैं कैसे कर सकता हूँ?

१ देखिए "पत्र: अखबारोंको", ३१–१०–१९२० के पूर्व।

लेकिन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिवर्तन जनता शराबबन्दी करवाकर कर सकती है। यदि जनता इस कार्यको अपने हाथमें ले तो शराबकी दुकानें बन्द करवाई जा सकती हैं। उस दुकानके मालिकको समझाकर नहीं, क्योंकि मालिकोंको समझाना मैं लगभग असम्भव मानता हूँ, वरन् शराब पीनेवालोंको उसके दुर्गुणोंसे परिचित करवाकर, उनके मनको प्रभावित करना मैं मुश्किल नहीं मानता। चायसे मनुष्यका हाजमा बिगड़ता है, शराबसे आत्म-विनाश होता है। शराबके बाद उन्माद, व्यभिचार और जुआ आदि दुर्गुण आते हैं। शराबसे मन मलिन होता है, हृदय क्रूर बनता है। मेरी दृढ मान्यता है कि शराबके व्यसनसे पश्चिमके लोग दुष्ट हो गये हैं। इसी कारण वे दुष्कृत्य करनेमें नहीं हिचकिचाते और पापको पुण्य मानते हैं। इसलिए यदि हम गुजरातमें लोगोंकी शराब पीनेकी बुरी आदत छुड़वा सकें तो यह उन्हें एक तरहकी कैदसे मुक्त करवाने-जैसा होगा। मनुष्यको शराबकी कोई जरूरत नहीं, यह सभी जानते हैं। शराबी संयमका पालन नहीं कर सकता — कौन ऐसा व्यक्ति है जो इस बातसे अनभिज्ञ है? इसलिए मुझे उम्मीद है कि विवेकसे, पशुबलका प्रयोग किये बिना और अच्छी तरह समझा-बुझाकर शराबीको शराबके व्यसनसे मुक्त करवानेका प्रयत्न चालू रहेगा।

निःसन्देह इस कार्यमें कठिनाइयाँ हैं। चाय पीनेवालोंको समझाना सहल था। शराब पीनेवालोंको समझानेका काम ज्यादा मुश्किल है। तथापि जनमतके आगे सब घुटने टेक देते हैं। जनमतके सम्मुख लज्जित होते ही शराबी अपना व्यसन छोड़ देंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३१-१०-१९२०

२२५. भाषण: स्त्रियोंकी सभा, अहमदाबादमें

३१ अक्तूबर, १९२०

सारे भारतमें जहाँ-जहाँ मैं घूम रहा हूँ, वहाँ सब जगह स्त्रियोंके दर्शनसे कृतार्थ होता हूँ। हर जगह हजारों स्त्रियाँ मुझसे मिलती हैं। आज मैं आपसे एक सुन्दर बात कहूँगा। अमृतसरका नाम तो अब आपमें से किसीके लिए भी अज्ञात नहीं होगा। इस शहरमें हमारे हजारों भाइयोंके खूनकी नदी बही थी और वहाँ जनरल डायरने हजार-पन्द्रह-सौ निर्दोष मनुष्योंको कत्ल या घायल किया था। उसी अमृतसरमें जब मैं कुछ दिन पहले गया, तब एक दिन सुबह साढ़े छः बजे चार बहनें मेरे पास चली आईं। अमृतसरमें तो यहाँसे बहुत ज्यादा ठण्ड होती है। परन्तु उन बहनोंने सोचा कि जो भाई हमारी इतनी सेवा कर रहा है, उसे चेतावनी तो जरूर दे देनी चाहिए। उनमें से एकने मुझसे कहा, "भाई, आप काम तो अच्छा कर रहे हैं। परन्तु आपको पता नहीं कि हमारे पुरुष और किसी हदतक हम स्त्रियाँ भी आपको धोखा दे रही हैं।" मैं तो चौंक पड़ा। मैंने कहा, "मुझे क्यों धोखा देने लगे? इससे उन्हें क्या लाभ

होगा?" उसने कहा, "पुरुष बदमाश है, वे आपसे झूठ बोलते है। हमने तो समझ ही लिया है कि आपके काममे पवित्र स्त्रियो और पवित्र पुरुषोकी ही जरूरत है और इसी कारण, इस उद्देश्यसे कि आपकी भावनाएँ हममे पैदा हो, हम स्त्रियाँ आपके पीछे-पीछे फिरती है।" उस बहनने फिर एक सस्कृत शब्दका प्रयोग किया। पजाबकी स्त्रीके मुँहसे ऐसे सस्कृत शब्दकी आशा नही की जा सकती। तुम भी शायद उस शब्दका अर्थ नही समझती होगी। उसने कहा कि हमारे पुरुष 'जितेन्द्रिय' नही है और हम स्त्रियाँ भी जितना आप चाहते और मानते है, उतनी 'जितेन्द्रिय' नही है। मैने उसका कहना इशारेमें समझ लिया। जितेन्द्रिय वह है जिसकी इन्द्रियाँ वशमें है अर्थात् जो पुरुष या जो स्त्री कानसे बुरा सुन सकती है, जीभसे बुरा बोल सकती है, उसे जितेन्द्रिय नही कहा जा सकता। अभी तो उसका विशेष अर्थ यह है कि जो पुरुष एकपत्नी-व्रत नही पालता अथवा जो स्त्री पतिव्रत धर्म नही पालती, वह जितेन्द्रिय नही। उस बहनने कहा, "आप हमसे चाहते है कि हम गुस्सेको रोके, परन्तु जो विषयोको नही रोक सकता वह क्रोधको कैसे रोक सकता है? और जो क्रोधको नही रोक सकता वह कुर्बानी, स्वार्थत्याग कैसे कर सकता है?"

× × ×

तुलसीदासजी और 'गीताजी' का यह कहना है कि असन्तका सग त्याज्य है। और यह राज्य भी असन्तोका है, यह अधम राज्य है। इस राज्यकी पाठशालाओमें बच्चोके पढनेसे तो उनका न पढ़ना ही बेहतर है। यह डर रखनेका कोई कारण नही कि लड़का नही पढेगा तो कमाकर कौन खिलायेगा। जिनके लडके नही होते, वे कैसे पेट भरते है? पेट भरनेवाला तो परमेश्वर है।

× × ×

तुम्हें मोटी रोटी बनानी आती हो और दूसरीको पतली तो तुम अपनी मोटी रोटी खाओगी या उसकी पतली माँगकर खाओगी? मिलका — देशी मिलका भी — कपडा पहननेसे स्वदेशी-धर्मका पालन नही होता। इससे तो उलटे गरीबोके काम आनेवाला माल महँगा बना दोगी।

× × ×

दु ख सहे बिना सुख नही। रामने चौदह बरस वनवास भोगा, तब कही सीताजीको छुड़ाया; नलने इतने दु ख उठाये, तब वह अमर हुआ; हरिश्चन्द्र, रानी तारामती और रोहितने इतने दु ख बरदाश्त किये, तब उनके सत्यका सूर्य चमका और उसका प्रकाश संसारमे फैला। इसलिए दु खसे डरकर और मोटी साड़ीसे न शरमाकर अपने हाथसे कातकर बुनवाया हुआ कपड़ा काममे लो।

और ईश्वरका नाम भजना भी जरूरी है, परन्तु तोतेकी तरह रामनाम लेनेसे मोक्ष प्राप्त नही हो सकता। हृदयमे राम हो, तो दयाधर्म रहे और दयाधर्म दिलमे हो, तो हम ऐसा व्यवहार नही करते, जिससे दूसरोको दु ख हो। मै कहता हूँ कि यदि तुम हाथसे कते-बुने कपडे नही पहनोगी, तो हजारो स्त्रियोको नग्न रहना पड़ेगा,

चिथडे पहनने पडेंगे। आज भी मैं तुम्हे देशमें हजारो दमयन्तियाँ दिखा सकता हूँ। मैंने एक स्त्रीसे नहानेको कहा तो वह कहती है, "मुझे दूसरा कपडा पहननेको दे तो नहाऊँ।" देशकी इस वक्त ऐसी कठिन दशा है।

× × ×

स्वराज्य स्थापित करने, नई पाठशालाएँ खोलनेके लिए रुपया चाहिए। वह मैं वृक्षोसे तोडकर नही ला सकता। डाकोरमे जब मैंने पहले-पहल यह भिक्षा माँगी, तब एक पीसनेवाली स्त्रीने अपनी अँगूठी उतारकर दे दी, दो-तीन अन्य स्त्रियोंने अँगूठियाँ, कठियाँ वगैरह दी। एक भाईने सोनेका कंकण निकालकर दिया। उसका विश्वास था कि जो एक पैसा देता है उसे बदलेमें दो मिलते हैं।

× × ×

यह कलियुग है। जहाँ-तहाँ पाखण्ड है। रुपया माँगे बिना काम चला सकूँ, तो मैं बडा खुश होऊँ और कदापि न माँगूँ। मैं या मेरे साथी यथासम्भव बुरे काममें रुपया नही लगायेंगे। फिर भी तुम मेरा कहना मानते हो, तभी देना।

× × ×

दीवाली, राम सीताजीको छुडाकर लाये, इसकी खुशीका उत्सव है। रामने रावणपर जैसी विजय प्राप्त की, वैसी हम फिर प्राप्त न कर सके, तबतक हमे ऐश-आराम करने या शृंगार करने, स्वाद लेने या पटाखे छुड़ानेका अधिकार नही है।

× × ×

यह पैसा[1] लखपतियोंके लाखों रुपयोंके दानसे अधिक पवित्र है। ताँबेके हर पैसेके साथ अहमदाबादकी बहनोंकी आत्मा जुडी हुई है, उनकी देशभक्ति समाई हुई है। इन पवित्र पैसोंसे मैं देशके बालकोको शिक्षा दूंगा। इन पवित्र पाई-पैसोंके दानपर स्वराज्यको घर लाऊँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३–११–१९२०

२२६. पत्र : छगनलाल गांधीको

सोमवार, [अक्तूबर १९२०]

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला।

भाई जुगतरामको चालीस रुपये देना। मैं तुमसे इस बारेमे कहना भूल गया था। अबसे उनका वेतन 'नवजीवन' [के खाते] से नही दिया जायेगा; और अब यह वेतन शालामे से दिया जाया करेगा।

१. गांधीजीकी अपीलपर दिये गये कुछ पैसे।

तुलसीदास कराणीके[1] पैसेका पता चल गया है। लेकिन वह रकम उड़ीसाके लिए नहीं है। वह तो शान्तिनिकेतनके लिए है। तथापि [पक्की जानकारीके लिए] मैंने उन्हींको पत्र लिखा है। वह रकम शान्तिनिकेतन भेज दी गई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ७३२८)की फोटो-नकलसे।

२२७. तार: मुहम्मद अलीको

एक्सप्रेस [१ नवम्बर, १९२० के पूर्व][2]

मौलाना मुहम्मद अली
अलीगढ़

कालेजकी परिस्थिति पूरी तौरपर तारसे सूचित करें। क्या अभीतक आपने कालेजका अहाता खाली नहीं किया? नडियाद के पतेपर एक्सप्रेस तार करें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३६०)की फोटो-नकलसे।

२२८. तार: सर अकबर हैदरीको[3]

साधारण [१ नवम्बर, १९२० के पूर्व][4]

हैदरी
ट्रस्टी
अलीगढ

मुहम्मद अली खाली करनेसे इनकार करेंगे, यह बात समझमें नहीं आती। वचनका पालन अवश्य किया जायेगा।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३६०)की फोटो-नकलसे।

१. मगरोल्के।
२. पहली नवम्बरको गांधीजी नडियादमें थे।
३. १८६९–१९४०, अलीगढ विश्वविद्यालयके न्यासियोंमें से एक।
४. देखिए पिछला शीर्षक। ऐसा लगता है कि दोनों तार एक ही समय भेजे गये थे।

२२९. भाषण: मेहमदाबादमें

१ नवम्बर, १९२०

मेरी इच्छा आज आपसे बहुत-सी बातें करनेकी है। परन्तु मैं उसमें ज्यादा समय नहीं लेना चाहता। आजका काल हिन्दुस्तानके लिए कठिन काल है। देशकी खराब हालत मैं बयान नहीं कर सकता। मैं अभी बहनोंसे कह आया हूँ[1] कि इस देशमें जो राज्य चल रहा है, वह राक्षसी राज्य है, रावणराज्य है, उसमें शैतानियत भरी है। इसके हमारे पास दो बड़े उदाहरण हैं: पंजाब और खिलाफत। खिलाफतके मामलेमें दिये हुए वचन पाले नहीं गये; धोखा दिया गया। पंजाबमें बिना कारण हत्याएँ की गईं। जिसका स्वभाव राक्षसी हो, शैतानी हो, वही ऐसे काम कर सकता है। ऐसे राज्यको तुलसीदासजीने राक्षसी राज्य कहा है। उसके साथ सहयोग नहीं किया जा सकता। इतना ही नहीं परन्तु असहयोग करना धर्म और कर्त्तव्य है। ऐसी सरकारसे हम सहायता ले या उसकी कृपा स्वीकार करे, तो हम उसके किये हुए अन्याय और पापमें शरीक होते हैं। जबतक उसके पापमें हमारा हिस्सा रहेगा, तबतक जनता सुखी नहीं हो सकती।

यह असहयोग कैसे हो सकता है? एक रास्ता तो यह है कि हम सबमें आपसमें सहयोग होना चाहिए। देशके तमाम लोगोंमें, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सबमें पूरी तरह सहयोग होना चाहिए। राक्षस दूसरोंको आपसमें लड़ाकर ही राज्य कर सकता है। हमारी सरकारने यही किया है। उसने हिन्दू-मुसलमानोंको लड़ाया। मद्रास प्रान्तमें ब्राह्मण-अब्राह्मणोंको लड़ाया। उससे हो सके तो यहाँ भी ऐसी लड़ाई कराये। मेरे पास तो पत्र आ रहे हैं। ढेढ और भंगी मुझसे पूछ रहे हैं कि असहयोगमें हमारा स्थान कहाँ होगा? मैं इसका अर्थ समझ गया हूँ। और इसलिए कहता हूँ कि जबतक हम एकदिल न हो जायें, तबतक असहयोग असम्भव है। एकदिल हम पाखण्डसे नहीं हो सकते। हम एक-दूसरेके साथ न्याय करे, तभी एकदिल होना सम्भव है।

इसके लिए हममें कुर्बानी करनेकी ताकत चाहिए, स्वार्थ-त्याग करनेकी शक्ति होनी चाहिए, हमें मरना आना चाहिए। हम मारकर, मकानोंको जलाकर, रेलकी पटरियाँ उखाड़कर स्वराज्य नहीं ले सकेंगे। स्वराज्य लेना हो तो हमें पवित्र बनना चाहिए। पवित्र बननेका अर्थ है, जितेन्द्रिय बनना।

जबतक हममें से असत्य, छल-कपट नहीं चला जाता, तबतक हम काम नहीं कर सकेंगे। अहमदाबादमें बकरोंका वध रोकनेके लिए किये गये प्रयत्नका उदाहरण ताजा ही है। वहाँ एक पाखण्डी मौलवीने लोगोंको बहकाना शुरु किया। बारह-बारह बजेतक उसने सभाएँ की। यह जाहिर किया कि मैं गांधीकी तरफसे आया हूँ, उनके

१. देखिए "भाषण: स्त्रियोंकी सभा, डाकोरमें", २७-१०-१९२०।

कहने से यहाँ ठहरा हूँ। उस आदमीने भाषणोमे भली-बुरी बाते कहकर लोगोको उकसाया और एक साधु भी उसके साथ हो गया। उसने यह मान लिया कि बकरेको बचानेसे उसे स्वर्ग मिल जायेगा। साधुने इसमे मौलवीको मिला लिया और मौलवीने बकरा मारनेवाले को धमकाकर उसका वध नही होने दिया। परन्तु इस घटनासे हिन्दू-मुसलमानोमे झगडेकी जड़ पड़ गई। हिन्दू मानते है कि माताको बकरा चढाया जाये। मेरे-जैसा आदमी मानता है कि न चढाया जाये। चढाना हो तो मेरा शरीर चढाया जाये। परन्तु हिन्दुओके इस पारस्परिक झगड़ेमे मै मौलाना शौकत अलीको तो हरगिज बुलाने नही जाऊँगा। परन्तु नामर्द हिन्दू तो मौलवीको बुला लाये। मौलवी साहब आ गये और अपनी डोडी पीटनेवाले मनुष्योकी सहायतासे उन्होने बकरा छुडा दिया। वह साधु मुझसे मिला। मैने उससे कहा कि तुम साधुका वेश उतार डालो। मौलवीसे मैने कहा कि अहमदाबादसे चले जाओ। तुम इस प्रकार देशकी सेवा नही कर सकते। जब हम सरकारको भी मारकर राज्य भोगना नही चाहते, तो क्या अपने ही भाइयोको मारकर राज्य भोग सकेगे? उसका परिणाम क्या होगा? परिणाम तो देखने लायक होता, परन्तु अहमदाबादके कलक्टर अच्छे थे, उन्होने बकरा नही मारने दिया। नही तो ऐसा होता कि सरकार अपनी पुलिस भेजकर उसीकी मददसे बकरा कटवाती, और फिर हमारा असहयोग निरर्थक हो जाता। मैने मौलवीको बुलवाकर यह कह दिया। ऐसा पाखण्ड घुस जाये तो हमारी कुछ न चले। मैने उससे कहा कि तुम अपना क्षेत्र मत छोडो, अपना काम न छोडो। उसने कहा कि हिन्दुओने मुझे मजबूर किया। दो सौ नामर्द हमे कैसे मजबूर कर सकते है? और अगर कर सकते है तो एक गोरा क्या नही कर सकता? और हुआ भी यही। कलक्टरने मौलवीको बुलाया, तो वह डर गया और उसने मजदूरोसे मदद माँगी ताकि उनके फसादके डरसे सरकार उसका कुछ न करे। जो जेल जानेकी इच्छा करता है उसे [लोगोको] हिंसा न करनेकी बात सिखानी चाहिए।

मेरे या मौलाना शौकत अलीके पकड़े जानेपर आप दगा करेगे, मकान जलायेगे, रेलकी पटरियाँ उखाडेगे तो बाजी हार जायेगे। आप अरब नही है, इसलिए आपसे ऐसा कहता हूँ। आपको तो लकडी मारना भी नही आता। गधेके लाठी जमा दी और स्त्रीको लकड़ी मार दी, तो यह लकडी मारना आना नही कहलाता। जिसे लकडी मारना आता है, वह तो हजारोके सामने लड़ सकता है। परन्तु आप ऐसे नही है, इसलिए आपको ऐसी सलाह दी जा सकती है।

हम सिंहवृत्ति भूलकर भेड बन गये है। हम आयरलैड या मिस्रके उदाहरण लेकर वैसे बनने लगेगे, तो दोजखमे पडेगे। जब सरकार अपना तेज दिखायेगी — और यह बेजा नही, क्योकि मै भी सरकार होऊँ तो लोगोको पकड़ूँ। जिसे हुकूमत करनी है, वह अपने विरोधियोको पकडेगा ही, यह उसका धर्म है। इसलिए जब सरकार अपना तेज दिखायेगी — तब आप फसाद करेगे तो हार जायेगे। आप उसे इस तरह डराने लगेगे तो आप डरपोक है। हिन्दुस्तानको छुडाना है तो हमे सिह बनना होगा।

आप छ हजार मनुष्य इस समय खतरेमे है। और आप इस म्युनिसिपैलिटीका क्या करेगे? यह तो सरकारने आपके यहाँ हाथी बाँध दिया। छः हजार आदमियोकी

बस्तीपर बारह हजारका खर्च! इस म्युनिसिपैलिटीको खत्म कर दो, यह आपका कोई काम नहीं करती। वह आपको शिक्षा देती है, परन्तु उस शिक्षासे तो हमें असहयोग करना है। हम अपात्रसे दान कैसे लेंगे? मुझे विद्यापीठके[1] लिए रुपया चाहिए, परन्तु क्या मैं उसके लिए वेश्याओंसे दान लेकर काम चलाऊँगा? शराबकी दुकानोंसे नफा कमाकर चलाऊँगा?

मैं कहता हूँ कि हमारी शिक्षाका रुपया शराबकी दुकानोंसे आता है। हम आबकारी विभाग बन्द कर देनेको कहे तो वे कहेंगे कि उस रुपयेके बिना पाठशालाएँ बन्द कर देनी पड़ेंगी। शराबके रुपयेसे पढ़े हुए हमारे वकील, बैरिस्टर, विद्वान् देशका क्या भला करेंगे?

मैं यहाँके लड़कोंको बधाई देता हूँ कि उन्होंने सरकारी पाठशालाओंका त्याग कर दिया। आप आजसे इन लड़के-लड़कियोंको अपने ढंगसे पढ़ायें। शिक्षकोंसे इस्तीफे दिलाओ और आज ही मुहूर्त करो। अपने मकानमें मुहूर्त करो और सरकारी मकान छोड़ दो। म्युनिसिपैलिटीकी शिक्षाका तो यह हल हुआ। दूसरा काम पाखानों और रोशनीका है। वे बुरी हालतमें हैं। म्युनिसिपैलिटी रक्षा तो करती नहीं, क्योंकि पुलिस-विभाग उसके हाथमें नहीं। म्युनिसिपैलिटीके रास्तोंपर धूल उड़ती है। इस प्रकार शिक्षाके सिवा और कोई महत्त्वपूर्ण काम वह नहीं करती। दवाखाना उसका है, परन्तु उसके मुकाबलेमें दो-तीन निजी दवाखाने चल रहे हैं। इसलिए वह उसे मुबारक हो। मतलब यह कि हमें म्युनिसिपैलिटीकी कोई जरूरत नहीं। वह तो एक पूजनीय मूर्ति हुई। आप नौ सौ करदाता मिलकर प्रस्ताव करो कि यह म्युनिसिपैलिटी उठा दी जाये। कहो कि हमें तुम्हारा 'सैनिटरी बोर्ड' नहीं चाहिए, ग्राम-पंचायत नहीं चाहिए। मेम्बरोंको नोटिस दे दो कि म्युनिसिपैलिटी खाली कर दो।

सरकारको जता दो कि हम उसका कर नहीं देंगे। इसमें कानूनका भंग नहीं है, बेअदबी नहीं है। आपको उसकी सेवा नहीं लेनी, इसलिए सरकारके लिए उसमें शिकायतकी कोई बात नहीं हो सकती। आप उसका मुकाबला कर सकते हैं। कुछ समयतक सरकार आपको धमकायेगी। आप मुकाबला करोगे तो आपके घर कुर्की लायेगी। उन्हें घर बेचने देना। छः हजारकी बस्ती गाँव भी खाली कर सकती है। फिर म्युनिसिपैलिटी किसका काम करेगी? परन्तु सरकार ऐसी पागल नहीं कि यहाँतक जायेगी। मैं उसको बुरा कह रहा हूँ परन्तु इतना जानता हूँ कि वह समझदार है। यदि वह ऐसा न करे तो उसे आज ही चले जाना पड़े। परन्तु सरकार अपनी हुकूमत छोड़ना नहीं चाहती।

इस कामको पार लगानेके लिए आपको एकदिल होना चाहिए। इसमें कुछ विरोधी तो निकलेंगे ही। परन्तु विरोधीसे अदबके साथ, नम्रतापूर्वक कहो — "आप हमारे सिरके ताज हैं। हम तो आपसे केवल पंचायतका मत मान लेनेको कहते हैं।" यह न हो सके, तो भी उनसे विनय करें कि आप हमारे काममें खलल न डालें।

१. यहाँ निश्चित रूपसे संकेत गुजरात विद्यापीठकी ओर है जिसकी स्थापना अक्तूबरमें हुई थी; देखिए "भाषण: गुजरात महाविद्यालयके उद्घाटनपर", १५-११-१९२०।

यदि ऐसे दो-चार सौ आदमी छ: हजारके विरुद्ध होंगे तो इससे उन्हें क्या लाभ होगा? आप हिन्दू-मुसलमान एक होकर रहे, आपको मेरी यही सलाह है।

मैं काम करनेके लिए दो शर्तें बता चुका हूँ। एक तो सहिष्णुता अथवा अहिंसा-धर्म। यह मान लें कि वह दुर्बलोका धर्म है, तो भी जबतक आपमें तलवार चलानेकी शक्ति नही आ जाती, तबतक दूसरा उपाय बताया ही नही जा सकता। दूसरी शर्त यह है कि हिन्दू-मुसलमान, देशकी तमाम कौमें एकदिल होनी चाहिए। इन दो शर्तोका पालन करो, तभी आप असहयोग कर सकते है। धारा सभाओमे प्रतिनिधि न भेजना और पाठशालाओसे लड़कोको हटा लेना असहयोगकी पहली सीढी है। आप इतना कर ले, तो समझिये कि स्वराज्य मिल गया।

सरकारी नौकरोंका डर न रखो। उनसे हमे वैर नही है, हमें तो उन्हे प्रेमसे, मुहब्बतसे वशमें करना है। फिर आपको डरना नही होगा।

अब दो बातें करनेको रह जाती है। आप अहमदाबादसे कपड़ा मँगवाते हैं। मेहमदाबादमे पहले सुन्दर कपडा बनता था, परन्तु अब वह धन्धा करनेवाले नही रहे। आप छ. हजार आदमी चाहे तो क्या नही कर सकते? आपको मिलका कपडा क्यो चाहिए? आपके घर आपकी मिलें हैं। खाना आप होटलसे नही मँगवाते, तो कपड़ा क्यो बाहरसे मँगवाते हैं?

आप मिलका कपडा न ले, तो मंगलदास सेठ या टाटाकी[1] मिले बन्द नही हो जायेगी। वह माल तो गरीबोके लिए है। आप उनके पेटपर लात नही मार सकते। रह गया विलायती माल। उसे तो हमे हराम ही समझना चाहिए। हम पराये वस्त्र नही पहन सकते। जैसे कोई पुरुष परस्त्रीपर नजर डाले तो वह व्यभिचार है, वैसे ही पराये देशके कपडेपर दृष्टिपात करना भी पाप है। जबतक हम कपडेके लिए इस सरकारके गुलाम है, तबतक हम उससे स्वतन्त्र नही हो सकते। जापानका माल काममें लेना भी विलायती मालके बराबर ही है, क्योकि इस हुकूमतके जहाजो द्वारा ही वह माल यहाँ आता है। इस सल्तनतने चारों ओरसे देशपर घेरा डाल रखा है। इसलिए मेरी सलाह है कि आप इतिहासका नया अध्याय खोले। करोडो लोगोके लिए शायद मुश्किल होगा, परन्तु अपने गाँवकी हदतक आप स्वावलम्बी बन सकते है। अनाज तो आपको मँगाना नही पड़ता। खेडा जिलेमे अनाजकी कमी नही हो सकती; परन्तु अपने वस्त्र भी यही पैदा करो। इतना ही नही, अधिक पैदा करके आसपास भेजो। फिर म्युनिसिपैलिटीके कामके लिए बारह हजार रुपये निकालना आपके लिए कठिन नही होगा।

अब मैं रुपयेकी बातपर आता हूँ। इतने अधिक काम करने है, इसलिए रुपया अवश्य चाहिए। परन्तु सबसे अधिक कठिनाई मुझे रुपया इकट्ठा करनेमें होती है। चदा जमा करनेवाले आदमी अप्रामाणिक मिलते है, इससे मैं काँपता हूँ। परन्तु रुपया तो चाहिए ही। इसलिए विवश होकर मैंने हाथ फैलाया है। मैं यह काम केवल करोड-पतियो द्वारा नही चलाना चाहता। मैं तो भगीसे भी दान लूँगा। श्रद्धासे दिया हुआ

१. सर दोराबजी टाटा (१८५९–१९३२); बम्बईके मिल-मालिक।

एक पैसा भी मेरे लिए लाखके बराबर है। कुमारियाँ मुझे अँगठियाँ और जेवर देती हैं, यह मुझे बहुत प्रिय लगता है, क्योंकि वे ईश्वरको बीचमें रखकर देती हैं। मैं खुशामद करने जाऊँ और लोग तब मुझे रुपया दें, उससे यह हजार दर्जे अच्छा है। यहाँ आप दें तो मेरे सामने नहीं ईश्वरको बीचमें रखकर दें।

रुपया वसूल करनेवाले स्वयंसेवक जनताका रुपया हराम समझकर चंदा इकट्ठा करेंगे तभी हमारा काम चलेगा। जनता तो भोली है। मेरे नामसे कोई भी आ जाये, तो उसकी बात मान लेती है। कोई धूर्त स्त्री गांधीजीकी लड़कीके नामसे द्वारकामें चन्दा वसूल कर रही थी। अब वह हैदराबाद[1] गई है। वहाँ उसका स्वागत-सत्कार हुआ। इस प्रकार लोग मेरे नामसे ठगे जायें, यह मेरे लिए असह्य है। हमारे सामने अहमदाबादवाले मौलवीका उदाहरण है। उसने मेरे ही नामका उपयोग किया। इसलिए मैं प्रत्येक मनुष्यसे स्वच्छता चाहता हूँ। यदि तुम प्रामाणिक बनो, तो मैं तुम्हारी चरण-रज लेनेको तैयार हूँ। दुनियामें पाखण्ड तो हमेशा रहेगा। परन्तु उसे जनताके पास न जाने दो। अगर ऐसा न हो सके, तो मुझे सरकारी फाँसीका डर नहीं, परन्तु इस फाँसीका बड़ा डर है। इसलिए तुम ईश्वरको बीचमें रखकर चन्दा करना।

लोगोंसे मैं कहता हूँ कि किसीका भी नाम लेकर कोई बड़ा तीसमारखाँ आये, तो भी उसे रुपया न देना। खिलाफत कमेटी तथा स्वराज्य सभाकी तरफसे उन संस्थाओंकी मुहरवाले प्रमाणपत्र जारी करनेका मेरा विचार है। जिस मनुष्यके पास प्रमाणपत्र न हो, उसकी मत सुनना, उसे कुछ न देना। उसे खड़े न रहने देना। हम शासन अपने हाथमें लेना चाहते हैं, तो उसे चलानेके लिए हमें दृढ़ बनना पड़ेगा।

सरकारकी गुलामी छोड़कर तुम मेरी गुलामीमें आ जाओ, तो वह स्वतन्त्रता नहीं। मैं आपके मन और हृदय चुराना चाहता हूँ। परन्तु आपको गुलाम बनाना नहीं चाहता, क्योंकि मैं स्वयं गुलाम नहीं बनना चाहता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-११-१९२०

२३०. नडियाद नगरपालिकाके पार्षदोंसे बातचीत

१ नवम्बर, १९२०

न केवल शिक्षाके मामलेमें बल्कि हर मामलेमें[2] आप सरकारसे स्वतन्त्र हो सकते हैं। आप नगरपालिकाको अपने हाथमें लें और कर भी स्वयं ही उगाहें। सरकार कुछ समयतक तो दबाव डालेगी और कर इकट्ठा करेगी लेकिन कर देनेवालोंको उसका विरोध करना चाहिए और इससे जो भी स्थिति उत्पन्न हो उसका सामना करना चाहिए।

× × ×

१. सिंध।

२. खेड़ाके कलक्टरने नगरपालिकाको सूचित किया था कि सरकारसे शिक्षा-सम्बन्धी अनुदान लेनेसे इनकार कर देनेपर भी वह सरकारके नियन्त्रणसे मुक्त नहीं हो सकती।

हम आज स्वराज्य माँगते हैं तो हमें आजसे ही सारा कारोबार खुद ही चलानेके लिए तैयार रहना चाहिए। आप करदाताओको यह-सब समझा सकते हैं और अगर वे सरकारको कर देनेसे इनकार न करे तो आप जिस प्रकार सरकारसे असहयोग करते है उसी प्रकार उनसे भी कर सकते है। आप उनसे कह सकते है कि अब आप अपना कोई काम हमसे नही करवा सकते। नेताओका कार्य तो जनताका नेतृत्व करना है, उसके नेतृत्वमें चलना नही। और फिर आपको लोगोको स्पष्ट रूपसे समझा देना चाहिए कि सरकारको कर न देनेसे हम पैसा देनेके दायित्वसे मुक्त नही हो जाते; अपना काम-काज चलानेके लिए आपको पैसा देना ही होगा। लेकिन सरकारको दस रुपये देकर बदलेमे जैसे केवल एक रुपयेकी प्राप्ति होती है वैसी बात इसमे नही होती। यहाँ तो आप एक पैसा देंगे तो उसके एवजमे दो पैसे मिलेंगे। लेकिन पैसे तो आपको देने ही होंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०–११–१९२०

२३१. भाषण: नडियादमें

१ नवम्बर, १९२०

ऐसी भारी लड़ाईमे जब कि तमाम कौमोको एकदिल होनेकी जरूरत है, तब किसी गैर-जिम्मेदार अथवा पाखण्डी मनुष्यके भला-बुरा बोलनेसे हिन्दू-हिन्दू या मुसलमान-मुसलमानमें झगडा पैदा हो, ऐसा नही होना चाहिए। इसके लिए मुझे आशा है कि स्वराज्य सभा तथा खिलाफत कमेटीकी तरफसे नोटिस निकलेगा कि उनके प्रमाणपत्रके बिना कोई न बोले। कोई भी आदमी बोलने आये, तो उसे सुननेका आपको अधिकार है; परन्तु आपको पता तो चल जायेगा कि यह किसी सस्थाका प्रतिनिधि नही है। जिस हुकूमतसे हमे लडना है, उसका बन्दोबस्त जबरदस्त है। उनमे से कोई आदमी अफसरके हुक्मके बिना न बोलता है, न काम करता है। हममे भी यह शक्ति आनी चाहिए।

हम स्वतन्त्र होना चाहते हो तो हिन्दू-मुसलमानोमे एकता और साफदिली होनी चाहिए। कोई मुसलमान गफलतसे कुछ बोल दे तो हिन्दुओको उसे बरदाश्त कर लेना चाहिए। इसी प्रकार कोई हिन्दू कुछ कह दे तो मुसलमानोको सहन कर लेना चाहिए।

मुझे पकड ले, मौलाना शौकत अलीको पकड़ ले, मौलाना अब्दुल बारीको पकड ले, तो आपको चुपचाप काम करना है। आप हडताल भी नही कर सकते। ऐसा करेंगे, तो हम हारे हुए माने जायेंगे। आप हमे वापस क्यो लाना चाहेंगे? जफर अली पकड़े गये, तो मैंने उनसे कहा . "हम आपके लिए अर्जी नही देंगे, परन्तु स्वराज्य लेकर आपको छुडवायेंगे।" आप हम-जैसोको छुड़वाना चाहते हो तो असहयोगके चार कदम

उठानेका विचार करता।[1] मैं सरकार होऊँ और मुझे यह मालूम हो कि लोग गांधीके बलपर लड़ रहे हैं, तो मैं गांधीको जरूर पकड़ूँ।

इसलिए आपकी अपनी हिम्मत न हो, तो आपकी कोई कीमत नहीं होगी। परन्तु जब हम न हों, तो जो आप आज नहीं करते, वह कल करने लग जाना।

× × ×

स्वयंसेवकोंकी प्रामाणिकताका इतमीनान करके उन्हें रुपया दिया जाये। यह लड़ाई करोड़पतियोंकी नहीं, परन्तु गरीबोंकी है। तीस करोड़ लोग एक-एक पैसा दें, तो भी हमारे पास पचास लाख रुपया हो जायेगा और मुफ्त शिक्षा दी जा सकेगी। मैं रुपया माँगता हूँ सो दान नहीं माँगता। यह तो आपके स्वार्थकी बात है। आप एक पैसा देंगे तो एवजमें दो पैसेका मिलेगा।

× × ×

सोलह और आठ वर्षकी छोटी-छोटी बालिकाओंने अपनी अँगूठियाँ और मालाएँ उतारकर मुझे दे दीं।[2] उन्होंने कहा है कि ये चीजें फिर वे अपने माँ-बापसे नहीं माँगेंगी। कारण वे जेवर पहनकर क्या करेंगी? भारतकी दशा तो विधवा-जैसी है। भारतमें पुरुष कहाँ हैं कि वे सधवाओंकी तरह शृंगार कर सकें? ऐसे पुरुष जब निकलेंगे तब भारत सौभाग्यशाली बनेगा और उसकी स्त्रियाँ गहने पहन सकेंगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-११-१९२०

२३२. सन्देश : विल्सन कालेजके विद्यार्थियोंको

बम्बई
[२ नवम्बर, १९२० के पूर्व]

मुझे मालूम हुआ है कि कालेज छोड़ा जाये अथवा नहीं, इस प्रश्नको लेकर विल्सन कालेजके विद्यार्थी बहुत चिन्तित हैं। मेरी इच्छा है कि इस प्रश्नको हल करनेमें मैं उनकी थोड़ी सहायता करूँ। अगर कोई लुटेरा हमारा धन लूटकर ले जाये, तो जिस प्रकार हम उसके संरक्षण और प्रभावमें संचालित किसी संस्था द्वारा शिक्षित होना पसन्द नहीं करेंगे, उसी तरह हमें उस सरकारके अन्तर्गत भी शिक्षण ग्रहण नहीं करना चाहिए, जिसने हमारा सम्मान लूटा है और जिसने अपने-आपको हमेशाके लिए विश्वासघाती सिद्ध कर दिया है। पंजाबकी काली करतूतोंसे इस सरकारने हमें अपमानित किया है और मुसलमानोंको आम तौरपर भारतके प्रधान मन्त्री और खास तौरपर साम्राज्यीय सरकार द्वारा दिये गये वचनको भंग भी किया है। इतना सब होनेके बाद भी वह पश्चात्ताप प्रकट नहीं करती, बल्कि खिलाफत और पंजाबमें

1. देखिए "असहयोग", ४-७-१९२० तथा "भाषण: मद्रासमें असहयोगपर", १३-८-१९२०।
2. ३१ अक्तूबर, १९२० को अहमदाबादमें आयोजित स्त्रियोंकी सभामें।

जो-कुछ हुआ है, धृष्टताके साथ उसका समर्थन करती है। मैं तो उसके द्वारा संचालित अथवा नियन्त्रित शालाओमे शिक्षण लेना एक तरहका पाप समझता हूँ। जबतक हमें मुक्ति नही मिल जाती, इस शिक्षणके बिना रहना या इन सस्थाओको बन्द कर देना मैं बेहतर समझता हूँ।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २-११-१९२० तथा अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३१५) की फोटो-नकलसे

२३३. भाषण : भड़ौंचमे

२ नवम्बर, १९२०

इस समय रावणराज्य और रामराज्यमें युद्ध हो रहा है। खुदा और शैतानमें लड़ाई चल रही है। राक्षसों और देवोमे झगडा मचा हुआ है। इस सरकारकी आत्माको मैं राक्षसके रूपमे देख रहा हूँ। जिस दिनसे मेरी आँखे खुल गईं हैं, तबसे मैं इस विचारका प्रचार कर रहा हूँ। मुझे प्रतीति हो गई है कि अंग्रेजी हुकूमत शैतानियतसे भरी हुई है, राक्षस-स्वरूप है। सब धर्म — हिन्दू, मुसलमान, पारसी — सभी धर्म कहते हैं कि अधर्मको धर्मसे हटाना चाहिए। अर्थात् अधर्मकी सहायता करना बन्द कर देना चाहिए। मुस्लिम शास्त्रोमे ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं। पारसी धर्ममे तो अहुरमज्द और अहरमनमे सतत युद्ध होता ही रहता है। 'गीता' में भी यही बात है। आज हमारे लिए असहयोगके सिवा और कोई धर्म नही है। परन्तु आपका यह खयाल हो कि अंग्रेजी हुकूमतमे अब भी कोई ग्रहण करने योग्य वस्तु है, वह पापमय नही है तो आप उससे जरूर चिपटे रहिये। मैं यह नहीं कहना चाहता कि अंग्रेज खराब हैं। उनकी पैदा की हुई प्रवृत्ति, उनकी रोपी हुई पापकी जड, भारतकी हानि कर रही है। लॉर्ड हार्डिंग, लॉर्ड रिपन-जैसे अच्छे वाइसराय और अहमदाबादके भले और शरीफ क्लेक्टर श्री चैटफील्ड-जैसे कर्मचारी हुकूमतमे हैं जरूर, फिर भी ये लोग राक्षसी काममे लगे हुए हैं और इसलिए राक्षसी प्रवृत्तिका ही पोषण करते हैं। मेरे पिताजी स्वयं एक रियासतमे नौकर थे। उनके राजा अधर्मी थे। मैंने उनसे पूछा, "ऐसे राजाकी नौकरी आप छोड क्यो नही देते?" उन्होंने कहा, "हमने इनका नमक खाया है।" मेरे पिता नमकहराम नही बने, परन्तु हमारा सारा कुटुम्ब विषय, मास और शराबमे डूबे हुए राजाका आश्रित रहा। मैं सारे भारतके सामने कह रहा हूँ कि हमारे पास और कोई धर्म नही है। कितने ही पुण्यवान् पुरुष क्यो न हो, तो भी इस प्रवृत्तिका स्पर्श होनेसे वे अच्छे नही रहते। इसलिए जिन शास्त्रीजी और मालवीयजीको मैं पूजनीय मानता हूँ, जिनका निकट सम्पर्क मुझे प्रिय है, जिनके प्रति मेरे मनमे अब भी अत्यन्त आस्था है, उनमे और मुझमे मतभेद हो गया है। उनका खयाल है कि यह राज्य पुण्यमय है, मेरा

खयाल है कि यह पापमय है। मालवीयजी मेरे बड़े भाईके समान हैं। शास्त्रीजीके लिए मेरे मनमें आदर है, तो भी मुझे उनसे लड़ाई करनी ही चाहिए। असहयोग कैसे करना चाहिए, यह तो कांग्रेसने बता दिया है, मुस्लिम लीगने बता दिया है और सिख लीगने भी बता दिया है।

असहयोग करनेकी दो शर्तें हैं। उनमें से एक तो हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता है। हिन्दू-मुसलमान अर्थात् सब जातियोंकी एकता। यह हिन्दू-मुसलमानोंका तो मैंने एक जग-प्रसिद्ध दृष्टान्त लिया है। इन दोनोंमें बहुत समयसे अविश्वास है, इसलिए जबतक हिन्दू या मुसलमान लड़ते रहेंगे, तबतक हमें विजय प्राप्त नहीं होगी। ऐसे ही प्रेमसे पारसी वगैरहको वशमें कर लेना उचित है। उन्हें राक्षसी प्रवृत्ति अर्थात् हत्या आदिके द्वारा वशमें कर सकते हैं, परन्तु तब हमें अस्सी हजार पारसियोंका नाश करना पड़ेगा। हमें तो उन्हें प्रेमसे ही वशमें करना उचित है। हिन्दू या मुसलमान सिखोंको दबायें तो भी हम स्वतन्त्रता नहीं ले सकेंगे। अभी-अभी जैन भी कहने लगे हैं कि हम हिन्दू नहीं हैं, तो क्या हम उन्हें कुचल देंगे? सबलकी सबलता प्रेमसे जीत लेनेमें है, मदपूर्वक कुचल डालनेमें नहीं। इसलिए सबसे पहला काम यह है कि सब धर्मोंमें एकता रखी जाये।

हमारा दूसरा साधन है योजना-शक्ति। जबतक हममें योजना-शक्ति नहीं आयेगी, तबतक असहयोग असम्भव है।

दूसरी आवश्यकता है दया की। हत्याका तो विचार ही नहीं आना चाहिए। दयाके बदले क्रूरता बरतोगे, तो भी आपका काम नहीं होगा। तलवार लोगे, तो आपकी तलवारके टुकड़े हो जायेंगे। देशको बचा सकते हो, तो आपको अपनी तलवार मुबारक हो; परन्तु यह असम्भव है। सरकारके प्रति एक भी खराब शब्द मत कहिये; गालियाँ देना छोड़ दीजिये। सहयोगवादी जो कहें उसे अदबसे सुन लीजिये, परन्तु अपने इनकार पर डटे रहिये। यह इनकार सौ रोगोंकी एक दवा है। यह असहयोगका दूसरा नाम है।

असहयोगको सफल बनानेके लिए आपको दो महान् बलिदान देने हैं। पहला शिक्षाके मामलेमें। आज भारतमें शिक्षाका प्रश्न सबसे बड़ा प्रश्न बन गया है। दूसरा बलिदान धारा सभाओंका त्याग करना है। असहयोग अभी तक लोग — आम जनता — ही कर रही है। विशेष वर्ग बिलकुल नहीं करता। उससे कराना हो तो हम अपने कौशलसे करा सकते हैं। हम सबके हस्ताक्षरसे उन्हें एक नोटिस दे दें कि वे हमारी तरफसे धारा सभामें नहीं जा सकते, तो वे नहीं जा सकेंगे। परन्तु शिक्षामें माँ-बाप, विद्यार्थी, शिक्षक परेशान हों, तो उसका क्या हो? भावी सन्ततिको गुलामीसे छूटना ही चाहिए। बुजुर्गोंका यह फर्ज है कि उन्हें स्वतन्त्र कर दिया जाये। माँ-बाप और शिक्षक भावी पीढ़ीके लिए इतनी स्वतन्त्रता किसी भी तरह कर दें। रुपयेकी कमीके कारण आप राष्ट्रीय शिक्षाको क्षणभर भी मत रोकिये। कोई यह पूछेगा कि सरकार कानून बनाकर बाधा डाले तो? इस बारेमें मैं एक शब्द भी नहीं कहना चाहता, क्योंकि वह निरर्थक है। यदि आपका खयाल हो कि इस प्रकार हमारा क्षेत्र

संकुचित करनेमे कोई समर्थ है, तो आप वीर बनकर और निडर होकर सरकारी स्कूल-कालेजोका त्याग कर दें। जितने बालक-बालिकाओ और युवकोको आप पढा सकते हो उतनोंको पढाइये और दूसरोका लोभ छोड दीजिये।

अब स्वदेशीके बारेमे। मेरा विश्वास है कि स्वदेशीमे स्वराज्य निहित है। मेरे बारेमे एक बार चिन्तामणिने लिखा था कि गाधीको स्वराज्य और खिलाफतसे स्वदेशी ज्यादा प्रिय है। मुझे सचमुच ही स्वदेशी प्रिय है। जीत होनेके बाद खिलाफतका प्रश्न थोडे ही रहनेवाला है? स्वदेशी तो शाश्वत है। स्वदेशी शरीरके साथ लगा हुआ धर्म है। वह अटल है। दृढतापूर्वक हम एक दिन भी स्वदेशीका पालन करे, तो आज ही स्वराज्य हमारे हाथमे होगा। बुद्धिमान लोगोने मुझसे कहा है कि हम लकाशायरका कारबार ठप कर दें, परन्तु यह काम कठिन है। हममे न तो बहिष्कारकी शक्ति है और न भावना। शक्ति होती तो जैसे मै शस्त्रोसे नही डरता, वैसे ही बहिष्कारसे भी न डरता। बहिष्कारके बिना भारतका शोषण होता हो, तो मै उसे भी अच्छा समझता हूँ। मै स्वय एक बार जिसका त्याग कर देता हूँ, उसे दुबारा ग्रहण ही नही करता। शराबी और पापीके साथ क्षण-भरके लिए भी सहयोग नही हो सकता। सहयोग तभी सम्भव है, जब वह शराब छोड़ दे। यह अटल सिद्धान्त हिन्दुस्तान ग्रहण कर ले, तो आज ही स्वतन्त्रता मिल जाये, खिलाफतके मामलेमे आज ही न्याय मिल जाये। मुसलमानोको मै अभीतक खादी नही पहना सका। उन्हें फकीर नही बना सका। हिन्दुओको भी समझा नही सका हूँ। इसीलिए हम अबतक खिलाफतके मामलेमें इन्साफ नही पा सके। पजाबके मामलेमे इतना अधिक रुदन होनेपर भी, अबतक कुछ नही हो रहा है। हमारे मनमे यह बात बैठ जानी चाहिए कि विदेशी कपड़ा हमारे लिए हराम है। स्त्रियोसे दीन वाणीमे मेरी प्रार्थना है कि स्वदेशी तो आपके हाथकी बात है। कातना आपका धर्म ही है। पुरुषोके सामने आपको अपना उदाहरण रखना चाहिए। खादीमे बोझा होनेकी शिकायत माताएँ तो कर ही नही सकती। नौ महीने सन्तानका भार आनन्दसे उठानेवाली माता यह कैसे कह सकती है कि एक सेर बोझा मेरे लिए असह्य है? वह बाँझ रहनेको तैयार हो तभी ऐसा कह सकेगी, परन्तु जबतक वह बाँझ नही रहना चाहती बल्कि वीरो और वीरागनाओंको जन्म देना चाहती है, तबतक मै मातासे ये शब्द नही सुनना चाहता। यह मेरी समझके बाहरकी बात है कि आपका देश यदि नग्न दशामे है, तो आप जापान, चीन, इंग्लैड या फ्रासके मिलोमे बनी हुई साड़ियाँ कैसे पहन सकती है।

छेडे हुए कामके लिए रुपया चाहिए। यह देश इतना श्रद्धालु है कि रुपया तो पाखण्डी भी जुटा सकते है। अपने मन्दिरो, मस्जिदो और धर्मशालाओके लिए आप रुपया इकट्ठा कर सकते हैं, तो अपने अधिक शुद्ध मन्दिरो — शिक्षा-मन्दिरो — के लिए क्यो नही कर सकते? हममे तपश्चर्या चाहिए, त्याग चाहिए। हिन्दू त्यागका अर्थ अच्छी तरह समझ जायेगे। शास्त्रोमे कहा है कि अपरिग्रह-पालन करनेवाले के पास रत्न तो नाचते है। मेरा अपना भी ऐसा ही अनुभव है। आफ्रिका-जैसे गरीब देशमे रुपयेके अभावमे लड़ाई कभी बन्द नही रही। उलटे मुझे गोखलेजीको लिखना पड़ा था कि

वे रुपया न भेजें। खेडा और चम्पारनके समय भी लोगोंने रुपयेकी वर्षा कर दी थी। मैंने उसे रोका था। अहमदाबादके मजदूरोंने तेईस दिन प्रचण्ड अनह्यांग किया, तो भी बाहरसे कोई मदद नही माँगी थी। त्याग-वृत्ति हो तो रुपयोंकी बौछार होने लगे।

वैष्णवों, जैनों और स्वामिनारायणके मन्दिरोंमें करोडो रुपये जग खा रहे हैं। उसमें से थोडा-सा भाग मिल जाये, तो भी आपके सारे शिक्षा-विभागका काम चल जाये। परन्तु जैसे सरकार रुपया लुटाकर आनन-फाननमें सरकारी विभाग खोल देती है, वैसे हम नही खोलना चाहते। हमारा काम हिन्दुस्तानकी गरीबीके हिसाबसे ही होगा। जादूके आम घडी-भरमें उगाये जा सकते हैं, परन्तु उनका रस हम चख नही सकते। सच्चे आम उगनेमें बीस वर्ष लगते हैं, इसलिए कोई आपको राष्ट्रीय शिक्षाके लिए करोड़ रुपया दे, तो मैं कहूँगा कि उसे फेंक दो। खालसा कालेजके प्रोफेसरोंसे कहा गया कि यदि गांधी तुम्हे एक करोड रुपयेकी 'ग्राट' दे दे, उसके बाद असहयोग करना। प्रोफेसरोंने कहा कि हम सरकारकी गुलामीसे छूटकर गांधीके गुलाम बनना नही चाहते। हम झोपडी-झोपडी घूमकर सिखोंसे भिक्षा माँगेंगे। उन्ही प्रोफेसरोंने खालसा कालेजको नोटिस दे दिया है कि सरकारी अधिकार खत्म नही होगा तो वे फकीर बनकर देशके बच्चोंको राष्ट्रीय शिक्षा देंगे।

आप यथाभक्ति, यथाशक्ति और बेझिझक भरसक दान दें। इसका उपयोग आपके गाँवके लिए ही नही होगा। अहमदाबादमें गुजरात विद्यापीठ[1] स्थापित किया गया है, उसके काममें यह रुपया लगाया जायेगा। मैं इसके द्वारा भड़ौचके निवासियोंको एक पदार्थ-पाठ देना चाहता हूँ।

यदि इस ढंगसे असहयोग किया गया तो आप एक वर्षके भीतर स्वराज्य पा जायेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-११-१९२०

२३४. भाषण : अंकलेश्वरमें[2]

२ नवम्बर, १९२०

जिस पूज्य पुरुषका नाम आपने अपनी पाठशालाके साथ जोडा है, उसके नामकी शोभा बढ़ाइये। लोकमान्यको स्वराज्य जितना प्रिय था, उतना और किसीको नही होगा। इस राष्ट्रीय पाठशालाके साथ स्व० लोकमान्यका नाम स्वराज्यको निकट लानेके उद्देश्यसे ही जोडना उचित है। माँ-बाप, विद्यार्थियों और शिक्षकोंसे मैं जो सरकारी पाठशालाएँ छोड़नेको कहता हूँ, वह इसलिए नही कि उनकी शिक्षा खराब है। जो भावना मैं आपमें पैदा करना चाहता हूँ, उसके साथ शिक्षाके प्रश्नका थोडा ही सम्बन्ध है।

१. गुजरात विद्यापीठका महाविद्यालय १५-११-१९२०को खोला गया था।

२. लोकमान्य राष्ट्रीय पाठशालाका उद्घाटन करते हुए।

सरकारी पाठशालाओमे जो शिक्षा दी जाती है, उसमें सुधारकी आवश्यकता तो जरूर है, परन्तु जबतक ऐसा न हो तबतक जो करनेका काम है, उसे नही रोका जा सकता।

पचास वर्षसे हम सरकारी स्कूलोको पोसते आ रहे है और उनसे कुछ लाभ भी उठाया है। लेकिन इस समय वे सारे स्कूल हमारे लिए हराम ह। अलबत्ता, इसका कारण अलग है। वर्तमान स्कूलोंपर जो झण्डा फहराता है, वह राक्षसी राज्यका है। इन स्कूलोपर जिस हुकूमतका झण्डा लहरा रहा है, उसने सात करोड मुसलमानोंके दिल जख्मी किये है और पजाबमे किये गय काले कारनामे पूरे भारतपर अत्याचार हे। सारे धर्मशास्त्र एक स्वरसे कहते है कि अधर्मी राजाका आश्रय पाप है, वह अधर्मको भेटनेके बराबर है, अधर्ममे भाग लेनेके समान है। इस हुकूमतके स्कूलोमें जानेसे आपको द्रव्य मिलता हो, वहाँ आपको 'कुरान शरीफ', 'जेंद अवेस्ता' या 'गीता' पढाई जाये, तो भी आप उससे भाग जाइये। वे 'कुरान' या 'गीता' भी पढायें तो भी उनका उद्देश्य बुरा है। इसलिए जिस स्कूलपर राक्षसी ध्वजा फहरा रही हो, उसमे अपने बच्चोको शिक्षा देकर हम उन्हें गुलाम नही बनाना चाहते। जो यह चीज समझ गये हों, वे एक दिनके लिए भी अपने बच्चोको सरकारी स्कूल-कालेजोमे नही रहने देगे। पहले बच्चोको वहाँसे हटा लेगे और बादमे दूसरी शिक्षा देनेका प्रबन्ध करेंगे। हमारा मकान जलने लगे तो दूसरा अच्छा मकान मिलनेतक हम उस जलते हुए मकानमे हरगिज नही रहेगे। हम तुरन्त ही नीचे छलाग मारेंगे — फिर भले ही नीचे खाई हो। यह भाव यदि हममे पैदा न हो, तो हम शिक्षाके आन्दोलनमे असफल होगे, क्योकि सरकारी मनुष्य — जासूस — तो हमे सदा ललचाते रहेगे और कहेगे कि देखो, हमारी पाठशालाओकी शिक्षा कितनी बढिया है, हमारे मकान कितने बढिया है, हमारे यहाँ मुफ्त शिक्षा दी जाती है। इतना सब होनेपर भी उनकी शिक्षा हमारे लिए त्याज्य है — हराम है, ऐसी भावना जबतक लोगोमे पैदा न हो, तबतक आन्दोलन आगे नही बढेगा।

माता-पिताओसे मेरी प्रार्थना है कि आप अपने बालकोको गुलामीमे न रखे। आपका पहला काम यह है कि बच्चोंको सरकारी स्कूल-कालेजोसे हटा ले। हटा लेनेके बाद हम बच्चोको गलियोमे नही भटकने देगे। इसलिए आपका दूसरा काम यह है कि राष्ट्रीय शिक्षा देनेके लिए अपना सर्वस्व लगाकर प्रबन्ध करें। यदि इतनी शक्ति हममें न हो, तो हम स्वराज्य नही ले सकेंगे। स्वराज्य अर्थात् अपना राज्य चलानेके लिए शक्ति तो अवश्य चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षाकी सफलताके लिए दूसरी आवश्यकता है चरित्रवान् शिक्षकोंकी। यहाँके हाई स्कूलके मुख्य अध्यापक और दूसरे शिक्षकोको, जिन्होने धर्म और देशके लिए त्याग किया है, मै बधाई देता हूँ और उनसे प्रार्थना करता हूँ कि जिस वृत्तिसे आपने स्वार्थत्याग किया है, उसी वृत्तिसे अब आगेका कार्य करना। कार्यमे तन्मय हो जायेंगे, तो रुपया सुलभ हो जायेगा। आपका व्यवस्थापक मण्डल आसानीसे रुपया जुटा सकेगा। साफ जमीनपर बैठकर पढनेपर भी राष्ट्रीय पाठशालाके लड़के दूसरे लड़कोकी स्पर्द्धा

कर सकेंगे और शिक्षक चरित्रवान् होंगे तो सरकारकी बड़ी-बड़ी पाठशालाओंकी अपेक्षा राष्ट्रीय स्कूलोंके विद्यार्थी अधिक पौरुषवान् बनेंगे। इस समय पुरुष पुरुषत्व खो बैठे हैं, स्त्रियाँ स्त्रीत्व गँवा बैठी हैं। उनमे वीर सन्तान पैदा करनेकी शक्ति नहीं है। मैं उन्हें गुलाम पैदा करनेसे मना करता हूँ। वीर सन्तान पैदा हो तो जिन पाठशालाओंकी शिक्षा उन्हे गुलाम बना देती है, उसकी शिक्षा लेनेसे वे इनकार कर देंगे। माता-पिता लड़कोंको गुलामीकी शिक्षा लेने न भेजे तो दूसरी पाठशालाओंके मुकाबलेमें राष्ट्रीय स्कूल अवश्य सुशोभित होंगे।

व्यवस्थापक कमेटीको मेरा सुझाव है कि आप लोग बिलकुल अधीर न हों। आप माता-पिताओंसे विनय करें, परन्तु कटु वचन न कहें। उन्हे समझाना कठिन कार्य है। यह नहीं मान लेना चाहिए कि हर एककी आँखें खुल जायेंगी और वह हमारी तरह देखने लगेगा। यह नई हवा अभी थोड़े ही दिनसे बहने लगी है। इसलिए हम धीरज न रख सके, तो कुछ भी काम नहीं कर सकेंगे।

मैंने सुना है कि अंकलेश्वरके धनाढ्य पारसी असहयोगके विरुद्ध हैं। भारत जितना हिन्दुओं और मुसलमानोंका देश है, उतना ही पारसियोंका भी है। क्या दादाभाई नौरोजी हिन्दुस्तानी नहीं थे? क्या सर फीरोजशाह भारतीय नहीं थे? पारसियोंको भी देशके लिए उतना ही दर्द होना चाहिए जितना औरोंको है। हम पारसियोंको समझाकर, पैरों पड़कर, उनसे द्रव्य माँगेंगे, वे अपने बच्चोंको हमारी पाठशालाओंमें भेजेंगे तो उन्हे नमस्कार करेंगे, नहीं भेजेंगे तो भी नमस्कार करेंगे। ऐसा करके हम उन्हे दिखायेंगे कि भारतमे जो जबरदस्त आन्दोलन चल रहा है, उसमें उन्हे भी अपना हिस्सा अदा करना चाहिए। आप पारसी भाइयोंको प्रेमसे वशमे करें। उनसे कहना कि आपको अपना फर्ज समझाना हमारा धर्म है।

राष्ट्रीय पाठशालाको सफलतापूर्वक चलानेकी सबसे बढ़िया कुंजी यह है कि बिलकुल आडम्बर न किया जाये, विज्ञापनबाजी बिलकुल न की जाये। इससे पीछे नहीं हटना होगा। ईंटोंकी सुन्दर चिनाई करनी हो तो जल्दबाजीसे काम नहीं चलेगा। विनाशके काममे उतावली हो सकती है। फसल काटनेका काम हँसिया लेकर एक दिनमे किया जा सकता है, परन्तु बोनेका काम इस प्रकार जल्दबाजीमें नहीं हो सकता। स्कूलोंको खाली करानेका काम तो एक ही दिनमें किया जा सकता है, परन्तु जहाँ नई चीज बनानी है, वहाँ बहुत धीरजकी जरूरत है। आपको अच्छे मास्टर न मिलते हों तो इससे घबराकर आप चरित्रहीन शिक्षक न ले लें। यदि हम सत्यको न छोड़ें, जल्दबाजी न करें तो आज इस पाठशालामें जैसे १२० विद्यार्थी भरती हुए हैं, वैसे आपको १,२०० विद्यार्थी मिल सकेंगे। सरकारी पाठशालाओंके तमाम विद्यार्थी आपको मिल जायें, तो भी काफी नहीं। वहाँ सभी बालक तो जाते नहीं। गाँवमें एक भी बालक या बालिका ऐसी न रहनी चाहिए, जिसे हम उत्तम चरित्रका निर्माण करनेवाली शिक्षा न दे सकें।

जिस महापुरुषके नामपर आपने यह कार्य आरम्भ किया है, खिलाफत और पंजाबके सम्बन्धमे न्याय प्राप्त करने, स्वराज्य प्राप्त करने आदि शुभकार्योंके लिए जिसकी

स्थापना हो रही है, जिसकी स्मृतिमें यह पाठशाला स्थापित हो रही है उसे आप सुशोभित करे। परमेश्वर माता-पिताओंको, विद्यार्थियोको और शिक्षकोको सद्बुद्धि दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०–११–१९२०

२३५. अलीगढ़के छात्रोंके माता-पिताओंके नाम

सज्जनो,

मै जानता हूँ कि मेरे कुछ कामोसे इस समय मेरे तमाम अच्छेसे-अच्छे मित्र हैरान हो उठे है, देशके नौजवानोको दी गई मेरी सलाह उन कामोमे से एक है। मुझे मित्रोंकी इस हैरानीपर आश्चर्य नही होता। हम आज जिस शासन-प्रणालीका भार ढो रहे है उसके सम्बन्धमे मेरा रुख बिलकुल बदल गया है। हमारे धर्मग्रंथोंमें रावणके आसुरी शासनका वर्णन है। मेरे लेखे वर्तमान शासन-प्रणाली उसी प्रकारके आसुरी तत्त्वोसे परिपूर्ण है। मेरी निश्चित मान्यता है कि अगर इस प्रणालीमे आमूल परिवर्तन नही किया जाता और शासक लोग निश्चित रूपसे पश्चात्ताप नही करते तो इस शासनको समाप्त कर देना चाहिए। किन्तु, इस सम्बन्धमे मेरे मित्रोंकी मान्यता इतनी दृढ नही है।

अलीगढमें पढनेवाले अपने बच्चोके लिए आप चिन्तित हैं। आपकी चिन्ता मेरी भी चिन्ता है। आप विश्वास कीजिए कि मै आपकी भावनाओंको चोट नही पहुँचाना चाहता। मै स्वयं चार लडकोंका पिता हूँ और उनका लालन-पालन, अपनी समझसे मैंने अच्छेसे-अच्छे ढंगसे किया है। मै सदा अपने माता-पिताके प्रति आज्ञाकारी रहा हूँ और उसी तरह अपने शिक्षकोके प्रति भी। मै माता-पिताके प्रति पुत्रके कर्त्तव्यका मूल्य भी जानता हूँ। लेकिन ईश्वरके प्रति अपने कर्त्तव्यको मै सर्वोपरि मानता हूँ। और मेरे विचारसे, इस देशके युवकों और युवतियोंके सामने वह घडी आ पहुँची है जब उन्हे चुनाव करना है कि वे ईश्वरके प्रति अपना कर्त्तव्य निभाये या अन्य लोगोके प्रति। मेरा दावा है कि अपने देशके युवा-समुदायको मै काफी निकटसे जानता हूँ। मै जानता हूँ कि हमारे देशमें अपने उच्चतर शिक्षणका स्वरूप तय करना-कराना ज्यादातर तो नौजवानोके ही हाथमे है। मै बहुतसे ऐसे उदाहरण भी जानता हूँ जिनमें माता-पिताओ-को उच्चतर शिक्षाके प्रति अपने बच्चोका आकर्षण एक झूठा मोह-जैसा लगता है, लेकिन तब भी वे उन्हें उस ओरसे विमुख नही कर पाते। इसलिए मेरी यह निश्चित मान्यता है कि अगर मै नौजवानोंसे, अपने माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध भी, अपने स्कूल और कालेज छोड देनेको कहता हूँ तो उससे माता-पिताकी भावनाको कोई चोट नही पहुँचती। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिन सैकडो बच्चोने अपने स्कूल या कालेज छोड दिये है, उनके माता-पिताओमे से केवल एकने आपत्ति करते

हुए मुझे पत्र लिखा है और ये सज्जन भी सरकारी नौकर हैं। आपत्तिका आधार यह है कि उनके बच्चोने स्कूल और कालेज छोडते समय उनसे सलाहतक नही ली। दरअसल मैंने तो लडकोको यही सलाह दी है कि उन्हे किसी निर्णयपर पहुँचनेमे पूर्व स्कूल या कालेज छोड़नेके सवालपर अपने माता-पितासे बातचीत कर लेनी चाहिए।

स्वय मैंने बीसियो सभाओमे हजारो माता-पिताओसे अनुरोध किया है, लेकिन तब किसी माता-पिताने सरकारी नियत्रणमे चलनेवाले स्कूल छोडनेके सुझावका प्रतिवाद नही किया। सच तो यह है कि उन्होने आश्चर्यजनक रूपसे एकमत होकर असहयोग-का प्रस्ताव पास किया, जिसमे स्कूलोसे सम्बन्धित बात भी थी। इसलिए मै मानता हूँ कि दूसरोकी तरह अलीगढके बच्चोके माता-पिता भी इस बातको जानते है कि उनके बच्चोको सरकारके नियंत्रणमे चलनेवाले स्कूलो और कालेजोको छोड देना चाहिए; क्योंकि इनका नियत्रण वही सरकार कर रही है जो भारतके मुसलमानोके साथ छल करनेमें शामिल रही है और जिसने पजावमे बर्बरतापूर्ण व्यवहार करके बडी हृदय-हीनतासे इस राष्ट्रका अपमान किया है।

आशा है आप यह भी जानते होगे कि हमारे बच्चोकी शिक्षाकी उपेक्षा न हो, इस बातकी चिन्ता मुझे भी उतनी ही है जितनी कि किसी औरको हो सकती है। लेकिन बेशक, मुझे औरोसे अधिक इस बातकी चिन्ता जरूर है कि उन्हे शिक्षाका यह दान पवित्र हाथोसे मिले। जिस सरकारको हम हृदयसे नापसन्द करते है, उससे शिक्षाके लिए अनुदान प्राप्त करना मुझे तो हम सबकी पौरुषहीनता लगती है। मेरी नम्र सम्मतिमे तो यह चीज बेईमानी और गैर-वफादारीसे भी भरी हुई है।

क्या यह बेहतर नही कि हमारे बच्चे, भले ही झोपडियों या पेडकी छायामे किन्तु स्वतन्त्र वातावरणमें, ऐसे शिक्षकोसे शिक्षा प्राप्त करे जो स्वयं स्वतन्त्र विचार रखते हों और हमारे बच्चोंमे भी स्वतन्त्रताकी भावना भर सकते हो? अगर आप लोग यह अनुभव कर लेते कि हमारी प्यारी मातृभूमिके भाग्य-विधाता हम माता-पिता नही बल्कि हमारे बच्चे हैं, तो कितना अच्छा होता। जिस दासताके अभिशापने हमें पेटके बल रेंगनेको मजबूर किया, क्या हम उन्हें उसके अभिशापसे मुक्त नहीं करा-येंगे? हम कमजोर है, इसलिए हो सकता है, हममें यह जुआ उतार फेंकनेकी शक्ति या इच्छा न हो। लेकिन क्या हम इतनी बुद्धिमानी नही दिखायेंगे कि अपने बच्चो-के लिए यह अभिशापपूर्ण विरासत न छोड़े।

स्वतन्त्र युवा और युवतियोके रूपमे अपना अध्ययन जारी रखनेसे बच्चोंका कुछ नुकसान नही होगा। निश्चय ही, उन्हे सरकारी विश्वविद्यालयोंकी डिग्रियोकी जरूरत नही है। और अगर हम अपने बच्चोके प्रति मोहको छोड दे तो उनकी शिक्षाके लिए पैसा जुटानेकी समस्या, दरअसल, बहुत आसान हो जाये। अगर राष्ट्र एक हफ्तेतक आत्म-त्यागसे काम ले तो उससे उसके स्कूली बच्चोंके लिए एक सालका खर्च निकल आये। बल्कि हिन्दुओ और मुसलमानोंके जो धर्मार्थ और परमार्थ कोष चल रहे हैं, उनके सहारे हफ्ते-भरके आत्म-त्यागके बिना भी हम अपने बच्चोकी शिक्षाकी व्यवस्था कर सकते हैं। वर्तमान प्रयास और कुछ नही, यह निश्चित करनेके लिए

लोकमत जाननेका एक तरीका-भर है कि हममें स्वशासन और अपने धर्मो तथा सम्मानकी रक्षा करनेकी क्षमता है या नही।

भारतीय युवा-समुदायका हितचिन्तक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३-११-१९२०

२३६. टिप्पणियाँ

लाहौरकी सार्वजनिक सभामे कही गई इस बातका सरकार द्वारा खण्डन किया गया है कि मौलाना जफर अली खाँ एक तग, अँधेरी कोठरीमे कैद है और अगरचे वे अभी एक विचाराधीन कैदी ही है, तो भी उन्हे जेलमे दिया जानेवाला भोजन ही मिल रहा है। यह उनके पुत्र द्वारा दी गई खबर थी। सम्बन्धित सभामें बोलनेवाला कौन था, इसका सरकारने अपने खण्डनमे उल्लेख नही किया है। वक्ता मै था और जिस बातका सरकारने खण्डन किया है, वह मैने कही थी। तथापि मै सतर्क था। मुझे खबर किससे मिली है, मैने यह बता दिया था और यह भी कहा था कि अगर यह बात सच है तो यह बरताव गैर-कानूनी और अमानवीय है। मुझे इस बातकी खुशी है कि सरकारने तीनों बातोका खण्डन किया है। जो सरकार पहले ही इतनी बदनाम हो चुकी है, उसपर एकाध अतिशयोक्तिपूर्ण लाछन लगानेकी मेरी इच्छा नही हो सकती। मै जानता हूँ कि एक भी गलत बात कहनेसे भारतका अहित ही हो सकता है। तथापि सरकारके तमाम खण्डनोको अगर मै सन्देहकी दृष्टिसे देखूँ, तो मुझे क्षमा किया जाये। पजाबके काले दिनोमे इस तरहके बहुत खण्डन होते रहे है और इन खण्डनोमे से ज्यादातर सफेद झूठ थे। इसलिए मै पाठकोसे प्रार्थना करता हूँ कि जबतक मौलाना जफर अली खाँके पत्रका स्पष्टीकरण नही मिल जाता तबतक हम कोई भी राय न बनायें। उन्होने बहुत सोच-समझकर मुझे यह खबर दी थी और उनके कथनकी सत्यतामे अविश्वास करनेका न तब कोई कारण था, न अब है। मैने उन्हे पत्र लिखा है।

× × ×

इस बीच, मै चाहता हूँ कि पाठक मेरे साथ मौलाना जफर अली खाँको इस बातपर बधाई दें कि उन्हें पाँच सालका देश-निकाला और एक हजार रुपये जुर्मानेकी सजा हुई है। स्मरण रखना चाहिए कि यह सजा उन्हें कतिपय विचार रखनेके कारण हुई है। मै 'यग इडिया' के पृष्ठोमे इस सजाका विश्लेषण कर चुका हूँ।[1] इस तरह पजाबमे दमन शुरू हो गया है। राज्य-विरोधी सभाओका निषेध भी लागू कर दिया

१. देखिए "पंजाबमें दमन", २९-९-१९२०।

गया है। जिन्हें सख्त भाषण कहा जा रहा है, इसी अर्थमें सख्त हैं कि वे "जैसेको तैसा" कहते हैं। उनमे इस बातकी माँग भी की जाती है कि अगर सरकार पश्चात्ताप नही करती तो हमें पूर्ण स्वतन्त्रता चाहिए। अगर ऐसी माँग सख्त हो तो वे भाषण सख्त हैं।

× × ×

किन्तु इस दमनकी हमें चिन्ता नही करनी चाहिए, बल्कि इससे हमारा यह संकल्प और दृढ बनना चाहिए कि हम इस जुएको उतार फेंकेंगे जो हमें अपमानित करने और सदा गुलाम बनाये रखनेके इरादेसे हमपर रख दिया गया है। सफलताकी एक अनिवार्य शर्त यह है कि दमनके बावजूद हम अपनी बुद्धि स्थिर रख सकें। लगातार छिपकर या खुल्लमखुल्ला हमें प्रत्याक्रमण नही करना चाहिए। विनम्रतापूर्वक हमे दमनको बरदाश्त करना चाहिए और उसका उपयोग सरकारके साथ अपने सम्बन्धोंको मुल्तवी या खत्म करनेके संकल्पको दृढ बनानेकी दिशामे करना चाहिए। किसी निरपराध व्यक्तिको सजा दिये जानेपर हम हडताल करते हैं। यह तो कमजोरीकी निशानी है, इसका तो यह अर्थ होता है कि हम स्वय जेल नही जाना चाहते। किन्तु मेरी समझमे तो सम्राट्के जेलखानोके दरवाजे पार किये बिना हम स्वराज्यके आँगनमें नही पहुँच सकते। इसलिए जब कभी किसी निरपराध व्यक्तिको अपनी राय जाहिर करनेके अपराधमे सजा दी जाती है, तो हमें उनके उस कष्टके अवसरपर उत्सव मनाना चाहिए। राजनीतिक अपराधियोकी रिहाईका सबसे अच्छा उपाय जेलोको भर देना है और जेलोंको भरनेका सबसे अच्छा उपाय निरन्तर असहयोग करना, सम्भव हो तो अंग्रेजोसे सम्बन्ध रखकर और यदि आवश्यक हो तो उनसे सारे सम्बन्ध तोडकर, पूर्ण स्वराज्यकी निस्संकोच स्पष्ट शब्दोमे माँग करना है।

× × ×

यदि अभिव्यक्तिकी स्वतन्त्रताको दबानेमे पंजाब सरकार सक्रिय हो उठी है, तो संयुक्त प्रान्तकी सरकार भी इस बातमे उससे पीछे नही है। मौलाना जफरुल्मुल्कको दो वर्षका कारावास और ७५० रुपये जुरमाना अथवा जुरमाना न देनेपर ९ महीनेकी अतिरिक्त सजा सुनाई गई है। और भी लोगोके गिरफ्तार होनेकी सम्भावना है। इतना ही नही, यह भी सुझाव दिया गया है कि मेरी गति-विधियाँ अबाध नहीं रखी जानी चाहिए। मेरी गति-विधिका परिणाम थोडे ही समयमे स्वराज्यकी प्राप्ति है। और अगर इस दिनको दूर रखना है तो मेरी बाते सुनने और तदनुसार सोचनेसे जनताको वंचित रखा जाना चाहिए। यदि सरकारकी ऐसी ही राय हो कि मेरी गति-विधियाँ हानिकारक हैं तो उसे मेरी स्वतन्त्रताका अपहरण करनेका अधिकार है। सच कहूँ तो मेरे सहयोगियोको सजा देनेके बजाय मुझसे निपट लेना ज्यादा ठीक है। मेरी और मेरे सहयोगियोकी गति-विधियोमे अन्तर करना ठीक नही है। हम सभी पूर्ण रूपसे अहिंसक हैं। हम केवल कुछ ऐसे विचारोके प्रचारकी चिन्ता कर रहे हैं, जिनका यदि पालन किया जाये, तो उसका परिणाम हिंसा तो हो ही नही सकता। जो सरकार

शान्तिपूर्ण प्रचारका दमन करनेकी कोशिश करती है, वह तो केवल एक अत्याचारी सरकार ही हो सकती है। इसलिए जबतक यह सरकार खिलाफत और पजाबको न्याय देनेसे इनकार करती चली जाती है, तबतक उसे दमनका सहारा लेना ही पडेगा। दमन ही उस अत्याचारी सरकारका एकमात्र साथी है जो अपने उद्देश्यकी सफलतामे बाधाका अनुभव करती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३–११–१९२०

२३७. दलित जातियाँ[1]

आधिकारिक उत्तर देनेके खयालसे इस पत्रको सीनेटके सामने पेश किया गया। सीनेटने इस आशयका एक प्रस्ताव पास किया है कि सीनेटके सविधानके अनुसार ऐसी कोई भी सस्था, जिसमे दलित वर्गोके लोगोंके लिए स्थान न हो, सीनेटसे सम्बद्ध नही हो सकती। स्वय मुझे तो सविधानके मन्शाके बारेमे किसी प्रकारका सन्देह था ही नही।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३–११–१९२०

२३८. लखनऊके भाषण

अली-बन्धुओके मेरे साथ लखनऊ पहुँचनेपर अभी जो सभा हुई थी बहुत लोगोका ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ है, क्योकि उसके परिणामस्वरूप श्री डगलसने, जो एक भारतीय ईसाई बैरिस्टर है, असहयोग आन्दोलनसे अपना सम्बन्ध तोड लिया है। श्री डगलसके इस निर्णयका कारण है उस अवसरपर मौलाना अब्दुल बारी द्वारा दिया गया भाषण। श्री डगलसका आरोप है कि मौलाना साहबने ईसाइयोको काफिर कहा और श्री विलोबीकी हत्याकी लगभग उपेक्षा ही कर दी।

मै उस सभामे मौजूद था और मौलाना साहबका एक-एक शब्द ध्यानसे सुन रहा था। इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि उस भाषणमे श्री डगलसके आन्दोलनसे अलग होनेकी कोई गुजाइश ही नही थी। यह कहना भी सही नही है कि मौलाना साहबने हत्यारेको क्षम्य कहा या विलोबीको काफिर कहनेमे उनका मशा ईसाइयतका अपमान करना था। श्री डगलसके पास इस सम्बन्धविच्छेदका कोई भी औचित्य नही

१. यह टिप्पणी श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजके पत्रके उत्तरमें लिखी गयी थी। श्री एन्ड्रयूजने गांधीजीके एक लेख (देखिए "दलित जातियाँ", २७–१०–१९२०) का उल्लेख करते हुए पूछा था: "क्या सभी राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजोंमें दलित जातियोंके लोग प्रवेश पा सकेंगे?"

है। उन्होंने सभामें कोई विरोध प्रगट नहीं किया; मुझसे कोई शिकायत नहीं की। वे जानते है कि मौलाना साहबका मैं बड़ा सम्मान करता हूँ, अगर उनके भाषणमें उस अपराधको क्षम्य मानने या ईसाइयतका किसी तरहसे अपमान करनेकी कोई बात होती तो मैं खुद ही उसका प्रतिवाद करता। दुनियाके महान् धर्मोंमें से कोई व्यक्ति किसी धर्मका अपमान करे तो मैं उसमें भागी नहीं बन सकता। इसके अतिरिक्त श्री डगलस अपनी वकालत छोड़कर असहयोगमें सिर्फ खिलाफतके सवालको लेकर ही शामिल नहीं हुए थे, पंजाबमें किये गये अन्यायका भी उन्हें उतना ही ध्यान था; और उनका संकल्प स्वराज्य मिलने तक असहयोगकी प्रगतिके साथ कदम मिलाकर चलते रहनेका था। क्या अब श्री डगलस पंजाबके अन्यायका निराकरण या स्वराज्य नहीं चाहते? और क्या सिर्फ इसी कारण खिलाफत आन्दोलनसे उनका अलग हो जाना ठीक है कि एक मौलवीने, चाहे वह कितना भी प्रतिष्ठित क्यों न हो, अपने भाषणसे उनके मनको चोट पहुँचाई? निश्चय ही, श्री डगलसके इस रवैयेमें कहीं कोई भ्रम है और समझमें न आने जैसी कोई ऐसी बात भी है। खैर, मैं इतना कहकर इस बातको यहीं समाप्त करता हूँ कि श्री डगलस अगर ठीक समझें तो अपनी बातको और स्पष्ट करके समझायें[1] और आन्दोलनसे अलग होनेके अधिक संगत कारण बताकर उसका औचित्य सिद्ध करें।

अब उन भाषणों और विशेषकर मौलाना अब्दुल बारी साहबके भाषणपर विचार करना जरूरी है। रिपोर्टरका काम यों भी बड़ा कठिन होता है। लेकिन जब उसे किसी भाषणका विवरण आशुलिपिमें न लिखकर साधारण लिपिमें अनुवाद करते हुए पूरा-पूरा लिखना पड़े और साथ ही जब वह उस भाषाका अच्छा जानकार भी न हो, जिसमें भाषण दिया जा रहा है तो यह काम और भी कठिन हो जाता है। मेरे सहयोगी श्री महादेव देसाईको मौलाना साहबका भाषण नोट करते समय इसी कठिनाईका सामना करना पड़ा था। 'नवजीवन' में प्रकाशित हो जानेके बाद मैंने वह विवरण देखा और देखकर चिन्तित हुआ। मैंने सोचा कि वे बिलकुल अनजाने एक बहुत बड़ी भूल कर गये हैं। रिपोर्टमें मौलाना साहबके साथ न्याय नहीं हुआ है। उनके मुँहसे ऐसा कहलाया गया है कि श्री विलोबीका हत्यारा शहीद है, और मैं (मौलाना साहब) गांधीजी द्वारा कही गई बातोंके मुकाबलेमें 'अलकुरान' की बातोंको तरजीह देता हूँ। मैं श्री महादेव देसाईको अपने उत्तम और सर्वाधिक सावधान सहयोगियोंमें से मानता हूँ। लेकिन ऐसे लोगोंसे भी, पूरी सदाशयताके बावजूद, कभी-कभी गलती हो सकती है।

जहाँतक मुझे स्मरण है, मौलाना अब्दुल बारी साहबने यह कहा था कि "दूसरोंकी तरह मुझे भी श्री विलोबीकी हत्या बुरी लगी है। मैं जानता हूँ कि इससे खिलाफतके उद्देश्यकी बहुत क्षति हुई है। मैं भलीभाँति जानता हूँ कि अगर उस हत्याके सम्बन्धमें मुझे पहलेसे कोई खबर होती तो मैं उसे रोकनेकी कोशिश करता। अगर दूसरे लोग भी मालूम हो जानेपर उसके आड़े आते तो मैं उसे ठीक मानता।

1. देखिए "श्री डगलसका उत्तर", १७-११-१९२०।

लेकिन मुझसे कुछ मित्रोंने हत्यारेके लिए जहन्नुमकी बद्दुआ करनेको कहा। यह बिलकुल दूसरी बात है। एक धार्मिक व्यक्तिके नाते मुझे ऐसा करना असम्भव लगा। मैं नही जानता कि यह हत्या कैसे हुई और इसके पीछे क्या उद्देश्य थे। इसलिए मृत्युके बाद हत्यारेका क्या होगा, यह स्पष्टतः उसके और खुदाके बीचकी चीज है, और अगर कोई पहलेसे ही खुदाके फैसलेके बारेमे अन्दाजा लगाये तो यह गुस्ताखी ही होगी। श्री विलोबी काफिर जातिके थे और अगर जिहादकी घोषणा की गई होती तो शत्रु-जातिके किसी भी व्यक्तिको इस्लामकी तलवारके घाट उतारना उचित ही होता। लेकिन हमने तलवार न उठानेका निश्चय कर लिया है, इसलिए [अब] शत्रु-जातिके किसी भी व्यक्तिकी जान लेना किसी मुसलमानके लिए उचित नहीं है। हमने श्री गांधीकी असहयोग करनेकी सलाह मान ली है। क्योकि इसकी पुष्टिमे 'कुरान' और स्वय हजरत मुहम्मदके जीवनमे काफी प्रमाण मिलते है। और जबतक असहयोग चल रहा है, मै पूरी तरह श्री गांधीके मार्गदर्शनमे चलूँगा। मुझे मूर्तिपूजक हिन्दुओसे मैत्री करनेके कारण फटकारा जाता है। लेकिन मेरी यह निश्चित मान्यता है कि जिन काफिरोने इस्लामको सकटमे डालनेके लिए कुछ भी उठा नही रखा, उन काफिरोके मुकाबले हिन्दुओसे मैत्री करने और यहाँतक कि गोवधसे भी अलग रहनेका मुसलमानोको पूरा अधिकार है।"

यह है मौलाना साहबके भाषणका सार। निश्चय ही, भाषणमे कडवाहट बहुत थी। मौलाना अब्दुल बारी-जैसे धार्मिक आस्थावाले किसी व्यक्तिको अगर अपने धार्मिक सम्मानपर आँच आती दिखे तो भला उसके भाषणमे कड़वाहट होनेपर शिकायत कौन कर सकता है? व्यक्तिशः मुझे तो किसीके लिए भी काफिर शब्दका प्रयोग करना उतना ही बुरा लगता है जितना किसी हिन्दू द्वारा किसीके लिए म्लेच्छ या अनार्य शब्दका प्रयोग करना बुरा लगता है। लेकिन जिन शब्दोके प्रयोगकी मुसलमानो और हिन्दुओको बचपनसे ही इतनी लत लग गई है, उसके लिए मै किसी मुसलमान या हिन्दूसे झगड़नेको तैयार नही हूँ। जैसे-जैसे अलग-अलग धन्धो और मजहबोके लोगोके बीच मैत्री बढती जायेगी, वैसे-वैसे निश्चय ही ऐसे शब्दोका प्रयोग बन्द होता जायेगा। क्या सिर्फ इस कारणसे पादरी हेबर[1]-जैसे व्यक्तिकी विद्वत्ता और नेकीसे इनकार किया जा सकता है कि उन्होने हिन्दुओको 'हीदन'[2] कहा और इसलिए उन्हे दयनीय तक बताया है? "मनुष्य ही क्रूर है"[3]—ये शब्द पूरे मानव-समाजके लिए कहे गये थे, और आज भी प्रार्थनाके समय कई ईसाई गिरजोमें इन शब्दोका उच्चार किया जाता है। इसलिए मुझे तो उक्त भाषणमे श्री डगलसके इस निर्णयका कोई कारण दिखाई नही पडता।

मौलाना शौकत अलीका भाषण तो और भी निर्दोष था। उन्होने कहा था कि श्री विलोबीकी हत्याका जितना दुःख मुझे है, उतना और किसीको नही हो सकता।

१. रिजीनॉल्ड हेबर (१७८२–१८२६); कलकत्ताके बिशप।
२. गैर-ईसाइयोंके लिए प्रयुक्त घृणासूचक शब्द।
३. पूरी पंक्तियोंके लिए देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ३७९ की पाद-टिप्पणी।

अगर खिलाफत समितियोंने हिंसाको रोकनेके लिए निरन्तर और यथासम्भव अधिकसे-अधिक प्रयास न किया होता तो ऐसी एक नहीं, अनेक हत्याएँ हो चुकी होतीं। लेकिन अपने ही धर्म और सम्मानकी खातिर हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि जबतक हमने असहयोगको अपना रखा है तबतक हिंसाको रोके रहें। किन्तु हत्यारेकी भर्त्सना करनेवाले इस चाटुकारिताभरे प्रस्तावसे मैं सहमत नहीं हूँ।

मैं देखता हूँ, मेरे भाषणकी रिपोर्ट तैयार करनेमें भी गलती की गई है। मैंने यह कभी नहीं कहा कि जब हम तलवार उठाना चाहेंगे तो उसकी पूर्वसूचना दे देंगे। मैंने जितने जोरदार शब्दोंमें हो सकता था, इस हत्याकी भर्त्सना की और कहा कि आज जब इस्लामकी अनेक मानी हुई धार्मिक संस्थाओंने लोगोंको सुरक्षाका आश्वासन दे रखा है, ऐसी हालतमें एक निर्दोष व्यक्तिकी हत्याके अपराधको किसी भी तरह क्षमा करनेसे इस्लामकी प्रतिष्ठाको बट्टा लगेगा। मैंने यह भी कहा कि स्वयं मेरा व्यक्तिगत धर्म तो अपने शत्रुके प्राण लेनेकी अनुमति कभी नहीं देता। लेकिन साथ ही मैंने यह भी कहा कि इस्लाम बल्कि लाखों हिन्दुओंकी भी ऐसी मान्यता है कि कुछ विशेष परिस्थितियोंमें शत्रुको मारना उचित हो सकता है। और मैंने कहा कि जब भारतके मुसलमान तलवार उठाना चाहेंगे तो स्पष्ट शब्दोंमें उचित पूर्वसूचना देनेकी ईमानदारी वे अवश्य दिखायेंगे।

और जो बात मैं अक्सर कहता रहा हूँ, उसे एक बार फिर दोहराता हूँ कि मुसलमानोंमें जो लोग सबसे नेक और निर्भीक (मौलाना अब्दुल बारी और अली-बन्धुओंको मैं ऐसा ही मानता हूँ) हैं, वे हिंसाको रोकनेके लिए अपने तई पूरा प्रयास कर रहे हैं। मैं सचमुच ऐसा मानता हूँ कि ऐसे लोगोंने इतना कठिन प्रयास न किया होता तो इस देशमें हिंसाके विस्फोटको नहीं रोका जा सकता था। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि अगर ऐसा होता तो वह न इस्लामके लिए हितकर होता और न भारतके लिए। उसका यही परिणाम होता कि इस्लाम और भारतको कोई सम्मान दिये बिना सरकारको निर्ममतापूर्ण दमनका अवसर मिल जाता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-११-१९२०

२३९. कांग्रेसका संविधान

कांग्रेस संविधान समितिने आखिरकार सर्वसाधारणकी जानकारीके लिए अपना विवरण प्रकाशित करके अखिल भारतीय कांग्रेस समितिकी चर्चामें मददके विचारसे सार्वजनिक संस्थाओंको उसपर अपनी-अपनी राय भेजनेके लिए आमन्त्रित किया है। यह बड़े दुःखकी बात है कि यद्यपि संविधान समितिमें बहुत कम सदस्य थे, फिर भी वे प्रयत्नोंके बावजूद एक-साथ मिलकर कभी नहीं बैठ सके। सम्भव है, इसमें किसीका दोष न रहा हो। वैसे विवरणका मसविदा सभी सदस्योंकी नजरोंसे गुजरा है और

एक सदस्यको छोडकर सबने उसे बारीकीसे देखा है। विवरण पाँच सदस्योमे से चार सदस्योके प्रौढ विचार-विनिमयका नतीजा है। तथापि यह तो कहना ही पड़ेगा कि वह एक सर्वसम्मत विवरण नही है। सदस्योने सोचा कि विरोधी विवरण उपस्थित करनेकी बजाय यह अधिक अच्छा होगा कि एक कामचलाऊ योजना प्रस्तुत की जाये और प्रत्येक सदस्यको विभिन्न मामलोंपर असहमत होनेकी परिस्थितिमे अपना मत व्यक्त करनेकी स्वतन्त्रता दे दी जाये। विधानमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात है सिद्धान्तका परिवर्तन। व्याख्यामे परिवर्तित सिद्धान्त देशके वर्तमान मानसको ठीक-ठीक प्रतिविम्बित करता है।

मै यह जानता हूँ कि अनेक महत्त्वपूर्ण समाचारपत्रोमे प्रस्तावित परिवर्तन की विरोधी आलोचना की गई है। किन्तु देशमे एक असाधारण परिस्थिति यह उत्पन्न हो गई है कि आजतक ज्यादातर समाचारपत्र जो जनतापर प्रभाव रखते थे और जनता-की राय समझते थे; आज उनकी अपेक्षा जनताकी राय ही बहुत अधिक प्रगतिशील हो गई है। वास्तवमें आज मत-निर्माण केवल शिक्षित-वर्गतक ही सीमित नही बचा है, बल्कि जनताने केवल मत बनानेकी ही नही, उसके मुताबिक आचरण करा लेनेकी जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले ली है। यदि हम उसकी रायको छोटा करके देखे अथवा उसकी अवज्ञा करें अथवा इसे किसी क्षणिक उथल-पुथलसे उत्पन्न माने तो यह एक त्रुटि होगी, इसी तरह अगर हम यह भी माने कि जनतामे यह जागृति अली-भाइयो या मेरी गति-विधियोके कारण उत्पन्न हुई है, तो यह भी उतनी ही बड़ी गलती होगी। जनता आज हमारी बात सुन रही है, इसका कारण ही यह है कि हम उसीकी भावनाओको व्यक्त कर रहे हैं। जनता उतनी मूर्ख या नासमझ कदापि नही है जितनी हम कभी-कभी उसे मान लेते हैं। जिस बातको हम बुद्धिसे नही समझ पाते, वह उसे अन्त प्रेरणासे समझ लेती है। अलबत्ता जनता जो-कुछ चाहती है, उसे किस तरह व्यक्त करे, सो वह नही जानती और वह जो-कुछ चाहती है, उमे प्राप्त करनेका तरीका तो और भी कम परिमाणमे जानती है। नेतृत्वका यही उपयोग है। यदि नेतृत्व खराब हो, जल्दबाजीसे भरा हुआ हो या इससे भी बुरी बात, स्वार्थसे भरा हुआ हो, तो उसका परिणाम बहुत बुरा निकल सकता है।

सिद्धान्तमे प्रस्तावित परिवर्तनका पहला भाग देशकी वर्तमान इच्छाको व्यक्त करता है और दूसरा यह व्यक्त करता है कि उक्त इच्छा पूरी की जा सकती है। मेरी नम्र रायमे प्रस्तावित परिवर्तित सिद्धान्त काग्रेसके मूल सिद्धान्तका विस्तार-भर है। और जबतक अंग्रेजोसे सम्बन्ध तोड़नेका प्रयत्न नही किया जाता, तबतक तो वह काग्रेसके सिद्धान्तकी परिभाषा करनेवाली आजकी धाराके अन्तर्गत ही है। मूलका विस्तार वह इसी अर्थमे है कि उसमे अग्रेजोसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेकी सम्भावनाकी गुजाइश भी है। मेरी तुच्छ सम्मतिमे यदि भारत अप्रतिहत रूपसे प्रगति करना चाहता है, तो उसे अग्रेज जनताके सामने यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि हम यदि अग्रेजोसे सम्बन्ध बनाये रखकर अपना पूरा विकास कर सकते हैं, तो हम सम्बन्ध बनाये रखना चाहते हैं, किन्तु यदि परिपूर्ण राष्ट्रीय विकासके लिए आवश्यक हो, तो हम उसके

बिना काम चलानेका निश्चय कर चुके है और हमारे लिए उनसे पूरा सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना भी सम्भव है। ऐसा मानना कि ब्रिटिश सम्बन्धोंके बिना हम अपने उद्देश्यकी ओर बढ ही नहीं सकते, मेरी समझमे राष्ट्रीय सम्मानके लिए अपमानजनक ही नही है, इससे राष्ट्रीय प्रगतिमे बडी बाधा भी उत्पन्न होती है। यह एक अन्ध-विश्वास है, और इसी अन्धविश्वासके कारण हमारे कुछ अच्छेसे-अच्छे लोग पजाबके अत्याचार और खिलाफतके अपमानको सहन कर लेते हैं। उक्त सम्बन्धके प्रति हमारी यह अन्ध-श्रद्धा हमारे मनमें लाचारीकी भावना जगाये रखती है। सिद्धान्तका प्रस्तावित परिवर्तन हमे इस लाचार परिस्थितिसे मुक्त करनेमे समर्थ बनाता है। मेरी व्यक्तिगत मान्यता है कि स्वतन्त्रताका प्रयत्न करना बिलकुल वैधानिक है। किन्तु केवल इस विचारसे परिवर्तित सिद्धान्तके मसविदेमें से अत्यन्त पारिभाषिक विशेषण "वैधानिक" को हटा दिया गया है कि आगे चलकर पूर्ण स्वराज्यके वैधानिक स्वरूपको लेकर बहस न उठ खडी हो। इतना-भर निश्चयपूर्वक कह देनेसे काम चल जाना चाहिए कि हम अपना उद्देश्य प्राप्त करनेके लिए शान्तिपूर्ण, सम्मानपूर्ण और उचित पद्धतिका अवलम्बन करेगे। मुझे विश्वास है कि मेरे सहयोगियोने प्रस्तावित सिद्धान्तको स्वीकार करते समय यही दृष्टिकोण अपने सामने रखा है। कुछ भी हो, जो परिवर्तन किया गया है उसके विषयमे मेरा तो निस्सन्देह यही विचार रहा है। मेरे मनमे ऐसा कोई भी साधन प्रयुक्त करनेकी अभिलाषा नही है, जो कानून और व्यवस्थाको भग करता हो। मै यह जानता हूँ कि शान्ति और व्यवस्थाका नाम लेते हुए मै एक अनावश्यक बात कर रहा हूँ, क्योकि हमारे प्रमुख नेताओमे से कुछ आज भी यही मानते है कि मेरी वर्तमान पद्धति कानून और व्यवस्थाको भग करनेवाली है। फिर भी इतना तो कदाचित् वे भी मानेगे कि वैधानिक शब्दको बनाये रखनेसे ही देशको उन पद्धतियोसे बरी नही रखा जा सकता, जिन्हें मै काममे ले रहा हूँ। निस्सन्देह इसपर बडी बारीक कानूनी बहस हो सकती है, किन्तु जब देशको काम करना है, तो ऐसी बहसोमे पड़नेसे कोई लाभ नही। दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन प्रतिनिधियोंकी संख्याको सीमित करनेसे सम्बन्धित है। मेरी समझमें इस तरहके सीमितीकरणके स्पष्ट लाभ है। बहुत जल्दी ही वह समय आ जायेगा कि यदि हमने ऐसी कोई सीमा नही बनाई, तो काग्रेस बशके बाहर बडी हो जायेगी। अमर्यादित सख्यामें दर्शकोंको आने देना भी तो एक कठिन बात है। फिर यदि प्रतिनिधि ही अमर्यादित संख्यामे बनने दिये जाये, तो राष्ट्रीय कार्य करना कैसे सम्भव होगा।

अन्य महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है अखिल भारतीय काग्रेस समितिके सदस्योंके चुनावसे सम्बन्धित परिवर्तन। इसमे काग्रेसकी हदतक देशको भाषाके आधारपर पुनर्विभाजित करना और उक्त समितिको लगभग विषय-समिति बना देनेका सुझाव है। इन परिवर्तनों-पर टीका-टिप्पणी करना आवश्यक नही है, किन्तु मै यह अवश्य कहना चाहता हूँ कि यदि सदस्योकी सख्याको मर्यादित करनेका सिद्धान्त काग्रेस स्वीकार कर ले, तो आनु-पातिक प्रतिनिधित्वका सिद्धान्त ले आना भी अच्छा रहेगा। इससे उन सभी लोगोको सुविधा होगी जो काग्रेसमें अपने प्रतिनिधि भेजना चाहते हैं।

देखता हूँ कि 'सर्वेंट आफ इडिया' ने ब्रिटिश समिति और 'इडिया' नामक समाचारपत्रसे सम्बन्धित 'यग इडिया' मे हाल ही मे प्रकाशित मेरे लेख[1] और ब्रिटिश समितिके बने रहनेपर मेरी मुग्ध स्वीकृतिको परस्पर विरोधी माना है — कमसे-कम प्रस्तावित विधानके प्रकाशनकी हदतक। किन्तु यह सुविदित है कि पिछले कई वर्षोसे उक्त संस्थाके विषयमे मेरी यही राय है। यदि मै अपने सहयोगियोको उक्त सस्थाकी समाप्तिकी बात सुझाऊँ, तो वह निरर्थक होगी। समिति उपयोगी है अथवा नही, इसपर कुछ कहना हमारा काम नही था। हमारा काम तो केवल एक नया विधान तैयार करनेका था। इनके अतिरिक्त मै यह भी जानता था कि मेरे साथी ब्रिटिश समितिके अस्तित्वके खिलाफ नही है। नये सविधानको बनाते हुए मै यह बात देख सका हूँ कि इसमे सिद्धान्तके प्रश्न निहित नही है और अपने विरोधियोकी रायोसे जल्दीसे-जल्दी सहमत होनेकी मेरी इच्छा भी थी। तथापि समितिका आज जो स्वरूप है, मै उसे खत्म करनेपर जोर दूंगा और 'इडिया' नामक इसके मुख-पत्रको भी बन्द करवाना चाहूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-११-१९२०

२४०. निर्दोष भूल

महादेव देसाईने 'नवजीवन' के पिछले अंकमे लखनऊमे हुई विराट् सभाकी जो रिपोर्ट प्रकाशित की थी वह कुल मिलाकर बहुत सुन्दर बन पडी है। उसीमे उन्होने मौलाना अब्दुल बारी साहबके भाषणका विवरण भी दिया है। इस भाषणको सबने बहुत ध्यानसे सुना था। किन्तु श्री डगलस नामक एक ईसाई [सज्जन] ने तो उस भाषणका यहाँतक अनर्थ किया कि जिस असहयोगको स्वीकार करके उन्होने वकालत छोड़ दी थी उसे पुन. आरम्भ कर दिया है और असहयोगका काम छोड दिया है। पर सभी लोगोपर इस भाषणका एक जैसा असर नही हुआ। मुझे मालूम है कि श्री महादेव देसाई मौलाना साहबकी फारसी और अरबी शब्दोसे भरी उर्दूको पूरी तरह नही समझ सके है। उन्होने उसका जो विवरण दिया है, मेरे मतानुसार उसमें भूले हुई है। मौलाना साहबके भाषणका मेरे ऊपर कुछ दूसरा ही असर हुआ है। इस भाषणको मै जैसा मुझे याद आता है, ठीक वैसा यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। ये शब्द मौलाना साहबके नही कहे जा सकते, क्योकि मैने उनके इस भाषणके कोई नोट नही लिये थे; लेकिन मेरी यह दृढ धारणा है कि ये विचार उनके ही है।

> गाधीजी द्वारा खेरी की घटनापर[2] विवेचन करनेके बाद मै उस विषय-पर कुछ बोलना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। मुझे राजनैतिक विषयोकी जानकारी

१. देखिए "ब्रिटिश काग्रेस कमेटी और इंडिया", २०-१०-१९२०।
२. विलोबीकी हत्या।

नही है। मै भाषण नही देना चाहता। मै तो सिर्फ एक आलिमके[1] रूपमें बोलना चाहता हूँ इसलिए बैठे-बैठे ही बोलूँगा। इस हत्याके सम्बन्धमें अनेक व्यक्तियों-ने अनेक विचार व्यक्त किये है। उनमें से कुछ तो उस बारेमें कुछ सम-झते ही नही है। मै तो सिर्फ अपने दीनके फरमानको जिस रूपमें जानता हूँ, उसको ध्यानमें रखते हुए अपनी राय व्यक्त करना चाहता हूँ। कुछ लोग कहते है कि हत्या करनेवाला जहन्नुममें जायेगा। मै ऐसा कदापि नही कह सकता। व्यक्तिके दिलको सिर्फ खुदा ही जानता है। उस व्यक्तिने किस लिए और किस तरह हत्याकी इसकी मुझे क्या खबर? इस्लाममें दुश्मनको मारनेका स्पष्ट रूपसे हक दिया गया है। दुश्मनोमें निर्दोष कौन और दोषी कौन है, इसका विचार नही किया जा सकता। लडाईमे दुश्मनकी कौमके सभी व्यक्तियोकी हत्या कर सकनेका कानून प्रसिद्ध है। श्री विलोबी काफिर थे अर्थात् दुश्मनकी कौमके थे। और अगर इस समय [अग्रेजोके विरुद्ध] जिहादकी घोषणा हुई होती और ऐसे व्यक्तिकी भी कानूनन हत्या की गई होती तो हत्या करनेवाले व्यक्तिको अवश्य शहीद माना जाता। लेकिन इस समय हमने जिहादकी घोषणा नही की है। हमें गाधीजीने दूसरा रास्ता बताया है और हम जान गये है कि इस समय जिहाद बोलकर हम इस्लामकी रक्षा नही कर सकते, हममें वैसी शक्ति नही है। गाधीजीने हमसे 'तर्के मवालात'[2] करनेको कहा है और हमने इसे पसन्द किया है। उसके लिए 'कुरान शरीफ'मे स्पष्ट रूपसे निर्देश दिया हुआ है। पैगम्बर साहबने भी तेरह वर्षतक 'तर्के मवालात'को इख्तियार किया था। मैंने स्वयंको गाधीजीको सौप दिया है, इस कारण कितने ही मुसलमान मुझसे नाराज हो गये है, लेकिन मै कह सकता हूँ कि वे मुझे बिलकुल नही समझते। जिन काफिरोने इस्लामको खतरेमें डाला है उनसे मित्रता करनेकी अपेक्षा मै हिन्दुओंकी दोस्तीको अधिक पसन्द करता हूँ और उनकी खातिर गोरक्षाको भी जायज समझता हूँ। पैगम्बर साहबने खुद बुतपरस्तोसे दोस्ती की थी। जबतक खिलाफत कमेटी और आलिम लोग जिहादका फरमान नही निकालते तबतक हम तलवार नही उठा सकते और इसी कारण श्री विलोबीकी हत्यापर मुझे दुःख होता है। अगर मुझे पता चलता तो मै इस हत्याको जरूर रोकता, लेकिन ऐसा कहना और हत्याके प्रति अपनी नापसन्दगी जाहिर करना एक बात है तथा हत्या करनेवाला जहन्नुममें जायेगा, यह कहना दूसरी बात है। इस आदमीके लिए जहन्नुममे जगह है अथवा जन्नतमें, इसका फैसला तो सिर्फ खुदा ही कर सकता है। हम तो इतना ही कह सकते है कि इस हत्यासे खिलाफत-की लडाईको धक्का पहुँचा है और हमें ऐसे कामोको रोकना चाहिए।

मैंने तो मौलाना साहबके भाषणको उपर्युक्त ढंगसे समझा है। इससे हम देख सकते है कि जबतक शार्टहैण्ड रिपोर्ट न ली जाये तबतक महत्त्वपूर्ण भाषणोकी रिपोर्ट

१. जानकार।
२. असहयोग।

देना बहुत जोखिमका काम है। श्री महादेवकी रिपोर्टसे अनजाने ही मौलवी साहवके प्रति अन्याय हो गया है। खूनी शहीद हो गया, ऐसा मौलाना साहवने नही कहा और मेरे खयालसे तो ऐसा कहनेमे इस्लामकी प्रतिष्ठाको भी धक्का पहुँचता। मेरी नम्र रायमे जव जिहाद नही बोला गया है, उस समय कोई भी मुसलमान अच्छे उद्देश्य और खिलाफतकी खातिर अपनी जवावदेहीपर हत्या करे तो वह शहीद नही हो सकता। ऐसा व्यक्ति जहन्नुममे जाने लायक न हो, यह जुदा और समझमे आ सकनेवाली बात है। लेकिन शहीद होना तो अच्छे कामका खास इनाम है। जिस कार्य-से खिलाफतको धक्का पहुँचनेकी बातको हम स्वीकार करते हैं उस कार्यके करनेसे शहीद नही बना जा सकता। इसलिए मौलाना साहवके भाषणमे, खूनी शहीद हो गया, यह वाक्य कदापि नही हो सकता था, ऐसी मेरी मान्यता है।

श्री महादेवकी रिपोर्टमे दूसरी भूल मै यह देखता हूँ कि मौलाना साहवने यह वताया है कि 'कुरान शरीफ'के फरमानकी अपेक्षा उन्होने मेरे फरमानको अधिक पसन्द किया है। किसी भी मुसलमानको 'कुरान शरीफ'के फरमानसे दूसरे मुसलमान द्वारा दिया गया फरमान ही पसन्द नही आ सकता तो फिर एक हिन्दूके फरमानकी तो वात ही क्या? जिस तरह हिन्दुओके लिए 'गीता' अथवा 'वेद' अन्तिम आदेश है उसी तरह मुसलमानोके लिए 'कुरान शरीफ' है। और फिर मौलाना साहब-जैसे विद्वान्को मै फरमान दे ही नही सकता। मै तो खिलाफत समिति-तकको आदेश नही दे सकता। मै तो केवल सलाहकार ही हो सकता हूँ, और हूँ।

एक भूल और हो गई है। श्री महादेवने मौलाना साहवके अन्तिम वाक्यको इस तरह उद्धृत किया है:

> **लेकिन जवसे मै इस संघर्षमें शामिल हुआ हूँ तबसे हिन्दुओं और गायके समान मुझे और कोई वस्तु प्रिय नहीं है।**

मौलाना साहवने ऐसा कहा, यह मुझे याद नही आता और मै मानता हूँ कि वे ऐसा कदापि नही कह सकते। वे सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि अन्य लोगोकी अपेक्षा उन्हें हिन्दू अधिक पसन्द हैं। इसके अतिरिक्त इस भूलकी उपर्युक्त दो भूलोसे कोई तुलना नही की जा सकती। पहली भूलसे लोगोको अनजाने ही हत्या करनेकी प्रेरणा मिलती है, *और ऐसी प्रेरणा देनेका मौलाना साहवका कोई विचार नही था और न है*, ऐसी मेरी दृढ मान्यता है। दूसरी भूलसे मौलाना साहवके प्रति अन्याय होता है और मुसलमानोको भी दुःखी होनेका कारण मिलता है। कोई मुसलमान 'कुरान शरीफ'के फरमानकी अपेक्षा किसी अन्य व्यक्तिके फरमानको अधिक पसन्द करे, यह विचार अपने धर्मके प्रति सजग मुसलमानोके लिए असह्य है।

'नवजीवन' को ध्यानसे पढ़नेवाले पाठकोको मुझे यह वतानेकी जरूरत नही कि श्री महादेवने अपनी रिपोर्टके नीचे जो टिप्पणी दी है उसमे उन्होने अपना और मौलाना साहवका पूरा-पूरा वचाव कर लिया है। वे कहते हैं:

> **इस तरह मैंने अपने शब्दोंमें मौलाना साहबकी दलीलोको रखा है। इसमें दोष होनेकी सम्भावना है, लेकिन इन्हें मैंने अपनी समझ और स्मृतिके आधारपर**

प्रस्तुत किया है। यह प्रसंग इतना अधिक गम्भीर था और इसपर इतने नपे-तुले शब्दोंमें विवेचन किया गया था कि जबतक भाषणको उसके मूल रूपमें प्रस्तुत न किया जाये तबतक इसमें कोई-न-कोई भूल रह ही जायेगी।

श्री महादेवने भी पूरी रिपोर्ट तो ली नहीं थी, इसलिए मुझे उसमें जो अधूरापन दिखाई दिया उसे मैंने पाठकोंके समक्ष रखा है। [मौलाना साहबके भाषणपर लिखी गई] मेरी रिपोर्टके अधूरेपनको तो जिन लोगोंने इसे सुना वही बता सकते हैं और सब लोगोंके अधूरेपनको तो मौलाना साहब ही देख सकते हैं और चाहें तो बता भी सकते हैं। लेकिन मुझे तो इससे यही सीखना है कि एक पत्रकारके रूपमें मेरी क्या जवाबदेही है? प्रत्येक सम्पादक अपने पत्रकी हर पंक्तिपर अंकुश नहीं रख सकता। यदि मैंने भी महादेवकी रिपोर्टको पहले ही देख लिया होता तो मैं उपर्युक्त परिवर्तन अवश्य करता। लेकिन मैं श्री महादेवके दोष निकालनेके लिए भी तैयार नहीं हूँ। रिपोर्टर जैसा भाषण सुनता है उसे अपनी समझ और शुद्ध बुद्धिसे प्रस्तुत करता है— रिपोर्टरके इस कर्त्तव्यको श्री महादेवने भली-भाँति निभाया है। पाठकोंको सदा सम्पादक तथा रिपोर्टर-वर्गकी मुश्किलोंको ध्यानमें रखते हुए समाचारपत्रोंमें उचित सुधारकी गुंजाइश रखकर ही उन्हें पढ़ना चाहिए। यदि ऐसा नहीं करते तो वे समाचारपत्रोंके संचालकोंके प्रति भारी अन्याय करते हैं और उनसे जितना लाभ उठाना सम्भव है उतना लाभ कदापि नहीं उठा सकते।

अब रहे श्री डगलस, जिनका मैं ऊपर उल्लेख कर आया हूँ। उन्होंने आन्दोलनमें हाथ खींच लिया है। इन भाईने ऐसा करके केवल उतावली दिखाई है। मौलाना साहबने ईसाइयोंके बारेमें 'काफिर' शब्दका इस्तेमाल किया, इससे उन्हें दुःख हुआ है। मैं उनके इस दुःखको समझ सकता हूँ। अगर 'काफिर' शब्दका प्रयोग न किया जाता तो अधिक अच्छा होता। लेकिन मौलाना साहबने इस शब्दका प्रयोग तो शुद्ध हृदयसे किया था और इस समय जिन अंग्रेजोंको वे शत्रु मानते हैं उन्हींके सम्बन्धमें यह प्रयोग किया गया था। तथापि श्री डगलसने जो कदम उठाया है उसे उठानेसे पहले उन्हें मौलाना साहबसे उनके कथनका अभिप्राय जान लेना चाहिए था। वैसा न करके उन्होंने अत्यन्त उतावलीमें आन्दोलनको त्याग दिया है, इससे उनके इस कदमको मैं सन्देहकी नजरसे देखता हूँ। मौलाना साहबके वचन तीखे थे लेकिन मेरा ऐसा विश्वास है कि वे किसी निर्दोष व्यक्तिके हृदयको आघात पहुँचानेवाले नहीं थे। साथ ही मुझे यह भी विश्वास है कि उनके भाषणमें हत्याको बढ़ावा देनेका भी कोई भाव न था। उन्होंने तो अपने भाषणमें सिर्फ शास्त्रके अर्थको ही स्पष्ट किया है और अपने ऊपर किये गये प्रहारोंका उत्तर दिया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-११-१९२०

२४१. भाषण : नासिकमें[1]

४ नवम्बर, १९२०

भाइयो,

इस समय इस पवित्र स्थानमे मैं आपसे लम्बी बात नही करूँगा। मुझे खेद है कि मेरे भाईके समान मौ० शौकत अली इस समय मेरे साथ नही हैं। वे और उनके भाई मुहम्मद अली इस समय अलीगढ़मे महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं, इसलिए इस बार उनके बहनोई मुरादाबाद निवासी भाई मुअज्जम अली, जिन्होंने हालमें बैरिस्टरी छोडी है, मेरे साथ यहाँ आये हैं।

हमारी काग्रेसके वर्तमान अध्यक्ष प० मोतीलालजीको नामसे तो आप सब जानते होंगे। पजाबके मामलेमे उन्होने कितनी जबरदस्त सेवाएँ की हैं और कितना त्याग किया है, यह दुनिया जानती है। उनके और प० मालवीयजीके भगीरथ प्रयत्नसे ही पजाबमे कितने ही बेगुनाह हिन्दू-मुसलमान भाइयोकी जान बची है। आज भी, लगभग एक लाखकी मासिक आमदनीवाली धड़ल्लेसे चलती वकालत छोड़कर वे भारतकी सेवामे संलग्न हैं।

पिछले दस महीनोकी घटनाओसे मुझे विश्वास हो गया है कि आजकल जो हुकूमत हमपर शासन कर रही है, वह केवल राक्षसी है। मैं उसे रावणराज्य कहता हूँ। इसके दो बड़े सबूत लोगोके सामने मौजूद हैं। पजाबमे जो अत्याचार किये गये, वे कभी किसीने नही सुने होगे। दूसरे, खिलाफतके मामलेमें दगा देकर भारतके सात करोड़ मुसलमानोके दिल इस सल्तनतने जिस प्रकार जख्मी किये, वैसा कोई राजा नही कर सकता। ऐसी राक्षसी हुकूमतमे रहनेवाली रैयत क्या करे? तुलसीदासने कहा है कि जो असत हैं, जो बुरे हैं, उनकी असगतिकी जाये — उनका संग छोडा जाये, उनकी मुहब्बत तोड दी जाये, उनसे असहयोग किया जाये, उन्हे मदद देना बन्द कर दिया जाये। यह एक यज्ञ है, उसमें जब हम अपना बलिदान देंगे, तभी खुद शुद्ध होंगे और रावणराज्यको मिटाकर रामराज्यकी स्थापना कर सकेंगे। यह रामराज्य ही स्वराज्य है। स्वराज्य स्थापित किये बिना हम इस राक्षसी राज्यसे छूट नही सकते।

यह स्वराज्य किस तरह स्थापित किया जाये? हिन्दू-मुसलमानोमे परस्पर प्रेम और मुहब्बत बढाकर और सहयोग करके। जबतक यह सल्तनत अपने किये हुए पापोपर पश्चात्ताप न करे, तोबा न करे, तबतक उसके साथ किसी तरहका व्यवहार हमे हराम मानना चाहिए। अंग्रेजोंको काटकर, उनके मकान जलाकर हम इस सल्तनतको मिटा या झुका नही सकेंगे, परन्तु उनसे मुहब्बत तोडकर हम उन्हे मिटा सकते हैं। एक

१. गांधीजी करवीरपीठके श्रीमद् शकराचार्यके विशेष निमन्त्रणपर नासिक गये थे; इस सभाकी अध्यक्षता श्रीमद् शकराचार्यने ही की थी। गांधीजीने अपना भाषण हिन्दीमें दिया था, जो उपलब्ध नहीं है। यहाँ इसका अनुवाद गुजरातीसे किया गया है।

लाख लोग तीस करोड लोगोको मजबूर कर रहे हैं, इसका कारण इतना ही है कि हम स्वयं उनपर मोहित हैं। हम स्वयं मान लेते हैं कि अंग्रेज यहाँसे चले जायेंगे, तो हम आपसमे लड मरेंगे। इस भ्रमको हमें एकदम दूर कर देना चाहिए। हमें इन एक लाख अंग्रेजोके हाथों विवश होनेसे इनकार कर देना चाहिए। हिन्दू-मुसलमानोको मिलकर खून करनेके बजाय अपना खून बहाकर ही स्वतन्त्र होना चाहिए। यही एक रास्ता है, दूसरा रास्ता नही है, यह मै आपको समझाना चाहता हूँ। शैतानके साथ शैतानीसे नही, परन्तु ईश्वरकी मदद लेकर ही लड़ाई जीती जा सकती है, शैतानको मजबूर किया जा सकता है; और ईश्वरकी मदद उसीको मिलेगी, जिसके दिलमें मुहब्बत है।

इस प्रकार आत्मत्याग और कुर्बानीकी नीवपर इमारत खडी करनी है — इसके लिए आज हमें इस असन्त राज्यसे अपना सम्बन्ध, उसका दान, उसकी कृपा सब-कुछ छोड़ना चाहिए। उसकी पदवियाँ, उसकी पाठशालाएँ, उसकी नौकरियाँ हराम समझनी चाहिए और जैसे हम जलते हुए घरको छोडकर निकल जाते हैं वैसे ही और कोई विचार किये बिना सबसे पहले हमे उसमेंसे निकल जाना चाहिए। इस सरकारकी फौजमे भी हम भरती नही हो सकते। उसने हमारे लिए धारा सभाका जो जाल फैलाया है उसमें भी हमें न फँसना चाहिए। कुछ लोगोको मै यह दलील देते देखता हूँ कि सरकार जिस रुपयेसे पाठशालाएँ चलाती है, वह उसका कहाँ है? वह जनताका ही रुपया है। फिर उस रुपयेसे चलनेवाले स्कूल हम किस लिए छोडें? मैं कहता हूँ कि आपका रुपया डाकू लूट ले, उसके बाद भी उसके हाथके रुपयेको आप अपना कैसे कह सकते हैं? और जो सम्पत्ति डाकुओने आपसे छीन ली, उसका टुकडा बादमे वह दानके रूपमे देनेको निकाले, तो वह दान आप कैसे ले सकते हैं? जिसने हमारी इज्जत ली, जिसने हमारे मजहबको खतरेमें डालकर बडीसे-बड़ी डकैती की है, उसके हाथका दान हम कैसे लें? उसका तो सग छोड देना ही हमारा वर्तमान धर्म है। आपसी झगडोंके लिए हमें उनकी अदालतोका आश्रय नही लेना चाहिए, और ऐसा करना चाहिए कि उनके द्वारा दी जानेवाली नई धारा सभाओंके उम्मीदवारोको एक भी मतदाता मत न दे।

हम इतना करें और साथ ही स्वदेशी-धर्मके पालनकी आवश्यकताको समझ जायें तो एक ही वर्षमे स्वराज्य मिल सकता है तथा पंजाब और खिलाफतके मामलोंमें न्याय प्राप्त किया जा सकता है। स्वदेशीकी बात मामूली नही है। हिन्दुस्तान इस समय गरीब है, प्रजाके पास खानेके लिए अन्न नही है, पहननेके लिए वस्त्र नही हैं। मैने ऐसी कितनी ही स्त्रियाँ देखी हैं जो पहननेके लिए एकसे दूसरा वस्त्र न होनेके कारण नहा नही सकती। यदि हम चाहते हैं कि हमे पेट भरनेके लिए पर्याप्त अन्न और लज्जानिवारणार्थ शरीर ढकनेके लिए पर्याप्त वस्त्र मिलें तो हिन्दुस्तानके प्रत्येक मनुष्यको स्वदेशी-धर्म स्वीकार करना होगा, प्रत्येक बहनको घरमे चरखा लाना और चलाना पडेगा; हमे मिलोके कपड़ेका उपयोग नही करना चाहिए, क्योंकि मिलोंका कपड़ा ज्यादातर हमारा सबसे ज्यादा गरीब वर्ग काममें लाता है। यदि विलायती

कपडा छोडकर हम मिलोंके कपडेका उपयोग शुरू कर देगे तो इसका अर्थ गरीबोके लिए कपड़ा ज्यादा महँगा कर देना होगा। इसलिए हमे अपने ही घरोमे बहनोके हाथों काते सूतका और बुनकरो द्वारा बुने गये कपड़े ही पहनने चाहिए। मै आपसे विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि मै जो खादी पहनता हूँ उससे अधिक पवित्र और सुन्दर कोई दूसरा कपडा नही है।

मै ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको इस गगाके[1] पवित्र स्थानमे भारतको स्वतत्र करने, मुसलमान भाइयोके घाव भरने, पजाबका न्याय प्राप्त करनेके लिए सर्वस्व बलिदान करनेकी पवित्र प्रतिज्ञा करनेका बल दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-११-१९२०

२४२. पत्र : गुरुकुलके अध्यापकों और विद्यार्थियोंको

पुना
शुक्रवार [५ नवम्बर, १९२०][2]

गुरुकुलके अध्यापक और बालक,

आपका पत्र मिला है। गुरुकुलने मेरे बालकोंको प्रेमपाशमे बद्ध कर दिये थे यह बात मे कैसे भूल सकता हू। आपको मे क्या सदेश भेजू? परन्तु यदि कुछ कहना चाहिए तो इतना हि कहना चाहता हु कि क्या आप आधुनिक समयका यज्ञ कर स्तेयके पापमे से बचते हो? आप सूत्रचक्र चलाकर हिन्दुस्तानके भूखसे दुखित लोगोका खयाल प्रतिदिन करते हो? क्या आपने अनुभव कर लिया है कि इस समय इस छोटासा चक्रका चलाना महायज्ञ है।

नेहाभिक्रमनाशोस्तीति।[3]

मोहनदास गांधीके आशीर्वाद

एस० एन० ७४१९ की फोटो-नकलसे।

१. गोदावरी; जिसे दक्षिण गगा माना जाता है।
२. गाधीजी ५ नवम्बर, १९२० को पूनामें थे।
३. देखिए भगवद्गीता, २-४०।

२४३. भाषण : डेकन जीमखाना, पूनाकी सभामे[1]

५ नवम्बर, १९२०

इस जीमखानेमे परसो गवर्नरको बुलाया गया था और उनसे पुरस्कार वितरण कराया गया था। यह हाल सुनकर मुझे शर्म आई। मै गवर्नर साहबको जानता हूँ। वे योग्य पुरुष है। पजाबके गम्भीर अत्याचारोके समय जब पजाबका हाकिम पागल हो गया था, तब इनका दिमाग ठिकाने रहा था। उन्होने बडी शान्ति रखी थी। यदि हम इस हुकूमतको रखना मजूर करे, तो यही हाकिम चाहिए। परन्तु इस समय मै उन्हे अस्वीकार करता हूँ। इसका कारण यह है कि उन्होने सरकारकी नौकरी नही छोड़ी। जिस हुकूमतमे खुदाकी नही, परन्तु शैतानकी प्रेरणा काम कर रही है, उसकी नौकरीमे इनके जैसा पुरुष रह ही कैसे सकता है? मेरे पूज्य गुरु गोखले होते और उन्हे गवर्नर बना दिया जाता, तो भी मै कहता कि जो गवर्नर ऐसी हुकूमतके अत्याचार सहन कर रहा है, उसके पास मै कभी नही जाऊँगा। अच्छेसे-अच्छा सज्जन भी इस हुकूमतमे कुछ नही कर सकता। तिलक महाराज, जिन्होने स्वराज्यके लिए सारी जिन्दगी बर्बाद कर दी, वाइसराय होनेके लायक थे। वे भी इस हुकूमतमे, जिसने [अपनी गलतियोंकी] माफी नही माँगी, तोबा नही की, वाइसराय होते, तो उन्हे भी मै सलाम करनेको तैयार न होता। मेरा झगडा अग्रेज-जातिसे नही, सल्तनतके विरुद्ध है। यह हुकूमत लम्बी-चौड़ी बाते करती है, परन्तु एकका भी पालन नही करती। काब्डन[2] तथा ब्राइटको[3] भुलाकर वह इस समय शैतानियतकी गुलामी कर रही है। जबतक यह स्थिति बनी हुई है, तबतक उसके साथ किसी तरहका सम्बन्ध हमारे लिए हराम होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-११-१९२०

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित।

२. रिचर्ड काब्डन (१८०४-१८६५); इंग्लैंडका एक महान् अर्थ-शास्त्री, जिसने १८४६ में इंग्लैंडके अनाज सम्बन्धी कानून (कार्न लॉज) रद कराये थे।

३. जॉन ब्राइट (१८११-१८८९); प्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ और वक्ता। अनाज सम्बन्धी कानून रद करवानेके आन्दोलनके एक प्रवर्तक।

२४४. भाषण : भवानीपेठ, पूनाकी सभामें[1]

५ नवम्बर, १९२०

हिन्दू-मुसलमान दोनोमें अबतक दुश्मनी चली आ रही है। एकदिल होनेकी हमने बातें ही की है। केवल राजनैतिक कामके लिए ही हमने थोडा प्रेम रखा है, परन्तु दिली प्रेम नही रखा। अब मै चाहता हूँ कि हम अपने दिलोको साफ करके हार्दिक प्रेम बढाये। परन्तु मै देखता हूँ कि यहाँ तो ब्राह्मण-अब्राह्मणोके बीच ऐसी ठनी हुई है, जिसे देखकर मुझे कँपकँपी छूटती है। मद्रासमे मै एक बार ब्राह्मणोके सामने बोल रहा था। सभा खानगी थी। वहाँ अब्राह्मणोका सवाल कुछ भिन्न प्रकारका और अत्यन्त जटिल है। वहाँ एक उदाहरण देकर मैंने कहा था कि पचमो (अछूतो) के प्रति व्यवहारमे तो ब्राह्मण नौकरशाही जितनी ही शैतानियत कर रहे है। मै ब्राह्मणोके सामने बात कर रहा था, इसलिए मैंने ब्राह्मणोका दोष बताया। पचमोको अस्पृश्य मानना निश्चय ही शैतानियत है। मैंने कहा था कि जबतक हम अपनी शैतानियत नही छोड देते, तबतक हममे दूसरोकी शैतानियत मिटानेकी योग्यता नही आ सकती। परन्तु मेरा आरोप तो ब्राह्मणोपर नही, हिन्दू जातिपर था। आजकलके ब्राह्मणोपर नही था। स्व० गोखलेजी ब्राह्मण थे, लोकमान्यजी ब्राह्मण थे और वे भी अस्पृश्योको स्पृश्य कहते थे और हमेशा कहते थे कि यदि हम उन्हे अस्पृश्य समझेंगे तो स्वराज्य नही चला सकेंगे।

मैंने वहाँ महाराष्ट्रकी तो बात ही नही की थी। मैंने मद्रासमे मद्रासके लिए ही जो उद्‌गार प्रकट किये थे, उनमे से एक शब्दको लेकर अब्राह्मण उसका दुरुपयोग कर रहे है। कुछ अब्राह्मण यह भी कहते है कि वे हिन्दू नही है। ऐसे लोगोको तो ब्राह्मण-अब्राह्मणके झगडेमें पडनेका कोई हक ही नही। परन्तु मै अब्राह्मणोसे कहता हूँ कि जैसे मुसलमान भाई हमे गालियाँ दे, तो भी हम उनपर फौजदारी मुकदमा नही करेंगे, उसी प्रकार अब्राह्मणोको भी वैसे विचार छोड़ देने चाहिए। यदि ब्राह्मणोको दबानेके लिए वे इस बुरी सल्तनतके पास जाकर उसकी सहायता माँगेंगे तो वे यह याद रखें कि उन्हें उसीके गुलाम बनना पड़ेगा। अब्राह्मणोसे मेरी अर्ज है कि वे मेरे नामसे कोई झूठा प्रचार न करें। मुझे पता नही कि सत्यशोधक मण्डल क्या है, परन्तु वह यह जाहिर कर रहा है कि मै वर्णाश्रमका खण्डन करनेवाला हूँ। मै कहता हूँ कि यह झूठी बात है। मेरे नामसे चाहे जैसी मनगढत बाते फैलाई गई है। मै कट्टर हिन्दू-वैष्णव हूँ; 'रामायण', 'महाभारत', उपनिषद्‌पर मेरी अटल श्रद्धा है। मै अपने शास्त्रोको खामी समझता हूँ, परन्तु वर्णाश्रमका कट्टर अनुयायी हूँ। इस तथ्यसे यदि कोई मेरे नामका लाभ उठाना चाहता हो तो भले ही उठाये। यदि हिन्दू ब्राह्मण-अब्राह्मण जैसे भेद करके इस शैतान सरकारकी शरण जायेंगे, तो मेरा यह कहना है कि वे ठोकर खायेंगे और

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे सकलित।

उन्हें वापस लौटना पड़ेगा। मुसलमानोंको इसका अनुभव हो गया है। राष्ट्रीय अन्याय दूर करानेके लिए सबको एक होना ही पड़ेगा।

× × ×

मैंने सुना है कि सरकार हमें पकड़ना चाहती है। यदि सरकार हमें पकड़ना चाहती हो, तो इसके लिए हम उसे दोष नहीं दे सकते। हम इस हुकूमतको उखाड़ना चाहते हैं। इस हुकूमतको हमें कैद करनेका हक है किन्तु आपको हड़ताल करनेका हक नहीं। आप ऐसा करेंगे, तो उसका अर्थ यह होगा कि आप जेल जाना नहीं चाहते। यदि आपमेंसे कोई पागल बनेगा, मकान जलायेगा, किसी अंग्रेजकी हत्या करेगा, तो आप मात खायेंगे। हम मिस्र नहीं, रूस नहीं, आयरलैंड नहीं हैं। हमारी लड़ाई शस्त्रोंकी नहीं है। असहयोग ही हमारा हथियार है। सरकार यह मानती है कि वह हमें पकड़ लेगी, तो आप सब डरकर बैठ रहेंगे। आप सरकारको दिखा सकते हैं कि वह इस तरह बनियाई हिसाब लगाती है, परन्तु हमें पकड़नेके बाद ऐसा नहीं हो सकता। मेरा असहयोगका काम आप आसानीसे उठाकर हमें मुक्त कर सकेंगे। स्वराज्यकी मुहर प्राप्त करके आप हम तीनोंको छुड़वा सकेंगे। हमें छुड़ाना आपके हाथमें होना चाहिए। मैं उनके हाथों नहीं छूटना चाहता, आपके ही हाथसे छूटना चाहता हूँ। परन्तु आपके भी खूनसे सने हुए हाथोंसे मैं छूटना नहीं चाहता। मेरे पकड़े जानेसे किसीका खून होगा, तो यह समझ लीजिये कि तत्काल मेरा भी खून गिरेगा। मैं खुदासे प्रार्थना करूँगा कि वह मुझे कोई ऐसी ताकत दे, जिससे मैं आपके कृत्योंकी ज्वालामें भस्म हो जाऊँ। मैं विश्वास रखता हूँ कि मेरी जाति मुझे धोखा नहीं देगी। परन्तु यदि धोखा देती है, तो मैं चाहूँगा कि मर जाऊँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-११-१९२०

२४५. भाषण: स्त्रियोंकी सभा, पूनामें[1]

६ नवम्बर, १९२०

मैं जानता हूँ, हिन्दू, मुसलमान, पारसी और दूसरी सभी जातियोंका धर्म स्त्रियोंके ही हाथोंमें है। जिस दिन स्त्रियाँ धर्म छोड़ देंगी, उस दिन हमारा धर्म नष्ट हो जायेगा। हमारे शास्त्रोंमें कहा है कि जहाँ राजा और स्त्रियाँ धर्म छोड़ देती हैं, वहाँ देश नष्ट हो जाता है। हमारे यहाँकी स्त्रियोंने धर्म बिलकुल नहीं छोड़ा, परन्तु राजाने तो छोड़ दिया है। हमारे यहाँ जो राज्य चल रहा है, वह रावणराज्य-जैसा है — वह राक्षसी राज्य-जैसा है।

× × ×

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित।

यह सल्तनत मर्दोको नामर्द बना रही है। हम नामर्द न होते, स्त्रियाँ वीर पुरुष पैदा करनेवाली होती, तो अत्याचार असम्भव हो जाते। मगर मुझे अफसोस है कि आजकल हमारे देशके मर्द नामर्द बन गये है। मै हिन्दुस्तानकी माताओसे अश्रुपात चाहता हूँ। जबतक वे मर्द पैदा नही करेगी, तबतक देशका उद्धार असम्भव है।...[1] परन्तु मर्द पैदा कैसे किये जा सकते है? जब स्त्रियोके दिलोमें हिम्मत आये, भक्ति आये, श्रद्धा आये, ईश्वर उनके हृदयका पति बने, वे ईश्वरसे ही डरे, मनुष्यसे डरना छोड दे, तभी हिन्दुस्तानमे मर्द पैदा होगे। . .[2] रावणराज्यको समाप्त करना हो तो रामराज्य पैदा करना चाहिए। रामराज्य प्राप्त करनेकी शक्ति तबतक कैसे आ सकती है जबतक बहने पार्वती, कौशल्या-जितना तप नही करती, द्रौपदी, दमयन्ती-जितना धर्म-पालन नही करती तबतक मर्द पैदा होना असम्भव है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-११-१९२०

२४६. भाषण: वाईमे[3]

६ नवम्बर, १९२०

मद्रासमें[4] जो बात कही थी, उसे उलटकर अब्राह्मण उसका दुरुपयोग कर रहे हैं। मै आप लोगोसे नम्रतापूर्वक कहता हूँ कि उसका इस झगडेसे कोई सम्बन्ध नही था। अब्राह्मण यह भी कहते हैं कि हम ब्राह्मणोको हटा देंगे। उन्हे वे कष्ट भी देते है, कई तरहसे तंग करते है। परन्तु हमारी हिन्दू संस्कृति ऐसी नही कि वह किसीके भी साथ ऐसा बरताव करनेकी इजाजत देती हो। इस सस्कृतिमे पला हुआ कोई भी मनुष्य यह कहे कि मै हिन्दू नही हूँ, इस बातको ही मैं नही समझ पाता। मै यह भी कल्पना नही कर सकता कि किसी अब्राह्मणका ब्राह्मणके प्रति द्वेष होगा। मै अब्राह्मण हूँ; मुझे किसी ब्राह्मणसे द्वेष नही। मै 'भगवद्गीता' का अध्येता हूँ और मेरा दावा है कि 'भगवद्-गीता' के सच्चे अभ्यासीके लिए द्वेष और घृणा छोड़ना आसान है। उसमे यह बात भी है कि किसीको जीतना हो, तो प्रेमसे जीतना चाहिए। अब्राह्मणोसे मै कहूँगा कि आप हिन्दू संस्कृतिको पहचानते हो, तो झगडे-टटे छोड दीजिये। ब्राह्मणोने अन्याय किया हो, तो उसके लिए आप न्याय माँग सकते है। आपका प्रथम कर्त्तव्य यह है कि आप यह जाँच करें कि ब्राह्मणोने आपके साथ क्या-क्या किया और ब्राह्मण नेताओसे उसका फैसला कर-नेको कहो। आजकल हिन्दू धर्ममे जो अतिशयता है, जो दोष है उन्हे सुधारनेका ब्राह्मण प्रयत्न कर रहे है। ब्राह्मणोके जीमे उस बारेमे दुख है। मै उन ब्राह्मणोके विषयमे नही बोल रहा हूँ, जो अन्धकारमे पडे हुए है और शास्त्रका उच्चारण-मात्र करते है।

१ और २. मूलमें ही यहाँ कुछ शब्द छोड़ दिये गये हैं।

३. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित। यह नवजीवनके दो अंकोमें प्रकाशित हुआ था।

४. देखिए "लॉ कालेज, मद्रासके विद्यार्थियोंसे बातचीत", २२-८-१९२०।

मैं तो उन ब्राह्मणोकी बात कर रहा हूँ जिनके विरुद्ध अब्राह्मण हमले कर रहे है, और कहता हूँ कि यदि आप ब्राह्मणोसे द्वेष करोगे, तो अपने ही पैरोपर कुल्हाड़ी मारोगे।

× × ×

मैंने तीस वर्ष सहयोग किया है, परन्तु आज असहयोग करनेको प्रवृत्त हुआ हूँ, इसका कारण क्या है? कारण यही है कि हमारे शास्त्र कहते है कि जबतक मनुष्यमे कुछ भी अच्छाई रहे तबतक उससे सहयोग किया जाये, परन्तु जब इन्सान अपनी इन्सानियत छोड देनेका हठ पकड ले, तब उसे त्याग देना मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य हो जाता है। तुलसीदास, तुकाराम, रामदास सभी यह सिखा गये है कि देव और दानव, राम और रावणमे सहयोग नही रह सकता। राम और लक्ष्मण तो बालक थे, फिर भी दस मस्तकवाले रावणसे जूझे। हमारी सरकारने मुसलमानोके दिलोमे पैना खजर भोका है और इस्लामका अपमान किया है। पजाबमे स्त्री-पुरुषो और विद्यार्थियोपर अत्याचार हुए है। उनकी पुनरावृत्तिको रोकनेका एकमात्र मार्ग सरकारके विरुद्ध असहयोग करना है।

'गीता'मे जिस अभेद-बुद्धिकी बात कही गई है, उसका क्या अर्थ है? जबतक आपको ऐसा महसूस नही होता कि पजाबके पुरुषोपर जो मार पड़ी, उन्हे जो पेटके बल चलाया गया और उनसे नाक रगड़वाई गई, विद्यार्थियोपर जो अत्याचार हुए, वे सब आप पर ही हुए है, तबतक आपको अभेद-बुद्धि प्राप्त नही हुई। श्री समर्थ रामदास स्वामीके लिए कहा जाता है कि जब उन्होने किसीके कोडा लगते देखा तब उन्हें इतना दु.ख हुआ था कि उनकी अपनी पीठपर कोडेके निशान दिखाई दिये। रामदास स्वामीने यह अभेद-दृष्टि सिद्ध कर ली थी इसी कारण वे हमारे पूज्य बन गये है। यदि हमे ऐसा न लगे कि पजाबमें और मुसलमानोके साथ जो बेइन्साफी हुई है, वह हमारे साथ ही हुई है, तो हम इस्लामकी रक्षा कैसे कर सकेंगे? हिन्दू धर्मकी रक्षा कैसे कर सकेंगे?

भूल तो सभी करते है, परन्तु भूल हुई जानकर सभी माफी माँगते है, तोबा करते है। परन्तु इस सल्तनतने तो घमण्डमे भूल करके तोबा करनेसे इनकार कर दिया और हम सबसे अत्याचारोको भूल जानेको कहा। यह राक्षसी वार है। तुलसीदासजी कह गये है कि असतोका त्याग किया जाये। मैं उसी उपदेशके आधारपर इस हुकूमत-का त्याग करनेकी सलाह दे रहा हूँ। इस हुकूमतमे रहकर हम उसकी कृपा या सहायता स्वीकार करना बन्द कर दें, तो काफी है। सीताजी रावणके राज्यमे रावणके यहाँसे आनेवाली मिठाइयाँ स्वीकार नही कर सकती थी, राक्षसियोका दासत्व मजूर नही कर सकती थी, इसलिए उन्होने भारी तपस्या करके अपने सतीत्वका पालन किया। हमे अपने शीलकी रक्षा करनी हो, तो असहयोगके सिवा और कोई उपाय नही। विद्यार्थी पाठशालाएँ छोडनेसे इसी कारण झिझकते है कि आज पाठशाला छोड देंगे, तो कल हमारी शिक्षाका क्या होगा? मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जिस श्रद्धासे जानकीजी रावणका आहार तजती थी — रामचन्द्रजीकी ओरसे उन्हे आहार

तो पहुँचता ही था — उसी श्रद्धासे आप इस शैतानी सल्तनतकी शिक्षा छोड़ देंगे, तो आपके लिए रामचन्द्रजी और श्रीकृष्ण भगवान् शिक्षाका प्रवन्ध करेंगे।

मुझसे विद्यार्थी कहेंगे कि आपके रामचन्द्रजी कहाँ है? अंग्रेजी ढंगकी शिक्षा पाकर, उसका इतिहास पढ़कर हमारे मनमे ऐसे प्रश्न उठने लगते है। हमारे विद्यार्थियोका पतन होता जा रहा है, पश्चिमकी विद्यासे हम पश्चिमकी आदतें सीखते है और 'शर्म-शर्म' के नारे लगाना सीखते है। श्रीमती बेसेंटको आप न चाहते हो, तो भले ही आप उनकी पाठशालाओमे न जाये। परन्तु उनकी सभाओमें[1] जाकर झगड़ा-फसाद करना तो न हिन्दू-संस्कृतिमे लिखा है और न इस्लामी शरीअतमें कहा गया है। हम तालियाँ बजाकर अपना समर्थन प्रकट नही कर सकते; शर्म-शर्मकी आवाजें लगाकर हम अपना विरोध प्रदर्शित नही कर सकते; [यह तो] केवल व्यवहारसे ही बता सकते है। आपको असहयोग करना हो, तो यह समझना चाहिए कि आपके शास्त्र क्या कहते है। यह धार्मिक युद्ध है। हम अधर्मको धर्मसे हरा सकते है और धर्माचरणसे अधर्माचरणको रोक सकते है।

× × ×

आप[2] केवल भारतके सेवक बन जायेंगे, तो आज जितनी सेवा कर रहे है उससे चौगुनी कर सकेंगे। जैसे हमारे सन्यासी आहार-मात्र लेकर सन्तोष मानते थे, वैसे ही आप भी देशके लिए एक वर्षका संन्यास ले लीजिये और स्वराज्य प्राप्त कीजिये।

× × ×

हिन्दू धर्मंमे सर्वोत्तम सस्कृति है, उसमे कहा गया है कि सच्चा क्षत्रिय तो वह है, जो मारना नही परन्तु मरना जानता है। 'गीता' में मुझे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द 'अपलायनम्' मिला है। जो तलवारसे काम लेता है, उसका किसी समय पीछे हटना सम्भव है। वह ईश्वरपर श्रद्धा न कर बाहुओपर विश्वास रखता है, इसलिए 'अपलायन' धर्मका पालन नही करता। प्रह्लाद आदि अपलायन धर्मका पालन करके शुद्ध क्षत्रिय हो गये, मै तो यही कहूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-११-१९२० और २१-११-१९२०

१. देखिए "कुछ दिक्कतें", ७-११-१९२०।

२. ये शब्द वकीलोंको सम्बोधित करके कहे गये थे।

२४७. १६ नवम्बरको क्या करें?

१६ नवम्बर एक तरहसे जनताके लिए परीक्षाका दिन है क्योंकि उस दिन पूरे बम्बई अहातेमें विधान परिषदके लिए सदस्य चुने जायेंगे। उस दिन मतदाता क्या करेंगे, उनका कर्त्तव्य क्या है?

१. मैं तो यह आशा करता हूँ कि कोई मतदाता अपना मत देने चुनाव-केन्द्र-पर नहीं जायेगा।

२ सभी मतदाता अपने घर बैठे रहेंगे।

३. यदि चुनाव-केन्द्रसे कहीं दूर मतदाताओंकी कोई सभा की जाये तो मत-दाता उसमें शरीक होंगे और वहाँ अपना यह मत प्रकट करेंगे कि यह सभा किसीको भी अपने प्रतिनिधिके रूपमें नहीं भेजना चाहती।

४. मतदाताओंके हस्ताक्षर लेने और उनसे मत न देनेको कहनेका काम १५की रातसे २४ घंटेके लिए बन्द कर दिया जायेगा।

५ स्वयंसेवक भी १६वी तारीखसे मतदाताओंको [मत न देनेके लिए] सम-झानेका काम नहीं करेंगे।

६ संक्षेपमें इसका यह अर्थ हुआ कि उस दिन जो लोग मत देना चाहते हैं उनके साथ कोई रोकटोक नहीं होनी चाहिए।

यदि मतदाताओंको हम १५वीं तारीखतक अपनी बात न समझा सके हों तो १६ वीं को फिर क्या समझाना? निश्चय ही हम किसीको भी मत देनेसे बलात् रोकना नहीं चाहते। इसलिए १६वींको कोई आग्रह नहीं किया जायेगा।

हमारा आन्दोलन तो जनमतको प्रशिक्षित करनेका है। उसमें सफलता होनेपर ही स्वराज्य सहज और सुलभ होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–११–१९२०

२४८. यदि मैं गिरफ्तार हो जाऊँ?

७ नवम्बर, १९२०

मैं बराबर यह सोचता रहा हूँ कि यदि मैं गिरफ्तार हो गया तो लोग क्या करेंगे। मेरे सहयोगी भी मुझसे यह प्रश्न करते रहे हैं। यदि लोगोंने प्रेमके पागलपनमें गलत रास्ता पकड़ लिया तो भारतकी क्या दशा होगी? ऐसेमें मेरी अपनी क्या दशा होगी? सरकार खूनकी नदियाँ बहा दे, मुझे इसका भय नहीं होगा; परन्तु यदि लोग मेरे लिए या मेरे नामपर सरकारको गाली भी दें, तो उससे मुझे बहुत आघात पहुँ-चेगा। यदि जनता मेरी गिरफ्तारीपर अपना सन्तुलन खो बैठी तो वह मेरे लिए

शर्मकी बात होगी। राष्ट्र केवल मुझपर निर्भर रहकर प्रगति नही कर सकता। प्रगति केवल तभी हो सकती है जब लोग मेरे सुझाये हुए रास्तेको समझे और अपनायें। इसी सबबसे मैं चाहता हूँ कि लोग पूरा आत्मसंयम रखे और मेरी गिरफ्तारीके दिनको खुशी मनानेका दिन समझे। मैं तो यह चाहता हूँ कि जो कमजोरियाँ आज मौजूद है वे भी उस समय न रहें।

मुझे गिरफ्तार करनेमें सरकारका क्या उद्देश्य हो सकता है? सरकार मेरी दुश्मन नही है। क्योकि मेरे मनमें उसके प्रति लेशमात्र शत्रुता नही है। परन्तु उनका विश्वास है कि इस सारे आन्दोलनका कर्त्ता-धर्त्ता मैं ही हूँ; यदि मुझे उनके बीचसे हटा दिया जाये तो प्रजा और शासक दोनो चैनसे बैठ सकेगे। प्रजा मेरे इशारेपर नाचती है, ऐसी केवल सरकारकी ही नही, हमारे कुछ नेताओकी भी मान्यता है। तब फिर सरकार लोगोको कैसे जाँचे? लोग सचमुच मेरी सलाह समझते है या केवल मेरे भाषणोकी चकाचौंधमें आ गये है, इसका ठीक निश्चय वह किस तरह करे? उसके पास इसका एक यही रास्ता बच रहता है कि वह मुझे गिरफ्तार कर ले अथवा जिन कारणोसे मैंने इस आन्दोलनकी सलाह दी है, उन्हें दूर करे। परन्तु सरकार सत्ताके मदमें झूम रही है, वह अपना दोष नही देखेगी और यदि देखेगी भी तो उसे स्वीकार नही करेगी। तब उसके पास एकमात्र यही उपाय बच रहता है कि वह जनताकी शक्तिको मापे। मुझे गिरफ्तार करके वह उसकी शक्ति माप सकती है। यदि जनता इस प्रकार आतंकित हो गई और झुक गई तब तो कहा जा सकेगा कि सरकारने पंजाब और खिलाफतके प्रति जो अन्याय किया, जनता उसके योग्य ही थी। दूसरी ओर यदि जनताने हिंसाका सहारा लिया तो वह सरकारके हाथोमे खेलना ही होगा। तब उसके हवाई जहाज जनतापर बम बरसायेंगे। उसके डायर उनपर गोलियाँ चलायेंगे और उसके स्मिथ हमारी स्त्रियोंके बुर्के उलटायेंगे। अन्य अधिकारी ऐसे भी होंगे जो लोगोसे जमीनपर नाक रगड़वायेंगे, उनको पेटके बल रेंगनेपर मजबूर करेंगे, उन्हे कोड़े मारकर यातना पहुँचायेंगे। जनताका डरके मारे झुक जाना या क्रोधमें आकर हिंसाका सहारा लेना एक ही जैसी बुरी चीजें साबित होगी। वे हमे स्वराज्यकी तरफ नही ले जायेंगी। अन्य देशोंमें केवल शस्त्र-बलसे सरकार पलट दी गई है, परन्तु मैंने बहुधा यह स्पष्ट किया है कि भारत उस बलके प्रयोगसे स्वराज्य नही पा सकता। तो फिर प्रश्न है कि मेरी गिरफ्तारीके बाद जनताको क्या करना चाहिए? जवाब आसान है। जनताको

१. शान्त रहना चाहिए,
२. हड़ताले नहीं करनी चाहिए,
३. सभाएँ भी नही करनी चाहिए

बल्कि

४. जनताको पूर्णतः जागरूक रहना चाहिए। मैं यह आशा अवश्य करूँगा कि
५. सभी सरकारी स्कूल खाली कर दिये जायेंगे और इस तरह बन्द होनेपर मजबूर कर दिये जायेंगे,
६. काफी तादादमे वकील वकालत छोड़ देंगे,

७. अदालतोंमें चल रहे मुकदमोंका आपसी समझौतेसे निपटारा किया जायेगा,
८. अनेक राष्ट्रीय विद्यालय और महाविद्यालय खोले जायेंगे,
९. लाखों स्त्री-पुरुष केवल हाथके कते-बुने कपड़ेके उपयोगकी दृष्टिसे सभी विदेशी वस्त्र-मात्र त्याग देंगे और जमा विदेशी कपड़ेको बेच देंगे या जला देंगे,
१०. फौज या किसी दूसरी सरकारी सेवामें कोई भरती नही होगा,
११. जो लोग अन्य प्रकारसे अपनी जीविका कमा सकते हो वे सैनिक या असैनिक सरकारी नौकरी त्याग दे,
१२ आवश्यकतानुसार राष्ट्रीय कोषोमे चन्दा दें,
१३. लोग खिताव वापस लौटा दें,
१४. उम्मीदवार चुनावोसे अलग हट जाये, या यदि चुन लिये गये हों तो अपनी सीटोसे त्यागपत्र दे दे,
१५. जिन मतदाताओंने अभीतक अपने मनमें फैसला न किया हो, वे तय कर लें कि कौंसिलोंमें कोई प्रतिनिधि भेजना पाप है।
१६. यदि जनता निश्चयपूर्वक इन बातोपर अमल करे तो उसे सालभर भी स्वराज्यका इन्तजार नही करना पड़ेगा।

यदि वह इतनी शक्तिका परिचय दे सके तो हमे स्वराज्य तो मिला हुआ ही है। और ऐसा स्वराज्य मिल जानेपर यदि मैं राष्ट्रके निर्देशपर मुक्त किया जाऊँ तो वह मेरे लिए खुशीकी बात होगी। आज तो मेरी आजादी मेरे लिए कैद-जैसी है।

यदि जनता मेरी रिहाईके लिए हिंसाका प्रयोग करती है, और उसके बाद स्वराज्य हासिल करनेमें मेरी मदद चाहती है तो इससे जनताकी अक्षमता ही सिद्ध होगी। राष्ट्रको स्वराज्य न मैं दिला सकता हूँ और न कोई अन्य व्यक्ति। स्वराज्य तभी प्राप्त हो सकेगा, जब राष्ट्र स्वय अपनी योग्यता सिद्ध कर देगा।

अन्तमें मैं कहना चाहता हूँ कि सरकारको दोष देना व्यर्थ है। हमें अपने लायक सरकार मिला करती है। यदि हम सुधरते है तो सरकारको भी सुधरना ही होगा और जब हम सुधरेंगे स्वराज्य भी हम केवल तभी पा सकेंगे। असहयोग राष्ट्रका सुधरनेके लिए किया गया निश्चय है। क्या राष्ट्र मेरी गिरफ्तारीके बाद अपना यह निश्चय त्याग देगा और सरकारको सहयोग देना शुरू कर देगा? यदि जनता पागल हो जाती है, हिंसा अपनाती है और उसके परिणामस्वरूप वह अपने पेटके बल रेंगती है, जमीनपर नाक रगड़ती है, ब्रिटिश ध्वजको सलामी देती है, उसे सलामी देनेके लिए १८–१८ मील चलकर जाती है, तो फिर यह सहयोग नही तो क्या है? रेंगना आदि स्वीकार करनेसे बेहतर तो मर जाना है। किसी भी दृष्टिसे, भली-भाँति सोचिए, जो रास्ता मैंने सुझाया है वही अपनाना जनताके लिए उचित है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–११–१९२०

२४९. कुछ दिक्कतें

स्वराज्यका मार्ग जितना सीधा है उतना ही विकट है। इसमें टीले और खाइयाँ हैं; हमे इन टीलोंको तोडना होगा, खाइयोंको पाटना होगा। यदि हम ऐसा न कर सके तो टीले हमारी राह रोकेंगे। अगर खाइयोंको न पाट सके तो भी हमारी वही गति होगी।

अहमदाबादमें जो घटनाएँ घटी हैं[1] उनमें से कितनी ही दु:खद है। काली माताकी बलि चढाये जानेवाले एक बकरेको बचाकर बहुतोंने सुख और सन्तोषकी साँस ली। यदि इस बकरेको विधिपूर्वक बचाया जाता तो मुझे बहुत प्रसन्नता होती, लेकिन बकरेको बचाने जाकर मनुष्योको दुःखी किया गया, उनपर जुल्म ढाये गये और इस तरह बकरेकी जान बचाई गई। यह हिन्दू धर्म नही है। इस धर्ममे अहिंसाके जिस स्वरूपकी शिक्षा दी गई है उसमे एक बकरेको बचाकर व्यक्तिकी हत्या करना अथवा उसे डराना-धमकाना नही आता। बहुतेरे सिंह, बाघ, भेडिये आदि असख्य बकरोंको खा जाते हैं, उन्हें हम नही रोकते। सर्प-दशसे बहुत-से जानवर और व्यक्ति मारे जाते है, उन्हे हिन्दू मारते नही अपितु उनकी हत्या करना पाप समझते हैं। तो फिर हम बकरेको बचानेमे जोर-जबरदस्ती कैसे कर सकते है?

इतना ही नही, हिन्दू-हिन्दूके बीचके इस धर्म-कार्यमे हिन्दुओने एक मुसलमान मौलवीकी और उसके जरिये मजदूरोकी मदद ली। यह एक भारी भूल हुई, ऐसी मेरी मान्यता है। ऐसे कार्योमे यदि हम मुसलमानकी मदद लेंगे तो यह एक गुलामीमे से निकल दूसरी गुलामीमें पड़नेके समान होगा। इस मौलवीको बीचमें आना ही नही चाहिए था। उसे समझना चाहिए था कि हिन्दुओके धर्म-सम्बन्धी झगडोमे हस्तक्षेप करना उसका काम नही है। सुननेमे आया है कि इस मौलवीकी बातें भी कौमको नुकसान पहुँचानेवाली थी। इस अनुभवसे दो बाते प्रकट होती हैं। एक तो यह कि हमें किसीसे भी जबरदस्ती कोई काम नही करवाना चाहिए और दूसरी यह कि जिस व्यक्तिकी नियुक्ति खिलाफत समिति अथवा स्वराज्य-सभा—जिनपर कि हमे पूर्ण विश्वास है—की ओरसे न की गई हो, हमे उसके भाषणको कदापि नही सुनना चाहिए, उसकी सभामें नही जाना चाहिए। मेरी समझमे हम जिसे अपना विरोधी मानते हो, उसकी सभामे उपस्थित होना, उसकी दलीले सुननेके विचारसे जाना, एक अलग बात है। जबतक हमारे विचार निश्चित नही हो जाते तबतक यह सोचकर कि 'कोई एक मौलवी आये है, सुने तो वे क्या कहते हैं', उत्सुकतावश हर किसीका भाषण सुनने नही जाना चाहिए।

सच बात तो यह है कि आजकल खिलाफत अथवा स्वराज्य-सभाके नामसे कुछ पाखण्डी भी भाषण देकर अपना पोषण कर रहे हैं। हमें उनके व्याख्यान सुनने कतई नही जाना चाहिए।

१. देखिए "भाषण: अहमदाबादमें", १–११–१९२०।

मैंने सुना है कि एक हिन्दी भाषी महिला मेरी लड़की होनेका दावा करके स्थान-स्थानपर लोगोंको धोखा दे रही है। पहले यह खबर द्वारकासे मिली थी, अब सिन्धसे मिली है। एक व्यक्तिने मेरे नामसे चन्दा इकट्ठा किया था। उसे तो जेल ही हो गई। मेरी कोई लड़की नही, लेकिन अगर हो भी तो लोगोको मेरी ऐसी सलाह है कि वे मेरे किसी सम्बन्धीकी, सिर्फ इसी कारणसे कि वह मुझसे सम्बन्धित है, कोई सहायता न करे और न उसका विश्वास करे। यह समय सगे-सम्बन्धियोको पहचाननेका नही, व्यक्तिको पहचाननेका है। जिससे आप परिचित नही उसका सम्बन्धके आधारपर विश्वास करनेकी कोई जरूरत नही है।

मुझे आशा है कि थोड़े समयके भीतर सब प्रसिद्ध संस्थाएँ अपने निश्चित वक्ताओंके नामोंको प्रकाशित कर देंगी जिससे कि हम हमेशा वक्ताकी पहचान कर सकेंगे। जैसे-जैसे असहकार आन्दोलन रंग पकड़ता जा रहा है वैसे-वैसे तरह-तरहके पाखण्डी अथवा अज्ञानी वक्ताओं और सलाहकारोसे हमे बचना चाहिए। ऐसा सम्भव है कि थोड़ी-सी भूलके कारण हमें भारी दिक्कतोका सामना करना पड़े।

हमे अनेक कार्य करने है, पुरानेको नष्ट करके नवनिर्माण करना है। नये स्कूल खोलने है, पंचोंको नियुक्त करना है और पैसा इकट्ठा करना है। यह सब हम तबतक नही कर सकते जबतक व्यक्तिको पहचानना नही सीख लेते। एक ओर हमे विश्वास करना होगा तथा दूसरी ओर हमें सावधान रहना होगा। हमारे रास्तेमें सबसे बड़ी बाधा यही है कि हम ककरोंकी तरह रहते हैं; एक होकर काम नही कर सकते। हममें दूसरोको अपनी ओर आकर्षित करने अथवा दूसरोसे आकर्षित होनेकी शक्ति नही है। जहाँ हम आकर्षित होते है वहाँ अन्ध श्रद्धाके वशीभूत होकर होते है, श्रद्धाकी जरूरत तो है लेकिन उसके साथ विवेक-ज्ञान भी अवश्य होना चाहिए। चाहे जिस व्यक्तिके भुलावेमे आकर कार्य करना — यह पहली दिक्कत है।

दूसरी दिक्कत यह है कि हम क्रोधमें आकर सारा काम बिगाड न दें, ऐसा भय बना रहता है। असहकारवादी और सहकारवादी दो पक्ष है। अकलेश्वरमें एक सहकारवादीने कटु वचन बोले, उसके उत्तरमें असहकारवादीने भी बुरे शब्दोका इस्तेमाल किया। यदि वे इससे आगे बढते तो उसका कुपरिणाम होता। यह तो हमारा आपसी मतभेद अथवा झगडा था। लेकिन इस समय सहकारवादको सरकार पसन्द करती है, इस कारण वह सरकारी पक्ष भी बन गया है। सरकारी पक्षमें से कोई व्यक्ति आकर झगड़ा करनेके इरादेसे ही कुछ अपशब्द बोले, हम उसका जवाब दें, मार-पीट हो, खून भी हो तो इससे किसका नुकसान होगा। सरकारको खून-खराबी करनेका अवसर मिले तो वह उससे तनिक भी न चूके, ऐसी मेरी मान्यता है। स्वराज्यके सम्बन्धमें हम चाहे कैसे भी स्वतन्त्र विचारोको अभिव्यक्त क्यो न करे, इससे सरकार हिंसा नही कर सकती, हिंसा तो वह तभी करेगी जब हम सरकारके आदमियोके भड़कानेपर खून करेंगे। स्वामी श्रद्धानन्दजी मानते है कि दिल्लीमें अप्रैल मासमें हमसे अगर कोई भूल हुई है तो उसका मुख्य कारण सरकारी आदमियोका जनताको भड़काना था। इसलिए हमारे लिए सहल मार्ग यही है कि पर्याप्त कारण

होनेपर भी हम अपने गुस्सेको रोकें। गालीका जवाब गालीसे न दें, मारपीटके बदले मारपीट न करें, इसमें भी असहकार करके हम अनेक विघ्नोंसे बच सकते हैं। जहाँ हमसे सहन न हो सके वहाँ हमें जाना ही नहीं चाहिए। मैंने सुना है कि श्रीमती बेसेंट का इलाहाबादमें अपमान किया गया, बम्बईमें भी यही बात हुई। यदि श्रीमती बेसेंटके विचार हमें रुचिकर न लगें, उनपर हमें क्रोध भी आये तो हम उनकी सभामें शामिल न हों, यह सभ्यता है। सभामें जाकर 'शर्म-शर्म' अथवा दूसरी तरहकी तिरस्कार-सूचक आवाजें कसना असभ्यता है। असभ्य जनतासे शुद्ध स्वराज्यकी उपलब्धि तो नहीं हो सकती। असभ्यता और अहिंसा अर्थात् निःशस्त्रता ये दो विरोधी चीजें हैं। असहकारकी सेनामें असत्यको, असभ्यताको, उद्धतताको बिलकुल अवकाश नहीं है। इस बातको यदि हम अच्छी तरह ध्यानमें न रखेंगे तो जीती हुई बाजी हार बैठेंगे। असहकारकी लड़ाई अपने क्रोधको अभिव्यक्त करनेकी नहीं बल्कि अपने क्रोधको पीकर उससे प्रचंड शक्ति पैदा करनेकी है, जिसके सामने कोई टिक ही न सके।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–११–१९२०

२५०. जनतासे अनुरोध

असहयोग आन्दोलन अपने पूरे जोरपर है। इसपर जनताकी प्रतिक्रिया भी कम-ज्यादा ठीक ही हो रही है। विद्यार्थी पाठशालाएँ खाली करते जा रहे हैं। बहुत-से लोगोंने विधान परिषदोंमें जानेका इरादा छोड़ दिया है। किसी-किसी वकीलने वकालत छोड़ दी है। स्वदेशीका प्रचार जारी है।

लेकिन आन्दोलनको लोगोंके उत्साहकी तरह पैसोंकी भी जरूरत है। पैसा इस समय मुख्य रूपसे शिक्षा-प्रचारके लिए चाहिए। पैसेके बिना शिक्षाका प्रवन्ध मुझे असम्भव दीख पड़ता है। लेकिन यदि हम पैसा इकट्ठा कर सकें तो विद्यार्थियोंके शिक्षणके रूपमें हमें उसका पर्याप्त लाभ मिलेगा।

इसके बाद भी हमें अन्य अनेक कार्य करने हैं जिनके लिए पैसेकी जरूरत है।

अबतक के अनुमानके अनुसार हमें पाँच लाख रुपयोंकी जरूरत है। यदि हमारे पास खर्च करनेके लिए इतनी रकम हो तो हम शिक्षाका कार्य वहुत सुचारु ढंगसे चला सकेंगे। अपने आपको राष्ट्रीय स्कूलोंमें परिवर्तित करनेवाले स्कूलोंको हम उनकी आवश्यकतानुसार मदद कर सकेंगे और विद्यापीठके कार्यको अच्छी तरह निभा सकेंगे। विद्यापीठको सफल वनानेके लिए हमें ठीक-ठीक खर्च करना होगा। खर्चके हिसाव-कितावको समय-समयपर प्रकाशित किया जायेगा। शिक्षाके क्षेत्रमें, पहले साल तीन-चार लाख रुपया खर्च होनेका अनुमान है, और शेष एक लाख रुपया अन्य विविध बातोंपर खर्च किया जायेगा।

मुझे उम्मीद है कि जो लोग किसी और तरहसे इस आन्दोलनमें भाग नहीं ले सकते वे भी कमसे-कम इतना तो करेंगे ही कि स्वयं कुछ दान दें और कुछ अन्य लोगोंसे दिलायें।

मुझे आशा है कि जो असहयोगकी सारी योजनासे सहमत नहीं हैं वे भी राष्ट्रीय शिक्षणको तो अवश्य प्रोत्साहन देंगे।

ये दिवालीके दिन हैं। दिवाली राक्षसी राज्यका अन्त और रामराज्यकी स्थापनाकी सूचक है। मेरी नम्र राय है कि जबतक हमारा देश गुलाम है तबतक हम आनन्दके साथ दिवाली नहीं मना सकते। दिवाली मनानेका सबसे अच्छा ढंग यह है कि हम ये दिन ऐसे कार्योंमें व्यतीत करें जिनसे मुसलमान भाइयोंका आत्मसम्मान बना रहे, पंजाबके घावको भरा जा सके और जल्दीसे-जल्दी स्वराज्य प्राप्त कर सकें।

यदि आप लोग मेरी सलाह मानें तो दिवालीपर खर्च होनेवाले पैसोंमें से कुछ रकम बचा लें। इससे भी आन्दोलनको बहुत मदद मिलेगी। मुझे आशा है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष इस पुण्य कार्यमें भाग लेगा। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि सिर्फ अमीर लोगोंको ही दान करना है। मैं यह चाहता हूँ कि अमीर और गरीब दोनों ही अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान करें। इस कामके लिए यदि हमें ईमानदार कार्यकर्त्ता मिल जायें तो हमें जितनी रकमकी आवश्यकता है उतनी रकम अवश्य इकट्ठी कर सकेंगे।

मुझे उम्मीद है कि कोई भी व्यक्ति ऐसे मनुष्यको पैसा नहीं देगा जिसे वह स्वयं न पहचानता हो।

सारी रकम स्वराज्य सभाकी बम्बई शाखामें जमा होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-११-१९२०

२५१. भाषण: सताराकी सभामें[1]

७ नवम्बर, १९२०

आप ब्राह्मणोंको पूज्य न मानते हों तो भी उनकी तपस्या, ज्ञान, यज्ञ और पवित्रताके कारण उनकी पूजा करनी पड़ेगी। जिन ब्राह्मणोंने उपनिषद् वगैरह ग्रन्थ रचे हैं, उनकी भूलें बताते हुए मैं डरता जरूर हूँ, फिर भी मैंने यह कहा है और कहता हूँ कि उन ब्राह्मणोंने अस्पृश्यताकी अनुमति देकर कुछ-न-कुछ शैतानका ही काम किया है। ब्राह्मणोंके मकान जलाकर, उन्हें गालियाँ देकर आप अपने धर्मका बचाव नहीं कर सकेंगे। आप हिन्दू होनेका दावा करते हैं किन्तु आप हिन्दू धर्मके विरुद्ध आचरण कर रहे हैं। आप हिन्दू न हों तो मैं आपसे कहता हूँ कि आपका एक और धर्म हो गया। आपको अपना

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित।

अहिन्दूपन मुबारक हो। जैसे मैं जैनियोसे कहूँगा कि आप अहिन्दू हों तो भले ही हों, परन्तु आप भारतको अपना देश मानते हो, तो आपका और एक धर्म हो जाता है — स्वराज्य-धर्म। यह स्वराज्य-धर्म आपको सिखाता है कि आप स्वराज्य चाहते हो, तो हिन्दुओंके साथ मेल कीजिये। तिलक, गोखले, रानडे[1], आगरकर[2] कौन थे? ब्राह्मण होनेपर भी उन्होने अब्राह्मणोके लिए बडी-बडी तपस्याएँ की। तिलक महाराजकी मेरे-जैसे अब्राह्मणपर बहुत अधिक प्रीति थी। जिस जातिमे रामदास, तुलसीदास, रानडे, तिलक आदि जन्मे है उससे घृणा करके आपका उद्धार होना असम्भव है। आप अंग्रेजी हुकूमतसे सहायता माँगकर और भी अधिक गहरी गुलामीमे डूबेगे। आप शौकत अलीसे पूछ लीजिये कि उन्होने सरकारसे प्रेम करके क्या पाया?

आप ब्राह्मणोसे असहयोग करनेकी बात करते है, परन्तु असहयोगका पवित्र नाम लेनेके लिए पवित्रता चाहिए। मैं अंग्रेजी राज्यको शैतानी राज्य कहता हूँ। परन्तु ऐसा मैं इसलिए कह सकता हूँ क्यो कि मुझे किसी अग्रेजसे द्वेष नही। लॉर्ड चैम्सफोर्ड, जिनके साथ आज मैं किसी भी प्रकारका सहयोग नही करूँगा और उनका पानीतक नही लूँगा, यदि बीमार पड़ जाये, तो जैसे मैं आपकी सेवा करता हूँ, वैसे ही उनकी भी अवश्य करूँगा। आप ब्राह्मणोंसे न्याय चाहते हो, तो आप उनके-जैसी तपस्या कीजिये। आप तलवार उठायेंगे, तो आप ही मरेंगे। मुसलमानोसे भी मैं यही कह रहा हूँ। इस्लामको वे तलवारसे स्वतन्त्र नही कर सकेगे। मैं यह मानता हूँ कि तलवार उन्हे ज्यादा खतरेमे डाल देगी। अब्राह्मणोंसे मैं कहता हूँ कि आप एक बार हिन्दुस्तानको आजाद कर लीजिये और फिर ब्राह्मणोंका गला काटना हो, तो काट लेना। हिन्दुओं-से भी यही कहता हूँ कि पहले स्वराज्य प्राप्त कर लो फिर मुसलमानोसे लडना हो तो लड़ लेना। इसी प्रकार मुसलमानोसे कहता हूँ। आज तो यह सल्तनत तुम्हारी तीस करोड़ आबादीका अपमान कर रही है, उनपर अत्याचार कर रही है, उसे रोकनेके लिए हुकूमतसे असहयोग और आपसमे सहयोगके सिवा और कोई उपाय नही।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–११–१९२०

१. महादेव गोविन्द रानडे (१८४२–१९०१); समाज-सुधारक और लेखक; कांग्रेसके संस्थापकोंमें से एक।

२. गोपाल गणेश आगरकर (१८५६–१८९५); महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक और बुद्धि-वादी विचारक।

२५२. तार: मुहम्मद अलीको

[८ नवम्बर, १९२०][1]

[मुहम्मद अली
अलीगढ]

शौकत अलीने पूरी जानकारी दी। हारवर्डके मेधावी स्नातक एण्ड्रयूज और हिन्दू विश्वविद्यालयके कृपलानीको[2] भेजनेका प्रबन्ध कर रहा हूँ। जरूरत हो तो और भी लोग भेजे जा सकते हैं। आपको हार्दिक बधाई। आशा है कि विद्यार्थी दृढ रहेंगे और नाजुक समयमें बराबर शिष्ट और शान्त व्यवहार कायम रखा जायेगा। मैं विद्यार्थियोको अपनी उस इच्छाकी याद दिलाना चाहूँगा जो मैंने पहली बार उनसे अलीगढ़मे मिलनेपर व्यक्त की थी। शील, प्रतिष्ठा, इस्लाम और भारतकी खातिर उन्हे सादा रहन-सहन और ऊँचे विचार जीवनके सिद्धान्त बना लेने चाहिए। हमारे देशको सच्चे फकीरो और नम्रताकी कभी इतनी आवश्यकता नही रही जितनी आज है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ९-११-१९२०

१. तार ८ नवम्बरको प्राप्त हुआ था।

२. जीवतराम बी० कृपलानी (१८८८-); शिक्षाविद् और राजनीतिज्ञ; १९४६में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष; संसद सदस्य ।

२५३. पत्र : मणिबेन पटेलको

नेपाणी
[८ नवम्बर, १९२०][1]

चि० मणि,[2]

तुम्हारे काम और देशके प्रति तुम्हारे प्रेम-भावको देखकर मैं तो चकित रह गया हूँ। दिवालीके दिनोंमें खूब चन्दा जमा करना।

मुझे विश्वास है कि तुम अपने बापूकी सेवा तो करती ही होगी। मैं तुम्हारे जवाबकी इस समय तो कोई उम्मीद नहीं करता।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

अहमदाबादकी बहनोंका नाम लेकर मैंने पूनाकी बहनोंसे भिक्षा माँगी। उन्होंने तो मुझपर सोनेकी चूड़ियों, अँगूठियों, नथनियों और गलेकी जंजीरोंकी खूब बौछार की, और वे अहमदाबादकी बहनोंसे आगे निकल गईं।

मोहनदास

श्री मणिबेन
वल्लभभाई बैरिस्टरकी मार्फत,
भद्र, अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो : मणिबेन पटेलने

१. गांधीजी इस तारीखको नेपाणीमें थे, देखिए अगला शीर्षक। पत्रके अन्तिम अनुच्छेदमें स्पष्टतः पूनामें महिलाओंकी उस सभाका जिक्र किया गया है जिसमें गांधीजीने ६ नवम्बरको भाषण दिया था।

२. सरदार वल्लभभाई पटेलकी सुपुत्री।

२५४. भाषण: नेपाणीकी सार्वजनिक सभामें[1]

८ नवम्बर, १९२०

मारुतिरावने जो कहा उसे मैंने ध्यानपूर्वक सुना और यह कहना चाहता हूँ कि उन्होंने जो-कुछ कहा है वह अर्ध सत्य है। अर्ध सत्य हमेशा भयकर होता है। मारुतिराव जान-बूझकर अर्ध सत्य कह रहे हैं, सो मैं नही कहता। अनेक बार हम विना समझे अर्ध सत्य कहते हैं और उसीके अनुरूप आचरण करते हैं। इसमे सन्देह नही कि जगत्‌मे ऐसे ब्राह्मण भी पडे हुए हैं जो दूसरोको अपना चरणामृत पिलाते हैं, हिन्दुओके धार्मिक ग्रन्थोंमे ऐसे ग्रन्थ भी मिल जायेंगे जो छलसे भरे हुए हैं। लेकिन हमें अपनी नीर-क्षीर विवेक-बुद्धिसे यह देखना चाहिए कि सत्य कहाँ है और पाखण्ड कहाँ है? थोडेसे ब्राह्मणोंने असत्य भाषण किया, कुछ छलपूर्ण शास्त्रोंकी रचना की गई, इसलिए सारी ब्राह्मणजातिसे द्वेष करना और उनका परित्याग करना आत्मघातक है। अब्राह्मणोसे मैं शपथपूर्वक कहना चाहता हूँ कि मैंने 'कुरान', 'जेन्द अवेस्ता' और 'बाइबिल'का यथाशक्ति अध्ययन किया है। मेरे मनमें इन सब धर्मोके प्रति मान है, और मैं मानता हूँ कि इन सबमें प्रचुर सत्य विद्यमान है। लेकिन मेरी मान्यता है कि हिन्दू धर्ममें व्रतके रूपमे स्वार्थत्याग और संयमका जितना स्थान है उतना अन्य किसी धर्ममे नही है। मैं हिन्दुओंसे कहना चाहता हूँ कि इस यज्ञ-धर्मके लिए, बलिदान-धर्मके लिए हम ब्राह्मणोंके ही ऋणी हैं। इस जगत्‌में ब्राह्मणोंने जितना बलिदान किया उतना अन्य किसीने नही किया है। और आज इस कठिन समयमे भी, इस कलिकालमे जितने बलिदान और जितनी शुद्धताका परिचय उन्होंने दिया है उतना किसी अन्य कौमने नही दिया। इसीसे मैं मारुतिराव और अन्य अब्राह्मणोसे यह कहना चाहता हूँ कि आपने जो दोष दिखाये हैं सो ठीक है लेकिन इसके सम्बन्धमे मुझे एक उपमा याद आती है। दूधमें पडा हुआ कचरा तुरन्त दिखाई पड़ता है लेकिन मलिन वस्तुओंमें वह तुरन्त दिखाई नही देता। अब्राह्मणोंने ब्राह्मणोंके सम्बन्धमे ऐसे उच्च आदर्श निश्चित कर दिये हैं कि उनके दोष तुरन्त सतहपर तिर आते हैं। मैं तो कहूँगा कि ब्राह्मणकी छोटी-सी भूलको भी बहुत बढा-चढाकर बताया जाता है, यही ब्राह्मणकी परीक्षा है। ब्राह्मण समाजने जितनी तपश्चर्या की है उतनी किसी देशमे किसी भी एक व्यक्तिने की हो—ऐसी बात मुझे दृष्टिगोचर नही होती। फलत. अब्राह्मण भाइयोंसे कहता हूँ कि आप ब्राह्मणोंके दोषोंकी ओर विवेक-बुद्धिसे देखें। ब्राह्मणोंसे असहयोग करके आत्महत्या न करें।

मैं जानता हूँ कि ब्राह्मणोंकी संख्या बहुत कम और अब्राह्मणोंकी बहुत अधिक है। इसीसे किसी शरारती भारतीयने कहा है कि आजकी अंग्रेज सरकार भी एक तरहसे

1. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित। गांधीजीने ये बातें सभामें उपस्थित एक सज्जन द्वारा ब्राह्मणोंकी आलोचनाके उत्तरमें कही थीं।

ब्राह्मण है। क्योकि एक लाख अंग्रेज तीस करोड हिन्दू-मुसलमान और सिखों-जैसे शौर्यवान् और वीर्यवान् लोगोंपर शासन चलाते है। लेकिन अंग्रेज सरकार तो तलवारकी धारपर तीस करोड व्यक्तियोको अपने नियन्त्रणमें रखती है। हिन्दुस्तानके ब्राह्मण करोडो अब्राह्मणोंको तलवारसे वशमे नही करना चाहते, अपितु ये मुट्ठीभर ब्राह्मण केवल अपने संयम-धर्मसे तीस कोटिको अपने नियन्त्रणमे रख सकेगे। जिस तरह हम इस अत्याचारी साम्राज्यमे अपने सयम-धर्म द्वारा लड़ना चाहते है उसी तरह ब्राह्मण भी अपनी पवित्रतासे अपनी स्वतन्त्रताको—शुद्धिको बनाये रख सके है। ब्राह्मणोने आज अपने धर्मको छोड दिया है, इसकी मुझे खबर है। फलस्वरूप मै महाराष्ट्रके ब्राह्मणोसे प्रार्थना करता हूँ कि अगर आप लोगोमे श्रद्धा और भक्तिकी फिरसे प्रतिष्ठा हो गई तो फिर मेरे पास आपसे कुछ भी कहनेको नही रह जायेगा। मै अब्राह्मण भाइयोसे इतना कहना चाहता हूँ कि ब्राह्मणोंसे आप धीरज और शान्ति खोकर जो द्वेष करते है, वैसा न करे। इससे किसीको यह नही समझ लेना चाहिए कि ब्राह्मणोके अन्यायकी पूर्णतया उपेक्षा की जाये, मै किसीको किसी भी प्रकारके अन्यायको सहन करनेकी सलाह नही देता। इस अन्यायी साम्राज्यको हम जिस कर्त्तव्यशक्तिसे थकाना चाहते है उसी कर्त्तव्यशक्तिसे किसी भी कौमसे न्याय प्राप्त किया जा सकता है। ब्राह्मण धर्ममे अंग्रेज सरकारकी सी शैतानियत नही है, यह बात एक छोटा बच्चा भी बता सकता है। ब्राह्मण धर्म ऐसा है कि एक छोटा-सा बच्चा भी अपने मनको पवित्र रख, सयम-धर्मका पालन कर बादशाहोका भी बादशाह बन सकता है। ब्राह्मण धर्म ऐसा है कि अन्त्यजोमें से जो साधु-सन्त हुए है उनकी वे लोग पूजा करते है। ब्राह्मणोंमे बहुतसे दोष है, आप भले ही उन दोषोकी आलोचना करे लेकिन उसका न्याय पचसे करवाये। उन्होने जगत्की जो सेवा की है उसका सम्मान करते हुए हमे उनके साथ निरन्तर सहकार करना चाहिए, यही हमारा धर्म है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–११–१९२०

२५५. भाषण: स्त्रियोंकी सभा, बेलगाँवमे

८ नवम्बर, १९२०

प्रात:स्मरणीय बहनो,

इस पवित्र मन्दिरमें[1] आप सब बहनोके दर्शनोसे मैं कृतार्थ हुआ हूँ। मुझे अधिक आनन्द तो इसलिए हो रहा है कि आपने मेरे भाई शौकत अलीसे भी मिलनेकी उत्सुकता दिखाई है। हम सब थके हुए थे और जरा आराम ले रहे थे, परन्तु जब मैंने सुना कि आपकी इच्छा है कि शौकत अलीको भी लाया जाये, तो मैंने उन्हे बुलाया। इस सद्भावमे मैं भारतकी सिद्धि पाता हूँ। क्योकि मुझे मालूम है कि जबतक हमारी हिन्दू महिलाएँ मुसलमानोको भाईके समान नही समझेगी, तबतक भारतके बुरे दिन नही मिटेंगे। मै इस मन्दिरमे बैठकर आपकी धार्मिक कल्पनाको कोई धक्का नही पहुँचाना चाहता। मै सनातनी हिन्दू धर्मवाला हूँ। परन्तु मैंने हिन्दू धर्मसे सीखा है कि किसी भी धर्मसे घृणा या तिरस्कार नही करना चाहिए। मैंने यह भी देखा कि जबतक हम सब पर-धर्मवालो और पडोसियोके साथ प्रेम नही रखेगे, तबतक देशका कल्याण साधना असम्भव है। मै आपसे यह कहने नही आया कि आप मुसलमानो या अन्य धर्मवालोके साथ रोटी-बेटीका व्यवहार करने लगें। परन्तु मै यह कहने जरूर आया हूँ कि हमे प्रत्येक मनुष्यके साथ प्रेम रखना चाहिए। मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अपने बाल-बच्चोको पर-धर्मियोसे प्रेम रखना सिखाइये।

मै आपसे यह भी माँगता हूँ कि आप भारतकी राष्ट्रीय स्थिति समझ ले। यह ज्ञान प्राप्त करनेके लिए कोई भारी शिक्षा पाने या बडे-बड़े ग्रन्थ पढनेकी जरूरत नही। मै आपको बता देना चाहता हूँ कि हमारी सरकार राक्षसी सरकार है। पहले जैसा रावणराज्य था, वैसी ही स्थिति इस वक्त है, क्योकि हमारी सरकारने मुसलमान भाइयोकी भावनाओको बडा धक्का पहुँचाया है, पंजाबमे स्त्री-पुरुष और बच्चोपर भयकर अत्याचार किये हैं और इतना करके भी सरकार अपनी भूल स्वीकार नही करती, पश्चात्ताप नही करती, उलटे हमसे अत्याचारोको भूल जानेको कहती है। इसलिए मैं इस सरकारको राक्षसी कहता हूँ। और सीताजीने जैसा असहयोग रावणसे किया, रामचन्द्रजीने जैसा असहयोग रावणके प्रति किया, वैसा ही असहयोग हमारे स्त्री-पुरुषोको सरकारके विरुद्ध करना है। रावणने सीताजीको लालच दिये, नाना प्रकार-के पकवान भेजे, परन्तु सीताजीने उनकी उपेक्षा की और रावणके पजेसे छूटनेके लिए भारी तपस्या की। जबतक सीताजी रावणके पजेसे नही छूटी तबतक उन्होने किसी वस्त्राभूषण या अलंकारसे अपने शरीरका शृगार नही किया। रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीने बडा इन्द्रियदमन किया, फल-फूल, कन्द-मूल खाकर सयमपूर्वक दिन बिताये। दोनों भाइयोंने कठिन ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया। आपसे मैं कहना चाहता हूँ कि

१. मारुति मन्दिरमें।

जबतक यह जालिम सल्तनत हमारी छातीपर बैठी है, तबतक आप सब भाइयो और बहनोको किसी प्रकारका शृंगार करनेका अधिकार नही। जबतक भारत स्वतन्त्र नही होता, मुसलमानोके घाव नही भरते, तबतक हमारे लिए फकीरी आवश्यक है। हमें अपने ऐश-आरामको अपनी शोकाग्निमें जलाकर भस्म कर देना चाहिए। मैं आपसे दीन वाणीमें यह माँगता हूँ कि भोग-विलास तजकर कठिन तपश्चर्या कीजिये और हृदय तथा मनको पवित्र रखिये।

पचास वर्ष पहले हमारी सब बहनों — हिन्दू मुसलमान तमाम स्त्रियो — के घरोंमें पवित्र चरखा चलता था और प्रत्येक स्त्री हाथके बने सूतका कपड़ा काममे लेती थी। मैं आप बहनोंसे कहना चाहता हूँ कि हमने जबसे स्वदेशी धर्म छोडा, तबसे हमारा अध.पतन शुरू हुआ, हमपर गुलामीका थोपा जाना आरम्भ हुआ। हमारे देशमे जगह-जगह लोग भूखो मर रहे है, वस्त्रोके बिना नग्न फिर रहे है। ऐसी स्थिति-मे प्रत्येक बहनसे मेरी प्रार्थना है कि आप कमसे-कम एक घंटा भी भारतके नाम-पर सूत कातिये और देशको वह सूत अर्पण कीजिये। आपको फिलहाल बारीक कपडा मिलना कठिन है। परन्तु आप बारीक सूत कातने लगेंगी, तो महीन कपड़ा भी मिलेगा। परन्तु जबतक देश परतन्त्र दशामें है, तबतक बारीक कपड़ा हमारे लिए हराम होना चाहिए। क्योकि महीन सूत कातनेमें बहुत समय लगता है और भारतमे आज एक मिनटका भी मूल्य है।

× × ×

मै डाकोर-अहमदाबादमे रुपयेकी माँग कर चुका हूँ। पूनामें भी परसों ही माँग-कर आया हूँ। कुछ बहनोने, छोटी-छोटी लड़कियोने अँगूठियाँ, चूड़ियाँ, नाककी नथे, गलेके हार उतारकर दे दिये। मै आपके दिलोमे जो फकीरी जाग्रत करने आया हूँ, वह जाग्रत कर सका हूँ, तो आपको अपने सारे आभूषण देशके लिए उतार देनेमे सकोच न होना चाहिए। इससे मिलनेवाले रुपयेका उपयोग श्री गंगाधरराव शिक्षा और स्वदेशीके लिए करेगे। आप बहने जो भी नकद रुपया अथवा द्रव्य देना चाहती है, तो जिस भावसे आप इस मन्दिरमे रुपया चढाती है, उसी भावसे देशकार्यके लिए दीजिये। भारत इस समय कसाईके हाथोमें गरीब गायकी तरह है और इस भारत-रूपी गायको छुडवाना मेरा और आपका काम है और गायको छुडवानेके लिए दान करनेमें देव-मन्दिरमें दान करनेके बराबर ही पुण्य है।

आखिरी भीख आपसे यह माँगता हूँ कि जो काम मै, शौकत अली और गंगाधर-राव कर रहे है, उस कामके सफल होनेके लिए आशीर्वाद दीजिये। मै यह भी कह दूँ कि मै यह नही चाहता कि कोई बहन शर्मके मारे जेवर उतारकर दे दे। आपके दिलमें यह बात पैदा हो जाये कि यह दान करना आपका कर्त्तव्य है, यह एक पुण्य-कार्य है, तो ही दान दीजिये। ईश्वर आपको पवित्रता, साहस और देशके लिए यज्ञ करनेकी भावना प्रदान करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-११-१९२०

२५६. भाषण : बेलगाँवकी सार्वजनिक सभामें[1]

८ नवम्बर, १९२०

मारुतिके मन्दिरमें मैं जो दृश्य देख आया हूँ, उसका मुझपर जो असर हुआ, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। ऐसी ही बात पूनामें देखी। हमपर उन्होंने यह समझकर प्रेम और आभूषण बरसाये हैं कि वे स्वराज्यके लिए, रामराज्य प्राप्त करनेके लिए माँगे गये हैं। इतना दान हमारे करोड़पतियोंने नहीं दिया। हम उनसे दान लेनेके लिए उनके पैर चूमते हैं, आजिजी करते हैं, तब कहीं वे कुछ पिघलते हैं। बहनोंसे मुझे कुछ भी अनुनय-विनय नहीं करनी पड़ी। उन्होंने तो केवल उमंगसे, भावनासे ही जो देना था, दिया। और उन्होंने भावनासे जो दिया, वह करोड़ोंसे भी अधिक है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-११-१९२०

२५७. हमारे मार्गकी कठिनाइयाँ

हमारी कठिनाइयाँ दो प्रकारकी हैं; एक तो वे जो हमपर बाहरसे लादी जाती हैं और दूसरी वे जिनको हम स्वयं पैदा कर लेते हैं। दूसरे प्रकारकी कठिनाइयाँ कहीं ज्यादा खतरनाक हैं; हम बहुधा उन्हें गलेसे चिपकाये रहते हैं और दूर नहीं करना चाहते। उदाहरणके लिए हालमें बम्बईमें श्रीमती बेसेंटकी सभामें जो उपद्रव हुआ वह खुद हमारे द्वारा पैदा की गई परेशानी है। यदि किसी सभाको 'राजद्रोही' सभा घोषित कर दिया जाये तो इस घोषणासे निपटना आसान है; किन्तु श्रीमती बेसेंटकी सभाओंमें हुए उपद्रवोंसे निपटना अपेक्षाकृत कठिन है। 'राजद्रोही' सभाओंके निषेधसे हमें शक्ति मिलती है, किन्तु इसमें शक नहीं कि यदि हम उपद्रव करते हैं तो उससे हमारे उद्देश्यको हानि पहुँचती है। श्रीमती बेसेंटकी सभामें शोर मचाया गया, यह एक तरहकी हिंसा है, यह अहिंसात्मक असहयोगके सिद्धान्तसे विलग हो जाना है। ऐसी मौखिक हिंसा आसानीसे शारीरिक हिंसामें बदल सकती है।

उपद्रवकारियोंको समझना चाहिए कि उस पवित्र उद्देश्यपर जो उनके दिलमें है इसका क्या असर पड़ेगा। अगर हम हुल्लड़बाजीकी आदत डाल लें तो यह स्वराज्यके लिए सर्वाधिक बुरी चीज है। स्वराज्यमें विचारोंके प्रति परस्पर सहिष्णुता, फिर वे हमें कितने ही अप्रिय क्यों न हों, ग्रहीत है। यदि असहयोगवादी दूसरे पक्षके विचार सुननेसे इनकार करते हैं, तो फिर उनपर भी वही आरोप लगाया जा सकता है जो वे

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे संकलित।

सरकारपर लगाते हैं, अर्थात् वह उनके दृष्टिकोणपर विचार किये बिना निर्णय कर लेती है। सरकारके विरुद्ध असहयोगकी सफलता और उसकी सम्भावना इस बातपर आधारित है कि हमारे अपने बीच सहयोग है या नही। जहाँतक हो सके हमे अपने सिद्धान्तोके अनुरूप निरन्तर आपसमें सौहार्द बढ़ाना चाहिए। इसका रास्ता हुल्लड़बाजी कदापि नही हो सकता। उक्त सभाओमे हुल्लड़ मचाकर असहयोगवादियोने अपने प्रति श्रीमती बेसेंट और उनके मित्रो तथा अनुयायियोकी सद्भावना और सहानुभूति और भी कम कर ली और इससे उन्हें कोई नये समर्थक मिल गये हों सो तो है ही नही। जहाँ-तक विद्यार्थियोका सम्बन्ध है श्रीमती बेसेंटका अपमान करके उन्होने अपने विकासके नाजुक समयमे अपने ऊपर एक कलंक लगा लिया। धर्म और देशके नामपर उनसे कहा जाता है कि यदि उनके माता-पिता उन्हें सरकारी इमदाद या सरक्षणमे चलनेवाले स्कूलोको छोडनेसे विमुख करना चाहे तो वे उनकी आज्ञाकी उपेक्षा कर दे। ऐसा वही सन्तान कर सकती है जिसके मनमे माता-पिता और बड़ोके प्रति धर्मसम्मत आदर और आज्ञापालनका भाव जागृत है। आज्ञाका उल्लघन सद्गुण केवल तभी हो सकता है जब वह किसी अधिक ऊँचे उद्देश्यके लिए किया जाये और उसमे कटुता, द्वेष या क्रोध न हो। उनकी आज्ञाका विचारहीन, उद्दण्डता और हुल्लडबाजीपूर्ण उल्लंघन तो निश्चय ही दोष है। एक ऊँचा उठानेवाला और दूसरा नीचे गिरानेवाला है। और फिर श्रीमती बेसेंटकी आयु, उनकी पिछली महान् सेवाएँ और उनका नारी होना क्या हमारे निकट कुछ भी मूल्य नही रखता? आनेवाली पीढ़ीके प्रति कृतघ्न बन जाना अपनी आत्महत्या कर लेना ही है। भारतकी कृतज्ञता तो ऐसी होनी चाहिए थी कि श्रीमती बेसेंट भारतकी भावनाओका विरोध भी करे तो भी लोग सम्मानपूर्वक उनकी बात सुने। उसमे उनका उद्देश्य शुद्ध है। वे मानती है कि हम गलतीपर है और उनकी रायमे हम भारतकी प्रगतिमे बाधक हो रहे है। जिसे वे हमारी गलती मानती हैं, हमे उससे विलग करनेका प्रयत्न निश्चय ही उनके लिए कर्त्तव्य है, और उस समय हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि वे जो-कुछ कहती हैं, उसपर सादर विचार करे।

परन्तु लोगोने मुझसे यह कहा कि यदि उनकी सभाओमे जोरदार विरोधी स्वर नही व्यक्त किया जाता तो वे हमारे मौनका पूरा-पूरा लाभ उठायेंगी और जितन लोग उनके साथ है उससे अधिक लोगोके साथ होनेका दावा करेंगी। किन्तु विरोध व्यक्त करनेका एकमात्र तरीका हुल्लडबाजी नही है। सबसे अच्छा और चुनिन्दा तरीका तो यह होगा कि हम उनकी सभाओमे तभी शामिल हों जब हमे उनकी बातको समझना जरूरी लगे। जब हम जानते है कि हम उनके विचारोसे सहमत नही है तो हमें उनके श्रोतृसमुदायकी सख्या नही बढानी चाहिए। और यदि हम उनकी सभामे जाना ही चाहें तो दूसरा तरीका यह है कि सभाके अन्तमें सादर अपना विरोध दर्ज करा दे या यदि हम उनकी उक्तियोंको चोट पहुँचानेवाली समझें तो शिष्टतापूर्वक सभासे उठ जाये और इस तरह अपना विरोध व्यक्त करे। शोरगुल मचाना हमारी दुर्बलताका सूचक है। शिष्टतापूर्वक उठकर चले जाना हमारी शक्तिका प्रमाण है। यदि सभामे ज्यादातर लोग वही हों जिन्हें अपनी शक्तिका भान है तो वक्ता और

अल्पसख्यामे उपस्थित उसके अनुयायियोपर स्पष्ट ही उसका असर होता है और सो भी बिजलीकी तीव्रतासे।

यह सच है कि यह हुल्लडबाजी असहयोग आन्दोलनका परिणाम नही है, यह हमे विरासतमे मिली है। हमने सभाएँ करनेका ढग पश्चिमकी विषैली परम्परासे लिया है और उससे हमारा नुकसान हुआ है। जोरसे प्रशसा और विरोधके स्वरोकी अभिव्यक्ति पूर्णत पश्चिमी प्रथा है। अहिंसात्मक असहयोगके नये तरीकेके साथ हमे यह पुराना तरीका समाप्त कर देना चाहिए। ये दोनो साथ-साथ नही चल सकते। यदि हम धर्म और अधर्मके द्वन्द्वमे रत रहे, और यदि हम सचमुच धर्मकी शक्तिका प्रतिनिधित्व करे तो हमें वाक्-हिंसा भी त्याग देनी होगी और अपने विरोधियोसे निपटनेके सौजन्यतापूर्ण तरीके सीखने होंगे। इसलिए नितान्त नम्रता, शान्ति, साहस, आत्मबलिदान, अनुशासन और ईश्वरमे विश्वासके द्वारा हम इस्लाम और अपने देशका सम्मान कायम रखें तभी हम अपने देश और अपने विरोधियोको अपना प्रशसक और सहयोगी बना पायेगे।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०–११–१९२०

२५८. तार: विट्ठलभाई झवेरभाई पटेलको

११ नवम्बर, १९२०

विट्ठलभाई झ० पटेल[1]

बान्द्रा

स्वराज्य सम्बन्धी धारा[2] छोड़ी नही जा सकती।

गांधी

प्राप्त अग्रेजी तार (सी० डब्ल्यू० ५९९१) से।

सौजन्य. अ० भा० काग्रेस कमेटी, नई दिल्ली

१. विट्ठलभाई झवेरभाई पटेल (१८७३–१९३३); सरदार वल्लभभाई पटेलके बड़े भाई। वकील व राजनीतिज्ञ, भारतीय विधान परिषद्के प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष।

२. स्पष्टतः यहाँ सकेत काग्रेस-सविधानके अनुच्छेद १ की ओर है; देखिए "कांग्रेसका संविधान", ३–११–१९२०।

२५९. तार : गिरधारीलालको[1]

बम्बई
[१४ नवम्बर, १९२० के पूर्व][2]

निषेधाज्ञा माने। मोतीलालजी यहाँ नही है। लाजपतराय तथा अन्य लोगोको सूचित करे।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०, पृष्ठ १६३९

२६०. भाषण : विद्यार्थियोंके समक्ष[3]

१४ नवम्बर, १९२०

श्री गांधीने श्रोताओंके सम्मुख भाषण करते हुए कहा — भाइयो और बहनो, मैं इस सान्ध्यवेलामें आपको कोई ककहरा पढ़ाने नही जा रहा; बल्कि मैं आपको एक महत्त्वपूर्ण बात समझानेका प्रयत्न करूँगा। सबसे पहले मैं आपसे यह कह देना चाहता हूँ कि मैं नहीं चाहता कि ऐसे छात्र जो अपने मतोंसे भिन्न मत रखनेवाले किसी वक्ताके भाषणमें शोर मचाये बिना नहीं रह सकते वे स्कूलो और कालेजोंका बहिष्कार करें। यह आचरण असत्य होगा। यदि आप सत्यको प्राप्त कर लें और अपने अन्तरको शुद्ध बना लें तो स्कूलों और कालेजोके बहिष्कारके मामलेमें अपने माता-पिताकी अवज्ञा करना भी गलत नहीं होगा। जो अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध कार्य कर सकते है वे असहयोगके सिद्धान्तको अपनानेके योग्य नही है। जबतक आप अपने अन्तरको शुद्ध नहीं बना सकते और अपनी अन्तरात्माके आदेशका पालन नही कर सकते तबतक आप असहयोगके योग्य नहीं है। अगर आप सच्चे ब्रह्मचारी बनें और पूर्ण आत्मसंयम कर सकें तो आप अपने माता-पिताकी आज्ञाका उल्लंघन भी कर सकते है। यदि आप अपनी अन्तरात्माके आदेशपर अपने माता-पिताकी भी अवज्ञा करें तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं होगी।

१. गिरधारीलाल द्वारा प्राप्त इस तारके जवाबमें· "होमरूल सम्मेलन १९ से २१ नवम्बरतक होना तय। अमृतसर शहरपर राजद्रोहात्मक सभाओंका अधिनियम लागू हो गया है। आदेशका पालन करें या सभा करके उसका भंग। तार द्वारा अपनी और पंडित मोतीलालकी राय दीजिए। लाजपतराय और किचलू पक्षमें है।"

२. यह तार बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्समें १४ नवम्बरको गांधीजीके विद्यार्थियोंके समक्ष दिये गये भाषणकी रिपोर्टके साथ रखा गया था।

३. इसका आयोजन शान्ताराम चाल, बम्बईमें हुआ था।

मुझे पूरा विश्वास है कि अभी पिछले ही दिन जिन लोगोंने एक्सेलिसियर थियेटरमें सीटियाँ बजाई थीं उन्होंने अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध कार्य किया था और वे जल्दी ही इसके लिए पश्चात्ताप करेंगे। श्री निम्बकरके सम्बन्धमें मुझे निश्चय है कि वे शीघ्र ही सार्वजनिक रूपसे खेद प्रकाश करेंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि उन्होंने जो कार्य किया है, वह अनुचित था। जबतक छात्र अहिंसा और अ-घृणाके सिद्धान्तोंको समझ नहीं लेते तबतक वे अपनी मातृभूमिकी, जिसे वे सच्चे हृदयसे प्यार करते हैं, कोई सेवा नहीं कर सकेंगे। आप यह याद रखें कि मेरा असहयोग "अहिंसात्मक असहयोग" है। आयरलैंड या मिस्रके असहयोग आन्दोलनोंसे उसकी कोई समानता नहीं है, यद्यपि उद्देश्य उनका भी करीब-करीब यही था। मैं भारतमें ऐसे तरीके अपनाना पसन्द नहीं करता। आयरलैंड और मिस्र, दोनों जगह हिंसाका प्रचार किया गया, जब कि मैं उसके विरुद्ध हूँ। विरोधीके विरुद्ध चाहे तलवारका उपयोग किया जाये या शरीर-बल अथवा दुर्वचनोंका, सभी समान रूपसे दोषपूर्ण हैं और हिंसाके बराबर हैं। हम भारतके लोग इन उपायोंमें से किसीका भी प्रयोग नहीं कर सकते, क्योंकि विरोधीको दुर्वचन कहना हम भारतीयोंके स्वभाव और धर्मके विरुद्ध है। विरोधीको दुर्वचन कहना हिंसात्मक कार्य है और हम जबतक हिंसाका प्रयोग करते रहेंगे तबतक हमारा उद्देश्य अर्थात् स्वराज्य, हमसे दूर ही रहेगा। मैं आपसे फिर कहता हूँ कि आप अपने अन्तरको शुद्ध बनाइये और मैं छात्रोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे अपने मनसे ऐसे गलत खयाल निकाल दें।

मैं आपसे दूसरी बात यह कहना चाहता हूँ कि हमारी वर्तमान सरकार निकृष्टतम सिद्धान्तोंपर आधारित है। हमारे शासकोंने पहले तो हमें छला, और अब वे हमें मीठे-मीठे शब्दों और झूठी बातोंसे चुप करानेका प्रयत्न कर रहे हैं। पंजाबके हत्याकाण्डके बाद भी लॉर्ड चैम्सफोर्ड हमारे देशमें सरकारके प्रधान हैं और ओ'डायर भी एक उच्च पदपर आसीन हैं। मेरा तो कहना यह है कि ऐसी सरकारके साथ कोई भी अपने अन्तःकरणसे सहयोग नहीं कर सकता। यदि अंग्रेजोंने ईमानदारीसे अपनी भूल स्वीकार करके क्षमा-याचना कर ली होती तो भारतीय उन्हें बेहिचक क्षमा कर देते। लेकिन वे ऐसा करनेके बजाय उत्तरदायी लोगों द्वारा भारतीय मुसलमानोंको दिये गये वचनका स्पष्ट उल्लंघन करके आगमें घी डाल रहे हैं। अभी हालमें उन्होंने भारतीयोंसे अनुरोध किया है कि वे उस दुःखद घटनाको भूल जायें, लेकिन अब भी उनमें पश्चात्तापका कोई भाव दिखाई नहीं देता और वे स्पष्ट शब्दोंमें अपना दोष स्वीकार नहीं करते।

इसके बाद श्री गांधीने सभामें उपस्थित लोगोंसे पूछा कि ये बातें क्या आपको यह बता देनेके लिए काफी नहीं हैं कि हमारी सरकार एक निर्दय सरकार है और क्या आपके लिए ऐसी सरकार द्वारा नियन्त्रित स्कूलों और कालेजोंका बहिष्कार करना उचित नहीं है? स्वर्गीय लोकमान्य तिलकने आपको इसी मंचसे अनेक बार यह समझाया था कि हमारी सरकार कैसी दुष्ट है।

श्री गांधीने आगे कहा कि कुछ लोग ऐसे हैं जो कहते हैं कि राष्ट्रीय कालेजों और स्कूलोंकी पर्याप्त व्यवस्था किये बिना छात्रोंसे सरकारी स्कूलों और कालेजोंको

छोड़नेके लिए कहना भूल है। लेकिन मैं उन लोगोंसे पूछता हूँ कि जब कोई आदमी यह देख ले कि उसके बिस्तरके नीचे साँप है तब क्या वह उस बिस्तरको छोड़नेसे पहले दूसरे बिस्तरकी व्यवस्थाकी प्रतीक्षा करेगा? अतः छात्रोंको भविष्यके सम्बन्धमें व्यर्थ ही इतनी अधिक चिन्ता न करके स्कूल और कालेज छोड़ देने चाहिए। मेरी रायमें नौकरी पानेकी आशासे बी० ए० और एम० ए० पास करना भी हमारी वर्तमान गुलामीके लिए बहुत अधिक उत्तरदायी है।

अन्तमें श्री गांधीने कहा कि वर्तमान विश्वविद्यालयों और कालेजोंसे विद्वान् कम और गुलाम अधिक उत्पन्न हुए हैं। अब हमें इन गुलाम पैदा करनेवाली संस्थाओंको नष्ट कर देना चाहिए और इसका एकमात्र उपाय सरकारसे असहयोग करना और उसकी संस्थाओंका बहिष्कार करना है। लेकिन मैं आपको फिर याद दिलाता हूँ कि हमारा असहयोग अहिंसात्मक होना चाहिए। यदि सब लोग अहिंसात्मक असहयोगी बन जायें तो आप एक सालमें ही स्वराज्य ले लेंगे।

श्री गांधीके बैठ जानेके बाद श्री निम्बकरने कहा कि श्री गांधीकी बातें सुननेके बाद मैं पूरी तरह मान गया हूँ कि जब श्रीमती बेसेंट एक्सेल्सियर थियेटरमें बोल रही थीं उस समय अध्यक्षका आदेश न मानकर मैंने भूल की थी और मैं उसके लिए हृदयसे पश्चात्ताप करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १५-११-१९२०

२६१. भाषण: गुजरात महाविद्यालयके उद्घाटनपर[1]

अहमदाबाद
१५ नवम्बर, १९२०

भाइयो और बहनो,

अपनी जिन्दगीमें मैंने बहुतेरे काम किये हैं। उनमें से बहुतसे कामोंके लिए मैं अपने मनमें गर्व भी करता हूँ, कुछके लिए पछतावा भी होता है। इनमें से कई तो बड़ी जिम्मेदारीके भी थे। पर फिलहाल जरा भी अतिशयोक्ति किये बिना मैं कहना

१. गुजरात महाविद्यालय गुजरात विद्यापीठका अपना कालेज था। गुजरात विद्यापीठ सरकारके नियंत्रणसे मुक्त राष्ट्रीय शिक्षाके प्रसारके लिए राष्ट्रीय विश्वविद्यालयके रूपमें स्थापित किया गया था। गांधीजी उसके कुलपति थे। आगे चलकर अन्य अनेक शिक्षा-संस्थाएँ, कालेज और स्कूल विद्यापीठसे या तो सम्बद्ध हो गये या विद्यापीठ द्वारा उन्हें मान्यता दे दी गई। सन् १९२३ में ऐसी संस्थाओंमें पढ़नेवाले छात्रोंकी संख्या ३०,००० थी।

१९३० और १९३२के सविनय अवज्ञा आन्दोलन और सन् १९४२के 'भारत छोड़ो' आन्दोलनके फलस्वरूप विद्यापीठकी प्रवृत्तियोंमें कुछ समयके लिए अस्थायी व्यवधान उपस्थित हुआ था। आजकल वह देशके राष्ट्रीय विश्वविद्यालयोंमें से एक है और शिक्षाके गांधीजीके आदर्शके अनुसार बुनियादी दस्तकारीपर आधारित जनसेवोपयोगी शिक्षाके प्रचारका कार्य कर रहा है।

चाहता हूँ कि मैंने ऐसा एक भी काम नही किया, जिसके साथ आजके कामकी तुलना हो सके। इस काममें मुझे वड़ी जोखिम लगती है, वह इसलिए नही कि उससे जनताका नुकसान होगा। पर मुझे जिस बातका दु ख हुआ करता है या मैं अपने मनमे जिसका मुकावला कर रहा हूँ, वह यही है कि मैं जो काम करने बैठा हूँ उसके लायक मैं लियाकत नही रखता। यह मैं शिष्टाचारकी दृष्टिसे नही कह रहा हूँ, बल्कि जो कुछ मेरी आत्मा कह रही है, उसीका चित्र आपके सामने रख रहा हूँ। मुझे अगर पता होता कि अभी जो काम करना है, वह शिक्षाके सच्चे अर्थके आधार-पर करना है, तो मुझे यह प्रस्तावना न करनी पडती। इस महाविद्यालयकी स्थापना करनेका उद्देश्य सिर्फ विद्या देना नही वल्कि आजीविकाके साधन जुटा देना भी है; और इसलिए जब मैं इस विद्यालयकी तुलना गुजरात कालेज आदिसे करता हूँ तो मुझे चक्कर आ जाते हैं।

इसमें भी अतिशयोक्ति नही कि कहाँ गुजरात कालेज और ऐसे ही दूसरे कालेज और कहाँ हमारा यह छोटासा महाविद्यालय! मेरे खयालसे तो यह बड़ा ही है। पर मुझे डर है कि आपकी नजरमे हिन्दुस्तानके कालेजोके मुकावलेमें यह महाविद्यालय अणु-विद्यालय लगता होगा। इस विद्यालयका विचार करते वक्त आपके मनमें ईंट-चूनेकी तुलना होती होगी। ईंट-चूना तो मैं गुजरात कालेजमें ज्यादा देखता हूँ। रेलमें आ रहा था तब मैं यही विचार करता आ रहा था कि आपके सामने आज मैं क्या विचार रखूँ, जिससे यह ईंट-चूनेकी तुलना आपके मनसे निकाल सकूँ। यह बात मुझे चुभ रही है कि वह विचार मुझे अभीतक नही सूझा। ऐसा कठिन अवसर मैंने अपने लिए पहले कभी पैदा नही किया। इस वक्त अनायास यह मेरे माथे आ पड़ा है। मेरे दिलके अन्दर जो चीज सिद्ध है, उसे मैं आपके सामने उसी तरह सिद्ध नही कर सकता। यह मैं किस तरह बताऊँ कि जिसे आप खामी समझते हैं, वह कोई खामी नही है? इन खामियोंको सरल भावसे बताकर भाई किशोरलाल (महामात्र) ने मेरा काम आसान कर दिया है। आप यह मानें कि इन खामियोके बावजूद यह काम बड़ा है। मेरे दिलमे इसके लिए जो श्रद्धा है, वैसी ही श्रद्धा परमात्मा आपके दिलमें पैदा करे। मै यह श्रद्धा आपमे पैदा नही कर सकता, मेरी इतनी तपस्या नही। मुझे अपनी असमर्थता स्वीकार करनी चाहिए। मैंने शिक्षाके क्षेत्रमे ऐसा काम नही किया जो मैं आपको बता सकूँ कि यह काम बडेसे-बडा है। हिन्दुस्तानकी आजकी परिस्थितिमे हम जो काम कर रहे हैं वही शोभा देता है। मकानोकी क्या तुलना?

आज तो एक इंच जमीन भी हमारी नही है। सब-कुछ सरकारका है। यह जमीन, ये पेड़ सब-कुछ सरकारी हैं। शरीर भी सरकारका है और आज मुझे इसमें भी शंका हो रही है कि हमारी आत्मा भी हमारी अपनी है या नही। ऐसी दया-जनक हालतमें हम महाविद्यालयके लिए अच्छेसे-अच्छे मकान कैसे ढूँढें? विद्वानोको ढूँढते रहें तो कैसे काम चले? कोई अज्ञानीसे-अज्ञानी और अनाड़ी आदमी भी आकर कहे और समझा सके कि हमारी आत्माएँ शुष्क हो गई है और यह देश निस्तेज और ज्ञानहीन हो गया है तो उस मनुष्यको मैं आचार्यकी पदवी दूँगा। मुझे यकीन नही

कि आप किसी गडरियेको आचार्यका ओहदा देनेको तैयार होगे। इसलिए हमें भाई गिडवानीको[1] ढूंढना पडा है। मै इनके पदपर मोहित नही। आप इन्हे इनके पदके सिवा और तरहसे शायद न पहचानते होगे। पर इस विद्यालयकी जाँचके लिए दूसरा नाप रखना। मै चाहता हूँ कि इसकी परखके लिए आप दूसरी कसौटी ढूंढे। मामूली कसौटीपर कसोगे तो यह पीतल-सा दिखाई देगा; पर चरित्र की कसौटीपर कसोगे तो यह आपको पीतल नही, खरा सोना दिखाई देगा।

यहाँ इस विद्याके कामके लिए जो संगम हुआ है, वह तीर्थकी तरह है। यहाँ चरित्रवान् लोग इकट्ठे हुए है। अच्छेसे-अच्छे सिन्धी, महाराष्ट्रीय और गुजराती एकत्रित हो सके है। ऐसा संगम हमे कहाँसे मिल सकता है?

यहाँ जो भाई-बहन आये है, पहले उनसे मै प्रार्थना करूँगा। इस महाविद्यालयकी स्थापनाके आप गवाह है। आपमे से किसीको भी यह स्थापना करना तमाशा-सा लगता हो तो ऐसे लोगोके अन्त करणको उद्देश्य करके मै उनसे कहना चाहता हूँ कि आप इस स्थापनामे मत वैठिये। आप यहाँ अपना आशीर्वाद देनेके लिए ही वैठे। आपका आशीर्वाद मिलनेसे महाविद्यालय महान् बन जायेगा। मगर वह मुँहसे ही नही, दिलसे दिया जाना चाहिए। दिलसे आशीर्वाद तो आप अपने लडके-लड़कियोको महाविद्यालय भेजकर ही दे सकते है। हिन्दुस्तानमें रुपया देनेकी शक्ति तो बहुत है। रुपयेकी कमीसे कोई तरक्की नही रुकती। काम तो रुकता है आदमियोकी कमीसे, अध्यापको या मुखियाके अभावमें और मुखिया हो तो उसके शिष्यो यानी सिपाहियोके अभावमें। मै मानता हूँ कि जहाँ नेता लायक होते है, वहाँ सिपाही मिल ही जाते है। वढ़ईके औजार कितने ही भोंथरे क्यों न हो तो भी वह कभी उनके साथ झगड़ा नही करता। वह भोथरेसे-भोथरे औजारोसे भी अपना काम निकाल लेगा। इसी तरह मुखिया भी सच्चा कारीगर होगा तो जैसी चीज मिलेगी उसीसे देशकी मिट्टीमें से सोना पैदा कर लेगा। आचार्यसे मेरी यही प्रार्थना है।

यहाँ आचार्य और अध्यापकोकी काम करनेमे एक ही भावना है: विद्याका नही बल्कि चरित्रका चमत्कार दिखाकर तुम आजादी दिलानेवाले हो। सरकारकी तेज तलवारका मुकाबला तलवारसे करके नही बल्कि सरकारकी अशान्तिकर राक्षसी प्रवृत्तिका अपनी शान्तिमयी दैवी प्रवृत्तिसे — भले ही वह अपूर्ण हो तो भी — मुकाबला करके। इस वक्त हमें आजादीका बीज बोकर और उसे सीचकर उससे स्वराज्यका सुन्दर वृक्ष पैदा करना है। वह चरित्रसे, शुद्ध दैवी बलसे ही बडा होगा। जबतक आचार्य और अध्यापक यही एक दृष्टि रखकर काम करते रहेगे तबतक हमारी जरा भी बदनामी न होगी। आचार्य और अध्यापकोके बारेमें मेरी जो श्रद्धा है, ईश्वर उसे सच्ची साबित करे। यह अटल श्रद्धा मुझमे न होती तो मै अपढ आदमी कुलपतिके इस पवित्र स्थानको मंजूर ही न करता। मै इसी काममे जीने और मरनेके लिए तैयार हूँ। जैसे इस काममें मरनेको ही मै जीना समझता हूँ, वैसा ही आप भी

१. आचार्य ए० टी० गिडवानी, रामजस कालेज, दिल्लीके प्रिंसीपल। अन्य अध्यापकोंके नामोंके लिए देखिए परिशिष्ट २।

समझते है, यह जानकर ही मैं आपके साथ रहता हूँ और इसीलिए इस बड़े पदको मैंने मंजूर किया है।

अगर आचार्य और अध्यापक अपना धर्म-पालन करें तो विद्यार्थियोसे फिर मुझे क्या कहना है? विद्यार्थियोपर आक्षेप लगानेका नीच काम मै नही करूँगा। विद्यार्थी तो परिस्थितिका आईना है। उनमे दम्भ नही, द्वेष नही, ढोग नही। वे जैसे है वैसा ही अपनेको दिखाते है। अगर उनमें पुरुषार्थ नही, सत्य नही, ब्रह्मचर्य नही, अस्तेय नही, अपरिग्रह और अहिंसा नही तो यह उनका दोष नही, दोष माँ-बापका है, अध्यापकोका है, आचार्यका है, राजाका है। पर इसमें राजाको भी क्या दोष दिया जाये? कल ही मैंने बम्बईमे विद्यार्थियोसे कहा था कि जैसे 'यथा राजा तथा प्रजा' सच है वैसे ही 'यथा प्रजा तथा राजा' भी सच है। बल्कि यही सच कहा जायेगा। पहला दोष जनताका है। जनताके दोष विद्यार्थियोमे आये है और इसलिए वे विद्यार्थियोमें साफ तौरपर दिखाई देते है। तो हमे — माँ-बाप, आचार्य और अध्यापकोको — वे खराबियाँ दूर करनेके लिए जो कुछ करना जरूरी हो, वह करना चाहिए।

हिन्दुस्तानका हरएक घर विद्यापीठ है — महाविद्यालय है, माँ-बाप आचार्य है। माँ-बापने आचार्यका यह काम छोड़कर अपना धर्म छोड दिया है। बाहरकी सभ्यताको हम पहचान न सके, उसके गुणो और दोषोका अन्दाज नही लगा सके। बाहरकी सभ्यताको हमने किरायेपर ले लिया, मगर हम किराया कुछ नही देते, इसलिए हमने उसे चुरा लिया है। ऐसी चोरीकी सभ्यतासे हिन्दुस्तान कैसे ऊँचा उठ सकता है?

हम इस विद्यालयकी स्थापना विद्याकी दृष्टिसे नही बल्कि राष्ट्रीय दृष्टिसे विद्यार्थियोंको बलवान और चरित्रवान् बनानेकी खातिर करते है। मै चारों तरफ कह रहा हूँ कि मुझे जितनी कामयाबी विद्यार्थियोमें मिलेगी, उसी हदतक हम हिन्दुस्तानके स्वराज्यके लायक हो सकेंगे। स्वराज्य और किसी तरह कायम नही हो सकता। ऐसे विद्यालयोंको सफल बनानेके लिए हम अपना चाहे जितना रुपया खर्च करे और चाहे जितना चरित्र-बल लगाये, थोडा है।

यह बोलनेका वक्त नही, करनेका वक्त है। मेरे दिलमे जो बात आई, वह मैंने आपसे कह डाली। आपसे जो माँगना था, माँग लिया। अब पढनेवाले विद्यार्थियोंसे भी माँगता हूँ। इसमें शक नही कि उनके पास साहस है। जो भरती हो चुके है, उन्हें मै विद्यार्थी नही समझूँगा। यानी मै उन्हे जिम्मेदारीसे मुक्त नही समझूँगा। जिन विद्यार्थियोने यहाँ नाम लिखाया है वे आधे शिक्षक माने जायेंगे। उन्होंने ही महाविद्यालयकी नीव डाली है। उन्हींपर महाविद्यालयकी इमारत खड़ी हुई है। वे भरती न हुए होते तो महाविद्यालय खडा ही नही हो सकता था। इसलिए उनकी भी पूरी जिम्मेदारी है। तुम उसमे पूरी तरह साझेदार हो और तुम अपना हिस्सा पूरी तरह न दो तो शिक्षक कितनी ही कोशिश करे, तो भी सफल नही होंगे — पूरी तरह सफल हो ही नही सकते। जिन विद्यार्थियोंने अपने स्कूल छोडे है, उन्हे जान लेना चाहिए कि वे क्या समझकर यहाँ आये है, उन्हे यहाँ क्या मिलेगा। परमात्मा उनमें ऐसी शक्ति भर दे कि यह भयानक लडाई कितनी ही लम्बी क्यो न चले, तो भी इस

बीच वे अपना काम करते रहे। ऐसा हुआ तो मुझे भरोसा है कि मुट्ठीभर विद्यार्थी होगे, तो भी यह महाविद्यालय शोभा पायेगा और सारे हिन्दुस्तानमें आदर्श विद्यालय बनेगा।

इसका कारण न गुजरातका धन है, न गुजरातकी विद्या, पर इसका कारण यह है कि असहयोगकी पैदाइश गुजरातमे हुई है। असहयोगकी जड़ गुजरातमे रोपी गई है, उसकी सिंचाई गुजरातमें हुई है, और उसके लिए तपस्या भी गुजरातमे हुई है। इससे यह न मान लेना कि यह आदमी झूठा घमण्ड करता है। यह न मानना कि यह सारी तपस्या मैंने ही की है, या यह जड़ मैंने ही जमाई है। मैंने तो सिर्फ मन्त्र दिया है। एक बनियेका बेटा अगर ऐसा कर सकता हो तो मैंने यह ऋषिका काम किया है।

इससे ज्यादा मैंने कुछ नही किया। उसकी जड़ तो मेरे साथियोंने जमाई है। उनकी श्रद्धा तो मुझसे भी ज्यादा थी, तभी तो काम हुआ। मेरा दावा है कि मुझे अनुभव-ज्ञान है। देवता भी आकर समझायें तो भी मेरी श्रद्धा हिल नही सकती। जैसे इन आँखोसे मुझे सामनेके पेड साफ दिखाई देते है, वैसे ही मुझे साफ दिख रहा है कि हिन्दुस्तानकी उन्नति शान्तिपूर्ण असहयोगसे ही होगी। पर मेरे साथियोके बारेमे ऐसा नही कहा जा सकता। उन्होने तर्कसे, दलीलसे और श्रद्धासे माना है कि इस शान्त असहयोगसे ही तरक्की हो सकेगी।

हिन्दुस्तानमे या दुनियामे कही भी कोई अपने ही अनुभवसे काम नही करता। कुछको अनुभव होता है, जब कि और लोग वही काम श्रद्धासे करते है।

मेरे साथियोंने बुनियाद डाली है। उनमें ज्यादा गुजराती है, महाराष्ट्री भी है। पर ये महाराष्ट्री गुजरातमे आकर आधे, पौने या सवाये गुजराती ही बन गये है। उनके हाथो यह शस्त्र उज्ज्वल बना है। इसका पूरा चमत्कार अभी हमने नही देखा। जिस कामके लिए लड़कियोने अपनी चूड़ियाँ उतारकर मुझे दी है, उसका और अधिक चमत्कार तो आप छह महीनेके अन्दर देख सकेगे। पर इस सबकी जड़ — उसकी प्रत्यक्ष मूर्ति — यह महाविद्यालय है। हिन्दू मूर्तिपूजक है और इसके लिए हमे अभिमान है। इस मूर्तिके अलग-अलग अग है। उनमे से कुलपति मै खुद हूँ, अध्यापक, आचार्य और विद्यार्थी उसके दूसरे अंग है। मै खुद तो बूढा हूँ, पका पान हूँ, दूसरे कामोमें लगा हुआ हूँ। मेरे जैसा पका पान झड़ जाये, तो पेड़की कोई हानि न होगी। आचार्य और अध्यापक भी पत्ते है, अलबत्ता अभी कोमल पत्ते है। थोडे समयमें वे भी पककर शायद गिर जायेगे। पर विद्यार्थी इस सुन्दर पेडकी डालियाँ है और इन्ही डालियोमें से आचार्य और अध्यापकरूपी पत्तियाँ फूटेगी।

विद्यार्थियोसे मेरी प्रार्थना है कि तुम्हारी जितनी श्रद्धा मुझपर है, उतनी ही तुम अपने अध्यापकोपर रखना। पर तुम्हें अपने आचार्य या अध्यापक कमजोर जान पडे तो उस वक्त तुम प्रह्लादकी जैसी आगसे इन आचार्यो और अध्यापकोको भस्म कर डालना और अपने कामको आगे बढ़ाना। यही मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है और विद्यार्थियोको मेरा यही आशीर्वाद है।

आखिरमें मैं परमेश्वरसे प्रार्थना करता हूँ और उस प्रार्थनामें आप सबकी सम्मति चाहता हूँ। मेरी प्रार्थनामें आप सब साफ़ दिलसे शरीक हों :

हे ईश्वर, इस महाविद्यालयको ऐसा बनाइये कि इसके भीतर हम जिस आजादीका रात-दिन जप कर रहे हैं, वह आजादी मिले और उस आजादीसे अकेला हिन्दुस्तान ही नहीं बल्कि सारी दुनिया, जिसमें हिन्दुस्तान एक बूँदके बराबर है, सुखी हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८–११–१९२०

२६२. भाषण : अहमदाबादमें विद्यार्थियोंके समक्ष

१५ नवम्बर, १९२०

अध्यक्ष महोदय, विद्यार्थिगण, भाइयो और बहनो,

हमें आचार्य महाराजने याद दिलाया है कि कांग्रेसने कलकत्तेमें लोगोंसे जो प्रतिज्ञा कराई है, उसका पालन करना चाहिए। इस प्रतिज्ञाके साथ मैं आपको एक और प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाना चाहता हूँ। मेरे खयालसे यह कांग्रेस द्वारा की गई प्रतिज्ञासे अधिक महत्त्वकी है। मैं पिछले साल पंजाब गया था, जहाँ हम सबने एकमतसे हंटर कमेटीके बहिष्कारका निर्णय किया था। उस निश्चयपर पहुँचनेसे पहले हमने कई दिन चर्चामें बिताये थे। पण्डित मालवीयजीने बहुत-सी दलीलें दी थीं; हममें कितनी कचाई है, इसकी याद दिलाई थी, हम कितने आरम्भ-शूर हैं, इसका भी उस समय विचार हुआ था; नेताओंको जेलमें डाल दिया जायेगा, यह सब विचार हुआ था। इतने पर भी वहाँ आये हुए सभी लोगोंने — जिनमें पहला मैं, दूसरे पं० मालवीयजी, तीसरे पं० मोतीलालजी और चौथे मि० एण्ड्रयूज और कुछ अन्य लोग भी थे — मिलकर निश्चय किया कि हंटर कमेटीका बहिष्कार किया जाये। इस प्रतिज्ञाका स्मरण मैं आपको पहले कराता हूँ। मैंने उसी समय चेतावनी दी थी कि यह प्रतिज्ञा करेंगे तो आपको अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करनी होगी और जाँच करने पर यदि सब जुल्म साबित हो जायेंगे तो न्याय प्राप्त करनेके लिए मरना भी पड़ेगा। इसके लिए यदि देशका बलिदान देना पड़े, तो हमें वह भी देना ही होगा। मेरी चेतावनीके बावजूद उस समय वह प्रतिज्ञा सबको प्यारी लगी थी। इस बातको मनमें रखना कांग्रेसकी प्रतिज्ञाको स्मरण रखनेसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि कांग्रेसकी प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें तो ऐसा एक आरोप है कि उस वक्त लोगोंको विचार करनेका समय नहीं मिला था, उसे लोगोंने मेरी वाणीसे अभिभूत होकर यों ही स्वीकार कर लिया था। दूसरा आरोप यह है कि पहली ही बार बड़ी संख्यामें मुसलमान कांग्रेसमें गये थे और उनके संख्या-बलसे प्रस्तावको बहुमत मिल गया। असली बात यह हरगिज नहीं थी। असली बात यह थी कि प्रान्तवार मतगणना हुई थी और उसमें दो प्रान्तोंको छोड़कर बाकी सबने अधिक मतोंसे एक ही निर्णय किया था। फिर भी यह सच है कि उस प्रस्तावपर सभी आदमियोंने विचार न किया हो

और इसलिए उस प्रतिज्ञाको भले ही महत्त्व मत दीजिये। अलवत्ता जिसे कांग्रेसके प्रति आदर है, जिनके लिए कांग्रेसके प्रस्तावपर अमल करनेमें अन्तःकरणकी आवाज बाधक नही, उसे तो इस प्रतिज्ञाका भी निश्चयपूर्वक पालन करना ही चाहिए। परन्तु पजाबकी प्रतिज्ञा तो जान-बूझकर की गई है। ठण्डे दिलसे, जिस समय आवेश जरा भी नही रह गया था उस समय, विचार करनेके बाद की गई है। संकटका पूरा भान था, तब की गई है। जिनके प्रति आपका आदर-भाव है, जो आपके नेता हैं, जिस पजाबके लिए हम लड़ रहे हैं, उस पजाबकी नाक रखनेके लिए उन्होंने यह निश्चय किया है। मुझे आपको वह प्रतिज्ञा याद दिलानी थी।

अब जो विद्यार्थी इस राष्ट्रीय विद्यालयमे भरती नहीं हुए हैं, उनसे मैं पूछता हूँ कि तुम क्या चाहते हो? तुम भारतके लिए स्वतन्त्रता — स्वराज्य चाहते हो? तुम अपनी निजी संस्कृति चाहते हो या पराधीनता? पराधीनताको सह लेनेको तैयार हो, तो तुमसे कहनेके लिए मेरे पास एक शब्द भी नहीं है। गुजरात कालेजमे तुम्हारे लिए बड़े-बड़े खेलके मैदान हैं, वहाँ खेल-कूद सकते हो। वहाँ तुम्हारे लिए बड़े-बड़े प्रोफेसर हैं। वहाँ जैसी लेबोरेटरी है, वैसी तुम्हे यह विद्यालय दे सके, इसमें काफी समय लगेगा। वैसी सुविधाएँ तुम्हे यहाँ नही मिलेंगी। परन्तु कैदीको सोनेकी और रत्नजटित बेडियाँ पहना देनेसे यदि उसका कैदीपन कम हो जाता हो, तो ही तुम गुजरात कालेजमे कैदी नही हो। परन्तु यदि तुम मानते हो कि जहाँ हमारी स्वतन्त्रता हो, वही हमारा तेज बना रह सकता है तो तुम गुजरात कालेजका, वहाँ कितनी ही सुविधाएँ मिलती हो, तो भी त्याग कर दो और अडचनें उठाकर भी महाविद्यालयमें भरती हो जाओ। मैं तुम्हें उत्तेजित नही करना चाहता, परन्तु तुम्हारी बुद्धिको जाग्रत करना चाहता हूँ। तुम्हे अपने कर्तव्यका भान कराना चाहता हूँ, तुम्हारी अक्लका अपनी अक्लके साथ योग करा देना चाहता हूँ। फिर भी यदि तुम्हे यह लगता हो कि जबतक हम सरकारी स्कूल-कालेजमें पढ रहे हैं, तबतक स्वतन्त्रताका विचार ही नही कर सकते, यदि यह विचार करनेमें तुम्हें बेवफाई लगती हो, तो तुम सरकारी स्कूल-कालेज भले ही न छोडो। जबतक सरकारसे शिक्षा पाते हैं, तबतक सरकारको अच्छा कहना चाहिए। परन्तु यह सरकार तो उद्धत बन गई है, उसने हमपर अत्याचार किये हैं, उसने लोगोका तेज हर लिया है, उसने हमारे धर्मपर वार किया है, इतने पर भी क्या हम सरकारका भला चाह सकते हैं? तब भी क्या हम यह कह सकते हैं कि यह सल्तनत इतनी न्यायपरायण है कि उसमे सूर्य कभी नही छिपता? और यदि ऐसा नही चाह सकते, तो फिर सरकारसे दूर भागना चाहिए। प्रत्येक धर्म सिखाता है कि धर्मके प्रति बेवफाई-जैसा और कोई पाप नही है। इसीलिए मैंने लिखा है कि इस सरकारके विद्यालयोमे शिक्षा पाना जिस डालीपर बैठे हो, उसीको काटनेके समान है। इसलिए जिन लड़कोने अभीतक सरकारी स्कूल या कालेज नही छोड़ा है, उनसे मैं कहता हूँ कि तुम बार-बार अपने हृदयको टटोलो। तुम्हे लगे कि इस सरकारका अन्त करना ही चाहिए, तो हमारा सत्त्व, हमारी बहादुरी इसीमे है कि सरकारके स्कूल-कालेजोसे तुरन्त निकल जायें।

आचार्य महाराजने तुम्हे बताया कि कुछ सहयोग तो अनिवार्य है, जब कि कुछ ऐसा है, जिससे हम तुरन्त हाथ खींच सकते है। कुछ प्रकारकी वस्तुओंका त्याग करनेके लिए तो सारे देशका त्याग कर देनातक उचित हो सकता है। ऐसा देश-त्याग करनेका समय आयेगा या नही, यह मैं नही कहता। परन्तु आज वह समय नही आया, इसलिए हम इसपर विचार नही करते। हम जो तपश्चर्या करें, वह अपने कामके लायक ही करनी चाहिए। हमारे लिए जितनी चित्त-शुद्धि आवश्यक हो, अथवा जितने रोगसे मुक्ति प्राप्त करनी हो, उतनी यदि एक दिनके उपवाससे हो सकती हो तो दो दिनका उपवास करने-वाला बेवकूफ कहलाता है। जितनी तपस्या करना हमने तय किया है, उतनीसे यदि हमारा काम हो जाता हो, तो अधिक नही करनी चाहिए। यही जवाब तार, रेल वगैरहके सहयोगके विषयमें है। जिस सहयोगसे हमारे तेजका हनन होता है, जिस सहयोगसे हम सरकारसे इच्छापूर्वक दान लेते है, उसका तुरन्त त्याग कर देना चाहिए। सरकारी पाठशालाओमे जाना ऐसा ही सहयोग है। अब सौभाग्यसे राष्ट्रीय महाविद्यालय बन गया है। हमारे आचार्य और अध्यापकों-जैसे लोग सभी जगह नही होते। मैं इनकी तुलना स्थानीय गुजरात कालेजके प्रोफेसरोंके साथ नही करना चाहता। वह तो थोडे समयमें अपने-आप हो जायेगी। अभीतक कालेज न छोड़नेवाले विद्यार्थियोको राष्ट्रीय पाठशाला न खुलनेसे पहले जितना डर था, उतना अब नही रहा। अब वे यह नही कह सकते कि नया विद्यालय न खुले तो क्या होगा? उन्हे तो तुरन्त ही इस महा-विद्यालयमे भरती हो जाना चाहिए।

मेडिकल कालेजके एक विद्यार्थीने मुझसे पूछा कि हमे असहयोग करना हो तो क्या करे? मेडिकल कालेजके विद्यार्थी दो प्रकारके है। उनमे जो फीस देकर पढनेवाले है, वे तो कल ही हट जाये। परन्तु जो सरकारसे छात्रवृत्ति लेकर पढते हो और जिन्होने एक खास मियादके भीतर वह रकम लौटा देने या कुछ वर्ष सरकारी नौकरी करनेका इकरार किया हो, उन्हे मै आज ही कालेज छोड देनेकी सलाह नही देता। लोगोसे हम जो रुपया इकट्ठा करते है, उसमे से मै उन्हे रुपया नही दे सकता। वे और कहीसे उतनी रकम जुटाकर, सरकारको चुकाकर अपने प्रयत्नसे मुक्ति प्राप्त कर सकते हो तो ऐसा करना उनका कर्त्तव्य है। परन्तु अपनी जेबसे शुल्क आदि चुकानेवाले विद्यार्थियोका प्रश्न मेरे सामने इस समय खासतौरसे है। हमें चिकित्सा-शास्त्र सीखनेकी दूसरी सुविधा मिले या न मिले, तो भी जिस विद्याको ग्रहण करनेसे हमारी स्वतन्त्रता दूर जाती दिखाई दे, उस विद्याका त्याग करना चाहिए और जबतक ऐसी सुविधा न मिले, तबतक उस विद्याका मोह छोडकर किसी दूसरे धन्धेमे लग जाना चाहिए। यह पीढी यदि शौर्य-हीन बन जायेगी, तो विद्या प्राप्त करके भी वह क्या कर लेगी? विद्याके मोहकी मै निन्दा नही कर रहा हूँ। मै स्वीकार करता हूँ कि विद्याका मोह होना युवकोंका धर्म है। परन्तु उस मोहकी खातिर अपने देशको, अपने धर्मको होम नही देना चाहिए।

जिस विद्यासे धर्मकी रक्षा हो सके, वही विद्या है। इस विद्यापीठमें यही सूत्र स्वीकार किया गया है। वह सूत्र मुझे बहुत अच्छा लगा है। 'सा विद्या या विमुक्तये' —जिससे मुक्ति मिले, वही विद्या है। मुक्ति दो प्रकारकी है। एक मुक्ति वह है जो

देशको पराधीनतासे छुड़ाये। वह थोड़े समयके लिए होती है। दूसरी मुक्ति सदाके लिए है। मोक्ष, जिसे परम धर्म कहते हैं, प्राप्त करना हो तो सांसारिक मुक्ति भी अवश्य होनी चाहिए। अनेक भयोंमें रहनेवाला मनुष्य स्थायी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। स्थायी मोक्ष प्राप्त करना हो तो निकटवाला मोक्ष प्राप्त करना ही पड़ेगा। जिस विद्यासे हमारी मुक्ति दूर जाती है, वह विद्या त्याज्य है, वह विद्या राक्षसी है, वह विद्या धर्मविरुद्ध है। सरकारी विद्यालयमें मिलनेवाली विद्या कैसी भी हो, त्याज्य है एवं राक्षसी सरकार द्वारा मिलनेके कारण तो सर्वथा त्याज्य है।

विद्यार्थी माँ-बापके साथ कैसा बरताव करें अब मैं विद्यार्थियोंसे इस बारेमें कुछ कहूँगा। उनकी आज्ञाका उल्लंघन करें या न करें। उनकी आज्ञाका सुन्दर रूपमें पालन करना तुम्हारा परम धर्म है। परन्तु तुम्हारा अन्तर्नाद माता-पिताकी आज्ञासे भी बढ़कर है। तुम्हारा अन्तर्नाद तुमसे यह कहे कि माँ-बापके वचन केवल दुर्बलताके ही [सूचक] हैं, सरकारी पाठशाला छोड़नेमें तुम्हारा पुरुषार्थ है, तो माता-पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करके भी तुम सरकारी पाठशाला छोड़ दो। परन्तु यह अन्तर्नाद कौन सुन सकता है? मैंने पहले कई बार कहा है, वही फिर कहता हूँ कि जिस मनुष्यमें विनय भरी हो, जो सदा आज्ञापालन करता रहा हो, जिसने नीति-नियमोंको समझ लिया हो और उनका पालन किया हो, वही आज्ञाका उल्लंघन कर सकता है। जो दया-धर्मको अपने जीवनमें प्रधानता देता हो, जिसने ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करके अपनी इन्द्रियोंपर काबू पा लिया हो, जिसने न तो अपने हाथ-पैर मैले किये हों, न मन मैला किया हो, जिसने अस्तेय-व्रतका पालन किया हो, जिसने अनेक प्रकारके छल-कपट करके परिग्रह न बढ़ाया हो, वहीं कह सकता है कि मेरे अन्तःकरणकी यह आवाज है। तुम गांधीकी आवाज लेकर अपने माँ-बापके पास न जाना। तुम अपनी ही आवाज लेकर अपने माता-पिताके पास जाना और उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके कहना कि हम आपकी आज्ञाका पालन नहीं कर सकते।

एक विद्यार्थीने मुझसे कहा कि मैंने माँ-बापकी आज्ञाका उल्लघन करके सरकारी पाठशाला तो छोड़ दी, परन्तु अब वे कहते हैं कि मैं राष्ट्रीय महाविद्यालयमें न जाऊँ। मैंने उससे कहा कि उनकी इस आज्ञाका तुम जरूर पालन करो। माँ-बापका खयाल है कि नये विद्यालयमें मिलनेवाली शिक्षासे नुकसान होगा और इसलिए वे ऐसी शिक्षा प्राप्त करनेसे रोकना चाहें, तो ऐसा करनेका उन्हें हक है और ऐसी आज्ञा मानना पुत्रका धर्म है। जो नई चीज माँ-बापको बुरी लगे, उससे वे बच्चोंको दूर रख सकते हैं। वे मैला उठानेको मजबूर नहीं कर सकते। हरएक विद्यार्थी यह देख ले कि इस मामलेमें उसका फर्ज क्या है और उसके बाद जो अपना कर्त्तव्य लगे, उसका पालन माँ-बाप या सरकारके विरोधके बावजूद करे। ऐसा किये बिना देश ऊपर नहीं उठ सकता।

अब मैं तुमसे बम्बईमें हुई एक घटनाके बारेमें कहता हूँ। वहाँ कुछ विद्यार्थियोंने शर्म-शर्मके नारे लगाये। उन आवाज लगानेवालों में भाई निम्बकर भी थे।[1] बम्बईकी

१. देखिए "भाषण: विद्यार्थियोंके समक्ष", १४-११-१९२०।

सभामे मैंने श्रीमती बेसेंटके इस अपमान [के अनौचित्य] पर जोर दिया था। जिस किसी विद्यार्थीने असहयोग करना अगीकार किया हो, उसके हाथो शान्ति-भग होना मैं नही चाहूँगा। असहयोग करनेवाले को उसकी तीन शर्तें स्वीकार करनी चाहिए। उनमें से पहली शर्त यह है कि तुम शान्तिको अपने हृदयमे लिखकर रखना: न तो तुम शान्ति-भग करो, न किसीको गाली दो, न गुस्सा करो, न किसीके तमाचा मारो और न शर्म-शर्मकी आवाजें लगाओ। जबतक ऐसा किया जाता रहेगा तबतक आप इस आन्दोलनके योग्य नही बन सकेंगे। मैंने भाई निम्बकरसे कहा कि तुमने शान्ति-भग की है। तुम्हे श्रीमती बेसेंट या भाई पुरुषोत्तमदास[1] या भाई सीतलवाडने[2] कितना ही आघात पहुँचाया हो, तो भी 'शेम-शेम' कहना तुम्हारा धर्म नही था। तुम्हारा धर्म तो यह था कि शान्त रहते अथवा शान्तिपूर्वक सभासे चले जाते। भाई निम्बकर मेरी बात समझ गये और उन्होने भरी सभामे इसके लिए पश्चात्ताप किया और अपनी बहादुरी दिखा दी। जो अपनी भूल स्वीकार कर ले और उसके लिए पश्चात्ताप करे, वह सच्चा बहादुर है। ऐसा करके भाई निम्बकर आगे बढे हैं।

इसी प्रकार तुमसे — जो गुजरात कालेजमे जाते है तथा जो इस महाविद्यालयमें भरती हो गये हैं — मैं चाहता हूँ कि तुम अपना धर्म न छोडो। असहयोगकी प्रतिज्ञाके तीन पद है। पहला पद है शान्ति। असहयोग शान्तिमय, तलवारके बिना होना चाहिए। जबान भी तलवार है, हाथ भी तलवार है और लोहेका धारवाला टुकड़ा भी तलवार है। दूसरा पद अनुशासन या सयम है और तीसरा यज्ञ है। हम शुद्ध हो, तभी यज्ञ या बलिदान कर सकते है। बलिदान दिये बिना कोई पवित्र — शुद्ध नही बन सकता और विशुद्ध हुए बिना तुम अपनी पाठशाला न छोडना। यहाँ इस वक्त लगभग साठ विद्यार्थी है। इनमें से पाँच ही विद्यार्थी हो, तो इतने से भी विद्यापीठ अपना कामकाज चलायेगा। उसकी जड पवित्र होगी तो उसपर स्वराज्यकी स्थापना होगी। जिसने अपनी शुद्धि नही की, वह इस पवित्र नीवकी विशुद्धतामे वृद्धि नही करेगा। परन्तु उसकी बदनामी करायेगा। इसलिए इस विद्यालयमे दाखिल होनेवाले विद्यार्थियोसे मैं कहता हूँ कि यदि तुम असहयोगके इन तीनो पदोका पालन करना न चाहते हो तो तुम इसे छोड दो।

इस सभामे आये हुए माता-पिताओसे मैं कहता हूँ कि आप राष्ट्रीय परिषद्मे उपस्थित थे। उसके प्रस्ताव आपने हाथ उठाकर पास किये हैं, आप काग्रेसके भी माननेवाले हैं, आप अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह समझ लीजिये। आप अब अपने बच्चोपर आघात मत कीजिये। आप हिन्दुस्तानपर आघात मत कीजिये, आपके लडके-लडकियाँ यज्ञ करना चाहे, तो उन्हे ऐसा करनेसे रोकिये नही बल्कि उन्हे आशीर्वाद दीजिये और इस राष्ट्रीय विद्यालयमे अपने आशीर्वाद सहित भेजिये। ऐसा नही करेंगे तो आप अपनेको लजायेंगे, गुजरातको लजायेंगे और यह साबित करेंगे कि गुजरात और इसलिए भारत कमजोर है।

१. सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास; अर्थ-शास्त्री और बम्बईके एक व्यवसायी तथा नरमदलीय नेता।
२. सर चिमनलाल हरिलाल सीतलवाड; बम्बईके एक प्रमुख वकील; बम्बई विश्वविद्यालयके उप-कुलपति।

गुजरातने अबतक राजनीतिक मामलोंमे कभी इतना प्रमुख भाग नही लिया। अब गुजरातने आगेसे राजनीतिमे पडनेका निश्चय किया है। उसका यह निश्चय बना रहे और उससे गुजरात व गुजराती लोग समस्त भारतमे चमक उठे। आपमे सचाई अथवा वीरता न आई हो किन्तु यदि वह आपके बच्चोमे आयी हो तो उसे आप अवश्य पोषित कीजिये। ईश्वर आपको इतनी शक्ति दे, यह प्रार्थना करके मैं विराम लेता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८–११–१९२०

२६३. भाषण : अहमदाबादमें मैक्स्विनीके सम्बन्धमें

१६ नवम्बर, १९२०

कल सायंकाल साबरमतीके तटपर कॉर्कके लॉर्ड मेयर, ऐल्डरमैन[1] मैक्स्विनी-की[2] मृत्युपर शोक प्रकट करनेके लिए एक सभा हुई। इसकी अध्यक्षता श्री गांधीने की।

श्री गांधीने श्री मैक्स्विनीकी बहुत सराहना की और उनके उत्कृष्ट गुणोंका वर्णन किया। उन्होंने कहा, वे एक नवयुवक थे और मेयर निर्वाचित होकर उन्होंने अपनी मृत्यु बुलाई। उन्होंने हिंसामें विश्वास न रखते हुए मृत्युका वरण किया। किन्तु उन्होंने अपनी रिहाईके लिए अनशनका आश्रय लेकर गलती की। मुझे श्रीमती सरोजिनी नायडूकी मार्फत एक वीर आयरिश लड़कीकी लिखी हुई कविता प्रकाशनके लिए मिली थी। इसमें श्री मैक्स्विनीकी प्रशंसा की गई है; किन्तु वह मैंने अभीतक प्रकाशित नहीं की है, क्योंकि उनके अनशनसे लोगोंके सम्मुख एक बुरा उदाहरण उपस्थित होगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १८–११–१९२०

१. ब्रिटेन आदि देशोंमें महापौरके बादका दर्जा।

२. एक आयरिश देशभक्त, आयरलैंडकी मुक्तिके लिए ६५ दिनतक अनशन करनेके बाद जिनकी मृत्यु हुई। बादमें उनको श्रद्धांजलि अर्पित करनेके लिए दिसम्बर १९२० में नागपुरके कांग्रेस अधिवेशनमें एक प्रस्ताव भी पास किया गया था।

२६४. पत्र : एल० एन० साहूको[1]

[१६ नवम्बर, १९२० के बाद]

प्रिय साहू,[2]

मैं तुम्हारा पत्र 'यंग इंडिया' मे प्रकाशित नही कर रहा हूँ, क्योकि वह जिस विषयको लेकर लिखा गया है पहले उसकी स्थानीय जाँच-पड़ताल और विशेष खोज-बीन आवश्यक है।

गांधीजीके स्वाक्षरोमे अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७३३५) से।

२६५. अहिंसाकी विजय

असहयोग आन्दोलनके सम्बन्धमे भारत सरकारने जो वक्तव्य[3] जारी किया है, उसे आन्दोलनकी पहली शानदार विजय कहा जा सकता है; क्योकि सरकारने उसके अहिंसात्मक स्वरूपको ध्यानमे रखते हुए यह निर्णय किया है कि यद्यपि वह इस आन्दोलनको एक असवैधानिक आन्दोलन मानती है फिर भी फिलहाल किसी भी तरहकी हिंसा द्वारा उसका दमन करनेकी परिस्थितिको टाला जाये। सरकार और जनता दोनोको इस विवेकपूर्ण निर्णयके लिए बधाई दी जानी चाहिए। मुझे जरा भी सन्देह नही है कि यदि आन्दोलन सभी तरहकी हिंसासे, चाहे वह क्रियात्मक रूपमें हो चाहे वाणीके रूपमे, मुक्त बना रहता है तो सरकारके लिए दमन कर पाना तो असम्भव होगा ही। वह अपने विरोधमे लोकमतका लगातार बढते चला जाना भी रोक नही सकेगी। क्योकि उस लोकमतके पीछे राष्ट्रीय पैमानेपर सरकारी सरक्षण या मदद त्यागनेके सुनिर्देशित कामोका बल होगा।

परन्तु वक्तव्यमें सोच-समझकर धमकी भी दी गई है कि यदि नरम विचारोके नेता असहयोगका आगे बढना रोक नही पाते तो यह सम्भव नही होगा। इस धमकीके शब्दोंको ज्योका-त्यो दुहराना अच्छा रहेगा।

> वक्तव्यके अन्तमें कहा गया है "अन्ततोगत्वा जन सुरक्षाके अपने उत्तर-दायित्वका ध्यान रखते हुए सरकार उस नीतिपर कबतक कायम रह सकेगी" (अर्थात् दमन न करनेकी नीतिपर), "यह इस बातपर निर्भर होगा कि शान्ति-

१. १६ नवम्बर, १९२० के पत्रके जवाबमें जिसके साथ श्री साहूने पुरीके समाज नामक एक उड़िया साप्ताहिकमें प्रकाशित लेखका अनुवाद यंग इंडियामें प्रकाशनार्थ भेजा था।

२. भारत सेवक समाज (सर्वेट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के सदस्य।

३. ६ नवम्बर, १९२० के भारतके असाधारण गज़टमें प्रकाशित।

प्रिय नागरिकोंको आन्दोलनका प्रसार रोकने और उसके खतरोंको सीमित रखनेके प्रयत्नोंमें कितनी सफलता मिलती है।"

इसका यह अर्थ हुआ कि यदि असहयोगका प्रभाव इस हदतक पडता है कि सरकार द्वारा अपने कदम वापस न लेने और भारतके प्रति किये गये अपराधोपर पश्चात्ताप न करनेपर उसका दृढ बना रहना असम्भव हो जाये तो विवेक और तर्ककी जगह सरकार दमनसे काम लेगी। ध्यान देनेसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि सरकारको भय हिंसाका नही अपने अस्तित्वकी समाप्तिका है। यदि मेरा यह विश्लेषण सही है तो फिर सरकार भारतके लोगो और नरम दलके साथ एक निर्मम खेल ही खेल रही है। यदि उसका अभिप्राय अच्छा है तो उसे पक्के तौरपर यह घोषणा अधिकसे-अधिक स्पष्ट शब्दोमे करनी चाहिए कि जबतक आन्दोलन अहिंसात्मक रहता है वह उसमे दखल नही देगी, फिर चाहे उसकी माँग या परिणति पूर्ण स्वतत्रता ही क्यो न हो। मुझे इसमे जरा भी सन्देह नही कि यदि हम असहयोगी अपने आन्दोलनको हिंसासे मुक्त रख सके तो सरकारको आगे-पीछे ऐसी घोषणा करनी ही पडेगी। परन्तु यदि अदम्य लोकमतसे मजबूर होकर उसे यह घोपणा करनी पड़ी तो उसमे कोई शोभा नही रह जायेगी।

शेष वक्तव्य सरकारकी परम्परागत नीतिके अनुसार ही है। वह सदैवकी तरह झूठी आत्मप्रशसा और असहयोगियोके बारेमे गलतबयानियोसे भरा है। उदाहरणार्थ यह कहना गलत है कि जिनका दमन किया गया था वे अहिंसाके सिद्धान्तसे हट गये थे और इसलिए उनका दमन किया गया। मै सरकारको चुनौती देता हूँ कि जो लोग गिरफ्तार किये गये है वह उनके भाषणो या लेखोमे हिंसा भडकानेका एक भी उदाहरण दिखा दे। कभी-कभी प्रतिवादियोकी भाषा अनर्गल और अतिरजित भी रही है, परन्तु उनमे से कुछके मुकदमोंका जो ब्यौरा मुझे उपलब्ध है, उससे पता चलता है कि सम्बद्ध वक्ताओने हिंसाकी सलाह नही दी थी। वक्ताओने कुछ भी ऐसा नही कहा जो मै स्वय न कहता। यह कहना कि जिन लोगोको सजा दी गई है, वह इसलिए दी गई है कि "उन्होने फौज या पुलिसको राजनिष्ठासे च्युत करनेकी कोशिश की थी" बिलकुल गलत है। अलबत्ता भरती होनेवालो से की गई इस सार्वजनिक अपीलको कि वे अन्य देशोकी स्वतन्त्रताका अपहरण करने के लिए भाड़ैतू सिपाही न बन बैठे, भड़काना माना जाये तो बात अलग है। पजाबमें विद्रोही सभा सम्बन्धी घोषणा और कुछ असहयोगी अखबारोके विरुद्ध की गई कार्रवाई इस कथनका स्पष्ट खडन है कि सरकार

भाषणकी स्वतन्त्रता और समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रतामें, ऐसे समय जबकि भारत स्वशासनके सिद्धान्तको पानेकी दिशामें प्रगति कर रहा है, दखल नहीं देना चाहती।

आन्दोलनके नेताओके सम्बन्धमें गलतबयानियाँ की गई है और उनकी प्राणोत्सर्गकी इच्छाका अभद्रतापूर्वक उपहास किया गया है। मै इस सबपर ध्यान नही देना चाहता। सरकारको मालूम होना चाहिए कि मुझे और अली भाइयोको यह

जानकर कितनी राहत मिली है कि कमसे-कम अभी वे हमे कैद नही करना चाहते। सभी जानते हैं कि यदि हम कैद कर लिये गये तो हिंसा भड़कनेका जबरदस्त खतरा है। मै जानता हूँ कि यह स्वीकार करना शर्मकी बात है। यदि जनता सचमुचमे सशक्त और आत्मनिर्भर होती तो वह हमारी या किसी नेताकी गिरफ्तारीसे बेचैन न होती। जबतक यहाँ सरकारका आतक छाया हुआ है तबतक यह डर भी हमेशा बना रहेगा कि जब-जब इस दु खी देशकी जनता उन लोगोकी मदद और सेवासे वचित की जायेगी, जिनमे उसे विश्वास है, हिंसा भड़क उठेगी।

सरकारका तीसरा तर्क जो वह अपने आत्मसंयम बरतनेके पक्षमे देती है, देखने सुननेमें बहुत वाजिब जान पड़ता है मगर उसका मंशा भोले-भाले लोगोको भुलावेमें डालनेका है। वह कहती है कि

> **असहयोग एक ऐसी काल्पनिक और निराधार योजना है जो यदि सफल हो जाये तो उसका केवल यही नतीजा होगा कि देशभरमें उपद्रव और राजनैतिक हल्चल फैल जायेगी और सचमुच देशमें जिनका कुछ दाँवपर लगा है वे बरबाद हो जायेंगे।**

इसी एक वाक्यसे हमे सरकारके शैतानी स्वरूपका परिचय मिल जाता है। उसे यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सफल असहयोगका अर्थ है वर्तमान प्रणालीको अनुशासन और शान्तिपूर्ण ढगसे समाप्त करना और उसका स्थान उपद्रव और अराजकताको नही वरन् प्रथम कोटिकी राजनैतिक प्रणालीको देना है। और यह प्रणाली देशके सारे न्यायोचित हितोका संरक्षण करेगी जिनमें यहाँ ईमानदारीके साथ रोजी कमानेके इच्छुक यूरोपीय व्यापारियोके हित भी शामिल रहेंगे। "सच्चे दाँव" का इस तरह उल्लेख भारतकी जनताका जान-बूझकर अपमान करना है इस तरह धनिक वर्गोंको शरारतन उत्तेजित किया गया है कि वे जनताके विरुद्ध सन्नद्ध हो जाये। क्या भारतमे जनताका कोई हित निहित नही है? सच कहो तो क्या यही ऐसे लोग नही हैं जिनका देशमे सच्चा हित दाँवपर है? यदि देशका सर्वनाश हो जाये तो धनिक वर्ग देशसे बाहर चले जानेमे समर्थ है, किन्तु आम जनता सिवाय उस कुछ-एक गज जमीनको छोड़कर, जो इस दु खी देशमे उसके पास है, और कहाँ जा सकती है?

इस वक्तव्यको तैयार करनेवालो को यह कहना शोभा नही देता कि "असहयोगकी पुकार तो पूर्वग्रह और अज्ञानको ही सम्बोधित करती है" जबकि वे जानते हैं कि प्रत्येक मंचसे आत्म-बलिदान, आत्मशुद्धि और अनुशासनकी अपील की गई है। इसी तरह सत्याग्रहको गलत ढंगसे प्रस्तुत करना भी एक अशोभन बात है। उस घटनापूर्ण अप्रैल मासमे नि सन्देह कटु अनुभव हुए किन्तु उस समय अधिकारियो द्वारा किये गये कुकृत्योंकी स्मृति तो सदा ताजी बनी रहेगी। भारत यह कभी नही भूलेगा कि पंजाबमे एक क्रूर प्रशासकने किस तरह एक निर्दोष और शुद्ध आन्दोलनको मनमाने ढंगसे दबाना चाहा था। उस समयके अत्याचारो और अपने कर्त्तव्यके प्रति जनता जिस आश्चर्यजनक ढंगसे सजग हुई उससे सरकारका सत्याग्रहपर लगाया गया लांछन बिलकुल झूठा सिद्ध हो जाता है।

सम्बद्ध प्रस्ताव हमारे अज्ञान और द्वेषके प्रति ही नही हमारी विवशताके प्रति भी सम्बोधित है। क्योकि आगे इस आलेखमे यह कहा गया है.

> **यदि सब कुछ इनकी इच्छाओंके अनुसार हो गया तो भारत विदेशी हमलों और आन्तरिक अराजकताका शिकार बन जायेगा। टिकाऊ सरकारके लाभ, अबाध शान्ति, एक शताब्दीसे अधिक समयतक भारतकी व्यवस्थित प्रगतिसे प्राप्त लाभ तथा इन सबसे अधिक वे लाभ जिनके अब सुधार योजनाके अन्तर्गत होनेकी आशा है — इन सब चीजोंका अर्थात् भारतकी भौतिक उन्नति, राजनैतिक प्रगतिका कुछ सिरफिरोंकी गैरजिम्मेदार सनकपर बलिदान कर दिया जायेगा।**

मेरी नम्र रायमे वास्तवमे यह अश सबसे अधिक शरारतपूर्ण, बहुत ही गुमराह करनेवाला है और यदि सरकारके शब्दोमे कहे तो "सबसे अधिक अनैतिक है"। यदि प्रस्तुत तर्कमे कुछ दम है तो भारतका ब्रिटिश सगीनके बिना सुरक्षाहीन दशामे रहना ही उचित है। मै भारतके भविष्यकी इससे अधिक दु.खमय, अधिक अनैतिक और किसी भी राष्ट्रके इससे अधिक अयोग्य हो जानेकी कल्पना नही कर सकता। इस राष्ट्रके पास केवल एक शताब्दी पूर्व रूसको छोडकर यूरोपके शेष तीन बडे राष्ट्रोसे अधिक बहादुर सैनिक थे। ब्रिटिश सरकारकी इससे तीव्र और क्या निन्दा हो सकती है कि उसने ब्रिटिश राष्ट्रके वाणिज्य लोभके लिए एक समूचे राष्ट्रको नपुसक बना दिया? इस आलेखको तैयार करनेवाले यह अवश्य जानते होगे कि हमारी इच्छाओकी पूर्ण तुष्टिका अर्थ है एक ऐसा भारत जिसकी पूरी जनताका हृदय और उद्देश्य एक हो, जो स्वय पूर्ण तथा आत्मनिर्भर हो और अपनी दैनिक आवश्यकताओके लिए इतना उत्पादन कर ले कि ससारकी सभी नौसैनिक शक्तियोके सम्मिलित अवरोधको भी अच्छी तरह बरदाश्त कर सके। यह सब दिवास्वप्न भी हो सकता है; परन्तु "हमारी आशाओकी पूर्ण तुष्टि" का सही अर्थ यही है। यदि संसारके सारे राष्ट्र भी भारतमे, उसके किसी आक्रमणकी सजा देनेके लिए नही वरन् सगीनकी नोकपर उसके साथ व्यापार करनेके लिए, घुसे तो मै चाहता हूँ कि सिख, गोरखा, पुरबिया, मुसलमान, राजपूत और भारतकी अन्य सभी सैनिक जातियाँ स्वेच्छासे अपने देश और सम्मानके लिए उनसे युद्ध करे और देवतागण भारतके उस युद्धका दृश्य देखे। यदि मुझसे कहा जाये कि भारतमे उद्देश्य और मनकी ऐसी एकता कभी नही होगी, तो फिर मै यह कहूँगा कि भारतमे कभी स्वराज्य नही होगा और इसलिए सच्ची स्वतन्त्रता और सच्ची नैतिक तथा भौतिक प्रगति भी नही होगी। कैनिंगने लिखा था कि यदि भारतीय आकाशमे आदमीके अँगूठे-जितना एक बादल हो तो उसका किसी भी क्षण इतना बड़ा हो जाना सम्भव है कि यदि वह फट पडे तो सारा देश बह जाये। किन्तु मै अपने देशवासियोकी योग्यताके प्रति अपने अटूट विश्वासके कारण ऐसी आशा करता हूँ कि ब्रिटिश शासनके सभी कटु अनुभव जो इस समय राष्ट्र-के अवचेतन मनमे दबे है किसी भी समय मूर्त रूप ले सकते है और फिर राष्ट्र एकता और आत्मबलिदानकी आवश्यकता इस तरह पहचान ले सकता है कि उससे

ब्रिटिश सरकार पश्चात्तापके लिए विवश हो जाये और उसका सच्चा हृदय परिवर्तन हो जाये अथवा वह यहाँसे हट जानेको बाध्य हो जाये।

मैंने विद्यार्थी-जगत्को जो सलाह दी है, उसपर अनैतिकता आदिके आरोप लगाये गये हैं; मैं उनका खडन करके इस लेखको नही बढ़ाना चाहता। इस पत्रिकाके पृष्ठोमें पाठकोंके समक्ष इस प्रश्नपर अपनाई गई मूल स्थितिका धार्मिक विवेचन स्पष्टतः कर दिया गया है। मैं इस लम्बे लेखको केवल एक चीजके अभावकी ओर इशारा करके समाप्त करूँगा। यदि खिलाफतकी शर्तोंमें यहाँसे-वहाँतक सशोधन और लोगोको पजाबके बारेमें पूरी तरह सन्तुष्ट कर दिया जाये तो असहयोगकी अवश्यम्भावी प्रगति रोकी जा सकती है। यदि इन दोनो मुद्दोपर ब्रिटिश राष्ट्र भारतकी इच्छाओका सम्मान करे तो असहयोगके स्थानपर सहयोग होने लगेगा और उसकी सबसे स्वाभाविक परिणति साम्राज्यके अन्तर्गत स्वराज्य होगी।

परन्तु जहाँतक मैं राष्ट्रके मनको जानता हूँ, मेरी समझमें जबतक पश्चात्तापकी यह भावना उत्पन्न नही होगी तबतक सरकारके अपनाये सभी प्रस्तावो और दमनके तरीकोके बावजूद अहिंसात्मक असहयोग इस देशका धर्म बना रहेगा और अवश्य रहना चाहिए। देश कुचक्र, धोखाधड़ी और मीठे शब्दोंसे ऊब उठा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-११-१९२०

२६६. ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर

जब मैंने 'यग इंडिया'में महाराष्ट्रके ब्राह्मणेतर प्रश्नपर लिखा उस समय मुझे कुछ ऐसा लगा था कि ब्राह्मणेतर मामला, पूरी तरह नही तो बहुत हदतक, एक राजनैतिक मामला है और ब्राह्मणेतरोकी ब्राह्मणोसे वर्गके रूपमे उतनी शिकायत नही है जितनी कि कुछ शिक्षित ब्राह्मणेतरोको उन राष्ट्रवादियोसे है जो ज्यादातर ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणेतरोमें लिंगायत, मराठा, जैन और 'अछूत' हैं। फिर 'अछूतों'को भी अन्य ब्राह्मणेतरोसे शिकायत है और इस कारण वे ब्राह्मणेतरोंसे भी उतने ही दूर हैं जितने कि ब्राह्मणोंसे। शिक्षित ब्राह्मणेतरोकी शिकायत सबकी शिकायत नही है। परिस्थितिको निम्नलिखित शब्दोमें व्यक्त किया जा सकता है:

१ शिक्षित ब्राह्मणेतरोको वही राजनैतिक शक्ति प्राप्त नही है जो ब्राह्मणोको प्राप्त है। सरकारी और प्रतिनिधि संस्थाओमे शिक्षित ब्राह्मणोको ही सबसे अधिक पद प्राप्त हैं, हालाँकि शिक्षित-ब्राह्मणेतरोकी सख्या शिक्षित ब्राह्मणोसे अधिक है।

२ कुछ ब्राह्मण लिंगायतोके मन्दिरके गर्भगृहमें जानेका निषेध करते हैं; और लिंगायत उसपर अपना अधिकार बताते हैं, और (कुछ ब्राह्मणोकी दृष्टिमे) इस झूठे दावेका अन्य ब्राह्मणो द्वारा समर्थन किया जाता है।

३. ब्राह्मण सभी ब्राह्मणेतरोंके साथ शूद्रों-जैसा व्यवहार करते हैं और यह बरताव ठीक वैसा ही है जैसा अंग्रेजोका भारतीयोके साथ।

मेरी रायमे ब्राह्मणेतरोंकी शिकायत बहुत ही कमजोर है और यदि राष्ट्रवादी दलके ब्राह्मण काग्रेसकी असहयोग योजनाको पूरी तरहसे अमलमें लायें तो महाराष्ट्रके सार्वजनिक जीवनमे इस शिकायतका कोई आधार ही न रहे।

आन्दोलनकी शक्तिका कारण धार्मिक या सामाजिक निर्योग्यता नही, वरन् ब्राह्मणोंका अरसेसे चला आनेवाला राजनैतिक प्रभुत्व है जिसपर योग्यताके आधारपर नि.सन्देह उनका हक है। यदि राष्ट्रवादी ब्राह्मण, जिनके विचार स्वराज्यके बारेमे उदार बन गये हैं, सभी सरकारी पदोको त्याग दे और कौसिलोका तथा नगरपालिकाओ-की नामजद सीटोका बहिष्कार कर दे तो ब्राह्मणेतरोकी यह शिकायत अवश्य खत्म हो जायेगी। मुझे साफ नजर आ रहा है कि सरकार अपनी मुस्तकिल नीतिके मुताबिक ब्राह्मणेतरोंको काग्रेसमे रखकर उनका इस्तेमाल ब्राह्मणोके विरुद्ध करेगी और दोनोमे झगडा पैदा करके और ब्राह्मणेतरोको राजनैतिक प्रलोभन देकर ब्राह्मण-विरोधी आन्दोलन यथासम्भव बन्द नही होने देगी।

यह भी साफ है कि ब्राह्मण यदि सरकारसे मिलनेवाला सभी प्रकारका आश्रय छोड़ दें तो ब्राह्मणेतरोके प्रचारकी कमर टूट जायेगी और उनके विरोधका तीखापन खत्म हो जायेगा। ब्राह्मणेतर नेता मतदाताओंको अपने पक्षमे करनेका प्रयत्न कर रहे है और चुनाव करनेवालो को बता रहे हैं कि ब्राह्मणेतर कमजोर हैं अतः उन्हे अंग्रेजोंकी मदद अवश्य लेनी चाहिए। प्रश्नने इसीलिए अधिक गम्भीर रूप धारण कर लिया है। ब्राह्मण नेता भी स्वभावत. उन्ही मतदाताओके पास जा-जाकर उन्हे प्रभावित करने और अपना मत प्रयोग करनेसे विरत करनेकी कोशिश कर रहे हैं। इससे परस्पर दुर्भाव पैदा होता है। परन्तु यह दुर्भाव उस दुर्भावसे कम है जो नरम दलीय और राष्ट्रवादी लोगोके झगडनेसे पैदा होता है। स्थितिका सबसे दर्दनाक पहलू यह है कि यदि ब्राह्मणेतर नेता, जो जनताका प्रतिनिधित्व करने और उसके लिए चिन्ता करनेका दावा करते हैं, सरकारको अपना सहयोग देगे या सरकारी मददसे अपनी दशा बेहतर बनानेकी कोशिश करेगे तो इससे वास्तवमे जनतापर सरकारका प्रभुत्व और मजबूत होगा तथा सरकारी सरक्षणको बढावा मिलेगा और पजाब तथा खिलाफतकी गलतियोका निराकरण और भी कठिन हो जायेगा। इस प्रकार ब्राह्मणेतर नीति स्पष्ट ही एक आत्मघाती नीति है। ब्राह्मणों या राष्ट्रवादियोकी चाहे जो शिकायते हो, निश्चय ही ऐसी सरकारसे गठबंधन द्वारा उनका इलाज नही हो सकता, जिसका धर्म जनताका आर्थिक शोषण करते हुए उसे दुर्बल बनाना है। पजाब और कुछ हदतक खिलाफत सम्बन्धी अन्यायको दूर करनेसे इनकार करना हर कीमतपर अग्रेजोकी प्रतिष्ठा बनाये रखनेकी नीतिपर आधारित है। एक लाख अग्रेज तीस करोड इनसानोंको पशुबलसे तो अपने अधीन कदापि नही रख सकते।

परन्तु उन्हें उत्तरोत्तर अत्यन्त सूक्ष्म ढंगसे लाचार बनाकर वह अपनी शक्ति बढ़ा सकती है और बढाती है। इसलिए मै ब्राह्मणेतर नेताओको सरकारको सहयोग देनेके खतरोके विरुद्ध चेतावनी देना चाहता हूँ कि उससे उसी उद्देश्यमे बाधा पडेगी

जिसे वे पूरा करना चाहते हैं। थोड़ेसे सरकारी पदोको प्राप्त करके या विधान परिषदोंके सदस्य चुने जाकर वे जनताकी आर्थिक स्थिति बेहतर नही बना सकते।

आर्थिक पैमानेसे नापें तो हमारी ३५ वर्षोकी राजनैतिक गतिविधिका विनाशकारी परिणाम ही निकला है। आज भारतकी जनतामें अकाल और बीमारीके दुष्प्रभावको सहनेकी शक्ति पचास साल पहलेकी अपेक्षा कम है। राष्ट्रके इतिहासके किसी भी युगकी अपेक्षा आज भारतीयोमें कम पौरुष है।

इस ख्यालसे कि हम सरकारका संरक्षण पाकर अपनी राजनैतिक स्थिति सुधारेगे, ब्राह्मणेतर नेताओके सरकारके हाथकी कठपुतली बननेकी सम्भावना है। शक्तिशाली ब्राह्मण-दल आसानीसे इस परिस्थितिको बचा सकता है। यह दल बुद्धिमान है, शक्तिसम्पन्न है और परम्परागत सत्ताकी प्रतिष्ठा उसे प्राप्त है। उनके मनपर विजय पानेके लिए विनय धारण कर सकता है। असहयोग-योजनाको पूरी तरह अपनानेसे यह बात अपने-आप सध सकती है, परन्तु इतना ही पर्याप्त नही है।

उस समयतक कटुता तो बनी ही रहेगी जबतक कि ब्राह्मण उन लोगोकी ओर मैत्रीका हाथ नही बढाते जो अपनेको कमजोर महसूस करते है और मानते है कि उन्हें चोट पहुँचाई गई है। कर्नाटकमे ब्राह्मणेतरोके प्रति राष्ट्रवादी अखबारो द्वारा अहंकारपूर्ण, चोट पहुँचनेवाली भाषाका प्रयोग किये जानेकी शिकायते मिली है। वैसे भी यह सुना जाता है कि राष्ट्रवादी ब्राह्मण उनको छोटा समझते है और उनके साथ ठीक व्यवहार नही करते। कम ज्ञान सम्पन्न ब्राह्मणेतर देशभाइयोको अपने अपेक्षाकृत अधिक ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मण भाइयोसे शिष्टता और सद्भावकी आशा रखनेका अधिकार है। ब्राह्मणेतर जनतामें अभीतक ब्राह्मण-विरोधी द्वेष-भावना नही है। मुझे महाराष्ट्रके ब्राह्मणमें विश्वास है और मै जानता हूँ कि वह ब्राह्मणेतर प्रश्नको हिन्दुत्वकी उस परम्पराके अनुकूल ही सुलझायेगा जो उसे विरासतमें मिली है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७–११–१९२०

२६७. गुजरात महाविद्यालय

मुझे गुजरात महाविद्यालयका उद्घाटन करते समय जिस असमंजसका अनुभव हुआ वैसा कभी नहीं हुआ था।[1] मैं जानता था वह एक ऐसी मौन और शान्तिपूर्ण क्रान्तिके आरम्भका सूचक है जिसे शायद मेरे श्रोतागण समझ न सके अथवा पसन्द न कर पायें। मैंने यह भी महसूस किया कि यदि इस राष्ट्रीय महाविद्यालयको इमारतों या शैक्षणिक साधनोंकी सम्पन्नताकी बाह्य कसौटीपर परखा गया तो वह खरा नहीं उतरेगा। किन्तु सरकार, जो अन्ततोगत्वा हमारी सारी भौतिक सम्पत्तिकी स्वामिनी होनेका दावा रखती है, चूँकि राष्ट्रकी प्रतिनिधि नहीं रही और जनताका उसपर विश्वास भी नहीं रहा, इसलिए राष्ट्रीय महाविद्यालयकी इमारत बना पाना कठिन काम था। फिर भी नये महाविद्यालयमें ऐसी सम्भावनाएँ हैं, जिनकी आज कल्पना कर सकना सम्भव नहीं है। कौन कह सकता है कि यह राष्ट्रीय स्वतन्त्रताका बीज ही सिद्ध हो जाये। इसकी सफलता शिक्षकों और विद्वानोंके सम्मिलित प्रयत्नोंपर निर्भर रहेगी। मुझमें कोई साहित्यिक योग्यता नहीं है, फिर भी मैंने कुलपतिका पद स्वीकार करके उद्घाटन-उत्सव सम्पन्न किया, क्योंकि मैं असहयोगको राष्ट्रीय पुनर्निर्माणका एकमात्र उपाय मानता हूँ और मेरा विश्वास है कि महाविद्यालयका शिक्षकवर्ग और सीनेटके सदस्य भी सचमुच इसी विश्वाससे ओतप्रोत हैं। मैंने अपना काम प्रार्थनापूर्ण भावसे नम्रतापूर्वक शुरू किया है। भगवान् नये विद्यापीठ और महाविद्यालयका संरक्षण करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-११-१९२०

१. देखिए "भाषण: गुजरात महाविद्यालयके उद्घाटनपर", १५-११-१९२०

२६८. सिख लीग

'ट्रिब्यून' के प्रतिभाशाली सम्पादक, बाबू कालिनाथ रायको एक सिख पाठकने[1] एक पत्र प्रकाशनार्थ भेजा था। उन्होंने कृपापूर्वक उसका एक अंश मेरे विचार जाननेके लिए भेजा है, जो इस प्रकार है:

> कुछ सिख पिछली २१ अक्तूबरको महात्मा गांधीसे सिख जनतामें उनके प्रचारके दुष्प्रभावके सम्बन्धमें बातचीत करने गये थे, उन्हें गांधीजीने बताया कि असहयोगका मेरा प्रचार अहिंसात्मक है; तथापि आन्दोलनके दिनोंमें हिंसात्मक बन जानेके लक्षण दिखाई दे रहे हैं। मैं सिखोंसे आग्रहपूर्वक कहूँगा कि वे वाणी और कर्म, दोनोंसे अहिंसक बने रहें; परन्तु यदि मेरी चेतावनीके बावजूद सिख समाज हिंसक बन जाता है और यदि ब्रिटिश अधिकारी उन्हें ताकतसे कुचलते हैं तो मुझे दुःख नहीं होगा। तब हिन्दुओं या मुसलमानोंको मैं उनकी मददके लिए नहीं आने दूंगा और उन्हें ध्वंस हो जाने दूंगा; क्योंकि ऐसे तत्त्वकी आहुति और पूर्ण समाप्तिसे ही अहिंसात्मक असहयोगका प्रचार सफल होगा जिसके हिंसापूर्ण हो जानेकी सम्भावना है।

उपर्युक्त अंश उद्धृत करनेके बाद बाबू कालिनाथ राय कहते हैं:

> लेखक यह भी कहता है कि ये शब्द, जैसे आपने प्रयुक्त किये थे, ज्योंके-त्यों सिख लीगकी एक सभामें पढ़कर सुनाये गये थे और यद्यपि आप वहाँ उपस्थित थे आपने रिपोर्टका प्रतिवाद नहीं किया था। मुझे यह भी सूचित किया गया है कि पत्र लाहौरके 'सिविल ऐंड मिलिटरी गजट'में प्रकाशित भी हो चुका है।

मैं समझता हूँ कि उपर्युक्त बातें कहनेका उद्देश्य मेरे दोष दिखाना है। जिस बातचीतका उल्लेख किया गया है वह काफी लम्बी, लगभग एक घंटेतक, चली थी। बातचीतके दौरान मैंने जो-कुछ कहा था उसे सन्दर्भसे हटाकर, अन्य सन्दर्भोके साथ मिलाकर कुछ इस तरह दिया गया है मानो मैंने उसी ढंग और उसी क्रमसे वे बातें कही हों। तथ्य यह है कि बातचीत कभी हिन्दुस्तानी और कभी अंग्रेजीमें होती थी और वह शिष्टमण्डलके उन सदस्योंको सम्बोधित थी जो मुझसे यह आग्रह करने आये थे कि मैं सिखोंके सामने असहयोगका प्रस्ताव न करूँ खासकर उस समय जब कि स्वयं मैंने लीगके कुछ सदस्योंका हिंसात्मक रुख देखा है। प्रश्नोंका उत्तर देते समय मैंने यह कहा था कि मुझे सभामें उपस्थित कुछ सिखोंका रुख पसन्द नहीं आया और उससे मुझे दुःख भी हुआ है। मैंने उन्हें यह भी बताया कि यदि कहनेकी अनुमति दी जाये तो मैं श्रोताओंको हिंसाके खतरेके प्रति सावधान करना चाहूँगा। जो सर-कारसे सहयोग कर रहे हैं उन्हें हिंसाके द्वारा असहयोगके लिए बाध्य करनेकी कोशिश

१. सेवारामसिंह।

करना आत्मघातक होगा। मैंने उन्हें यह भी बताया कि यदि असहयोगी हिंसा करेंगे तो वह सर्वनाशको आमन्त्रित करना होगा क्योंकि उससे तो अंग्रेजोंको पूरेके-पूरे समाजको नष्ट कर देनेका बहाना मिल जायेगा। यह मैंने अवश्य कहा कि यदि मुझसे बना तो मैं हिन्दू-मुसलमान दोनोंको किसी भी हिंसात्मक आन्दोलनकी मदद करनेसे विमुख करूँगा और जिस सम्भावनाकी बात कही गई है उसके डरसे भी मैं सरकारके विरुद्ध छेड़े गये संघर्षसे बाज नहीं आऊँगा।

इस प्रकार मेरे कथनका जो सारांश पत्र-लेखकने दिया है वह मेरे प्रति अन्याय ही है। मैं लेखकको नहीं जानता और न मैंने वह पत्र ही देखा है जिसका उद्धरण मुझे बाबू कालिनाथ रायने भेजा है। मुझे यह जरूर याद है कि सिख लीगमें एक वक्ताने अपने भाषणमें बातचीतका सार दिया था। उसका भाषण गुरमुखीमें था और जहाँतक मैं उसे समझ सका, मैं समझता हूँ कि उसने मेरी बातोंका सार सही-सही दुहराया था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-११-१९२०

२६९. श्री डगलसका उत्तर

लखनऊ
१२ नवम्बर, १९२०

सेवामें
सम्पादक
'यंग इंडिया'

महोदय,

१० तारीखके 'इंडिपेंडेंट' में आपके पत्रसे लेकर श्री गांधीका 'लखनऊके भाषण' शीर्षक जो लेख[1] प्रकाशित किया गया है, मैं उसके सिलसिलेमें आपसे अपने स्तम्भमें स्थान देनेका सौजन्य दिखानेकी प्रार्थना करता हूँ, क्योंकि उसमें श्री गांधीने मुझे एक तरहसे "अपनी स्थिति स्पष्ट करने" की चुनौती दी है। व्यक्तिगत रूपसे मैं नहीं समझता कि कोई ऐसी चीज है जिसे मेरी तरफ़से स्पष्ट करनेकी आवश्यकता हो। 'इंडियन डेली टेलीग्राफ़' को मेरा २३ अक्तूबरका पत्र, यद्यपि जान-बूझकर संक्षिप्त रूपसे लिखा गया है, मेरे सामने है ही और जिनके आँखें हैं, वे उसमें क्या लिखा गया है सो देख सकते हैं। जो देखना नहीं चाहते, उन्हें समझा सकनेकी मैं आशा नहीं रखता। मेरे मौनका गलत अर्थ निकाला जा सकता है, अन्यथा मैं अब इस मामलेमें कुछ और न कहना ही पसन्द करता। मैं जो लिख रहा हूँ सो अनिच्छापूर्वक ही

१. ३-११-१९२० के यंग इंडियामें प्रकाशित।

लिख रहा हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ कि मुझे इसमें धर्मोंकी बातका उल्लेख तो करना ही पड़ेगा; परन्तु मैं पूरी कोशिश करूँगा कि किसी की भावनाओं और धार्मिक मान्यताओंको ठेस न पहुँचे।

श्री गांधीका कहना है कि मैंने १५ अक्तूबरकी सभामें विरोध नहीं किया और बादमें भी उनसे शिकायत नहीं की। मैंने ऊबकर सभा छोड़ दी थी इसलिए वहाँ विरोध करनेकी बात ही नहीं उठती, फिर आजकल राजनैतिक सभाओंमें श्रोताओंकी जो मनःस्थिति होती है, उसे ध्यानमें रखते हुए इसमें भी बहुत सन्देह है कि यदि मैं विद्वान् मौलानाओंके भाषणोंका विरोध प्रकट करनेको उठता भी तो मेरी बात सुनी जाती या नहीं। रही श्री गांधीसे शिकायत करनेकी बात, सो इस मामलेका सम्बन्ध मुझसे और मेरे भावी आचरणसे, केवल असहयोगी होनेके नाते नहीं वरन् एक ईसाई होनेके नाते भी है। श्री गांधीके लिए मेरे मनमें चाहे जितना आदरभाव हो, एक ईसाईके नाते मैं उन्हें अपने आचरण-का निर्देशक बनाने और उनकी सलाह लेनेसे इनकार करता हूँ।

श्री गांधी यह भी कहते हैं कि विवरणमें एक बात गलत थी किन्तु उनके भाषणकी प्रकाशित रिपोर्टके लिए जिम्मेदार महादेव देसाई हैं, मैं नहीं। बात जिस तरह पेश की गई है उससे मेरे प्रति अन्याय होता है, बस इतना ही मैं गलतफहमी बचानेके लिए कहता हूँ।

अब रही मौलानाओंके भाषण और उनके परिणामस्वरूप असहयोग आन्दो-लनसे मेरे हटनेकी बात। २१ अक्तूबरके मेरे पत्रका सारांश यह है कि एक ईसाईका 'काफिर' कहकर उल्लेख किया गया और उसके हत्यारेको शहीद बताया गया था और मेरी रायमें इस कथनका अभिप्राय उस हत्याके दोषका मार्जन करना था। 'काफिर' शब्दके प्रयोगको स्वीकार तो किया गया, किन्तु श्री गांधी अपने जवाबमें कहते हैं कि बिशप हेबरने हिन्दुओंको काफिर (हीदन) बताया था और आज अनेकों ईसाई गिरजाघरोंमें पूरीकी-पूरी मानव-जातिके प्रति घृणापूर्ण बातें कही जाती हैं। इस प्रकारके तर्कसे वकालतकी बू आती है और मुझे आश्चर्य है कि श्री गांधी-जैसा प्रख्यात व्यक्ति मूल विषयसे इतनी दूर कैसे चला गया। लखनऊमें १५ अक्तूबरके भाषण किसी मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघरसे नहीं दिये गये थे। यदि मुझे बयान करनेकी अनुमति दी जाये तो वे भाषण एक राष्ट्रीय मंचसे दिये गये थे, जिस मंचसे श्री गांधी अपने कई लेखोंमें भारतीय ईसाइयों और यहूदियोंका आह्वान कर चुके हैं; और ये भाषण ऐसे वैसे कट्टर, भक्त मौलवियोंके नहीं वरन इस आन्दोलनके अग्रणी लोगोंके थे। जिस सभामें वे भाषण दिये गये थे, वह एक राजनैतिक सिद्धान्तके पोषणार्थ हुई थी। श्री गांधीने मेरे पत्रके उस अंशपर विचार नहीं किया जिसमें मैंने कहा कि 'हत्यारे' को शहीद बताया गया है और न उन्होंने अपने लेखमें यही कहा है कि उस शब्दके प्रयोगका आगे-पीछे कभी किसीके द्वारा प्रतिवाद किये जानेकी गुंजाइश नहीं थी। मैं जोर देकर कहता हूँ कि इस शब्दका प्रयोग मौलाना शौकत अलीने

किया, जिन्हें श्री गांधी जाहिरा तौरपर इस आन्दोलनमें अपना सिपहसालार कहते हैं। श्री गांधी यदि इसका महत्त्व नहीं समझ सके तो फिर इसमें भी आश्चर्यकी कोई बात नहीं है कि मेरा रुख उनकी समझमें नहीं आया। परन्तु यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। स्थान राष्ट्रीय मंच था, अवसर अहिंसात्मक असहयोगके उपदेशका, वक्ता इस आन्दोलनके मुसलमान नेता और उनके भाषणोंका निष्कर्ष यह था कि यद्यपि वे इस हत्याको पार्थिव दृष्टिसे ठीक नहीं समझते किन्तु धार्मिक दृष्टिसे चूंकि मारा गया व्यक्ति एक ईसाई है और हत्यारा मुसलमान है इसलिए वह हत्यारा शहीद है। मैं श्री गांधीसे इस सम्बन्धमें सोचनेकी प्रार्थना करता हूँ कि यदि एक हत्यारेका वर्णन 'शहीद' के रूपमें किया जाये तो उसका इतना-भर अर्थ तो अवश्य है कि जिस हत्याके द्वारा हत्यारा 'शहीद' बन जाता है वह हत्या श्रेष्ठ कार्य है और यह मानकर कि इसके विपक्षमें सूक्ष्म विरोधी भावनाका विचार नहीं करना चाहिए, जनताको जोश दिलानेके लिए 'शहीद' का दृष्टान्त दिया गया ताकि समान धर्मानुयायी यदि उनमें धार्मिक लाभकी आकांक्षा हो तो वे उस मार्गको ग्रहण करें। इस कथनसे हत्याका दोषनार्जन नहीं होता, ऐसा माननेके लिए अत्यन्त तीव्र विवेकबुद्धिकी आवश्यकता है। यद्यपि इस प्रश्नके गुण-दोषपर धार्मिक दृष्टिसे विचार करना मेरा काम नहीं तथापि मेरा विचार है कि इन भाषणोंसे हत्याके दोषको नजरअन्दाज ही किया गया था। नरम शब्दोंमें कहें तो एक साँसमें हत्याको पार्थिव दृष्टिसे गलत कहना और दूसरीमें उसे धार्मिक दृष्टिसे सही बताना, एक हदतक न केवल कपटपूर्ण है वरन् अहिंसात्मक असहयोगके मंचसे बहुत ही अनुपयुक्त है और सो भी इस आन्दोलनके नेताओंके द्वारा। और जब किसी प्रचारके नेता उसके किसी महत्त्वपूर्ण मूल सिद्धान्तका उल्लंघन करते हैं तो मेरी रायमें विरोध करनेवाले अनुयायियोंके लिए दो ही रास्ते हैं — यदि वे अल्पसंख्यक हैं तो विरोध प्रदर्शित करके अलग हट जायें और यदि बहुसंख्यक हैं तो ऐसे नेताओंको उनके पदसे हटा दें। मैं एक ईसाई होनेके कारण पहली स्थितिमें था और मैंने पहला रास्ता अपनाया। यदि वे वास्तवमें इन भाषणोंको अनुचित मानते हैं और एक बेजा स्थितिकी कोरी शाब्दिक व्याख्या करके उसे कुछ समयतक बनाये नहीं रखना चाहते तो श्री गांधी और जनताको निर्णय करना चाहिए कि उनके खिलाफ क्या कदम उठाया जाये। श्री गांधी मुझसे प्रश्न करते हैं कि "क्या मैं अब स्वराज्य या पंजाबके लिए राहत नहीं चाहता?" मेरा उत्तर है कि निश्चय ही चाहता हूँ परन्तु यह भी मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ कि वह ऐसे मुसलमान नेताओंके साथ रहकर प्राप्त नहीं हो सकती जो अवसरवादी हैं और जिन्होंने उस दिन धार्मिक उपदेशकी आड़में हिंसाका उपदेश दिया था। मैं फिर अपनी ही बातको दोहराकर कहता हूँ कि इन परिस्थितियोंमें मेरे लिए एक ऐसे आन्दोलनमें भाग लेते रहना असम्भव है जिसके मुसलमान नेता एक ईसाईकी निर्दय हत्याके बारेमें ऐसे विचार रखते हों।

मेरी तरफसे इस सम्बन्धमें ये मेरे अन्तिम शब्द हैं।

एच० पी० डगलस

मुझे कहनेकी जरूरत नहीं कि श्री डगलस लक्ष्यसे दूर भटक गये हैं। वे 'अपने' असहयोग आन्दोलनमें एक या किसी भी मुसलमानका साथ भले ही न दें, परन्तु क्या वे एक अन्यायी सरकारसे इसलिए सहयोग कर सकते हैं कि उनका सहयोगी भी उनकी समझमें उतना ही अन्यायी है? जहाँतक मौलाना शौकत अलीका सम्बन्ध है, मैं उनसे अपनी स्थिति बयान करनेको कह रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-११-१९२०

२७०. सत्याग्रह और दलित जातियाँ[1]

४ नवम्बर, १९२०

सेवामें
सम्पादक
'यंग इंडिया'

महोदय,

२७ अक्तूबरके अपने सम्पादकीय लेखमें मेरे पत्रपर टिप्पणी करते हुए वस्तुतः आपने मेरा मुख्य अभिप्राय स्वीकार कर लिया है। उसे आपकी ही सशक्त भाषामें कहूँ कि "हम अंग्रेजोंसे अपने खूनसे रँगे हाथ धोनेको कहें उससे पहले हम हिन्दुओंका यह कर्त्तव्य है कि हम अपने दामनके दाग मिटा लें।" परन्तु क्या आप वास्तवमें अंग्रेजोंसे ऐसा कह नहीं रहे हैं? आप मानते हैं कि मेरा "प्रश्न ठीक और समयोचित है" तो फिर आपने जो राजनैतिक आन्दोलन आजकल शुरू कर रखा है, क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि वह कुछ नहीं तो समयसे कुछ पहले शुरू कर दिया गया है। आप यह भी कहते हैं कि "आज जो इस साम्राज्यमें हमारी स्थिति अछूतों जैसी हो गई है" वह गोखलेके शब्दोंमें "न्यायप्रिय ईश्वर द्वारा किया गया प्रतिशोधात्मक न्याय है।" यदि ऐसा ही है तो क्या इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि हम कदापि अपने राजनैतिक उद्देश्य तबतक प्राप्त नहीं कर सकते जबतक उस प्रतिशोधात्मक न्यायके मूल कारण या कारणोंको हम दूर नहीं कर लेते, और (भगवान् बचाये) यदि हमारा वर्तमान आन्दोलन सफल भी हो जाता है, अंग्रेज हटा दिये जाते हैं

१. देखिए "दलित" जातियाँ।

और स्वतन्त्रता स्थापित हो जाती है, तो वह परिवर्तन एक घंटे भी नहीं टिकेगा। क्योंकि जैसा हमारे सम्माननीय कविगुरु ठाकुर "राष्ट्रीयता" पर लिखी अपनी पुस्तकमें कहते हैं, "इस देशमें सामाजिक दासताकी बालूपर स्थायी राजनैतिक स्वतन्त्रताकी इमारत नहीं उठाई जा सकती।" वे आगे चलकर कहते हैं कि "इस देशकी सच्ची समस्या सामाजिक है न कि राजनैतिक"। मैं जानता हूँ कि आप भी कुछ समय पहले यही राय रखते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि यहाँ अपने कामके प्रारम्भिक कालमें आपके एक भाषणमें मैंने पढ़ा था कि यदि हम भारतीय केवल अपने आन्तरिक दोषों और सामाजिक पिछड़ेपनको दूर कर दें तो स्वायत्त शासन हमारे बिना माँगे और बिना प्रयत्न किये हमें सुलभ हो जायेगा। मुझे बहुत ही खेद है कि उसके बाद आपने अपनी राय बदल दी है। मैं इसे किसी राष्ट्रीय आपत्तिसे कम नहीं मानता। परन्तु मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि हममें से जो लोग अब भी वही विचार रखते हैं उन्हें आप गलत न समझें। बात यह है कि वे अब भी हृदयसे यह राय रखते हैं। इसीलिए लाखों दलितों और मद्रास तथा दक्षिणके ब्राह्मणेतरोंने, जो उन भागोंकी आम जनताका प्रतिनिधित्व करते हैं, आपके इस राजनैतिक असहयोग आन्दोलनके विरुद्ध इतनी दृढ़तासे विरोध प्रकट किया है। यह उनकी रायमें उलटी गंगा बहाने जैसा है। वे जहाँ जन्मे हैं उस देशके प्रति गद्दार नहीं हैं; जैसा कि लगता है आप सोचते हैं। मैं उन्हें जिस रूपमें जानता हूँ आप उन्हें उस रूपमें नहीं जानते; इसलिए मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वे आपसे कम सच्चे नहीं हैं और उनमें देशभक्ति भी कम नहीं है। वे पूर्णतया विश्वास करते हैं कि फिलहाल तो ब्रिटिश राज ही सबसे अच्छा है और यदि आप कल स्वतन्त्रता स्थापनमें सफल भी हो जायें और यदि वह जातिकी शिलासे टकराकर चकना-चूर नहीं भी हो जाती, जैसा कि हमारे लम्बे और बहुविध इतिहासमें कई बार हुआ है, तो भी वह थोड़े ही दिनोंमें अफगानों या जापानियोंके हाथों छिन जायेगी। इसलिए वे, भारत प्रजातन्त्र बने, इसके पहले प्रजातन्त्रके सुरक्षित रहनेकी परिस्थिति पैदा करना चाहते हैं; ताकि वह भीतरी और बाहरी शत्रुओंसे भी सुरक्षित रह सके। इसीलिए वे आन्दोलनमें शरीक होनेके आमन्त्रणके लिए आपको धन्यवाद देते हैं; किन्तु यदि आप उसे बन्द कर दें और स्थायी रूपसे भारतको प्रजातन्त्रके योग्य स्थान बनानेके उनके उदात्त प्रयत्नोंमें शामिल हो जायें तो वे आपको और भी अधिक धन्यवाद देंगे। "गुलामोंके गुलाम" और "बड़ेमें कम तो शामिल ही है", ऐसी शब्दावलि निःसन्देह चतुराईपूर्ण शब्दप्रयोग है। और सम्भव है कि छिछले किस्मके लोग उनके भुलावेमें आ जायें परन्तु सभी व्यावहारिक बुद्धिवाले लोगोंको वह छिछला प्रतीत होता है। और यह कहना न तो सही है और न उचित कि यदि आप लाखों दलितों-

की उन्नतिके लिए काम करनेका निर्णय करें तो आपके रास्तेमें सरकार रुकावट बनेगी। वह तो हमारी ही तरह आपको इसके लिए धन्यवाद देगी। क्या यह आशा करना बहुत अधिक है कि आप अब भी अपने "निर्णयकी भूल" देखेंगे और समाजकी बेहतरीके कामपर ध्यान देंगे जो आपके पुराने भाषणोंके अनुसार भारतके लिए स्वराज्य पानेका सबसे निश्चित और सबसे अच्छा रास्ता है?

आपका सच्चा,
एस० एम० माइकेल

मैं इस उत्तरको सहर्ष प्रकाशित करता हूँ। जाहिर है कि श्री माइकेल 'यंग इंडिया'के नियमित और सावधान पाठक नहीं हैं। यदि वे होते तो उन्हें विदित होना चाहिए था कि असहयोग शुद्धीकरणकी प्रक्रिया है। वे देखेंगे कि जब असहयोगके तरीकेसे स्वराज्य स्थापित हो जायेगा, तो कोई भी 'पेरिया' या ब्राह्मणेतर समस्या सुलझानेको बाकी नहीं रह जायेगी। मैं अपने उस वक्तव्यपर कायम हूँ कि समाजकी बुनियादी बुराइयोंका सुधार करना स्वराज्य पाना है, परन्तु उस समय मैं यह नहीं देख पाया था कि ब्रिटिश सरकार सबसे बड़ी सामाजिक बुराई है जिससे समाज अभिशप्त है। इसलिए इस सरकारको, यदि वह पश्चात्ताप नहीं करती तो, अवश्य समाप्त होना चाहिए, वैसे ही जैसे कि हिन्दू धर्मको यदि वह छुआछूतके दोषसे मुक्त नहीं होता। श्री माइकेलसे मेरा मतभेद उसी तरहका है जैसा उन हिन्दुओंसे है जो छुआछूतके शैतानी स्वरूपको नहीं देखते। श्री माइकेल सरकारकी वर्तमान प्रणालीमें अपने राष्ट्रकी उत्तरोत्तर अवनति नहीं देख पा रहे हैं। इसलिए उनके लिए ब्रिटिश सरकारको सहन करना सही हो सकता है। मेरे लिए वैसा करना वर्तमान स्थितिमें पापपूर्ण है। और अब मैं उसी उपायको सरकारकी वर्तमान प्रणालीके विरुद्ध प्रयोग करनेमें लगा हुआ हूँ जो मैंने हिन्दू धर्ममें छुआछूतकी प्रथाके विरुद्ध प्रयुक्त किया है। अफगान आक्रमणकी बात करके श्री माइकेल विषयसे भटक गये हैं। इस नई आपत्तिका जवाब न देनेके लिए वे मुझे क्षमा करेंगे। मैं उनका ध्यान इस पत्रके पृष्ठोंकी ओर दिलाता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १७-११-१९२०

२७१. भाषण : मलाडमें विद्यालयके उद्घाटनपर[1]

१७ नवम्बर, १९२०

विद्यालयके मालिकने संक्षेपमें संस्थाके उद्देश्य और हेतु बताये। उसके बाद श्री गांधीने विद्यालयके समारम्भकी घोषणा करके उपस्थित लोगोंको सम्बोधित करते हुए भाषण दिया।

उन्होंने प्रारम्भमें नियत समयपर वहाँ न आ सकनेके लिए खेद प्रकट करते हुए कहा, चूँकि मुझे जल्दी ही बम्बई वापस जाना है, इसलिए मेरे पास बहुत कम समय है और मुझे जो-कुछ कहना है, मैं आपसे बहुत संक्षेपमें कहूँगा। मेरे पास कुछ लुहारों और बढ़इयोंकी शिकायतें आई हैं कि प्रस्तावित विद्यालय उनके महत्त्वको कम करनेके उद्देश्यसे खोला जा रहा है। इससे मुझे बहुत दुःख हुआ। मुझे बहुत खेद है कि हमारे समाजमें एक वर्ग दूसरे वर्गसे इतनी घृणा करता दिखाई देता है। मैं विद्यालयके मालिकोंको सलाह देता हूँ कि वे अपना काम पूरी शक्तिसे चलायें और मैं उनकी सफलता चाहता हूँ। मैं अन्तरात्माकी आवाजको सबसे अधिक मूल्यवान मानता हूँ और यदि हममें कोई सच्चा मतभेद हो तो हमें उसकी कोई परवाह नहीं करनी चाहिए।

अन्तमें उन्होंने लोगोंको सलाह दी कि आप हर मामलेमें अपने पैरोंपर खड़े होना सीखें और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए आपको असहयोगका प्रचार और उसपर आचरण करना होगा। भारतको राष्ट्रीय शिक्षाकी आवश्यकता है, ऐसी शिक्षाकी नहीं जैसी सरकारी स्कूलोंमें दी जाती है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २२-११-१९२०

१. यह विद्यालय लुहारगिरी सिखानेके लिए खोला गया था

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

हिदायतोंके मसविदेपर विट्ठलभाई पटेलकी टिप्पणी

मैं सामान्यतः रिपोर्टमे दिये गये हिदायतोके मसविदेके अधिकाश भागसे सहमत हूँ लेकिन मैं अनुभव करता हूँ कि यदि मैंने उन्हे ज्योका-त्यो और चुपचाप स्वीकार कर लिया तो मैं उप-समितिके सदस्यकी हैसियतसे अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो जाऊँगा। इसलिए मैं रिपोर्टके कुछ मुद्दोपर अपने विचार प्रकट करते हुए अलगसे यह टिप्पणी लिख रहा हूँ।

१ मुझे खेद है कि मै रिपोर्टमे दिये गये इस कथनको किसी प्रकार भी स्वीकार नही कर सकता कि काग्रेसने श्री गाधीके असहयोगके सम्पूर्ण कार्यक्रमको स्वीकार कर लिया है और उसके प्रथम चरणपर तुरन्त अमल करनेका निर्णय कर चुकनेके बाद अव उसे केवल शेप तीन चरणोकी प्रगतिके बारेमे निश्चय करना है। सक्षेपमे मेरे तर्क इस प्रकार है — (१) वास्तवमे काग्रेसने श्री गाधीके कार्यक्रमके शेष तीन चरणोके गुण-दोषोंपर विचार ही नही किया है। इस प्रश्नको न तो प्रत्यक्ष रूपसे उठाया गया, न उसपर बहस की गई और न उसके बारेमे कोई निश्चय ही किया गया। (२) मेरे विचारमे काग्रेस द्वारा श्री गाधीके कार्यक्रमके सभी चरणोको स्वीकार करनेसे काग्रेस सविधानकी प्रथम धाराका उल्लंघन होता है। यह धारा काग्रेसको स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए केवल 'सवैधानिक उपाय' अपनानेको कहती है। वह पृष्ठ जिसपर सरकारी कर्मचारियो खासकर सैनिक विभागके कर्मचारियोको त्यागपत्र देनेके लिए कहा गया है, कदापि सवैधानिक नही कहा जा सकता। मैं पहली धारामें 'सवैधानिक' के स्थानपर 'शान्तिपूर्ण' शब्द रखनेके किसी भी प्रस्तावका पूर्ण रूपसे समर्थन करनेके लिए तैयार हूँ। किन्तु जबतक 'सविधान' मे आवश्यक परिवर्तन नही किया जाता तवतक कांग्रेस श्री गाधीके कार्यक्रमके सभी चरणोको स्वीकार नही कर सकती।

इसलिए मैं अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीसे निवेदन करता हूँ कि वह रिपोर्टसे उस अनुच्छेदको हटा दे जिसमे उक्त सुझाव दिया गया है।

२ सरकारी समारोहो आदिका बहिष्कार।

रिपोर्टमें इस मुद्देके सम्बन्धमें हिदायतें नही दी गई है, शायद ऐसा असावधानीके कारण हो गया है। इस मुद्देके अन्तर्गत जो हिदायतें तैयार होनी चाहिए, उनकी एक रूपरेखा मैं यहाँ देता हूँ :

(१) दरबारियोसे अपने नाम सूचीसे हटानेके बारेमे कहनेके लिए शिष्टमण्डल और सार्वजनिक सभाओका सगठन। (२) अतिरिक्त करकी वसूलीके लिए किये जाने-

वाले दरबारों या इसी प्रकारके अन्य समारोहोंके अवसरपर शिष्टमण्डलों तथा सभाओं-का संगठन, ताकि जिन लोगोंके उन समारोहोंमें जानेकी सम्भावना है उनपर वैसा न करनेके लिए जोर डाला जा सके — चाहे फिर ये समारोह किसी सरकारी अधि-कारीके स्वागतके लिए सरकार, स्थानीय समिति, संघ या किसी व्यक्तिने निजी तौर-पर ही क्यों न किये हों। स्थानीय समितियों, संघों या अलग-अलग व्यक्तियोंसे यह निवेदन करनेके लिए भी कि वे किसी सरकारी अधिकारीका अभिनन्दन न करें और न उनके स्वागतमें कोई समारोह ही करें, शिष्टमण्डलों तथा सभाओंका संगठन होना चाहिए।

३. सरकारी विद्यालयों तथा महाविद्यालयोंका धीरे धीरे बहिष्कार।

इस धारामें प्रयुक्त 'धीरे-धीरे' शब्दकी रिपोर्टमें दी गई व्याख्याको मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मैं यह समझनेमें असमर्थ हूँ कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी विद्यालयों और महाविद्यालयोंसे लड़कों और लड़कियोंको तुरन्त हटा लेनेकी सलाह कैसे दे सकती है जबकि उक्त धारामें उसीने स्वयं 'धीरे-धीरे' शब्दका प्रयोग किया है। श्री गांधीकी प्रस्तावित मूल धारामें यह शब्द नहीं था। मेरे विचारमें कांग्रेसके प्रस्तावके इस भागपर अमल करनेके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके पास केवल ये दो उपाय हैं. (१) विद्यालयों और महाविद्यालयोंसे बालक-बालिकाओंको हटानेके लिए प्रचार तथा साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओंकी स्थापना। इस प्रकारके प्रचारके लिए विशाल धनराशि तथा निरन्तर प्रयत्न करनेकी आवश्यकता होगी और फिर भी, मुझे डर है यह सम्भव नहीं होगा कि दीर्घ कालतक इसका कोई निश्चित परिणाम निकले। (२) किसी चुने हुए क्षेत्रमें, उदाहरणके लिए बम्बई महाप्रान्तके गुजरात क्षेत्रमें, राष्ट्रीय शिक्षाकी स्थापनाकी दिशामें प्रयोग करनेके लिए अपने सारे प्रयत्न केन्द्रित करना तथा साथ ही विद्यालयों तथा महाविद्यालयोंसे बालक-बालिकाओं-को हटा लेना। इस योजनाके अन्तर्गत उचित समयके अन्दर निश्चित परिणाम उप-लब्ध करना सम्भव है। और यदि यह प्रयोग सफल हो गया तो भारतके दूसरे भाग भी इस उदाहरणका अनुसरण करेंगे।

४. ब्रिटिश न्यायालयोंका बहिष्कार।

यहाँपर भी रिपोर्टमें 'धीरे-धीरे' शब्दका जो अर्थ किया गया है मैं उसे स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हूँ। पहले अपने विवाद पंचनिर्णयको सौंपनेके औचित्यके बारेमें जनताको बतानेके लिए देशभरमें जबरदस्त प्रचार तथा साथ ही पंच फैसला करने-वाले न्यायालयोंकी स्थापना की जानी चाहिए; इसमें ब्रिटिश न्यायालयोंसे वकीलोंके तुरन्त हट जानेके विषयमें किये जानेवाले प्रचारकी अपेक्षा अधिक अच्छे परिणाम निकलेंगे। इससे भी अच्छे परिणाम प्राप्त करनेके लिए मैं सिफारिश करूँगा कि इस दिशामें हमारे प्रयत्न कुछ चुने हुए क्षेत्रोंमें ही केन्द्रित होने चाहिए और जहाँतक सम्भव हो इस प्रयोगको सम्पूर्ण रीतिसे करना चाहिए। इस बीच देशके सभी वकीलोंसे कहना चाहिए कि वे अपनी आयका एक अंश राष्ट्रीय निधिमें दें। इस निधिसे उन वकीलोंकी सहायता की जा सकती है जो अपनी वकालत छोड़कर अपना सारा समय सार्वजनिक कार्योंमें लगाना चाहते हैं।

५. कौंसिलोंका बहिष्कार।

मेरा विचार है कि हमें अपनी सारी कोशिशें और ताकत भविष्यमें कुछ समय-तक कौंसिलोंके बहिष्कारको यथासम्भव सम्पूर्ण बनानेपर केन्द्रित कर देनी चाहिए। हमें अपनी शक्ति दिखा देनी चाहिए और ऐसा हम अपने कार्यक्रमके किसी मुद्देपर अपने प्रयत्न केन्द्रित करके ही कर सकते हैं। असहयोग आन्दोलनकी जड़ जमाने, उसे उगाने, विकसित करने तथा अन्तमें सफल बनानेके लिए हमें इस प्रकार कार्य करना चाहिए जिससे निकट भविष्यमें हमारी गतिविधियोंका कुछ स्पष्ट परिणाम दृष्टिगोचर हो। ऐसा हम सर्वोत्कृष्ट प्रकारसे तभी कर सकते हैं जबकि हम प्रारम्भमें एक ही मुद्देको लें और उसके लिए हम यथासम्भव सम्पूर्ण रूपमें कार्य करें। मेरा यह विचार है, इसलिए मैंने ऊपर यह सुझाव दिया है कि विद्यालयों तथा न्यायालयोंका बहिष्कार कुछ चुने क्षेत्रोंमें ही किया जाये ताकि हम कौंसिलोंके बहिष्कारको यथासम्भव सम्पूर्ण बनानेके लिए अधिकसे-अधिक प्रयत्न कर सकें। इसलिए मैं इस मुद्देपर रिपोर्टमें दी गई हिदायतोंमें कुछ और जोड़नेके लिए निम्नलिखित सुझाव देना पसन्द करूँगा : (१) सभी चुनाव-क्षेत्रोंमें तुरन्त सार्वजनिक सभाएँ होनी चाहिए और उम्मीदवारोंसे अपने नाम वापस लेनेके बारेमें कहनेके लिए प्रस्ताव पास होने चाहिए। (२) चुनावों-के समाप्त हो जानेपर भी चुने गये उम्मीदवारोंपर सदस्यतासे त्यागपत्र देनेके बारेमें जोर डालनेके लिए सार्वजनिक सभाएँ तथा शिष्टमण्डल संगठित कर निरन्तर प्रचार होना चाहिए। (३) किसी भी चुनाव-क्षेत्रमें जिन मतदाताओंके मतोंसे कोई सदस्य चुना गया हो उनके पास बार-बार जाकर उनसे यह कहें कि वे सदस्यपर त्यागपत्र देनेके लिए जोर डालें।

६. मतदाताओंसे हस्ताक्षर लेनेके लिए रिपोर्टमें दिये गये फार्ममें मैं एक परि-वर्तन सुझाना चाहता हूँ। अन्तिम वाक्य हटा देना चाहिए और उसके स्थानपर निम्न-लिखित शब्द जोड़ देने चाहिए : "हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जब-तक विधान मण्डलोंकी स्थापना ऐसे संविधानके अन्तर्गत नहीं होती जिसका अन्तिम लक्ष्य 'स्वराज्य' यानी पूर्ण रूपसे उत्तरदायी सरकार हो तबतक हम किसी भी विधान-मण्डलमें अपना प्रतिनिधित्व नहीं चाहते। कारण केवल ऐसे विधान मण्डलोंके द्वारा ही हम 'खिलाफत', 'पंजाब' और इसी प्रकारके अन्य मामलोंमें न्याय प्राप्त कर सकेंगे"।

७. विदेशी मालका बहिष्कार।

मैं इस विचारसे सहमत नहीं हो सकता कि यह धारा एक दुर्भाग्यपूर्ण प्रक्षेप है जिसे गलतफहमीके कारण प्रक्षिप्त कर दिया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसकी शब्द-रचना अतिव्याप्तिसे दूषित है और पूर्ण सम्भावना है कि कांग्रेसकी आगामी बैठकमें इसपर पुनर्विचार किया जाये। इस बीच प्रत्येक असहयोगीका कर्त्तव्य है कि वह इस सिफारिशपर, जहाँतक व्यावहारिक रूपसे सम्भव हो वहाँतक, अमल करे। शायद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी प्रारम्भमें ब्रिटेनमें बने कुछ विशिष्ट मालके बहिष्कारकी ही सिफारिश करे।

८. प्रचार-मण्डल

मै इस बातको गहराईके साथ महसूस करता हूँ कि समय-समयपर न केवल ब्रिटेनमें बल्कि अमेरिकामे भी हमे वहाँके लोगोको इस बातकी पूरी जानकारी देते रहना चाहिए कि हम क्या कर रहे है। यह विचार लोकमान्य तिलकका था और यही विचार लाला लाजपतरायका भी है। मिस्री राष्ट्रीय आन्दोलनकी एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि विदेशोमें अपने पक्षका प्रचार करनेके लिए उन्होने व्यापक प्रबन्ध किया था। इस वर्ष अपने इग्लैंड प्रवासमे मैंने मिस्री और आयरिश राष्ट्रवादियोसे बात-चीत की। उन्होने मुझे विश्वास दिलाया कि जबतक साथ-साथ विदेशोमे प्रचार नही होता तबतक कोई परिणाम नही निकलेगा, प्रचार करनेसे ही परिणाम निकल सकता है। इसलिए मै नि सकोच सिफारिश करता हूँ कि इस देशमे असहयोगके क्षेत्रमे की जानेवाली अपनी गतिविधियोके साथ-साथ तुरन्त दो शक्तिशाली प्रचार-मण्डलोकी भी स्थापना होनी चाहिए। एक मण्डल ब्रिटेनमे स्थापित करना चाहिए और दूसरा न्यूयॉर्कमे। मै इसके साथ १५ नवम्बर, १९१९ के एक मिस्री परिपत्रकी नकल नत्थी कर रहा हूँ ताकि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके सदस्योको यह मालूम हो जाये कि मिस्री राष्ट्रवादियो द्वारा किस प्रकारका प्रचार-कार्य किया गया है।

अन्तमे मै एक या दो शब्द कहना चाहूँगा जो मुझे इस टिप्पणीके प्रारम्भमे ही कह देने चाहिए थे। पदवियोके बहिष्कार आदिके प्रश्नपर रिपोर्टमे दिया गया हिदायतोका मसविदा ठीक तो है किन्तु मेरे विचारमे निम्नलिखित आधारपर उक्त हिदायतोमे कुछ हिदायते और जोड देनी चाहिए

(१) अखिल भारतीय समाचारपत्रोको भविष्यमे अपने सभी लेखोमे पदवियोका उल्लेख करना बिलकुल छोड देना चाहिए और पदवीधारियोका उल्लेख उनके नामोके साथ श्री और श्रीमती लगाकर ही करना चाहिए।

(२) भविष्यमे किसी भी भारतीय पत्रको अपने स्तम्भोमे किसी प्रकारकी भी पदवियोंकी सूची या सरकार द्वारा की गई नामजदगियोको प्रकाशित नही करना चाहिए।

(३) भारतीय जनता पदवीधारियोको सम्बोधित करते समय अखबारोकी तरह पदवियोका उल्लेख करना छोड दे।

वि० झ० पटेल

अग्रेजी प्रति (एस० एन० ७२६६) की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट २

गुजरात महाविद्यालय, अहमदाबादके शिक्षक

आचार्य : १. आसूदामल टेकचन्द गिडवानी
(भूतपूर्व प्रिंसिपल, रामजस कालेज, दिल्ली)

धर्म : २. विनायक नरहर भावे (सत्याग्रहाश्रम)

गुजराती : ३. रामनारायण विश्वनाथ पाठक (गुजरात केलवणी मंडल)

४. नरहरि द्वारकादास परीख (राष्ट्रीय गुजराती शाला)

संस्कृत : ५. रामचन्द्र बलवन्त आठवले (भूतपूर्व प्रोफेसर, गुजरात कालेज)

६. रसिकलाल छोटालाल परीख (गुजरात केलवणी मंडल)

अंग्रेजी : ७. आचार्य स्वयं तथा प्राणजीवन विश्वनाथ पाठक
(गुजरात केलवणी मंडल)

गणित : ८. महेश्वर शंकर गोडबोले (भूतपूर्व प्रोफेसर, गुजरात कालेज)

इतिहास : ९ लाला जुगलकिशोर अग्रवाल एम० ए०

अर्थशास्त्र : १० जैकिशन प० भणसाली, बी० ए०

११. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर (राष्ट्रीय गुजराती शाला)

न्याय (तर्कशास्त्र) : १२. सीताराम पाण्डुरंग पटवर्धन (राष्ट्रीय गुजराती शाला)

फारसी, (उर्दू सहित) हिन्दी तथा संस्कृत और विज्ञानके अध्यापक आनेवाले हैं। फ्रेंच और अन्य वैज्ञानिक विषयोंके अच्छे अध्यापकोंकी खोज की जा रही है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-११-१९२०

सामग्रीके साधन-सूत्र

गाधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गाधी-साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय सग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया), नई दिल्लीमें सुरक्षित कागजात।

साबरमती संग्रहालय. पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय: जहाँ गाधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल और १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात सुरक्षित हैं; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

'अमृतबाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अग्रेजी दैनिक।

'गुजराती': बम्बईसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'ट्रिब्यून': लाहौरसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक। १९४८ से यह पत्र अम्बालासे प्रकाशित होने लगा है।

'नवजीवन': (१९१९-१९३१): गाधीजी द्वारा सम्पादित तथा अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक, जो कभी-कभी सप्ताहमे दो बार भी निकलता था; यह 'नवजीवन अने सत्य' (१९१५-१९१९) नामक गुजराती मासिकका परिवर्तित रूप था। इसका पहला अंक ७ सितम्बर, १९१९ को निकला था। १९ अगस्त, १९२१ से इसका हिन्दी सस्करण भी प्रारम्भ हो गया था।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अग्रेजी दैनिक।

'यंग इडिया'. (१९१९-१९३१) अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। सम्पादक – मो० क० गाधी, प्रकाशक – मोहनलाल मगनलाल भट्ट।

'लीडर'. इलाहाबादसे प्रकाशित अग्रेजी दैनिक।

'सर्चलाइट'. पटनासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अग्रेजी दैनिक।

'मधपुडो': आश्रम विद्यालय, साबरमतीकी हस्तलिखित पत्रिका।

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२०।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी: स्वराज्य आश्रम, बारडोली।

ऑल अबाउट द खिलाफत (अंग्रेजी): एम० एच० अब्बास, राय ऐंड राय चौधरी, कलकत्ता।

पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद: सम्पादक – काका कालेलकर, जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

'फ्रीडम्स बैटल' (अंग्रेजी) . गणेश ऐंड कं०, मद्रास; १९२२।

'बापुना पत्रो – २ सरदार वल्लभभाईने' (गुजराती) : सम्पादक – मणिबहेन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९५२।

'बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने' (गुजराती) . सम्पादक – मणिबहेन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९५७।

'महादेवभाईनी डायरी', खण्ड ५ (गुजराती) . नरहरि द्वा० परीख, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९५१।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) . एलिस एम० बार्न्ज़ द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९५६।

'स्पीचेज़ ऐण्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी' (अंग्रेजी) . जी० ए० नटेसन ऐंड कं०, मद्रास।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१ जुलाईसे १७ नवम्बर, १९२० तक)

जुलाई १: गाधीजीने भारतीयोके प्रत्यावर्तन सम्वन्धी दक्षिण आफ्रिकी आयोगकी अन्तरिम रिपोर्टके बारेमे अखबारोको पत्र लिखा।

जुलाई २: काग्रेस संविधानके मसविदेके बारेमें न० चि० केलकरको लिखा। हटर कमेटीकी रिपोर्टके विरोधमे वम्बईमे सार्वजनिक सभा हुई। सर नारायण गणेश चन्दावरकरने अध्यक्षता की।

जुलाई ४: गाधीजीने 'नवजीवन' मे पहली अगस्तसे प्रारम्भ होनेवाले असहयोगके कार्यक्रमका विशद विवेचन किया।

जुलाई ६. चर्चिलने हाउस ऑफ कॉमन्समे आर्मी कौसिलके निष्कर्षोकी घोषणा की कि जनरल डायर गलत निर्णयके दोषी है तथा साम्राज्यमे उन्हें कोई पद नही दिया जाना चाहिए।

जुलाई ७ के पूर्व: गाधीजीने असहयोगपर समाचारपत्रोको एक वक्तव्य दिया तथा मुहम्मद अलीको लन्दन तार भेजा।

असहयोग समितिने असहयोगके कार्यान्वियन और उसके कार्यक्रमके सम्वन्धमे एक वक्तव्य प्रचारित किया।

जुलाई ७: बम्बईमे महिलाओकी सभामे भाषण।

'यग इंडिया' मे युवराजके आगमनका बहिष्कार करनेकी अपील।

जुलाई ८. हाउस ऑफ कॉमन्समे हटर कमेटीकी रिपोर्टपर बहस।

जुलाई ११: गाधीजीने 'नवजीवन' मे लिखे अपने "गुजरातका कर्त्तव्य" नामक लेखमे गुजरातियोसे असहयोगमें प्रमुख भाग लेनेकी अपील की। एक अन्य लेखमे उन्होंने शान्तिनिकेतनके लिए योगदान देनेको कहा। असहयोग सम्वन्धी उनका सन्देश राजकीय मण्डलकी बैठक, नडियादमें पढा गया।

दादूके पक्षमे दिये गये दक्षिण आफ्रिकी न्यायालयके निर्णयपर अखबारोको लिखा।

जुलाई १३: पूर्वी आफ्रिका और फीजीमें भारतीयोकी स्थितिके सम्वन्धमे वम्बईमे भाषण।

जुलाई १४. 'यंग इडिया' मे लिखे अपने लेख द्वारा श्रीमती बेसेट और श्रीनिवास शास्त्रीकी आलोचना का उत्तर दिया।

जुलाई १५: जालन्धरके अपने भाषणमे हिन्दुओ और मुसलमानोंसे असहयोगका समर्थन करनेकी अपील की।

जुलाई १६: खिलाफत समितिके तत्त्वावधानमे, अमृतसरमे हुई असहयोग सभामें भाषण।

जुलाई १७· गाधीजीने लाहौरमे खिलाफत और असहयोगपर भापण दिया।

जुलाई १८. लाहौरमे कौसिलोके बहिष्कारपर भाषण।

अखिल भारतीय मुस्लिम लीगने हटर कमेटीकी बहुमत रिपोर्टकी भर्त्सना की।

जुलाई १९ रावलपिंडीमे खिलाफतपर भाषण।

हाउस ऑफ लॉर्डसमे डायरपर बहस।

जुलाई २० गाधीजीने गूजरखानमे साम्प्रदायिक एकता और खिलाफतपर भाषण दिया।

जुलाई २१ १ अगस्तको होनेवाली हडतालके सम्बन्धमें केन्द्रीय खिलाफत समिति, बम्बईकी हिदायतोका प्रकाशन।

गाधीजीने 'यग इडिया' मे "चरखेका सगीत" लेख लिखा।

जुलाई २२ कराचीमे खिलाफत सभामे भाषण।

जुलाई २३ हैदराबाद (सिन्ध) में खिलाफत सम्मेलनमें भाषण।

जुलाई २४ गाधीजीने अमृतलाल विट्ठलभाई ठक्करको तार द्वारा सूचित किया कि उडीसाका अकाल-सहायता कार्य समाप्त होनेसे पूर्व ब्रिटिश गियाना न जायें।

सिन्ध नेशनल कालेजके विद्यार्थियोके समक्ष भाषण।

खिलाफत सम्मेलन, हैदराबाद (सिन्ध) मे असहयोग प्रस्तावका समर्थन।

जुलाई २५ अथवा उसके पूर्व खिलाफत कार्यकर्त्ताओंकी लीग, दिल्लीको तार द्वारा राजद्रोहात्मक सभा अधिनियमका उल्लघन करनेको मना किया।

जुलाई २५ नागरिक सघ, हैदराबाद (सिन्ध) द्वारा आयोजित सभामें भाषण।

जुलाई २८ खिलाफत आन्दोलनके सम्बन्धमे 'यग इडिया' मे मॉण्टेग्युको उत्तर।

गाधीजी और शौकत अलीने मद्रास अहातेको खिलाफत दिवसके लिए सन्देश भेजा।

बम्बईमें असहयोग सभामे भाषण।

जुलाई ३१: बम्बईमे बाल गंगाधर तिलकका देहावसान।

गाधीजी और शौकत अलीने पहली अगस्तको मनाये जानेवाले खिलाफत दिवसके लिए सन्देश भेजा जिसमे असहयोग समितिके निर्देशोका उल्लेख किया।

अगस्त १ तृतीय खिलाफत दिवस—गाधीजीने असहयोग आन्दोलनका श्रीगणेश किया।

कैसरे हिन्द तथा अन्य पदकोको लौटानेके सम्बन्धमे वाइसरायको पत्र लिखा।

बम्बईमे केन्द्रीय खिलाफत समितिके तत्त्वावधानमे हुई सभामे भाषण।

अगस्त २ मुहम्मद अली तथा खिलाफत प्रतिनिधि मण्डलके अन्य सदस्य बम्बई पहुँचे।

गाधीजीकी अध्यक्षतामे उनका सार्वजनिक स्वागत।

अगस्त ४: 'यग इडिया' मे तिलकको श्रद्धाजलि, सर नारायण चन्दावरकर और अन्य लोगो द्वारा असहयोगके विरोधमे जारी किये गये घोषणापत्रका उत्तर।

अगस्त ११: गाधीजी बम्बईसे दक्षिणके दौरेपर गये।

'यग इडिया' मे लिखित "खड्ग-बलका सिद्धान्त" नामक लेखमे अहिंसक असहयोगका विवेचन।

अगस्त १२. मद्रास पहुँचे।

असहयोगके सम्बन्धमें 'मद्रास मेल' के प्रतिनिधिसे भेट।

मद्रास समुद्र-तटपर आयोजित सार्वजनिक सभामे असहयोग कार्यक्रमपर भाषण।

अगस्त १३ : जुमा मस्जिद, ट्रिप्लीकेन, मद्रासमे असहयोगपर भाषण

अगस्त १४. गाधीजी अम्बूर और वेलोर गये।

अगस्त १५ : केन्द्रीय श्रमबोर्डके तत्त्वावधानमें हुई सभामें श्रमिकोके अधिकारो और कर्त्तव्योके बारेमे भाषण।

अगस्त १६ कुम्भकोणममे भाषण।
नागौरमे भाषण।

अगस्त १७ त्रिचिनापल्लीमे भाषण।

अगस्त १८ : कालीकटमें भाषण।

अगस्त १९. गाधीजीने मगलौरमे असहयोगपर भाषण दिया।

अगस्त २० : सेलममे भाषण।

अगस्त २१ बगलौरमे ईदगाहमे आयोजित सभामे भाषण।

अगस्त २२ मद्रासमे लॉ कालेजके विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण।

अगस्त २३. बेजवाडामे 'म्युनिसिपल ट्रैवेलर्स बंगलो' के अहातेमे आयोजित सभामे भाषण।

अगस्त २५ बम्बई पहुँचे।

अगस्त २६ : अहमदाबाद पहुँचे।

अगस्त २७. अहमदाबादमें गुजरात राजनीतिक परिषद्में भाषण।

अगस्त २८· गाधीजीने गुजरात राजनीतिक परिषद्मे असहयोगपर प्रस्ताव पेश किया।

अगस्त २९ गुजरात राजनीतिक परिषद्मे बहिष्कारपर भाषण।

अगस्त ३१ आजन्म खादी पहननेका व्रत लिया।

सितम्बर १. 'यग इडिया' मे मॉण्टेग्यु और वाइसरायको उत्तर दिया तथा गुजरात राजनीतिक परिषद्के सम्बन्धमे लिखा।

सितम्बर ४–९· कलकत्तामे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीका विशेष अधिवेशन। असहयोग, हटर कमेटीकी रिपोर्ट तथा पजाबमे हुए अत्याचारोके सम्बन्धमे ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके रुखपर प्रस्ताव पारित किये गये।

सितम्बर ५· काग्रेसकी विषय-समितिकी बैठकमे गांधीजीने असहयोगपर प्रस्ताव पेश किया।

सितम्बर ७ : विषय-समितिकी बैठकमे आलोचकोको उत्तर।

सितम्बर ८ : कलकत्ता कांग्रेसमे गाधीजी द्वारा असहयोगपर पेश किया गया प्रस्ताव बहुमतसे पास हुआ।

अखिल भारतीय मुस्लिम लीगने गांधीजीका असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया।

सितम्बर ९ प्रवासी भारतीयोके प्रश्नपर एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इडियाके प्रतिनिधिसे गाधीजीकी भेट।

कलकत्तामे अ० भा० काग्रेस कमेटीकी विशेष बैठकमे असहयोग कार्यक्रमपर विचार करनेके सम्बन्धमें भाषण।

सितम्बर १०: 'अमृतबाजार पत्रिका' के सम्पादक मोतीलाल घोषसे भेंट।

सितम्बर १४: पटेलका वाइसरायकी परिषद्‌से त्यागपत्र।

सितम्बर २२: अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी उप-समितिने, जिसके सदस्य गांधीजी, मोतीलाल नेहरू और वल्लभभाई पटेल थे, कांग्रेस संगठनोंके लिए हिदायतोंके मसविदेपर रिपोर्ट पेश की।

सितम्बर २५ के पूर्व गांधीजीकी अध्यक्षतामें अखिल भारतीय होमरूल लीगने कांग्रेसके असहयोग प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके लिए एक परिपत्र जारी किया।

सितम्बर २५. गांधीजीने अ० भा० कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षको कांग्रेस संविधानका मसविदा भेजा।

मतदाताओंके नाम उनके कर्त्तव्यसे सम्बन्धित एक पत्र प्रकाशित किया।

सितम्बर २७ या उसके बाद: पूर्वी आफ्रिकाके देशभाइयोंको सन्देश भेजा।

सितम्बर २८: अहमदाबादमें गुजरात कालेजके विद्यार्थियोंके समक्ष स्कूलों और कालेजोंके बहिष्कारके सम्बन्धमें भाषण।

वी० जे० पटेलने सभाकी अध्यक्षता की।

सितम्बर २९. अहमदाबादमें शिक्षकोंकी सभामें भाषण।

अक्तूबर ६: गांधीजीने सूरतमें विद्यार्थियों और शिक्षकोंके समक्ष भाषण दिया।

मुहम्मद अली जिन्ना तथा अन्य १९ लोगोंने स्वराज्य सभाके नये संविधानके विरोधमें उसकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया।

अक्तूबर ८. रोहतकमें भाषण।

बम्बईमें गांधीजीके जन्मदिनके उपलक्ष्यमें भगिनी समाज द्वारा आयोजित सभामें भारतीय महिलाओंके नाम उनका सन्देश पढ़कर सुनाया गया।

अक्तूबर ११. मुरादाबादमें संयुक्त प्रान्त सम्मेलनमें भाषण।

अक्तूबर १२: अलीगढ़में विद्यार्थियोंसे मिले।

अक्तूबर १४: कानपुरमें भाषण।

अक्तूबर १५ लखनऊमें भाषण।

अक्तूबर १७. बरेलीमें गांधीजीने नगरपालिका द्वारा दिये गये अभिनन्दनपत्रके उत्तरमें भाषण दिया।

अक्तूबर १८. अमृतसरमें भाषण।

खालसा कालेजके विद्यार्थियोंसे मिले।

अक्तूबर १९: लाहौरमें असहयोगपर भाषण।

अक्तूबर २२: भिवानी सम्मेलनमें भाषण।

अक्तूबर २४: अलीगढ़ कालेजके न्यासियोंको पत्र लिखा।

'स्वराज्य सभा' के रूपमें पुनर्गठित अखिल भारतीय होमरूल लीगके सम्बन्धमें लिखा।

अक्तूबर २५. गांधीजीने मु० अ० जिन्नाको उनके स्वराज्य सभासे दिये गये त्यागपत्रके बारेमें पत्र लिखा।

अक्तूबर २७ : 'यंग इंडिया' में भारतके अंग्रेजोंके नाम गांधीजीका पत्र प्रकाशित हुआ।

डाकोरमें आयोजित सार्वजनिक तथा स्त्रियोंकी सभामें भाषण।

अक्तूबर ३१ : अहमदाबादमें स्त्रियोंकी सभामें भाषण।

नवम्बर १ : मेहमदाबादमें भाषण।

नडियादकी सार्वजनिक सभामें भाषण तथा नगरपालिका पार्षदोंसे बातचीत।

नवम्बर २ : भड़ौंचकी सार्वजनिक सभामें भाषण।

अंकलेश्वरमें लोकमान्य नेशनल कालेजके उद्घाटनपर भाषण।

नवम्बर ३ : 'यंग इंडिया' में कांग्रेस-संविधानके बारेमें लिखा।

नवम्बर ४ : गांधीजीने नासिककी सभामें भाषण दिया जिसकी अध्यक्षता करवीर-पीठके श्रीमद् शंकराचार्यने की।

नवम्बर ५ : पूनामें डेकन जीमखाना तथा भवानीपेठकी सभाओंमें भाषण।

नवम्बर ६ : पूनामें स्त्रियोंकी सभामें भाषण।

नवम्बर ७ : गांधीजीके लेख "यदि मैं गिरफ्तार हो जाऊँ" तथा "१६ नवम्बरको क्या करें", 'नवजीवन' में प्रकाशित हुए।

गांधीजीने सतारामें सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

नवम्बर ८ : अलीगढ़ विश्वविद्यालयकी स्थापनापर गांधीजीने मुहम्मद अलीको तार द्वारा बधाई दी।

नेपाणी और बेलगाँवकी सार्वजनिक सभाओंमें भाषण।

नवम्बर १४ : बम्बईमें विद्यार्थियोंकी सभामें भाषण।

नवम्बर १५ : अहमदाबादमें गुजरात महाविद्यालयमें कुलपति-पदसे उद्घाटन भाषण।

नवम्बर १६ : अहमदाबादमें आयोजित शोक सभामें कॉर्कके लॉर्ड मेयर मैक्स्विनीको श्रद्धांजलि भेंट की।

नवम्बर १६ : बम्बई अहातेमें विधान परिषद्के चुनाव।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

अ

ख

ग

घ

च

छ

ज

झ

ट

फ

ब

य

र